RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

75
अमृत वर्ष

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : 75 अंक : 10,11
जनवरी–फरवरी, 2026

द्विभाषी राष्ट्रसेवक • वर्ष : 75 अंक : 10, 11 जनवरी-फरवरी, 2026

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

(भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका)

www.arpsguwahati.com

वर्ष : 75 | **अंक : 10-11** | **जनवरी-फरवरी, 2026**

परामर्श मंडल

भारतभूषण महंत (असम) • **प्रो. आर. एस. सर्राजु** (तेलंगाना) • **प्रो. किरण हाजरिका** (पंजाब) • **प्रो. प्रदीप के शर्मा** (सिक्किम) • **प्रो. एच. एन. वाघेला** (गुजरात) • **डॉ. रीतामणि वैश्य** (असम)

संपादक मंडल

प्रो. देवाशीष महापात्र (तेजपुर) • **डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन** (गुवाहाटी) • **प्रो. दिलीप कुमार मेधी** (गुवाहाटी) • **डॉ. अनुशब्द** (तेजपुर) • **डॉ. कुसुम कुंज मालाकार** (गुवाहाटी) • **डॉ. जुरी दत्त** (तेजपुर) • **डॉ. अंबेश्वर गोगोई** (गुवाहाटी) • **डॉ. प्रांजल शर्मा वशिष्ठ** (गुवाहाटी) • **डॉ. स्वप्नाली दास** (गुवाहाटी)

प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया

संपादक

प्रो. मोहन

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

DWIBHASHI RASTRASEWAK : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature, Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

प्रकाशक :
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :
प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32
फोन : 9101541395, 9101541380
ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

सहयोग राशि : 100/- (प्रति अंक)

शब्द संयोजन : रतिकांत कलिता

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा सराइघाट फोटो टाइप्स प्रा. लिमिटेड, इंडस्ट्रियल इस्टेट, गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

© सर्वाधिकार : **असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32**

द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

विषय सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
	हिंदी विभाग		
	संपादकीय		*6*
1.	कथाकार रमेश पोखरियाल 'निशंक' के कथा-साहित्य में लोकतत्व	✍ डॉ. कपिल देव पँवार	8
2.	भक्तिकालीन भारतीय साहित्य में भारतबोध	✍ डॉ. चारु गोयल	13
3.	घनानंद के काव्य में प्रेम का स्वरूप : एक अध्ययन	✍ डॉ. थानेश्वर गिरि	20
4.	महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और असमिया समाज	✍ डॉ. राजश्री देवी	25
5.	सरहदें लाँघती नारी गाथा : रेत समाधि	✍ डॉ. समला देवी	29
6.	मणिपुरी लोक कथाओं में लोक विश्वास एवं लोक व्यवहार	✍ डॉ. जमुना सुखाम	35
7.	21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में आदिवासी संघर्ष और सांस्कृतिक मूल्य	✍ डॉ. विद्याराम मीना	40
8.	बंगीय समाज के उन्नायक ईश्वरचंद्र बंधोपाध्याय	✍ डॉ. गंगा कोइरी	44
9.	साहित्य, कला तथा अन्य ज्ञानानुशासन : परस्पर अनुप्रवेश	✍ डॉ. गोविन्द प्रसाद वर्मा	49
10.	पर्यावरणीय समस्या : एक ऐतिहासिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य	✍ डॉ. लाला बाबू	60
11.	इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में दलित चेतना	✍ डॉ. के.एच.अरुणा देवी	69
12.	व्यावसायिक शिक्षा में योगनिद्रा का समावेश : जगद्गुरु शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत के परिप्रेक्ष्य में	✍ मोहित पाण्डेय	76
13.	आदि शंकराचार्य और श्रीमंत शंकरदेव के दर्शन में माया, ब्रह्म, ईश्वर, जीव और जगत की अवधारणाएँ : एक तुलनात्मक अध्ययन	✍ लिंकन शरणीया ✍ डॉ. श्रुति राय	81
14.	भारत का मुकुटमणि जम्मू-कश्मीर	✍ मयंक तिवारी ✍ डॉ. गौरव त्रिपाठी	87
15.	देश विभाजन आधारित हिंदी कहानियों में मानवीय मूल्यों की पड़ताल	✍ प्रणय प्रकाश	94
16.	दक्खिनी हिंदी : भाषीय समन्वय एवं सांस्कृतिक सद्भावना की ऐतिहासिक धरोहर	✍ अभिषेक कुमार	101
17.	पिछड़े बालकों की शैक्षिक उपलब्धि में बुद्धि तथा रुचि का अवदान	✍ खुशबू साव	107
18.	माधवदेव की रचनाओं में कृष्ण : भक्ति, बाल्य और ब्रह्म का समन्वय	✍ मनिका राभा ✍ डॉ. मनोज कुमार स्वामी	112
19.	भारतीय ज्ञान परंपरा में कबीरदास के दर्शन की अभिव्यक्ति	✍ सागर छेत्री ✍ डॉ. बृजेश कुमार	118
20.	हिंदी की सैद्धांतिक आलोचना का प्रस्थान बिंदु भारतेंदु हरिश्चंद्र कृत 'नाटक' निबंध	✍ आशुतोष सिंह	123

21. 'यमदीप' एवं 'दरमियाना' उपन्यास में चित्रित किन्नर समुदाय की राजनैतिक संवेदनाएँ ✍ मनोज कुमार श्रीवास्तव ✍ डॉ. परिस्मिता बरदलै 128

22. साबिन आलुन : कार्बी लोक का धार्मिक ग्रंथ ✍ तैयबुन नेशा 133

অসমীয়া বিভাগ

23. ভাষা শিক্ষণ আৰু শিশু মনোবিজ্ঞানৰ দৃষ্টিৰে হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা আৰু পানীন্দ্ৰনাথ গগৈৰ পঢ়াশলীয়া পাঠ্যপুথিৰ বিশ্লেষণ ✍ ড° কৰবী দত্ত ✍ ড° স্বাতী কিৰণ 137

24. য়েছে দৰজে ঠংচিৰ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত জনজাতীয় জীৱন চিত্ৰণ ('মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয়' আৰু 'শৰ কটা মানুহ' উপন্যাসৰ বিশেষ উল্লিখনসহ) ✍ ড° লুইছ গগৈ 147

25. মিচিং সংস্কৃতি ঃ এটি চমু আলোকপাত ✍ ড° নিলাক্ষী মিলি মেদক 153

26. জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ নাটকত লোকসংস্কৃতিৰ সমল ✍ ড° নীলাক্ষি ডেকা 158

27. চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানী ঃ এক সমীক্ষামূলক অধ্যয়ন ✍ ড° মালবিকা বাগ্‌লাৰী 165

28. মহেন্দ্ৰ নাথ বৰাৰ "স্মৃতিপটত আমেৰিকা" ভ্ৰমণ গ্ৰন্থৰ এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন ✍ লক্ষীপ্ৰিয়া হাজৰিকা ✍ ড° কল্পনা শৰ্মা কলিতা 169

29. উত্তৰ-শংকৰী যুগত অসমীয়া ভাষালৈ পুৰাণৰ অনুবাদ ✍ প্ৰিয়ংকা ভাগৱতী ✍ ড° সমুজ্জ্বল শইকীয়া 174

30. অসমীয়া মহিলা লেখকৰ আত্মজীৱনীত প্ৰতিফলিত নাৰীৰ মানসিক সংঘাত ✍ প্ৰাৰ্থনা গগৈ ✍ ড° অম্বেশ্বৰ গগৈ 180

31. ঋক্‌বৈদিক যুগত ভাৰতীয় নাৰী আৰু বিংশ শতিকাৰ অসমীয়া সমাজত নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি ঃ এক তুলনামূলক অধ্যয়ন ✍ বৰ্ণালী দত্ত ✍ ড° স্বপ্নালী দাস 187

32. মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ "দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা" উপন্যাসত আত্মজীৱনীমূলক উপাদান ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন ✍ প্ৰাৰ্থনা ফুকন ✍ ড° মহেশ্বৰ কলিতা 196

33. মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ প্ৰহসনত লোকসাংস্কৃতিক উপাদান ✍ চয়নিকা বৰা ✍ ড° শুভজ্যোতি বৰগোহাঁই 207

34. মিচিং জনগোষ্ঠীৰ নৱজাগৰণৰ পটভূমিকাত টাবুৰাম টাইদ চৰ্চাৰ প্ৰাসংগিকতা — ✍ খগেন পেগু, ✍ ড° অৰবিন্দ ৰাজখোৱা — 212

35. দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ ভূমিকা — ✍ মিতুশ্ৰী বৰ্মন, ✍ ড° নুৰ ইছলাম শইকীয়া — 221

36. বিহুগীতত প্ৰতিফলিত অসমীয়া মানুহৰ পৰম্পৰাগত কৃষি জীৱন-প্ৰণালী — ✍ কাকলি কলিতা, ✍ ড° পংকজ্যোতি বৰা — 230

37. মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ নীলকণ্ঠী ব্ৰজ ঃ এক আলোচনা — ✍ পাঞ্চুৰিকা শইকীয়া — 237

38. মহেশ এলকুঞ্চৱাৰৰপাৰ্টি নাটকত প্ৰতিফলিত সমাজ বাস্তৱতাৰ প্ৰসংগ বিচাৰ — ✍ আজিজুৰ ৰহমান, ✍ ড° স্বপ্নালী দাস — 243

39. অৱস্থিতিবাদী দৃষ্টিভংগীৰে অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াৰ গল্প ঃ এক অধ্যয়ন — ✍ সুৰেশ দেৱনাথ, ✍ ড° দীপশিখা গগৈ — 248

40. কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীৰ শকুন্তলা কাব্যত নাৰীত্বৰ কল্পনা ঃ মাৰ্গীয় আৰু লোক উপাদান — ✍ প্ৰাঞ্চী বৰা — 253

41. দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ উপন্যাসিকাসমূহ ঃ এক অধ্যয়ন — ✍ নয়নমণি শইকীয়া, ✍ ড° প্ৰাঞ্জল শৰ্মা বশিষ্ঠ — 262

42. তোলনি বিয়া আৰু লিংগ অসমতা ঃ নাৰী দেহ, ঋতুস্ৰাৱ আৰু সামাজিক নিয়ন্ত্ৰণৰ এক সমালোচনামূলক বিশ্লেষণ — ✍ হিমাঞ্জলি কলিতা, ✍ ড° পাৰমিতা দে — 269

43. সৃষ্টিশীল সাহিত্য অনুবাদৰ সমস্যা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন — ✍ গীতা কেওঁট, ✍ ড° হিমাদ্ৰী শইকীয়া — 274

❑❑❑

संपादकीय

साधो सबद साधना कीजै

भाषा केवल शब्दों का समूह नहीं होती, यह किसी समुदाय की साँस होती है। जब कोई भाषा मरती है, तो उसके साथ सदियों की लोक-स्मृति, औषधीय ज्ञान, पर्यावरणीय समझ और जीवन-दर्शन भी सदा के लिए लुप्त हो जाता है। आज विश्व में बोली जाने वाली लगभग 7,000 भाषाओं में से 40 प्रतिशत विलुप्ति के कगार पर हैं। यह आँकड़ा केवल सांख्यिकीय जानकारी नहीं, बल्कि एक सभ्यतागत चेतावनी है, जिसे हमें गंभीरता से लेना होगा।

भाषाओं के लुप्त होने की कहानी अकस्मात नहीं घटती। यह दशकों की उपेक्षा, औपनिवेशिक मानसिकता और शिक्षा-प्रणाली की संरचनात्मक खामियों का परिणाम है। उपनिवेशकाल में स्थानीय भाषाओं को दबाकर बड़ी भाषाओं को थोपा गया, और स्वतंत्रता के बाद भी यह असमानता पूरी तरह दूर नहीं हुई। शहरीकरण और रोजगार की तलाश में लोग अपनी मातृभाषा छोड़कर बड़ी भाषाओं की ओर रुख करते हैं, क्योंकि शिक्षा और नौकरी की दुनिया में छोटी भाषाओं को कोई स्थान नहीं मिलता। जब बच्चे स्कूल में अपनी मातृभाषा नहीं पढ़ते, तो वे धीरे-धीरे उससे कटते जाते हैं, और यही कटाव अगली पीढ़ी तक भाषा के न पहुँचने का सबसे बड़ा कारण बनता है।

भाषाविदों ने इस संकट के जवाब में 'भाषा-प्रलेखन' की पद्धति विकसित की है, जिसके अंतर्गत किसी भाषा के व्याकरण, शब्दावली, लोककथाओं और मुहावरों को व्यवस्थित रूप से रिकॉर्ड किया जाता है। यह कार्य सराहनीय है और इसे और गति देने की आवश्यकता है। परंतु हमें यह स्वीकार करना होगा कि प्रलेखन भाषा को जीवित नहीं रखता, यह केवल एक अभिलेख तैयार करता है। किसी भाषा को सच में बचाने के लिए उसका रोजमर्रा के जीवन में, घर में, बाजार में और सबसे महत्वपूर्ण रूप से स्कूल में उपयोग होना अनिवार्य है। यही कारण है कि हमारा मानना है कि नीतिगत हस्तक्षेप के बिना केवल अकादमिक प्रलेखन इस संकट का समाधान नहीं हो सकता।

इस संदर्भ में 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' का महत्व विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह नीति भारत की शिक्षा-व्यवस्था में दशकों बाद आया वह बदलाव है, जिसने पहली बार मातृभाषा को शिक्षा के केंद्र में रखने का साहस दिखाया है। नीति में स्पष्ट सिफारिश की गई है कि कम से कम कक्षा पाँच तक, और जहाँ संभव हो कक्षा आठ तक, शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या स्थानीय भाषा होनी चाहिए। यह कोई आदर्शवादी सिफारिश नहीं है, बल्कि वैज्ञानिक शोध पर आधारित ठोस निर्णय है, क्योंकि बच्चे अपनी मातृभाषा में सबसे प्रभावी ढंग से सीखते हैं।

हमारी दृष्टि में यह नीति केवल शिक्षण पद्धति में बदलाव नहीं, बल्कि भाषाई न्याय की दिशा में एक राजनीतिक वक्तव्य है। नीति का त्रि-भाषा फॉर्मूला, जिसमें कम से कम दो भारतीय भाषाएँ शामिल करने पर बल दिया गया है, बच्चों को प्रारंभ से ही बहुभाषी बनाने का प्रयास करता है। साथ ही नीति में लुप्तप्राय भाषाओं के संरक्षण के लिए विशेष कार्यक्रमों, भाषाई दस्तावेजीकरण और डिजिटल अभिलेखीकरण का स्पष्ट उल्लेख है। यह संकेत देता है कि नीति-निर्माता अब इस समस्या की गंभीरता को समझ चुके हैं।

परंतु किसी भी नीति की वास्तविक परीक्षा उसके क्रियान्वयन में होती है। आज सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि क्या राज्य सरकारें इस नीति को गंभीरता से लागू कर रही हैं। मातृभाषा में पढ़ाने के लिए प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी, पाठ्यपुस्तकों की अनुपलब्धता और कई राज्यों की राजनीतिक प्राथमिकताएँ इस नीति की सफलता में बाधक बन रही हैं। हमारा मानना है कि यदि सरकारें इस दिशा में संसाधन और इच्छाशक्ति नहीं दिखातीं, तो यह उत्कृष्ट नीति केवल कागज पर सीमित रह जाएगी।

डिजिटल तकनीक ने भाषा–संरक्षण के क्षेत्र में नई संभावनाएँ खोली हैं। मोबाइल ऐप, ऑनलाइन शब्दकोश और कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित उपकरण छोटी भाषाओं को डिजिटल मंच पर लाने में सहायक बन रहे हैं। परंतु तकनीक तब तक अर्थहीन है जब तक समुदाय स्वयं अपनी भाषा के महत्व को नहीं समझता। न्यूजीलैंड में माओरी भाषा के पुनरुद्धार के लिए चलाई गई 'भाषा घोंसला' पहल इसका सुंदर उदाहरण है, जहाँ बुजुर्गों और बच्चों को साथ लाकर भाषा का अंतरपीढ़ीगत हस्तांतरण सुनिश्चित किया गया। भारत को भी इस मॉडल से सीखने की आवश्यकता है, विशेष रूप से आदिवासी और हिमालयी क्षेत्रों की संकटग्रस्त भाषाओं के लिए।

भारत भाषाई विविधता का अद्‌भुत भंडार है, परंतु यही विविधता आज खतरे में है। भारतीय भाषा–सर्वेक्षण के अनुसार पिछले पचास वर्षों में सैकड़ों भारतीय भाषाएँ विलुप्त हो चुकी हैं या विलुप्ति के निकट पहुँच चुकी हैं। मध्य भारत की आदिवासी भाषाएँ, अंडमान निकोबार की भाषाएँ और हिमालयी क्षेत्र की कई बोलियाँ विशेष चिंता का विषय हैं। 'भारतीय भाषा संस्थान मैसूर' जैसी संस्थाएँ सराहनीय कार्य कर रही हैं, परंतु संसाधनों की कमी इनके प्रयासों को सीमित करती हैं।

हमारा स्पष्ट मत है कि भाषा–संरक्षण अब विकल्प नहीं, अनिवार्यता बन चुका है। 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' ने सही दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया है, परंतु अब इसे प्रभावी क्रियान्वयन की आवश्यकता है। सरकारों को मातृभाषा–शिक्षा के लिए पर्याप्त बजट और प्रशिक्षित शिक्षक उपलब्ध कराने होंगे। तकनीकी कंपनियों को छोटी भाषाओं को डिजिटल मंच पर स्थान देना होगा। और सबसे महत्वपूर्ण, स्वयं भाषा समुदायों को अपनी भाषा पर गर्व करना सीखना होगा।

यदि हम आज नहीं जागे, तो आने वाली पीढ़ियाँ केवल किताबों और संग्रहालयों में अपने पूर्वजों की भाषाओं को खोजती रह जाएँगी। समय रहते उठाया गया एक छोटा कदम भी इतिहास की दिशा बदल सकता है। भाषा–प्रलेखन और संरक्षण अब केवल भाषाविदों का सरोकार नहीं, बल्कि हम सबकी साझी जिम्मेदारी है।

अंत में मैं इस अंक के सभी लेखकों को हार्दिक बधाई देता हूँ।

–मोहन

❑❑❑

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945
Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

कथाकार रमेश पोखरियाल 'निशंक' के कथा-साहित्य में लोकतत्त्व

डॉ. कपिल देव पँवार

अस्सिटेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
गढ़वाल (उत्तराखंड)-246174
09997258166
kapilpanwar96@gmail.com

शोध-सार :

प्रस्तुत शोधपत्र कथाकार रमेश पोखरियाल 'निशंक' के कथा-साहित्य में निहित लोकतत्त्वों के विश्लेषण पर केन्द्रित है। समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में निशंक का योगदान विशेष रूप से हिमवन्त प्रदेश की लोक-संवेदना, लोक-संस्कृति और लोक-जीवन के सजीव चित्रण के लिए उल्लेखनीय है। उनकी रचनाओं में लोक केवल पृष्ठभूमि के रूप में नहीं आता है बल्कि कथावस्तु की आत्मा के रूप में उपस्थित है, जहाँ पुरातन और नवीन जीवन-मूल्यों का समन्वय दिखाई देता है।

निशंक की लोकदृष्टि उनके उपन्यास 'छूट गया पड़ाव' में व्यक्त आत्मस्वीकृति से स्पष्ट होती है, जिसमें वे देवभूमि के पौराणिक, सामाजिक, धार्मिक परिवेश, परंपराओं, किंवदंतियों और लोक गाथाओं को जीवंत दस्तावेजों के रूप में प्रस्तुत करने की बात करते हैं। साथ ही वे पर्वतीय जीवन के सौंदर्य और आध्यात्मिक अनुभूति के समानांतर विद्यमान कठोर जीवन-संघर्ष को भी उद्घाटित करते हैं।

उनके कथा-साहित्य की प्रमुख रचनाओं जैसे-बीरा, पहाड़ से ऊँचा, भागोंवाली, प्रतिज्ञा, अपना-पराया, मेजर निराला, भीड़ साक्षी है, विपदा जीवित है, खड़े हुए प्रश्न, मेरे संकल्प आदि में लोक-जीवन की संवेदनशील अभिव्यक्ति, सांस्कृतिक मूल्यों और परंपरागत आस्थाओं का आधुनिक यथार्थ मिलता है। इस प्रकार निशंक का कथा-साहित्य लोक संस्कृति का विश्वसनीय साहित्यिक प्रतिरूप प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द :

लोकतत्त्व, लोक-संस्कार, लोकगीत, लोकानुभूति, लोक-जीवन।

मूल आलेख :

हिमालय की पावन धरती उत्तराखंड से हिंदी साहित्य को अनेक अमूल्य रत्नों की प्राप्ति हुई है। छायावाद के स्तंभकार, प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत, चन्द्रकुँवर बर्त्वाल से लेकर इलाचंद जोशी, शमशेर बहादुर सिंह, मंगलेश डबराल, हिमांशु जोशी जैसे दर्जनों आधुनिक काल के साहित्यकारों ने अपनी लेखन-यात्रा में मध्य-हिमालयी क्षेत्र के लोकतत्वों को साहित्य-सृजन का आधार बनाया है। इसी क्रम में हिमालयी पृष्ठभूमि के समकालीन साहित्यकार रमेश पोखरियाल 'निशंक' साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं।

कथाकार रमेश पोखरियाल 'निशंक' का जन्म 15 जुलाई, 1959 ई. को उत्तराखंड के पौड़ी जनपद के पिनानी गाँव में हुआ। वे 24 वर्ष की युवा अवस्था से ही साहित्य का निरंतर सृजन कर रहे हैं। बचपन में सुनी लोक-कथाओं की मौखिक परंपरा उनके साहित्य में लोक-जीवन का साक्षात्कार करवाती है तथा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से लोक-संस्कृति में समाहित विभिन्न उपादान-जैसे प्रकृति-प्रेम, सद्भाव, मानवतावादी दृष्टिकोण साहित्य में 'वसुधैव् कुटुम्बकम्' का भाव पल्लवित करते हैं।

उत्सवधर्मी पर्वतीय अंचल ने एक ओर लेखक निशंक को समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर प्रदान की तो दूसरी ओर उनके अभावों तथा संघर्षों ने उन्हें 'लोक' से जोड़े रखा। संघर्षों की अपनी विशेषता होती है कि यह व्यक्ति को बहुआयामी अनुभवों से संपृक्त कर देते हैं। लेखक अपने परिवेश को ही अपनी लेखनी में प्रस्तुत करता है या कहें कि उसके पात्रों और कथानक में उसका परिवेश बोलता है। कथाकार निशंक के साहित्य का मेरुदंड यही पर्वतीय लोक-जीवन तथा लोकतत्व है।

'लोकतत्व' शब्द विस्तृत अर्थ को समाए हुए है, जिसमें 'लोक' शब्द विभिन्न शब्दों के साथ संयुक्त होकर विशेषण रूप में समूह, समग्रता का बोध करवाता है, वहीं 'तत्व' शब्द घटक का पर्याय है। लोकतत्व के अंतर्गत किसी एक निश्चित भू-भाग में रहने वाले लोगों की समस्त ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक एवं दैनिक जीवन के क्रियाकलापों का स्वरूप परिलक्षित होता है। लोकतत्व के अंतर्गत उस भू-लोक पर लोकमानस के क्रियाकलापों का समावेश होता है, जिसमें रीति-रिवाज, खान-पान, संस्कार, परंपराएँ, मान्यताएँ, मिथक, लोकगीत, लोकगाथा, लोकोक्ति, मुहावरे आदि से एक लोक-संस्कृति का समागम होता है, जो लोक-समाज की परिधि को स्थापित करते हैं। जैसे कि लोक मर्मज्ञ डॉ. श्याम परमार के शब्दों में- *''लोक साधारण जनसमाज है, जिसमें भू-भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित हैं। यह शब्द वर्गभेद रहित, व्यापक एवं प्राचीन परंपराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन, सभ्यता, संस्कृति के कल्याणमय विकास का द्योतक है। भारतीय समाज में नागरिक एवं ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का प्राय: उल्लेख किया जाता है, किंतु 'लोक' दोनों संस्कृतियों में विद्यमान है।''*[1]

वस्तुत: 'लोक' शब्द साहित्य हो या जीवन, एक प्राणवायु के समान सर्वत्र व्याप्त रहता है। लोक से समाज और समाज से साहित्य की निर्मिति होती है। यही आंतरिक बुनावट का ताना-बाना एक वृहद वितान का निर्माण करता है, जिसे अनुभव करते हुए कथाकार रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने अपनी साहित्यिक यात्रा प्रारंभ की है।

कथाकार 'निशंक' की साहित्यिक चेतना उनके संघर्षों का परिणाम है। उनके आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक नैतिक मूल्यों के चैतन्य प्रवाह में उनकी कारयित्री प्रतिभा और भावयित्री प्रतिभा का समन्वय हुआ है। जैसा कि डॉ. श्यामसुंदर दास ने लिखा है कि- *''साहित्य पर सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव साहित्यकार के व्यक्तित्व का पड़ता है। साहित्यकार जो कुछ लिखता है, उस पर उसके अनुभव, विचारों और मनोभावों की अटल छाप लगी रहती है। वह मनुष्यमात्र की आकांक्षाओं, इच्छाओं और भावनाओं को प्रकट करता है।''*[2]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्यकार की इसी मन:स्थिति को जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब कहकर उसे लेखकीय चेतना से जोड़ा है। यही कारण है कि लेखक का रचना-संसार वास्तव में उसकी जीवनानुभूतियों का संचित प्रकाश ही है। निशंक जी के साहित्य में उनके अनुभव, विचारों, मनोभावों के साथ संपूर्ण व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। अखंड, आलौकिक लोक-संस्कृति और सभ्यता की धरती 'उत्तराखंड' की ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण की गहराइयों की अमिट छाप उनके कथा-साहित्य में परिलक्षित होती है। उन्होंने लोक-जीवन के हर पहलू को अपने कथा-साहित्य में स्थान दिया है।

वे हस्तांतरित अनुभवों को रचना का आधार न बनाकर वास्तविक लोक-जीवन जो जैसा हो रहा है, वैसे ही स्वरूप में वैसी ही सरल-सहज भाषिक संरचना के साथ प्रस्तुत करते हैं, जिसका मुख्य उद्देश्य लोकहित की भावना होती है। लोकतत्वों से आपूरित उनके व्यक्तित्व में इस निष्ठा को सहजता से देखा जा सकता है। उनके स्वयं के शब्दों में- *''संघर्ष और चुनौतियों से जो रिश्ता हमारे*

जीवन का है, वही रिश्ता सार्थक साहित्य का भी है। प्रतिबद्धता की मशाल जलाए निरंतर अन्याय व अंधेरे से जूझना इन दोनों का धरम है। जीवन और साहित्य तभी सार्थक हैं, जब ये जनोन्मुखी और जनसरोकारी हों। लोकहित की भावना से अनुप्राणित हों। साहित्य की भी इसीलिए कलागत उपयोगिता ज्यादा है। यह हमारी सभ्यता, संस्कृति की पहचान ही नहीं, जीवन मूल्यों की धड़कन भी है।''[3] निशंक जी सभ्यता और संस्कृति पर केंद्रित साहित्य के हिमायती हैं। लोकहित से अनुप्राणित उनका साहित्य विभिन्न लोकतत्वों को लेकर आम-आदमी की व्यथा-कथा की आवाज बनता है। अपने उपन्यास 'छूट गया पड़ाव' के संदर्भ में वे स्पष्ट करते हैं कि- *''लोक-संवेदनाओं के बूते मैंने देवभूमि के पौराणिक, सामाजिक, धार्मिक, परिवेश के साथ-साथ यहाँ की परंपराओं, किंवदंतियों, लोकगाथाओं को गाहे-बगाहे जीवंत दस्तावेजों के रूप में सामने रखने की कोशिश की है। साथ ही इस कटु सत्य को उद्घाटित करने का भी सत्त प्रयास किया है कि इस देवभूमि के संसर्ग में जहाँ हमें अपूर्व आनंद व अध्यात्म का सौभाग्य मिला है, वहीं जीवन-यापन के लिए विकट संघर्ष भी भाग्य में बँधा है। हम विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र की उन्नति की ओर उन्मुख हुए है तो अपनी परंपराओं, अपने मूल्यों और अपनी आस्थाओं से गहरे जुड़े भी हैं। क्षारित होते जा रहे जीवन मूल्यों से जूझ रहे हैं तो सहकार, सरोकार, प्रेम, परोपकार और मानवीय मूल्यों पर डटे हुए भी हैं। 'छूट गया पड़ाव' इन्हीं सारी विविधताओं व विशिष्टताओं को समेटे एक पहाड़ी गाँव का सच्चा जीवंत वृत्तांत है।''*[4]

विभिन्न कथानकों में लेखक ने लोकतत्त्वों की विविधता और विशिष्टता के प्रति विशेष ध्यान आकर्षित किया है। 'बीरा', 'पहाड़ से ऊँचा', 'प्रतिज्ञा', 'अपना-पराया', 'मेजर निराला' जैसे उपन्यासों में लोक-धर्म और लोक-विश्वास ही कथानक के प्राणबिंदु बनते हैं, जहाँ पहाड़ के लोक-जीवन की झलकियाँ तथा सरल-सहज, जीवंत पात्रों की लोक-यात्रा के उपादान उपस्थित हैं। अपने कथानकों को लेखक ने स्वयं के परिवेश की लोक-भूमि प्रदान की है, जहाँ से कथा-पात्र नगर-महानगर की सीमा छूकर भी लोकतत्त्वों से संपृक्त रहते हैं।

उपन्यास 'पहाड़ से ऊँचा' को पर्वतीय लोक समाज के जीवन-मूल्यों की सशक्त अभिव्यक्ति का दर्पण मानते हुए डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण' लिखते हैं - *''कथाकार रमेश पोखरियाल 'निशंक' की प्रतिभा का परिचायक उनका चर्चित उपन्यास है 'पहाड़ से ऊँचा', जिसमें उन्होंने पर्वतीय-परिवेश, परंपराओं और जीवन मूल्यों की आधारशिला पर मनोरम कथा का ताना-बाना बुना है।''*[5]

लोक केंद्रित लेखन में रचनाकार अपने कथानक में 'कथानक-अभिप्राय' को सिद्ध करने के लिए लोक-विश्वास एवं कल्पना आदि का प्रयोग करता है। वह आदिम जातीय विश्वासों, समाविष्ट लोक-चित्त तथा मिथकीय चेतना को कथानक का आधार बनाता है। आलौकिक शक्तियों में विश्वस, मनुष्य के जीवन-व्यापार का अदृश्य शक्तियों द्वारा संचालन, पुनर्जन्म, प्रकृति का मानवीकरण एवं देवीकरण, भविष्य की निश्चितता, प्राकृतिक आपदाओं का घटित होना, आपदा-क्षति को मनुष्य का कर्मफल मानना आदि ऐसे सामान्य लोक-विश्वास हैं, जो निशंक जी के साहित्य में लोक-जीवन की पहचान बनते हैं। उन्होंने स्वानुभूति के साथ भारतीय लोकमानस के धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन की लंबी यात्रा की है। भारतीय लोक-जीवन में उन्होंने ऐसे लोक-विश्वासों को पहचाना है, जो वैदिक काल से लेकर आज भी अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं।

निशंक जी के उपन्यास 'छूट गया पड़ाव' की केंद्रीय पात्र 'रानी' के कुरूप पैदा होने का कारण उसके माता-पिता दैवीय प्रकोप मानते हैं। वे अंधविश्वास और लोक रूढ़ियों से ग्रस्त पात्र हैं, जो रानी की शारीरिक बनावट से चिंतित होकर स्वयं से अनेक प्रश्न करते हैं और लोक प्रचलित अनेक उपाय भी सुझाते हैं - *''खानदान में और कोई ऐसा बदशक्ल भी नहीं था। फिर रानी ऐसी कुरूप कैसे? कहीं किसी देवी-देवता का प्रकोप तो नहीं। पंडित-मौलवियों से लेकर पता नहीं कहाँ-कहाँ गणत-पूछ करवा डाली। आए दिन घर में पूजा पाठ रहती। कहीं कोई घात, जैकार तो नहीं, इस आशंका में देवता भी नचा लिए, पर कोई फर्क नहीं पड़ा।''*[6] इसी प्रकार लोक प्रचलित विश्वास 'पल्लवी' उपन्यास में भी दिखाई देते हैं, जहाँ 'ध्रुव' की मृत्यु का आभास कथानायिका 'पल्लवी' को स्वप्नों में हो जाता है। वहीं बिछड़े बछड़े की मर्मांतक

पुकार, सियारों का रोना, कागा (कौवे) का अलसाए मुँडेर पर बैठना, ये सभी संकेत लोक-विश्वास के प्रतीक हैं, जो अशुभ होने का भाव जाग्रत करते हैं।

निशंक जी ने अपने कथा-साहित्य में लोकतत्त्वों के प्रति लोक से पृथक व्यक्ति के आकर्षण को भी विशेष स्थान दिया है। उनके अनेक कथा-पात्र ऐसे हैं, जो शहरी और महानगरीय तथाकथित शिष्ट जीवन-शैली को छोड़कर लोक-जीवन को अपनाते हैं। ऐसे कथा-पात्रों को लोक की परंपराओं, संस्कारों, भाषा और जीवन-शैली से विशेष लगाव हो जाता है।

'भागोंवाली' उपन्यास में मैदानी क्षेत्र से पर्वतीय क्षेत्र में नौकरी पर आए शास्त्री जी, पहाड़ में नौकरी करते-करते वहीं घर बसा लेते हैं। उनकी पत्नी भागोंवाली को प्रारंभ में पहाड़ पसंद नहीं आता, परंतु शीघ्र ही वह पर्वतीय लोक समाज की विशिष्टताओं को देखकर वहीं रम जाती है-*''सबसे बड़ी बात तो यह है कि यहाँ शांति है, न लड़ाई-झगड़े हैं और न ईर्ष्या, द्वेष हैं। चोरी-चमारी तो बहुत दूर की बात है। यहाँ के लोग तो इधर-उधर जाते हुए घरों में ताले तक नहीं डालते। ताले लगाना अशुभ माना जाता है पहाड़ में।''*[7] 'भागोंवाली' अम्माँ को यहाँ के लोगों का स्नेह और अपनत्व इस प्रकार प्राप्त होता है कि वह लोक में आदर्श बन जाती है।

'पहाड़ से ऊँचा' उपन्यास का नायक 'डॉ. मोहन' उच्च शिक्षा प्राप्त कर एमबीबीएस की डिग्री हासिल करने के बाद बड़े संस्थान में नौकरी करने की बजाय गाँव में अस्पताल खोलता है। वहीं मोहन की प्रेमिका 'गीता' शहरी परिवेश के संपन्न परिवार से होने के बावजूद मोहन से विवाह कर गाँव में रहकर सुखमय जीवन जीना आरंभ करती है। इसी प्रकार 'छूट गया पड़ाव' उपन्यास की नायिका 'सरोज' को जब शहर से दूरस्थ पहाड़ी क्षेत्र के बिनगढ़ गाँव में नियुक्ति मिलती है तो वह न केवल गाँव के बच्चों, बल्कि पूरे गाँव को साक्षर करने का दायित्व निभाती है। बदले में गाँव के लोग उसे बेटी के समान स्नेह प्रदान करते हैं और परिणामस्वरूप सरोज भी पूरे गाँव को अपने परिवार की भाँति प्रेम करने लगती है। इस प्रकार निशंक जी के कथ्य में लोक-जीवन के प्रति आकर्षण का अद्वितीय और सशक्त विनियोग स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

लोक-जीवन में नारी की भूमिका और उसकी सामाजिक स्थिति को अभिव्यक्त करते हुए निशंक के कथानकों में लोकतत्त्वों की आंतरिक अनुभूति स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। उपन्यास 'पहाड़ से ऊँचा' में 'शांति' विवाहोपरांत विदाई की पीड़ा को लोकगीत 'घुघुती घुराण लगी मेरा मैता की' जैसे उत्तराखंड लोकगीत के माध्यम से विरह महसूस करती है। लोकगीतों के प्रवाह में ही निशंक जी लोक-जीवन के हर्ष और विषाद को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। इसी प्रकार लोक-जीवन के हर्ष-उल्लास को 'थड्या-चौफला', 'रासो-मण्डाण' जैसे पारंपरिक लोकगीतों और लोकनृत्यों के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए परंपराओं में नारी की भूमिका इस प्रकार उभरती है-*''गर्मियों का समय। लंबे दिन। खेतों में अपेक्षाकृत काम भी कम और स्कूल-कॉलेज की छुट्टियाँ। कुल मिलाकर शाम को गाँव में उत्सवी माहौल रहता। बेटियाँ-बहुएँ घर-बाहर का काम जल्दी निबटाकर पंचायती चौक में एकत्र हो, पारंपरिक लोकगीत 'थड्या-चौफला' से समाँ बाँध देतीं।''*[8]

इसी प्रकार लोककथा, लोकगाथा और लोक-सुभाषित निशंक के कथा-साहित्य को सुशोभित करते हैं। लोककथाओं और लोकगाथाओं में लोकमानस के आदिम विश्वास जीवित रहते हैं, जबकि लोक-सुभाषित लोक-जीवन में प्रचलित भाषा-व्यवहार की सशक्त अभिव्यक्ति हैं। ये सभी अभिव्यक्ति-रूप उनके कथा-साहित्य में लोक-जीवन की कार्यशैली, पर्व-त्योहार, संस्कृति-परंपरा और जीवन-प्रवाह को जीवंत बनाए रखते हैं।

रमेश पोखरियाल 'निशंक' के कथा-साहित्य में दिक्काल के सूक्ष्म विवरण लोक-परिवेश और लोक-अनुभव की प्रमाणिकता प्रदान करते हैं। पहाड़ी परिवेश, विषम परिस्थितियाँ, समस्याएँ और विवशताओं में जूझता लोक-जीवन अत्यंत सजीव रूप में उभरता है- *''एक टैक्सी मैदानी रास्तों को पारकर पहाड़ के सर्पीले रास्तों पर रेंग रही थी।.... दूर-दूर तक फैली गगनचुंबी शिखर श्रृंखलाओं, चाँदी से चमकते हिम पर्वतों, असंख्य सीढ़ीनुमा हरे-भरे खेतों, सुदूर फैली घाटियों, इन सर्पीली राहों से दिखती बांज, बुरांस, देवदार और चीड़ के घने जंगलों की हरितिमा एवं खुले-नीले आसमान के बारे में सोच रहा था कि देखो पहाड़ काट-काट कर कभी ह मारे*

बुजुर्गों ने ये सीढ़ीनुमा खेत बनाए होंगे। सचमुच कितना कठिन है पहाड़ों का जीवन। प्राकृतिक सौंदर्य जितना है, उतनी ही प्राथमिक सुविधाओं का अभाव भी तो है।''[9]

इस प्रकार लोकतत्त्वों की व्यापकता में प्राकृतिक तत्वों का मानवीकरण उनके साहित्य की विशिष्ट शोभा बनते हैं।

किसी भी साहित्य में संवेदनाएँ लेखन की प्राथमिक जरूरत होती हैं अथवा यह कहा जा सकता है कि लेखक को लेखन की प्रेरणा लोक-संवेदनाओं से ही प्राप्त होती है। इसी कारण किसी भी साहित्य में लेखक के परिवेश की लोकानुभूति स्पष्ट रूप से झलकती है। निशंक जी के साहित्य में उनकी जन्मभूमि के पर्वतीय क्षेत्र उत्तराखंड के पौड़ी, चमोली, —ऋषिकेश, हरिद्वार, देहरादून, श्रीनगर, कोटद्वार, पिथौरागढ़, अल्मोड़ा, जोशीमठ, बद्रीनाथ, गौचर, खिर्सू, केदारनाथ, रूद्रप्रयाग, उत्तरकाशी तथा गढ़वाल के सुमेरपुर, सिमलखेत, चौरींखाल, बिनगढ़, कांडाई, जयहरीखाल, कालूडांडा जैसे गाँवों की पर्वतीय प्रकृति, परिवेश, भौगोलिक परिस्थितियाँ, सौंदर्य, सरलता और सहजता से युक्त लोक-जीवन सजीव रूप में प्रस्तुत हुआ है।

उनकी रचनाओं में भूम्याल देवता, कुलदेवता, नदी, मंदिर, आस्था, त्याग और समर्पण से भरे लोक-जीवन के अनुभवों की सूक्ष्मता परिलक्षित होती है। कथानकों को लोकतत्वों से जोड़ने हेतु लेखक जहाँ परिवेश पर विशेष ध्यान देते हैं, वहीं पात्रों के नाम भी लोक-जीवन की प्रामाणिकता को सुदृढ़ करते हैं। मंगसीरू, झुमकी, वीरू, बिंदा, सोबत सिंह, चौतराम, गबरू काका, झब्बन, भागुली देवी, सुंदुरू, बिसनू दादा जैसे पात्र-नामों में एक ओर पुरानापन है तो दूसरी ओर नामानुकूल लोक-परंपरावादी चरित्रों का स्पष्ट संकेत भी मिलता है।

उनके साहित्य में लोक-विश्वास, लोक-परंपरा और लोक-संस्कार भाषागत होकर भावबोध की सृष्टि करते हैं। 'मेजर निराला' उपन्यास में 'कल्योऊ की परंपराएँ, रोट, अरसे, मंगणी, ग्वेर, बछेर, घसेर आदि लोकभाषा के शब्दों का प्रयोग विभिन्न प्रसंगों में मिलता है। इसी प्रकार घराट, पुस्ता, बिजुंड़ा, घसेरियाँ, घात लगना, देवता आना, जात पूजना, देवता का पश्वा, गणत-पूछ करवाना, कलेवा लाना, पिठाई लगाना, जन्मपत्री बाँचना, टिहरी गढ़वाल की नथ, जन्म के 11 दिन बाद सूतक हटना आदि लोक-परंपराएँ और लोक-संस्कार हैं। आँचलिक और देशज शब्दों की यह उपयोगिता निशंक जी की विशिष्ट लेखन-प्रतिभा का परिचायक है, जो उनके कथा-साहित्य को लोकसाहित्य में परिणत करती है।

निष्कर्षत: रमेश पोखरियाल 'निशंक' के कथा-साहित्य के अध्ययन के उपरांत स्पष्ट होता है कि निशंक जी के कथा-साहित्य में लोक-जीवन की आत्मा बसती है, जहाँ लोक-जीवन विभिन्न घटकों से प्रभावित होता है, लोक-जीवन के सुख-दुख, आशा-निराशा, हर्ष-विषाद में प्रकृति, परिवेश, भौगोलिकता तथा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों का विशेष महत्व रहता है। इन्हीं घटकों से साहित्य लोक अथवा शिष्ट की परिधि प्राप्त करता है। निशंक के कथा-साहित्य में यह परिधि बहुधा लोक-साहित्य के क्षेत्र में आती है। उनका लोक-साहित्य उनके परिवेश और अनुभवों की स्पष्ट एवं सजीव झलक प्रस्तुत करता है। ❑

संदर्भ सूची :

1. हिंदी लोक साहित्यशास्त्र सिद्धांत और विकास, डॉ. अनुसुया अग्रवाल, नीरज बुक सेंटर, नई दिल्ली, वर्ष 2009, पृ.सं. 19
2. साहित्यलोचन, डॉ. श्यामसुंदर दास, साहित्यागार, जयपुर, वर्ष 2009, पृ.सं. 44
3. टूटते दायरे, रमेश पोखलियाल 'निशंक', वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, वर्ष 2010 ई, पृ.सं. 13
4. छूट गया पड़ाव, रमेश पोखरियाल 'निशंक', वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, वर्ष 2010 ई, पृष्ठ सं. 18
5. डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में जीवन मूल्य, डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण', विनसर पब्लिशिंग कंपनी, देहरादून, वर्ष 2009 ई., पृ.सं. 76
6. छूट गया पड़ाव, रमेश पोखरियाल निशंक, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2010 ई., पृ.सं. 50
7. भागोंवाली, रमेश पोखरियाल 'निशंक', प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष 2015 ई., पृ.सं. 26
8. पल्लवी, रमेश पोखरियाल 'निशंक', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, वर्ष 2010 ई., पृ.सं. 66
9. पहाड़ से ऊँचा, रमेश पोखरियाल 'निशंक', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2008 ई., पृ.सं. 55

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945
Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

भक्तिकालीन भारतीय साहित्य में भारतबोध

डॉ. चारु गोयल

हिंदी विभाग
श्यामा प्रसाद मुखर्जी महिला महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली-110026
887651201
dranushabda@gmail.com

शोध-सार :

भारतीय साहित्यिक परंपरा में 'भारतबोध' केवल भौगोलिक या राजनीतिक पहचान का विचार नहीं है; यह एक गहरी सांस्कृतिक चेतना है जो विविध भाषाओं, आस्थाओं, लोकानुभवों और नैतिक मूल्यों को एक साझा आत्मानुभूति में रूपांतरित करती है। भारतीय समाज की दीर्घ सांस्कृतिक स्मृति में यह बोध आध्यात्मिकता, लोकजीवन और सामाजिक सहअस्तित्व के समन्वय से निर्मित हुआ है। भक्तिकालीन साहित्य इस चेतना का एक निर्णायक ऐतिहासिक क्षण है, क्योंकि इसी काल में भारतीय उपमहाद्वीप की तमिल, कन्नड़, मराठी, हिंदी, गुजराती, बंगाली, पंजाबी तथा पूर्वोत्तर भारतीय भाषाओं में भक्ति की ऐसी अभिव्यक्ति दिखाई देती है जो विविधता के भीतर सांस्कृतिक एकात्म का अनुभव कराती है। इसीलिए भक्ति आंदोलन को किसी एक भाषिक क्षेत्र तक सीमित करना उसके वास्तविक अर्थ को संकुचित करना होगा। वस्तुत: यह आंदोलन भारतीय आत्मबोध की साहित्यिक अभिव्यक्ति है।

बीज शब्द :

लोकजीवन, भारतबोध, सांस्कृतिक चेतना, भक्तिकालीन साहित्य, भारतीयता, लोकभाषा।

विश्लेषण :

मध्यकालीन भारत की ऐतिहासिक परिस्थितियाँ इस सांस्कृतिक चेतना के विकास की पृष्ठभूमि तैयार करती हैं। राजनीतिक परिवर्तन, सांस्कृतिक संपर्क और सामाजिक अंतर्विरोधों के बीच भारतीय समाज अपनी आंतरिक निरंतरता को बनाए रखते हुए नए रूपों में व्यक्त हो रहा था। भक्ति आंदोलन इसी संदर्भ में एक ऐसी वैचारिक भूमि प्रदान करता है जहाँ ईश्वर के साथ व्यक्तिगत संबंध, सामाजिक समता और लोकभाषाओं की प्रतिष्ठा एक साथ उभरती है। यह केवल धार्मिक पुनर्जागरण नहीं था, बल्कि समाज की आत्मसंरचनात्मक शक्ति का भी संकेत था। रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं—*'भक्ति आंदोलन ने भारतीय जनमानस को लोकजीवन से जोड़कर उसे एक व्यापक सांस्कृतिक चेतना प्रदान की।'*[1] यह व्यापकता भारतबोध का मूल स्वर है—एक ऐसा अनुभव जिसमें विविध समुदाय स्वयं को एक साझा सांस्कृतिक धारा का अंग मानते हैं।

दक्षिण भारत की आलवार और नायनार परंपराएँ भक्ति चेतना की प्रारंभिक और प्रभावशाली अभिव्यक्तियाँ हैं। तमिल भाषा में रचित इन संतों की वाणी ने ईश्वर के प्रति प्रेम, आत्मसमर्पण और मानवीय समानता को केंद्र में रखा। धर्म यहाँ कर्मकांड से मुक्त होकर लोकजीवन की अनुभूति से जुड़ता है। एक

इतिहासकार के शब्दों में—*'दक्षिण की भक्ति धारा ने धर्म को लोक की भाषा और संवेदना से जोड़कर उसे सार्वदेशिक स्वर दिया।'*[2] यह सार्वदेशिकता क्षेत्रीय सीमाओं को पार करते हुए भारतीय सांस्कृतिक एकात्म को पुष्ट करती है। इसी अंतर्धारा का विस्तार कर्नाटक की वचन परंपरा, महाराष्ट्र की संत धारा और उत्तर भारतीय संत साहित्य में दिखाई देता है। बसवन्ना, ज्ञानेश्वर और तुकाराम ने आध्यात्मिक अनुभव को लोकभाषा के माध्यम से सामाजिक जीवन से जोड़ा। हिंदी संत परंपरा में कबीर का स्वर अनुभवजन्य सत्य और सामाजिक समता का उद्घोष करता है। वे कहते हैं—*'पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।'*[3] यह कथन ज्ञान के बाह्य प्रदर्शन के विरुद्ध जीवनानुभव की प्रतिष्ठा करता है। यहाँ भारतबोध उस लोकतांत्रिक चेतना के रूप में उभरता है, जिसमें सत्य का स्रोत जीवन स्वयं है। सगुण भक्ति परंपरा में तुलसीदास और सूरदास जैसे कवियों ने सांस्कृतिक आदर्शों को लोकभाषा में प्रतिष्ठित किया। तुलसीदास लिखते हैं—*'परहित सरिस धरम नहि भाई।'*[4] यह धर्म को लोकमंगल से जोड़ने वाली भारतीय दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। इसी प्रकार कृष्णभक्ति लोकजीवन की भावनात्मक गहराई को आध्यात्मिक अर्थ देती है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भक्ति साहित्य में आध्यात्मिक अनुभव और सामाजिक नैतिकता परस्पर जुड़े हुए हैं—और यही संबद्धता भारतबोध की आधारभूमि बनती है। यदि इन विविध भाषिक परंपराओं को समग्र रूप से देखा जाए तो भक्ति आंदोलन भारतीय सांस्कृतिक आत्मचेतना का साझा मंच प्रतीत होता है। दक्षिण से उत्तर और पूर्वोत्तर तक भक्ति की भाषा भिन्न है, पर उसका मानवीय और आध्यात्मिक स्वर समान है। यही समानता भारतबोध का सार है—विविधता में एक जीवित सांस्कृतिक एकता। यहीं से आगे की चर्चा हमें यह समझने की ओर ले जाती है कि निर्गुण और सगुण भक्ति की भिन्न धाराएँ किस प्रकार इस भारतबोध को अलग-अलग आयाम प्रदान करती हैं—एक ओर सामाजिक आलोचना और आत्मचेतना, दूसरी ओर सांस्कृतिक आदर्श और भावात्मक समन्वय। यही द्वंद्वात्मक संतुलन भक्तिकाल को भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में विशिष्ट बनाता है।

भक्तिकालीन साहित्य को यदि केवल किसी एक भाषिक क्षेत्र की धार्मिक काव्यधारा के रूप में देखा जाए तो उसकी वास्तविक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक व्यापकता अस्पष्ट रह जाती है। वस्तुतः भक्ति आंदोलन भारतीय उपमहाद्वीप में फैली एक अखिल-भारतीय सांस्कृतिक प्रक्रिया थी, जिसने विविध भाषाओं और समुदायों के बीच एक साझा आध्यात्मिक संवेदना का निर्माण किया। यही संवेदना भारतबोध का वह जीवंत आधार बनती है, जिसमें क्षेत्रीय अनुभव एक व्यापक सांस्कृतिक पहचान से जुड़ते हैं। दक्षिण से उत्तर और पश्चिम से पूर्व तक भक्ति परंपराओं का समानांतर विकास इस बात का प्रमाण है कि भारतीय समाज के भीतर एक गहरी अंतर्धारा सक्रिय थी—जो मनुष्य की आध्यात्मिक आकांक्षा और सामाजिक समानता को एक साझा मूल्य के रूप में स्थापित करती थी। तमिल प्रदेश की आलवार और नायनार परंपरा इस अखिल भारतीय भक्ति चेतना की प्रारंभिक अभिव्यक्ति है। आलवार संतों की विष्णुभक्ति और नायनारों की शिवभक्ति ने ईश्वर के साथ व्यक्तिगत संबंध, प्रेम और आत्मसमर्पण को साधना का केंद्र बनाया। उनकी रचनाएँ लोकभाषा में थीं, किंतु उनमें व्यक्त भावनाएँ सार्वदेशिक थीं। धर्म यहाँ कर्मकांड से मुक्त होकर लोकजीवन से जुड़ता है। एक इतिहासकार के अनुसार—*'दक्षिण भारतीय भक्ति परंपरा ने धार्मिक अनुभव को लोकभाषा के माध्यम से जनसाधारण तक पहुँचाकर सांस्कृतिक एकात्म को सुदृढ़ किया।'*[5] यह प्रक्रिया क्षेत्रीय सीमाओं को पार कर भारतीय सांस्कृतिक चेतना को व्यापक बनाती है। कर्नाटक की वचन परंपरा में बसवन्ना और उनके समकालीन संतों ने भक्ति को सामाजिक समता और नैतिक आत्मानुशासन से जोड़ा। वचनों की सरल भाषा धार्मिक औपचारिकता की आलोचना करते हुए आंतरिक आध्यात्मिकता पर बल देती है। बसवन्ना का कथन—*'मेरा शरीर ही मंदिर है।'*[6] आध्यात्मिक अनुभव को जीवन के भीतर स्थापित करता है। इसी प्रकार महाराष्ट्र की संत परंपरा में ज्ञानेश्वर और तुकाराम ने दार्शनिक चिंतन को लोकभाषा में रूपांतरित कर भक्ति को जनजीवन का अंग बनाया। यह लोकाभिमुखता भारतीय सांस्कृतिक चेतना के लोकतांत्रिक स्वरूप को व्यक्त करती

है। गुजरात के नरसिंह मेहता की करुणा-प्रधान भक्ति भारतीय नैतिकता की सार्वदेशिक भावना को सामने लाती है। उनका प्रसिद्ध पद—'वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाणे रे।'[7] दूसरों के दु:ख को अपना दु:ख समझने की संवेदना को धर्म का आधार मानता है। बंगाल की चैतन्य परंपरा ने सामूहिक संकीर्तन के माध्यम से भक्ति को सामाजिक उत्सव का रूप दिया, जहाँ समुदाय एक साझा भावभूमि पर जुड़ता है। पंजाब की गुरु परंपरा में गुरु नानक ने धार्मिक विभाजनों से ऊपर उठकर मानवीय एकता का संदेश दिया—*'ना को हिन्दू, ना मुसलमान।'*[8] यह दृष्टि भारतीय समाज की समावेशी चेतना को पुष्ट करती है।

यदि इन विविध परंपराओं को समग्र रूप से देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि भक्ति आंदोलन भारतीय सांस्कृतिक एकात्म का सशक्त उदाहरण है। भाषाएँ भिन्न हैं, पर आध्यात्मिक और नैतिक आधार समान है—मनुष्य की गरिमा, करुणा और सहअस्तित्व। यही साझा आधार भारतबोध का मूल तत्व है। भक्ति साहित्य इस तत्व को लोकभाषाओं और सांस्कृतिक व्यवहार के माध्यम से जीवित रखता है, जिससे विविध समुदाय स्वयं को एक व्यापक सांस्कृतिक परिवार का अंग अनुभव करते हैं। इस अखिल-भारतीय परिप्रेक्ष्य में भक्ति साहित्य केवल धार्मिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सांस्कृतिक संवाद का माध्यम बन जाता है। यह संवाद क्षेत्रीय पहचान को नष्ट नहीं करता, बल्कि उन्हें एक व्यापक भारतीय चेतना से जोड़ता है। इसी प्रक्रिया में भारतबोध बहुलता के भीतर एकता की अनुभूति के रूप में विकसित होता है—एक ऐसी अनुभूति जो भक्ति की भाषा में मानवीय संवेदना और सांस्कृतिक समन्वय का स्वर बनकर उभरती है। यहीं से चर्चा स्वाभाविक रूप से उस बिंदु की ओर बढ़ती है जहाँ निर्गुण और सगुण भक्ति की भिन्न धाराएँ इस भारतबोध को अलग-अलग आयाम प्रदान करती हैं — एक ओर आत्मालोचन और सामाजिक समानता, दूसरी ओर सांस्कृतिक आदर्श और भावात्मक एकता। यही द्वंद्वात्मक संतुलन भक्ति साहित्य को भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में विशिष्ट बनाता है।

भक्तिकालीन भारतीय साहित्य की एक विशिष्ट पहचान निर्गुण और सगुण भक्ति धाराओं का समानांतर विकास है। सामान्यत: इन दोनों प्रवृत्तियों को दार्शनिक भिन्नता के आधार पर पृथक समझा जाता है, किंतु भारतबोध की दृष्टि से देखें तो ये विरोधी नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना के पूरक आयाम हैं। निर्गुण भक्ति जहाँ आध्यात्मिक अनुभव को सामाजिक समता, आत्मालोचन और वैचारिक स्वतंत्रता से जोड़ती है, वहीं सगुण भक्ति सांस्कृतिक आदर्शों, भावात्मक एकता और लोकधर्मी नैतिकता को प्रतिष्ठित करती है। इन दोनों धाराओं के समन्वय में भारतीय समाज की वह अंतर्निहित प्रवृत्ति दिखाई देती है जो विविध विचारों को संवाद के माध्यम से एक साझा सांस्कृतिक अनुभव में रूपांतरित करती है। निर्गुण भक्ति का मूल आग्रह ईश्वर की निराकार अवधारणा और बाह्याचार का निषेध है। कबीर, गुरु नानक, रैदास, दादू और बसवन्ना जैसे संतों ने धार्मिक अनुष्ठानों, जातिगत विभाजनों और रूढ़ परंपराओं पर प्रश्न उठाते हुए आध्यात्मिकता को व्यक्ति के आंतरिक अनुभव से जोड़ा। कबीर कहते हैं—*'मस्जिद चढ़ि कर मोअज्जिन पुकारे, क्या बहरा हुआ खुदाय।'*[9] यह पंक्ति धार्मिक औपचारिकता की आलोचना करते हुए ईश्वर की सर्वव्यापकता को रेखांकित करती है।

इसी प्रकार गुरुनानक का कथन—*'ना को हिन्दू, ना मुसलमान।'*[10] मानवीय पहचान को संकीर्ण धार्मिक विभाजनों से ऊपर उठाता है। निर्गुण परंपरा का यह स्वर भारतीय समाज की आत्मालोचनात्मक चेतना को व्यक्त करता है—एक ऐसी चेतना जो सामाजिक समानता और नैतिक स्वतंत्रता को आध्यात्मिक साधना का अंग मानती है। कर्नाटक की वचन परंपरा में बसवन्ना का चिंतन भी इसी दिशा में आगे बढ़ता है। वे आंतरिक नैतिकता को बाह्य कर्मकांड से अधिक महत्त्व देते हैं—*'मेरा शरीर ही मंदिर है।'*[11]

यह कथन आध्यात्मिकता को जीवन के भीतर स्थापित करता है। मराठी संत तुकाराम के अभंगों में भी ईश्वर भक्ति सामाजिक संवेदनशीलता से जुड़ती है। इस प्रकार निर्गुण भक्ति भारतीयता के उस पक्ष को सामने लाती है जिसमें सत्य का आधार अनुभव, विवेक और नैतिकता है। इसके विपरीत सगुण भक्ति ईश्वर के साकार रूप के

माध्यम से सांस्कृतिक आदर्शों को मूर्त करती है। राम और कृष्ण जैसे प्रतीक भारतीय समाज के नैतिक और भावात्मक जीवन को दिशा देते हैं। तुलसीदास लिखते हैं—*'सिया राममय सब जग जानी।'*[12] यह कथन विश्व को दिव्य चेतना से ओतप्रोत देखने की भारतीय दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। यहाँ भक्ति केवल व्यक्तिगत मुक्ति का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक सामंजस्य का माध्यम बनती है। सूरदास की कृष्णभक्ति लोकजीवन की संवेदनाओं को आध्यात्मिक विस्तार देती है—वात्सल्य, प्रेम और सौंदर्य के माध्यम से मनुष्य के भावविश्व को समृद्ध करती है।

दक्षिण भारत की वैष्णव और शैव परंपराएँ भी इसी सगुण दृष्टि का विस्तार हैं। आलवार संतों की विष्णुभक्ति और नायनारों की शिवभक्ति में ईश्वर के साथ भावात्मक संबंध प्रमुख है। बंगाल की चैतन्य परंपरा में सामूहिक संकीर्तन भक्ति को सामाजिक उत्सव का रूप देता है, जहाँ व्यक्ति और समुदाय एक साझा भावभूमि पर जुड़ते हैं। सगुण भक्ति इस प्रकार भारतीय समाज की भावात्मक एकता और सांस्कृतिक निरंतरता को सुदृढ़ करती है। निर्गुण और सगुण भक्ति की तुलनात्मक समीक्षा से स्पष्ट होता है कि दोनों धाराएँ भारतबोध के भिन्न किंतु पूरक आयाम प्रस्तुत करती हैं। निर्गुण भक्ति सामाजिक आलोचना और आत्मचेतना के माध्यम से भारतीय समाज को आत्मसमीक्षा की दिशा देती है, जबकि सगुण भक्ति सांस्कृतिक आदर्शों को लोकमानस में प्रतिष्ठित कर भावात्मक एकता का निर्माण करती है। दोनों मिलकर एक ऐसी समन्वित चेतना का निर्माण करती हैं जिसमें आध्यात्मिक अनुभव, सामाजिक नैतिकता और सांस्कृतिक पहचान एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं।

भारतीय सांस्कृतिक परंपरा की यही विशेषता है कि वह विरोधों को संघर्ष में नहीं, बल्कि संवाद में रूपांतरित करती है। निर्गुण और सगुण भक्ति के बीच का यह संवाद भारतबोध की उस बहुलतावादी प्रकृति को रेखांकित करता है जिसमें विविध दृष्टियाँ सहअस्तित्व में रहती हैं। भक्ति साहित्य इस सहअस्तित्व को काव्यात्मक अभिव्यक्ति देकर भारतीय समाज की सामूहिक चेतना को सुदृढ़ करता है। इस प्रकार भक्तिकालीन साहित्य में निर्गुण और सगुण भक्ति की द्वंद्वात्मक एकता भारतबोध की आधारशिला सिद्ध होती है। यही एकता भारतीय समाज को आत्मालोचन, नैतिक संतुलन और सांस्कृतिक समन्वय की दिशा में प्रेरित करती है। आगे की चर्चा हमें यह समझने की ओर ले जाएगी कि लोकजीवन और सामाजिक समरसता के स्तर पर यह भारतबोध किस प्रकार मूर्त होता है और कैसे पूर्वोत्तर भारत सहित विविध क्षेत्रों की भक्ति परंपराएँ इस व्यापक सांस्कृतिक चेतना को जीवंत बनाए रखती हैं।

भक्तिकालीन भारतीय साहित्य की एक केंद्रीय विशेषता उसका लोकजीवन से गहरा और जीवंत संबंध है। भक्ति यहाँ केवल आध्यात्मिक साधना नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवहार, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और सामुदायिक जीवन का अंग बन जाती है। इसी स्तर पर 'भारतबोध' का वास्तविक अर्थ स्पष्ट होता है—विविध समुदायों के बीच साझा नैतिकता, सहअस्तित्व और सांस्कृतिक संवाद की अनुभूति। भक्ति साहित्य ने लोकभाषाओं, लोकरीतियों और सामूहिक अनुष्ठानों के माध्यम से इस चेतना को मूर्त रूप दिया। परिणामस्वरूप धर्म निजी अनुभव तक सीमित न रहकर सामाजिक समरसता का माध्यम बन गया। निर्गुण और सगुण दोनों धाराओं में लोकजीवन की उपस्थिति केंद्रीय है। कबीर और रैदास जैसे संतों ने श्रम, जीवन-संघर्ष और मानवीय समानता को आध्यात्मिक गरिमा प्रदान की। कबीर कहते हैं—*'जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।'*[13]

यह कथन सामाजिक विभाजनों पर प्रहार करते हुए मनुष्य की मूल समानता को स्थापित करता है। तुलसीदास की लोकमंगल दृष्टि धर्म को सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ती है, जहाँ भक्ति लोककल्याण का मार्ग बनती है। इस प्रकार भक्ति साहित्य भारतीय समाज के विविध वर्गों को एक साझा नैतिक आधार पर जोड़ता है—यही भारतबोध की सामाजिक अभिव्यक्ति है।

महाराष्ट्र की संत परंपरा में तुकाराम और नामदेव ने भक्ति को जनजीवन के अनुभव से जोड़ा। उनके अभंगों में किसान, श्रमिक और सामान्य जन का जीवन आध्यात्मिक अर्थ प्राप्त करता है। गुजरात में नरसिंह मेहता की करुणा-प्रधान भक्ति, बंगाल की सामूहिक संकीर्तन परंपरा और

पंजाब की गुरु परंपरा—सभी में भक्ति सामुदायिक जीवन का उत्सव बनती है। गुरु नानक का यह कथन—*'सबना भीतर एको वास।'*[14] मानवीय एकता की उस दृष्टि को व्यक्त करता है जो सामाजिक समरसता का आधार बनती है। इन विविध परंपराओं में लोक और आध्यात्मिकता का समन्वय भारतबोध की भावात्मक एकता को सुदृढ़ करता है।

इसी अखिल-भारतीय संदर्भ में पूर्वोत्तर भारत की भक्ति परंपरा विशेष महत्त्व रखती है। असम के महान संत श्रीमंत शंकरदेव ने वैष्णव भक्ति के माध्यम से एक ऐसी सांस्कृतिक धारा का निर्माण किया जिसने क्षेत्रीय समाज को नैतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक स्तर पर एकीकृत किया। उनकी एकशरणीय नामधर्म परंपरा ने जातिगत भेदों को कम करते हुए सामूहिक भक्ति, कीर्तन और नाट्य परंपरा के माध्यम से लोकजीवन को आध्यात्मिक अनुभव से जोड़ा। शंकरदेव की वाणी में यह भाव स्पष्ट है—*'हरिनामे मुखर होउक प्राणी।'*[15] यह पंक्ति व्यक्ति और समुदाय दोनों को साझा आध्यात्मिक चेतना से जोड़ती है। असम की नामघर परंपरा भक्ति को सामाजिक संवाद का केंद्र बनाती है। यहाँ धर्म लोकजीवन से पृथक नहीं, बल्कि उसी का अभिन्न अंग है। शंकरदेव और माधवदेव की परंपरा ने पूर्वोत्तर भारत में सांस्कृतिक जागरण का कार्य किया, जिससे विविध जातीय समुदायों के बीच साझा सांस्कृतिक पहचान विकसित हुई। एक विद्वान के अनुसार—*'असम की वैष्णव भक्ति ने क्षेत्रीय समाज को सांस्कृतिक एकता और नैतिक अनुशासन का आधार प्रदान किया।'*[16] यह आधार अखिल भारतीय सांस्कृतिक चेतना से जुड़कर भारतबोध को और व्यापक बनाता है।

पूर्वोत्तर भारत की यह भक्ति परंपरा सिद्ध करती है कि भारतबोध किसी एक भूभाग या भाषा तक सीमित नहीं है। हिंदी क्षेत्र के संतों से लेकर असम के शंकरदेव तक, भक्ति साहित्य लोकजीवन को आध्यात्मिक अर्थ देकर सामाजिक समरसता की दिशा में कार्य करता है। इस प्रक्रिया में भाषा, जाति और क्षेत्र की सीमाएँ संवाद के माध्यम से पार होती हैं। भक्ति का यह लोकधर्मी स्वर भारतीय समाज को एक साझा सांस्कृतिक परिवार के रूप में देखने की दृष्टि प्रदान करता है। इस प्रकार लोकजीवन और सामाजिक समरसता के स्तर पर भक्ति साहित्य भारतबोध की जीवंत अभिव्यक्ति बन जाता है। यहाँ आध्यात्मिकता जीवन से पृथक नहीं, बल्कि उसके भीतर सक्रिय नैतिक चेतना है। पूर्वोत्तर भारत की भक्ति परंपरा इस व्यापक सांस्कृतिक प्रक्रिया का सशक्त उदाहरण है—जहाँ क्षेत्रीय अनुभव अखिल भारतीय आत्मचेतना से जुड़ता है। यही प्रवाह आगे हमें यह समझने की ओर ले जाता है कि सांस्कृतिक स्मृति और प्रतीकों के माध्यम से यह भारतबोध किस प्रकार स्थायी रूप ग्रहण करता है।

लोकजीवन और सामाजिक समरसता के स्तर पर भक्ति साहित्य की भूमिका को समझने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि उसकी स्थायी शक्ति सांस्कृतिक स्मृति के निर्माण में निहित है। किसी भी समाज की सांस्कृतिक स्मृति उसके अनुभवों, मूल्यों और आदर्शों को पीढ़ियों तक जीवित रखती है। भक्तिकालीन साहित्य इस स्मृति का एक सृजनात्मक माध्यम है, जहाँ भाषा, कथा और प्रतीक मिलकर भारतीय समाज की आत्मपहचान को संरक्षित करते हैं। यहाँ 'भारतबोध' केवल एक वैचारिक अवधारणा नहीं, बल्कि सांस्कृतिक अनुभव की निरंतर प्रक्रिया है—जो अतीत की परंपराओं को वर्तमान जीवन से जोड़ती है। भक्ति साहित्य में प्रयुक्त प्रतीक भारतीय सांस्कृतिक चेतना के वाहक हैं। राम और कृष्ण जैसे रूप केवल धार्मिक आस्था के प्रतीक नहीं, बल्कि नैतिक और भावात्मक आदर्शों के प्रतिनिधि हैं। तुलसीदास लिखते हैं—*'सिया राममय सब जग जानी।'*[17] यह कथन विश्व को दिव्य चेतना से ओतप्रोत देखने की भारतीय दृष्टि को व्यक्त करता है। राम मर्यादा, करुणा और लोकमंगल के प्रतीक बनते हैं, जबकि कृष्ण प्रेम, सौंदर्य और जीवनानंद के संवाहक हैं। इन प्रतीकों के माध्यम से भक्ति साहित्य भारतीय समाज की सामूहिक स्मृति को भावनात्मक और नैतिक आधार प्रदान करता है।

निर्गुण भक्ति परंपरा में प्रतीकों का स्वरूप अधिक आंतरिक और अनुभवपरक है। कबीर कहते हैं—*'मोको कहाँ ढूँढ़े रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।'*[18] यह पंक्ति ईश्वर को बाह्य अनुष्ठानों से हटाकर व्यक्ति के भीतर स्थापित करती है। निर्गुण प्रतीक व्यक्ति को आत्मानुशीलन और नैतिक जागरूकता की ओर प्रेरित करते हैं। इस प्रकार भक्ति साहित्य भारतीय चिंतन की उस परंपरा को आगे

बढ़ाता है जिसमें सत्य का बोध अनुभव और आत्मसंवाद से उत्पन्न होता है। यही प्रक्रिया भारतबोध को वैचारिक और आध्यात्मिक गहराई प्रदान करती है।

दक्षिण भारतीय भक्ति परंपराओं में भी सांस्कृतिक प्रतीकों का सशक्त प्रयोग मिलता है। आलवार और नायनार संतों की वाणी में ईश्वर लोकजीवन के अनुभवों से जुड़ा हुआ है। मराठी संत परंपरा में विट्ठल का रूप जनसाधारण की आशा और भक्ति का केंद्र बनता है। तुकाराम का भाव—*'विट्ठल ही जीवन का आधार है।'*[19] दैनिक जीवन और आध्यात्मिक चेतना के समन्वय को व्यक्त करता है। यह प्रतीकात्मक संरचना क्षेत्रीय अनुभव को अखिल भारतीय सांस्कृतिक चेतना से जोड़ती है।

पूर्वोत्तर भारत की वैष्णव परंपरा में शंकरदेव द्वारा विकसित सांस्कृतिक प्रतीक—नामघर, कीर्तन और अंकिया नाट—सामूहिक स्मृति के जीवंत माध्यम हैं। ये केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि सामाजिक संवाद और सांस्कृतिक सहभागिता के केंद्र हैं। भक्ति यहाँ संगीत, नाट्य और काव्य के माध्यम से लोकजीवन में रच-बस जाती है। इस प्रकार क्षेत्रीय अभिव्यक्ति अखिल भारतीय सांस्कृतिक प्रवाह से जुड़कर भारतबोध को स्थायित्व प्रदान करती है। भक्ति साहित्य की कथा-परंपरा भी सांस्कृतिक स्मृति के संरक्षण का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। रामकथा, कृष्णलीला और संत-वाणी भारतीय समाज के नैतिक और आध्यात्मिक आदर्शों को पीढ़ियों तक पहुँचाती हैं। ये कथाएँ केवल धार्मिक आख्यान नहीं, बल्कि सामाजिक आचरण और मानवीय मूल्यों के मार्गदर्शक हैं। गीत, कथा और सामूहिक पाठ के माध्यम से यह साहित्य लोकजीवन में निरंतर पुनर्सृजित होता रहता है। इसी पुनर्सृजन में भारतबोध एक जीवंत सांस्कृतिक अनुभव के रूप में बना रहता है।

यदि समग्र दृष्टि से देखा जाए तो भक्ति साहित्य सांस्कृतिक स्मृति और प्रतीकों के माध्यम से भारतीय समाज को एक साझा पहचान प्रदान करता है। यह पहचान किसी एक भाषा या क्षेत्र तक सीमित नहीं, बल्कि विविध परंपराओं के समन्वय से निर्मित है। भक्ति काव्य का यह प्रतीकात्मक संसार भारतीयता को भावात्मक, नैतिक और आध्यात्मिक आधार देता है जिससे समाज अपने अतीत से संवाद करते हुए वर्तमान को समझता है और भविष्य की दिशा निर्धारित करता है। इस प्रकार भक्तिकालीन साहित्य में सांस्कृतिक स्मृति और प्रतीकों का तंत्र भारतबोध को स्थायी और जीवंत बनाता है। यहाँ आध्यात्मिकता और लोकजीवन का संवाद भारतीय समाज की निरंतरता और एकात्म चेतना को सुदृढ़ करता है। यही प्रवाह हमें अंतिम समाहार की ओर ले जाता है, जहाँ भक्ति चेतना की समकालीन प्रासंगिकता स्पष्ट होती है।

भक्तिकालीन भारतीय साहित्य के समग्र अवलोकन से स्पष्ट होता है कि भक्ति आंदोलन केवल धार्मिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि भारतीय समाज की सांस्कृतिक आत्मचेतना का एक निर्णायक ऐतिहासिक क्षण था। इस साहित्य में व्यक्त भारतबोध किसी राजनीतिक राष्ट्रवाद का प्रारूप नहीं, बल्कि एक ऐसी सांस्कृतिक अनुभूति है जो विविध भाषाओं, क्षेत्रों और समुदायों को साझा नैतिक और आध्यात्मिक आधार पर जोड़ती है। निर्गुण और सगुण भक्ति की धाराएँ, दक्षिण से उत्तर और पूर्वोत्तर तक फैली परंपराएँ, तथा लोकजीवन से जुड़ी अभिव्यक्तियाँ ये सभी मिलकर भारतीयता की उस बहुआयामी अवधारणा को रूप देती हैं जिसमें समन्वय और सहअस्तित्व केंद्रीय मूल्य हैं।

भक्ति साहित्य की सबसे बड़ी शक्ति उसका लोकाभिमुख स्वर है। यह साहित्य मनुष्य के दैनिक जीवन, श्रम, प्रेम और संघर्ष को आध्यात्मिक अर्थ देता है। कबीर का कथन—*'साधु ऐसा चाहिए,जैसा सूप सुभाय।'*[20] आत्मशुद्धि और विवेक की आवश्यकता को रेखांकित करता है। तुलसीदास का लोकमंगल धर्म को सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ता है, जबकि शंकरदेव की सामुदायिक भक्ति पूर्वोत्तर भारत में सांस्कृतिक एकता का आधार बनती है। इन विविध परंपराओं का साझा तत्व है—मनुष्य की नैतिक गरिमा और सामूहिक सहअस्तित्व। यही तत्व भारतबोध को सामाजिक स्तर पर अर्थपूर्ण बनाता है। समकालीन भारतीय समाज बहुलता, संवाद और सहिष्णुता की चुनौतियों का सामना कर रहा है। ऐसे संदर्भ में भक्ति साहित्य का मूल संदेश—समानता, करुणा और आत्मानुशीलन—आज भी प्रासंगिक है। गुरु नानक का कथन—*'सबना भीतर एको वास।'*[21] मानवीय एकता की उस दृष्टि को सामने लाता है जो आधुनिक सामाजिक समरसता के लिए प्रेरणास्रोत बन सकती है।

भक्ति परंपरा हमें स्मरण कराती है कि भारतीयता का सार विविधता के सहअस्तित्व में निहित है। भक्ति आंदोलन की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि भाषिक लोकतंत्रीकरण है। लोकभाषाओं में रचित यह साहित्य भारतीय समाज के व्यापक वर्गों को सांस्कृतिक संवाद में सहभागी बनाता है। जब ज्ञान और आध्यात्मिकता जनभाषाओं में व्यक्त होती है, तब भारतबोध केवल बौद्धिक अवधारणा नहीं रहता—वह जनजीवन का अनुभव बन जाता है। यही प्रवृत्ति आज भी सांस्कृतिक लोकतंत्र की आधारशिला है। सांस्कृतिक स्मृति के स्तर पर भक्ति साहित्य भारतीय समाज को अपने अतीत से जोड़ता है। राम, कृष्ण, विट्ठल, हरि और निराकार ब्रह्म जैसे प्रतीक आज भी लोकजीवन में सक्रिय हैं। ये प्रतीक केवल धार्मिक विश्वास नहीं, बल्कि नैतिक और भावात्मक जीवन के मार्गदर्शक हैं। भक्ति साहित्य इस स्मृति को जीवित रखकर समाज को आत्मपहचान प्रदान करता है। इस प्रकार भारतबोध एक स्थिर अवधारणा नहीं, बल्कि निरंतर विकसित होने वाली सांस्कृतिक चेतना है।

निष्कर्ष :

समग्र रूप से देखें तो भक्तिकालीन भारतीय साहित्य में भारतबोध का स्वर आध्यात्मिक, सामाजिक, भाषिक और सांस्कृतिक आयामों का समन्वय है। यह साहित्य भारतीय समाज की उस क्षमता को रेखांकित करता है जो विविध परंपराओं को संवाद के माध्यम से एक साझा अनुभव में रूपांतरित करती है। भक्ति चेतना हमें यह सिखाती है कि आत्मबोध और लोकमंगल परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं और इसी पूरकता में भारतीयता का सार निहित है। अत: भक्तिकालीन साहित्य केवल ऐतिहासिक धरोहर नहीं, बल्कि समकालीन समाज के लिए नैतिक और सांस्कृतिक मार्गदर्शक है। इसमें व्यक्त भारतबोध विविधता में एकता, आत्मालोचन में विकास और लोकजीवन में आध्यात्मिक अर्थ खोजने की प्रेरणा देता है। यही प्रेरणा भक्ति साहित्य को आज भी जीवंत और प्रासंगिक बनाती है और भारतीय सांस्कृतिक एकात्म की आधारशिला के रूप में स्थापित करती है। ❑

संदर्भ-सूची :

1. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, 2002, पृ. 132
2. K. A. Nilakanta Sastri, A History of South India, Oxford University Press, 1997, p. 321.
3. कबीर, बीजक, संपा. श्यामसुंदर दास, लोकभारती, 2005, पृ. 21
4. तुलसीदास, रामचरितमानस, गीता प्रेस, 2018, पृ. 412.
5. K. A. Nilakanta Sastri, A History of South India, Oxford University Press, 1997, p. 322.
6. Basavanna, Vachanas, trans. A. K. Ramanujan, Penguin, 1973, p. 45.
7. Narsinh Mehta, Selected Poems, Sahitya Akademi, 2000, p. 29.
8. गुरु ग्रंथ साहिब, SGPC, 2015, p. 1136.
9. कबीर, बीजक, संपा. श्यामसुंदर दास, लोकभारती, 2005, पृ. 67.
10. गुरु ग्रंथ साहिब, SGPC, 2015, पृ. 1136.
11. Basavanna, Vachanas, trans. A. K. Ramanujan, Penguin, 1973, p. 52.
12. तुलसीदास, रामचरितमानस, गीता प्रेस, 2018, पृ. 58.
13. कबीर, बीजक, संपा. श्यामसुंदर दास, लोकभारती, 2005, पृ. 89.
14. गुरु ग्रंथ साहिब, SGPC, 2015, पृ. 294.
15. शंकरदेव, कीर्तन घोषा, असम साहित्य सभा, 2010, पृ. 54.
16. Maheswar Neog, Early History of the Vaisnava Faith and Movement in Assam, Motilal Banarsidass, 1980, p 201.
17. तुलसीदास, रामचरितमानस, गीता प्रेस, 2018, पृ. 58.
18. कबीर, बीजक, संपा. श्यामसुंदर दास, लोकभारती, 2005, पृ. 112.
19. Tukaram, Abhangas, Sahitya Akademi, 2003, p. 76.
20. कबीर, बीजक, संपा. श्यामसुंदर दास, लोकभारती, 2005, पृ. 134.
21. गुरु ग्रंथ साहिब, SGPC, 2015, पृ. 294.

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

घनानंद के काव्य में प्रेम का स्वरूप : एक अध्ययन

डॉ. थानेश्वर गिरि

ग्राम : नरियरा , पोस्ट : गनौद
रायपुर (छत्तीसगढ़)
पिन कोड : 493441
9243108033
Thaneshwar2528@gmail.com

सारांश :

रीतिकालीन कवि घनानंद हिंदी काव्य परंपरा में प्रेम के सूक्ष्म, गहन और आत्मिक स्वरूप के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। उनके काव्य में प्रेम केवल सौंदर्य या श्रृंगार तक सीमित नहीं है, बल्कि वह समर्पण, त्याग, विरह और आत्मवेदना का व्यापक भाव बनकर उभरता है। घनानंद का प्रेम एकांतिक है, जिसमें प्रेमी का संपूर्ण अस्तित्व प्रिय के प्रति समर्पित दिखाई देता है। उनके काव्य में विरह की प्रधानता है, जहाँ प्रेम का चरम रूप पीड़ा और मौन सहनशीलता के माध्यम से व्यक्त होता है। कोयल, ऋतु, प्रकृति और नायिका के संवाद के द्वारा कवि अपने अंतर्मन की वेदना को सजीव बनाते हैं। घनानंद का प्रेम सामाजिक बंधनों से परे एक आध्यात्मिक ऊँचाई प्राप्त करता है, जहाँ प्रेम ही जीवन का परम सत्य बन जाता है। इस प्रकार उनका काव्य प्रेम को संवेदना, आत्मिक गहराई और मानवीय अनुभूति का शाश्वत रूप प्रदान करता है।

बीज शब्द :

घनानंद, रीतिकाल, प्रेम, विरह, श्रृंगार, आत्मिक, प्रेम, वेदना, समर्पण, संवेदना, काव्य-अभिव्यक्ति।

भूमिका :

कवि घनानंद का जीवन और काव्य दोनों ही हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनके काव्य में प्रेम भक्ति और विरह की गहन अनुभूति है। इस परिचय में हम घनानंद के जीवन, साहित्यिक योगदान और उनकी काव्य शैली पर विस्तार से चर्चा करेंगे। घनानंद मुगल सम्राट मुहम्मद शाह के दरबार में काम करते थे। वे वहाँ एक उच्च पद पर आसीन थे और उनका जीवन वैभवशाली था। दरबारी जीवन ने उन्हें साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से समृद्ध किया। कवि घनानंद की प्रेमिका सुजान का वर्णन उनके काव्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सुजान का प्रेम उनकी सुंदरता और उनके प्रति घनानंद की भावनाएँ उनके काव्य का मुख्य विषय हैं। यहाँ हम सुजान के विभिन्न पहलुओं का वर्णन करेंगे, जो घनानंद के काव्य में देखने को मिलते हैं। घनानंद की प्रेमिका सुजान उनके जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा थीं। उनके काव्य में सुजान का उल्लेख बार-बार होता है और यह माना जाता है कि सुजान के प्रति उनके प्रेम ने उनके काव्य को गहराई और संवेदनशीलता प्रदान की। घनानंद ने सुजान की सुंदरता का वर्णन अपने काव्य में बड़े ही मोहक और सजीव ढंग से किया है।

शोध पत्र का उद्देश्य :

इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य घनानंद के काव्य में निहित प्रेम-भावना का गहन, समग्र एवं आलोचनात्मक अध्ययन करना है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं—

1. घनानंद के काव्य में प्रेम की संकल्पना, स्वरूप एवं विशेषताओं का विश्लेषण करना।

2. उनके काव्य में व्यक्त विरह, वेदना, आत्मसमर्पण तथा तन्मयता जैसे प्रेम-तत्वों की पहचान एवं व्याख्या करना।

3. घनानंद के व्यक्तिगत जीवनानुभवों और उनके काव्य में प्रेम-अभिव्यक्ति के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट करना।

4. रीतिकालीन काव्यधारा के संदर्भ में घनानंद की प्रेम-अभिव्यक्ति की मौलिकता एवं विशिष्टता को रेखांकित करना।

5. घनानंद के काव्य में प्रेम के मनोवैज्ञानिक एवं भावात्मक पक्षों का अध्ययन करना।

6. हिंदी काव्य परंपरा में घनानंद के प्रेम-काव्य के स्थान और महत्व का मूल्यांकन करना। इस प्रकार, यह शोध पत्र घनानंद के काव्य में प्रेम की अभिव्यक्ति को बहुआयामी दृष्टि से समझने और उसके साहित्यिक महत्व को स्थापित करने का प्रयास करता है।

प्राविधि :

प्रस्तुत शोध पत्र में घनानंद के काव्य में प्रेम की अभिव्यक्ति के अध्ययन हेतु गुणात्मक, विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक शोध प्रविधि को अपनाया गया है। शोध की प्रविधि को निम्न बिंदुओं के अंतर्गत स्पष्ट किया गया है—

● **वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रविधि :** घनानंद के प्रमुख काव्य-ग्रंथों एवं रचनाओं में प्रेम-भाव की अभिव्यक्ति का वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाएगा। प्रेम के विभिन्न रूपों- विरह, वेदना, आत्मनिवेदन, तन्मयता आदि का पाठ-विश्लेषण के माध्यम से विवेचन किया जाएगा।

● **ग्रंथालय शोध :** शोध के लिए घनानंद के प्रामाणिक काव्य-संग्रहों, आलोचनात्मक ग्रंथों, शोध पत्रिकाओं, संदर्भ पुस्तकों एवं विश्वविद्यालयीय शोध-प्रबंधों का अध्ययन किया जाएगा। इससे विषय से संबंधित पूर्ववर्ती शोध निष्कर्षों का सम्यक उपयोग किया जाएगा।

● **ऐतिहासिक एवं संदर्भात्मक प्रविधि :** रीतिकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में घनानंद के काव्य का अध्ययन किया जाएगा, जिससे प्रेम-अभिव्यक्ति के ऐतिहासिक एवं वैचारिक संदर्भ स्पष्ट हो सकें।

● **आलोचनात्मक एवं व्याख्यात्मक प्रविधि :** चयनित पदों एवं छंदों की आलोचनात्मक व्याख्या करते हुए प्रेम की भावनात्मक तीव्रता, मनोवैज्ञानिक पक्ष एवं कलात्मक सौंदर्य का विश्लेषण किया जाएगा। हिंदी काव्य परंपरा में घनानंद के प्रेम-काव्य के स्थान और महत्व का मूल्यांकन करना। इस प्रकार यह शोध पत्र घनानंद के काव्य में प्रेम की अभिव्यक्ति को बहुआयामी दृष्टि से समझने और उसके साहित्यिक महत्व को स्थापित करने का प्रयास करता है।

घनानंद के काव्य में प्रेम :

घनानंद के काव्य का लौकिक पक्ष उनके काव्य व्यक्तित्व का अत्यंत सशक्त और प्रामाणिक आयाम है। रीतिकालीन कवि होने पर भी घनानंद का लौकिक प्रेम सामान्य शृंगारिकता से भिन्न है। उनके यहाँ प्रेम केवल सौंदर्य-वर्णन, नायक-नायिका-भेद या अलंकारिक चमत्कार तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह वास्तविक मानवीय अनुभव, निजी संवेदना और जीवन-संघर्ष से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। घनानंद का प्रेम दरबारी या कल्पनाजन्य नहीं, बल्कि भोगा हुआ लौकिक प्रेम है, जिसमें मिलन, विरह, अपेक्षा, असमानता और पीड़ा सम्मिलित हैं। प्रेमिका के प्रति उनका भाव पूर्णतः सांसारिक है। वह सजीव, साकार और मानवीय है। घनानंद प्रेम को सामाजिक यथार्थ के भीतर अनुभव करते हैं, जहाँ उत्तर की प्रतीक्षा, दूरी की पीड़ा और प्रेम में एकतरफापन जैसे तत्व उपस्थित हैं। प्रस्तुत काव्य-पंक्ति इस लौकिक प्रेम-बोध का सशक्त उदाहरण है—

''घनआनद मीत सुनौ अरू ऊतर दूर ते देहु न देहु हहा।
तुम्है पाय अजू हम खोयौ सबै हमै खोय कहौ तुम पायौ कहा।''[1]

घनानंद के काव्य में प्रेम का स्वरूप अत्यंत गहन, एकांतिक और नैतिक अपेक्षा से युक्त है। उनका प्रेम केवल अनुभूति नहीं, बल्कि उत्तरदायित्व और निष्ठा की माँग करता है। प्रस्तुत काव्य-पंक्ति —

''पहिले अपनाय सुजान सनेह सो क्यौं फिरि नेह कौ तोरियै जू।
रस प्याय कै जाय बढाय कै आस बिसास मे क्यो विस घोरियै जू।।''[2]

घनानंद के प्रेम-दर्शन को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करती है। यह काव्य पंक्ति शोध-पत्रीय संदर्भ के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन पंक्तियों में कवि प्रेमिका से प्रश्न करता है कि जब उसने पहले स्नेहपूर्वक प्रेम को अपनाया तो फिर उसी प्रेम-संबंध को तोड़ने का कारण क्या है। यहाँ प्रेम को एक नैतिक बंधन के रूप में देखा गया है, जिसे तोड़ना केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि मूल्यगत पतन भी है। प्रेम के आनंद और आत्मीयता की ओर संकेत है, जबकि 'आस बिसास' प्रेम में उत्पन्न आशा और विश्वास के प्रतीक हैं। इसके विपरीत 'विस घोरियै' प्रेम में विश्वासघात और विष-विलयन का बिंब रचता है। इस प्रकार घनानंद प्रेम को केवल सुखद अनुभूति नहीं मानते, बल्कि उसे निरंतरता और ईमानदारी से जुड़ा हुआ मानते हैं। घनानंद के काव्य में प्रेम न केवल भावुकता और शृंगार का विषय है, बल्कि यह जीवन-दर्शन, समर्पण और नैतिक मूल्य से जुड़ा हुआ अनुभव है। उनके प्रेम में आत्मीयता, पीड़ा और संवेदनशीलता का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत काव्य-पंक्ति —

''हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कहु मो अकुलानि समानै,
नीर-सनेही को लाय कलक निरास है कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यौ समुझे जड मीत के पानि परे को प्रमानै,
या मन की जु दसा घनआनद जीव की जीवनि जान ही जानै।।''[3]

घनानंद के प्रेम-दर्शन को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करती यह कवि की रचना अपने प्रेम की स्थिति को जलमीन के अधीन मीन समान हीन और अकुल बताते हुए दिखाते हैं कि प्रेम में प्रेमी का अहं और स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। प्रेम को समझना केवल सतही दृष्टि से संभव नहीं; प्रेम का अनुभव वही जान सकता है जो उसकी गहराई में निवास करता है। ''या मन की जु दसा घनआनद जीव की जीवनि जान ही जानै'' में घनानंद यह संदेश देते हैं कि प्रेमी का प्रेम केवल बाहरी संकेतों से नहीं, बल्कि आत्मा और जीवन के अनुभव से ज्ञात होता है। घनानंद के काव्य में प्रेम का स्वरूप अत्यंत गहन, भावुक और अनुभवजन्य है। उनके यहाँ प्रेम केवल शृंगार या विलासिता नहीं, बल्कि विरह, उत्सुकता और आत्मीयता का मिश्रण है। प्रस्तुत काव्य-पंक्ति —

''मरिबौ बिसराम गनै वह तो यह बापुरो गीत तज्यौ तरसै।
वह रूप-छटा न सम्हारि सकै यह तेज तवै चितवै वरसै।
घन-आनद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी हवै थरसै।
बिछुरे-मिले मीन-पतग दसा कहा मो जिय की गति को परसै।''[4]

घनानंद के प्रेम-दर्शन को स्पष्ट रूप से प्रकट करती है। यहाँ कवि प्रेम की तीव्र अभिव्यक्ति कर रहे हैं, जहाँ प्रेमी प्रेमिका के सौंदर्य और आकर्षण से इतने मोहित हैं कि उसका रूप-छटा सम्हालना संभव नहीं। 'घन-आनद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी हवै थरसै' पंक्ति प्रेम की अद्वितीय अवस्था और मानसिक व्याकुलता को व्यक्त करती है, जहाँ प्रेमी की बुद्धि प्रेम में खो जाती है और केवल भावनाएँ शासन करती हैं। घनानंद के काव्य में प्रेम केवल भावनाओं और संवेदनाओं का अनुभव नहीं, बल्कि सौंदर्य, आकर्षण और आत्मीय भावनाओं का मिश्रित रूप है। उनके काव्य में प्रेम का लौकिक पक्ष स्पष्ट रूप से प्रकट होता है, जिसमें प्रेमी प्रेमिका के रूप, गुण और आचार से मोहित होता है। घनानंद के प्रेम-दर्शन का आदर्श उदाहरण है। यहाँ कवि प्रेमिका की मुस्कान, मृदु बोली और सौम्य चाल का वर्णन करते हैं, जो प्रेमी के हृदय में अरति (अंतर्निहित प्रेम-उत्कंठा) उत्पन्न करती है। यह पंक्ति दर्शाती है कि घनानंद के

लिए प्रेम केवल मानसिक आकांक्षा नहीं, बल्कि संपूर्ण संवेदनात्मक अनुभव है, जहाँ प्रेमिका के सौंदर्य और शिष्टाचार से हृदय और मन प्रभावित होते हैं। घनानंद के काव्य में प्रेम का स्वरूप अत्यंत उच्च और शुद्ध है, जो हृदय को भीतर से स्पर्श करता है। उनके काव्य में प्रेम की अनुभूति इस प्रकार प्रकट होती है—

प्रेमसदा अति ऊँचो लहै सुकहै इहि भाँति की बात छकी।
सुनिकै सबके मन लालच दौरे पै बौरे लखै सब बुद्धि चकी।
जग की कविताई के धोखे रहै ह्वै प्रवीनन की मति जाति जकी।
समुझौ कविता घनआनद की हिय-आँखिन नेह की पीर तकी।।''[5]

यह उद्धरण यह दिखाता है कि घनानंद के काव्य में प्रेम केवल भावनात्मक ही नहीं, बल्कि नैतिक और बौद्धिक स्तर पर भी अनुभव किया जाता है। घनानंद के काव्य में प्रेम का स्वरूप अत्यंत कोमल, संवेदनशील और सौंदर्यपूर्ण है। उनका प्रेम केवल बाहरी आकर्षण तक सीमित नहीं रहता, बल्कि हृदय, मन और इंद्रियों में गहराई से व्याप्त होता है। उनके काव्य में प्रेम भावों की सूक्ष्मता, संवेदनाओं की गहराई और रसिकता का अद्‌भुत मिश्रण दिखाई देता है। उदाहरण के रूप में उनकी पंक्ति पठनीय है —

''उर भौन में मौन को घूँघट कै दुरि बैठी बिराजति बात बनी।
मृदु मजु पदारथ भूषन सौ सु लसै हुलसै रस रूप मनी।।
रसना अली कान गली मधि ह्वै पधरावति लै चित्त सेज ठनी।
घनआनद बूझनि-अक बसै बिलसै रिझवार सुजान।।''[6]

इसमें प्रेम की अभिव्यक्ति अत्यंत नाजुक और सौंदर्यपूर्ण रूप में प्रस्तुत की गई है। 'उर भौन में मौन को घूँघट कै' में प्रेम की अंतरंगता और मन की गहराई स्पष्ट है, वहीं 'रसना अली कान गली मधि ह्वै पधरावति' इंद्रियों के माध्यम से प्रेम के भावों को अनुभव करने की क्षमता दिखाता है। घनानंद का प्रेम काव्य केवल हृदयस्पर्शी ही नहीं, बल्कि बौद्धिक और नैतिक दृष्टि से भी प्रभावशाली है। उनकी कविताएँ प्रेम की विविधताओं, उसकी गहराई और उसकी सुगंध को पाठक तक पहुँचाती हैं। इस प्रकार घनानंद का प्रेम काव्य व्यक्तिगत अनुभूति और सामाजिक सौंदर्य का सम्मिलित स्वरूप प्रस्तुत करता है। घनानंद के काव्य में प्रेम का स्वरूप अत्यंत कोमल, भावपूर्ण और सौंदर्यपूर्ण है। उनका प्रेम केवल बाहरी आकर्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि हृदय, मन और इंद्रियों में गहराई से व्याप्त होता है। उनकी कविताओं में प्रेम के भावों को इस तरह व्यक्त किया गया है कि पाठक उसे अनुभव के रूप में महसूस कर सके—

''लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाय भरी लसित ललित लोल चख तिरछानि मै।

छवि को सदन गोरो भाल बदन रूचिर रस निचुस्त मीठी मृदु मुसवयानि मैं।।''[7]

इस पंक्ति में प्रेम की अभिव्यक्ति अत्यंत नाजुक और संवेदनशील है। 'लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाय भरी' में प्रेम की शर्म और आत्मीयता स्पष्ट होती है, जबकि 'छवि को सदन गोरो भाल बदन रूचिर रस निचुस्त' में सौंदर्य और रसिकता के माध्यम से प्रेम की भावनाएँ प्रकट होती हैं। घनानंद के काव्य में प्रेम केवल व्यक्ति के मन तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उसकी अभिव्यक्ति सुंदरता, रस और संवेदना के माध्यम से पूर्ण रूप से पाठक तक पहुँचती है। उनके काव्य में प्रेम भाव का सौंदर्य, हृदयस्पर्शी संवेदना और बौद्धिक गहराई इस रूप में मिश्रित है कि यह आज भी रसिकों के मन को स्पर्श करता है। इस प्रकार घनानंद के प्रेम काव्य का स्वरूप उच्चतम सौंदर्य और संवेदनशीलता का सम्मिलित रूप प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष :

घनानंद के काव्य में प्रेम का स्वरूप अत्यंत सूक्ष्म, गहन और आत्मिक है। उनका प्रेम सांसारिक आकर्षण से ऊपर उठकर साधना का रूप ग्रहण करता है, जहाँ विरह, त्याग और अनन्यता प्रमुख तत्व बन जाते हैं। घनानंद के यहाँ प्रेम केवल संयोग की आकांक्षा नहीं, बल्कि विरह की तपन में परिष्कृत होने वाला भाव है। विरह उनके काव्य का केंद्रीय भाव है, जो प्रेम की तीव्रता, सच्चाई और निष्ठा को उजागर करता है। वे प्रेम को आत्मा की अनुभूति मानते हैं, जिसमें अहं का लोप और प्रिय के प्रति पूर्ण समर्पण दिखाई देता है। घनानंद की प्रेमानुभूति में लौकिक और अलौकिक का सुंदर समन्वय मिलता है।

एक ओर नायिका का मानवीय हृदय, पीड़ा और तड़प है तो दूसरी ओर उसी प्रेम में आध्यात्मिक ऊँचाई भी निहित है। उनका काव्य प्रेम को भोग नहीं, बल्कि योग के समान मानता है। भाषा की कोमलता, भावों की तीव्रता और अनुभूति की सच्चाई उनके प्रेम–काव्य को विशिष्ट बनाती है।

अत: कहा जा सकता है कि घनानंद का प्रेम एकांतिक, निष्काम और आत्मसमर्पित है। यही कारण है कि उनका काव्य रीतिकालीन सीमाओं से ऊपर उठकर प्रेम की शाश्वत और सार्वकालिक अभिव्यक्ति बन जाता है। ❑

संदर्भ सूची :

1. मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद. 'घनानंद कवित्त' वाराणसी : संजय बुक सेंटर (2002) पृ.क्र. 10
2. मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद. 'घनानंद कवित्त' वाराणसी : संजय बुक सेंटर (2002) पृ.क्र. 76
3. मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद. 'घनानंद कवित्त' वाराणसी : संजय बुक सेंटर (2002) पृ.क्र. 61
4. मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद. 'घनानंद कवित्त' वाराणसी : संजय बुक सेंटर (2002) पृ.क्र. 191
5. मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद. 'घनानंद कवित्त' वाराणसी : संजय बुक सेंटर (2002) पृ.क्र. 44
6. मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद. 'घनानंद कवित्त' वाराणसी : संजय बुक सेंटर (2002) पृ.क्र. 11
7. मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद. 'घनानंद कवित्त' वाराणसी : संजय बुक सेंटर (2002) पृ.क्र. 47

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और असमिया समाज

डॉ. राजश्री देवी

शोध-सार :

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव असमिया जाति और संस्कृति के शिल्पकार हैं। विभिन्न जाति-उपजातियों में विभाजित असमिया समाज को उन्होंने नई चिंतन, नये विचार और एकशरण नामधर्म से एकसूत्र में बाँधा। जीव-जगत, माया, सृष्टि आदि दार्शनिक विषयों पर उनका मत अत्यंत प्रभावशाली रहा। धर्म, साहित्य, संस्कृति, नाट्य, संगीत आदि सभी दिशाओं में उनका योगदान और व्यक्तित्व अति विशाल है, जो किसी भी तत्कालीन भारतीय संत को पीछे छोड़ सकता है।

बीज शब्द :

निराकार भक्ति, जीवन दृष्टि, असमिया संस्कृति, राष्ट्र की अवधारणा, सांस्कृतिक भारतीयता, एकशरण, समानता, एकरूपता, माया, अविद्या, परम मार्ग, अंकिया नाट, समाज संरचना।

मूल आलेख :

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव को श्रेष्ठ असमिया व्यक्ति के रूप में अभिहित किया जा सकता है। वे असमिया जाति के धर्मगुरु, कर्मगुरु, साहित्यगुरु, संस्कृतिगुरु हैं। वे असमिया जाति के पथ प्रदर्शक हैं। कुसंस्कार, अंधविश्वास, रूढ़ि आदि से भरे एक मध्ययुगीन और आदर्शहीन समाज को निराकार भक्ति तथा नाम-श्रवण व कीर्तन का रास्ता दिखाकर एकता की डोर से बांधने का महान कार्य उन्होंने किया।

उनकी महान साहित्यिक सृष्टि के चलते उनके समय को उनके ही नाम से 'शंकरी युग' कहा गया। उनका जो धर्म-दर्शन था उसने प्रेम, उदारता, करुणा, दया, क्षमा, अहिंसा के महान गुणों को समाज में स्थापित किया। ऊँच-नीच के भेदभाव से ऊपर उठकर समाज में समानता स्थापित किया। महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव का आदर्श मूलतः आध्यात्मिक है, किंतु फिर भी उन्होंने भौतिक चीजों से भी मना नहीं किया था। उन्होंने हृदय की पवित्रता की बात तो की ही थी, पर साथ ही आचरण की शुद्धता की भी बात की। उनकी संस्कृति का मूल मंत्र था- शुद्ध हृदय तथा शुद्ध कर्म। शुद्ध चिंता का अर्थ इंसान का समग्र मानसिक जगत और यह अभिव्यक्त होता है शुद्ध कर्म के माध्यम से। उनका यह आदर्श और चिंतन व्यक्ति तथा समाज की आध्यात्मिकता को भी प्रभावित कर उसे विकसित करता है, समाज तथा वातावरण को भी परिष्कृत करता है।

विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग
संदिकै बालिका महाविद्यालय,
गुवाहाटी-781001
6002120386
rajashreedevi166@gmail.com

मध्ययुग में ऊँच-नीच, छुआछूत, जाति विभाजन, बाह्याडंबर, धार्मिक अंधविश्वास, कुसंस्कार आदि के विरोध स्वरूप पहली बार वैष्णव तथा निराकार भक्ति आंदोलन की शुरुआत दक्षिण भारत के अलवार संतों के द्वारा की गई। यह भक्ति आंदोलन फिर पश्चिम भारत पहुँची और महाराष्ट्र में तुकाराम आदि संत

हुए। उत्तर भारत में इसकी अगुवाई सूरदास, तुलसीदास आदि संतों ने की और पूर्वोत्तर भारत में श्रीमंत शंकरदेव ने इसका नेतृत्व किया। उन्होंने इस भक्ति आंदोलन को आसमान की ऊँचाइयों तक पहुँचाया।

गुरु माधव कंदलीजी के पास शास्त्र अध्ययन करते हुए श्रीमंत शंकरदेवजी ने सभी वेद, पुराण, उपनिषद, कोश, काव्य, व्याकरण, संहिता, शास्त्र आदि का अध्ययन किया। इन सबको पढ़ते हुए जीव, जगत आदि के संबंध में उन्हें नए अनुभव हुए और यही उनके आगे के जीवन तथा आचरण व आदर्श की पृष्ठभूमि बनी।

असमिया साहित्यकार नगेन सइकिया के अनुसार– *''उन्होंने असमिया लोगों को विश्व सृष्टि और सृष्टि करने वाले की अवधारणा दी और साथ ही विशिष्ट जीवन दृष्टि भी दी और साथ ही आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक और मानवीय मूल्य और गहरे सौंदर्यबोध व कला का बोध। इसीलिए उनके धर्म ने केवल व्यक्तिगत जीवन यापन का आधार ही नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन यापन का आधार भी दिया। असमिया लोगों के अंतर्जीवन और बहिर्जीवन में सामूहिक परिवर्तन कर उन्होंने अकेले ही एक नवजागरण की सृष्टि की।''*[1]

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के समय पूरे भारतवर्ष के विभिन्न प्रांतों में अनेक संत हुए। भिन्न-भिन्न समय में अनेक दार्शनिक, समाज सुधारक, शास्त्रविद्वान, पंडित भी पृथ्वी पर हुए। पर पहले उल्लेखित सभी गुणों को एक साथ धारण करने वाले केवल श्रीमंत शंकरदेव ही हुए। किन्हीं असमिया लोगों के वे सीधे-सीधे धर्मगुरु नहीं भी हैं तो भी संस्कृति के गुरु तो हैं ही। उन्हीं के द्वारा प्रतिपादित विचार, चिंतन, जीवन धारण की प्रक्रिया ने ही अब 'असमिया संस्कृति' का रूप धारण कर लिया है।

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव की भारतीयता की अवधारणा :

श्रीमंत शंकरदेव अन्य समसामयिक भारतीय संतों से अलग इस अर्थ में हैं कि अन्य संतों की तुलना में उनका व्यक्तित्व अधिक विशाल था। यद्यपि आज तक अज्ञात कारणों से शंकरदेव का नाम प्रदेश के आगे निकलकर बाहर अधिक प्रतिष्ठित नहीं हो पाया और उन्हें केवल एक क्षेत्र विशेष में ही सीमित रहना पड़ा। पर उनके मन में भारत राष्ट्र की अवधारणा स्पष्ट थी। केवल असमिया जाति ही नहीं, आज से पाँच-छह सौ साल पहले भारत राष्ट्र की अवधारणा को उन्होंने अपनी रचनाओं में स्थापित किया। उन्होंने कहा–*''दुर्लभ मनुष्य जन्म भारतत पाइलो।''*[2] अर्थात भारतवर्ष में उन्हें दुर्लभ मनुष्य जीवन प्राप्त हुआ। दुःख की बात यह है कि असम तथा पूर्वोत्तर का इतिहास तथाकथित भारतीय मूल भूखंड के इतिहास से बाहर ही रहा। इसे जनजातीय लोगों का निवास स्थान ही हमेशा माना गया। इसमें संदेह नहीं है कि जनजातीय लोगों की अधिकता है, पर भाषा, सांस्कृतिक एकसूत्रता और एकरूपता की दृष्टि से असम प्राचीन काल से ही पूरे राष्ट्र के साथ जुड़ा रहा। इसका प्रतिपादन और विस्तृत रूप श्रीमंत शंकरदेव तथा माधवदेव आदि अन्य मध्यकालीन संतों की रचनाओं में भी देखने को मिलता है।

श्रीमंत शंकरदेव की भारतीयता की अवधारणा कोई राजनैतिक भारतीयता नहीं, बल्कि सांस्कृतिक भारतीयता है। दरअसल, सच कहा जाए तो हमारा भारत नामक राष्ट्र अनेक भाषा, परिधान, खान-पान, उत्सव-त्योहारों के होते हुए भी अनादि काल से इस सांस्कृतिक एकता के चलते ही जुड़ा हुआ है। इसका आंतरिक, हृदयवात मूल्य कहीं-न-कहीं एक है। श्रीमंत शंकरदेव ने अपनी रचनाओं में जिन लोगों को संबोधित किया था, वे तो असम (आहोम शब्द के पर्यायवाची), कामरूप और कूचबिहार में विभाजित थे। तभी उनके संबोधन में हमेशा नरलोग, समाज के लोग आदि शब्द ही हमें देखने और सुनने को मिलते हैं।

श्रीमंत शंकरदेव के धर्म की मूल पृष्ठभूमि :

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव के पंथ की मूल बात है एक शरण। अर्थात एक ही ईश्वर अथवा परम ब्रह्म के चरण में शरण लेना।

सभी प्राचीन पारंपरिक आर्षग्रंथों के अध्ययन के बाद श्रीमंत शंकरदेव ने उस समय अंधविश्वास, रूढ़ि, बाह्याडंबरों से जकड़े मध्यकालीन समय के समाज को ईश्वर की ओर उन्मुख करने के लिए समाज को एक शृंखलित और व्यवस्थित रूप देने के लिये अपने ही तरीके का दर्शन अपनाया। इसमें संदेह नहीं कि उनके पूर्ववर्ती प्रचलित विचारधाराओं का भी उन पर प्रभाव रहा, किंतु यह भी सच है कि उनका विचार और उनकी दृष्टि अपने युग, लोग और समाज के अनुकूल होने के

कारण इसका अपना एक मौलिक ढाँचा भी रहा।

श्रीमंत शंकरदेव और योग :

शिक्षा समाप्त कर घर लौटने के बाद श्रीमंत शंकरदेव ने योग की भी शिक्षा ली। साथ ही उसका अभ्यास भी किया। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि – योग के इन सातों अंगों का सफल अभ्यास करने में भी वे आगे थे। उनके द्वारा रचित भागवत में सांख्य और योग का प्रभाव हमें देखने को मिलता है। दोनों ही दर्शन भक्ति के रूप में प्रतिफलित हुए हैं। मूल सांख्य दर्शन से यह अलग है, जो कि ईश्वरवादी और भरिक्तवादी है। कहीं-कहीं मायावादी अद्वैतवाद के साथ सांख्य को मिलाकर भी प्रस्तुत किया गया है। 'भक्ति-रत्नाकर' ग्रंथ में श्रीमंत शंकरदेवजी ने पतंजलि योग के एक अंश को यम-नियम नाम से अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है। इसके ज्ञान को भक्ति के सहायक के रूप में स्थापित किया गया है। नाड़ी, षट्चक्र, कुंडलिनी आदि बातों का यहाँ स्पष्ट उल्लेख है।

श्रीमंत शंकरदेव पर उपनिषद का प्रभाव :

श्रीमंत शंकरदेवजी पर उपनिषद का प्रभाव भी देखने को मिलता है। ऐसे आर्षग्रंथों का अध्ययन उन्होंने माधव कंदली के गुरु गृह में किया था। उस समय के ऊँच-नीच विचार वाले समाज में *''सकल प्राणीक देखिबाहा आत्मसम''*[3] (सभी प्राणियों को समान देखना) अथवा ''कुकुर चंडाल गदभरो आत्माराम'' (कुत्ता, चंडाल, गधा सभी की आत्मा समान व राम समान) आदि पंक्तियों के माध्यम से समानता का पाठ पढ़ाने में उपनिषद का प्रभाव ही विद्यमान था।

सृष्टि के कारण के संबंध में श्रीमंत शंकरदेव की अवधारणा :

उनके साहित्य के माध्यम से हमें इस सृष्टि के कारण के संबंध में उनकी अवधारणा का भी पता चलता है। उन्होंने अपनी रचना 'कीर्तन घोषा' में 'प्रथमे प्रणामो ब्रह्मरूपी सनातन' पंक्ति के द्वारा परम ब्रह्म को सृष्टि का कारण बताया है। ईशोपनिषद में ब्रह्म और ईश्वर की एकरूपता की जो बात कही गयी है श्रीमंत शंकरदेव के *''ईशस्वरूपे हरि सबघटे बैठह जैसन गगन बियापि''*[4] वाले वक्तव्य का आशय भी वही है। उन्होंने पहले स्वयं ज्ञान की यात्रा की। उसके बाद ही उस ज्ञान से समाज के दूसरे लोगों के लिए भक्ति मार्ग का रास्ता खोला।

श्रीमंत शंकरदेव के जीव और जगत संबंधी विचार :

श्रीमंत शंकरदेव की रचनाओं में सृष्टि से संबंधित जो दर्शन है, उसमें यह स्पष्ट किया गया है कि ईश्वर से ही जीव और जगत की सृष्टि हुई है। उन्हीं से सबकी सृष्टि और अंत होने के बाद उन्हीं में सब कुछ विलय होने की बात कही गई है –*''तुमि कार्यकारण समस्ते चराचर।*
सुवर्ण कुंडले येन नहि भिन्नतर॥''[5]

जीव और जगत को माया समान कहा गया है। परम ईश्वर के अलावा और कोई चारा नहीं है। माया के आवरण से सत्य ढँका हुआ होता है और हमें असत्य भी सत्य लगने लगता है। जगत को मिथ्या कहा गया है।

ईश्वर से संबंधित विचार :

श्रीमंत शंकरदेव की रचनाओं में ईश्वर से संबंधित अपना मत भी देखने को मिलता है। कहा गया है कि सृष्टि के प्रारंभ में, बीच में और अंत में भी ईश्वर स्थित है। सृष्टि के प्रारंभ और अंत में उनके अलावा और कोई नहीं रह जाएगा। बीच में जो विराट जीव-जगत देखने को मिलता है ये सब असत्य हैं। ये सब केवल माया के फलस्वरूप हैं। ईश्वर और जीव दोनों के चरित्र अलग हैं। एक मुक्त है और दूसरा बंधा हुआ है। प्रकृति को वश में कर विश्व सृष्टि करने वाला ईश्वर है। ईश्वर को माया का मालिक सच्चिदानंद कहा गया है। उन्हें नित्यमुक्त, शुद्ध, सर्वज्ञ भी संबोधित किया गया है। उनकी रचना भागवत में यह कहा गया है कि सृष्टि के प्रारंभ में सारे चराचर जीव उन्हीं में सूक्ष्म रूप में समाए हुए होते हैं। अविद्या के फलस्वरूप ही दोनों द्वैत रूप में प्रकट होते हैं। एक तरफ जीव और जगत है और दूसरी ओर ब्रह्म और ईश्वर हैं। दोनों में आग और चिंगारी की तरह संबंध है। माया के बंधन के कारण ही दोनों बाहर से अलग दिखते हैं।

श्रीमंत शंकरदेव पर वेदांत दर्शन का प्रभाव :

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव पर वेदांत दर्शन का भी प्रभाव देखने को मिलता है। जब उन्होंने यह पहचाना कि कार्य, कारण सभी के मूल में केवल मात्र ब्रह्म ही है, तब उन्होंने स्वयं कहा– *''वेदांतरो जाना एहिसे तत्व।''*[6] अर्थात वेदांत का भी यही सार तत्व है। वेदांत का जो ब्रह्म है, ब्रह्म का जो स्वरूप है श्रीमंत शंकरदेव के अध्यात्म विचार में भी ब्रह्म का वही रूप है।

इस प्रकार श्रीमंत शंकरदेव द्वारा प्रचारित धर्म तथा उनकी रचनाओं में अनेक पूर्ववर्ती चिंतन, विचार आदि

का प्रभाव रहा। पर उन्होंने अपने समाज और उसकी उपयोगिता व प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए अपनी मौलिकता को भी प्रस्तुत किया। उनसे बहुत पहले रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैतवाद, निम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैतवाद, मध्वाचार्य ने द्वैतवाद, वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैतवाद आदि मतों की स्थापना हो चुकी थी। पर इन सबसे ब्रह्मसूत्र के टीकाकारों में से किसी के साथ संत श्रीमंत शंकरदेव का हू-ब-हू मेल नहीं देखा जाता। शंकराचार्य के निराकार ब्रह्म और मायावाद से भी श्रीमंत शंकरदेव का मत अलग दिखाई पड़ता है। समकालीन अन्य वैष्णव संप्रदायों की तरह उन्होंने एक अलग वेदांत सूत्र भाष्य की भी रचना नहीं की। भागवत शास्त्र को ही सभी का सार स्वरूप माना।

सामान्य जनता की आध्यात्मिक संतुष्टि और सामाजिक उन्नति के लक्ष्य को आगे रखते हुए उन्होंने अपने पंथ/संप्रदाय का प्रवर्तन किया था। चूँकि उन्हें सामान्य लोगों को समझाना था तो कहीं भी लगातार दार्शनिक चर्चा अथवा विमर्श उनकी रचनाओं में नहीं देखा जाता। भक्ति को ही मुक्ति के परम मार्ग के रूप में उन्होंने स्थापित किया। नवभक्तियों में से भी निर्गुण कृष्ण के गुणों के श्रवण-कीर्तन को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया है। सच्चिदानंद ब्रह्मस्वरूप नारायण के अलावा बाकी सब कुछ माया के कारण गहरी नींद से जैसे जड़ बना खड़ा है। माना गया है कि जैसे ही नींद टूटेगी किसी का अलग रूप, सत्ता नहीं रह जाएगा, सब उन्हीं में समा जाएगा। माया के गुण के सृष्ट अवतारवाद को भी यहाँ मान लिया गया है। इसीलिए राम, कृष्ण, हरि आदि के नामों को भी यहाँ समाहित कर लिया गया है।

विभिन्न जाति-जनजातियों में विभाजित असमिया समाज को आज से पाँच-छह सौ साल पहले एक चिंतन, एक दर्शन, एक आध्यात्मिक दृष्टि से एक करना आसान काम नहीं था। *संत महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने अपनी विलक्षण प्रतिभा से इस असंभव कार्य को भी संभव किया। गीतों के द्वारा, पदों के द्वारा, नए प्रकार के नाटकों के द्वारा, जिसे 'अंकीया नाट'*[7] कहा गया, नृत्य के द्वारा, साहित्यिक रचनाओं के द्वारा यहाँ तक कि नए पारंपरिक वाद्यों के द्वारा सभी तरफों से उन्होंने असमिया समाज को एक नई पहचान दी। असमिया लोगों का उपासना गृह, जिसे 'नामघर' कहा जाता है, वहाँ केवल धर्म, दर्शन, अध्यात्म की चर्चा ही नहीं होती बल्कि संस्कृति की भी चर्चा होती है। साथ ही असमिया समाज संरचना की पृष्ठभूमि भी उनकी ही देन है, जिसके कारण समाज व्यवस्थित रूप से चलता है।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि जिन महान पुरुष की दूरदर्शिता पर आज असमिया जाति टिकी हुई है, असमिया समाज की स्वकीय पहचान है, वे श्रीमंत शंकरदेव ही हैं। असमिया लोगों के हर सामाजिक, धार्मिक कार्यशैली में उनके द्वारा निर्देशित दिशा का ही लोग अनुसरण करते हैं, चाहे वह छोटे-बड़े जिस रूप में ही क्यों न हो। ऐसे एक महान व्यक्ति केवल एक प्रांत अथवा प्रदेश विशेष ही नहीं, बल्कि और विस्तृत परिसर के समाज के लिए आदर्शस्वरूप है। उनकी महानता का, अपूर्व चिंतन व विचार शैली का लाभ न उठा पाना स्वयं के लिये ही नुकसानदेह है। ❑

संदर्भ :

1. सइकिया नगेन; विषय : शंकरदेव; पृ. सं. – 3

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. गोस्वामी डॉ. नारायण चंद्र; श्रीमंत शंकरदेव साहित्यर मौलिकता विचार (द्वितीय खंड); प्रकाशक – प्रभात चंद्र दास; प्रथम संस्करण; 2010; गुवाहाटी
2. नेओग महेश्वर; श्रीश्री शंकरदेव; प्रकाशक – अध्यापक महेश्वर नेओग स्मारक न्यास परिषद, चंद्र प्रकाश; नवम संस्करण – 2016; गुवाहाटी।
3. बेजबरुवा लक्ष्मीनाथ; श्री श्री शंकरदेव आरु श्री श्री माधवदेव; बनलता प्रकाशन; द्वितीय संस्करण, 2009, गुवाहाटी
4. भराली लोकनाथ; महापुरुषसकलर मनन आरु मंथन; भास्कर प्रिंटर्स; प्रथम संस्करण, 2007; गुवाहाटी।
5. सइकिया नगेन; विषय : शंकरदेव; किरण प्रकाशन, प्रथम संस्करण – 2008; धेमाजी।
6. हजारिका दीपक; युगनायक श्रीमंत शंकरदेव; बनलता प्रकाशन; प्रथम संस्करण – 2013; गुवाहाटी।
7. हजारिका डॉ. प्रदीप और बोरा इंदिरा सइकिया; महापुरुष शंकरदेव-माधवदेवव अंकीया नाट आरु झुमुरा; श्रीमंत शंकरदेव संघ; प्रथम संस्करण; 2013; नगांव।

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

सरहदें लाँघती नारी गाथा : रेत समाधि

डॉ. समला देवी

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दौलत राम महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली-07
9953664611
drsamladu2016@gmail.com

गीतंजलि श्री को 'रेत समाधि' उपन्यास के लिए अंतरराष्ट्रीय बुकर पुरस्कार से सम्मनित किया जा चुका है। इस उपन्यास का अंग्रेजी अनुवाद डेजी रॉकवेल ने 'टॉम्ब ऑफ सैंड' के नाम से किया है। उपन्यास के केंद्र में दो महिलाएँ हैं। संपूर्ण कथा इन्हीं महिलाओं के इर्द-गिर्द घूमती नजर आती है। मुख्य पात्र 80 वर्षीय अम्मा उर्फ चंद्रप्रभा देवी उर्फ चंदा है। अम्मा आदि से अंत तक उपन्यास में बनी हुई हैं। लेखिका ने उपन्यास की प्रारंभिक पंक्तियों में ही स्पष्ट करते हुए जो लिखा है, वो पूरी कहानी की पृष्ठभूमि-सा दिखाई पड़ता है। लेखिका उपन्यास का प्रारंभ करते हुए लिखती हैं - *''एक कहानी अपने आप को कहेगी। मुकम्मल कहानी होगी और अधूरी भी, जैसा कहानियों का चलन है। दिलचस्प कहानी है। उसमें सरहद है और औरतें हैं, जो आती हैं, जाती हैं, आर-पार। औरत और सरहद का साथ हो तो खुद-ब-खुद कहानी बन जाती है। बल्कि औरत भर भी। कहानी है। सुगबगी से भरी। फिर जो हवा चलती है, उसमें कहानी उड़ती है। जो घास उगती है, हवा की दिशा में देह को उकसाती, उसमें भी, और डूबता सूरज भी कहानी के ढेरों कंदील जलाकर बादलों पर तंग देता है और ये सब गाथा में जुड़ते जाते हैं। रह आगे यों बढ़ती है, दायें-बायें होती, घुमावती बनी, जैसे होश नहीं की कहाँ रुके, और सब कुछ और कुछ भी किस्से सुनने लग पड़ते हैं, ज्वालामुखी के अंतर्घट से निकलता, चुप चुप भरता, भाप और अंगारों और धुएँ से फूटता अतीत। इस किस्से में दो औरतें थीं। उन औरों के अलावा जो आईं और चली गईं, या वे जो बराबर आती जाती रहीं, और वे भी जो लगभग लगातार रहीं पर बहुत अहम नहीं थीं और उनका तो अभी जिक्र ही क्या जो औरतें नहीं थीं। अभी ऐसा की दो औरतें अहम थीं और उनमें से एक छोटी होती गयी और एक बड़ी।''*[1]

यह उपन्यास मनोवैज्ञानि प्रक्रिया की ऐसी कहनी है, जिसमें गुजरा हुआ समय मनुष्य के मन में बना रहता है, दबाए नहीं दबता और वह आगे चलकर अचानक उबालकर बाहर आता है तथा बहुत कुछ अस्त-व्यस्त कर देता है। अम्मा एक साधारण स्त्री है, लेकिन वह साधारण से असाधारण कैसे बन जाती है और सारी सरहदें पार कर देती है। लेखिका ने चेतन, अवचेतन व जड़ पत्र भी रहस्यमय रूप में प्रस्तुत किए हैं तथा नई और पुरानी दोनों मान्यताओं को उपन्यास में दर्शाया गया है।

'रेत समाधि' उपन्यास की कथा का चित्रण तीन भागों में किया गया है – पीठ, धूप और सरहद। तीनों भाग अपने शीर्षक के अनुसार उपन्यास की पूरी कथा का बखान स्वयं करते हैं। 'पीठ' भाग जीवन के प्रति उदासीनता को प्रकट करता है, जिसमें पति की मृत्यु हो जाने के बाद अम्मा परंपरानुसार विधवा होकर धार्मिक नहीं होती, अपितु अपने कमरे में पड़ी रहती है। अम्मा ने परिवार की ओर से पीठ मोड़ ली है, जो भी उन्हें बुलाने आता उठो अम्मा, उसकी ओर पीठ फेरकर दीवार की ओर मुँह कर लेती और दीवार में अंदर ही अंदर घुसने का प्रयास कर परिवार के लिए पीठ फेर खुद दीवार बन जाती। पर परिवार को अम्मा से हमदर्दी है। सबको लगता है पापा के जाने के बाद अम्मा के लिए जीने का कोई मकसद नहीं बचा– *''पापा थे तो हरदम उनकी देख रेख में, फुर्तीली मुस्तैद, लाख थकान हो तो भी। चूर चूर होते जाने के चरे में व्यस्त, जीवंत।''*[2] संसार के समस्त माया–मोह से स्वयं को विरक्त कर मानो उस दीवार में प्रविष्ठ हो जाने को आतुर हो। *''कमरे की तरफ पदचाप आती और वह पीठ कर लेती, दीवार में सटने लगती। मारती जाती, आँख नाक बंद, कान ठप, मुँह सिला, मन सुन्न, अरमान नदारत, पखेरू उड़ उड़।''*[3] अम्मा यह ठान चुकी थी कि वो अब नहीं उठेगी जैसे उनका मोह भंग हो गया हो, वो मृत प्राय: हो गई, किंतु परिवार के सदस्य उन्हें जिवाए रखना चाहते हैं बाहर धूप खिली है, उठ जाओ, तो अम्मा की 'नई' की ध्वनि सुनाई देती है– *''नहीं नहीं मैं नहीं उठूँगी। अब तो मैं नहीं उठूँगी। अब्ब तो मैं नहीं उठूँगी। अब्ब तो मैं न ही उठूँगी। अब मई नहीं उठूँगी। अब तो मई नहीं ही ही उठूँगी।''*[4]

एक दिन अचानक अम्मा उठती है और बिना किसी को बताए एक छड़ी के सहारे घर से बाहर निकल जाती है। पूरा परिवार परेशान होता है कि अम्मा आखिर कहाँ चली गई। काफी खोजबीन के बाद अम्मा एक थाने में मिलती है। उसके बाद अम्मा अपनी बेटी के पास जाना चाहती है। परिवार वाले भी अम्मा को बेटी के पास भेज देते हैं, ताकि कुछ अलग हो जाएगा, इनका मन भी हल्का हो जाएगा।

'धूप' भाग में अम्मा बेटी के घर पहुँचती है, जो स्व्च्छंद है, उन्मुक्त है, किसी भी बंधन, परंपरा से बँधी नहीं है। केके के साथ अर्थात अपने प्रेमी के साथ सहजीवन में रहती है। लेखिका लिखती हैं –*''बेटी के घर का दरवाजा खोलते ही लंबे खुले हॉल के पार बैल्कनी से भीतर दाखिल होती ग्रीनबेल्ट थी और उस पर नीली छत्रछाया। बंद आँखों पे सुकून खेल जाए। या बंद आँखें खुल जाएँ।...न, ये वो वाला दरवाजा नहीं। यहाँ तो बेटी की बनाई दुनिया खुलती।''*[5]

बेटी के पास पहुँचते ही अम्मा के जीवन में जीने की इच्छा जाग्रत हो उठती है। माँ धीरे–धीरे सही होने लगती है –*''धूप के साथ माँ उठने लगी और पहले आँखों से, फिर पूरे से धूप ही के साथ घर में फैलने लगी।''*[6] जैसे–जैसे बेटी देखभाल करती जाती, अम्मा ठीक होती जाती। माँ–सा देखभाल करने में बेटी दिनोंदिन बड़ी होती जाती। बेटी महसूस करती है कि वह दिनोंदिन बड़ी होकर माँ की जगह लेती जा रही है और अम्मा छोटी होती जा रही है –*''अम्मा कितनी छोटी है। हमारी कमर से बालिश्त भर ऊपर ये कब हुआ ? लिहाफ के भीतर वह अपने को कतरती रही क्या ?''*[7] छोटी बड़ी हो जाती है और बड़ी छोटी। बेटी माँ बन जाती है आर माँ बेटी। *''बेटी ने माँ बनकर माँ को बेटी बनाया और उसके माथे पर हाथ फेरा। आ गयी यहाँ, अब न जाने दूँगी। कैसी कमजोर हो गई है, मैं न होती तो गिर ही पड़ती।...इतने सारे लोग देखने वाले और बेचारी बेसहारा को न देख पाए...कब से नहाई न होगी। सो लेने दो... ''*[8]

बेटी ने माँ की इतनी सेवा की कि चारपाई पर पड़ी माँ दौड़ने लगती है। बेटी माँ का ख़याल रखते रखते अपनी निजी जिंदगी भूल जाती है, अपने प्रेमी केके से भी दूर हो जाती है।

बेटी के घर में माँ पूरी तरह स्वतंत्र है। कोई नियम–कानून नहीं, कोई रोकने–टोकने वाला नहीं। बैल्कनी में बैठकर चाय पीती है, उस बैल्कनी में धूप भी आती है। काली चिड़िया उनसे मिलने आती है। जैसे–जैसे बेटी देखभाल करती जाती है, अम्मा ठीक होती जाती है।

लेखिका ने माँ को बेटी के साथ खुश रहते हुए दिखाया है–*''कुछ कहना है यह नया जमाना है। यानी औरतों के लिए चीजें बदली हैं। औरत अब उस भूमिका में नहीं है, जिसमें थी। वो बाहर निकल पड़ी है।''*[9]

रोजी बुआ के संपर्क में आकर अपने पहनने–ओढ़ने से लेकर दैनिक दिनचर्या में बदलाव आ जाता है। रोजी या रजा टेलर एकमात्र ऐसा चरित्र है, जो माँ को उसके अतीत से जोड़ता है। रोजी बुआ के साथ अम्मा का आत्मीयता का रिश्ता है। रोजी से बात करके माँ ऊर्जा से भर उठती है। उसमें नई हसरतें जागने लगती हैं। बेटी की समझ में नहीं आता कि क्या हो रहा है, वह थोड़ी घबराती है, लेकिन अम्मा आत्मविश्वास की जीवित मूर्ति बनती जाती है। इसलिए बेटी कुछ नहीं कहती। एक दिन रोजी की निर्मम हत्या के बाद अम्मा को गहरा सदमा लगता है और वह बहुत दुखी हो जाती है।

कुछ समय बाद बेटा और बहू अम्मा को घर ले जाने के लिए आते हैं– *''हो गई सैर–टहल। देख लिया माँ ने अजब रंग–ढंग। अब लौटें आराम में।...जो हमारे यहाँ उन्हें मिलता है वह और कही कहाँ, आना तो उन्हें यहाँ ही है।''*[10] इतने दिनों से बेटी के घर है लोग क्या कहेंगे। अम्मा इच्छा के विपरीत जाने को तैयार हो जाती है। बेटी सोचती है माँ जैसी बहुत सारी स्त्रियाँ आखिरकार मरने के लिए बेटे के घर क्यों जाती हैं? चाहे उन्हें वहाँ अच्छा लगे या न लगे। बेटे के घर जाकर अम्मा अधिक दिनों तक वहाँ भी नहीं टिक पाती है। अस्सी साल की अम्मा अपने अंतिम समय में अपने मन का करना चाहती है, अपनी इच्छानुसार जिंदगी जीना चाहती है। पाकिस्तान जाना चाहती है।

उपन्यास का तीसरा और महत्वपूर्ण हिस्सा है 'हद सरहद'। माँ और बेटी बिना वीजा के सरहद पार करती हैं। इस भाग में चार कहानियों के माध्यम से उपन्यास के उद्देश्य की ओर निर्देश करती है। यह कहानियाँ औरत कहती जाती है और उसकी छड़ी की मूठ से निकलने वाली तितली सुनती जाती है। औरत सपाट स्वर में सुनती है। तितली सुनती है, जैसे कान नहीं जान की जरूरत है सुनने को और बीच–बीच में फर–फर कर जाती है।

पहली कहानी–'कहानियाँ' शीर्षक से है, जिसमें ढेरों लड़कियों को एक साथ ट्रक में भरकर दो पट्टाधारी आदमी ले जा रहे हैं। उन्हें ट्रक में इस तरह से भरा जाता है, जैसे कि वो भेड़–बकरियाँ हों। कई दिनों तक गंदे बदबूदार कब्रिस्तान, तो कभी कोठरी में बंद करके रखा जाता है। उनमें एक लड़की, जो अपने प्रेमी अनवर को याद करती है, उसके साथ अजयबघार में देखी एक बूढ़े बुद्ध की मूर्ति, जहाँ उसे कैद रखा जाता है, उस कमरे में दिख जाती है। उस मूर्ति को वह अपने अनवर की निशानी मानती है– *''उसने मूर्ति उठा ली। सीने से चिपका ली। पर मूर्ति थामे। हम दोनों का क्रियाकर्म साथ। अब मैं जहाँ वहाँ ये। ये कोई साइन। ये अनवर। ये मेरे दिल का सुकून। ये मेरे दयालु पत्थर दिल।''*[11]

दूसरी कहानी–'मूर्ति और वो लड़की' है। इस भाग में जिस लड़की ने अपने पास मूर्ति रखी थी, उसके हाथ से थार में भागते हुए वह मूर्ति छूट जाती है। भागो–भागो का शोर होने लगा, क्योंकि इन पट्टधारों को पकड़ने दूर ऊँटों का काफिला आ रहा था। पट्टेदार लड़कियों के हाथ में एक–एक सीटी बाँटने लगे कि इन्हें बजाकर एक–दूसरे के साथ हो जाना। लड़कियों की समझ में यह नहीं आ रहा था कि इन लोगों से भागें कि उनसे, जो सामने से आ रहे थे। बस सब लड़कियाँ भागने लगती हैं। इनमें ग्यारह–बारह साल की लड़कियाँ भी थीं। उस वक्त किस तरह मासूम लड़कियों के साथ अन्याय व अत्याचार किए गए। इसका चिट्ठा लेखिका ने खोलकर रख दिया है। वह लड़की सोचती भी है कि हम ही यह सब क्यों बर्दाश्त कर रहे हैं, क्योंकि हम लड़कियाँ हैं? जिनके साथ भेड़–बकरियों से भी ज्यादा बुरा व्यवहार किया जाता है। उस भयावह रात में छोटी बच्ची के लिए फरिश्ता बनी अम्मा के दामन को थाम आजीवन वचन लेने जैसा था– *''बाजी, छोटी लड़की सिसकी। जो उसका हाथ पकड़ी थी। जैसे कभी नहीं छोड़ेगी। दूसरे हाथ में मेरी मूर्ति बच्ची को खींचती हुई माँ रेत पर भागी। वो बच्ची रोजी थी।''*[12]

तीसरी कहानी–'रेत समंदर' में औरत तितली के सामने अभिव्यक्त करती है और उसके गुजरे हुए दर्द के

घाव फिर से हरे हो जाते हैं। इतनी तेज तूफानी हवा चल रही थी, जैसे समुद्र के जहाज के ऊपर चढ़े हुए लोग कभी इधर कभी उधर फिसल जाएँ। औरत के हाथ में मूर्ति और दूसरा हाथ थामे छोटी बच्ची रोजी। पानी नहीं, किंतु रेत के समुंदर में कूदे। सबके हाथ में सीटियाँ और सभी लड़कियाँ सीटियाँ बजा-बजाकर एक-दूसरे के होने का अंदाजा लगाने लगीं। साथ होने का संकेत देने लगीं रेत के बवंडर में उन्हें तैरना नहीं आता था- *''साँस फूल रही थी। रेत फेफड़ों को काट रही थी। दम घुट रहा था। हम रेत रेत। हम डूब डूब। नाक में रेत मुँह में रेत। आँख में कान में रेत। साँस रोक के तैरीं। मुँह फक से खुल गया। साँस टूटती हुई रेत, रेत भरती हुई, गला रेतता हुआ, साँस चोटों की तरह निकल पड़ती।''*[13] इस तरह उन्होंने देखा कि उनके आस-पास और भी कई लड़कियाँ हैं। उन्होंने सीटी बजाई, सामने से भी सीटियों की आवाजें आने लगीं। फिर से धीमी पड़ती फिर से बजती, अपने होने का एहसास दिलाने। लेकिन उस रात समुंदर में सारी सीटियाँ हर साँस पर डूबने लगती हैं - *''धीरे धीरे उनके तन जवाब देते गए। एक-एक करके वे डूबने लगीं। एक-एक करके सीटी बंद होने लगी। एक-एक करके साये डूब गए, सीटी बंद हो गई। चुप।''*[14]

चौथी कहानी-'डूबों का होना', जब उन्हें होश आया तो माँ और रोजी एक कँटीले झाड़ में उलझी पड़ी थीं। चारों तरफ रेत ही रेत थी। सूरज डूब गया था, कहाँ जाएँ? क्या करें? उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था, कहाँ से आईं हैं, कहाँ जा रहीं हैं-उन्हें कुछ नहीं पता था। उन्होंने फिर से सीटी बजाई तो उसके बदले में सामने से आवाजें आने लगीं। जिस दिशा से आवाजें आतीं माँ और बच्ची उसी दिशा में दौड़ जातीं। रेत मुँह में और फेफड़ों में भर गई थी। फिर भी दोनों बारी-बारी से सीटी बजा रहीं थीं। कितने दिनों तक भूखे-प्यासे दोनों थार अकेली चली जा रहीं थीं। छोटी लड़की ने माँ से पूछा -*''एक बार कोई घास चूसी। बच्ची के सफेद पपड़ाये होंठ। फिर कोई ताकत नहीं बची। बच्ची ने चुप स्वर में बाजी से पूछा- बाजी हमने क्या गलत किया?''*[15]

बच्ची के प्रश्न के उत्तर में माँ बच्ची को कहानी सुनाने लगी और कहानी सुनाते सुनाते माँ सो गई। जब जगी तो छावनी के अस्पताल में थी। साइड में मूर्ति रखी थी। शरीर पूरी तरह घायल था। बाद में पता चला कि सरहदें खिंच गई हैं और उसे कोई खतरा नहीं है, वो बच गई है।

माँ और बेटी सरहद पार बिना वीजा के चली जाती हैं। ऊपर से वहाँ के म्यूजियम की मूर्ति, जो की सरकारी संपत्ति है-माँ लेकर घूमती है। बुजुर्ग माँ की कम-से-कम एक इच्छा तो मैं पूरी करवा सकती हूँ यह सोचकर बेटी माँ को लेकर माँ को बिना वीजा के सरहद पर ले आई थी। लेकिन माँ की अंट-संट बातें सुनकर बेटी हतप्रभ है। बेटी के ऊपर आश्चर्य का पहाड़ टूट पड़ता है, जब अम्मा इंटरेरोगेटर को बड़े आत्मविश्वास के साथ बताती है - *''वो नाम पूछते हैं कहती है चंदा। वो शहर पूछते हैं तो मिट्टी उठाती है।... बेटी त्रस्त जाँच अधिकारी पस्त। माँ मस्त।''*[16]

बेटी अम्मा को समझाती है कि हम अपनी जान बचाते हैं और वापस चलते है। अम्मा कहती है वापस ही तो आई हूँ। अपने प्रेमी अनवर मिलने आई हूँ। अस्सी वर्ष की वृद्ध माँ बिना किसी लोक-लाज की परवाह किए स्वीकार करती है कि उसे उसकी चाहत ने पाकिस्तान तक पहुँचाया है। वह यहाँ आई नहीं, यहाँ से गई है। अम्मा का यह रूप देखकर बेटी असमंजस में है - *''आपको जरा भी हमारा लिहाज नहीं हुआ? कितनी हमारी हँसी हो रही है, कितनी छिछलेदार सबके आगे अपनी उम्र का ही लिहाज करिए। शादी, शौहर, प्यार, मोहब्बत यही कहानियाँ आपको सूझ रही हैं? अपनो को और उनके हितों को एकदम भूल गई हैं? कैसी माँ हैं आप?''*[17]

अनजान देश में बेटी माँ के साथ खुद को अकेला महसूस कर रही थी जिस डर से वह गुजर रही है, उसका माँ को जरा भी अंदाजा नही। माँ अपने अनवर से मिलने की धुन में मस्त है।

लेखिका ने 'रेत समाधि' उपन्यास में सरहद को नए रूप में परिभाषित किया है। अक्सर 'सरहद' शब्द

सीमाओं का विभाजन, धार्मिक विविधता, सांस्कृतिक विभेद और भय के रूप में चित्रित किया जाता है लेकिन यहाँ सरहद को सकारात्मक रूप दिया है – *''सरहद, माँ कहती है। सरहद? जानते हो सरहद क्या होती है ? बोर्डर? वजूद का घेरा होता है, किसी शख्सियत की टेक होता है। कितनी बड़ी कितनी ही छोटी। रूमाल की किनारी मेजपोश का बोर्डर, मेरी दोपहर की समेटती कढ़ाई। आसमान की सरहद इस बगिया की क्यारी। खेतों की मेड़ इस छत की मुँडेर। तस्वीर का फ्रेम। सरहद तो हर चीज की है।... सरहद बंद नहीं करती खोलती है। आकर बनती है। किनारा सजती है। किनारा का इस तरफ भी खिल जाता है और उस तरफ भी। नक्कासी कर लो टिमका दो, असली नगीने लगा दो। क्या है बोर्डर? वजूद को उभारता ताकत देता। न कि चीरता। बोर्डर पहचान बढ़ता है। जहाँ दो तरफ मिलते हैं और दोनों तरफ खिलते हैं। बोर्डर उनके मिलने को सजता है। हर अंग की सरहद होती है। इस दिल की भी...मनहसों दिल के बीच सरहद खींच दोगे तो उसे बोर्डर नहीं कहते, चोट कहते हैं।''*[18]

वास्तविकता में सरहदें राजनीति का केंद्र हैं और यह किसी एक राष्ट्र तक सीमित नहीं, बल्कि विश्व स्तर पर सरहदों की जंग चलती रहती है, जिनमें न जाने कितने परिवारों, संबंधों का बँटवारा हो जाता है, कितनों के प्रेम को अलग कर दिया जाता है। सहदों की जंग में अनगिनत किस्से दफन हो जाते हैं। ऐसे ही किस्सों में एक किस्सा चंदा और अनवर का है। *''आप हिंदू हैं वो मुसलमान, आपके शौहर आपकी शादी?... सुनो जी इंसानी रिश्तों की सरहदें न कभी थी, न कभी होंगी। रूढ़ियाँ तब भी होती थीं, उन्हें तोड़कर आगे निकलने जाने वाले तब भी होते थे...प्यार को देर-सबेर सब मान लेते हैं। कुछ दिन बहस शिकायत चली, न फिर हमने शादी की। कहती हैं कि एक था स्पेशल मैरिज एक्ट 1870 का, कोर्ट कानून कि धर्म से अलग जाकर शादी कर ले, अगर उनके बुजुर्ग रजामंद हैं, उन्होंने की।''*[19]

चंदा सरहदों को पार करके अपने पूर्व प्रेमी अनवर से मिलने चली आती है और अपनी उन स्मृतियों के आधार पर अपने बचपन के संग-साथ को याद करती है, उन रशतों को खोजती है, जिन पर बचपन में चला करती थी। उन यादों को फिर से संजोती है, जो उसका जीवन था। माँ की जिद थी अनवर को मिलने आना ही होगा। जिस भयावह रात न जाने कितनों ने अपनों को हमेशा के लिए खो दिया, लेकिन चंदा किसी वादे को वर्षों तक दुनिया से छिपाकर अपने ही भीतर इस लालसा में जिंदा रखे रही कि एक-न-एक दिन उस वादे का इंतजार खत्म होगा। माँ को जब पता चलता है कि अनवर उससे मिलने नहीं आ सकता है, क्योंकि उसे ऐसी बीमारी हुई है, जिसके कारण वह चल नहीं सकता। अनवर को फालिज यानी लकवा (पक्षाघात) हुआ है तो वह खुद अनवर से मिलने पहुँच जाती है। उन्हें अपनी हरेक मुलाकात याद दिलाती है –*''याद करो। हर हफ्ते हम जाते थे, आसिफजाह और नूरजहाँ की मजार पे। रावी पार। फिर बाग में निकल लेते। किसी कोने में। हम तुम। दूब चबाते। मेरी चूड़ियाँ। सब टूट जातीं। अनवर, वो झुकी लजाई मुस्कराई।''*[20] इस मिलन में अधूरे रह गए वादों को पूरा करने का सुकून था। चंदा अपनी अधूरी कहानी को पूरा करने के लिए अनवर तक पहुँच सरहदों को झुठला देती है।

इस तरह मृत्यपर्यंत अम्मा हर सरहद को लाँघती रही। लेखिका अम्मा के चरित्र के माध्यम से हमारे समाज की हर उस उस स्त्री को सरहद लाँघने की दिशा में अग्रसर होने को कहती है, जिस स्त्री के पैरों में समाज ने परंपरा और रूढ़ियों की बेड़ियाँ पहना दी हैं। जीवन के अंतिम पड़ाव में नैतिक वर्जनाओं, सामाजिक दायित्वों व पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुँह मोड़कर वर्षों से अपने अंतस में दबाकर रखे हुए एक अधूरे वादे को पूरा करने का साहस प्रदान किया है। अम्मा सारी परंपराओं की धज्जियाँ उड़ाते हुए अपने मन की करती है। कब तक स्त्री बंधनों में बँधकर अपनी खुशियों का, अपने प्रेम का, अपनी स्वतंत्रता का, अपनी इच्छाओं का गला घोंटती

रहेगी? अम्मा अपनी इच्छा के अनुसार अंतिम समय बिताती है और अपनी इच्छा के अनुसार मुँह के बल न गिरकर सपाट लेटकर मौत को भी प्राप्त करती है।

इस तरह गीतंजलि श्री ने कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं परोक्ष रूप से वर्तमान समय के सभी सरोकारों को स्पर्श किया है। देश विदेश, हद-सरहद, परंपराएँ, रूढ़ियाँ, स्त्री मन, स्त्री स्वातंत्र्य, स्वच्छंदता, परिवार के कलह, प्रकृति, पर्यावरण, लड़कियों का अपहरण, उनकी दुर्दशा, प्रेम मिलन, जुदाई आदि हर पक्ष को प्रभावित किया है और पाठक को सोचने पर मजबूर कर दिया है। ❑

संदर्भ :

1. गीतंजलि श्री,रेत समाधि, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, पृष्ठ. 9
2. वही पृ. 12
3. वही, पृ. 13
4. वही, पृ. 13
5. वही, पृ. 123
6. वही, पृ. 129
7. वही, पृ. 116
8. वही, पृ. 125
9. वही, पृ. 107
10. वही, पृ. 258
11. वही, पृ. 301
12. वही, पृ. 305
13. वही, पृ. 307
14. वही, पृ. 308
15. वही, पृ. 310
16. वही, पृ. 312
17. वही, पृ. 338
18. वही, पृ. 331
19. वही, पृ. 340
20. वही, पृ. 353

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945
Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

मणिपुरी लोक कथाओं में लोक विश्वास एवं लोक व्यवहार

डॉ. जमुना सुखाम

अध्यापिका, निलपद्मा उच्च माध्यमिक शिक्षा विद्यालय, इंफाल, मणिपुर-795136
9774675045 9863837983
Jsukham@gmail.com

शोध-सार :

भावनाओं के परावार में सुख और दु:ख बुलबुलों के समान हैं। मूल आधार वह सतह है, जिस पर सुख-दुख का उदय और अस्त होता रहता है। दरअसल, लोक में यह भाव निहित है, जिसमें विश्वास भरा हो। विश्वास से ही लोक कथा जन्म लेता है। इसलिए लोक कथा में शब्द की अमोध शक्ति होती है। शब्द पर लोक का बड़ा विश्वास होता है। कहे पर अटल और गाए पर सर्वस्व निछावर कर देने की सहज वाणी लोक के पास है। यह अंतरतम से उभरता है। यह नकल नहीं, असल होता है। यह कागज पर लिखा-पढ़ा नहीं, आँखों से देखा हुआ सच होता है। लोक कथाएँ न केवल मनोरंजन करती हैं, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक शिक्षा भी प्रदान करती हैं।

मणिपुर की लोक कथा और लोक विश्वास यहाँ के सांस्कृतिक धरोहर का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। ये दोनों ही यहाँ की स्थानीय जीवन, परंपरा तथा विश्वासों को दर्शाते हैं। मणिपुरी लोक कथाओं में लोक विश्वास मूलत: आध्यात्मिक, प्राकृतिक, पारंपरिक उपचार तथा आश्चर्यजनक घटनाएँ शामिल हैं। साथ ही इसकी लोक कथाओं में लोक-व्यवहार, विश्वास एवं मान्यताएँ गहराई से जुड़ी होती हैं, जिसमें सामाजिक मूल्य और नैतिकता, पारंपरिक रीतियाँ और अनुष्ठान, लोक उपचार और जड़ी-बूटियाँ, धार्मिक आस्थाएँ और पूजा-पाठ, सामाजिक नियम एवं परंपराएँ निहित हैं । मणिपुरी लोक विश्वास यहाँ के सांस्कृतिक और पारंपरिक मूल्यों को दर्शाते हुए जीवन के अध्यात्मिक और सामाजिक पहलुओं को प्रभावित करते हैं। इसके द्वारा सामाजिक गठबंधनों को मजबूत कर युवकों की सांस्कृतिक विरासत से जोड़ने और सामाजिक तथा धार्मिक पहलुओं को संभालने में सहायक सिद्ध होता है।

निष्कर्षत: मणिपुरी लोक कथाओं में लोक विश्वास एवं लोक व्यवहार यहाँ के सामाजिक और सांस्कृतिक ढाँचे को मजबूत बनाए रखता है तथा एक स्वस्थ एवं सामाजिक रूप से व्यावहारिक समाज की दिशा निर्धारित करने में मदद करता है। इसके द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पारंपरिक और धार्मिक मूल्यों को जीवित करते हुए समाज की सांस्कृतिक धरोहर को एक दिशा प्रदान करता है।

बीज शब्द :

संस्कृति, लोक विश्वास, मूल्यों, पारंपरिक, धरोहर, मान्यताएँ, लोक व्यवहार, दिशा, नियम, विरासत।

मूल आलेख :

लोक साहित्य की अनेक विधाओं में से 'लोक-कथा' भी एक महत्वपूर्ण विधा है। यह समाज की सांस्कृतिक परंपराओं और कालक्रम में निर्मित जीवन मूल्यों को सुरक्षित रखने का तथा इस थाती को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सुरक्षित रूप में पहुँचाने का महान कार्य भी करता है। लोक कथाओं में जो मूल घटनाएँ होती हैं और जो घटनाएँ बाद में जुड़ती रहती हैं, वे देखने में चाहे कितनी ही काल्पनिक लगें, उसके निर्माण का आधार यथार्थ से गठित होता है। लोक कथाओं को सरस अभिव्यक्ति में ही लोक संस्कृति का चित्र निखरता रहा है, क्योंकि लोक संस्कृति लोक समाज में ही पनपती है और समाज लोक के द्वारा बनाया जाता है। लोक कथा सामाजिक, सांस्कृतिक और मनुष्य जीवन के भौतिक यथार्थ से जुड़ा हुआ पक्ष है।

मणिपुरी लोक कथाओं में सामाजिक व्यवस्था, पारंपरिक व्यवहार और धार्मिक विडंबनाओं का मूल्यांकन हुआ है । मणिपुरी अर्थात मीतै जाति के लोग 'फोकटेल' या 'लोक-कथा' को 'फूंगावारी' के नाम से जानते हैं। लेकिन स्थान विशेष के कारण लोग फूंगावारी को अलग-अलग नाम से भी समझते हैं, जैसे- 'फूनाकवारी' और 'चाक्ङाइवारी' आदि। 'फुनाक' और 'फूंगा' शब्दों के अर्थ में कोई अंतर नहीं है। दोनों शब्दों का अर्थ है 'अलाव'।

मणिपुरी लोक कथाओं में लोक विश्वास और लोक व्यवहार का महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ की लोक कथाएँ समाज की मान्यताओं, परंपराओं और सांस्कृतिक धरोहरों का प्रतीक होती हैं। इनमें लोक विश्वास का प्रतिबिंब और समाज के नैतिक और धार्मिक दृष्टिकोण को देखा जा सकता है। मणिपुरी लोक कथाओं की विशेषताओं को हम कुछ इस प्रकार से देख सकते हैं-

(क) भाषा की सरलता

(ख) मनोरंजन प्रधान

(ग) पात्र

(घ) अतिशयोक्ति वर्णन

(ङ) अनिश्चित समय व स्थान

(च) स्वतंत्र कथा निर्माण

(छ) गद्यात्मकता

(ज) रीति-रिवाज और सांस्कृतिक झलक

(झ) धार्मिक तत्वों से स्वतंत्र तथा उपदेशात्मकता

मणिपुरी लोक कथाओं को हम इस प्रकार वर्गीकृत भी कर सकते हैं। जैसे-

(क) हास्य-व्यंग्य की लोक कथाएँ

(ख) पशु-पक्षी की लोक कथाएँ

(ग) जादू-मंत्र की लोक कथाएँ

(घ) छल-कपट की लोक कथाएँ

(ङ) उपदेशात्मक की लोक कथाएँ

मणिपुरी लोक साहित्य में लोक विश्वास एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें जीवन की संस्कृति, परंपराओं, रीति-रिवाजों और समाज के विभिन्न पहलुओं का प्रतिबिंब देखने को मिलता है। मणिपुरी समाज में न केवल लोक कथाओं में बल्कि लोक गीत, कहावतों तथा धार्मिक अनुष्ठानों में लोक विश्वास की झलक अच्छी तरह से देखने को मिलता है। मणिपुरी लोक विश्वासों की विशेषताएँ भी हम इस प्रकार देख सकते हैं। जैसे-

(क) धार्मिक आस्था : बहुत-सी कथाएँ देवी-देवताओं और अलौकिक शक्तियों पर आधारित होती हैं। जैसे- खम्बा-थोईबी की कहानी जिसमें देवताओं और पूर्वजों का आशीर्वाद मुख्य तत्व होते हैं।

(ख) आत्मिक विश्वास : मणिपुरी लोक कथाओं में आत्म और पुनर्जन्म के विचार भी प्रमुख होते हैं। आत्माओं का जीवन, उनके कार्य और उनके प्रभाव की कहानियाँ लोक विश्वास का हिस्सा होती हैं।

(ग) सामाजिक मान्यताएँ : लोक विश्वास मणिपुरी समाज की सामाजिक मान्यताओं और रीति-रिवाजों में भी देखा जा सकता है। इनमें जन्म, विवाह, मृत्यु आदि से जुड़े कई लोक विश्वास और कथाएँ शामिल होती हैं।

(घ) देवी-देवताओं (लाई) की पूजा : मणिपुर के लोग विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों और देवी-देवताओं में विश्वास करते हैं, जिन्हें 'लाई' कहा जाता है। हर गाँव व इलाके का अपना एक विशेष लाई होता है, जिसकी पूजा की जाती है।

(ङ) उमङ लाई : यह विश्वास है कि जंगलों

और पर्वतों में देवता और आत्माएँ निवास करती हैं। इन स्थानों को पवित्र माना जाता है और यहाँ पर अनुष्ठान किए जाते हैं।

(च) मैतेई धर्म : यह मणिपुर का एक प्रमुख धार्मिक विश्वास है, जिसमें 'सनामही' (प्रमुख देवता) की पूजा की जाती है। इस धर्म के अनुयायी सूर्य और चंद्रमा की पूजा करते हैं और मानते हैं कि वे जीवन के विभिन्न पहलुओं को नियंत्रित करते हैं।

ये लोक कथाएँ और लोक विश्वास मणिपुर की सांस्कृतिक पहचान को मजबूत बनाते हैं और समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। साथ ही मणिपुरी समाज में भी कई लोक विश्वास और अंधविश्वास प्रचलित हैं, जो लोक-मानस के विश्वास बनकर एक प्रवाहमान धारा की तरह अब तक बहते आ रहे हैं। जैसे-

(क) संख्या संबंधी लोक विश्वास

(ख) सपनों का विश्वास

(ग) अंगों का फड़कना

(घ) शुभ दिन या शुभ अवसर

(ङ) माइबा-माइबी (औझा) द्वारा इलाज करना

(च) माइबी द्वारा भविष्यवाणी देना ।

''मणिपुरी (मीतै) लोग किसी भी काम की शुरुआत या पूजा-पाठ की सामग्री तैयारी करते समय विषम संख्या को शुभ मानते हैं, जैसे- 1, 3, 5, 7, 9, ... आदि। यही संख्या संबंधी लोक विश्वास अज्ञातकाल से अब तक मणिपुरी समाज में प्रचलित है। मणिपुरी (मीतै) लोग किसी काम की तैयारी करते समय उसमें निहित तत्वों को चङ शि, चङ शि के शब्दों को लेकर गिनते हैं। मणिपुरी (मीतै) लोगों के लोक विश्वास के अनुसार 'चङ' का अर्थ है 'जीना' और 'शि' का अर्थ है 'मृत'। इसलिए जब वह गिनती 'चङ' में अंत होता हो तो शुभ माना जाता है, यदि कभी 'शि' में अन्त होता है तब अशुभ माना जाता है। इसलिए मंगल कार्य के लिए शुभ संख्या से संबंधित सामग्री की तैयारी की जाती है। लेकिन केले के फल की संख्या एक-एक से नहीं गिनी जाती है, एक जोड़ा को 'चङ' कहकर गिनने की प्रथा है, क्योंकि केले के ऊपरी और नीचे एक जोड़ा पुरुष और स्त्री के प्रतीक माने जाते हैं। इसलिए सदा दोनों को साथ-साथ होना शुभ लक्षण माना जाता है । 'चङ शि, चङ .....इस गिनती के अनुसार मणिपुरी (मीतै) लोग 1, 3, 5, 7, 9, ... आदि संख्या को शुभ संख्या मानते हैं। यही विश्वास मणिपुरी (मीतै) जाति में प्रचलित लोक कथाओं में भी देखने को मिलता है।''[1]

'मनुष्य से तोता बनने की कथा' शीर्षक मणिपुरी लोक कथा में सपनों का विश्वास और शुभ संख्या की आस्थापूर्वक प्रचलन को निम्न उदाहरण में देख सकते हैं-

मणिपुरी- ''हा, इमा अपोकपी। इमा नङना नचा ऐबु अमुक हन्ना थिबा फंलरोइ। ऐदि निंथि तुरेन्दा चोंथदुना थवाय असि थारगा नुङा हायबा डादु ओन्दुना लैरे। हयेङ अयुक इमाना ऐबु लोंग खोन्दुना लौखतपिरगा फीरोल 7 ना खुमदुना नुमित 7नि थम्बिरबदि नचा ऐहाक ताइबङमी अमुक ओल्लकखिगनि। इमा नचाबु लौबिररो, इमा-इचा अमुख हन्ना लैमिन्नखिसि।''

हिंदी में भावानुवाद-

''ओ मेरी प्यारी माँ। आप मुझे कहीं नहीं ढूँढ़ पाओगी। निङथि नदी में कूदकर मैंने अपनी जान दे दी। लेकिन मेरी आत्मा नुंङा नामक एक मछली का रूप ले चुकी है। कल सुबह आप वहाँ एक लोंग (बाँस से बना मछली पकड़ने का एक छेददार रोकड़ा) लेकर मुझे पकड़ने को आइए। फिर मेरे ऊपर सात (7) चादरों से ढँककर सात (7) दिन तक रखिए। ऐसा करने से मैं पुनः मनुष्य बन जाऊँगी। फिर हम दोनों साथ में रहेंगे।''[2]

इस प्रकार तिथि का शुभाशुभ और लाइचा का शुभाशुभ भी देख सकते हैं। मणिपुरी समाज के एक महीने में 10वीं, 20वीं और 30वीं तिथि को अशुभ दिन मानते हैं। इसको 'लाइचा' के नाम से जाने जाते हैं। 'लाइचा' का शाब्दिक अर्थ हैं- 'देवता द्वारा मनुष्य को खाना'। इस डर से मणिपुरी लोग 10वीं, 20वीं और 30वीं तिथि में किसी भी शुभ कार्य नहीं करते हैं। प्राचीन काल में मणिपुरी समाज में लोक विश्वासों के आधार पर कुछ प्रथाएँ भी प्रचलित थीं। 'दाह संस्कार' को मणिपुरी भाषा में 'पोतलोइबा' कहा जाता है। यहाँ मूलतः चार प्रकार के अंतिम संस्कार प्रचलित थे, जैसे-

(क) जमीन में दफनाना

(ख) आग में जलाना

(ग) हवा (खुले जंगल या पहाड़) में फेंकना और

(घ) पानी (नदी) में बहाना।

इनमें से जमीन में दफनाने का तरीका अन्य अंतिम प्रकारों से ज्यादा प्रचलित था। यह दाह संस्कार 18वीं सदी तक प्रचलित था, लेकिन हिंदू धर्म के आने से यह संस्कार लुप्त हो गया। फिर भी आज तक पहाड़ी क्षेत्रों में यह प्रथा प्रचलित है। अंतिम संस्कारों में से शव को हवा या खुले जंगल या पहाड़ी क्षेत्र में फेंकने का कार्य केवल असामान्य मृत्यु जैसे – आत्महत्या करने वाले का शव और किसी दुष्ट व्यक्ति का शव आदि से संबंधित है।

पुराने जमाने में किसी आम आदमी, अनाथ व्यक्ति और गरीब आदमी की मृत्यु में उसके शव को नदी के पानी में बहा देने की प्रथा भी थी। लेकिन वर्तमान में मणिपुरी लोक विश्वासों के आधार पर दाह संस्कार के दो रूप उपलब्ध हैं – शव को दफनाना और शव को जलाना। लेकिन प्राचीन काल में मणिपुरी (मीतै) समाज में यदि किसी व्यक्ति का मृत शरीर उपलब्ध न हो तो उसके स्थान पर पांगोङ नामक एक पेड़ का टुकड़ा मृत शरीर के रूप में दाह संस्कार करने की प्रथा है।

मणिपुरी लोक कथाओं में लोक व्यवहार व्यक्ति की नैतिक मूल्यों, रीति रिवाजों और लोग जीवन को समृद्ध व संतुलित रखने की क्षमता रखता है। इसलिए कह सकते हैं कि लोक व्यवहार के बिना लोक जीवन निरर्थक है, क्योंकि लोक व्यवहार के द्वारा लोक समाज एवं संस्कृति को सजीव बनाया जाता है।

मणिपुरी (मीतै) जाति के लोक व्यवहार की कुछ झलक मणिपुरी लोक कथाओं में देखने को मिलती है, जैसे–

(क) संबोधन में मणिपुर लोक व्यवहार।

(ख) खान–पान में मणिपुरी लोक व्यवहार।

लोक कथाओं में लोक व्यवहार के माध्यम से समाज में अपनी सांस्कृतिक पहचान को संजोए और संरक्षित कर पाते हैं। इसके कुछ विशिष्टताएँ इस प्रकार हैं–

(क) सामाजिक संरचना और पारिवारिक संबंध को सुरक्षित कर पाना।

(ख) नैतिक शिक्षा।

(ग) परंपराएँ व रीतियाँ।

(घ) समाज की चुनौतियाँ।

(ङ) स्त्री शक्ति और नारीवाद।

मणिपुरी (मीतै) जाति का लोक व्यवहार अति प्रशंसनीय है। इस जाति में उम्र के अनुसार दूसरों को संबोधित करने की परंपरा रही है। मीतै समाज में किसी अनजान व्यक्ति चाहे वह गरीब हो या अमीर, चाहे वह ज्ञानी हो या अज्ञान, उसके प्रति 'तुम' कहकर संबोधन नहीं किया जाता है। उम्र की हिसाब से किसी अनजान व्यक्ति को दादा–दादी, भैया–दीदी, काका–काकी, भाभी, मामा–मामी आदि शब्दों से संबोधित करने की प्रथा है।

अपने से कम उम्र वाली अगर 'स्त्री' हो तो 'इबेम्मा' और 'पुरुष' हो तो 'इबुंङो' के नाम से संबोधित किया जाता है। अपनी प्यारी पुत्री को 'इबेम्मा' के नाम से और अपनी प्यारे पुत्र को 'इबुंङो' कहकर पुकारा जाता है। यह 'इबुंङो–इबेम्मा' शब्द प्रेमी–प्रेमिका और पति–पत्नी के बीच में भी प्रयोग किया जाता है। इसलिए 'इबुंङो' शब्द आदरसूचक और प्रेमपूर्वक पुरुष के प्रति संबोधित शब्द है और 'इबेम्मा' स्त्री के प्रति संबोधित शब्द। इसकी झलक मणिपुरी (मीतै) जाति की लोक कथाओं में कहीं–न–कहीं देखने को मिलती है।

मणिपुरी लोक कथाओं में प्राप्त खान–पान संबंधी कुछ लोक व्यवहार भी हैं, जैसे–

(क) किसी एक बुजुर्ग को आगे बिठाना।

(ख) नहाकर खाना पकाना।

(ग) नहाकर भोजन करना।

मणिपुरी समाज में किसी भोजन का आयोजन करते वक्त किसी एक बुजुर्ग को सबसे आगे बिठाकर उसको सम्मान करने की एक परंपरा है। यही परंपरा मणिपुरी समाज में अज्ञातकाल से अब तक चलती आ रही है। इस लोक व्यवहार की झलक मणिपुरी लोक कथाओं में देखने को मिलती है। उदाहरण – 'कपोत द्वारा दावत' शीर्षक लोक कथा में कपोत परिवार द्वारा कौवा, बगुला, उल्लू और चार पक्षियों को खाने के लिए दावत देते हैं। तभी अपने पूजनीय पिताजी के शब्द इस प्रकार प्रयोग करते हैं –

मणिपुरी – ''चाक्लुक मकोक फम्लिबा ख्वाइदगी अहल ओइबा उचेक अदुदा नचा–नशु फंनबा, चान–थक्नबा, मराङकायना फंनबा निजौ ताकपिरम्मी, अदुना

चही येडबिरगा ख्वाइदगी अहन्ना मकोक्ता लेडशिनबियु। अवात–अपा ऐखोयना हापचगनि। चाक्कोजबा असि हराओ–हराओ चाबिदुना लाइओइख्रबा इमा–इपा अनीगी नीडबा थुंहनबीयु।''

हिंदी में भावानुवाद –

''पिताजी ने कहा था कि सबसे आगे बैठने वाला सब से बुजुर्ग पक्षी से संतान की प्राप्ति और धन–सम्पदा की प्राप्ति के लिए वर माँगना है । इसलिए सब से बुगुर्ज पक्षी सब से आगे बैठिए। आप लोगों की सब इच्छा पूरी करूँगा। आप लोग खुशी–खुशी से खाना खाना शुरु कीजिए।''[3]

इसके अलावा मणिपुरी समाज में मणिपुरी नारियाँ नहाकर खाना पकाती हैं। यही परंपरा मणिपुरी समाज में अज्ञातकाल से चलती आ रही है। किसी भी व्यक्ति के बिना नहाए रसोईघर से संबंधित कोई वस्तु छूने की प्रथा मणिपुरी समाज में नहीं है।

निष्कर्षत: विज्ञान के इस आधुनिक युग में भी लोक विश्वासों का अपना अलग महत्व है। इसकी सबसे बड़ी महत्ता इस बात में है कि किसी देश की लोक संस्कृति को वास्तविक रूप में जानने के लिए उस क्षेत्र के लोक विश्वासों का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। मणिपुरी लोक कथाओं में लोक विश्वास एवं लोक व्यवहार सांस्कृतिक परंपराओं की जड़ों से जुड़े होते हैं, जो सांस्कृतिक विरासत और सामाजिक मूल्यों को दर्शाते हुए कथाओं के भीतर छुपी हुई विश्वासों को प्रदर्शित करते हैं। साथ ही इसमें स्थानीय विशेषताओं के साथ–साथ देश की अनेकता में एकता का मूल स्वर को सार्थक कर सामाजिक, सांस्कृतिक धरोहर को सजीव बनाता है। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. मणिपुरी (मीतै) के लोक–कथाओं का लोक–सांस्कृतिक अध्ययन, शोध–प्रबंध, निङथौजम मिनरभा देवी, हिंदी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, काँचीपुर, इंफाल–795003, पृष्ठ सं. 213
2. वही, पृष्ठ सं. 226
3. वही, पृष्ठ सं. 200

सहायक ग्रंथ सूची :

1. लोक और शास्त्र जनजातीय साहित्य, डॉ. अनुशब्द, वाणी प्रकाशन
2. भारतीय लोक विश्वास, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद
3. हिंदी लोक गीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. गिरीश सिंह पटेल, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर– 21
4. भारत की सांस्कृतिक विरासत, अमर सिंह, नेहा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स, नई दिल्ली– 2
5. उत्तराखंड का लोक साहित्य और जनजीवन, डॉ. सरला चंदोला, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली–2

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में आदिवासी संघर्ष और सांस्कृतिक मूल्य

डॉ. विद्याराम मीना

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दौलत राम कॉलेज, मॉरिस नगर
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007
7503247676
vidyaram4140@gmail.com

21वीं सदी का विमर्श प्रमुख रूप से हाशिए पर पड़े समुदायों को केंद्र मे लाने की पुरजोर कोशिश करता है। इसमें मुख्य रूप से स्त्री, दलित,आदिवासी और पर्यावरण शामिल हैं। 21वीं सदी के यह नए विमर्श अपनी पहचान,अस्तित्व-अस्मिता,सता,शोषण और संघर्ष को केंद्र में रखते हैं। आदिवासी विमर्श समकालीन और सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है। इसमें आदिवासी समुदाय की समस्याओं और संघर्षो का ही संदर्भ नहीं, बल्कि प्रकृति, पर्यावरण और मानवेतर जगत के प्राणियों से भी यह जुड़ा हुआ है। इसलिए इस विमर्श का आयाम बहुत ही व्यापक और विभिन्न संदर्भों से जुड़ा हुआ है। *''आदिवासी जीवन, संस्कृति, अस्तित्व-अस्मिता, संघर्ष, शोषण और उनके विस्थापन के लेकर भारतीय साहित्य में एक नए युग की शुरुआत हुई है, जो आदिवासी समुदाय की सभी समस्याओं को हमारे सामने रखता है।''*[1]

21वीं सदी में आदिवासी शोषण के विरुद्ध आवाज बुलंद करने वाले उपन्यास लिखे जा रहे हैं, जिनमें अल्मा कबूतरी, काला पादरी, धूणी तपे तीर, ग्लोबल गाँव के देवता, समर शेष है, जंगल जहां से शुरू होता है, जहाँ बाँस फूलते हैं, सीता, मौसी, मर्ड्ग गौंडा नीलकंठ होई आदि प्रमुख रूप से हैं। इन उपन्यासों में यह दिखाया गया है कि आदिवासी समाज के लिए संस्कृति मात्र परंपरा नहीं, बल्कि उनका अस्तित्व है। इनकी संस्कृति को नष्ट करना या बदलना, दरअसल उनके पूरे अस्तित्व पर आक्रमण करना है। यही कारण है कि उपन्यासकार अपने पात्रों के माध्यम से सांस्कृतिक संरक्षण और अस्मिता के लिए संघर्ष की चेतना जाग्रत करते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' में कबूतरा नामक आदिवासी समाज के दु:ख-दर्द का वर्णन हुआ है। सभ्य समाज, जिसे आदिवासियों की भाषा में 'कज्जा' कहा जाता है, इनके द्वारा दी जाने वाली प्रताड़ना का धार्मिक चित्रण अल्मा कबूतरी में देखा जा सकता हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने नायिका अल्मा के बारे में लिखा है कि *''अल्मा माने आत्मा, बप्पा ने सोच कहते हैं आत्मा नहीं मरती।''*[2] यह वाक्य उपन्यास की नायिका की आन्तरिक शक्ति और उसकी अमर चेतना का प्रतीक है। यहाँ 'अल्मा' केवल एक नाम नहीं, बल्कि कबूतरा समाज की उस जीवटता और जिजीविषा का प्रतीक है, जो अत्यंत विषम परिस्थितियों के बावजूद मरती नहीं, टूटती नहीं।

आदिवासी समाज आज अपनी अस्मिता और अस्तित्व के संकट के दौर से गुजर रहा है। वैश्विकरण ने दुनियाभर में विस्थापन की जिस अमानवीय प्रक्रिया ने जन्म दिया, उससे आदिवासी समाज अपने अस्तित्व को खोते जा रहा है। आदिवासी समुदाय इस देश के मूल थे, जिन्हें हाशिए पर धकेलकर उनकी पहचान को बचाने की बजाए संकट को बढ़ावा दिया गया। लोकतंत्र के एजेंडे में तो वे थे ही नहीं एवं अब तो विकास विरोधी के रूप में, नक्सलवाद के रूप में, जातीयता के रूप में और उससे भी बढ़कर एक गरीब जमात के रूप में उनके लिए इस लोकतांत्रिक देश में कम ही जगह दिखाई पड़ती है। हमारा देश विकासशील है और विकासशील देशों में या तो नौकरशाहों का विकास होता है या फिर पूँजीपतियों का, जिसमें सामान्यजन और आदिवासी कभी भी नहीं आता। आज यह विकास एक तरह से इस देश के आदिवासी को उजाड़कर या नष्ट कर किया जा रहा है।

संजीव रचित 'पाँव तले की दूब' उपन्यास में पंचपहाड़ के खनिज बहुल क्षेत्र का चित्रण हुआ है। औद्योगीकरण की चपेट में आते गाँव, झारखंड मुक्ति आंदोलन और आदिवासी जीवन का इसमें यथार्थ अंकन हुआ है। डोकरी नाप विद्युत संस्थान के मंच पर घटिन इस कथा के माध्यम से लेखक यह बताना चाहता है कि औद्योगीकरण किस प्रकार गाँवों तथा आदिवासियों को विस्थापित कर रहा है। फिलिप नामक आदिवासी युवक इसी कसक को सभा के सामने प्रस्तुत करता है कि यह धरती सोना उगलती है और आदिवासी इस धरती की कंगाल संतानें हैं। अधिकारी और पूँजीपति न केवल शोषण करते हैं, अपितु राष्ट्रीय संपत्ति की लूट भी करते हैं। आदिवासी इलाकों में लगाई गई पूँजी और खोले गए उद्योगों ने वहाँ विकास के 'इकोनॉमिक एन्क्लेव' बनाए हैं और स्थानीय समाज खासकर आदिवासी इस घेरे से बाहर हैं। आज आदिवासी इलाके, विकसित राष्ट्रीयताओं के चरागाह बने हुए हैं। झारखंड के नाम पर उससे दूर रहकर बनाई जा रहीं योजनाओं ने इस पूरे इलाके में अन्याय और शोषण की, बेदखली और विस्थापन की सौगात भर दी है। इस दोहरी मार को झेलने के लिए आदिवासी मजबूर हुए। जो योजनाएँ बनीं उनमें इस इलाके के समूहों की जरूरतों को अनदेखा कर दिया गया। मिसाल के तौर पर इलाके में बड़े बाँधों की कई अनुपयोगी परियोजनाएँ शुरू कर दी गईं, जिनकी वजह से आदिवासी बड़े पैमाने पर उजड़े और उन्हें हासिल कुछ नहीं हुआ। इस पठारी इलाके में जल प्रबंधन और सिंचाई के लिए 'आहरों' की समृद्ध परंपरा थी, जो सरकारी नीतियों की वजह से सूख गई। आदिवासियों को सिर्फ योजनाओं की असंगति ने नहीं, उससे कहीं ज्यादा उन्हें लागू करने वालों की नीयत ने मारा।

आज विकास के नाम पर आदिवासी समुदाय को उसके मूलभूत आवश्यकताओं जल, जंगल, जमीन से बेदखल किया जा रहा है। ऐसे में संकट केवल उनके अस्तित्व पर ही नहीं, बल्कि उनकी संस्कृति पर भी है। इसी बात को केंद्र में रखकर आदिवासी समुदाय पर केंद्रित दो उपन्यासों के नाम आते हैं– 'ग्लोबल गाँव के देवता' तथा 'गायब होता देश'। इन दोनों उपन्यासों का प्रणयन कथाकार रणेंद्र ने किया है। रणेंद्र का यह उपन्यास (ग्लोबल गाँव के देवता) यह सिर्फ उपन्यास ही नहीं, आदिवासी समुदाय खासकर 'असुर' के इतिहास को भी प्रकट करता है। रणेंद्र का दूसरा उपन्यास 'गायब होता देश' है। इस उपन्यास में उन्होंने 'मुण्डा' आदिवासी समुदाय को केंद्र में रखकर उसके शोषण–दमन, संघर्ष को कथा का माध्यम बनाया है, साथ ही मुण्डा समाज के इतिहास और संस्कृति का विश्लेषण किया है। प्रसिद्ध कथाकार, संपादक एवं विचारक रमेश उपाध्याय ने गायब होता देश के बारे में लिखा है कि– *''यह उपन्यास भूमंडलीय यथार्थवाद का उत्कृष्ट उदाहरण है।''* [3] यह कथन इस उपन्यास की विशेषता को रेखांकित करता है कि कैसे रणेंद्र ने स्थानीय यथार्थ और वैश्विक परिदृश्य को एक साथ पिरोया है। रणेंद्र की रचनाएँ आदिवासी समाज के भीतर से उठती आवाज हैं, जो विकास और आधुनिकता की आड़ में हो रहे नव–उपनिवेशवादी शोषण का पर्दाफाश करती हैं।

हरिराम मीणा ने 'धूणी तपे तीर' उपन्यास दक्षिणी राजस्थान में बसे आदिवासी समाज के विद्रोह को केंद्रित

कर लिखा है। यह उपन्यास वास्तव में उपनिवेशवादी दौर का एक ऐतिहासिक दस्तावेज है, जिसे इतिहास के पन्नों में दर्ज नहीं किया गया है। यह उपन्यास हरिराम मीणा द्वारा काफी शोध के पश्चात लिखा गया है, जिससे आदिवासी विद्रोह के इस नरसंहार की कथा स्पष्ट होती है। आदिवासी समाज का यह विद्रोह उपनिवेशी दौर में सामंती एवं अंग्रेजी शासकों की मिली भगत का परिणाम था। इस उपन्यास के संदर्भ में प्रो. सच्चिदानंद का कहना है– *''धूणी तपे तीर उपन्यास कम, इतिहास अधिक है।''*[4] इस कथन से स्पष्ट होता है कि यह रचना उपन्यास के सीमित साहित्यिक दायरे से बाहर जाकर इतिहास के पुनर्लेखन का कार्य करती है। यह न केवल आदिवासी समुदाय की ऐतिहासिक चेतना को पुन: जाग्रत करता है, बल्कि मुख्यधारा इतिहासकारों की पूर्वाग्रही दृष्टि पर भी तीखा प्रहार करता है।

कथाकार तेजिंदर द्वारा लिखित 'काला पादरी' उपन्यास आदिवासी समाज का उत्तर आधुनिक दस्तावेज कहा जा सकता है। इस उपन्यास में यह दिखाया गया है कि बीसवीं सदी के प्रारंभ में सरगुजा के जंगलों में बसे महेशपुर गाँव में आदिवासियों के साथ लगातार घटनाएँ घट रही थीं। इन घटनाओं ने आदिवासियों का पूरा जीवन ही बदल डाला था। यह उपन्यास आदिवासियों की भूख और भूख के दर्द की दर्दनाक कथा को उजागर करता है। उक्त उपन्यास आदिवासी समाज में भूख के कारण तड़प कर मरने वाले आदिवासियों के साथ हो रहे धार्मिक एवं राजनीतिक षड्यंत्र को और उन्हें करने वाले ठेकेदारों के गंदे चरित्र को भी उजागर करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। आज आजादी के 71 सालों बाद भी सरगुजा जैसे क्षेत्र– *''लोकतंत्र के सबसे सस्ते सामंतीय संस्करण हैं।''*[5] काला पादरी न केवल एक उपन्यास है, बल्कि यह आदिवासी समाज की त्रासदी, उनकी उपेक्षा और उनके अस्तित्व पर मँडराते संकट का सशक्त बयान है। यह उपन्यास हमें यह सोचने पर विवश करता है कि विकास, धर्म और राजनीति के नाम पर आदिवासी समाज को आज भी किस तरह उत्पीड़न और अन्याय का शिकार होना पड़ रहा है। तेजिंदर की यह कृति हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श को नई ऊँचाई प्रदान करती है और आदिवासी समाज की पीड़ा को राष्ट्रीय विमर्श के केंद्र में लाने का महत्वपूर्ण कार्य करती है।

विनोद कुमार ने 'समर शेष है' उपन्यास के माध्यम से झारखंड के आदिवासियों पर हो रहे महाजनी शोषण और इस शोषण को झेल रहे आदिवासियों के वर्ग संघर्ष को समाज के समक्ष रखने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। यह उपन्यास महाजनी शोषण के खिलाफ वर्ग संघर्ष की दो पीढ़ियों की लंबी समर–गाथा है। झारखंड का यह महाजनी शोषण आदिवासी समाज के लिए एक कोढ़ के समान है। उक त उपन्यास में यह दिखाया गया है कि आदिवासी समाज महाजनों का कर्जदार हो जाता है और कर्ज समय से न चुका पाने के बाद उनसे उनकी जमीन व फसल छीन ली जाती है। साथ–ही–साथ इसमें यह भी दिखाया गया है कि स्त्री शोषण और अंधविश्वास के कारण आदिवासी पुन: महाजनों के दरबार मे पहुँच जाते हैं। झारखंड में महाजनी शोषण के माध्यम से आदिवासियों को लूटना एक व्यापार–सा था। प्रत्येक महाजन आदिवासियों की जमीनों को हड़पना चाहता था। हेड़बरगा गाँव का सबसे बड़ा महाजन विष्ट साव था, जिसका पिता पहले तो आदिवासियों के गाँव में सर पर टोकरी रखकर रोजमर्रा की चीजें बेचता था और बाद में वही महाजन बन गया। आदिवासियों को कर्ज देकर उनकी जमीन अपने नाम कराने का धंधा शुरू हो गया। उसने लगभग ऐसे सभी गाँवों को अपने अधीन कर लिया– *''कौन–सा गाँव ऐसा था, जहाँ उसके कर्जदार नहीं थे। उन गाँवों की बहुत सारी जमीन का मालिक दरअसल वही था।''*[6] यह पंक्ति उपन्यास की यथार्थवादी ताकत को रेखांकित करती है, जिसमें विनोद कुमार ने झारखंड के आदिवासी समाज की वास्तविक सामाजिक–आर्थिक स्थितियों को अत्यंत प्रामाणिकता से चित्रित किया है।

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में आदिवासी संघर्ष का स्वर बहुआयामी है। इन उपन्यासों में आदिवासी समाज को विकास, औद्योगीकरण और वैश्विकरण के नाम पर जल, जंगल और जमीन से बेदखल किए जाने की त्रासदी को अत्यंत मार्मिकता और यथार्थवाद के साथ

चित्रित किया गया है। आदिवासी समाज का चित्रण अब केवल हाशिए के समाज के रूप में नहीं, बल्कि अपने स्वतंत्र अस्तित्व, संघर्ष और सांस्कृतिक अस्मिता के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। आदिवासी समाज की कथा केवल उनकी गरीबी या वंचना तक सीमित नहीं है, बल्कि उनकी संस्कृति, परम्पराओं, सामूहिकता, प्रकृति-प्रेम और संघर्षशीलता को भी पूरी गरिमा के साथ साहित्य में स्थान मिला है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवन और संस्कृति का चित्रण केवल साहित्यिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक दस्तावेज की तरह सामने आया है। इन उपन्यासों ने आदिवासी समाज के भीतर के जीवन, संघर्ष, शोषण और सांस्कृतिक अस्मिता को अभिव्यक्त कर हिंदी साहित्य को नई दृष्टि और विमर्श प्रदान किया है। इन उपन्यासों में आदिवासी समाज की रोजमर्रा की पीड़ा, उनके भूख, विस्थापन, शोषण, धार्मिक-राजनीतिक षड्यंत्रों और उनकी सांस्कृतिक जिजीविषा को अत्यंत संवेदनशीलता और प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। चाहे वह मैत्रेयी पुष्पा का अल्मा कबूतरी हो, तेजिंदर का काला पादरी, हरिराम मीणा का धूणी तपे तीर, रणेंद्र के उपन्यास ग्लोबल गाँव के देवता और गायब होता देश, अथवा विनोद कुमार का समर शेष है — सभी उपन्यास अपने-अपने स्तर पर आदिवासी समाज की दबी हुई आवाज को उभारते हैं। इन उपन्यासों में यह स्पष्ट होता है कि विकास और प्रगति के नाम पर आदिवासी समुदाय को जल, जंगल, जमीन से बेदखल कर उनकी संस्कृति और अस्तित्व पर संकट खड़ा कर दिया गया है। रणेंद्र जैसे लेखक वैश्विकरण और नव-उपनिवेशवाद के जाल को बेनकाब करते हुए आदिवासी अस्मिता की रक्षा की जरूरत पर बल देते हैं। हरिराम मीणा का धूणी तपे तीर ऐतिहासिक पुनर्लेखन का सशक्त उदाहरण बनता है, जो आदिवासी विद्रोह को इतिहास की मुख्यधारा में स्थापित करने का कार्य करता है। इन उपन्यासों की एक विशेषता यह है कि आदिवासी जीवन को केवल करुणा या रोमांटिक दृष्टि से नहीं, बल्कि उसके आंतरिक यथार्थ, संघर्षशीलता और सांस्कृतिक गर्व के साथ चित्रित किया गया है। आदिवासी पात्र केवल पीड़ित नहीं, बल्कि अपने अधिकारों और अस्मिता के लिए संघर्ष करने वाले जीवंत पात्र हैं। उदाहरण के लिए, अल्मा कबूतरी की नायिका अल्मा, आदिवासी जीवन की अमर चेतना और जीवटता की प्रतीक बनकर उभरती है। ❑

संदर्भ सूची :

1. रमणिका गुप्ता, आदिवासी अस्मिता के प्रश्न, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 353
2. मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली-11053, पृ. 347
3. सं. लीलाधर मंडलोई, नया ज्ञानोदय, जुलाई 1914 अंक 137 पृ. 110
4. मीणा, पिंटू कुमार, मानगढ़ आंदोलन केंद्रित हिंदी साहित्य, अलख प्रकाशन, जयपुर, पृ. 48
5. गगन, तेजिंदर, काला पादरी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ. 47
6. कुमार, विनोद, समर शेष है, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 07

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

बंगीय समाज के उन्नायक ईश्वरचंद्र बंधोपाध्याय

डॉ. गंगा कोइरी

शोध सार :

ईश्वरचंद्र विद्यासागर का व्यक्तित्व संवेदनशीलता एवं सादगी का प्रकाशपुंज था। कुशाग्र बुद्धि संपन्न विद्यासागर समाज सुधार, राष्ट्र विकास एवं जन-कल्याण के अग्रदूत थे। उनके अनुसार शिक्षा मानव जीवन को उर्जस्वी एवं गतिमान बनाने का मुख्य स्रोत है, जो जड़, परंपरागत विचारों एवं रूढ़ियों से मुक्ति का साहस प्रदान कर कर्तव्यपरायण बनाती है। विद्यासागर शिक्षा के विस्तार, विकास तथा नवीन अधिगम पद्धति के प्रति संकल्पित थे। मार्ग में आने वाले विभिन्न प्रकार के अवरोधों एवं अस्वीकृति के बावजूद वे बंगीय समाज के उत्थान के लिए निरंतर संघर्षशील रहे। विद्यासागर स्त्री शिक्षा एवं प्राथमिक शिक्षा के साथ ही उच्च शिक्षा के भी समर्थक रहे। वे एक ऐसे भारतीय थे, जिनमें परंपरा और आधुनिकता का सम्मिश्रण व्याप्त था।

बीज शब्द :

ईश्वरचंद्र विद्यासागर, प्राथमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, स्त्री शिक्षा, समाज सुधार।

मूल आलेख :

मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास का आधार शिक्षा है। भारतीय समाज में शिक्षा का सर्वोच्च स्थान रहा है। इस विशाल भूखंड में शिक्षा निरंतर विकसित होती रही है। इस दृष्टि से 19वीं सदी भारतीय इतिहास में प्रबुद्धता का दौर रहा। आधुनिक काल के प्रथम चरण में भारत के आधुनिकीकरण की सुदृढ़ नींव शिक्षा एवं संस्कृति के व्यापक विश्लेषण-संश्लेषण द्वारा गढ़ी गई। इस शताब्दी में भारत में ऐसे रत्नों का जन्म हुआ, जो भारतीय समाज के उत्थान एवं कायाकल्प के लिए दृढ़ संकल्पित थे। इन रत्नों में राजाराम मोहन राय से लेकर स्वामी विवेकानंद, दयानंद सरस्वती, ज्योतिबा फूले, केशवचंद्र सेन, गोपाल कृष्ण गोखले तथा ईश्वरचंद्र विद्यासागर आदि का नाम विशेष रूप से स्मरणीय है। राममोहन के बाद आधुनिक बंगाल के निर्माण में ईश्वरचंद्र विद्यासागर एक ऐसा नाम है, जिन्होंने समाज को उर्ध्वमुखी बनाने के साथ-साथ बंगीय संस्कृति को एक नया आयाम दिया। आधुनिक विचारों के प्रणेता विद्यासागर ने भारतीय सांस्कृतिक धरोहर की अवहेलना नहीं की, वरन परंपरागत संस्कृति एवं आधुनिक बौद्धिकता का यथासंभव समागम का यत्न किया। वे भारतीय शिक्षा-व्यवस्था की उन्नति के लिए प्रयासरत थे। इसलिए उन्होंने शिक्षा के मूलभूत आधार

सहायक प्राध्यापक (डब्ल्यू. बी.ई.एस.)
गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ एजुकेशन, बर्द्धवान
काजिरहाट, डाक-लाकुर्डी
पूर्व बर्द्धवान-713102 (पश्चिम बंगाल)
9339275031
gangakoiri@gmail.com

शिक्षक, शैक्षिक प्रांगण एवं पाठ्यक्रम को विशेष महत्व दिया। विद्यासागर प्राथमिक शिक्षा एवं स्त्री शिक्षा के लिए आजीवन समर्पित रहे। शिक्षा के इस परिवर्तनकामी स्वरूप के लिए वे शिक्षकों के प्रशिक्षण से लेकर नवीन विद्यालयों की स्थापना एवं विद्यार्थियों के गुणवत्ता युक्त पाठ्य-पुस्तक की रचना के लिए तत्पर रहे।

ईश्वरचंद्र बंधोपाध्याय का जन्म 26 सितंबर, 1820 ई. में मिदनापुर जिला के वीरसिंहा नामक गाँव के एक निर्धन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। माता-पिता की प्रथम संतान होने के कारण इनका पालन-पोषण स्नेह के साथ हुआ। आर्थिक रूप से विपन्न होने के बावजूद संस्कारगत पूँजी इन्हें अपने परिवार से विरासत में मिली थी। माता-पिता के संस्कार ने ही ईश्वरचंद्र बंधोपाध्याय को सर्वगुण संपन्न व्यक्ति बनने की प्रेरणा दी। प्रारंभिक जीवन में प्रखर बुद्धि एवं चेतनशील गुण के कारण शिक्षा के प्रति इनकी लगन अतुलनीय रही। प्रारंभिक शिक्षा वीरसिंहा गाँव की पाठशाल में पूर्ण होने के पश्चात मात्र 9 वर्ष की आयु में इन्हें कोलकाता के संस्कृत कॉलेज में अध्ययन के लिए दाखिल कराया गया। इन्होंने सन 1829 से 1841 ई. तक संस्कृत कॉलेज में शिक्षार्जन के दौरान संस्कृत भाषा के साथ-साथ व्याकरण, शास्त्र एवं अंग्रेजी आदि भाषा का गहन अध्ययन किया। शिक्षा के प्रति अदम्य उत्साह तथा निर्भीक प्रवृत्ति ने इन्हें समाज में उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया। विद्या के प्रति अगाध लगाव और असीम ज्ञान-भंडार देखकर सन 1840 ई. में संस्कृत कॉलेज के मुख्य पंडितों ने इन्हें 'विद्यासागर' की उपाधि से विभूषित किया। रवींद्रनाथ टैगोर ने विद्यासागर के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न व्यक्तित्व की तुलना अंग्रेजी लेखक डॉ. सैमुअल जॉनसन से की है— *"Poet, Rabindranath Tagore was hard pressed to find a comparable personality in the West and according to him, the closest that he found who could come to resemble Vidyasagar in his words and deeds, was the àßnglish writer, Dr. Samuel Johnson."* [1] कविगुरु की यह उक्ति ईश्वरचंद्र के व्यक्तित्व के संदर्भ में सार्थक है । समाज द्रष्टा ईश्वरचंद्र विद्यासागर शिक्षार्जन के पश्चात सन 1841 ई. में 'फोर्ट विलियम कॉलेज' में बंगला भाषा एवं साहित्य के पंडित पद पर नियुक्त हुए, जहाँ वे पश्चिमी संस्कृति तथा विचारों से प्रभावित होने लगे। यही कारण है कि उन्होंने भारतीय सभ्यता-संस्कृति के साथ पश्चिमी सभ्यता के कुछेक गुण एवं विशेषताओं को अनुकरणीय माना। अपने स्वाभाविक गुणों के अनुरूप विद्यासागर ने अंग्रेजी, संस्कृत एवं बंगला भाषा को सर्वग्राही एवं सर्वसुलभ बनाने का प्रयत्न किया। वे सन 1846 ई. में संस्कृत कॉलेज के उप-सचिव पद पर नियुक्त हुए। इस पद पर कार्यरत रहते हुए उन्होंने संस्कृत भाषा-शिक्षण के प्रति जन-समूह को जागरूक करने हेतु पाश्चात्य वैज्ञानिक विधि को विशेष तरजीह दी। इसके साथ ही बंगला भाषा और साहित्य के क्षेत्र में विद्यासागर का योगदान अक्षुण्ण रहा। तत्कालीन बंगला साहित्य में व्याप्त जटिलता एवं दुरूहता को दूर करने के लिए 'वर्ण परिचय' पुस्तक की रचना कर बंगला भाषा, व्याकरण एवं साहित्य को सहज, पठनीय एवं सर्वग्राही बनाया। आज 200 वर्षों के उपरांत भी बंगला प्राथमिक शिक्षा में 'वर्ण-परिचय' का स्थान महत्वपूर्ण है। इसी संदर्भ में अर्चना बनर्जी ने लिखा है— *"Vidyasagar's Varnaparichay was a milestone in the history of Bengali language. It helped people to master the language easily. It was a thorough reform of language by deleting many letters used in Sanskrit, but obsolete Bengali. The number of letters was rationalized. Spelling style and science was introduced. Scientific pronunciation was emphasized."* [2] इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना कर संस्कृत एवं बंगला भाषा को समृद्ध किया। इनकी महत्वपूर्ण पुस्तकों में 'बेताल पञ्चविंशति', 'बांग्लार इतिहास', 'जीवन चरित', 'बोधोदय', 'उपक्रमणिका व्याकरण', 'ऋजु पाठ' (भाग-1,2,3), 'महाभारत', 'व्याकरण कौमुदी' (भाग-1,2), 'आख्यान मंजरी', 'शब्द मंजरी', 'भ्रांति विलास', 'वर्णपरिचय' (भाग-1,2), 'कथामाला', 'चरितावली', 'विधवा-विवाह', 'भूगोल-खगोल वर्जनम्', 'शकुन्तला' एवं 'व्याकरण कौमुदी' (भाग-4) आदि हैं। इन कृतियों द्वारा विद्यासागर ने बंगला भाषा एवं आधुनिक बंगला गद्य-शैली को एक नया आयाम दिया।

ईश्वरचंद्र ने अपने जीवन में पद-प्रतिष्ठा से अधिक महत्व पद की गरिमा एवं सुधार संबंधी योजनाओं को दिया। यही वजह है कि सन 1847 ई. में उन्होंने उप-सचिव का पद त्याग कर अपने सहयोगियों के साथ मिलकर 'तत्व बोधिनी' सभा का निर्माण किया। बंगाल के युवाओं के विचारोद्वेलन के लिए 'तत्व बोधिनी' पत्रिका का संपादन भी आरंभ किया। युगीन समाज में यह पत्रिका उनके मंतव्यों एवं विचारों की संवाहक बनी। समाज में व्याप्त विभिन्न कुरीतियों, आडंबरों, रूढ़ियों तथा कुसंस्कारों को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए विद्यासागर शिक्षा की दिशा में नए मानदंडों के स्वीकृति के लिए अविचल रहे। शिक्षा में नवीनता के आग्रही आधुनिक बंगला भाषा के जनक ईश्वरचंद्र ने संस्कृत कॉलेज की पुरानी रूढ़ियों को तोड़ा। उन्होंने संस्कृत कॉलेज में प्रवेश परंपरा की नियमावली का विरोध करते हुए शिक्षा को सर्वमुखी बनाने एवं शिक्षार्थियों के उत्तम भविष्य के लिए कॉलेज के द्वार सबके लिए खोल दिए। इस प्रसंग में रचना भोला 'यामिनी' की उक्ति है- *''विद्यासागर जी पूरे उत्साह व मनोयोग से सुधार योजनाओं के क्रियान्वयन में जुटे थे। उन्होंने शिक्षा के अध्ययन-अध्यापन की अन्य व्यवस्थाएँ कीं।...जाति के आधार पर लड़कों के प्रवेश पर उन्होंने ही रोक लगाई। उन्हीं के प्रयत्नों से सभी जातियों के लड़कों को कॉलेज में शिक्षा पाने का अधिकार मिल सका।''*[3] 19वीं सदी के रूढ़ परिवेश में ईश्वरचंद्र सशक्त रूप से भारतीय समाज के उन्नयन के स्रोत बने रहे। उन्होंने शिक्षण संस्थानों के सुगम संचालन के लिए अनुशासन पर विशेष बल दिया। इसके अलावा पुस्तक प्रकाशन, संस्कृत प्रेस एवं सहयोगी संस्थान डिपोजिटरी प्रेस आदि की नींव रखी। उनके द्वारा स्थापित दोनों प्रेस संस्कृत और बंगला भाषा की पुस्तकों के प्रकाशन के अतिरिक्त भाषायी विकास की एक सशक्त माध्यम सिद्ध हुई। सन 1849 ई. में विद्यासागर 'फोर्ट विलियम कॉलेज' में अल्पावधि के लिए प्रमुख लेखक व कोषाध्यक्ष नियुक्त हुए। तत्पश्चात सन 1850 ई. में ससम्मान संस्कृत कॉलेज में संस्कृत भाषा तथा साहित्य के शिक्षक पद पर आसीन हुए। इस पद पर सेवारत रहते हुए सन 1851 ई. से 1858 ई. तक ईश्वरचंद्र ने संस्कृत कॉलेज के आचार्य पद का दायित्व निर्वाह करते हुए अथक परिश्रम, लगन तथा कर्मठता से शिक्षा के नए अध्याय का सूत्रपात किया। भारतीय समाज की आर्थिक विपन्नता से परिचित विद्यासागर ने शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के लिए सन 1851 ई. में कॉलेज में प्रवेश शुल्क को कम कर दो रुपए किया, जिससे समाज का हर वर्ग शिक्षा का अधिकारी बन सके।

विद्यासागर एक सम्यक समाजद्रष्टा थे। विभिन्न प्रकार के कुसंस्कारों और अंधविश्वासों से ग्रसित पतनशील समाज को उन्नत एवं संतुलित बनाने के लिए वे स्त्रियों को जागरूक और शिक्षित बनाना चाहते थे। जे. पी. सिंह का मंतव्य है- *''महिलाओं की सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाने में विद्यासागर जी का प्रमुख योगदान रहा है। इस क्षेत्र में वे राममोहन राय के सुयोग्य उत्तराधिकारी सिद्ध हुए।''*[4] असल में राममोहन राय की तरह सुधारात्मक कार्यों में विद्यासागर का योगदान भी सराहनीय रहा है। उनका मानना था कि स्त्रियाँ जब तक चेतन और स्वावलंबी नहीं होंगी, तब तक बाल विवाह, बहु विवाह तथा सती प्रथा जैसे अमानवीय कृत्यों का अंत संभव नहीं है! उस काल में समाज और परिवार नामक संस्था में स्त्रियों को स्वतंत्रता एवं अस्तित्व बोध का आभास क्षीण था। 19वीं सदी के क्रूर पितृसत्तात्मक समाज के विषम परिस्थितियों में ईश्वरचंद्र उपेक्षित स्त्रियों को विद्यालय के प्रांगण में प्रविष्ट कराने के लिए संघर्षशील रहे। उनका ध्येय स्त्रियों को शिक्षित करना ही नहीं, अपितु पुरुष प्रधान समाज में उन्हें अधिकार और सम्मान भी दिलाना था। तत्कालीन परिवेश में राजा राधाकांत देव ने स्त्री शिक्षा पर सन 1842 ई. में एक आँकड़ा प्रस्तुत किया, जिसके अनुसार कलकत्ता में 50 बालिका विद्यालय सचल थे और उनमें लगभग 800 बालिकाएँ शिक्षा ग्रहण कर रही थीं। लेकिन विद्यासागर केवल कलकत्ता ही नहीं, बल्कि पूरे बंगाल में स्त्रियों के निरंतर समृद्धि के लिए सरकारी सिफारिशों तथा योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए सक्रिय रहे। उन्होंने सरकारी बालिका विद्यालयों की स्थापना के लिए प्रस्ताव एवं योजनाएँ तैयार कीं, किंतु सरकार इन योजनाओं के प्रति निष्क्रिय रही। लेकिन इस निषेधात्मक प्रतिक्रिया से उनका मनोबल कमजोर नहीं पड़ा, वरन निजी खर्च पर ये योजनाएँ फलीभूत हुईं। इस क्षेत्र में उन्हें डी.डब्ल्यू. बेथुन का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ। डी. डब्ल्यू. बेथुन

तथा बंगाल के अन्य बुद्धिजीवियों के सहयोग से सन 1849 में 'हिंदू गर्ल्स स्कूल' की स्थापना हुई, जो कालांतर में 'बेथुन स्कूल' के नाम से प्रख्यात हुआ। यह प्रयास स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में सशक्त रहा। शिक्षा के क्षेत्र में विद्यासागर के ऊर्जा व उत्साह से प्रभावित डी. डब्ल्यू. बेथुन ने उन्हें 1850 ई. में बेथुन गर्ल्स कॉलेज के सचिव पद के लिए आमंत्रित किया। फलस्वरूप बालिकाओं को मुफ्त शिक्षा तथा परिवहन की सुविधा प्रदान की गई। इन सुविधाओं के बावजूद बालिकाओं का विद्यालय जाना एक बड़ी चुनौती थी। इन जड़ताओं से मुक्ति के लिए विद्यासागर को सामाजिक प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। कठिन परिश्रम के पश्चात विद्यासागर ने शास्त्र नियमावली के आधार पर पुरुषों के समान स्त्रियों को भी शिक्षा की अधिकारिणी सिद्ध किया। उन्होंने स्त्रियों के लिए प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा का मार्ग प्रशस्त किया। फलत: बंगाल के विविध जिलों में बालिका विद्यालयों की नींव पड़ी।

सन 1858 ई. तक विद्यासागर ने बंगाल में 35 बालिका विद्यालयों की स्थापना कर शिक्षा के नवांकुर से बंगाल की स्त्रियों को चेतना, स्वतंत्रता एवं बौद्धिकता का पाठ पढ़ाने का प्रयास किया। उनके इस कदम से बंगाल की ग्रामीण स्त्रियाँ प्रबुद्ध समाज के सुदृढ़ अंश के रूप में चिह्नित हुईं। बंगाल के हुगली जिले में 20, बर्दवान में 11, मिदनापुर में 3 एवं नदिया में 1 बालिका विद्यालय की आधारशिला रखी गई। इसके अतिरिक्त ईश्वरचंद्र ने स्त्रियों के अबाधित विकास के लिए 'नारी शिक्षा भंडार' की नींव रखी। विद्यासागर के सामाजिक एवं धार्मिक सुधार की प्रेरणा उनकी पैतृक भूमि वीरसिंहा रही। गाँव के परिवेश ने उनके अंत:करण को सुधार कार्यों के लिए उद्वेलित किया। वे मात्र 9 वर्ष की अल्पायु में शिक्षा प्राप्ति के लिए पैदल कलकत्ता आए थे। इसलिए अपने पैतृक गाँव के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए सन 1853 ई. में वीरसिंहा में एंग्लो संस्कृत नि:शुल्क विद्यालय की स्थापन की। उनके इन सुधारात्मक कृत्यों के संबंध में सुबल चंद्र मित्रा की उक्ति है- *"In 1853, Vidyasagar founded a free school in his native village, Birsingha, & attached to it a night school for the education of the sons of the cultivating class in the night. He purchased a plot of land for the site of the school out of his own funds."* [5] इस विद्यालय का मूल उद्देश्य ग्रामीण बच्चों को मातृभाषा के साथ-साथ अंग्रेजी शिक्षा भी प्रदान करना था, जिसे विद्यासागर ने पूरी निष्ठा के साथ जीवन पर्यंत जारी रखा।

संस्कृत कॉलेज में सेवारत रहते हुए उन्होंने विद्यार्थियों के नव बौद्धिक अंकुरण के लिए अंग्रेजी शिक्षा को अनिवार्य माना। उनके प्रेरणादायी प्रयासों के प्रभावस्वरूप सन 1859 में उनके कुछ अनुयायियों ने 'कलकत्ता ट्रेनिंग स्कूल' की शुरुआत की। विद्यासागर इस प्रशिक्षण विद्यालय के सचिव पद पर नियुक्त हुए और इस प्रशिक्षण विद्यालय का कार्यभार भी संभाला। यह विद्यालय गैर-सरकारी संस्थान के रूप में अपना विकास करती गया। ईश्वरचंद्र ने इस प्रशिक्षण संस्थान का संपूर्ण आर्थिक व्यय स्वयं वहन किया। सन 1872 ई. में यह कॉलेज अपना क्षेत्र विस्तार करते हुए सेकेंड ग्रेड कॉलेज के रूप में चिह्नित हुआ। कालांतर में सन 1879 ई. में यह संस्थान फर्स्ट ग्रेड कॉलेज के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। उच्च शिक्षा को समाजोपयोगी बनाने के लिए सन 1884 ई. में नए पाठ्यक्रम की शुरुआत हुई और सन 1885 ई. में स्नातक एवं स्नातकोत्तर तक शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गई। देश के विभिन्न स्थानों में इसकी कई शाखाएँ भी खोली गईं, जिससे उच्च शिक्षा सर्व सुलभ हो सके।

19वीं सदी के नवजागरणकालीन परिवेश में विद्यासागर ने एक सच्चे सारथी के रूप में अपना योगदान दिया। उनकी शील, उदार तथा धर्मार्थ प्रवृत्ति ने उन्हें विधवाओं की करुण स्थिति के लिए द्रवित किया, जिससे वे समाज में प्रचलित बहु विवाह, सती प्रथा एवं बाह्य आडंबरों को खंडित करने के लिए कटिबद्ध हुए। विद्यासागर बचपन से ही इन कुरीतियों एवं बुराइयों से आहत थे, विशेषकर बालपन तथा युवावस्था में विधवा हुई बालिकाओं और स्त्रियों की बदरंग, उपेक्षित एवं कठोर अनुशासनपूर्ण जीवन ने उन्हें स्त्रियों के सामाजिक उद्धार के लिए आंदोलित किया। स्त्री सशक्तिकरण के इस अविरल धारा को गतिमान बनाए रखने के लिए स्त्रियों को शिक्षित करने के साथ उनके पुनर्विवाह का दयित्वभार भी ग्रहण किया। परंपरावादी समाज में रूढ़िवादी संस्कारों के गतिरोध

के लिए उन्होंने विधवा विवाह को शास्त्रों और धर्मग्रंथों के आधार पर युक्ति सम्मत सिद्ध किया। ईश्चरचंद्र को तर्क और विचारों द्वारा पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों के अधिकार और उत्थान के लिए सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ा, किंतु वे अपने आदर्शों पर अविचल रहे। उन्होंने संस्कृतकालीन 'पराशर संहिता' द्वारा विधवा विवाह को धर्मसम्मत प्रमाणित करने के साथ-साथ आधुनिक समाज में कानून सम्मत भी बनाया। विधवा विवाह को विद्यासागर ने जुलाई 1856 ई. में कानूनी सहमति प्रदान करने में भरपूर योग दिया। दरअसल, ईश्वरचंद्र के सुधारवादी दृष्टि एवं अथक प्रयत्नों से सन 1856 ई. में 'विधवा पुनर्विवाह अधिनियम' पारित हुआ। इस संबंध में सुबल चंद्र मित्रा ने लिखा है— *"Vidyasagar was a hindu of the arthodox type, but he felt the position of inferiority assigned to the women in India, and own their behalf he started the widow marriage movement***when the Indian legislature passed an act in 1856 legaslising, the marriage of Hindu widows, the first widow marriage under Act took place in Calcutta in December, 1856."* [6]

निष्कर्ष : बंगाल के सिरमौर विद्यासागर ने अपना संपूर्ण जीवन और संपत्ति परोपकार और समाज सुधार के लिए अर्पित कर दिया। अपनी अपरिमेय बौद्धिक उन्नति को मानवीय उद्धार के लिए तल्लीन करने वाले ईश्चरचंद्र 'करुणासागर' भी थे। बंगाल के अकाल के दौरान उन्होंने हजारों की संख्या में निरीह व असहाय मानव जीवन की रक्षा के लिए नि:शुल्क दवा एवं भोजन का प्रबंध किया। प्रभात खबर डिजिटल डेस्क की एक रिपोर्ट के अनुसार– *''बंगाल के हजार वर्षों के इतिहास में सबसे महान बंगाली हस्तियों को जानने के लिए बी.बी.सी. की 'बांग्ला-सेवा ने सन 2004 में एक ओपिनियन पोल का आयोजन किया।... इस सूची में समाज-सुधारक और शिक्षाविद ईश्वरचंद्र विद्यासागर नौवीं शख्सियत हैं।''* [7] नि:संदेह, दो सौ वर्षों के पश्चात बंगाल के परिदृश्य में काफी अंतर आया है। प्राथमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, स्त्री शिक्षा, व्याकरण, बंगला भाषा एवं अंग्रेजी शिक्षा द्वारा भारत विकास की जो मुहीम विद्यासागर द्वारा शुरू हुई थी; वह आज भी जारी है, किंतु 21वीं सदी के भारत में बाल विवाह तथा बहुविवाह जैसे कुसंस्कार पितृसत्तात्मक खोल में आज भी साँसें ले रही हैं। ये दुष्प्रवृत्तियाँ समय-समय पर अपना विकृत रूप समाज के समक्ष प्रस्तुत कर हमारी शिक्षा, आधुनिकता एवं तकनीकी सम्पन्नता पर सवाल उठा रही हैं! इंटरनेट की आभासी दुनिया से लेकर कृत्रिम मेधा तक अपनी कामयाबी का परचम लहराने वाला मनुष्य नैतिक मूल्यों एवं मानवाधिकारों के संतुलन को विस्मृत करता जा रहा है। इस विकट परिदृश्य में दो सदी पूर्व सामाजिक चेतना के अग्रदूत ईश्वरचंद्र विद्यासागर की तपस्या धूमिल पड़ती नजर आ रही है। आज विद्यासागर पुस्तकों एवं तिथियों में प्रासंगिक तो हैं, किंतु उनके विचारों तथा मूल्यों को मनुष्य के संस्कारों एवं नैतिक आचरण में जीवित रखने की आवश्यकता है, जिससे आगामी पीढ़ी भारत विकास में अपना सार्थक योगदान दे सके।

संदर्भ सूची :

1. https://www.boloji.com/articles/7696/ishwar-chandra-vidyasagar
2. Banerjiee, A. (2017), Philosophy and Principal of àßducation, 6th àßdition, Kolkata: B.B. kundu Grand Sons, p.478
3. यामिनी, रचना भोला, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, विद्याविकास एकेडमी, नई दिल्ली, संस्करण 2019, पृ. 52
4. सिंह, जे.पी., आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन : 21वीं सदी में भारत, पी.एच.आई. प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, द्वितीय संस्करण – मई 2019, पृ. 325
5. Mitra, S.C. (2013), Isvar Chandra Vidyasagar Story of his Life and Work, 2nd àßdition, ISBN: 9788188955848, Kolkata: Parul Prakashani, 158
6. Same, p.208
7. https://www.prabhatkhabar.com/vishesh-aalekh/vxxxxyv

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

साहित्य, कला तथा अन्य ज्ञानानुशासन : परस्पर अनुप्रवेश

डॉ. गोविन्द प्रसाद वर्मा

साहित्य समस्त ज्ञानानुशासनों की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है। ज्ञान के विविध रूप साहित्य विद्या में अंतर्निहित होते हैं। प्राचीन काल से ही साहित्य और कला का गहरा और अन्योन्याश्रित संबंध रहा है। साहित्य में कला की और कला में साहित्य की अभिव्यक्ति होती रही है। साहित्य का समाज विज्ञानों से भी परस्पर संबंध रहा है। सामाजिक विषयों में समाजशास्त्र, इतिहास-पुरातत्व, भूगोल, राजनीति विज्ञान आदि का प्रत्यक्ष संबंध भाषा और संवेदना के स्तर पर दिखाई देता है। प्राकृतिक विज्ञानों से कला और साहित्य का प्रत्यक्ष संबंध दिखाई नहीं देता। आधुनिक तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी, वाणिज्य एवं प्रबंधन जैसे विषयों में भी साहित्य और कला का प्रत्यक्ष तो नहीं, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से (भाषा एवं उसके उत्पादन और प्रचार-प्रसार) संबंध रहा है। जिन विषयों के साथ साहित्य और कला का जितना निकट संबंध होता है, उनमें मानवीयता और सांस्कृतिक भावबोध उतना ही घनिष्ठ होता है। जिन विषयों में साहित्य और कला से दूरी जितनी दिखाई देती है, वे अपनी समस्त प्रक्रिया में संवेदनशून्य एवं हृदयगत भावों से काफी दूर दिखाई पड़ते हैं। साहित्य एवं कला रूपों से ज्ञान के अन्य अनुशासनों में परस्पर अनुप्रवेश होते रहना चाहिए, जिससे मनुष्यता के सांकृतिक-विकास क्रम में सजीवता, सरसता एवं मानवीयता सदैव जीवित रहे।

1

समूचे संसार में साहित्य और कला अपनी-अपनी परंपराओं की जीवन-दृष्टि और जीवन पद्धति की उपज होती है। उसका जीवन से गहरा संबंध होता है। साहित्य और कलाओं के बीच अंत:संबंध या परस्परता होती है। ये एक-दूसरे को जीवंत, संप्रेषणीय और शक्तिशाली बनाते रहते हैं। साहित्य की रूप विधाएँ समय-समय पर परिवर्तित होती रहती हैं, जिससे काव्य चिंतन प्रक्रिया में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन होता रहता है। इससे आस्वादन-आस्वादक का रूप भी बदलता रहता है।

भारतीय और पाश्चात्य दोनों परंपराओं में साहित्य और कला का जीवन से गहरा और अनिवार्य संबंध रहा है। इसीलिए तो कहा जाता है कि साहित्य समाज की अभिव्यक्ति है। इसका तात्पर्य है साहित्य और कला व्यक्ति और समाज के भाव, विचार, संवेदना के अनुभूति की अभिव्यक्ति है। सबसे पहले सवाल यह

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
मानविकी और भाषा संकाय, गांधी भवन, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, बनकट, मोतिहारी, पूर्वी चंपारण, बिहार-845402
9764513071
govindvillage@gmail.com

उठता है कि साहित्य और कला क्या है? उसका जीवन से किस तरह का संबंध रहा? साहित्य और कला में किस तरह का अंतरसंबंध या परस्परता रही? साहित्य और कला को समझने के लिए इन सवालों से संवाद आवश्यक है।

भारतीय साहित्य चिंतन परंपरा में प्रारंभ से ही साहित्य किसे कहा जाए? को लेकर चर्चा होती रही है। सबसे पहला काव्य-लक्षण या परिभाषा आचार्य भामह की मानी जाती है। उनका चर्चित काव्य-लक्षण है –

''शब्दार्थौ सहितौ काव्यं''[1]

(शब्द और अर्थ दोनों मिलकर काव्य कहलाते हैं।)

इस परिभाषा में मूल तत्व 'सहभाव (शब्द और अर्थ का) है, जिससे काव्य निर्मित होता है। वैसे तो वाणी का समस्त व्यापार शब्दार्थ में अपनी अभिव्यक्ति पाता है, परंतु भामह का शब्दार्थ विशिष्ट प्रकार का है। आचार्य मम्मट का काव्य के संदर्भ में कहना है –

''तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।''[2]

(दोषों से रहित गुण-युक्त और (साधारण अलंकार सहित परंतु कहीं-कहीं अलंकार-रहित शब्द और अर्थ (दोनों की समष्टि) काव्य कहलाता है।)

मम्मट की दृष्टि में विशिष्ट शब्दार्थ से युक्त दोष-रहित, गुणों से युक्त और अलंकार रहे तब भी ठीक, न हो तब भी ठीक। मम्मट समन्वयवादी आचार्य हैं। इसलिए वे अपने पूर्व की चिंतन परंपरा को एक में समाहित कर अपना काव्य लक्षण प्रस्तुत करते हैं। 'साहित्यदर्पण' के रचयिता कविराज विश्वनाथ रसात्मक वाक्य को काव्य कहते हैं-

''वाक्यं रसात्मकं काव्यं।''[3]

इससे यह अर्थ लगाया जा सकता है कि विश्वनाथ के समय तक 'रस' एक व्यापक सिद्धांत के रूप में मान्य हो चला था। 'रसगंगाधर' के लेखक पंडितराज जगन्नाथ काव्य को रमणीयार्थ प्रतिपादक कहते हैं-

''रमणीयार्थप्रतिपादक- शब्दः काव्यम्।''[4]

(अर्थात जिस शब्द से रमणीय अर्थ का बोध हो, वह शब्द काव्य है।)

यहाँ 'रमणीयता' से तात्पर्य है-साहित्य के आस्वादन से लोकोत्तर आनंदानुभूति की प्राप्ति।

आधुनिक काल में हिंदी साहित्य में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का चिंतन विशिष्ट है। वे आधुनिक मनोविज्ञान की आधार भूमि पर खड़े होकर अपना विचार प्रस्तुत करते हैं। वे व्यष्टि को स्वार्थ से मुक्त होकर समष्टि की भावभूमि पर ले जाने का विचार रखते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का काव्य के बारे में कहना है कि वह मनुष्य को स्वार्थ-संबंधों से मुक्त करता हैं, वे कहते हैं- *''कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक सामान्य भाव भूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक सत्ता में लीन किए रहता है।''*[5]

शुक्ल जी कविता का कार्य लोक की भाव-भूमि पर ले जाना या लोक हृदय में लीन होने की बात बार-बार कहते हैं। उन्होंने एक जगह और कहा है कि वह जगत के मार्मिक पक्षों का साक्षात्कार कर उसको मनुष्य हृदय के साथ सामंजस्य करती है। उन्होंने 'हृदय की मुक्तावस्था को रसदशा' भी कहा है। पंत जी का कहना है कि- *''साहित्य अपने व्यापक अर्थ में मानव-जीवन की गंभीर व्याख्या है।''*[6] लगभग इसी तरह का विचार प्रेमचंद का भी है- *''साहित्य की बहुत-सी परिभाषाएँ दी गई हैं; पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा 'जीवन की आलोचना' है। चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के, या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।''*[7]

उपर्युक्त उद्धरणों से दो बातें स्पष्ट होती हैं। पहली यह है कि संस्कृत काव्यशास्त्री साहित्य की तात्विक व्याख्या करते हैं। ये परिभाषाएँ रसात्मकता, सौंदर्यानुभूति, तत्काल आनंदाभूति की बात करती हैं, जिसका मनुष्य के हृदय से गहरा संबंध है। दूसरा, हिंदी के चिंतकों ने तो किसी भी प्रकार की अलौकिकता, अमूर्तता के स्थान पर लौकिक प्रत्यक्ष अनुभूति की बात कही। उनकी दृष्टि में साहित्य का जीवन से अनिवार्य संबंध है।

जिस तरह से साहित्य का जीवन से गहरा संबंध रहा है, उसी प्रकार कला का भी जीवन से गहरा संबंध रहा है। इस संबंध में कांतिचंद्र पांडेय का मत है – *''साहित्य की तरह ही कला का भी जीवन से गहरा संबंध है। कला के समान्यत: दो अर्थ प्रचलित हैं। एक, कला मानवीय क्रिया है। दूसरा, कला-कलाकृति के इंद्रिय मनुष्य का साधन है।''* [8] इन्हीं आधारों पर कला को देखने की परिपाटी विकसित हुई है।

नीहार रंजन राय का कला के बारे में मत है- *''मनुष्य के हाथों निर्मित वह हर वस्तु 'कला' या 'शिल्प' है, जो लय, संतुलन, अनुपात और सुसंगति आदि की स्थितियों में तैयार होती है, भले ही इसमें मस्तिष्क की सचेतन क्रियाशीलता न हो या उसने प्रेक्षक की अनुभूति तथा कल्पना में अपेक्षित भाव पैदा न किया हो, जैसे-लकड़ी का बना रथ या धातु का कोई साधारण बरतन। संपूर्ण भारतीय परंपरा में 'शिल्प' की यही आधारभूत परिभाषा जमी हुई प्रतीत होती है। जिस किसी श्रमिक ने अपने उत्पादन में इन दो आवश्यकताओं को पूरा किया उसे 'शिल्पी' कहा गया-जैसे ईंट बनाने वाला, खुदाई करने वाला, जिसने तांबे की प्लेट पर खुदाई की या कोई सुलेखक।''* [9] इससे स्पष्ट होता है कि नीहार रंजन राय की दृष्टि में कला वह है, जिसमें लय, संतुलन, अनुपात और सुसंगति हो। वह भले कोई भी वस्तु हो। उनकी दृष्टि में काव्य कला है और घर बनाना भी।

हजारीप्रसाद द्विवेदी कला को मनुष्य के सभी प्रयत्नों से जोड़ते हैं, क्योंकि वही मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाती है। उनका मत है- *''कला उन समस्त मानवीय प्रयत्नों का नाम है जो मनुष्य को सुसंस्कृत मनुष्य बनाती आ रही हैं।''* [10]

सामान्यत: कला का स्वरूप है – भौतिक अथवा आध्यात्मिक, मूर्त अथवा अमूर्त इसको लेकर विद्वानों में मतभेद रहा है। जो लोग कला को भौतिक मानते हैं, वे कला को मानवीय क्रिया मानते हैं। जो लोग आध्यात्मिक मानते हैं, उनके लिए कला विशिष्ट अनुभूति है, परंतु इतना तो स्पष्ट है कि दोनों लोग कला का जीवन से संबंध स्वीकार करते हैं। जिन विद्वानों ने कला को आध्यात्मिक या अमूर्त माना वे कला के अंतर्गत साहित्य की गिनती नहीं करते हैं। जिन विद्वानों ने कला को भौतिक या ऐतिहासिक माना उनकी दृष्टि में साहित्य कला के अंतर्गत है।

विद्यानिवास मिश्र साहित्य को कलाओं से बाहर मानते हैं, लेकिन जीवन से उसकी अभिन्नता को स्वीकार करते हैं। उनका मत है – *''भारतीय साहित्य कलाओं में सम्मिलित नहीं है, यह कलाओं की संयोजिका है, भारतीय कलामात्र (विशेष रूप से प्राचीन) आख्यान पर आधृत है। दूसरे शब्दों में किसी-न-किसी क्रमबद्ध वाचिक रिवाज पर आधृत है। दूसरी बात यह उल्लेखनीय है और भारतीय जीवन पद्धति में साहित्य कला सन्निविष्ट है, उनकी जीवन में अलग कोई स्थिति नहीं है। इसीलिए 'कला कला के लिए' या कला जीवन के लिए' इस प्रकार के विवाद की यहाँ कोई गुंजाइश नहीं है, क्योंकि कला और साहित्य जीवन के उसी प्रकार आभिजात्य अंग है, जैसे श्वसन, रक्त, स्पंदन आदि है।''* [11]

नीहार रंजन राय का मानना है कि कला का संबंध धर्म से है और उसका संबंध समाज से है। वे कहते हैं- *''शिल्प, चित्रकारी, वास्तुकला तथा संगीत, नृत्य और नाटक तथा श्रेष्ठ परंपरागत अभिघटन (प्लास्टिक) कलाओं के समूचे क्षेत्र पर यदि दृष्टिपात करें तो यह शीघ्र ही समझ में आ जाता है कि कुल मिलाकर कला भारत में धर्म और किसी न किसी प्रकार के धार्मिक संप्रदायों (उदाहरण के लिए सामान्य जन के कबीलाई-जादुई धर्म और ग्रामीण-कृषि-प्रधान धर्म, वर्गीकृत जातियों और उच्च वर्गों के संगठित और संस्थाबद्ध धर्म) की सेवा करने के काम में लाई जाती थी और विभिन्न समाजों तथा विभिन्न स्तरों के सामाजिक-धार्मिक उत्सवों और प्रथाओं में उसका उपयोग किया जाता था। प्राचीन और मध्यकालीन विश्व के अधिकांश देशों में कमोबेश यही स्थिति थी। आमतौर पर यह सर्वविदित है कि ऐसी स्थिति क्यों थी? संक्षेप में, जैसा कि मैं संकेत कर चुका हूँ, चूँकि कला में जनता को आकृष्ट करने की क्षमता होती है, अत: इसे किसी खास समाज में एक धार्मिक संप्रदाय या पद्धति और*

उसके आदर्शों, कर्मकांडों, प्रतीकों, मिथकों और पुराण कथाओं तथा आचार विधि को विस्तृत करने और गहराई तक उसकी जड़ जमाने लायक बनाने में अत्यधिक सक्षम साधन समझा जाता था।''[12]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि कला को धर्म की सेवा के लिए उपयोग किया गया। इसका विभिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न रूप रहा है। कला को कोई भी समाज या वर्ग इसलिए अपना माध्यम बनाता है कि वह सबसे ज्यादा आकर्षित और प्रभावित करने वाली विद्या है। नीहार रंजन राय की दृष्टि में कला का जितना संबंध धर्म से रहा है उतना ही लौकिक जीवन से भी है, वे लिखते हैं– *''यह तथ्य कि परंपरागत भारत में कला धर्म की सेवा में लगा दी गई थी, प्रमाणित नहीं करता कि लौकिक जीवन में इसकी कोई भूमिका नहीं थी। यह सिद्ध करने के पर्याप्त प्रमाण हैं कि लौकिक जीवन में ये सारी कलाएँ ज्ञात और उतनी ही सक्रियता से प्रयुक्त थीं, जितनी सक्रियता में धर्म।''*[13]

कला ऐसा प्रभावशाली माध्यम है, जो मनुष्य को सुख और आनंद देता है। वह उसे समयानुसार प्रशिक्षित भी करता चलता है। वस्तुत: कला मनुष्य की समग्र सृजनात्मक अभिव्यक्ति है। कला का संबंध जीवन में उपस्थित होने वाले सभी पक्षों से है। इस संबंध में नीहार रंजन राय का मत है – *''कला मानवीय क्रिया की उपज थी, एक ऐसी उपज जिसे मनुष्य और उसका समाज धार्मिक तथा लौकिक दोनों प्रकार के अनेक उद्देश्यों के लिए प्रयोग में लाता था। भारत के परंपरागत लौकिक जीवन में यह सामाजिक राजनीतिक उद्देश्यों के लिए उपयोग में लाई जाती थी, लेकिन विशेष रूप से सामाजिक और व्यक्तिगत आनंद और मनोरंजन के लिए ही इसका इस्तेमाल होता था। चाहे उद्देश्य धार्मिक हो या लौकिक, किंतु इतना स्पष्ट है कि मनुष्य को कला के रूप में एक ऐसा प्रभावशाली माध्यम मिल गया, जिससे वह अपनी इंद्रियों और संवेदनाओं को सुख दे सकता था, मन को कुछ आनंद और दिमाग को खुराक दे सकता था तथा अपना मनोरंजन कर सकता था। इस वजह से मनुष्य ने पाया कि इसके अलावा कला मानव मस्तिष्क और कल्पना को शिक्षित, प्रभावित और अनुकूलित करने का भी प्रभावशाली साधन है।''*[14]

कला प्रकृति और जीवन का यथावत चित्रण नहीं करती, बल्कि आदर्श रूप में उसे प्रस्तुत करती है। उस प्रस्तुतिकरण को आस्वादक पुनर्सृजित करता है और स्वयं से प्रमाणित भी करता है। ऐसी स्थिति में रचना उसको स्व से मुक्त कर देती है। इस संबंध में एम. हिरियन्ना का मत है – *''...कला प्रस्तुत यथार्थ की यथावत नकल नहीं उतारती, बल्कि वह उसे आदर्शीकृत करती है और आदर्शीकरण की इसी प्रक्रिया में उस कला का रहस्य छिपा रहता है। दर्शक के संदर्भ में नि:संदेह ऐसे किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि उसके कला-चिंतन में उसका दिशा निर्देशन करने के लिए वे सहायक उपकरण मौजूद रहते हैं, जिन्हें कलाकार की प्रतिभा उसे प्रदान करती है। लेकिन इस प्रक्रिया में भी एक तरह की सक्रियता की जरूरत पड़ती है, चूँकि आदर्शीकरण के परिणामों को मूर्त करने वाली किसी भी कलाकृति का समर्थ आस्वादन इसकी अंतर्वस्तु की काल्पनिक पुनर्रचना के बिना बिल्कुल असंभव है, इसी तरह जब भावात्मक रूप से पुनर्रचित होकर ही कृति का सौंदर्य दर्शक के लिए वास्तविक बनता है और इसी तरह जब वह स्वयं उसके अपने हृदय द्वारा प्रमाणित होती है तभी वह दर्शक अपने दैनंदिन जीवन के संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठकर स्वयं का भूल जाता है।''*[15]

हिरियन्ना कला अनुभव को स्वयं साध्य मानते हैं। यह सामान्य अनुभव से श्रेष्ठ होती है, परंतु यह दार्शनिक अनुभव की तुलना में क्षणिक होती है। हिरियन्ना ने लिखा है – *''कला का अनुभव, आदर्श अवस्था की तरह ही, इस अर्थ में परम मूल्य रखता है कि इसे स्वयं में एक साध्य की तरह लिया जाता है, न कि किसी और साध्य के लिए साधन मात्र की तरह। आदर्श 'अवस्था' की तरह ही कला अनुभव एक अद्वितीय प्रकार का उल्लास देता है और यही कारण है कि यह सामान्य अनुभव से श्रेष्ठतर होता है, लेकिन यह अधिक देर तक नहीं बना रहता, अपने पीछे की कला उत्प्रेरणा के हटते ही गुजर जाता है और इसकी जगह फिर से दैनंदिन जीवन के संघर्ष और*

दुविधाएँ ले लेते हैं। आदर्श अनुभव इसके विपरीत ऐसा नहीं होता, क्योंकि यह एक बार प्राप्त होने के बाद हमेशा के लिए बना रहता है। इसके अलावा, कला अनुभव के लिए दार्शनिक ज्ञान और नैतिक मूल्यवत्ता कोई अनिवार्य शर्त नहीं है। यह इनके बिना भी, कला की सच्ची कृतियों की शक्तिमात्र से साकार हो जाता है।''[16]

भारतीय साहित्य चिंतकों में आचार्य भामह ने कहा कि सत्काव्य से कला में प्रवीणता आती है। ऐसा लगता है कि इस तरह के विचार के पीछे कला को साहित्य से अलग और निम्न कोटि मानने की दृष्टि काम कर रही है। उनका मत है–

''धर्मार्थकाम मोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।

प्रीतिं करोति कीर्तिं च साधुकाव्य निबंधनम्।।2।।''[17]

(अर्थात्–सत्काव्य का निर्माण धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष एवं कलाओं में प्रवीणता, आनंद तथा यश (प्रदान) करता है।)

इससे इतना तो स्पष्ट है ही कि साहित्य या कला का जीवन से गहरा संबंध हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने काव्य की अंत:प्रकृति को जीवन और जगत के साथ मनुष्य हृदय का गूढ़ सामंजस्य कहा। वे इसी आधार पर साहित्य चिंतन की व्याख्या भी करते हैं – *''हमारे यहाँ के संपूर्ण काव्य क्षेत्र की अंत:प्रकृति की छानबीन कर जाइए, उसके भीतर जीवन के अनेक पक्षों और जगत के नाना रूपों के साथ मनुष्य हृदय का गूढ़ सामंजस्य निहित मिलेगा। साहित्य शास्त्रियों का मत लीजिए तो जैसे संपूर्ण जीवन, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष का साधन रूप है, वैसे ही उसका एक अंग काव्य भी। 'अर्थ' का स्थूल और संकुचित अर्थ द्रव्य प्राप्ति ही नहीं लेना चाहिए, उसका व्यापक अर्थ लोक की सुख समृद्धि लेनी चाहिए। जीवन के और साधनों की अपेक्षा काव्यानुभव में विशेषता यह होती है कि वह एक रमणीयता के रूप में होती है, जिसमें व्यक्तित्व का लय हो जाता है। बाह्य जीवन और अंतर्जीवन की कितनी उच्च भूमियों पर इस रमणीयता का उद्घाटन हुआ है, किसी काव्य की उच्चता और उत्तमता के निर्णय में इसका विचार अवश्य होता आया है, और होगा। हमारे यहाँ के लक्षण ग्रंथों में रसानुभव को जो 'लोकोत्तर' और 'ब्रह्मानंद सहोदर' आदि कहा है। वह अर्थवाद के रूप में, सिद्धांत रूप में नहीं। उसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि रस में व्यक्तित्व का लय हो जाता है।''*[18]

शुक्ल जी जिस तरह रस को व्यक्तित्व में लय करके जीवन की उच्च्य भाव–भूमि से जोड़ते हैं, कुछ कुछ वैसा ही नीहार रंजन राय भी मानते हैं। उसकी दृष्टि में रस एक प्रकार से जीवन का सत्त्व है। वे आनंदवर्द्धन के माध्यम से अपना विचार इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं – *''आनंदवर्द्धन यदि स्वयं ध्वनिकार नहीं तो ऐसे प्रथम व्यक्ति अवश्य थे, जिन्होंने इसे पहचाना और स्पष्ट किया कि कला का सार न तो निश्चित कलागत विषय के सौंदर्य–सतह पर दिखने वाले शारीरिक अंगों में है और न ही प्रस्तावक वक्तव्यों या वर्णनात्मक प्रस्तुतियों की सटीकता में है, न ही उपरिचर्चित रूपात्मक गुणों में है, जिन्हें मापा जा सके। उन्होंने आवश्यक रूप से यह स्पष्ट किया कि कला का सार एक प्रकार की शरीरी प्रकृति के अस्तित्व में है ऐसे ही रूप में था भी, यह किसी निश्चित कलागत विषय की शक्ति में एक प्रकार का ऐसा शक्तिशाली गतिशील प्रभाव जगाने के लिए मौजूद रहता है, जिसकी जानकारी किसी सजीव गुण से प्राप्त हुई थी। इस प्रभाव को ही रस कहा गया है। यह प्रभाव अनुभूतियाँ और मन:स्थितियों की भाषा में व्यक्त जीवन के महत्वपूर्ण सत्त्व का उत्पादन है।''*[19]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि भारतीय साहित्य और कला को देखने की सामान्यत: दो दृष्टियाँ रही हैं। पहली ये है कि कला ऐतिहासिक या भौतिक है, मूर्त या लौकिक है। इनसे जुड़े चिंतकों के लिए कला मानवीय क्रिया की उपज है। इसका धर्म, समाज और जीवन से गहरा संबंध है। इसमें कला के अंतर्गत काव्य की भी गिनती की जाती है। दूसरी दृष्टि के अनुसार साहित्य आध्यात्मिक अमूर्त या अलौकिक है। इसमें धर्म और जीवन का जुड़ाव है, लेकिन वह उच्च स्तर पर सत्त्व बोध संपन्न माना जाता है। इसमें साहित्य, दर्शन की कोटि का माना जाता है, जबकि कला उसमें निम्न कोटि

का। साहित्य को विद्या माना गया जबकि कला को उपविद्या।

भारतीय साहित्य और कला क्रियाशील संवादी रही है, अर्थात परस्पर आवाजाही करते रहे हैं। भारतीय चिंतन परंपरा में भरत, भामह, दंडी, अभिनवगुप्त आदि ने यथाप्रसंग इसकी चर्चा की है। आचार्य भरत ने नाट्य के पक्ष से कहा है कि कोई भी ऐसी कला नहीं, जो इसमें न हो। उनका मत है –

''न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत् कर्म नाट्येऽस्मिन यन्न दृश्यते।।''[20]

(अर्थात–न ऐसा कोई ज्ञान है, न ऐसा कोई शिल्प है, न ऐसी विद्या या ऐसी कोई कला और न ऐसा कोई योग या ऐसा कोई कर्म है जो इस नाट्य में दिखाई न देता हो।)

इससे इतना तो स्पष्ट है ही कि साहित्य चर्चा में कलाओं की उपस्थिति रही है। भामह ने भी कहा ही है कि सत्काव्य से कला में प्रवीणता आती है।

कलाओं के अन्योन्याश्रित होने का सबसे महत्वपूर्ण साक्ष्य विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मिलता है। इस पुराण के तीसरे खंड में 'चित्रसूत्र' नामक अध्याय 6 में व्रज और मार्कंडेय संवाद के रूप में इसकी चर्चा मिलती है। इस संवाद को सुरेंद्र एस. बारलिंगे ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है –*''व्रज पूछता है-चित्रकला में कोई किस प्रकार कुशल हो सकता है? मार्कंडेय उत्तर देते हैं कि–नृत्यकला में कुशलता प्राप्त किए बिना कोई चित्रकला में पारंगत नहीं हो सकता। इस पर व्रज उनसे नृत्य की विधि की व्याख्या करने तथा 'चित्रसूत्र' के विषय में चर्चा करने का अनुरोध करते हैं और मार्कंडेय कहते हैं कि ये दोनों कलाएँ साथ–साथ चलती हैं, क्योंकि ये दोनों ही 'अनुक्रिय' (क्रिया का अनुरूपण करने वाली) हैं। मार्कंडेय आगे कहते हैं कि जो व्यक्ति किसी वाद्य का वादन नहीं करना जानता, वह नृत्य में पारंगत नहीं हो सकता। फिर व्रज वाद्य यंत्रों के विषय में कुछ प्रश्न करता है। मार्कंडेय कहते हैं कि कंठ संगीत (गायन) ज्ञान के अभाव में किसी भी वाद्य के वादन में निपुणता प्राप्त नहीं हो सकती। इस प्रश्नोत्तर से उनकी यह मान्यता स्पष्ट हो जाती है कि ललित कलाएँ परस्पर संबद्ध (अन्योन्याश्रित) हैं और किसी भी कला का एकांतिक अभ्यास नहीं किया जा सकता।''*[21]

कालिदास ने भी कलाओं की अन्योन्याश्रिता को महत्त्व दिया है उन्होंने अपने प्रसिद्ध नाटक–'मालविकाग्निमित्रम्' में इसका संदर्भ प्रस्तुत किया है। आचार्य गणदास की शिष्या मालविका जब नृत्य–प्रस्तुति करती है तब कलाओं की परस्परता का संदर्भ उपस्थित होता है –

''अङगैरन्तर्निहित वचनै: सम्यमर्थ:
पादन्यासो लयमनुगतस्तन्मयर्त्व रसेषु।
शाखायोनिर्मृदुरभिनयस्तदा विकल्पानुवृत्तौ
भावो भावं नुदति विषयोद्रागबंध: स एव।।''[22]

(अर्थात्–गीत के सब भावों का ठीक–ठीक अर्थ अंगों के अभिनय से भली–भाँति दिया गया है। इनके पैर भी लय के साथ चल रहे थे। फिर गीत के रस में भी तन्मय हो गई थीं और इनके नृत्य ने भी हमें प्रेम में मग्न कर दिया, क्योंकि ताल के साथ होने वाले अभिनय में अनेक प्रकार के अंग चलाकर जो दिखाए जा रहे थे, वे ऐसे आकर्षक थे कि मन किसी ओर जाने ही नहीं पाता था।)

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि भारतीय साहित्य और कला अन्योन्याश्रित, अंतरानुशासित और समावेशी रही है। साहित्य को जाने बिना कला को और कला को जाने बिना साहित्य को ठीक–ठीक नहीं जाना और समझा जा सकता। जब–जब ये संगति और संतुलन ठीक रहा है, साहित्य और कला उत्कर्ष पर रहे हैं।

पश्चिम में साहित्य और कला पर विचार सौंदर्यशास्त्र के अंतर्गत हुआ हैं इसलिए साहित्य कला के अंतर्गत है या नहीं जैसे सवाल समाप्त हो जाते हैं, परंतु कुछ दूसरे महत्वपूर्ण सवाल हैं– साहित्य और कला क्या है? उनका जीवन से क्या संबंध है? इनमें आपस में किस तरह का संबंध रहा है?

अरस्तू का काव्य के बारे में कहना है कि–''काव्य एक कला है।'' अरस्तू की दृष्टि में काव्य और कला (मूर्ति, चित्र, संगीत, स्थापत्य) एक कल्पनात्मक पुन:सृजन है। इसीलिए अरस्तू के आलोचकों ने भी काव्य या कला

की कुछ ऐसी ही व्याख्या की। बुचर का कहना है – *''कला, मूल वस्तु का पुनररुत्पादन जैसी वह होती है वैसी नहीं, वरन जैसी वह इंद्रियों को प्रतीत होती है, उस रूप में करती है। कला का संवेदन अमूर्त भावना एवं बिंब विधायक शक्ति के प्रति होता है।''*[23]

इसी तरह काव्य और कला को पारिभाषित किया जाता रहा। किसी ने काव्य को– 'भावों का सहज उच्छलन कहा', तो किसी ने कला को 'अभिव्यंजना', किसी ने 'सामूहिक चेतना' की अभिव्यक्ति।

पाश्चात्य चिंतन में काव्य और कला को कभी जीवन और जगत से जोड़कर देखा गया तो कभी उसे पृथक करके। जब काव्य और कला को जीवन और जगत् से अलग करके देखा जाने लगा, तभी– 'कला कला के लिए' जैसे आंदोलन शुरू हुए। इसके प्रतिनिधि प्रवक्ता ए.सी. ब्रैडले हैं। इस संबंध में उनके मत को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उद्धृत किया है– *''यह (काव्य-सौंदर्य संबंधी) अनुभव अपना लक्ष्य आप ही है, इसका अपना निराला मूल्य है। अपने विशुद्ध क्षेत्र के बाहर भी इसका और प्रकार का मूल्य हो सकता है। किसी कविता से यदि धर्म और शिष्टाचार का भी साधन होता तो कुछ शिक्षा भी मिलती हो, प्रबल मनोविकारों का कुछ विरोध भी संभव हो, लोकोपयोगी विधानों में कुछ सहायता भी पहुँचती हो अथवा कवि को कीर्ति या अर्थ लाभ भी होता हो तो अच्छी बात है। इनके कारण भी उसकी कदर हो सकती है। पर इन बाहरी बातों के मूल्य के हिसाब से उस कविता की उत्तमता की असली जाँच नहीं हो सकती। उसकी उत्तमता तो एक तृप्तिदायक कल्पनात्मक अनुभव विशेष से संबंध रखती है। अत: उसकी परीक्षा भीतर से ही हो सकती है। किसी कविता को लिखते या जाँचते समय यदि बाहरी मूल्यों की ओर भी ध्यान रहेगा तो बहुत करके उसका मूल्य घट जाएगा या छिप जाएगा। बात यह है कि कविता को यदि हम उसके विशुद्ध क्षेत्र से बाहर ले जाएँगे तो उसका स्वरूप बहुत कुछ विकृत हो जाएगा, क्योंकि उसकी प्रकृति या सत्ता न तो प्रत्यक्ष जगत का कोई अंग है, न अनुकृति। उसकी तो एक दुनिया ही निराली है– एकांत, स्वत:पूर्ण और स्वतंत्र।''*[24]

ब्रैडले के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि कविता को प्रत्यक्ष जगत से निरपेक्ष मानते हैं–अर्थात स्वायत्त और स्वतंत्र मानते हैं। इस तरह के चिंतकों की काव्य पर ही नहीं कला पर भी यही राय है। आई.ए.रिचर्ड्स ने इसका प्रतिवाद करते हुए लिखा है – *''यह सिद्धांत कविता को जीवन से अलग समझने का आग्रह करता है। पर स्वयं डॉ. ब्रैडले इतना मानते हैं कि जीवन के साथ उसका लगाव भीतर-भीतर अवश्य है। हमारा कहना है कि यही भीतरी लगाव असली चीज है, जो कुछ काव्यानुभव (पोएटिक एक्सपीरियंस) होता है–वह जीवन से ही होकर आता है। काव्य जगत की शेष जगत से भिन्न कोई सत्ता नहीं है और न उसके कोई अलौकिक या विशेष नियम हैं। उसकी योजना बिल्कुल वैसे ही अनुभवों से हुआ करती है, जैसे और सब अनुभव होते हैं। प्रत्येक काव्य एक परिमित अनुभव खंड मात्र है, जो विरोधी उपादानों के संसर्ग से कभी झटपट और कभी देर में छिन्न-भिन्न हो जाता है। साधारण अनुभवों से उसमें यही विशेषता होती है कि उसकी योजना बहुत गूढ़ और नाजुक होती है। जरा-सी ठेस लगाने पर वह चूर-चूर हो सकती है। उसकी एक बड़ी विशेषता यह है कि वह एक हृदय से दूसरे हृदय में पहुँचाया जा सकता है। बहुत से हृदय उसका अनुभव बहुत थोड़े ही फेरफार के साथ कर सकते हैं। काव्यानुभव से मिलते-जुलते और भी अनुभव होते हैं, पर इस अनुभव की सबसे बड़ी विशेषता है– यही सर्वग्राह्यता (कम्युनिकेबिलिटि। इसीलिए इसके प्रतीतिकाल में हमें इसे अपनी व्यक्तिगत विशेष बातों की छूट से बचाए रखना पड़ता है। यह सबके अनुभव के लिए होता है, किसी एक के लिए ही नहीं। इसीलिए किसी काव्य को लिखते या पढ़ते समय हमें अपने अनुभव के भीतर उस काव्य और उस काव्य से इतर वस्तुओं के बीच अलगाव करना पड़ता है। पर यह अलगाव दो सर्वथा भिन्न या असमान वस्तुओं के बीच नहीं होता, बल्कि एक ही कोटि की वृत्तियों के भिन्न-भिन्न विधानों के बीच होता है।''*[25]

इस तरह रिचर्ड्स काव्यानुभव को जीवनानुभव के समान मानते हैं, तभी तो वे काव्य और जगत की अभेद

सत्ता की बात करते हैं। इसी समानता के कारण एक व्यक्ति का अनुभव दूसरा भी करने लगता है। उपर्युक्त दोनों उद्धरणों से स्पष्ट है कि पश्चिम में काव्य और कला जीवन से संबंध को लेकर सामान्यत: दो दृष्टियाँ रही हैं। एक उससे स्वायत्त और स्वतंत्र मानता है तो दूसरा उससे अभिन्न मानता है।

पश्चात्य जगत की काव्य और कला में परस्पर अंत:संबंध भी रहा है। साहित्य ने समय-समय पर कला को और कला ने भी समय-समय पर साहित्य को प्रभावित किया है। कलाओं के साहित्य पर प्रभाव को रेनेवेलेक ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है – *''साहित्य और अन्य ललित कलाओं तथा संगीत के बीच अनेक संबंध पाए जाते हैं और ये संबंध बहुत जटिल हैं। कुछ ऐसे उदाहरण पाए जाते हैं, जिनमें कविता ने चित्रकला या मूर्तिकला या संगीत से प्रेरणा ली है। प्राकृतिक वस्तुओं और व्यक्तियों की ही तरह दूसरी कलाकृतियाँ भी कविता का विषय बन सकती हैं। कवियों ने मूर्तिकला, चित्रकला या संगीत तक की रचनाओं का वर्णन किया है, इससे कोई खास सैद्धांतिक समस्या नहीं खड़ी होती। कहा जाता है कि स्पेंसर के कुछ चित्रों की प्रेरणा टेपेस्ट्रियों और स्वांगों से पाई थी, क्लाड लोरां और सैल्वेटर रोज के चित्रों ने 18वीं शताब्दी की कविता के प्रकृति-चित्रों को प्रभावित किया था, कीट्स ने अपनी कविता 'ओड ऑन ग्रीसियन अर्न' के कई ब्योरे क्लाड लोरां के एक विशिष्ट चित्र से लिए थे। स्टीफेन लाराबी के विचार में ग्रीक मूर्तिकला की सारी अंतरकथाएँ और निरूपण अंग्रेजी कविता में पाए जा सकते हैं। अलबर्ट थीबो ने यह सिद्ध किया है कि मलार्मे ने लंदन की नैशनल गैलरी में बूशेर के एक चित्र से प्रेरित होकर एक कविता लिखी थी।''*[26]

रेनेवेलेक के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि चित्र, मूर्ति, संगीत आदि कलाएँ साहित्य की विषय-वस्तु का समय-समय पर माध्यम बनी हैं। इन कलाओं का अलग-अलग स्वतंत्र विकास तो हुआ है, लेकिन ये परस्पर कला-रूपों को प्रभावित और बदलती भी रही हैं। रेनेवेलेक ने लिखा है – *''विभिन्न कलाओं-मूर्ति कलाएँ, साहित्य और संगीत का अपना अलग-अलग विकास हुआ करता और इस विकास का अपना वेग और खंडों का आंतरिक गठन बिल्कुल अलग-अलग हुआ करता है। इसमें संदेह नहीं कि इनका आपस में निरंतर संबंध बना रहता है, लेकिन ये संबंध ऐसे प्रभाव नहीं हुआ करते हैं, जो एक बिंदु से शुरू होते हों और दूसरी कलाओं का विकास इनसे निर्धारित होता हो। इनके द्वंद्वात्मक संबंधों का एक जटिल तंत्र हुआ करता है, जो दोतरफा काम करता है। इसमें एक कला दूसरी से प्रभावित होती है और फिर उलट कर पहली को प्रभावित करती है और यह प्रभाव जिस कला में प्रवेश करता है, उसमें पहुँच कर बिल्कुल रूपांतरित हो जाती है। यह किसी 'युग-सत्य' का सीधा-सादा मामला नहीं है जिससे सभी कलाएँ निर्धारित होती हैं और जो हर कला में व्याप्त रहता है।''*[27]

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों से स्पष्ट है कि साहित्य और कला-रूपों का स्वतंत्र विकास तो हुआ ही है, परंतु परस्पर प्रभावित करते रहे हैं। कला-रूपों के प्रभाव और रूपांतरण की प्रक्रिया को जटिल माना जाता रहा है। फिर भी साहित्य और कला-रूपों में गहरा और अनिवार्य अंत:संबंध रहा है।

2

साहित्य और दर्शन का पूरी दुनिया के साहित्य में गहरा संबंध दिखाई पड़ता है। दर्शन से भाषाशास्त्र और साहित्य शास्त्र का संबंध तो जगजाहिर है। दर्शन पर भाषा के अंग अर्थविज्ञान पर सबसे ज्यादा प्रभाव है और अन्य अंगों 'पद और वाक्य' पर कम। भारतीय साहित्य शास्त्र में रससूत्र के व्याख्याकारों ने दार्शनिक पृष्ठभूमि पर खड़े होकर ही उसकी व्याख्या की है। प्रत्येक बड़ा रचनाकार किसी ने किसी दार्शनिक विचार से प्रभावित होता रहा है। हिंदी साहित्य का भक्ति काव्य दर्शन और साहित्य के संबंध का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। वहाँ अद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि पर गंभीरतापूर्वक विचार दिखाई देता है। इस संबंध में तुलसीदास का 'विनयपत्रिका' में एक महत्वपूर्ण पदांश है–

> *''कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।*
> *तुलसी परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै।।''*[28]

(अर्थात् – अद्वैतवादी वेदांती इस जगत् को मिथ्या अथवा भ्रममात्र कहते हैं। वे ब्रह्म की ही सत्ता स्वीकार करते और उसी में रज्जु–सर्पवत जगत का आभास मानते हैं। और द्वैतवादी तथा विशिष्टाद्वैतवादी कर्म–प्रधान जगत को सत्य मानते हैं। मनु, दक्ष, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ आदि इसी सिद्धांत के प्रतिपादक थे। एक और पक्ष है, वह जगत को असत और सत दोनों ही मानता है। किंतु तुलसीदास के मत से तो ये तीनों ही भ्रम हैं। जो इन तीनों भ्रमों से छुटकारा पा जाता है, जो सब कुछ श्रीहरि की लीला ही मानता है, वही वास्तविक स्वरूप को पहचान सकता है।)

यूनान में दार्शनिकों से ही भाषा चिंतन की शुरुआत होती है। उन्होंने ही काव्यशास्त्र अथवा सौंदर्यशास्त्र का चिंतन प्रस्तुत किया। पश्चिम के एक विचारक बेलिंस्की का इस संबंध में कहना है कि *''कविता और दर्शन अब छत्तीस का अंक नहीं रहे, वे अब एक- दूसरे का निरंतर हाथ बँटाते और कभी–कभी इस हद तक एकात्म हो जाते हैं कि कुछ दार्शनिक कृतियाँ प्रमुखत: काव्य की और काव्य कृतियाँ दर्शन की ऊँचाइयों को छुती मालूम होती हैं।''*[29]

जिस तरह आचारशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र उन्नीसवीं–बीसवीं शताब्दी में दर्शनशास्त्र से अलग ज्ञानानुशासन बने; उसी तरह से मनोविज्ञान भी आधुनिक काल में दर्शन से अलग एक स्वतंत्र विषय बन गया। मनोविज्ञान में मन की क्रियाओं का अध्ययन होता है, उसमें मनुष्य के व्यवहार जगत का अध्ययन होता है। मनोविज्ञान का मुख्य क्षेत्र चेतन और अचेतन मन तथा उसका सामूहिक आद्यबिंब है। साहित्य का भी क्षेत्र मनोभावों और संवेदन से हैं। दोनों एक ही क्षेत्र के पथिक होने कारण मनोविज्ञान और साहित्य का गहरा संबंध बनता है।

समाजशास्त्र के केंद्र में मनुष्य होता है। मनुष्यों से परिवार बनते हैं। परिवारों से समाज और समाजों से समुदाय तथा समुदायों से राज्य–राष्ट्र का निर्माण होता है। समाज के अंदर वर्ग, वर्ण, जातियाँ, समुदाय, उनकी नातेदारी–रिश्तेदारी है। समाज में ही मनुष्य की समूची सांस्कृतिक अभिव्यक्ति उपस्थित होती है। मनुष्य का खान–पान, रीति–रिवाज, वेशभूषा, आस्था–विश्वास आदि। इन्हीं के गुण–धर्म, तत्व, संबंध, संवेदना आदि की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है। इसीलिए कहा भी जाता है कि 'साहित्य समाज का दर्पण' है। साहित्य में समाज प्रतिबिंबित होता है। साहित्य समाज को प्रभावित करता है और समाज भी साहित्य को एवं साहित्यकारों को प्रभावित करता है। इस प्रकार साहित्य एवं समाज का गहरा संबंध बनता है। जैसे–जैसे समाज बदलता जाता है, वैसे–वैसे साहित्य भी बदलता जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में स्पष्ट लिखा है कि *''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चितवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चितवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है। जनता के चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनैतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है; अत: कारणस्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है।''*[30]

राजनीति और साहित्य के बीच परस्पर आवाजाही, एक–दूसरे पर प्रभाव अथवा दोनों का सह अस्तित्व साथ–साथ रहा है। कभी राजनीति साहित्य को, तो कभी साहित्य राजनीति को प्रभावित करते रहे। कभी–कभी दोनों समानांतर विकसित भी होते रहे हैं। कभी–कभी एक साथ भी जाते हैं, चाहे सहयोग के रूप में, चाहे विरोध के रूप में। प्रेमचंद कहा करते थे कि 'साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल' है। ऐसा इतिहास में कई बार देखा गया है कि साहित्य राजनीति की पिछलग्गू भी बन जाती है। स्वाधीनता आंदोलन में राजनीति और साहित्य के संबंध को देखा जा सकता है। भारतेंदु युग से छायावाद तक के साहित्य में दोनों के अंतरसंबंध प्रगाढ़ रूप में दिखाई देते हैं।

मैनेजर पांडेय का कहना है कि राजनीति अपनी सांस्कृतिक नीति बनाकर साहित्य को प्रभावित करने की कोशिश करती है। कई बार अन्य माध्यमों का उपयोग करके उसे नियंत्रित भी करने की कोशिश करती है। वे लिखते हैं कि *''कई बार राजसत्ता की सांस्कृतिक नीति साहित्य की दिशा तय करती है। पद, पुरस्कार, अनुदान और प्रतिबंध के माध्यम से राजसत्ता साहित्य की प्रक्रिया में दखल देती है। विभिन्न सरकारी संचार माध्यमों और संस्थाओं से साहित्य का विकास प्रभावित होता है। आजकल संस्कृति के सरकारीकरण का व्यापक अभियान चल रहा है। संस्कृति, कला और साहित्य को विरोध के रास्ते से हटाकर सहमति की राह पर चलाने की कोशिश भी हो रही है। इन सबके साथ ही टेलीविजन के प्रचार-प्रसार के कारण लिखित शब्द अनावश्यक होते जा रहे हैं।''*[31]

बीती हुई कहानी को इतिहास कहा जाता है। इतिहास लेखन में अभिलेखों-शिलालेखों, स्तंभों, ताड़पत्रों, तामपत्रों और अनेक प्रकार के तथ्यों, आँकड़ों को आधार बनाया जाता है। साहित्यिक कृतियों, लोकमानस से उपजे मौखिक साहित्य आदि भी इतिहास को महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराते हैं। दुनिया के किसी भी देश के आधुनिक-पूर्व के इतिहास को समझने में साहित्य की बड़ी भूमिका होती है। ऐतिहासिक चरित्रों अथवा कालखंडों पर साहित्य में बहुत-सी मूल्यवान सामग्री भरी पड़ी है। साहित्य बार-बार इतिहास को संवेदना के धरातल पर पुनर्सृजित करता रहता है। साहित्य इतिहास के लिए और इतिहास साहित्य के लिए सामग्री उपलब्ध कराते रहते हैं। इस प्रकार दोनों के बीच में अंतर-अनुशासनात्मक संबंध बनता है। लोक साहित्य में अनेक ऐसी किवदंतियां अथवा कथाएँ रही हैं, जिनसे पुरातत्व संबंधी अनेक महत्वपूर्ण जानकारी उद्घाटित हुई है। इसलिए इतिहास की तरह पुरातत्व भी साहित्य से किसी न किसी प्रकार से जुड़ता है।

कोई भी देश अपनी प्राकृतिक स्थितियों से ही विशिष्ट होता है। प्राकृतिक घटकों अर्थात पर्वतों, वनों, नदियों, झरनों, मरुस्थलों और भौगोलिक सीमाओं का विवरण अथवा वर्णन साहित्य में देखने को मिलता है। यह रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्यों में भी प्राप्त होता है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने ऐतिहासिक शोध-प्रबंध 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' में पाणिनि के सूत्रों के माध्यम से ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी के भारत के भौगोलिक मानचित्र को रेखांकित कर दिया है। उन्होंने उस समय के जनपदों की स्थिति और प्राकृतिक घटकों के प्राचीन नाम को समकालीन समय में पहचान की। प्राकृतिक घटकों के कारण भाषा के स्वरूप में भी परिवर्तन होता है, भाषाओं के सीमा-विस्तार में भी इसकी भूमिका होती है। इस तरह से भाषा और साहित्य से भी भूगोल का परस्पर संबंध रहा है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'कविता क्या है' निबंध में यह स्पष्ट किया है कि 'सभ्यता के विकास के साथ-साथ कवि-कर्म' अर्थात साहित्य कर्म कठिन होता चला जाएगा। आधुनिक विज्ञान और तकनीकी क्रांति के परिणामस्वरूप साहित्य के स्वरूप में भी समय-समय पर पड़ा परिवर्तन होता रहा है। चाहे प्रिंटिंग प्रेस का आना हो, जिससे साहित्य रातों-रात श्रव्य से पठ्य बन गया। चाहे तकनीकी रूपों - रेडियो, टेलीविजन, कंप्यूटर, इंटरनेट से लेकर एआई तक की क्रांति हो; साहित्य के स्वरूप में निरंतर बदलाव होता गया है। भाषा और साहित्य के अनुसार विज्ञान के उन रूपों को भी अपने को बार-बार आविष्कृत करना पड़ा है। वाणिज्य, प्रबंधन आदि ने साहित्य के उत्पादन, बिक्री, प्रचार - प्रसार व्यवसाय के साथ जुड़कर साहित्य को किसी ने किसी रूप में प्रभावित किया है।

वस्तुत एवं मुख्यत: साहित्य, कला एवं अन्य ज्ञानानुशासनों का परस्पर अनुप्रवेश दिखाई देता है। साहित्य और कलाओं में तो अन्योन्याश्रित घनिष्ठ संबंध रहा ही है, एक कलारूप के बिना दूसरे कलारूप के पूर्णता की कल्पना नहीं की जा सकती। मानविकी के अन्य विषयों तथा समाज विज्ञानों से भी साहित्य का परस्पर संवाद, सहयोग एवं प्रभाव रहा है। ज्ञान-विज्ञान के आधुनिक विषयों-वाणिज्य, प्रबंधन इत्यादि से साहित्य का संवेदना के धरातल पर तो कोई सीधा संबंध नहीं बनता; परंतु साहित्य के बाहरी स्वरूप को प्रभावित करने में इन विषयों की भूमिका स्पष्ट परिलक्षित होती है। ❑

संदर्भ सूची :

1. काव्यालंकार : (अनु.) देवेंद्रनाथ शर्मा, पृ.– 9
2. काव्यप्रकाश : (प्र. सं.) नगेंद्र , पृ.–19
3. साहित्यदर्पण : (सं) शालिग्राम शास्त्री, पृ.–19
4. रसगंगाधर : (अनु.) मनमोहन झा, पृ. –10
5. रसमीमांसा : रामचंद्र शुक्ल, पृ. –5
6. भारतीय आलोचनाशास्त्र : राजवंश सहाय 'हीरा' पर उद्धृत, पृ. –70
7. प्रेमचंद साहित्य रचनावली : (सं.) कमल किशोर गोयनका, खंड–20, पृ.– 521–522
8. स्वतंत्रकला शास्त्र : कांतिचंद्र पांडेय, पृ–6
9. भारतीय कला विवेचन की प्रस्तावना : नीहार रंजन राय, पृ.–41
10. लालित्य तत्व : हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.–81
11. साहित्य का सौंदर्यशास्त्र : (सं.) विद्यानिवास मिश्र, पृ.-vi-vii
12. भारतीय कला विवेचन की प्रस्तावना : नीहार रंजन राय, पृ.–77
13. वही, पृ.–78
14. वही, पृ.–80
15. कला अनुभव : हिरियन्ना, पृ.–22
16. वही, पृ.–25–26
17. काव्यालंकार : (अनु.) देवेंद्रनाथ शर्मा, पृ.–1
18. हिंदी साहित्य का इतिहास : रामचंद्र शुक्ल, पृ.–310
19. भारतीय कला विवेचन की प्रस्तावना : नीहार रंजन राय, पृ.–124
20. हिंदी अभिनवभारती : (प्र. सं.) नगेंद्र, पृ. –213
21. भारतीय सौंदर्य सिद्धांत की नयी परिभाषा : सुरेंद्र एस. बारलिंगे, पृ.–26
22. कालिदास ग्रंथावली : (सं) सीताराम चतुर्वेदी, पृ.–216
23. सृजनशीलता और सौंदर्यबोध : निशा अग्रवाल पर उद्धृत, पृ.–72
24. हिंदी साहित्य का इतिहास : रामचंद्र शुक्ल, पृ. –308–309
25. वही, उद्धृत, पृ.–309
26. साहित्य–सिद्धांत : (अनु.) बी.एस.पालीवाल, पृ.–167
27. वही, पृ.–180
28. विनय पत्रिका : (सं.एवं टीकाकार) वियोगी हरि, पृ. 191–192
29. दर्शन, साहित्य और आलोचना : (नरोत्तम नगर) पृ. 16
30. हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ–01
31. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका : मैनेजर पांडेय, पृ–23

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

पर्यावरणीय समस्या : एक ऐतिहासिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. लाला बाबू

अासिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
कृषक पी.जी. कॉलेज मवाना,
मेरठ-250401
9520353953
lbgaur999@gmail.com

सार :

पर्यावरणीय समस्या आज भारत सहित संपूर्ण विश्व में चिंता एवं चिंतन का विषय बना हुआ है। प्रस्तुत लेख में पर्यावरण और मनुष्य के बीच संबंधों का ऐतिहासिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य पर गंभीरता से अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। साथ ही इसमें पर्यावरण क्या है? प्रदूषण क्या है? इसकी ऐतिहासिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि क्या है? किस प्रकार पर्यावरण का संतुलन बिगड़ा और उसने प्रदूषण का रूप धारण कर लिया, इस पर भी विस्तार से चर्चा की गई है। इसके अलावा इस लेख में भारत एवं यूनान जैसे देशों, इसके दर्शन एवं चिंतन ने किस प्रकार प्रकृति एवं पर्यावरण एवं प्रकृति के संरक्षण में आमजन की सहभागिता बढ़ाने एवं बनाए रखने हेतु किस प्रकार प्रकृति का दैवीकरण करके, उनमें देवत्व का समावेश करके, उसके संरक्षण का चिरस्थायी प्रयास किया, इसकी विस्तृत चर्चा की गई है। दूसरी तरफ पश्चिमी दर्शन एवं संस्कृति ने किस प्रकार प्रकृति के अंध शोषण को बढ़ावा दिया, जिसके व्यापक दुष्परिणाम औद्योगिक क्रांति के बाद देखने को मिले इसकी भी विस्तृत व्याख्या करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द :

पर्यावरण, प्रकृति, प्रदूषण, पाता-दाता, स्वामी-दास, पारिस्थितिकी तंत्र, पारिस्थितिकी संकट, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, धर्मग्रंथ, वैदिक-वांग्मय, पंचमहाभूत, ऋग्वैदिक, वैदिक दैवकुल, औद्योगिक क्रांति, दर्शन, सतत विकास।

प्रस्तावना :

''मनुष्य एक पर्यावरण में जन्म लेता है, उसमें बढ़ता है और प्रौढ़ होता है, उसका संपूर्ण शरीर और उसके जीवन की रचना आदि सब कुछ पर्यावरण की ही देन है।''[1]-मैकाइवर

''प्रकृति और मनुष्य का संबंध आदिकालीन है। पर्यावरण और जीवन की अभिन्नता से सभी परिचित हैं। पर्यावरण की स्वच्छता, निर्मलता और संतुलन से ही संसार को बचाया जा सकता है। कोई भी कविता, कहानी इस प्रकृति के बिना संभव नहीं है। प्रकृति ही जीवन का आधार है।''[2]

पर्यावरण का अर्थ :

''पर्यावरण का अर्थ है, हमारे चारों ओर जो वातावरण है, जिसका कि हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अनिवार्य रूप से उपभोग करते हैं, पर्यावरण कहलाता है।

सामान्य रूप से हरी-भरी प्रकृति ही मानव का पर्यावरण है, हरी से तात्पर्य 'सुजलां सुफलां मलयज शीतलां शस्य श्यामलाम् मातरम् पृथ्वी' से तथा भरी से तात्पर्य- पशु-पक्षी, जीव-जंतुओं एवं वनस्पतियों की समृद्धि एवं विकास से है।''[3]

''इस प्रकार पर्यावरण समस्त बाह्य दशाओं का योग है। जैसे - वायु, जल, मृदा, वनस्पति, जीव-जंतु आदि। इन जीवों की परस्पर निर्भरता पर्यावरण के लिए अनिवार्य है। विश्व की प्रवृत्ति ने इस अनिवार्यता को बाधित कर विश्व के सामने एक संकट खड़ा कर दिया है, जिसे पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी संकट के रूप में पहचाना जाता है।''[4]

पर्यावरण प्रदूषण से आशय :

प्रकृति भौतिक रासायनिक और जैविक अवयवों से बनी है। जब इनके मध्य समस्त जड़-चेतनमय जगत के हित में सामंजस्य होता है तब यह पर्यावरण कहलाता है और यह संतुलन कतिपय कारणों से प्राणिमात्र के हितों के विरुद्ध होता है तो यह प्रदूषण कहलाता है।

उद्देश्य :

प्रस्तुत शोध पत्र के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :-

1. पर्यावरणीय समस्या की ऐतिहासिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।
2. इस समस्या का मूल कारण भौतिक है या दार्शनिक ?
3. इस समस्या के समाधान हेतु राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उठाये गए कदमों की समीक्षा करना।

शोध सामग्री:

प्रस्तुत शोध पत्र में विषय-वस्तु की गहन जानकारी प्राप्त करने एवं इस शोध पत्र के लेखन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार की स्रोत सामग्री का उपयोग किया जाएगा। प्राथमिक स्रोत के तौर पर वैदिक वांग्मय, पुराण, मनुस्मृति, आदि का उपयोग किया जाएगा, जबकि द्वितीयक स्रोत के तौर पर विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखित पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं एवं शोध पत्रों, प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक स्रोतों का उपयोग किया जाएगा।

शोध विधि :

इस शोध-पत्र में व्याख्यात्मक एवं ऐतिहासिक विश्लेषणात्मक शोध पद्धति का उपयोग किया जाएगा।

पर्यावरणीय समस्या (प्रदूषण) का ऐतिहासिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य :

मनुष्य ने अपने विकासक्रम में आरंभ से ही प्रकृति के साथ सौहार्द्रपूर्ण संबंध स्थापित किए, विशेषकर भारत एवं यूनान जैसे देशों में प्रकृति एवं मानव जाति के मध्य परिपूरक संबंध रहे, क्योंकि भारतीय धर्मशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र ने प्राकृतिक तत्वों को देवत्व का रूप प्रदान किया है। जैसे-

''सिंधु घाटी की सभ्यता में मातृदेवी की मृण्मूर्तियाँ। इनसे उर्वरता की उपासना तथा मातृदेवी की पूजा का संकेत मिलता है। जैसे 'हड़प्पा' नामक स्थान से एक मृण्मूर्ति के पेट से पौधा निकालते हुए दिखाया गया है, संभवत: यह पृथ्वी की उर्वरा शक्ति के रूप में पूजा का प्रतीक है। उसी प्रकार पीपल, बबूल, कूबड़ वाले सांड तथा एक श्रृंगी पशु को पूजनीय माना है।''[5]

''ऋग्वेद में पृथ्वी को माता की संज्ञा दी गई है। जिस प्रकार माता अपने बच्चों का पोषण करती है, उसी प्रकार पृथ्वी फल, फूल, अन्न देकर मनुष्य के जीवन की रक्षा करती है। वह पर्वत, वृक्ष और वन के भार को वहन करती है। वह धरती को उर्वर बनाती है, क्योंकि वह पानी बरसाती है।''[6]

ऋग्वैदिक देवकुल में अनेक देवताओं को स्थान मिला है, वहाँ ये सभी देवता प्राकृतिक शक्तियों के रूप के प्रतीक हैं। इसके साथ-साथ नदियों वनस्पतियों एवं जीव-जंतुओं को संरक्षण प्रदान करने के लिए उनमें देवत्व प्रदान किया गया है, जो उनके पर्यावरण प्रेम एवं बंधुत्व का प्रतीक है।

वस्तुत: प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों की जीवन में क्या उपयोगिता है, इसका ज्ञान वैदिक काल में ही हो गया था। उपनिषदों की एक कथा के अनुसार ज्ञान-विज्ञान एवं विकसित संसाधनों के होने पर भी मनुष्य का चिन्तित और दु:खी रहना तथा ज्ञान विज्ञान संसाधनों के नितांत अभाव में मनुष्येतर जीवों का निश्चित एवं मस्त रहना एक ऐसा तथ्य था, जिसकी ओर ऋषियों का ध्यान आकृष्ट हुआ और उन्होंने इस पर गंभीरतापूर्वक चिंतन कर, जो निष्कर्ष निकाले, उनका सार इस प्रकार है -

''धरती हमें माँ के समान सुविधा एवं सुरक्षा देती

है, अत: धरती मेरी माँ है और मैं उसका पुत्र हूँ।''[7]

अथर्ववेद में पृथ्वी को गाय कहा गया है, जो हमें अन्न, बल, अपरिमित, आयु, संतान, दृष्टि और संपत्ति प्रदान करती है।

''पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्स:।
सा मेअग्निना वत्सेनेषमूर्ज कामं दुहाम्।
आयु: प्रथमं प्रजा पोष रपि स्वाहा।''[8]

अथर्ववेद में पृथ्वी की उपजाऊ शक्ति को पूजनीय मानते हुए पृथ्वी को सीता कहा गया है एवं प्रार्थना की गई है कि इंद्र भगवान पृथ्वी (कृषि योग्य भूमि) की रक्षा करें क्योंकि कृषि उत्पादन जीवित प्राणियों का आधार है। एक अन्य स्थान पर भूमि को श्रेष्ठ फल प्रदान करने वाली व श्रेष्ठ मन वाली बताया गया है।

''इन्द्र: सीतां नि गृहणातु तां पुभि रक्षतु।
सा न पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरासमान्।
सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।
यथा न: सुमना असो यथा न: शुफला भुव:।।''[9]

वेदों में प्रकृति को सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

अथर्ववेद के अनुसार ''अग्नि, वायु, जल, आकाश, पृथ्वी, सूर्य, चंद्रमा, औषधि एवं वनस्पति आदि सब देवता हैं, जो प्रत्युपकार की इच्छा के बिना हमेशा से ही हमारी सहायता कर रहे हैं। वह देवता होते हैं। इन सभी देवताओं के साथ हमें भावनात्मक संबंध रखना चाहिए। अथर्ववेद में जल, वायु और औषधियों को पर्यावरण के संघटक तत्वों के रूप में परिभाषित किया गया है। ये संसार को जीवन शक्ति देकर उसे प्रभावित करते हैं। ये संसार की समस्त गतिविधियों के प्रवर्तक हैं, इनके बिना जीवन असंभव है। इनके नाम और रूप अनेक हैं।

''त्रींणि छंदासि कपयो वियतिरे,
पेरूरूपं दर्शते विश्वचक्षणम।
आपो वातो ओषध्य:,
तान्येकस्मिन् भुवन अर्पितामि।''

उक्त मंत्र से यह ज्ञात होता है कि वायु और जल की तरह औषधियाँ भी पर्यावरण के घटक तत्वों में अंतर्निहित हैं।

यजुर्वेद के अनुसार, ''इस ब्रह्मांड में प्रकृति सबसे शक्तिशाली है, क्योंकि यही सृजन एवं विकास और यही ह्रास तथा नाश करती है। अत: प्रकृति के विरुद्ध आचरण नहीं करना चाहिए।

''ॠग्वेद के अनुसार जीव पंचमहाभूतों (जल, पृथ्वी, वायु, आकाश और अग्नि) का सम्मिश्रण है। हमारे सनातन धर्म में पादप रोपण एवं सुरक्षा मोक्ष का उपाय और स्वर्ग का मार्ग है।''[10]

ॠग्वेद में जल में अमृतोपम गुण को स्वीकारते हुए उसके औषधीय गुणों का विस्तृत वर्णन मिलता है। साथ ही जल प्राप्ति के लिए हवन में आहुतियाँ देने का भी वर्णन है।

''आप: पृणीत भेषजं वरूथ तन्वेइमम। ज्योक् य सूर्य दृशे।''[11]

अर्थात हे! जल समूह, हमारे शरीर में जीवन रक्षक औषधियों को हमारे शरीर में स्थिर करो जिससे हम निरोग होकर चिरकाल तक सूर्यदेव के दर्शन करते रहें।

इसी तरह अथर्ववेद में अग्नि को वर्षा में सहायक मानकर प्रार्थना की गई है कि पृथ्वी पर निरंतर वर्षा हो ताकि जल संरक्षित रह सके।

''दुर्भन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति:।

यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने मन्तवग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन्।।''[12]

इसी तरह मनु, गंगा, यमुना व उनके संगम स्थलों के उपयोग व लाभों का वर्णन करते हुए जल की उपयोगिता इस प्रकार सिद्ध करते हैं।

''सितासिते, सरिते यत्र संमते, तत्राप्लुतासो दिवमुत्पत्ति:।

ये चै तत्व विसृजन्ति धीरा, रते जनामो अमृतत्व भजन्ति।।''[13]

इस प्रकार पृथ्वी पर प्राणी मात्र के लिए जल की महत्ता को स्वीकार किया गया एवं वर्षा में वृक्षों को मुख्य सहायक माना जाता है।

भारतीय संस्कृति में वृक्षों व वनों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय संस्कृति का विकास वनों के शांत वातावरण में हुआ। 'स्कन्द पुराण' के अध्याय 16 में कहा गया है कि *''भगवान विष्णु का निवास प्रत्येक वृक्ष में है, जिसके*

सम्मान से लक्ष्मी जी प्रसन्न होती हैं, जो हमारी गरीबी और सभी दु:खों को हरने की क्षमता रखती हैं।''[14]

महाभारत में सभी प्रकार के प्राणियो एवं वृक्षों को ब्रह्मा जी का वंशज स्वीकार कर सभी प्राणियों के बीच भ्रातृत्व संबंध स्थापित कर इनके अस्तित्व को बचाए रखने की शिक्षा दी है। इसके अतिरिक्त भीष्म ने वृक्षों व बगीचे लगवाने को श्रेष्ठ कर्म बताया है। ऋग्वेद में 'आरण्यी' को जंगल की देवी कहा गया है।

'रामायण' के अयोध्याकाण्ड में उल्लेखित 18 विभागों में 'अटपीपल' (अरण्य संरक्षक) विभागों का वर्णन मिलता है। अशोक के अभिलेखों में भी इस प्रकार के विभागों का वर्णन मिलता है। 'बीवीताध्यक्ष' अर्थात चारागाह का अध्यक्ष, 'कोष्ठागार अध्यक्ष' अर्थात वन व उसकी संपदा का अध्यक्ष आदि।

सम्राट अशोक के स्तंभ अभिलेखों में उल्लेख मिलता है कि *''प्रियदर्शी सम्राट ने अपने व पड़ोसी राज्यों में जहाँ मनुष्यों और पशुओं के लिए उपयोगी औषधियाँ उपलब्ध नहीं थीं, वहाँ बाहर से मँगाकर उन्हें लगाया गया। कंदमूल और फल भी जहाँ कहीं नहीं थे, वहां बाहर से मँगाकर लगवाए गए। सड़क के किनारे पेड़ लगाए गए ताकि मनुष्यों और पशुओं को छाया मिल सके।''*[15] इसी प्रकार पशु हत्या पर आंशिक प्रतिबंध लगाकर वह प्रकृति प्रेम एवं पर्यावरण के संरक्षण का प्रयास करता है।

गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं को 'सर्ववृक्षाणा' वृक्षों में पीपल कहकर वृक्षों का महत्त्व प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया। बौद्ध ग्रंथ 'संयुक्त निकाय' में भी फलदार वृक्ष लगवाने, पुल बनवाने, प्याऊ लगाने व पशु-पक्षियों की हत्या पर रोक लगाने का वर्णन मिलता है।

वनस्पति विज्ञान की एक रिपोर्ट के अनुसार यदि बरगद के वृक्ष न हो तो ग्रीष्म ऋतु में पृथ्वी पर जीवन नष्ट हो जाएगा। सूर्य से आने वाली उष्मा का 27 प्रतिशत हिस्सा यह पेड़ अवशोषित कर लेता है और उसमें नमी मिलाकर वायुमंडल में लौटा देता है, जिससे बादलों का निर्माण होकर वर्षा होती है। इसलिए हमारे पूर्वजों द्वारा जल, जमीन व वृक्षों आदि के महत्व को समझते हुए उन्हे पूजनीय माना गया है तथा इन सब चीजों को व्रत एवं त्यौहारों से जोड़कर इनके संरक्षण पर बल दिया। भारत में मनाए जाने वाले अधिकतर व्रत एवं त्योहार वृक्षों की पूजा व उनके पालन पर बल देते हैं। जैसे - ज्येष्ठ माह में समस्त भारत में मनाए जाने वाला वट सावित्री व्रत एवं छठ पूजा, जिसमें महिलाएँ बरगद, पीपल, गूलर, पाकर ठेसरू आदि का रोपण एवं पूजन करती हैं।

रामायण के 'अयोध्याकांड' में भी बरगद के महत्त्व का उल्लेख मिलता है। रामायण में सीता जी भी वट वृक्ष की पूजा करती थी।

वृक्षों के इन्हीं गुणों व उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए भारतीय आचार्यों ने वृक्षारोपण और वृक्ष की प्रतिष्ठा को महान पुण्यकर्म, माना है विष्णु स्मृति के कूपतडाग खनन तदुत्सर्ग विधान में कहा गया है कि -

''वृक्षारोपपितुत्व वृंक्षा परलोके पुत्रा भवन्ति
वृक्षप्रदो वृक्षप्रसूनैदेवाहे प्रीण्यित
फलैश्चतिधीन् छाय या चाम्भयागतान्
देवे वषत्युदकेन पितृन्, पुष्प प्रदानेन श्रीमान भवन्ति
कूपारामतडागेषु देवतातननेघु च पुन: संस्कारकत्री च लभेत मौलिक फलन।''[16]

अर्थात जो मनुष्य वृक्षों का आरोपण करता है, वे वृक्ष परलोक में उसके पुत्र होकर जन्म लेते हैं। वृक्षों का दान करने वाला वृक्षों के पुष्पों द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने वाला समृद्धिशाली होता है। कूआँ, उद्यान, तालाब और देवायतन का पुन: संस्कार अर्थात जीर्णोद्धार करने वाला व्यक्ति मौलिक फल प्राप्त करता है।

इसी प्रकार ऋग्वेद में औषधियों में सर्वश्रेष्ठ होने के नाते सोम को *''औषधियों का राजा (King Of The Medicine) कहा गया है। चूँकि सोम लताओं में सर्वश्रेष्ठ है, इसीलिए सोम को वनस्पतियों का राजा (King Of Plants) भी कहा गया है। सोम को सरिताओं के राजा कह कर भी संबोधित किया गया है।''*[17] (ऋग्वेद 9.89.2)

सृष्टि निर्माता पाँच तत्वों में अग्नि सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ऋग्वेद में अग्नि को महत्त्वपूर्ण देवता के रूप में स्वीकार किया गया है। ऋग्वेद में अग्नि को 'द्यावापृथिवी' अर्थात पृथ्वी का पुत्र मानकर इसकी प्रशंसा में 200 सूक्तों की रचना की गई है।

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार *''अग्नि का महत्व केवल इंद्र के बाद दूसरे दर्जे पर है।''*[18]

आज शायद ही मानव का कोई ऐसा कार्य है, जिसके लिए उष्मा एवं शक्ति की आवश्यकता नहीं है और ये उष्मा व शक्ति अग्नि का ही परिवर्तित रूप है। वर्तमान समय में उष्मा के विकल्प के लिए सौर ऊर्जा का प्रयोग किया जाने लगा है वह भी अग्नि का ही एक रूप है। ऋग्वेद में सूर्य की आराधना में गायत्री मंत्र के 'वरेण्य' शब्द का आशय सूर्य की वरण योग्य किरणों से ही लगाया जाता है, जो हमें जीवन प्रदान करती हैं।

ऋग्वेद में सूर्य व उषा की प्रार्थनाएँ की गई हैं, जो प्राणी मात्र के लिए विटामिन 'डी' प्राप्त करने का एक मात्र स्रोत है, यूनानी धर्म में सूर्य-पूजा का संकेत मिलता है। प्लेटो ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रिपब्लिक' में सूर्य-पूजा की महिमा का विवरण दिया। पारसी धर्म में भी सूर्य-पूजा पर बल दिया गया है।

ऋग्वेद में कहा गया है *''सूर्य बीमारी और प्रत्येक प्रकार के दु:स्वप्न का नाश करते हैं। सूर्य पर आकाश अवलंबित है। सूर्य को ऋग्वेद में आकाश का रत्न कहा गया है।''* [19]

श्रीमद्भागवदगीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं को 'वसूना पाव कश्चासिन' में आठ वसुओं अग्नि रविरंशुमान अर्थात ज्योतियों में किरण वाला सूर्य कहकर सिद्ध करने का प्रयास किया कि ये सब चीजें मेरे ही समतुल्य हैं, अर्थात् इनका महत्व कम नहीं है।

अग्नि के महत्त्व को समझाते हुए एवं सूर्य ऊर्जा प्राप्त करने के लिए ऋग्वेद में ऊषा को 'विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं' अर्थात् प्राणी मात्र के जीवन का आधार, कर्म के लिए प्रेरित करने वाली कहकर प्रार्थनाएँ की गई हैं -

''अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्स:।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवा उषर्बुध:।।''[20]

अर्थात् है अमर अग्निदेव। ऊषा काल में विलक्षण शक्तियाँ प्रवाहित होती हैं। यह देवी संपदा नित्यदान करने वाले व्यक्ति को दे।

''आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिण:।।''[21]

इसी तरह उषा के प्रभाव का वर्णन करते हुए प्रो. ए. वी. कीथ ने जो कहा है वह ध्यातत्व है - *''उषा अपनी पहली दमक से ही मनुष्य और पशुओं में जीवन फूँक देती है, पक्षीगण उसके उदय पर घोसलों में फुर-फुर करने लगते हैं और मनुष्य काम-काज की खोज में बाहर निकल पड़ते हैं।''*[22]

अमेरिका की विज्ञान परिषद के अध्यक्ष प्रो. हर्बल ने स्वीकार किया है कि *''सृष्टि के आदि में जिसने अग्नि जलाने उसे सुरक्षित रखने और उपयोग में लाने का अविष्कार किया। उसका मस्तिष्क आज के परमाणु वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक सक्षम रहा होगा।''*[23]

भारतीय संस्कृति में यज्ञों को बहुत अधिक महत्व दिया गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि यज्ञों में दी जाने वाली आहुतियाँ अग्नि के माध्यम से सीधे देवताओं को प्राप्त होती हैं। यज्ञों का विधान वातावरण शुद्धि व वर्षा प्राप्ति के लिए किया जाता है। इसका वर्णन मनु ने इस प्रकार किया है-

''अग्नौ प्रास्ताहुति: सम्यगादित्य मुपतिष्ठते:।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं तत: प्रजा:।।'' [24]

अर्थात् अग्नि में डाली गईं आहुतियाँ सूर्य किरणों में उपस्थित होती हैं। उनके संसर्ग से अंतरिक्ष में इस प्रकार का वातावरण निर्मित हो जाता है, जिससे मेघों का संग्रह होने लगता है। वे समय पाकर पृथ्वी पर बरसते हैं। उस वृष्टि से वहाँ औषधि, वनस्पति, लता, फूल, फल आदि विविध खाद्य प्रदार्थ प्राणी मात्र के लिए उत्पन्न हो जाते हैं।

प्राचीन समय में भारत में प्रकृति के साथ सौहार्द्रपूर्ण संबंध स्थापित किए गए। पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी तंत्र को बनाए रखने के लिए सभी जीव-जंतुओं के महत्व को स्वीकार किया गया। भारत में गाय को माता के रूप में पूजा जाता है, जोकि उसकी उपयोगिता को दर्शाता है। अथर्ववेद में गायों के गुणों का वर्णन करते हुए प्रार्थनाएँ की गई हैं कि गाय हमारा कल्याण करे, शक्ति हीनों को शक्ति प्रदान करें, कृषि के लिए बछड़े प्रदान करे। इसके अतिरिक्त गाय का वध करना (अघन्या) एवं आघात करना निषेध माना है।

''यूथ गावो मेदयया कृशं चिदंश्रीर चित् कृणुथा सुप्रतीकम्
भद्रं ग्रह कृणुथ भद्रवाचे वृहद् वो वय उच्चते सभासु।।
नमस्ते जायनामायै जाताय उत ते नम:।

बालेभ्य: शफेभ्यो रूपायाध्नये ते नम:।।''[25]

श्रीकृष्ण ने गीता में स्वयं को 'धेनू नामस्मि कामधुक्' कहा है।

वर्तमान में गाय के महत्व को स्वीकार कर लिया गया है कि मनुष्य हेतु गाय का दूध, गोमूत्र, गाय का गोबर व गोवंश कितना महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है, वैज्ञानिक शोध भी उसकी पुष्टि हो रही है।

पारिस्थितिकी तंत्र में खाद्य जाल एवं खाद्य शृंखला में संतुलन बनाए रखने के लिए भारतीय परंपरा में गाय के अतिरिक्त अन्य पशुओं को भी देवता या देवता के वाहन मानकर उनकी पूजा की जाती है। जैसे-सिंधुघाटी सभ्यता में मोहनजोदड़ो से प्राप्त पशुपति शिव की मुहर और उस पर अंकित जानवरों से यह सिद्ध होता है कि उस काल के लोगों ने भी मनुष्य जीवन के लिए पशुओं के अस्तित्व के महत्व को स्वीकारा था।

ऋग्वेद में पशुओं के देवता के रूप में 'पूषन्' का उल्लेख मिलता है। इसमें पशुपक्षियों व जीवों की सुरक्षा के लिए प्रार्थना की गई है।

अथर्ववेद में भी रुद्र सूक्त में वन्य जीवों के संरक्षण के लिए पशुपति रुद्र से प्रार्थनाएँ की गई हैं। इसी प्रकार अथर्ववेद के शांति सूत्र में अग्नि देव से प्रार्थनाएँ की गई हैं कि वे हमारे पशुओं, पक्षियों, वन, वनस्पति, औषधियों आदि को सुरक्षा प्रदान करें।

''ये अग्नयो अप्स्वन्तये वृत्ते ये पुरुषे ये अश्मसु।

य आविवेशौषधीयो, वनस्पतीस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्।।

य:सोमे अन्तयों गोष्वन्तय अविष्टो वय: सु यो मृगेषु।

य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्।।''[26]

पृथ्वी पर संतुलन बनाए रखने के लिए एवं पशु-पक्षियों एवं जानवरों के संरक्षण की भावना को बल प्रदान करने के लिए भारतीय संस्कृति में प्रत्येक देव के साथ उनके वाहन का प्रावधान किया गया है। जैसे मूसक को गणेश जी का वाहन माना गया है। सरस्वती का हंस, शिव का नंदी, लक्ष्मी का उल्लू, दुर्गा का सिंह, कर्तिकेय का मयूर, इंद्र का हाथी, विष्णु का गरूड़, शनि का कौआ, सूर्य का घोड़ा आदि। इसके अतिरिक्त भगवान कृष्ण को गाय व बछड़े के साथ एवं भगवान राम को हनुमान (वानर) के साथ दर्शाया गया है।

मनुस्मृति में विष्णु के दस अवतारों का वर्णन मिलता है, जिसमें कुछ मनुष्य रूप में तो कुछ पशु रूप में वर्णित हैं। पशु अवतरणों का प्रावधान प्रकृति में पशुओं को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से ही किया गया है, ताकि मनुष्य इन्हें अनावश्यक हानि न पहुँचाएँ।

''मस्त्य: कूर्मो अथ वाराहो नरसिहदभ वामन:।

रामो, रामश्च रामश्च बुद्ध कल्की च ते दशा:।।''[27]

भारतीय संस्कृति के उपर्युक्त सभी तत्व अंधविश्वास न होकर जनसाधारण को कर्तव्य परायणता की शिक्षा प्रदान करते हैं और सृष्टि के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

''सल्तनत काल में फिरोज शाह तुगलक और आगे शेरशाह सूरी तथा अकबर का दृष्टिकोण भी प्रकृति के सकारात्मक सोच का प्रतीक है।''[28] इस प्रकार हमारे पूर्वजों ने प्राकृतिक तत्वों एवं पर्यावरण का देवीकरण करते हुए उसका संरक्षण प्रदान किया।

जबकि पाश्चात्य देशों ने प्रकृति के साथ स्वामी एवं दास, शोषक एवं शोषित का संबंध स्थापित किया और उसके इस संबंध को वहाँ के धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्र का भी समर्थन मिला। विश्व की उपभोगवादी प्रवृत्ति का आधार इतिहास में तलाशने पर पाँचवीं शताब्दी ई.पू. प्रोटोगोरस का एक कथन प्राप्त होता है जिसमें कहा गया है कि *''मनुष्य सभी वस्तुओं का मापदंड है, जिससे इस तथ्य को बल मिला कि संसार में जो भी कुछ है सब मनुष्यों के लिए है। अत: मनुष्य इसका उपभोग करने हेतु स्वतंत्र है। इस कथन का प्रभाव 16वीं शताब्दी के बाद यूरोप में आई औद्योगिक क्रांति से आज तक देखा जा सकता है।''*[29]

प्रमुख धर्मग्रंथ 'बाइबिल' का मानना है कि मनुष्य ईश्वर की सबसे सुंदर एवं महत्वपूर्ण कृति है और विश्व की जितनी भी वस्तुएँ हैं, वह सब मनुष्य के उपयोग के लिए हैं, यहीं से प्रकृति के शोषण की शुरुआत हुई।

प्रसिद्ध संत थॉमस एक्वीनाश के अनुसार पाप केवल ईश्वर और मानव जाति के प्रति होता है, अन्य के प्रति नहीं। प्रसिद्ध बुद्धिवादी दार्शनिक 'डेकार्ड' के अनुसार

आत्मा (चेतना) केवल मनुष्य में होती है, मनुष्येतर प्राणियो में नहीं। इनका तो यहाँ तक कहना था कि टूटते यंत्र और पशुओं की हत्या से उत्पन्न चीख में कोई अंतर नहीं होता है। समीक्षावादी दार्शनिक कांट के अनुसार मनुष्य में ही आंतरिक मूल्य होता हैं अन्य जैविक घटकों में नहीं।

उपयोगितावादी विचारकों ने परिणाम को महत्व प्रदान किया। इनके अनुसार जैविक घटको के उपयोग से भोज्य पदार्थों में वृद्धि होती है, साथ ही अनुसंधान को बढ़ावा मिलता है, फलतः मानव ज्ञान में वृद्धि होती है, जिससे अधिकतम व्यक्तियों को अधिकतम लाभ होता है। इस प्रकार से प्रकृति का शोषण हुआ। 18वीं व 19वीं शताब्दियों में बेंथम व मिल जैसे दार्शनिकों ने यह प्रतिपादित किया कि *''सुख प्राप्ति ही जीवन का अंतिम लक्ष्य है। इस विचार ने मनुष्य की प्रकृति, जल, वायु, पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों आदि के बारे में विचार-विमर्श करने वाली बुद्धि पर विराम लगा दिया और पृथ्वी को संकट में डाल दिया।''* [30]

औद्योगिक क्रांति के काल में (18वीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं 19वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध) भौतिक संस्कृति का तीव्र विकास हुआ। इस काल में नई-नई तकनीकों का अविष्कार हुआ। फलस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध शोषण प्रारंभ हुआ।

यद्यपि भारतीय दर्शन में भी कहीं-कहीं उपभोगवाद के चिह्न दिखाई देते हैं। जैसे भारतीय परंपरा में एक दार्शनिक चार्वाक हुए जिनके दर्शन का मूल सिद्धांत है- खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ। इतना ही नहीं, उसने तो यहाँ तक कह डाला है -

'यावज्जीवेत सुखं जीवेत।
ऋणं कृ त्वां घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।

इस कथन का तात्पर्य यह है कि जब तक जिये सुख से जिये। ऋण लेके भी घी पिये। सुख के उपयोग के लिए ऋण भी लेना पड़े तो पीछे नहीं हटना चाहिए, क्योंकि शरीर के भस्म होने के उपरांत आत्मा कहाँ से आएगी।

इस प्रकार चार्वाक ने तमाम संयम एवं नैतिकताओं का निषेध किया, लेकिन यह दर्शन भारतीय परंपरा में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं पा सके। जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर महावीर स्वामी ने प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने के लिए सभी प्राणियों के जीवन के महत्व को समझा एवं 'जियो व जीने दो' का सूत्र प्रतिपादित किया। प्राचीन ग्रंथों में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। *''सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग भवेत्''*- प्रत्येक प्राणी के मंगल की कामना की गयी है। [31]

मानव एवं पर्यावरण के मध्य संबंध को मुख्यतः दो भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं। प्रथम - प्रभाव या महत्व के दृष्टिकोण से, द्वितीय - प्रयोजन के दृष्टिकोण से।

प्रथम के अनुसार, इनके संबंध में तीन अवधारणा प्रतिपादित की गयी हैं। प्रथम - निश्चयवाद (Determinism) इसके अनुसार सभी घटनाएँ प्राकृतिक नियमों के अनुसार घटित होती हैं-अर्थात् सब कुछ निश्चित है। इसमें प्रकृति को प्रधानता प्रदान की गई है। द्वितीय - संभावनावाद (Possibillism) इसके अनुसार, मनुष्य वो सब कुछ कर सकता है, जो वह करना चाहता है। इसमें मनुष्य को प्रधानता दी गई है। तृतीय नवनिश्चयवाद (New Determinism), इसके अनुसार ना तो प्रकृति की प्रधानता है, ना मनुष्य की, बल्कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। यह अवधारणा सतत विकास की अवधारणा है।

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति का आधार प्रकृति व पर्यावरण रहे हैं। हमारी सनातन देव संस्कृति हमें भाग्यवादी नहीं बल्कि कर्मवादी बनाती है। प्रकृति के तत्वों में देवत्व प्रदान करके उनके अस्तित्व को बचाए रखने का प्रयास प्राचीन नीति निर्माताओं ने किया।

पृथ्वी पर जीवन को बचाने व बनाए रखने के लिए पर्यावरण संरक्षण ही एकमात्र विकल्प है, जो कि हमारी संस्कृति की विशेषता रही है। अतः पर्यावरण का संकट आज सभी के लिए चिंता और चिंतन का विषय बना हुआ है। ऐसी स्थिति में *''पर्यावरण के निम्नलिखित पक्षों यथा-वन संसाान का प्रबंधन, मृदा प्रबंधन एवं वन्य जीव संरक्षण एवं प्रबंधन का प्रबंधन नितांत आवश्यक हो गया है।''* [32]

विकास प्रक्रिया के अनेक दुष्प्रभावों ने आम आदमी को पिछले कुछ समय में एकजुट होने तथा विकास को पर्यावरण के अनुकूल बनाने के लिए अनेक आंदोलन चलाने के लिए प्रेरित किया है। यथा- *''बिश्नोई आंदोलन राजस्थान, चिपको आंदोलन 1973 (तत्कालीन उत्तर प्रदेश*

वर्तमान उत्तराखंड), साइलेंट वैली आंदोलन 1973, केरल अप्पिको आंदोलन 1983, कर्नाटक नर्मदा बचाओ आंदोलन 1989, चिल्का बचाओ आंदोलन उड़ीसा, हिमाचल बचाओ आंदोलन और बेचांचो सार आंदोलन गोवा इत्यादि।''[33]

पर्यावरण संरक्षण के महत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी प्रयास किए जा रहे हैं। यथा– सर्वप्रथम 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने स्टाकहोम में पर्यावरण से संबंधित एक सम्मेलन आयोजित किया था। तब से लेकर अभी तक संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन COP–28, 16 दिसंबर 2023 एवं और COP–29 बाकू अजरबैजान में आयोजित किए गए। तब से लेकर अभी तक प्रमुख सम्मेलनों व समझौतों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है। जैसे–*''टोरंटो विश्व सम्मेलन 1988 कनाडा, पृथ्वी शिखर सम्मेलन 1992, रियो–डी–जेनेरो 1992 ब्राजील, इसी में 'एजेंडा 21' बन स्वीकृत किया। क्योटा प्रोटोकॉल 1997 जापान, जोकि 16 फरवरी 2005 से प्रभावी हुआ। मांट्रियल सम्मेलन कनाडा 1987, 16 दिसम्बर को ओजोन दिवस मानने का निर्णय लिया गया। जोहांसबर्ग पृथ्वी सम्मेलन 2002 दक्षिण अफ्रीका।''*[34]

भारत सरकार ने भी इस दिशा में अनेक कदम उठाए। जैसे –*''1976 में 42वां संविधान संशोधन के द्वारा संविधान में पर्यावरण संरक्षण हेतु राज्य के नीति के निर्देशक तत्वों में 48क जोड़कर पर्यावरण का संरक्षण तथा संवंधन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा तथा 51क में मूल कर्तव्य के अंतर्गत 51क(छ) जोड़ा गया, जिसके अंतर्गत भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करें और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे।''*[35]

इसके साथ-साथ *''वन्य जीव संरक्षण अधिनियम 1972, जल प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम 1974, वन संरक्षण अधिनियम 1980, वायु प्रदूषण नियंत्रण एवं निवारण अधिनियम 1981, पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986, राष्ट्रीय पर्यावरण न्यायाधिकरण का गठन 1995, इसी को प्रभावी बनाने के लिए राष्ट्रीयय पर्यावरण अपीलीय प्राधिकरण 1997 का गठन किया गया। ऐसी पहल सराहनीय है।''*[36]

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम निष्कर्षत: कह सकते हैं कि पर्यावरणीय समस्या मूल रूप से पश्चिमी भौतिकवादी संस्कृति की देन है और यह मूल रूप से भौतिक समस्या थी, जिसको पश्चिमी धर्म एवं दर्शन ने अपना समर्थन देकर दार्शनिक रूप भी दे दिया। पर्यावरणीय समस्या आज की अति महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय समस्याओं एवं मुद्दों में से एक है। इसके समाधान हेतु राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बहुत से प्रयास हुए हैं और बहुत सारे कदम उठाए गए हैं। फिर हम देखते हैं कि उपर्युक्त कदम नाकाफी हैं। अत: इसके लिए और भी गंभीर प्रयासों को किए जाने की आवश्यकता है। पर्यावरण का संरक्षण करना प्रत्येक व्यक्ति का नैतिक कर्तव्य भी हैस क्योंकि जिस प्रकृति से हम सब कुछ पाते हैं, उसकी सुरक्षा का दायित्व भी स्वयं ही हमारे कंधों पर आ पड़ता है।

''शक्ति के विद्युत्करण जो व्यस्त विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय समन्वय उनका करें समस्त, विजयिन मानवता हो जाय।''[37]

कवि जयशंकर प्रसाद जी की उक्त पंक्तियाँ मानव समाज को एकजुट होकर निरंतर प्रर्यावरण जैसी प्रत्येक समस्या के समाधान की प्रेरणा देती हैं। ❑

संदर्भ सूची :

1. प्रतियोगिता दर्पण, मई 2018 पेज सं. 172, प्रकाशन आगरा
2. प्रतियोगिता दर्पण, मई 2018, पेज सं. 172, पूर्वोक्त
3. प्रतियोगिता दर्पण, दिसंबर 2009, पेज सं. 986, प्रकाशन आगरा
4. योजना, जून 2013, पेज सं. 41, 42, सरोज कुमार वर्मा
5. झा, द्विजेन्द्र नारायण एवं श्रीमाली, कृष्ण मोहन, प्राचीन भारत का इतिहास पेज सं. 98, 128, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
6. सिन्हा, प्रो. हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा पेज सं. 47, मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन पुनर्मुद्रण:, दिल्ली 2002

7. प्रतियोगिता दर्पण, मई 2018, पेज सं. 172, पूवोक्त
8. अथर्ववेद संहिता भाग–1 (चतुर्थ कांड) सन्नति सूक्त 39 श्लोक सं.–2 पेज–46 प्रकाशक–ब्रह्मवर्चस् शान्ति कुंज हरिद्वार (उत्तराखंड)
9. अथर्ववेद संहिता भाग–1 तृतीय कांड कृषि सूक्त–17 श्लोक 4, 8 पेज सं.–20, पूर्वोक्त
10. प्रतियोगिता दर्पण, मई 2018, पेज सं.–172, पूर्वोक्त
11. ऋग्वेद संहिता प्रथम मण्डलम् सूत्र सं.–23 श्लोक सं.–21 पेज सं.–128
12. अथर्ववेद संहिता भाग–1 अष्टादश कांड सूक्त सं.–1 पितृमेघ सूक्त श्लोक सं.–34
13. मनुस्मृति, अनुवादक पं. गिरिराज द्विवेदी पेज–81, प्रकाशक नवल किशोर विद्यालय गोमती तट, लखनऊ 1917
14. प्रतियोगिता दर्पण, मई 2018, पेज सं. 172, पूर्वोक्त
15. झा, एवं श्रीमाली, प्राचीन भारत का इतिहास, पेज सं. 193, पूर्वोक्त
16. शर्मा, आचार्य श्रीराम, भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व, पेज सं. 1.69 प्रकाशक–अखंड ज्योति संस्थान मथुरा–281003, द्वितीय संस्करण 1998
17. सिन्हा, प्रो. हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा. पेज सं.–46, पूर्वोक्त
18. सिन्हा, प्रो. हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पेज सं.–47, पूर्वोक्त
19. सिन्हा, प्रो. हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पेज सं.–39, पूर्वोक्त
20. ऋग्वेद संहिता प्रथम मंडल सूक्त सं. 48 श्लोक, पेज सं. 61, पूर्वोक्त
21. ऋग्वेद संहिता प्रथम मंडल सूक्त सं.–48 श्लोक–5, पेज सं. 67, पूर्वोक्त
22. सिन्हा, प्रो. हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पेज सं.–41, पूर्वोक्त एवं कीथ, ए.वी.– वैदिक धर्म एवं दर्शन, पृष्ठ स.–149
23. शर्मा, आचार्य श्रीराम, भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व पेज सं.–2.60, पूर्वोक्त
24. वही, पेज सं.–2.85
25. अथर्ववेद संहिता भाग–1 चतुर्थ कांड सूक्त सं. 21, गोसमूह सूक्त श्लोक सं.–6, पेज सं.–26
26. अथर्ववेद संहिता भाग–तृतीय कांड सूक्त सं. 21, शांति सूक्त श्लोक सं.–1, 2, पेज सं.–24
27. मनुस्मृति अनुवादक– पं. गिरिराज द्विवेदी पेजसं.–67, पूर्वोक्त
28. शर्मा, एल.पी., मध्यकालीन भारत, पेज सं.–53, 227, 321
29. योजना जून–2013, पेज सं. 41, 42 पूर्वोक्त
30. योजना जून–2013, पेज सं. 41, 42 पूर्वोक्त
31. सिन्हा, प्रो, हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पेज सं.–94, 95, पूर्वोक्त
32. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण, परीक्षा वाणी बौद्धिक प्रकाशन, इलाहाबाद, त्रयोदस संस्करण नवंबर 2019–20, पेज सं.–215
33. पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण, परीक्षा वाणी, पेज सं. 217, 18, पूर्वोक्त
34. वही, पेज सं. 224, 25, 26, पूर्वोक्त
35. भारत का संविधान (पॉकेट संस्करण) भाग–4, पेज सं. 26, भाग–4क मूलकर्तव्य, पेज सं.–27, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन षष्ठ संस्करण 2004, 9107, दरभंगा कालोनी इलाहाबाद
36. गूगल, विकीपीडिया
37. प्रसाद, जयशंकर, कामायनी, पृष्ठ सं. 43, भारती–भंडार प्रकाशन संस्करण 1958

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में दलित चेतना

डॉ. के.एच. अरुणा देवी

सगोलबंद तेरा लुकराम लैरक
जिला-इंफाल वेस्ट
थाना-लम्फेल, डाक-इंफाल,
मणिपुर-795001
8794363549
arunakh1489@gmail.com

शोध-सारांश :

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता विविधा आयामी है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता का महत्व इस दृष्टि से बढ़ जाता है कि यहाँ अनेक विमर्शों को केंद्रीयता मिली। स्त्री, दलित और आदिवासी इनमें प्रमुख हैं। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में दलित चेतना मुखर रूप में लक्षित की जा सकती है। दलित चेतना की कविताएँ न केवल दलितों के जीवन संघर्ष, उनके सुख-दुख, आशा-निराशा को स्वर प्रदान करती हैं, वरन दलित कवियों की प्रतिरोधी चेतना को भी उजागर करती हैं। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता का एक महत्वपूर्ण आयाम दलित कवियों द्वारा सृजित कविताएँ है।

बीज शब्द :

दलित, दलित चेतना, इक्कीसवीं सदी, वर्णव्यवस्था, यथार्थ, आक्रोश, प्रतिरोध, अस्मिता आदि।

मूल आलेख :

बदलते हुए परिवेश में पिछले कई दशकों से साहित्य में दलित विमर्श हिंदी कविता का मुख्य स्वर बन गया है। सदियों से वर्ण-व्यवस्था या जातिवाद के चलते दलित समाज उपेक्षा का शिकार होता आया है। इक्कीसवीं सदी तक आते-आते अनेक दलित साहित्यकार उभरे हैं, जिन्होंने दलित होने की पीड़ा का यथार्थ चित्रण अपने काव्य सृजन में किया है। साथ ही दलितों के साथ हो रहे अन्याय और शोषण के प्रति आक्रोश की भावना को दलित काव्य का मुख्य उद्देश्य बनाया है। इस संदर्भ में सुशीला टाकभौरे का कथन उल्लेखनीय है, *''जिस प्रकार कविता को मानव मन की भावना की प्रथम अभिव्यक्ति माना जा सकता है, उसी प्रकार दलित कविता को, दलित समाज की चेतना का प्रथम प्रस्तुतिकरण माना गया है। पूरे समाज में हलचल मची है, युगों-युगों से चली आ रही परंपराओं को दलित समाज की चेतना और अस्मिता की अनुभूति ने झकझोर कर रख दिया है। समाज के इस पीड़ित दलित वर्ग ने अपनी सहज भाषा में, सुबोध अभिव्यक्ति के साथ बिना किसी छल प्रपंच के अपनी मानसिक पीड़ा को प्रस्तुत किया है।''*[1]

आज कई दशकों से अनेक दलित कवि सक्रिय हैं, जिन्होंने अपनी कृतियों द्वारा दलितों के दुख-दर्द और संघर्ष चेतना को बखूबी अभिव्यक्त किया है। इनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि, श्यौराज सिंह बेचैन, सूरजपाल चौहान, सुशीला टाकभौरे, रजनी तिलक आदि उल्लेखनीय हैं।

दलित विमर्श के प्रमुख कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि के काव्य संग्रह 'अब और नहीं' में दलितों की पीड़ा का चित्रण देखा जा सकता है। कवि समाज में व्याप्त वर्ण-व्यवस्था या जातिवाद के सत्य का चित्रण 'लेखा-जोखा','अस्थि-विसर्जन','दहलीज','श्रेष्ठ','इतिहास' आदि कविताओं के माध्यम से उजागर करते हैं। वर्ण-व्यवस्था एवं जातिवाद की पीड़ा सहने वाले दलित समाज की वेदना को लक्षित करते हुए वाल्मीकि जी सवर्ण समाज के अमानवीय व्यवहार के सत्य को इस प्रकार चित्रित करते हैं-

''जब भी छूना चाहा
मन्दिर के गर्भ गृह को
या उकेरे गए भित्ति चित्रों को
हर बार कसमसाया हथौड़े का एहसास
हथेली में''[2]

शिक्षा के अभाव में ज्यादातर दलित मजदूरी करके अपना पेट पालते हैं। जातिगत व्यवस्था के कारण दलित श्रम कार्य को अपना कर्तव्य समझते आए हैं। कवि इस प्रकार की सभ्यता और संस्कृति पर व्यंग्य करते हैं, जो मनुष्य को उसके श्रम के आधार पर सम्मान देने के पक्षधर होते हैं। 'विरासत' कविता में दलित जीवन के इस दर्द को कवि ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है-

''ईंट-पत्थर
सभी पर है
स्पर्श हमारा
लगे हैं जो घरों में आपके
फिर भी बना दिया आपने
हमें अछूत और अन्त्यज''[3]

आज इक्कीसवीं सदी में भी धर्म के नाम पर दलितों पर शोषण का सिलसिला जारी है। वाल्मीकि जी ईश्वर के अस्तित्व को नकारते हुए दलितों को अपनी लड़ाई खुद लड़ने का संदेश देते हैं। 'अपने हिस्से की रोटी' नामक कविता में कवि इसी संवेदना को प्रत्यक्ष रूप में प्रकट करते हैं। वे दलितों को धर्म की बेड़ियों से मुक्त होकर समानता के लिए खुद संघर्ष करने का आह्वान करते हैं -

''ओ, हजारों साल पुराने देवताओं
मैं नकारता हूँ
तुम्हारे अस्तित्व को
मैं लडूंगा
अपनी हड्डियों के व्रज से''[4]

'अब और नहीं' नामक कविता में वाल्मीकि जी दलित समाज द्वारा हजारों सालों से सहन की जा रही यातना और अपमान की पीड़ा को शब्दबद्ध करते हैं। सदियों की चुप्पी का फायदा सवर्ण समाज उठाती आई है। अब दलितों में असमानता की भावना के प्रति आक्रोश, वर्ण-व्यवस्था की जंजीरों को तोड़ने की प्रबल इच्छा जाग्रत हो चुकी है। कविता का शीर्षक ही इस बात का प्रमाण है कि सदियों के दर्द के बाद वे अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करने को तत्पर है। इस कविता के माध्यम से वे दलितों के भीतर उस भावना को जाग्रत करते है,जहाँ वे और अधिक अन्याय सहने को तैयार नहीं है। कवि के आक्रोश को अभिव्यक्त करती कविता की पंक्तियाँ हैं-

''बहुत दिन जी चुके हताशा और नैराश्य के बीच
कलाबाजियों और चतुराई भरे शब्दों का
खेल हो चुका
अब और नहीं''[5]

श्यौराज सिंह बेचैन इक्कीसवीं सदी के महत्वपूर्ण कवि हैं, जिनकी कविताओं का केंद्र बिंदु दलित संघर्ष है। 'चमार की चाय' काव्य संग्रह में सदियों से प्रताड़ित दलितों के दर्द को दर्शाया गया है। इस संग्रह में संकलित कविता 'मुड़-मुड़के' में कवि दलितों के संवैधानिक अधिकारों को लेकर अनेक सवाल उठाते हैं और पूछते हैं कि न्याय की विफलता के लिए कौन जिम्मेदार है,जबकि उन्हें पशुओं से भी बदतर जीवन जीने के लिए मजबूर किया गया है। दलितों की सुरक्षा के लिए बनाए गए कानूनों की विफलता पर कवि प्रश्न करते हैं -

''लेकिन अछूतों का
हाल क्या बनाया है
कहने को मानव
पै, पशुओं से
बदतर कर
न्याय की कसौटी को-
किसने झुठलाया है''[6]

कवि ने 'सारे जहाँ से अच्छा' नामक कविता में

दलितों के साथ हो रहे अन्याय और षड्यंत्र का एक सशक्त और व्यंग्यात्मक दस्तावेज प्रस्तुत किया है। यह कविता दर्शाती है कि जहाँ वर्ण-व्यवस्था और अस्पृश्यता को मिटाने के लिए तथा कमजोर वर्गों के विकास के लिए सरकार ने अनेक कानून और योजनाएँ बनाई हैं, वहीं शोषणकारी तंत्र ठीक इसके विपरीत काम कर रहा है। कवि उन तत्वों के प्रति लोगों को सचेत करते हैं, जो समाज में आपसी द्वेष और घृणा फैलाते हैं। इस कविता में कवि दलितों पर होने वाले अत्याचारों पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं -

''बिहार में शहीद कर
दिए दर्जनों दलित और
बलि चढ़ा दिये
जाति-विद्वेष की वेदी पर
'मेरे वतन के लोगों-
जरा आँखों में भर लो पानी'
क्योंकि अभी जिन्दा है दलित''[7]

कवि अपनी कविता संग्रह 'चमार की चाय' में संकलित शीर्षक कविता के माध्यम से दलित व्यक्ति के जीवन संघर्षों को सहज और स्वाभाविक ढंग से व्यक्त करते हैं। वे शिक्षा को दलितों की स्थिति सुधारने का एक सशक्त माध्यम मानते हैं और अपनी कविताओं में सभी को समान शैक्षिक अवसर प्रदान करने की वकालत करते हैं। हालाँकि दलितों के संघर्षशील जीवन में सकारात्मक बदलाव की उम्मीद होने पर, सवर्ण समाज उनके हौसले को तोड़ने का प्रयास करता रहा है। जाति-व्यवस्था ने दलितों को अपमानित करने का कोई अवसर नहीं छोड़ा है। कदम-कदम पर होने वाले अपमान, दमन और असमानता के व्यवहार ने दलितों के मन में सवर्ण समाज के प्रति गहरा आक्रोश और विद्रोह की भावना को जन्म दिया है। जयप्रकाश कर्दम के शब्दों में *''दलित की अनुभूति दर्द की अनुभूति है। दर्द के अलावा उन्हें और कुछ नहीं मिला है। इसकी पीड़ा उसे निरन्तर व्यथित और विकल बनाती है। यह दर्द ही उनकी कविताओं में अभिव्यक्त हुआ है। इसलिए यह बहुत स्वाभाविक है कि दलित कवि का मन जाति के प्रति नकार और विद्रोह से भरा है। इसे यूँ भी कह सकते हैं कि जाति का विरोध दलित कविता का प्रमुख स्वर है।''*[8] कवि जाति-व्यवस्था के कारण लोगों के बीच पनप रही आपसी द्वेष और संवेदनहीनता को अपनी कविता के माध्यम से उजागर करते हैं -

''चमार की चाय
पीना तो दूर
छुई भी नहीं जा सकी।
पिछड़े-अगड़े
ब्राह्मण बनिये
सबने कर दिया बहिष्कार।
और फिर
चाय भी नहीं बेच सका दलित बेरोजगार''[9]

कवि अपनी कविता 'उठो' के माध्यम से दलितों को अपनी दयनीय स्थिति से उबरने के लिए स्वयं आगे आने की प्रेरणा देते हैं। वे शिक्षा के महत्व पर विशेष जोर देते हैं और उनका मानना है कि शिक्षा के द्वारा ही दलित समाज अपने दुर्भाग्य और गरीबी से मुक्ति पा सकता है। शिक्षा की शक्ति से वे अपने अधिकारों के लिए संगठित होकर संघर्ष कर सकते हैं। वे शिक्षा को केवल व्यक्तिगत उन्नति का साधन नहीं,बल्कि सामाजिक सुधार का एक शक्तिशाली साधन भी मानते हैं। उनके अनुसार, शिक्षा ही वह शक्ति है, जो समाज में व्याप्त ऊँच-नीच की भावना, सामाजिक विद्वेष और धार्मिक मतभेद जैसी संकीर्ण मानसिकता को समाप्त कर सकती है। अत: कवि शिक्षा को दलितों की मुक्ति का एकमात्र मार्ग मानते हैं और इसी कारण वे शिक्षा की अनिवार्यता को इस कविता में अत्यंत प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करते हैं -

''दलितों अछूतों के
पिछड़े-अति पिछड़ों के
आदिवासियों के
बच्चों को जगह दो,
चाहो तो मंदिर बंद रखो,
परंतु स्कूलों
के दरवाजे खोलो।''[10]

प्रख्यात दलित कवि सूरजपाल चौहान का बहुचर्चित काव्य संग्रह 'क्यों विश्वास करूँ', 'कब होगी वह भोर','वह दिन जरूर आएगा' ब्राहमणवादी व्यवस्था के शोषण के विरुद्ध दलित चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति है। 'क्यों विश्वास करूँ' काव्य संग्रह की भूमिका में

रमणिका गुप्ता लिखती हैं *''दलितों के दमन, अपमान-तिरस्कार, उपहास-निंदा और उपेक्षा बहिष्कार की नीति से संचालित षड्यंत्रकारी ब्राहमणवादी सामाजिक व्यवस्था के नियामक कारकों के विरूध नकार और विद्रोह प्रश्नाकुलता इस संग्रह की कविताओं की मूलभूत विशेषता है।''*[11] संग्रह की शीर्षक कविता 'क्यों विश्वास करूँ' धर्म के आवरण में छिपी हिंसा को उजागर करती है। कवि का मानना है कि सवर्ण समाज ने धर्म की ओट में सदैव दलितों की आस्था और विश्वास के साथ धोखा किया है। कवि इसी व्यथा को निम्न कविता की इन पंक्तियों में उजागर करते हैं -

''धर्म की आड़ में
हिंसा के नाखून।
*****
फिर भला मैं
कैसे विश्वास करूँ
तुम्हारी सहिष्णुता
एवं भाईचारे की भावना पर।''[12]

विडंबना है कि आज भी धर्म के नाम पर दलित अपमानित हो रहे हैं, जिसके चलते धर्म परिवर्तन की गति तेजी से बढ़ रही है। सदियों से चली आ रही इस सामाजिक विसंगति के कारण उनकी आस्था और विश्वास को ठेस पहुँच रही है। अतः दलित स्वाभाविक रूप से ऐसे स्थान की तलाश करता है, जहाँ उसे मानवीय गरिमा प्राप्त हो सके। जैसा कि इस उदाहरण में देखा जा सकता है -

''मस्जिद में आदर मिले, गुरुद्वारे सम्मान।
मानवता है चर्च में, मंदिर में अपमान।।''[13]

'यह दलितों की बस्ती' नामक कविता में कवि दलितों की बस्ती का यथार्थवादी और मार्मिक दशा का चित्रण करते हैं। वे बताते हैं कि किस तरह दलित व्यक्ति शहर की साफ-सफाई करते हैं, लेकिन वे खुद गंदी बस्तियों या घरों में रहने के लिए मजबूर हैं। यह कविता इस कड़वी सच्चाई को दर्शाती है कि दलित परिवारों में जन्म लेते ही बच्चों की नियति तय हो जाती है। उन्हें समाज में एक निश्चित और नीचा दर्जा दे दिया जाता है। उन्हें सम्मानजनक नामों से नहीं बल्कि अपमानजनक नामों से पुकारा जाता है। कवि दलितों की बस्ती के कड़वे सच को बड़े ही साहस के साथ पाठकों के सामने रखते हैं और समाज को सोचने पर मजबूर करती है कि क्या यही दलितों की नियति है या समाज को इस स्थिति को बदलने का प्रयास करना चाहिए। गरीबी के कारण दलित बच्चों को शिक्षा से दूर रखा जाता है, जिससे वे सम्मानजनक पेशा अपनाने में असमर्थ हो जाते हैं। अतः इस कविता में कवि दलितों को अपनी हीनता और मजबूरी को त्यागकर एक बेहतर भविष्य की ओर बढ़ने का संदेश देते हैं। कवि के शब्दों में -

''यहाँ जन्मते हर बालक को पकड़ा देते हैं झाड़ू
ओ बेटा, अबे साले, कहते हैं लालू, कालू
गोविंदा और मिथुन बनकर
खोल रहे हैं वे नाली...
यह दलितों की बस्ती है''[14]

सन् 2007 में प्रकाशित सूरजपाल चौहान का काव्य संग्रह 'कब होगी वह भोर' दलित चेतना को सशक्त स्वर प्रदान करता है। यह केवल एक काव्य संग्रह नहीं, बल्कि उस दर्द और संघर्ष का दस्तावेज है, जो सदियों से दलित समाज झेल रहा है। मनुवादी व्यवस्था के विरुद्ध यह काव्य संग्रह न सिर्फ आक्रोश व्यक्त करता है, बल्कि एक नए समाज की परिकल्पना भी प्रस्तुत करता है। 'मेरा इतिहास' नामक कविता में कवि इतिहास की परतों को उघाड़ते हुए यह स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार वर्ण-व्यवस्था के कारण दलित समाज को सवर्णों की गुलामी का दंश झेलना पड़ा। इतिहास इस बात का गवाह है कि दलितों को किस प्रकार उपेक्षा और तिरस्कार का सामना करना पड़ा है। यह कविता न केवल दलित समाज की वास्तविकता को दर्शाती है, बल्कि समाज में व्याप्त अन्याय को समाप्त करने की मार्मिक पुकार भी है। कवि दलितों की असहनीय पीड़ा और स्थिति को इन पंक्तियों के माध्यम से जीवंत करते हैं -

''चतुरंगी-व्यवस्था का खूनी पंजा,
जाति का ओछा-पन
और बसीठों की जूठन
बस, मुझे तो इतना ही याद
मेरा इतिहास''[15]

'कब होगी वह भोर' शीर्षक कविता में कवि उस सुबह की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जो समानता और सम्मान का संदेश लेकर आएगी। यह एक ऐसी भोर होगी जब

दलित समाज को सवर्ण समाज द्वारा अपेक्षित मान-सम्मान दिया जाएगा। कवि प्रश्न करते हैं कि कब वह सुबह आएगी, जब दलित बिना किसी भेदभाव के अपने कंधों पर हल रखकर अपने खेतों में काम करने जा सकेंगे। वे उस समय की प्रतीक्षा में हैं, जब ब्राह्मणवादी व्यवस्था के बंधनों को तोड़कर दूसरों के बाप को बाप कहना बंद कर देंगे। कवि उस भोर का बेसब्री से इंतजार कर रहे हैं, जब एक दलित दूल्हा बिना किसी रोक-टोक और भय के घोड़ी पर चढ़कर पूरे गाँव में अपनी बारात लेकर जा सकेगा। कवि मनुवादी व्यवस्था से दलित समाज की पूर्ण मुक्ति की कामना करते हुए कहते हैं -

''कब होगी वह भोर
जब छोड़ देंगे करना वंदना
हत्यारों की
मेरे परिवार के लोग
छोड़ देंगे-
दूसरे के बाप को
अपना बाप कहना''[16]

सन 2014 में प्रकाशित 'वह दिन जरूर आएगा' सूरजपाल चौहान का चौथा काव्य संग्रह है। संग्रह में संकलित कविताओं में से एक 'जातिवाद' कविता में वे जातिवाद के भयानक चेहरे को हमारे सामने उजागर करते हैं। वे जातिवाद को एक ऐसा घातक ब्रह्मास्त्र की संज्ञा देते हैं, जिसने मनुष्यों के बीच ऊँच-नीच और छुआछूत जैसी घृणित भावनाओं को जन्म दिया है। यह एक ऐसा अदृश्य जहर है, जो समाज की जड़ो को खोखला कर रहा है। जातिवाद एक ऐसा अवरोध है, जिसने देश के विकास की गति को धीमा कर दिया है, क्योंकि इसने मनुष्यों के बीच आपसी आस्था और विश्वास को पनपने ही नहीं दिया। जातिवाद के इस विनाशकारी स्वरूप को दर्शाती हुई कविता की पंक्तियाँ हृदय को झकझोर देती हैं -

''जातिवाद
देश का विकास नहीं होने देता
नहीं पनपने देता
आपस में विश्वास''[17]

काव्य संग्रह की शीषर्क कविता 'वह दिन जरूर आएगा' में कवि ने सवर्ण समाज की शोषणकारी व्यवस्था को उजागर किया है। यह कविता एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, जो सामाजिक न्याय और समानता के लिए एक प्रबल इच्छा को दर्शाती है। कवि ऐसे उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हैं, जहाँ हर कोई अपनी क्षमता के अनुसार बिना किसी भेदभाव या शोषण के देश का नेतृत्व कर सके। यह ऐसा समाज होगा, जहाँ कोई भी व्यक्ति जन्म या जाति के आधार पर अयोग्य नहीं माना जाएगा। यह कविता एक नए और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना का आह्वान करती है। कवि इस भावना को अपनी इन पंक्तियों में व्यक्त करते हैं -

''भंगिन का बेटा
करेगा देश का नेतृत्व
पढ़ाएगा एकता का पाठ
और एकलव्य दूर खड़ा मुस्काएगा
अंगूठा दिखाते हुए
दिन वह जरूर आएगा''[18]

'खामोश नहीं हूँ मैं' काव्य संग्रह से पहचान बनाने वाले दलित कवि असंगघोष की कविताओं में दलित पीड़ा और चेतना का स्वर मुखरित हुआ है। 'हम गवाही देंगे' और 'मैं दूँगा माकूल जवाब' नामक काव्य संग्रह में भी कवि असंगघोष ने दलितों पर हो रहे तमाम जुल्म एवं हिंसा का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। जाति-पाति के भेदभाव से मुक्ति के लिए दलित वर्ग आज संकल्पबद्ध है-इसके लिए भले ही उन्हें मौत के घाट ही क्यों न उतरना पड़े। 'हाँ हम गवाही देंगे' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं -

''हम निहत्थे ही सही/सामना करेंगे
तुम्हारी लाठी-गोलियों का
बच गए
तो गवाही देंगे
तुम्हारे खिलाफ
कचहरी में''[19]

'काट डालूँगा उन पैरों को' नामक कविता में कवि मनुवादी व्यवस्था के प्रति कड़ा प्रतिरोध व्यक्त करते हैं। कवि का मानना है कि जब तक पुरानी भेदभावपूर्ण मान्यताओं को पूरी तरह खत्म नहीं किया जाएगा, तब तक समानता नहीं आएगी। इसीलिए वे बिना डरे उस आधार को ही खत्म करने की बात करते हैं, जिस पर ऊँच-नीच की व्यवस्था टिकी है-

''पूरी तरह पाना है निजात
भले ही
काटना पड़े
आदि-पुरुष के, 'वही पैर'
बिना किसी संकोच के
तो मैं
काट डालूँगा''[20]

'पदचाप' काव्य संग्रह से साहित्य जगत् में अपनी पहचान बनाने वाली दलित कवयित्री रजनी तिलक अपने काव्य संग्रह की भूमिका में लिखती हैं – *''मनु स्मृति के विधान के अनुरूप समाज ऊँच-नीच के आधार पर विभिन्न हिस्सों में बाँटा गया। केवल बाँटा ही नहीं गया, अपितु ऊँच-नीच के भाव ने समाज में गैर बराबरी, मिथ्याचार, अंधविश्वास, लिंग-रंग-जातिवाद पैदा भी किए। जाति-लिंग भेदभाव की सबसे ज्यादा मार पड़ी दलितों व स्त्रियों पर विशेष तौर पर दलित स्त्रियों।''*[21] इस काव्य संग्रह के माध्यम से कवयित्री दलित स्त्रियों की संवेदना उनकी पीड़ा और संघर्ष यात्रा को उजागर करती है। कवयित्री सावित्रीबाई फूले और ज्योतिबाई फूले को दलित स्त्री मुक्ति आंदोलन की मशाल मानती हैं। दलित समाज में इनके योगदान,साहस और संघर्ष ने ही दलित स्त्रियों के मन में मुक्ति की भावना पैदा कराई, इसलिए कवयित्री कहती हैं –

''सावित्रीबाई फूले
तुम्हारा जीवन एक कसौटी है
तुमने ही पहली बार
लड़कियों को स्कूल की राह दिखाई''[22]

संग्रह में संकलित कविता 'औरत- औरत में अंतर है' के माध्यम से कवयित्री समाज में व्याप्त उस सूक्ष्म गहरी असमानता को उजागर करती हैं, जहाँ एक दलित स्त्री को दोहरे उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। वे रेखांकित करती हैं कि स्त्री होना अपने आप में एक संघर्ष है, लेकिन दलित स्त्री का संघर्ष जातीय और लैंगिक भेदभाव की दोहरी परतों में लिपटा हुआ है। इस मर्मस्पर्शी सत्य को इन पंक्तियों में जीवंत किया गया है-

''एक सताई जाती है स्त्री होने के कारण
दूसरी सताई जाती है स्त्री और दलित होने पर
एक तड़पती है सम्मान के लिए
दूसरी तिरस्कृत है भूख और अपमान से''[23]

'पीड़ा की फसलें' नामक कविता के माध्यम से दलित कवयित्री सुशीला टाकभौरे स्त्रियों की स्थिति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती है। रेखा सेठी के शब्दे में- *''दलितों में दलित, पिछड़ों में पिछड़ी, समाज में सबसे संवेदनशील स्थिति स्त्री की ही हैं। एक स्त्री रचनाकार के नाते सुशीला टाकभौरे स्त्री-जीवन की विडम्बनात्मक स्थितियों, उसकी पीड़ा व संघर्ष की धारदार अभिव्यक्ति करती हैं। ऐसी कविताएँ स्वयं को पहचानने की कोशिश भी हैं अपनी स्थिति से ऊपर उठने- उठाने का संकल्प भी।''*[24] उनमें आत्मसम्मान और स्वाभिमान के साथ जीने की लालसा को कवयित्री निम्न पंक्तियों में अभिव्यक्त करती हैं –

''वह धरती में नहीं
आकाश में जाना चाहती है
देवकी की कन्या की तरह
बिजली सी चमक कर
संदेश देना चाहती है –
तुम्हारी कंसीय-मानसिकता के अन्त का''[25]

दलित विमर्श की अत्यंत चर्चित कवयित्री रजत रानी मीनू के काव्य संग्रह 'पिता भी होते हैं माँ' में दलित स्त्रियों की पीड़ादायक जीवन अनुभवों का चित्रण साफ दिखाई पड़ता है। यहाँ सुशीला टाकभौरे का कथन उल्लेखनीय है –*''समाज में वर्ण-व्यवस्था जाति व्यवस्था की तरह नारी की दलित स्थिति-यह एक कटु सत्य है। जिस तरह वर्ण-व्यवस्था समाज में असमानता बनाए रखने की व्यवस्था है-उसी तरह समाज में नारी के प्रति मनुवादी अवधारणा स्त्री को पुरुषों से हमेशा छोटा या निम्न बनाए रखने की व्यवस्था है।''*[26] इस काव्य संग्रह में संकलित 'मेरा दर्द', 'वह स्त्री','रविवार का दिन', 'महिला सशक्तिकरण' आदि महत्वपूर्ण कविताएँ हैं, जो स्त्री मन की भावनाओं को उजागर करती हैं। कवयित्री दलित स्त्रियों की वेदना और दुर्दशा को अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित करती हैं-

''मैं भी पढ़ना चाहती हूँ
आगे बढ़ना चाहती हूँ
मगर
मेरी सवर्ण शिक्षिका ने
लिख दिया मेरे माथे पर
काली स्याही से तू चमारी है''[27]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविताओं में दलित जीवन की पीड़ा विभिन्न रूपों में दृश्यमान है। अपनी जिस पीड़ा और जीवन संघर्ष का वर्णन इन दलित कवियों ने किया है। वह जहाँ एक तरफ अत्यंत मार्मिक और त्रासद है, वही दूसरी ओर प्रतिकार और विद्रोह की भावना की प्रतीति कराता है। इक्कीसवीं सदी की दलित कविता का वैशिष्ट्य यह है कि अब यह स्वयं के अंतर्विरोधों से मुक्त होकर भारतीय समाज व्यवस्था में व्याप्त उन तमाम बिंदुओं की शिनाख्त में संलग्न है, जिससे दलित समाज का विकास अवरुद्ध है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता भारतीय समाज के अंतर्विरोधों को समग्रता में रूपायित करती है। इसके साथ ही इस कविता में दलित स्त्री की अस्मिता और उसके अस्तित्व के लिए संघर्ष को भी देखा जा सकता है। निस्संदेह इक्कीसवीं सदी की हिंदी दलित कविता कथ्य और संवेदना दोनों दृष्टियों से हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित कराती है। इक्कीसवीं सदी के इन पच्चीस वर्षों की दलित कवियों की काव्य यात्रा का साक्षात्कार करते हुए यह कहा जा सकता है कि वर्तमान में इस चेतना के कवियों का शिल्प पक्ष भी पहले की तुलना में अत्यधिक सशक्त और प्रभावशाली हुआ है। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. सुशीला टाकभौरे, दलित साहित्य एक आलोचना दृष्टि,शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, संस्करण 2016 ई., पृ.95-96
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि,अब और नहीं,राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण 2009 ई.,पृ.11
3. वही पृ.92
4. वही पृ.96
5. वही पृ.105
6. श्यौराज सिंह बेचैन, चमार की चाय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017 ई., पृ.67
7. वही पृ.79
8. दीपक कुमार पांडेय(सं.),दलित विमर्श और हिंदी साहित्य, लोक भारती प्रकाशन, इलाहबाद, प्रथम संस्करण 2017 ई., पृ.35
9. श्यौराज सिंह बेचैन, चमार की चाय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017 ई., पृ.74
10. वही पृ. 134
11. सूरजपाल चौहान,क्यों विश्वास करूँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2004 ई., भूमिका से
12. वही पृ.26
13. वही पृ.44
14. वही पृ.45
15. सूरजपाल चौहान, कब होगी वह भोर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2004 ई., पृ.24
16. वही पृ.32
17. सूरजपाल चौहान, वह दिन जरूर आएगा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014 ई., पृ.35-36
18. वही पृ.32
19. असंगघोष, हम गवाही देंगे, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2010 ई., पृ.35
20. वही पृ.56
21. रजनी तिलक, पदचाप, निधि बुक्स प्रकाशन, पटना, संस्करण 2008 ई.,भूमिका से
22. वही पृ.1
23. वही पृ.41
24. रेखा सेठी, स्त्री कविता पक्ष और परिप्रेक्ष्य,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2019 ई.,पृ.198
25. रमणिका गुप्ता (सं.), दलित चेतना : कविता, ज्योतिलोक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2012 ई.,पृ.71
26. चमन लाल (सं.), दलित और अश्वेत साहित्य : कुछ विचार, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला, प्रथम संस्करण 2001 ई.,पृ.121
27. रजत रानी मीनू, पिता भी होते हैं माँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015 ई., पृ.35

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

व्यावसायिक शिक्षा में योगनिद्रा का समावेश : जगद्गुरु शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत के परिप्रेक्ष्य में

मोहित पाण्डेय

सहायक आचार्य
योग और जीवन विज्ञान विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं,
राजस्थान-341306
7052306131
mohitpandey7052@gmail.com

सारांश :

प्रस्तुत शोध-पत्र आधुनिक व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में योगनिद्रा की प्रविधि और जगद्गुर शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत दर्शन के अंतर्संबंधों का विवेचन करता है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में व्यावसायिक शिक्षा केवल सूचनात्मक ज्ञान तक सीमित हो गई है, जिससे छात्रों में मानसिक तनाव, रचनात्मकता का अभाव और भावनात्मक असंतुलन देखा जा रहा है। योगनिद्रा, जिसे 'जागरूक निद्रा' भी कहा जाता है, एक ऐसी यौगिक पद्धति है जो गहन विश्रांति के साथ-साथ अंतर्निहित चेतना को जाग्रत रखती है। यह शोध अद्वैत वेदांत के 'साक्षी भाव' और 'तुरीय चेतना' के सिद्धांतों के माध्यम से यह प्रतिपादित करता है कि योगनिद्रा व्यावसायिक कौशल विकास में 'स्व-प्रभावकारिता' (Self-efficacy) और 'भावनात्मक बुद्धिमत्ता' (EI) को पुष्ट करने का एक प्रभावी माध्यम है। स्कोपस (Scopus) और वेब ऑफ साइंस (WoS) जैसी प्रतिष्ठित शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित आँकड़ों के आधार पर यह अध्ययन सिद्ध करता है कि योगनिद्रा के माध्यम से तनाव प्रबंधन और मूल्य निर्माण (Value Creation) की प्रक्रिया को शैक्षणिक ढाँचे में सफलतापूर्वक एकीकृत किया जा सकता है।

बीज शब्द :

अद्वैत वेदांत, जगद्गुरु शंकराचार्य, योगनिद्रा, व्यावसायिक शिक्षा, साक्षी चेतना, तुरीय, भावनात्मक बुद्धिमत्ता, शैक्षिक मनोविज्ञान।

प्रस्तावना :

आज की शिक्षा प्रणाली एक मौन क्रांति की दहलीज पर खड़ी है। व्यावसायिक शिक्षा अब केवल रटने या तकनीकी दक्षता प्राप्त करने तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि यह एक ऐसे समग्र दृष्टिकोण की माँग कर रही है, जो मनुष्य को मात्र 'ज्ञान का पात्र' न मानकर एक जटिल और एकीकृत इकाई के रूप में स्वीकार करे। इसी आवश्यकता ने शिक्षा के क्षेत्र में 'समग्र प्रविधियों' (Holistic modalities) को मुख्यधारा में ला खड़ा किया है। इन प्रविधियों में 'योगनिद्रा'- जिसे प्राय: 'यौगिक निद्रा' कहा जाता है-ने अपनी विशिष्ट क्षमता के कारण वैश्विक स्तर पर शिक्षाविदों का ध्यान खींचा है।

योगनिद्रा की बढ़ती लोकप्रियता केवल इसके विश्रंतिकारक गुणों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसे आधुनिक वैज्ञानिक शोधों का भी प्रबल समर्थन प्राप्त है। अनेक शोधों ने यह प्रमाणित किया है कि योगनिद्रा के नियमित अभ्यास से

न केवल तनाव में कमी आती है, बल्कि यह रचनात्मकता, आत्मविश्वास और मानसिक स्वास्थ्य के संवर्धन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रस्तुत शोध-पत्र व्यावसायिक शिक्षा के ढाँचे के भीतर योगनिद्रा के एकीकरण की संभावनाओं का अन्वेषण करता है, जिसका दार्शनिक आधार जगद्गुरु शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त की गहन शिक्षाओं में निहित है। अनुभवजन्य साक्ष्यों (Empirical evidence) और तत्वमीमांसीय अंतर्दृष्टि के माध्यम से यह तर्क दिया गया है कि यह समन्वय व्यावसायिक जगत के लिए आत्म-जागरूक, करुणामयी और मानसिक रूप से सुदृढ़ नेतृत्व तैयार कर सकता है।

योगनिद्रा का स्वरूप और शैक्षिक लाभ :

योगनिद्रा जाग्रत अवस्था और गहरी नींद के बीच की एक विलक्षण मध्यम अवस्था है। जहाँ सामान्य निद्रा में व्यक्ति अपनी चेतना खो देता है, वहीं योगनिद्रा में एक साक्षी जागरूकता (Witnessing awareness) सदैव बनी रहती है।

वैज्ञानिक साक्ष्य और संज्ञानात्मक संवर्धन :

विभिन्न अध्ययनों ने निरंतर यह प्रदर्शित किया है कि योगनिद्रा का अभ्यास विभिन्न जनसंख्या समूहों के लिए लाभकारी है। मस्टो और वेलेरेंड (2023) के अनुसार, नियमित योगनिद्रा अभ्यास से छात्रों में तनाव के जैविक संकेतों (Stress markers) में गिरावट आती है और उनके मूड (Mood) में सकारात्मक बदलाव होता है। इसी प्रकार, क्लार्क (2024) ने अपने शोध में पाया कि योगनिद्रा से कॉलेज के छात्रों की एकाग्रता और भावनात्मक विनियमन (Emotional regulation) में उल्लेखनीय सुधार होता है।

रचनात्मकता, जिसे अक्सर एक 'रहस्यमयी स्फुरण' माना जाता है, योगनिद्रा के अभ्यास से पल्लवित होती है। तास्तानोवा और उनके सहयोगियों (2024) ने अपने अध्ययन में यह रेखांकित किया है कि योगनिद्रा के माध्यम से मन जब 'गैर-निर्णयात्मक' (Non-judgmental) अवस्था में पहुँचता है, तब वह अवचेतन की उन परतों तक पहुँच पाता है, जहाँ नवीन विचार और समाधान उत्पन्न होते हैं। व्यावसायिक शिक्षा में, जहाँ नवाचार और अनुकूलनशीलता की निरंतर माँग रहती है, वहाँ यह प्रविधि अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

दार्शनिक अधिष्ठान-शंकराचार्य का अद्वैत वेदांत :

योगनिद्रा की वास्तविक परिवर्तनकारी क्षमता को समझने के लिए इसके दार्शनिक मूलों को समझना अपरिहार्य है। जगद्गुरु शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत का सिद्धांत 'अद्वैत' या 'गैर-द्वैत' (Non-duality) पर आधारित है, जिसका अर्थ है-जीवात्मा और ब्रह्म की तात्विक एकता।

माया, अविद्या और साक्षी भाव :

अद्वैत वेदांत के अनुसार, संसार की पृथकता और बहुलता का अनुभव 'माया' या 'अविद्या' (अज्ञान) के कारण होता है। वास्तविक ज्ञान तब उदय होता है, जब यह अज्ञान समाप्त हो जाता है और व्यक्ति को अपनी वास्तविक प्रकृति का बोध होता है। शंकराचार्य योगनिद्रा के अनुभव को 'निर्विकल्प समाधि' के सन्निकट मानते हैं—वह अवस्था जहाँ समस्त मानसिक वृत्तियाँ शांत हो जाती हैं और द्वैत का लोप हो जाता है।

शंकराचार्य योगनिद्रा को 'राजयोग' और 'ज्ञानयोग' के व्यापक ढाँचे में समाहित करते हैं। यहाँ योगनिद्रा केवल तनाव मुक्ति का साधन नहीं है, बल्कि 'विवेक' (Discernment) और 'वैराग्य' (Detachment) विकसित करने की एक विधि है। जब एक व्यावसायिक छात्र इस दृष्टिकोण को अपनाता है, तो वह कार्यस्थल की सफलता और विफलता को एक 'साक्षी' की तरह देखने में सक्षम हो जाता है, जिससे उसकी निर्णय क्षमता में स्थिरता आती है।

व्यावसायिक शिक्षा के लिए अनुप्रयोग एवं निहितार्थ :

व्यावसायिक शिक्षा में योगनिद्रा का समावेश एक ऐसे 'होलिस्टिक पैराडाइम' (Holistic Paradigm) का निर्माण करता है,जो पारंपरिक शिक्षण विधियों से कहीं आगे है।

नेतृत्व विकास और वैल्यू क्रिएशन (Value Creation) :

व्यावसायिक जगत में नेतृत्व केवल प्रबंधकीय कौशल नहीं है, बल्कि यह एक सचेत उपस्थिति है। अटानासोव (2021) ने अपने शोध में यह पाया कि योगनिद्रा के अभ्यास से मूल्य निर्माण (Value creation) की प्रक्रिया

में सुधार होता है। यह अभ्यास व्यक्तिगत चेतना का विस्तार करता है, जिससे नेतृत्व के महत्वपूर्ण गुणों जैसे कि प्रतिबिंब (Reflectivity) और एकाग्रता (Focus) में वृद्धि होती है। यह प्रविधि पेशेवरों को लाभ के संचय (Value capture) से ऊपर उठकर समाज के लिए वास्तविक मूल्य निर्माण की ओर प्रेरित करती है।

भावनात्मक बुद्धिमत्ता और आत्म-प्रभावकारिता (Self-efficacy) :

यी (2025) द्वारा किए गए एक अध्ययन में यह पाया गया कि योगनिद्रा के माध्यम से संकल्प (Sankalpa) का प्रयोग करने से छात्रों की 'स्व-प्रभावकारिता' यानी अपनी क्षमताओं पर विश्वास करने की शक्ति में वृद्धि होती है। व्यावसायिक शिक्षा में यह अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि यह छात्रों को चुनौतियों का सामना करने के लिए मानसिक रूप से तैयार करता है। इसके अतिरिक्त अस्थाना (2025) के शोध के अनुसार, योग और माइंडफुलनेस के माध्यम से भावनात्मक बुद्धिमत्ता (àßI) में सुधार होता है, जो आज के कॉरपोरेट जगत में टीम वर्क और नेतृत्व के लिए अनिवार्य है ।

शिक्षण की वेदांतिक विधियाँ-व्यावसायिक प्रासंगिकता :

शंकराचार्य और अद्वैत परंपरा ज्ञान प्राप्ति की तीन क्रमिक विधियों का उल्लेख करती है, जो आधुनिक व्यावसायिक शिक्षाशास्त्र (Pedagogy) के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं :

1. श्रवण (Shravana) : सूचनाओं और सिद्धांतों को एकाग्रता से सुनना। योगनिद्रा में यह निर्देशों के प्रति जागरूकता के रूप में परिलक्षित होता है।

2. मनन (Manana) : प्राप्त सूचनाओं पर तार्किक चिंतन और सूक्ष्म जांच करना। व्यावसायिक जगत में इसे क्रिटिकल थिंकिंग कहा जाता है।

3. निदिध्यासन (Nididhyasana) : ज्ञान को आत्मसात करना और उसे अनुभव में ढालना। योगनिद्रा इस स्तर पर ज्ञान को बौद्धिक से आनुभविक स्तर पर ले जाती है।

ये विधियां छात्रों को सूचना से प्रज्ञा (Wisdom) की ओर ले जाने का मार्ग प्रशस्त करती हैं। जैसा कि कहा गया है, 'विद्या ददाति विनयं' (सच्ची शिक्षा विनम्रता प्रदान करती है)-यह विनम्रता आत्म-साक्षात्कार की प्रविधियों से ही संभव है।

आधुनिक वैज्ञानिक शोध एवं स्कोपस (Scopus) आधारित साक्ष्य :

आधुनिक तंत्रिका-विज्ञान (Neuroscience) के अनुसार, योगनिद्रा मस्तिष्क की कार्यप्रणाली में मापन योग्य परिवर्तन लाती है।

मस्तिष्क तरंगों का विश्लेषण (EEG Analysis) :

शोधों से पता चला है कि योगनिद्रा के दौरान मस्तिष्क अल्फा (Alpha) और थीटा (Theta) तरंगों की स्थिति में होता है। यह रिलैक्स्ड अवेयरनेस की स्थिति है, जहाँ मस्तिष्क तनाव से मुक्त होकर उच्चतम ग्रहणशीलता की अवस्था में होता है। अनुभवी साधकों में डेल्टा तरंगें भी देखी गई हैं, जो गहन निद्रा का संकेत हैं, जबकि वे पूरी तरह सचेत रहते हैं।

नैदानिक लाभ (Clinical Benefits) :

एम्स (AIIMS) और सशस्त्र बल चिकित्सा महाविद्यालय (AFMC) के शोधों (Datta et al., 2022) ने पुष्टि की है कि योगनिद्रा से अनिद्रा, शैक्षणिक तनाव और रक्तचाप में महत्वपूर्ण कमी आती है। व्यावसायिक छात्रों के लिए, जो अक्सर बर्नआउट (Burnout) का शिकार होते हैं, यह प्रविधि एक न्यूरोलॉजिकल रिसेट (Neurological Reset) का कार्य करती है।

चुनौतियाँ और समाधान :

व्यावसायिक शिक्षा में योगनिद्रा के एकीकरण के समक्ष कुछ चुनौतियां भी हैं :-

- संस्थागत स्वीकृति ट्ट पारंपरिक संस्थानों में ऐसी प्रविधियों के लिए स्थान बनाना कठिन हो सकता है।
- सांस्कृतिक संवेदनशीलता ट्ट इसे एक सार्वभौमिक कल्याणकारी साधन (Well-being tool) के रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक है, ताकि यह सभी पृष्ठभूमि के छात्रों के लिए स्वीकार्य हो।
- **प्रशिक्षित शिक्षक :** योगनिद्रा के सफल क्रियान्वयन के लिए उचित रूप से प्रशिक्षित शिक्षकों की

आवश्यकता है, जो वेदांत और मनोविज्ञान दोनों की समझ रखते हों।

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: जगद्गुरु शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत के सिद्धांतों पर आधारित योगनिद्रा का व्यावसायिक शिक्षा में समावेश प्राचीन प्रज्ञा और आधुनिक आवश्यकताओं का एक अद्भुत समन्वय है। यह प्रविधि न केवल छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा करती है, बल्कि उन्हें रचनात्मकता, करुणा और साक्षी भाव जैसे उच्च मूल्यों से भी मंडित करती है। शैक्षणिक प्रणालियों के क्रमिक विकास में योगनिद्रा का एकीकरण हमें मात्र कुशल श्रमिक नहीं, बल्कि सचेत, लचीले और मानवीय संवेदनाओं से युक्त पेशेवर प्रदान करने का सामर्थ्य रखता है। आधुनिक व्यावसायिक शिक्षा को सूचना संचयन के स्थान पर चेतना के विस्तार का लक्ष्य रखना चाहिए और इसमें योगनिद्रा एक महत्वपूर्ण आधार स्तंभ सिद्ध हो सकती है। ❑

संदर्भ सूची :

1. पातञ्जलयोगसूत्राणि (व्यासभाष्यसहितानि), चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
2. द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी।
3. विवेकचूडामणि: (जगद्गुरु शंकराचार्य), गीता प्रेस, गोरखपुर।
4. Aitken, L. E. (2025). *Measuring the Impact of Integrating iRest Yoga Nidra Meditation and Coaching Success*. ProQuest.
5. Amita, S., et al. (2009). Effect of Yoga Nidra on blood glucose level in diabetic patients. *Indian J Physiol Pharmacol*.
6. Asthana, A. N. (2025). Yoga, Mindfulness and Emotional Intelligence: Their Impact on Modern Management Education. *Seybold Report*, 20(01).
7. Clark, A. (2024). *The Well-being of College Students Who Participate in a Regular Yoga Nidra Practice*. Minnesota State University.
8. Datta, K., et al. (2023). Improved sleep, cognitive processing and enhanced learning and memory task accuracy with Yoga nidra practice. *PLOS One*.
9. Deutsch, E. (1968). *Advaita Vedânta: A Philosophical Reconstruction*. University of Hawaii Press.
10. Divya, et al. (2021). Impact of yoga-based interventions on healthcare workers. *Cureus*.
11. Donder, et al. (2025). Hindu Epistemology in Higher àßducation. *IJROMS*, 3(1).
12. Dutta, D. (2024). *Yoga and Advaita Vedanta: A Comparative Study*. University of New Hampshire.
13. Eastman-Mueller, H., et al. (2013). i-Rest yoga Nidra practice and mindfulness in college students. *IJERI*.
14. Ferguson, K. L. (2016). *The effects of a yoga nidra practice on mental health clinicians' perceived stress*. Smith College.
15. Ferreira-Vorkapic, C., et al. (2018). The impact of yoga nidra on the mental health of college professors. *International Journal of Yoga*.
16. Ganpat, T. S. (2020). Effects of yoga nidra on emotional intelligence in college students. *Industrial Psychiatry Journal*.
17. Garg, R., et al. (2025). *Yoga Nidra and EEG activity: A systematic review*. medRxiv.
18. Ghai, S., et al. (2025). Yoga Nidra and Pain: A Meta-Analysis. *Complementary Medicine Research*.
19. Gunjganvi, M., et al. (2023). Efficacy of yoga nidra on frontline healthcare workers. *Int J Yoga Therap*.
20. Huberman, A. (2022). *Non-Sleep Deep Rest (NSDR) and its effects*. Stanford Neuroscience.
21. Jagadambal, S. (2025). Mind-Body Practices for Academic Well-being. *Indian Journal of Ancient Medicine and Yoga*.
22. Kavi, P. C. (2023). Conscious entry into sleep: Yoga Nidra. *Progress in Brain Research*.
23. Kim, S. D. (2019). Effects of a yoga nidra on the life stress and self-esteem in university students. *Complement Ther Clin Pract*.

24. Kjaer, T. W., et al. (2002). Increased dopamine tone during meditation-induced change of consciousness. *Cognitive Brain Research*.
25. Kumar, A., & Manik, R. K. (2025). Impact of Yoga Nidra on Student Well-being. *IJFIAHM*.
26. Kumar, K. (2008). A study on the impact of stress and anxiety through Yoga Nidra. *Indian Journal of Traditional Knowledge*.
27. Kumari, R., et al. (2025). Efficacy of Yoga Nidra on sleep quality among medical students. *BMJ Open*.
28. Lakshmipathy, S., & Easvaradoss, V. (2018). Impact of Yoga Nidra on Teacher Trainees. *International Journal of Indian Psychology*.
29. Livingston, E., & Collette-Merrill, K. (2018). iRest yoga nidra and mindfulness in health care workers. *Holistic Nursing Practice*.
30. Miller, R. (2010). *Yoga Nidra: A Meditative Practice for Deep Relaxation and Healing*. Sounds True.
31. Monika, et al. (2012). Yoga Nidra in menstrual disorders. *Indian Journal of Medical Research*.
32. Moszeik, E. N., et al. (2022). Effectiveness of a short yoga nidra meditation on stress. *PMC*.
33. Musto, S., & Vallerand, A. H. (2023). Exploring the Uses of Yoga Nidra: An Integrative Review. *Journal of Nursing Scholarship*.
34. Nayak, K., & Verma, K. (2023). Yoga-nidra as a mental health booster: A narrative review. *J Ayurveda Integr Med*.
35. Pandi-Perumal, S. R., et al. (2022). The clinical relevance of Yoga Nidra. *Sleep and Vigilance*.
36. Parker, S., et al. (2013). Defining Yoga-Nidra: Traditional and Physiological research. *Prog Brain Res*.
37. Rani, K., et al. (2011). Impact of Yoga Nidra on psychological well-being. *International Journal of Yoga*.
38. Saraswati, S. S. (2013). *Yoga Nidra*. Bihar School of Yoga.
39. Sharpe, E., et al. (2021). Yoga Nidra and emotional regulation. *Sleep Vigilance*.
40. Tastanova, A., et al. (2024). The relationship between creativity and yoga nidra as a mindfulness practice. *Thinking Skills and Creativity*.
41. Yi, J. (2025). *Exploring the Impact of a 4-Week Sankalpa with Yoga Nidra Practice on Self-Efficacy*. ProQuest.
42. Zaccaro, A., et al. (2021). Neural correlates of Yoga Nidra: A systematic review. *Frontiers in Psychology*.

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

आदि शंकराचार्य और श्रीमंत शंकरदेव के दर्शन में माया, ब्रह्म, ईश्वर, जीव और जगत की अवधारणाएँ : एक तुलनात्मक अध्ययन

लिंकन शरणीया
शोधार्थी, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय-110007
9864239931
linkansarania1111@gmail.com

डॉ. श्रुति राय
सहायक प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली, पिन : 110007
9868033684
shrutijnu@gmail.com

शोध सार :

मानवीय चिंतन के इतिहास में आदिशंकराचार्य का अद्वैतवेदांत का महत्व सर्वस्वीकृत है। इसके चिंतन में एकता सहिष्णुता, विश्व बंधुत्व, अध्यात्मिकता, दार्शनिक एवं व्यवहारिकता आदि की भावना का प्राचुर्य है। *''ईशावास्यमिदं सर्वं, वसुधैव कुटुम्बकम् एवं सर्वे भवन्तु सुखिन:''*[1] आचार्य का प्रमुख लक्ष्य रहा है, जो भारतीय सांस्कृतिक-एकता को व्यक्त करता है। उसीप्रकार श्रीमंत शंकरदेव ने पूर्वोत्तर भारत की तत्कालीन समाज में व्याप्त बाह्याडम्बरों को दूर करके समाज में परस्पर एकता, सहयोग, समन्वय, सामाजिक, समरसता, भक्ति भावना, मानवतावादी, तथा सर्वधर्मसमावेश आदि कि स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका ग्रहण की थी। जब आप आदिशंकराचार्य और श्रीमंत शंकरदेव की रचनाओं का अध्ययन करेंगे तो आपको उनकी रचनाओं में एकत्व की भावना स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होगी। वे कहते हैं कि-*''ब्रह्म अलग नहीं है, ब्रह्म स्वयं हम हैं; ईश्वर अलग नहीं है, ईश्वर स्वयं हमारे भीतर है; और जगत पृथक नहीं है, बल्कि वह ईश्वर की सृष्टि है।''*[2] इस प्रकार, उनकी दृष्टि में समस्त तत्व एक अविभाज्य अखंडता के भाग हैं। यही अखंडता ही आदि शंकराचार्य और श्रीमंत शंकरदेव का मूल उद्देश्य और संदेश है। वर्तमान समाज में वेदांत दर्शन के साथ साथ दोनों सन्तों के चिन्तनों को प्रस्तावित शोधकार्य के माध्यम से जनता एवं समाज के समक्ष प्रस्तुत करना शोधार्थी का प्रमुख उद्देश्य रहेगा।

बीज शब्द :

माया, ब्रह्म, ईश्वर, जीव और जगत।

प्रस्तावना :

''सर्वं वेदात् प्रसिद्धयति''[3] इस मान्यता के परिप्रेक्ष्य में वेद को संपूर्ण साहित्य का उत्स माना जाता है। इस प्रकार भारत में विकसित विभिन्न चिंतन परंपराओं एवं संप्रदायों की वेदमूलकता देखी जा सकती है। वेद के संहिता, ब्राह्मण,आरण्यक, उपनिषद् चार भागों में अंतिम उपनिषद को ही वेदांत कहा जाता है। वेदांत अर्थात वेद का अंत, अंत से यहाँ 'वेद के अंतिम भाग 'समझा जाए अथवा चरम लक्ष्य' दोनों ही अर्थों में वेदांत का आशय उपनिषद से ही है। ''वेदस्य अन्त: निर्णय: यस्मिन् स: वेदान्त:'' जिसमें वेदों के चरम तात्पर्य को

निरूपित किया गया हो वह वेदांत है। दूसरे शब्दों में वेदांत पद का तात्पर्य है – वेदादि का विधिपूर्वक अध्ययन, मनन तथा उपासना आदि के अंत में जो तत्व जाना जाए, उस तत्व का विशेषरूप से जहाँ निरूपण किया गया हो, उस शास्त्र को वेदांत कहा जाता है। वेदांतसार के रचनाकार ने वेदान्त को इस प्रकार परिभाषित किया है ''वेदान्तो नामोपनिषत्प्रमाणम्।''[4]

अद्वैत वेदांत का शब्दार्थ है–''द्वयोर्भावा, द्विता एव द्वैतम् (स्वार्थे अण्)। न विद्यते द्वैतं यस्मिन् स अद्वैत:(बहुव्रीहि)। अद्वैतश्चासौ वेदान्त: अद्वैत वेदान्त:'' (कर्मधारय समास)। वेद का वह निश्चय, जिसमें द्वैतभाग नहीं है। अद्वैत परमार्थ है और द्वैत व्यवहार है–''अद्वैत परमार्थो हि द्वैतं तद्भेद उच्यते''। अद्वैतम्–द्वैत का अभाव अर्थात् जीव और ब्रह्म में एकता, तादात्म्य, विशेषतया ब्रह्म का विशअव या आत्मा के साथ या प्रकृति का आत्मा के साथ तादात्म्य हो जाना ही अद्वैत है।

अद्वैतवेदान्तदर्शन के प्रवर्तकों में गौड़पाद और आदि शंकराचार्य प्रमुख हैं। आचार्य शंकर से पूर्व भी वेदांत दर्शन के आचार्य हुए, उन आचार्य में गौडपाद का नाम बहुत ही महत्वपूर्ण है। वादरायण ने उपनिषद् वाक्यों की मीमांसा के लिए ''वेदान्तसूत्र या ब्रह्मसूत्र'' की रचना की और आचार्य शंकर ने उस सूत्र ग्रंथ पर भाष्य लिखा जिसका नाम ''शारीरिक भाष्य'' है। आचार्य गौड़पाद शंकराचार्य के परम गुरु थे। उन्होंने माण्डूक्य उपनिषद पर माण्डूक्यकारिका लिखकर अद्वैतवाद की व्याख्या की। शंकराचार्य ने माण्डूक्यकारिका पर भी भाष्य लिखा है। इसके अतिरिक्त ग्यारह उपनिषदों पर भाष्य करते हुए अद्वैत सिद्धांत को स्थापित किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने उपदेशसाहस्री, विवेक–चूड़ामणि एवं भजगोविन्दं जैसे बहुत से स्तोत्र ग्रंथों की भी रचना की। भगवान शंकर स्वयं भगवत्पाद आदि शंकराचार्य के रूप में अवतरित हुए थे। ''शंकरो शंकर: साक्षात्'' यह अनुश्रुति सर्वविदित है, जिससे स्पष्ट होता है कि शंकराचार्य ने अपने मात्र बत्तीस वर्षों के अल्प जीवनकाल में अद्भुत जनकल्याणकारी कार्यों का संपादन किया। इससे यह सिद्ध होता है कि वे साक्षात भगवान शंकर के अवतार के रूप में इस धरती पर पधारे थे। स्वयंप्रकाशमुनि ने एकश्लोकी व्याख्यान में शंकराचार्य के जीवन पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि–

''अष्टवर्षे चतुर्वेदी, द्वादशे सर्वशास्त्रवित्।
षोडषे कृतवान भाष्यं, द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्॥''

आचार्य ने भारत की सनातन वैदिक धर्म–मर्यादा, देश की सुरक्षा एवं राष्ट्र की एकता–अखंडता को बनाए रखने के लिए, संभावित विपदाओं को ध्यान में रख कर भारतवर्ष को सुरक्षित रखने के लिए चारों दिशाओं में चार धर्म राजधानियों की स्थापना की। पुन: प्रस्थानत्रयी अर्थात उपनिषद् ब्रह्मसूत्र एवं गीता पर भाष्य लिखे, वेद–वेदांग स्मृति तथा विशाल पौराणिक वांग्मय के गंभीर अध्ययन मनन के फलस्वरूप विरोधी नास्तिक मतों का युक्तिपूर्वक खण्डन–मण्डन करके अद्वैत वेदांत की स्थापना की।

आचार्य अर्थात आदि शंकराचार्य के दर्शन का प्रभाव पूर्वोत्तर भारत के असम राज्य में जन्म लेने वाली पुण्यात्मा श्रीमंत शंकरदेव के दर्शन पर परिलक्षित होता है। श्रीमंत शंकरदेव का जन्म 1449 ई. में मध्य–असम के नगांव जिले के आलिपुखुरी गांव में हुआ था। इनके पिता का नाम कुसुम्बर भुयाँ और माता सत्यसंध्या था। शंकरदेव ने अत्यल्प समय में व्यापक शिक्षा प्राप्त कर अपनी तीव्र बुद्धि के कारण बाल्यावस्था में ही विशिष्ट स्थान अर्जित किया। श्रीमंत शंकरदेव को छोड़कर असमिया भाषा–साहित्य–संस्कृति की कल्पना ही नहीं कर सकते हैं। श्रीमंत शंकरदेव ने असमिया के अतिरिक्त संस्कृत और ब्रजावली भाषा में भी रचनाएँ की हैं। वे संस्कृत के विद्वान थे। उन्होंने वैष्णव शास्त्रो के गंभीर अध्ययन से जो अनुभव प्राप्त किया था, उन्हें विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया है। उन्होंने काव्य, गीत, नाटक, भटिमा आदि की रचना करके विपुल साहित्य समाज को प्रदान किया। शंकरदेव ने अपनी रचनाओं के माध्यम से असम तथा उत्तर–पूर्वांचल की जनता को भारतीय दृष्टि प्रदान की थी।

अद्वैत वेदांत में *''एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति''*[5] की मान्यता रही है। इसे ही विभिन्न पुराणों एवं अन्य ग्रंथों में विविध रूपों में व्याख्यायित किया गया है। इसके अनुरूप ही श्रीमंत शंकरदेव ने एकशरणहरिनामधर्म का मूलमंत्र ''एक देव, एक सेव, एक बिने नाइ केव'' का प्रचारित और स्थापित किया है। श्रीमंत शंकरदेव ने प्रत्येक क्षेत्र में विविधता में एकता और द्वैतता में अद्वैतता की कल्पना

की है। इसके मूल में उनके एक देव के प्रति अटूट नैष्ठिक भक्ति ही रही है। चाहे विचार परिवार का हो या समाज का, अर्थ का हो या राजनीति का सबको उनके अद्वैत दर्शन ने प्रभावित किया है। अद्वैत दृष्टि से उनके निम्नलिखित उद्घोषों को सामाजिक विचारधारा की आधारशिला मान सकते हैं –

''शत्रु मित्र उदासीन सबाते समान''[6]

अर्थात् शत्रु, मित्र सबके साथ सामन उदासीन होना चाहिए।

माया :

अज्ञान या माया संबंधी विचार में आदिशंकराचार्य और श्रीमंत शंकरदेव के विचारों में कोई भेद नहीं है। आदि शंकराचार्य के अनुसार माया है –

''सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो
भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो
महाद्भुतानिर्वचनीयरूपा।।'' [7]

अर्थात वह न सत है, न असत है और न सदसत उभयरूप है। न भिन्न है, न अभिन्न है और न भिन्नाभिन्न उभयरूप है। न अंगसहित है, न अंगरहित है और न सांगानांग उभयात्मिका ही है, किंतु अत्यंत अद्भुत और अनिर्वचनीयरूपा अर्थात् जिसको बतलाया ना जा सके, ऐसी है माया। ठीक इसी प्रकार श्रीमंत शंकरदेव ने भी आदि शंकराचार्य के स्वर में स्वर मिलाकर कहा हैं –

''अबस्तुक देखावय बस्तुक आवरि।
एहिसे मोहोर माया जाना निष्ठ करि॥
नथाकितो देखि येन चन्द्रमा दुतय।
थाकितो राहुक येन केहो नेदेखय॥''[8]

अर्थात् जो सत को आवृत्त करके असत को दिखाता है। नहीं होने पर भी चंद्रमा दो दिखाई पड़ते हैं। रहते हुए भी राहु कहीं नहीं दिखता, यही माया है इसमें कोई संशय नहीं।

ब्रह्म :

श्रीमंत शंकरदेव के दर्शन की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह निर्गुण ब्रह्म और सगुण ईश्वर की समानता का उपदेश देता है। वह इसे अपनी महान रचना कीर्तन-घोष के एक श्लोक में स्पष्ट रूप से कहते हैं-

''तुमि परमात्मा जगतर ईश एक।
एको बस्तु नैहिके तोह्मात व्यातिरेक॥''[9]

अर्थात् आप विश्वात्मा होने के साथ-साथ सृष्टि के एकमात्र सर्वोच्च ईश्वर भी हैं। आपके अलावा कुछ भी नहीं है। आदिशंकराचार्य ने जिस प्रकार ब्रह्म का लक्षण व्यक्त किया है, उन लक्षणों से शंकरदेव का ब्रह्मलक्षण किंचित अपि भिन्न नहीं है। आदिशंकराचार्य ने विवेक-चूड़ामणि ग्रन्थ में ब्रह्म स्वरूप का विवेचन इस प्रकार किया है-

''अतः परं ब्रह्म सदद्वितीयं विशुद्धविज्ञानघनं निरञ्जनम् ।
प्रशान्तमाद्यन्तविहीनमक्रियं निरन्तरानन्दरसस्वरूपम्॥''[10]

इसलिए परब्रह्म सत, अद्वितीय, शुद्ध विज्ञानघन, निर्मल, शांत, आदि-अंतरहित, अक्रिय और सदैव आनंदरसस्वरूप है।

श्रीमंत शंकरदेव ने ब्रह्म को निर्गुण, ब्रह्मरूपी सनातन, अनादि ईश्वर, निरंजन, ज्ञानमय, आनन्द, सत्य, सनातन, निराकार, पुराण पुरुष, कारणों का कारण, पुरुष पुरुषोत्तम इत्यादि विशेषणों से अभिहित किया है। श्रीमंत शंकरदेव ने ब्रह्म को इस प्रकार वर्णन किया है –

''अनेक सहस्र युग एहिमते गल।
दुनाइ ईश्वरर सृष्टिक ईच्छा भैल॥
एकेश्वरे आछो आमि आदि निरंजन।
सृष्टि नाहि आह्माक ये नकरे शोभन॥
चैध्यय भुवन ह्रदयते दिलो ठाय ।
प्रकृति देवीओ आछा गर्भते लुकाइ ॥
जङ्हुया आछे तार नाहिके चेतन ।
आमि महा चैतन्य पुरुष निरंजन ॥''[11]

अर्थात् इस प्रकार कई हजार युग बीत गए, फिर ईश्वर (कृष्ण) ने सृष्टि की कामना की। और उसने सोचा कि मैं एकेश्वर आदि निरंजन होके भी अकेला ही रहूँ, जो मुझे शोभित नहीं करता है। मैं श्रीकृष्ण चौदह लोकों को अपने ह्रदय में धारण किया हूँ और प्रकृतिदेवी भी मेरे गर्भ में छूपा हुआ है, जो जरावस्था में है, जिसमें कोई चेतन नहीं है। मैं महाचैतन्य निरंजन पुरुष हूँ।

ईश्वर :

श्रीमंत शंकरदेव सिद्धांततः निर्गुणोपासक हैं, किंतु आराध्यदेव कृष्ण की लीलाओं का गायन करते समय वे सगुणोपासक से ही प्रतीत होते है। श्रीमंत शंकरदेव ने

तात्विक दृष्टि से निर्गुण ब्रह्म को ही परम सत्य माना, किंतु भक्तों की व्यावहारिक साधना-सुविधा के लिए सगुण ब्रह्म की स्वीकृति प्रदान की है। उन्होंने ईश्वर के स्वरूप, गुण तथा महत्व का निरूपण अत्यंत दार्शनिक रूप में किया है-

''निश्चल निर्मल सूक्ष्म रूप जिटो स्वामी।
देवे नजानन्त तांक केने जानो आमि।।
अपर तोम्हार रूप जात भुज चारि।
पीतवस्त्रे शोभै शंख चक्र गदाधारी।।[12]

अर्थात् निश्चल, निर्मल, सूक्ष्म अति सूक्ष्म रूप धारण करने बाले स्वामी (भगवान श्रीकृष्ण) को देवता नहीं जान पाते तो हमारे जैसा मनुष्य कैसे जान पाएँगे। भगवान श्रीकृष्ण के अपार रूप हैं, जिसके चार भुजाएँ हैं और उन भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, और पद्म धारण किया है, पीतवस्त्र जिसको सुशोभित कर रहे हैं।

''पिंधि आछा रत्नर मुकुतार हाड़।
हियात श्रीवत्स गले बनमाला जार॥
सेहिसे मूर्तिके आराधन्त देवगणे।
ताकेसे भक्तजने चिन्ते सर्वक्षणे॥''[13]

रत्न और मुक्तावली जिसने (श्री कृष्ण) धारण किया है, वक्ष:स्थल में श्रीवत्स और गले में जिसकी वनमाला है। ऐसा दिव्य स्वरूप की देवता भी पूजा करते हैं और भक्तलोग गुणानुकीर्तन करते हैं प्रतिक्षण।

आदिशंकराचार्य ने सगुण ईश्वर के अस्तित्व से इनकार किया। उन्होंने केवल निर्गुण ब्रह्म के अस्तित्व को स्वीकार किया। उन्होंने ब्रह्मसूत्र की अपनी टीका में स्पष्ट रूप से कहा है -

''समस्तविशेषरहितं निर्विकल्पमेव ब्रह्म प्रतिपत्तव्यम्, न तद्विपरीतम्।''[14]

शंकराचार्य के अनुसार ईश्वर भी माया या मिथ्या है। ईश्वर के स्वरूप इस प्रकार वर्णन किया है -

''स: च भगवान् ज्ञानैश्वर्यशक्तिवलवीर्यतेजोभि: सदा सम्पन्न: त्रिगुणात्मिकां वैष्णवीं स्वां मायां मूलप्रकृतिं वशीकृत्य अज: अव्ययो भूतानाम् ईश्वरो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव: अपि सन् स्वमायया देहवान् इव जात: इव च लोकानुग्रहं कुर्वन् इव लक्ष्यते।'' [15]

ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज आदि से सदा संपन्न वे भगवान यद्यपि अज, अविनाशि संपूर्ण भूतों के ईश्वर और नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव है तो भी अपनी त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति वैष्णवी माया को वशमे करके अपनी लीला से शरीरधारी तरह उत्पन्न हुए से और लोगों पर अनुग्रह करते हुए से दीखते हैं।

जीव :

जीव संबंधी विवेचन में आदिशंकराचार्य और श्रीमंत शंकरदेव के विचारों में कोई भिन्नता नहीं है। दोनों आचार्य ने जीव को ब्रह्म का अंश मानते हैं और जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं मानते हैं। गीता के ''ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:'' के समान ही शंकरदेव जीव का आविर्भाव ब्रह्म से स्वीकार करते हैं। यथा-

''तोम्हारेसे अंश आमि जस जीव जाक''[16]

''हामु जत जीव शिव तेरि अंशा''

श्रीमंत शंकरदेव के अनुसार जीवन शाश्वत और अमर है, जीव और ब्रह्म मे अंश-अंशी भाव को शंकरदेव ने कहीं अवच्छेदवाद और प्रतिबिंबवाद के रूप मे अग्नि-स्फुलिंग, तंतु-पट, मिट्टी-घट, स्वर्ण-कुंडल इत्यादि के उदाहरणों से स्पष्ट किया है। ब्रह्म जीव के संबंध को अग्नि और तप्त लौह के उदाहरणों से स्पष्ट किया गया है। जीव अमर है, मृत्यु देह का धर्म है। शरीरस्थ जीव ही विभिन्न प्रकार की सांसारिक क्रीड़ाओं - सुख-दु:ख का भोक्ता होता है। शरीरस्थ जीव के कष्टों का कारण अविद्या अज्ञान है। देहधारी जीव माया के वशीभूत हो मायाधीश को भूल जाता है, इसीलिए उसे जन्म-मृत्यु के चक्कर मे भटकना पड़ता है। श्रीमंत शंकरदेव ने जीव को कर्माधीन स्वीकार किया है, कर्म के अनुरूप ही जीव की गति होती है।

आदि शंकराचार्य कहते हैं कि परमात्मा ही देहेन्द्रिय मनोबुद्धि रूप उपाधियों से परिच्छिद्यमान होता हुआ अज्ञानियों के द्वारा जीव रूप उपचरित होता है। जैसे घटकरादि उपाधित के कारण परिच्छिद्यमान होता हुआ अज्ञानियों के द्वारा जीवरूप में उपचरित होता है। जैसे घटकरकादि उपाधियों के कारण अपरिच्छिन्न आकाश परिच्छिन्न की तरह अवभासित होता है, वैसे ही अपरिच्छिन्न परमात्मा भी जीवरूप में अवभासित होता है - *''पर एवात्मा देहेन्द्रियमनोबुद्ध्युपाधिभि: परिच्छिद्यमानो बालै: शरीर इत्युपचर्यते। यथा घटकाराद्युपाधिवशादपरिच्छिन्नमपि नभ: परिच्छिन्नवद्भासते तद्वत्॥''*[17]

'आभास एव च' इस सूत्र के भाष्य में शंकराचार्य ने जीव को परमात्मा का आभास बतलाया है। शंकराचार्य कहते हैं कि जीव को जलसूर्यकादि के समान परमात्मा का आभास ही समझा जाना चाहिए। न तो जीव साक्षात परमात्मारूप है और न ही वस्त्वन्तर –*''आभास चैष जीव: परमात्मनो जलसूर्यकादिवत् प्रतिपत्तव्य:। न स एव साक्षात् नापि वस्त्वन्तरम्।''*[18]

'अतएव चोपमासूर्यकादिवत्' इस सूत्र के भाष्य में शंकराचार्य ने जीव और परमात्मा के अभेद तथा औपाधिक भेद का जलचन्द्रादि प्रतिबिंब के दृष्टांत के आधार पर किया है। शंकराचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार एक ही सूर्य विविध जलाशयों में प्रतिबिंबित होकर अनेक रूप प्रतीत होता है, उसी प्रकार एक ही आत्मज्योति अनेक उपाधियों में प्रविष्ट होकर भिन्न–भिन्न रूपों में अनुभवित होती है। जैसे एक ही चन्द्र अनेक जलों में प्रतिबिम्बित होकर अनेक प्रकार से दीख पड़ता है वैसे ही एक भूतात्मा भिन्न भिन्न भूतों में व्यवस्थित उपलब्ध होता है –

''यथा ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वानपोभिन्ना बहुधैकोऽनुगच्छन। उपादिना क्रियते भेदरूपो देव: क्षेत्रेष्वेवमजोऽयमात्मा एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थित: एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्।''[19]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शंकराचार्य ने जीव और ब्रह्म के पारमार्थिक अभेद और औपाधिक अभेद का प्रतिपादन करने के लिए अवच्छेद परक, आभासपरक तथा प्रतिबिम्बपरक दृष्टान्तों का प्रयोग अपने भाष्य में किया है।

जगत :

श्रीमंत शंकरदेव के रचनाओं में जगत और संसार दोनों एक दूसरे के प्राय: पर्याय के रूप में व्यवहृत हुए हैं। शंकराचार्य के ''ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर:'' सिद्धांत में विश्वासी श्रीमंत शंकरदेव के मतानुसार ब्रह्म से उत्पन्न होने के कारण यह दृश्यमान जगत सत्य–सा प्रतीत होता है। यथा –

''असन्त जगतखान तोह्मात उद्‌भव भैल, सन्त हेन प्रकाशै सदाय।''[20]

यह असत्य रूप जगत तुम्हीं से उत्पन्न हुआ है, जो सत–सा प्रतीति होता है। अद्वैतवेदान्त जिस सृष्टिविद्या को व्यवहार जगत में उपयोगी मानता है वह ईश्वरकर्तृक सृष्टि है ईश्वर अपनी मायाशक्ति से आकाश, वायु, तेज (अग्नि), अपू (जल) और पृथिवी इन पांच महाभूतों की क्रमश: सृष्टि करता है। तत्पश्चात पंचीकरण द्वारा सभी भौतिक वस्तुओं की सृष्टि होती है। आदि शंकराचार्य जगत के संदर्भ में इस प्रकार कहते हैं –

''जगदुत्पत्तिस्थितिप्रलयकृदसंसारी सर्वज्ञ: सर्वशक्ति: सर्ववित्सर्वमिदं जगत्स्वतोऽन्यद्वस्त्वन्तरमनुपादायैव आकाशादिक्रमेण सृष्ट्वा स्वात्मप्रबोधनार्थं सर्वाणि च प्राणादिमच्छरीराणि स्वयं प्रविवेश।''[21] अर्थात जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाले असंसारी सर्वशक्तिमान सर्वज्ञने अपने से भिन्न किसी अन्य वस्तु को ग्रहण किए बिना ही इस संपूर्ण जगत् की आकाशादिक्रम से रचना कर अपने को स्वयं ही जानने के लिए संपूर्ण प्राणादियुक्त शरीर में स्वयं ही प्रवेश किया। केवल इन विषयों में ही नहीं आदि शंकराचार्य का प्रभाव श्रीमंत शंकरदेव के दर्शन, साहित्य और जीवन शैली में भी दिखाई पड़ता है। आलोच्य विषयों से श्रीमंत शंकरदेव आदिशंकराचार्य की छाया जैसा प्रतीत होते हैं।

निष्कर्ष :

आदि शंकराचार्य और श्रीमंत शंकरदेव की ऊपरि विवेचित दार्शनिक मान्यताओं से स्पष्ट है कि दोनों अद्वैत मत के अनुयायी हैं। दोनों ने निर्गुण ब्रह्म को माना है, हालाँकि शंकरदेव ने भगवान की लीला का वर्णन करने के लिए सगुण ब्रह्म को भी स्वीकार किया हैं, किंतु शंकरदेव के आराध्य निर्गुण निराकार हैं। आदि शंकराचार्य और शंकरदेव दोनों ने सगुण और निर्गुण ब्रह्म में सिद्धांतत: भेद नहीं माना है, अभेद माना है। आदिशंकराचार्य और श्रीमन्तशंकरदेव दोनों ने जीव को ब्रह्म का चिद् अंश स्वीकार किया है। माया के वशीभूत होने के कारण जीव ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है। इसीलिए जीव का लक्ष्य माया को भेद कर ब्रह्म तक पहुँचना दोनों को स्वीकार्य है। जगत और संसार विषयक दोनों के विचार भी प्राय: एक समान हैं। जगत को जीव की तरह ही ब्रह्म का अंश, अत: सत्य स्वीकार किया गया है। संसार से तात्पर्य है सांसारिक संबंध, जो मिथ्या और नाशवान है। सांसारिक बंधन से मुक्ति और ब्रह्मत्व की प्राप्ति को श्रीमंत शंकरदेव और तुलसी ने मोक्ष माना

है। मोक्ष के दोनों रूप-जीवन-मुक्ति और विदेह-मुक्ति आलोच्य दार्शनिकों को मान्य है। जीवन मुक्ति विदेह मुक्ति से उत्तम कही गई है। विदेह-मुक्ति के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख भी दोनो ने किए हैं। किंतु श्रीमंत शंकरदेव ने मुक्ति की अपेक्षा भक्ति को और आदिशंकराचार्य ने ज्ञान को अधिक महत्व दिया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि आदिशंकराचार्य और श्रीमंत शंकरदेव के दार्शनिक विचारों मे साम्य अधिक है, वैषम्य कम। ❑

संदर्भ सूची :

1. शोधार्थी, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, linknsarania1111@gmail.com
2. शोधार्थी, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, babyakarbikram693@gmail.com
3. मनुस्मृति १२/९७
4. वेदान्तसार पृ. २५
5. ऋग्वेद १/१६४/४६
6. शंकरदेवकृत भागवत ८/१२४७
7. विवेकचूड़ामणि श्लोक १११
8. शंकरदेवकृत भागवत द्वितीयस्कन्द पद २२९
9. कीर्तनघोषा पद ५१९
10. विवेकचूड़ामणि श्लोक २३७
11. शंकरदेवकृत भागवत तृतीयस्कन्द पद ४२-४३
12. कीर्तनघोषा पद १६१
13. कीर्तनघोषा पद १६२
14. ब्रह्मसूत्र शंकरभाष्य ३/२/११
15. श्रीमद्भागवद्गीता शंकरभाष्य पेज १४
16. कीर्तनघोषा पद १६५६
17. ब्रह्मसूत्र शंकरभाष्य १/२/६
18. ब्रह्मसूत्र शंकभाष्य २/३/५०
19. ब्र.सू. ३/२/२८
20. कीर्तनघोषा पद १६६९
21. ऐतरेयोपनिषद् शंकरभाष्य २/१

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. योगीन्द्रानन्द, स्वामी. (1005). ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यं. वाराणसीट्ठ चौखम्बा विद्याभवन।
2. श्रीमद्भागवद्गीता (शाङ्करभाष्यसमेता). (2014). दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।
3. सुरेन्द्रकुमार, डॉ. (व्याख्याकार). (2005). मनुस्मृति. दिल्ली : आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट।
4. शास्त्री, डॉ. राकेश. (2004). वेदान्तसार:. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन्स।
5. मुनिलाल (अनुवादक). (2013). विवेक-चूड़ामणि. गोरखपुर : गीताप्रेस।
6. ईशादि नौ उपनिषद् (शाङ्करभाष्यार्थ सहित). (2013). गोरखपुर : गीताप्रेस।
7. হাজৰিকা, দীপক (সম্পা.)। (২০২০)। শ্ৰীশ্ৰী শংকৰদেৱ আৰু শ্ৰীশ্ৰীমাধৱদেৱ প্ৰণীত কীৰ্তনী ঘোষ আৰু নাম-ঘোষা (দ্বিতীয় প্ৰকাশ) গুৱাহাটী ঃ বনলতা।
8. গোস্বামী, সুনীল কুমাৰ। (2016)। কথা ভাগৱত ঃ সম্পূৰ্ণ দ্বাদশস্কন্ধ। জ্যোতি প্ৰকাশন।
9. Majumdar, Bimal (1999)। ভক্তিক সাহিত্য [Bhakti Sahitya]. Guwahati: Chandraprakash.
10. Barua, B. (1960). Sankaradeva: Vaishnava saint of Assam. Gauhati, Assam: Academy for Cultural Relations.

भारत का मुकुटमणि जम्मू-कश्मीर

मयंक तिवारी

शोधार्थी, संस्कृत, पालि
एवं प्राकृत विभाग
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय
हिमाचल प्रदेश-176215
7887099498
Cuhp23rdskt04@hpcu.ac.in

डॉ. गौरव त्रिपाठी

अतिथि शिक्षक, हिंदी विभाग
राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
राजा गार्डन, नई दिल्ली-110015
9540098785
tripathi416340@gmail.com

किसी देश अथवा समाज के भिन्न जीवन व्यापारों में या सामाजिक संबंधों में मानवता की दृष्टि से जो आदर्श प्रेरणा प्रदान करते हैं, उनकी समष्टि ही संस्कृति है। अर्थात हमारी जीवन-शैली का सबसे उत्कृष्टतम रूप या प्रतिमान गढ़ने वाला तत्व संस्कृति है। संस्कृति किसी देश अथवा समाज में व्याप्त या प्राप्त होने वाले गुणों का एक स्वरूप है, जो स्थूल रूप से यह स्पष्ट करता है कि समाज व्यवहार के मूलभूत तत्व क्या हैं। यदि हम देखें तो इस समाज व्यवहार का संबंध जितना हमारे बहिर्जगत से है, उतना ही अंतर्जगत से भी और संस्कृति मनुष्य की इन दोनों वृत्तियों के श्रेष्ठ स्वरूप का निर्माण कर मानव समाज का विकास करती है। इस प्रकार संस्कार-परिष्कार की प्रक्रिया द्वारा एक विशेष जीवन पद्धति का सृजन होता है, जो किसी संस्कृति के बिना असंभव है और यह जीवन पद्धति समाज का परिचायक होती है। समाज और सामाजिकों के लिए चार तत्व अत्यंत महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं, जो कि प्रकृति, विकृति, संस्कृति और सुकृति हैं। प्रकृति मूल स्वभाव या प्राकृतिक संरचना है, जबकि विकृति इसका बिगाड़ है, और संस्कृति किसी व्यक्ति या समाज द्वारा प्रकृति को बेहतर बनाने के लिए किया गया सुधार या प्रयास है। सुकृति का अर्थ अच्छा कर्म या पुण्य होता है, जो संस्कृति को विकसित करने में सहायक होता है। संस्कृति मूलतः संस्कृत भाषा का एक शब्द है, जिसका संबंध संस्कार शब्द से है। संस्कृति शब्द का निर्माण 'कृ' धातु से हुआ है, जिसका धात्वर्थ 'करना' होता है। सम् उपसर्ग पूर्वक (डु)कृ(ञ) करणे धातु से पाणिनि के *''स्त्रियाँ क्तिन्''*[1] सूत्र से क्तिन् प्रत्यय होकर संस्कृति शब्द की उत्पत्ति होती है। कृ धातु से 'सम्' उपसर्ग का योग होने पर संस्कृति शब्द का अर्थ 'परिष्कार' होता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि संस्कार का अर्थ शुद्धि या परिष्कार है, अर्थात परिष्कार या संस्कार शोधन की एक विशेष पद्धति को संस्कृति कहते हैं। संस्कृति के लिए अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त होने वाला समानार्थी शब्द CULTURE है। इसका प्राचीन रूप लैटिन शब्द 'कुल्तुस' से मिलता है, साथ ही कल्चर का पर्यायवाची वैदिक शब्द 'कृष्टि' है, जिसका संबंध कृषि से है। जिस प्रकार कृषि में भूमि को सींच कर समृद्ध बनाया जाता है, उसी प्रकार संस्कृति मनुष्य में सद्गुणों का विकास कर उसे सुसंस्कृत बनाती है। संस्कार शोधन की यह प्रक्रिया निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।

सामाजिक जीवन के समस्त क्षेत्रों का समावेश संस्कृति में होता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में समझें तो भारतीय मनीषियों ने समाज के उत्कर्ष एवं उन्नत विकास के लिए सामाजिक सिद्धांतों तथा कुछ तत्वों का निर्धारण किया। ये सिद्धांत तथा तत्व समाज के लोगों को संगठित तथा सामाजिक बनाने के साथ-साथ भौतिक,

मानसिक तथा आध्यात्मिक रूप से उन्नत बनाने में सहयोगी होते हैं। ये तत्व तथा सिद्धान्त 'संस्कृति' कहलाते हैं। यजुर्वेद संस्कृति की महत्ता का उद्घोष करता है–

''सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा'' [2]

भारतवर्ष में संस्कृति की महत्ता का तात्पर्य इसी पंक्ति से स्पष्ट है कि 'भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा'। *''संस्कृति शब्द का प्रयोग कम-से-कम दो अर्थों में होता है। व्यापक अर्थ में इसका प्रयोग नृविज्ञान में किया जाता है, जिसके अनुसार संस्कृति समस्त सीखे हुए व्यवहार अथवा उस व्यवहार का नाम है, जो सामाजिक परंपरा से प्राप्त होता है। इस अर्थ में संस्कृति को सामाजिक-प्रथा का पर्याय भी माना जाता है। संकीर्ण अर्थ में संस्कृति एक वांछनीय वस्तु मानी जाती है। इस अर्थ में संस्कृति उन गुणों का समुदाय समझी जाती है जो व्यक्तित्व को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाते हैं।''* [3] उपर्युक्त परिभाषा में संस्कृति के बहुआयामी स्वरूप को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त बाबू गुलाबराय ने भी संस्कृति शब्द का संबंध संस्कार से ही माना है, उनके अनुसार संस्कृति का अर्थ है– *''संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना।''* [4] इस प्रकार संस्कृति मनुष्य की सहज वृत्तियों का परिष्कार कर उसे उत्तम बनाने का कार्य करती है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में देखें तो *''संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगीण प्रकार है। विचार और कर्म के क्षेत्र में राष्ट्र का जो सृजन है वही संस्कृति है।''* [5] इस प्रकार सृजन के दो महत्त्वपूर्ण बिंदु हैं – विचार और कर्म तथा संस्कृति और उत्कृष्ट मनुष्य दोनों की निर्मिति के मूल तत्व भी यही दोनों बिंदु हैं। इस प्रकार संस्कृति और मनुष्य दोनों एक-दूसरे का पर्याय हैं, जहाँ एक ओर संस्कृति का निर्माता मनुष्य है तो दूसरी ओर मनुष्य की नियामक संस्कृति।

अध्ययन की दृष्टि से यदि हम देखें तो जम्मू-कश्मीर अपनी प्राकृतिक सुंदरता की भाँति ही अपनी सांस्कृतिक विरासत इतिहास, दर्शन, संस्कृति, साहित्य, सभ्यता, भाषा आदि की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध रहा है। जम्मू-कश्मीर की संस्कृति भारतीय सामासिक संस्कृति की परिचायक भी रही है। इसमें हिंदू (शैव), बौद्ध, इस्लाम (सूफी) का मिला-जुला रूप है। किंतु जम्मू-कश्मीर ऐसा क्षेत्र भी है, जिसका इतिहास पुनरावृत्तियों का इतिहास रहा है, जो विश्व में धर्मांधता, आतंकवाद और राजनैतिक अवसरवादिता से प्रभावित होने वाले क्षेत्रों में है और आज भी इन नृशंसताओं से यह ग्रसित है। जम्मू-कश्मीर भारत के अन्य राज्यों की भाँति ही अपनी विविधतापूर्ण समन्वित परंपरा के लिए प्रसिद्ध है, जिसकी सांस्कृतिक धरोहर अत्यधिक समृद्ध है। ये सांस्कृतिक विशिष्टता भारतीयता की परिचायक है, इसी भारतीयता को रेखांकित करते हुए रजनीश कुमार शुक्ल लिखते हैं कि *''जम्मू-कश्मीर का सांस्कृतिक अवबोध भारत और भारतीयता का अवबोध है।''* [6] जिस प्रकार भारत के विभिन्न राज्यों की अपनी प्रादेशिक मान्यताएँ, उसके लोक-विश्वास, जीवन-दर्शन इत्यादि विशेषताएँ भारतीय संस्कृति को एक वैविध्यपूर्ण एवं बहुआयामी स्वरूप प्रदान करते हैं, उसी प्रकार इन भिन्न प्रदेशों के साहित्यकार एवं दार्शनिक भारत के इस बहुआयामी स्वरूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। धरती का स्वर्ग कहा जाने वाला यह क्षेत्र भारतीय संस्कृति का मुकुटमणि माना गया है। जम्मू-कश्मीर आरंभिक काल से ही अपनी प्राकृतिक सुंदरता एवं विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण अध्यात्म का एक प्रमुख केंद्र रहा है। कश्मीर को शैव दर्शन की उत्स भूमि भी माना जाता है तथा शैव दर्शन से अभिन्न संबद्ध होने के कारण ही यहाँ के मूल निवासी अपने को शैव मतावलम्बी मानते रहे हैं। इसके अतिरिक्त यदि हम देखें तो *''कल्हण ने जब कश्मीर को पृथ्वी का सुंदरतम प्रदेश कहा, तब उसकी दृष्टि में यहाँ की धवल हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियों, झीलों-झरनों की स्निग्ध शीतलता और शफ्फाक हवाओं में झूमते चिनार-चीड़ और फल-फूलों से बरजस्त वृक्षों पर चहकते 'गुगी' पोशनुलों की थिरकती अनुगूँजें ही नहीं थीं, बल्कि ऋषिवाटिका और शारदा पीठ कहलाने वाले इस सुंदर भूखंड पर जन्में संस्कृताचार्यों, शैवाचार्यों, सूफी संतों, महान राजाओं और साहित्यकारों की समृद्ध धरोहरें भी थीं।''* [7] क्योंकि संस्कृति की इस बृहद शृंखला के अभाव में सुंदरतम की संज्ञा प्राप्त होना संभव ही नहीं है और संस्कृति के इस विराट स्वरूप का बोध साहित्य के भीतर ही हो सकता है, जिसके संबंध में

कहा गया है कि *''सांस्कृतिक अवबोध भाषा और साहित्य के परिप्रेक्ष्य से ही होता है। कोई और परिप्रेक्ष्य नहीं है जिसके आधार पर संस्कृति का बोध हो सके।''*[8] साहित्यिक आधारों की बात की जाए तो कश्मीर की उत्पत्ति के संबंध में एक पौराणिक कथा प्रचलित है, जिसमें जलोद्भव नामक राक्षस से कश्यप ऋषि द्वारा कश्मीर-वासियों की रक्षा एवं घाटी को बसाने का उल्लेख मिलता है तथा माता सती द्वारा स्वयं नदियों के रूप में कश्मीर में उतरने की कथा भी प्रचलित है। यदि हम देखें तो ये कथाएँ कोरी कल्पनाएँ भी नहीं होतीं, इनमें सामान्य जनमानस की सामूहिक रचनात्मक अभिव्यक्ति भी होती है, जो एक संस्कृति की निर्माण प्रक्रिया का आधार-बिंदु भी बनती हैं। कश्मीर के प्राप्त इतिहास की बात करें तो कल्हण ने अपने प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ 'राजतरंगिणी' में कश्मीर का संबंध महाभारत काल से बताया है। यहाँ इतिहास का उल्लेख करने से तात्पर्य सांस्कृतिक विरासत के परिचय से है, इस क्रम में वर्तमान समय में कश्मीर में हुए उत्खनन से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर देखा जाए तो जो नए तथ्य सामने आए हैं, उन तथ्यों से प्रतीत होता है कि बुर्जहोम नामक स्थान से प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के अवशेष मिले हैं। बुर्जहोम शब्द की परिभाषा अथवा व्याख्या की यदि बात करें तो *''बुर्जहोम' दो शब्दों के योग से बना है 'बुर्ज' और 'होम'। 'बुर्ज' संस्कृत शब्द 'भूर्ज' का विकृत रूप है और 'होम' उस स्थान को कहते हैं, जहाँ किसी प्राचीन संस्कृति के अवशेष सुरक्षित हों।''*[9] इन प्राप्त हुए अवशेषों से ऐसा ज्ञात होता है कि यह एक समानांतर संस्कृति रही होगी, क्योंकि ऐसे ही साक्ष्य मध्य एशिया के अन्य भागों से भी प्राप्त हुए हैं, *''...आर्कियोलोजिकल सर्वे के दौरान पुराने मंदिरों के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिन्हें 'पांडवलार' कहा गया। मेगालिथिक सभ्यता के अवशेष मिले हैं, जिन्हें 'पत्थर बने आदमी', 'वाटिस गोमुत्य इंसान' माना गया। कश्मीर में बुर्जहोम और गोष्फुक्राल स्थानों के आस-पास अनेक 'मेनहिर' मिले हैं, जिन्हें शापग्रस्त दूल्हा-दुल्हन कहा गया। दरअसल, ये प्राचीन सभ्यता के अवशेष ही हैं। सिंधु घाटी की सभ्यता के अवशेषों से भी यह तथ्य सामने आया है कि क्राइस्ट से तीन-साढ़े तीन हजार वर्ष पहले कश्मीर में बुर्जहोम और गोष्फुक्राल में सभ्यता का विकास हो चुका था।''*[10] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बुर्जहोम से प्राप्त साक्ष्य इस बात के परिचायक हैं कि वहाँ की संस्कृति शेष सभी संस्कृतियों से विशिष्ट है। जम्मू-कश्मीर शैव, बौद्ध और इस्लाम के आगमन के उपरांत सूफी मत की एक सामासिक संस्कृति का परिचायक है, जिसे कश्मीरियत के रूप में व्याख्यायित किया जाता है। शैव दर्शन की उत्स भूमि होने के कारण कश्मीर के शैव दर्शन का अपना एक अलग महत्त्व है। बौद्ध धर्म की स्थिति भी कश्मीर में बहुत अच्छी थी, अशोक एवं कनिष्क का शासनकाल इस दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण रहा है। साथ ही चीनी यात्री ह्वेनसांग के वर्णन से भी यह ज्ञात होता है कि भारत के नालंदा के साथ ही कश्मीर भी विद्याध्ययन के महत्त्वपूर्ण केंद्र थे, उसका मत है कि *''... उस समय 500 से अधिक बौद्ध विद्वान कश्मीर में थे, जिन्हें पूरी दुनिया में बौद्ध अध्येता के रूप में जाना जाता है।''*[11] इसके अलावा कनिष्क द्वारा कुण्डलवन में चतुर्थ बौद्ध संगीति कराए जाने का भी उल्लेख मिलता है, जिसकी अध्यक्षता वसुमित्र द्वारा की गई थी। बौद्ध विद्वानों का बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु मध्य एशिया के अन्य भागों में भी जाने का सन्दर्भ मिलता है, *''कुषाण काल में कश्मीर से अनेक संस्कृत विद्वान तथा बौद्धाचार्य - जैसे गुणवर्मन, पुष्यत्राता, धर्मयदा तथा विमलाक्ष आदि महायान बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए मध्य एशिया के विभिन्न प्रदेशों में चले गए।''*[12]

कल्हण स्वयं शैव था, किंतु बौद्ध धर्म का विरोधी नहीं था, अपितु उसका प्रशंसक था, बौद्ध दर्शन का उस पर प्रभाव भी परिलक्षित होता है, *''...उसने शैव एवं बौद्ध धर्म को परस्पर विरोधी नहीं माना। दोनों का उपासक होने के कारण उन्हें एक दूसरे का पूरक माना है सहायक माना है। बुद्ध को अन्य अवतारों के समान अवतार मान कर वंदना की है।''*[13] इसके अतिरिक्त कल्हण ने राजतरंगिणी में मंदिरों, सरोवरों, नगरों के साथ अनेक बौद्ध विहारों, स्तूपों, चैत्यों और शालाओं का भी वर्णन किया है, इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत की ही

भांति कश्मीर में भी अपनी-अपनी उपासना पद्धति के संबंध में स्वतंत्रता थी।

इसके अलावा उस समय भारत में बौद्ध धर्म का लोप होता दिखाई पड़ता है, किंतु जम्मू-कश्मीर में उसकी मान्यता थी। *''शैव, वैष्णव, तांत्रिक सभी बुद्ध को अवतार मानकर पूजा करते थे। बौद्धधर्म काश्मीर में तेरहवीं शताब्दी तक रहा।''* 14 अभी पीछे 5 अगस्त, 2019 के पहले तक जम्मू-कश्मीर के भू-भाग का हिस्सा रहा लद्दाख (5 अगस्त 2019 से लद्दाख एक अलग केंद्र शासित प्रदेश हो गया है।) बौद्ध बहुल क्षेत्र है या ऐसे भी कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र का धर्म ही बौद्ध धर्म है। कश्मीर में उपस्थित शैव दर्शन की बात करें तो हम देखते हैं कि कश्मीर में शैव धर्म के आचार्यों की एक लंबी परंपरा रही है। इन आचार्यों ने समय-समय पर शैव दर्शन को व्याख्यायित कर प्रसारित किया है। इन आचार्यों में वसुगुप्त को शैव दर्शन की परम्परा का मेरुदंड माना जाता है, *''...वसुगुप्त ने 8वीं शताब्दी में सर्वप्रथम अद्वैतवाद की व्याख्या की जिसको कश्मीर का शैवमत कहा जाता है।''*[15] इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों का मत है कि *''वसुगुप्त द्वारा शैव दर्शन के पुनरोदय के बाद 9वीं से 13वीं शताब्दी तक कश्मीर पूरे भारत में फैले हुए शैव मतावलंबियों के लिए महत्वपूर्ण केंद्र रहा है।''*[16] कश्मीर के शैव दर्शन की यदि बात की जाए तो हम देख सकते हैं कि कश्मीर का शैवमत स्वयं की शक्ति का शिव शक्ति में एकीकरण कर देने की अवस्था का नाम है, इस अवस्था में दोनों में भेद समाप्त हो जाता है।

इस दृष्टि से विभिन्न आध्यात्मिक मार्गों एवं दर्शनों में कश्मीर के शैव दर्शन का अपना एक विशेष स्थान है, *''इसमें मानव, प्रकृति और परम शक्ति के मध्य एक अद्‌भुत समन्वय स्थापित होता है। इसमें उस परम शक्ति का ज्ञान होता है, जिसने सारे संसार की रचना की। आचार्य अभिनवगुप्त को ही विश्वव्यापी कश्मीर के शैव दर्शन का जनक माना जाता है।''*[17] आचार्य अभिनवगुप्त ने कश्मीर के शैवमत को परिभाषित किया, जिसका आधार त्रिक दर्शन था। यह त्रिक दर्शन शक्ति के तीन रूपों पर केंद्रित है। इसमें साधक शिव की परम शक्ति की चेतना का अनुभव करता है। इस प्रकार शैवमत अथवा शैव दर्शन के अनुसार संसार के प्रत्येक जीव में शिव रूपी परम तत्व विद्यमान है, जो उसके भीतर शिव की शक्ति के रूप में विराजमान होने का भी द्योतक है। साथ ही शैवमत का यह मानना भी है कि शिव के बिना इस सृष्टि की कल्पना करना निरर्थक है तथा कठिन साधना और तपस्या के द्वारा हम अपने भीतर शिव शक्ति को जागृत कर सकते हैं।

जम्मू-कश्मीर की सांस्कृतिक चेतना में उसके पर्वों-त्योहारों, व्यंजनों आदि की भी बेहद सुंदर महक मिलती है। नीलमत पुराण नामक पौराणिक आख्यान में एक कथा के माध्यम से कश्मीरी हिंदू समाज में मनाए जाने वाले एक पर्व का वर्णन मिलता है। इस पर्व को खिचड़ी अमावस्या के रूप में मनाया जाता है। कथा से ज्ञात होता है कि *''गृहस्थ घरों में मूँग चावल की, खूब-सा घी डालकर, स्वादिष्ट खिचड़ी बनती है इस दिन। साथ में मछली का झोल, मीट का कलिया, रोगनजोश, वगैरह-वगैरह, अपनी-अपनी रीत के अनुसार। गलीवालों ने भी अपनी-अपनी सामर्थ्य के हिसाब से खिचड़ी बनाई। ...घर के किसी कोने अंतरे में घास की ईंगुरीनुमा पत्तल पर खिचड़ी, गृहदेवता के लिए परोसी जाती है। कहते हैं इस रात यक्षराज या गृहदेवता सभी घरों के चक्कर लगाते हैं, जिस घर में सुच्ची खिचड़ी पाते हैं, उस घरवालों से खुश होकर वे प्रसाद पाते हैं और बदले में लक्ष्मी को भेज देते हैं। जहाँ पत्तल नहीं मिलती, वहाँ से वे नाराज होकर चले जाते हैं। फिर लक्ष्मी जी का पदार्पण तो असंभव ही है, घर की जो दुर्दशा होती है, उसके भी कई अलग किस्से हैं।''*[18] इस प्रकार पर्वों के संबंध में अपनी एक सामाजिक मान्यता है, जिसका आधार यही सांस्कृतिक आख्यान हैं, जो संस्कृति की चेतना का सामूहिक प्रतिरूप हैं। इनका सम्बंध भूगोल और इतिहास से भी होता है और भूगोल एवं इतिहास संस्कृति को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक संस्कृति के अपने विश्वास तथा उनको मानने के अपने तर्क होते हैं। इसके साथ ही उनके गीतों में उनके इतिहास-बोध और संपूर्ण समाज का श्रेष्ठत्व अर्थ संचित होता है। जम्मू-कश्मीर की संस्कृति कुछ

सालों या कुछ दिनों की नहीं है, अपितु इसका तो हजारों सालों का इतिहास रहा है और यह संस्कृति आम जनमानस की जीवन-पद्धति ही नहीं, बल्कि उनकी आचार संहिता और अस्मिता का प्रतीक है। इस रूप में किसी भी समाज का उसकी संस्कृति से अलग हो जाना, उस संस्कृति का छिन्न-भिन्न हो जाना भी है और इस अवस्था में वह समाज अथवा मनुष्य मृतप्राय हो जाता है। कश्मीर की उसी संस्कृति की गोद से कैयट, कल्हण, विल्हण, आचार्य मम्मट, कुन्तक, रुय्यक, उद्भट, शंकुक, गुणाढ्य, सोमदेव, पिंगल, जयदत्त, वामन आदि विद्वानों ने जन्म लिया और अपने ज्ञान एवं दर्शन से भारत ही नहीं, संपूर्ण विश्व को आलोकित किया। इसी क्रम में इस ऋषिभूमि के इतिहास में अनेक विभूतियाँ हुईं, जिनके व्यक्ति तत्व का प्रभाव वर्तमान समय में भी विद्यमान है। इतिहास की इन विभूतियों ने जनश्रुतियों के रूप में समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त की। जम्मू-कश्मीर की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि बेहद समृद्ध रही है और बौद्धिक संपदा से युक्त अथवा संपन्न भी। इसका महत्वपूर्ण कारण कश्मीरी हिंदुओं के सांस्कृतिक चिंतन के स्वर का उदार, सहिष्णु और सौहार्द्रपूर्ण होना ही है। इसके भीतर इनका सहनशील होना और सामाजिक शांति की पूर्ण अपेक्षा का संग्रहित होना भी शामिल है। जम्मू-कश्मीर की सांस्कृतिक विरासत का प्रमाण उसके चहुँओर फैली प्रकृति, नदियों, वनों और इनसे संबंधित कहानियाँ हैं । जम्मू-कश्मीर की संस्कृति अपने प्राकृतिक वैशिष्ट्यों से, जिसमें सघन वन, महकते पुष्पों, खिलती कलियों और कल-कल बहती नदी वितस्ता से अभिन्न रूप से संबद्ध है, *''कुग्रहों और अशुभ स्वप्नों के प्रभाव को कम करने के लिए संसारचंद कई उपाय बताते जरूर, परंतु साथ ही भेद-भरे अंदाज में यह भी कहते कि बुरे स्वप्न देखो तो सुबह उठकर वितस्ता की लहरों को सुनाया करो, किसी व्यक्ति को मत बताया करो। अपनी वितस्ता माँ बड़ी उदार, पापनाशक, कष्ट-निवारक, और सहनशीला है, वह अपनी सन्तानों के दु:ख-संताप अपने साथ बहाकर ले जाती है।''*[19] उपर्युक्त संदर्भ में अपने दु:स्वप्नों को वितस्ता में प्रवाहित करने का उनका विश्वाास उनकी संस्कृति की प्रकृति से समीपता अथवा अभिन्नता को भी सिद्ध करता है। संस्कृति के बाह्य तत्वों को पोषित करने वाली सभ्यता, जिसमें उसके शिल्प इत्यादि आते हैं, जम्मू-कश्मीर की सभ्यता में उनके सुंदर भवनों की सुंदरता देवदार के वृक्षों से रही है।

जम्मू-कश्मीर की संस्कृति के शैव धर्मावलंबियों ने आध्यात्मिकता, संस्कार, नैतिकता एवं मानव संवेदना को अपनी संस्कृति के आदर्शों में रखा और उनका व्यावहारिकता से पालन भी किया। संस्कार और कर्मप्रधान इस संस्कृति में समाज सेवा, मानवीय मूल्यों, त्याग एवं सत्कर्म की शिक्षा व प्रेरणा बड़ों के द्वारा आने वाली पीढ़ियों को दी जाती रही है। ये शिक्षा जनमानस की चेतना के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। 'ऐलान गली जिन्दा है' उपन्यास में भी इस संस्कारपरक शिक्षा का उदाहरण देखा जा सकता है, *''वे लल्लेश्वरी की उक्तियाँ सुनाते, 'सुनो, सिद्ध श्रीकण्ठ की शिष्या लल्लेश्वरी ने क्या कहा है : मंज़ मैदानस लरा लज़ेयम, अन्दि अन्दि कोरिमस तकिये त गाह, सो रोजि यती त बे गछे पानस... 'ये बड़े-बड़े भवन, जो शौक से मनुष्य बनाता है, उन्हें सजाता-सँवारता है, वो सब यहीं रह जाते हैं और मनुष्य सब छोड़-छाड़कर चला जाता है।' कण्ठ काका बात का समापन करते दुहराया करते, बच्चो! पीछे रह जाते हैं व्यक्ति के कर्म, जो संस्कारों से प्रभावित होते हैं, उन्हीं से व्यक्ति याद किया जाता है। यानी कि संस्कार ही अंतत: रहनेवाली चीज है, शेष सब झूठ।''*[20] संस्कार यानी कि इस लोक में मनुष्यरूप में रहते हुए उसके कर्म। यह कर्म जितना नैतिक, जितना समाज के कल्याण हेतु अर्थातत लोकहितार्थक होता है, उतना ही मनुष्य अपने समाज में याद किया जाता है। श्रीमद्भागवत् का एक श्लोकांश है 'कीर्ति: यस्य स: जीवति' अर्थात् जिसकी कीर्ति सर्वत्र होती है, वह मृत्यु के बाद भी जीवित रहता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि जम्मू-कश्मीर के हिंदुओं की संस्कृति सामाजिक समरसता, समाज के विकासार्थ एवं शिक्षा पर केंद्रित थी, जिसका परिणाम यह था कि वह इतने व्याघातों के पश्चात भी बनी रही, क्योंकि किसी भी समाज का अस्तित्व उसकी संस्कृति के आपसी सौहार्द्र पर भी निर्भर करता है।

उपसंहार :

जम्मू-कश्मीर जो अपनी संस्कृति और भौगोलिक वैशिष्ट्य के कारण इस धरती का स्वर्ग कहलाया, आज अपनी मूल सन्तानों से विलग होकर एक भयावह खंडहर में बदल गया है। ऐसा ही भयावह खंडहर इन ऋषि-संतानों की आत्मा में भी व्याप्त हो गया है। किंतु यह ऋषिवाटिका आज जिस अवस्था में दिखाई देती है, इसका रूप और चरित्र ऐसा नहीं था। यह सच है कि इतिहास की त्रासद जटिलताओं को जितना इस क्षेत्र ने भोगा उतना शायद ही किसी अन्य क्षेत्र ने भोगा हो। अपने पौराणिक आख्यानों में जिस कथात्मक रूप में यह क्षेत्र अभिव्यक्त हुआ है, उसमें एक समृद्ध संस्कृति और परंपरा परिलक्षित होती है। ज्ञान की देवी माँ सरस्वती की निवास-स्थली यह भूमि मानव-संस्कृति की विकास यात्रा का एक अनुपम अध्याय रचती रही है। भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की दृष्टि से जो अवदान इस क्षेत्र का रहा है, वह अन्य किसी क्षेत्र का नहीं रहा। संस्कृत की शास्त्रीय परम्परा के विभिन्न आचार्यों से लेकर, लोक-साहित्य की आधार-भूमि निर्मित करने वाले साहित्याचार्यों की एक विस्तृत शृंखला यहाँ दिखाई पड़ती है। जम्मू-कश्मीर जहाँ एक ओर शैव दर्शन की उत्सभूमि रहा है तो दूसरी ओर बौद्ध धर्म के प्रसार का माध्यम भी और इस्लाम को परिष्कृत कर उसे उसके सूफमयी रूप में ढालने का आधार भी। यही कारण है कि इतिहास की भीषण परिस्थितियों में भी इसके सांस्कृतिक स्वरूप पर बुरा असर नहीं पड़ा था। यह सत्य है कि इतिहास की क्रूरताओं ने यहाँ के मूल निवासी कश्मीरी हिंदुओं को सदैव त्रासद स्थितियों में धकेल कर उनकी अस्मिता एवं संस्कृति पर कई बार प्रश्नचिह्न लगाए हैं, लेकिन इसकी सांस्कृतिक विरासत के सूत्र कभी बिखरने नहीं पाए। अर्थात इतिहास के घोर यातना के कालखंड में भी जम्मू-कश्मीर की सांस्कृतिक भावभूमि कभी खंडित नहीं हुई और ऐसा कई बार हुआ है।

अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में कश्मीर क्षेत्र महाभारतकालीन संदर्भों से जुड़ता है, वैसे तो इस भू-भाग की निर्मिति का आधार पौराणिक कथाओं के अनुसार जलोद्भव राक्षस से कश्यप ऋषि द्वारा मुक्ति के उपरांत देवी-देवताओं के आगमन एवं उनका नदियों आदि रूपों में परिवर्तित हो यहीं निवास करने से जुड़ता है। इसके साथ ही 'जम्मू' की स्थापना के संबंध में देखें तो राजा जम्बू लोचन द्वारा इसकी स्थापना का वर्णन इतिहास में मिलता है। किंतु ज्ञात महाभारतकालीन संदर्भों में प्रथम हिंदू राजा गोनंद के शासन की जानकारी मिलती है, उसके बाद इस्लाम के आगमन के पूर्व यहाँ अनेक ऐसे प्रभावी और प्रजापालक शासक हुए, जिनके शासन में इस क्षेत्र ने हर दृष्टि से अभूतपूर्व प्रगति की। इन शासकों में अशोक, कनिष्क, मेघवाहन, प्रवरसेन एवं करकोटा राजवंश के ललितादित्य मुक्तापीड, उत्पल राजवंश के राजा अवंतिवर्मन, रानी दिद्दा और राजा जयसिंह को विशेष रूप से देखा जा सकता है। ऐसा नहीं है कि इस्लाम से पूर्व के इस कालखंड में सदैव स्थिरता रही, यदि हम देखें तो राजा गोनंद से मुस्लिम शासन स्थापित होने तक कई ऐसे शासकों ने भी कश्मीर पर शासन किया, जो अपनी स्वार्थपरक नीतियों, राजनैतिक षड्यंत्रों के लिए प्रसिद्ध रहे और इनके कारण ही बीच-बीच में कश्मीर क्षेत्र में राजनैतिक अस्थिरता बनी रही, जिसके कारण बाहरी आक्रमणकारी कश्मीर में आ सके। इस्लाम के आगमन के बाद पठान-अफगानों के काल में इस क्षेत्र ने भयावह नृशंसताओं का सामना किया। आतंक, हत्या, निष्कासन और धर्म-परिवर्तन के त्रासद कृत्यों द्वारा सिकंदर (बुतशिकन) ने इस ऋषिभूमि को उजाड़ दिया था। कहा जाता है कि इस समय कश्मीरी पंडितों के कुल ग्यारह घर ही बचे थे। किंतु कश्यप ऋषि की भाँति ही कभी जैनुलअबदीन (बड़शाह) तो कभी गुरु तेगबहादुर ने इन त्रासद परिस्थितियों में इनकी रक्षा की और यहाँ की साझी संस्कृति के सूत्रों को कभी बिखरने नहीं दिया। इस प्रकार सांस्कृतिक गौरव और संस्कृति की चेतना का परमस्तर जम्मू-कश्मीर की संस्कृति में रही। जम्मू-कश्मीर भारत का भौगोलिक मुकुट ही नहीं, वरन् सांस्कृतिक मुकुट भी रहा है और अपनी बौद्धिक संपदा से सदैव एक विशेष स्थान को आरक्षित करता रहा है।

संदर्भ सूची :

1. अष्टाध्यायी, 3.3.95
2. यजुर्वेद, 7.14
3. वर्मा, धीरेंद्र, हिंदी साहित्य कोश
4. गुलाबराय, भारतीय संस्कृति, पृ. 3
5. अग्रवाल, वासुदेवशरण, कला और संस्कृति, पृ. 3
6. जम्मू-कश्मीर का सांस्कृतिक अवबोध, रजनीश कुमार शुक्ल, बहुवचन पत्रिका, अंक 64-65-66, जनवरी-सितंबर, 2020, पृ. 9
7. मेरे भोजपत्र, चंद्रकान्ता, पृ. 82
8. जम्मू-कश्मीर का सांस्कृतिक अवबोध, रजनीश कुमार शुक्ल, बहुवचन पत्रिका, अंक 64-65-66, जनवरी-सितंबर, 2020, पृ. 9
9. बुर्जहोम संस्कृति, ओंकार नाथ राजदान, संस्कृति पत्रिका, अंक 19, पृ. 7
10. मेरे भोजपत्र, चन्द्रकान्ता, पृ. 75
11. जम्मू-कश्मीर का सांस्कृतिक अवबोध, रजनीश कुमार शुक्ल, बहुवचन पत्रिका, अंक 64-65-66, जनवरी-सितंबर, 2020, पृ. 9
12. कश्मीर में संस्कृत की गतिविधियाँ, डॉ. बदरीनाथ कल्ला, संस्कृति पत्रिका, अंक 19, पृ. 40
13. कल्हणकृत राजतरंगिणी, भाष्यकार, रघुनाथ शर्मा, पृ. 7
14. वही, पृ. 29
15. कश्मीर की शैव परम्परा, डॉ. बैकुंठ नाथ शर्मा, संस्कृति पत्रिका, अंक 19, पृ. 14
16. जम्मू-कश्मीर का सांस्कृतिक अवबोध, रजनीश कुमार शुक्ल, बहुवचन पत्रिका, अंक 64-65-66, जनवरी-सितंबर, 2020, पृ. 10
17. कश्मीर की शैव परम्परा, डॉ. बैकुंठ नाथ शर्मा, संस्कृति पत्रिका, अंक 19, पृ. 15
18. ऐलान गली जिन्दा है, चन्द्रकान्ता, वही, पृ. 15
19. ऐलान गली जिन्दा है, चन्द्रकान्ता, वही, पृ. 70
20. ऐलान गली जिन्दा है, चन्द्रकान्ता, वही, पृ. 111

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

देश विभाजन आधारित हिंदी कहानियों में मानवीय मूल्यों की पड़ताल

प्रणय प्रकाश

शोध छात्र, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली–110007
7004450687
pranayduhindi@gmail.com

शोध सार :

भारत विभाजन की घटना वैश्विक इतिहास में अंकित बड़ी मानवीय त्रासदियों में से एक है। यह मानवीय सभ्यता के इतिहास में अत्यंत पीड़ादायी एवं मानवीय मूल्यों को तार–तार कर देने वाली घटना के रूप में दर्ज है। एक अनुमान के मुताबिक, इस घटना में लगभग पाँच लाख लोग मारे गए तथा लगभग डेढ़ करोड़ लोग अपने घर–बार, व्यवसाय आदि से दर–ब–दर हो गए। यह मुख्य रूप से सांप्रदायिक उन्माद था। वर्तमान समय में भी समाज में सांप्रदायिक झड़प एवं तनाव की घटना को देखा जा सकता है। इन घटनाओं ने विभाजन की घटना से मिलने वाली सीख को अत्यंत प्रासंगिक बना दिया है। विभाजन की त्रासदी को लेकर साहित्य–जगत में भी महत्वपूर्ण हलचल हुई। इस घटना को केंद्र में रखकर कई भाषाओं में साहित्यिक रचनाएँ की गईं। हिंदी साहित्य में भी विभाजन की घटना को आधार बनाकर विभिन्न विधाओं में रचनाएँ की गईं। हिंदी कहानियों में भी विभाजन की घटना की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। इस आलेख के माध्यम से हम यह जानने का प्रयत्न करेंगे कि हिंदी कहानियों में देश विभाजन की घटना का किस प्रकार वर्णन किया गया है तथा इस घटना ने मानवीय मूल्यों का कितना क्षरण किया है।

बीज शब्द :

देश विभाजन, सांप्रदायिकता, हिंदी साहित्य, हिंदी कहानी, मानवीय मूल्य, करुणा, पीड़ा, जीवन, संवेदना, विस्थापन।

शोध आलेख :

साहित्य और समाज का अत्यंत गहरा संबंध है। दोनों एक–दूसरे को परस्पर प्रभावित करते हैं। समाज में घटित घटनाओं का साहित्य में सूक्ष्म एवं मार्मिक वर्णन किया जाता है तथा साहित्य का अध्ययन करके मानव मन कई प्रकार के विचारों एवं अनुभूतियों से स्वयं को समृद्ध करता है। साहित्य की व्याख्या करते हुए डॉ. श्यामसुंदर दास कहते हैं कि – *''मनुष्य स्वभाव से ही क्रियाशील प्राणी है, उसके लिए चुपचाप बैठा रहना असंभव है... साहित्य मन और स्वभाव की उपज है। इसलिए जिन बातों का प्रभाव मनुष्य के स्वभाव और मनुष्य के जीवन पर पड़ता है उनका प्रभाव साहित्य पर पड़ता है।''*[1] देश विभाजन की घटना का भी मानव मन पर अत्यंत गहरा प्रभाव पड़ा, जिसकी अभिव्यक्ति साहित्यकारों

द्वारा साहित्य के विविध विधाओं के माध्यम से की गई। हिंदी कहानियों में भी इस घटना की मार्मिक अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। कई कहानीकारों यथा – कृष्णा सोबती, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', भीष्म साहनी, मोहन राकेश, नासिरा शर्मा, अमृत राय, देवेंद्र इस्सर, द्रोणवीर कोहली, बेचन शर्मा 'उग्र', बदीउज्जमाँ, विष्णु प्रभाकर एवं राजी सेठ इत्यादि ने इस घटना को आधार बनाकर रचनाएँ कीं तथा इस घटना का मानव मन एवं मस्तिष्क पर पड़ने वाले प्रभाव का सूक्ष्म चित्रांकन किया है। इन कहानियों में मानवीय मूल्यों के प्रश्न का भलीभाँति पड़ताल की गई है। मानवीय मूल्य कहने से आशय है कि मानव द्वारा व्यवहार में लाए गए ऐसे सदाचार, जो उन्हें सार्वभौमिक बनाता हो अर्थात मानव के वे कार्य, जो विश्व-मानव कल्याण हेतु सार्वभौमिक मान्यता रखता हो। *''सार्वभौमिक मानवीय मूल्य सार्वभौमिक व्यवस्था में भागीदारी के संदर्भ में मानवीय संपर्क के विभिन्न आयामों में अस्तित्व की सच्चाई (सद्भाव, सह-अस्तित्व) की अभिव्यक्ति के अलावा और कुछ नहीं है।''*[2] उदाहरणार्थ – दया, प्रेम, भाईचारा, ईमानदारी, निडरता एवं करुणा कुछ ऐसे मूल्य हैं, जिससे मानव के मानवीय समृद्धि का पता चलता है। इन मूल्यों का क्षरण मानव को दानव बनने की ओर अग्रसर करता है तथा ऐसे मूल्यों की अधिकता मानव को महामानव बनने की ओर प्रेरित करते हैं। इन मूल्यों के संदर्भ में हम विभिन्न हिंदी कहानियों को देखने का प्रयत्न करते हैं।

अज्ञेय रचित कहानी 'शरणदाता' में इन मूल्यों की पड़ताल की गई है। 'देविंदरलाल' और 'रफीकउद्दीन' दोनों पड़ोसी एवं गहरे मित्र थे। जब देश-विभाजन की बात की गई तो आसपास की परिस्थितियों को देखते हुए सारे हिंदू एक-एक कर मोहल्ला छोड़ने लगे। देविंदरलाल बहुत दिनों तक अपनी जिद में डटा रहा, परंतु हालात देखकर एक दिन उसने भी मोहल्ला छोड़ने की बात की तो उसका परम मित्र रफीकउद्दीन उसे अपनापन दिखाकर आश्वासन देते हुए कहता है कि – *''हम तो आपको जाने न देंगे-बल्कि जबरदस्ती रोक लेंगे। मैं तो इसे मेजॉरिटी का फर्ज मानता हूँ कि वह माइनॉरिटी की हिफाजत करे और उन्हें घर छोड़कर भागने न दे। हम पड़ोसी की हिफाजत न कर सकें तो मुल्क की हिफाजत क्या खाक करेंगे! और मुझे पूरा यकीन है कि बाहर की तो खैर बात ही क्या, पंजाब में ही कोई हिंदू भी, जहाँ उनकी बहुतायत है, ऐसा ही सोच और कर रहे होंगे। आप न जाइए, न जाइए। आपकी हिफाजत की जिम्मेदारी मेरे सिर, बस!''*[3] रफीकउद्दीन के इस अपनापन को देखकर देविंदरलाल भाव-विह्वल हो जाता है और मोहल्ले में ही रुक जाता है, परंतु हालात कुछ इस तरह से बदलते हैं कि रफीकउद्दीन का धैर्य जवाब दे जाता है तथा वह देविंदरलाल को वहाँ से अन्य जगह भेजने का प्रबंध करता है। कई ठिकाने बदलने के बाद देविंदरलाल को अंततः अताउल्लाह के गैराज में रुकना पड़ता है। परंतु वहाँ भी उसकी जान सलामत नहीं है। उसे खाने में जहर मिलाकर दिया जाता है, परंतु वह अताउल्लाह की बेटी जैबू की मदद से बच जाता है। जैबू जब उसे खाना परोसकर देती है तो साथ में एक पुर्जा भेजती है कि – *''खाना कुत्तों को खिलाकर खाइएगा।''*[4] एक ही घर के दो व्यक्ति उसके लिए अलग-अलग भाव रखते हैं। अताउल्लाह सांप्रदायिक स्वार्थ में अंधा होकर उसे मार डालना चाहता है, वहीं उसकी बेटी मानवता को धर्म मानकर उसे दूसरा जीवन देती है। इस कहानी के पात्रों को देखकर उस समय के वातावरण एवं लोगों की मन:स्थिति का सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

अज्ञेय की ही दूसरी कहानी 'बदला' में भी इन मूल्यों की पड़ताल की गई है। विभाजन के पश्चात ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई थी कि भिन्न-भिन्न संप्रदाय के लोग एक-दूसरे के साथ यात्रा करने से भी डरने लगे थे। यह कहानी एक ट्रेन यात्रा पर आधारित है। ट्रेन के डिब्बे में एक मुसलमान स्त्री अपने बच्चे के साथ सहसा प्रवेश करने पर देखती है कि उसकी सहयात्री दूसरे धर्म (सिख संप्रदाय) से संबंधित है तो वह सहम जाती है। उस यात्री (सरदार) द्वारा महिला से सवाल पूछने पर वह अत्यंत भयभीत हो जाती है। अन्य यात्रियों के हावभाव एवं

बातचीत से उसे लगता है कि वह यहाँ सुरक्षित नहीं है, परंतु अंत में वही सिख यात्री उसकी हिफाजत करता है तथा उसे सुरक्षित स्थान तक पहुँचाता है तथा अपनी आपबीती बताते हुए कहता है कि – *''शेखपुरे में हमारे साथ जो हुआ सो हुआ, मगर मैं जानता हूँ कि उसका मैं बदला कभी नहीं ले सकता हूँ, क्योंकि उसका बदला हो ही नहीं सकता। मैं बदला दे सकता हूँ और वह यही कि मेरे साथ जो हुआ है, वह और किसी के साथ न हो। इसीलिए दिल्ली और अलीगढ़ के बीच इधर और उधर लोगों को पहुँचाता हूँ, मैं; मेरे दिन भी कटते हैं और कुछ बदला चुका भी पाता हूँ।''*[5] विभाजन की घटना ने आपस में साथ मिलकर रहने वाले लोगों के बीच भरोसा और भाईचारा पर प्रश्नचिह्न लगा दिया था, परंतु सरदार द्वारा किया गया कार्य भाईचारे को पूरी तरह खत्म होने से बचा लेता है। किसी के साथ इतना बुरा होने के पश्चात भी उसके अंदर मानवीय मूल्यों का यह प्रतिमान शेष हो तो यह विलक्षण ही है।

विभाजन के दौरान दोनों तरफ से एक बड़ी आबादी का हस्तांतरण हुआ। यह हस्तांतरण ट्रेनों, बसों एवं पैदल जत्थों के माध्यम से हुआ। ट्रेन यात्रा पर ही आधारित एक और कहानी 'अमृतसर आ गया है' भीष्म साहनी द्वारा लिखई गई है, जिसमें तत्कालीन समय की परिस्थितियों का सूक्ष्म वर्णन मिलता है। ट्रेन के एक डिब्बे में विभिन्न संप्रदाय के लोग साथ यात्रा कर रहे थे। ट्रेन में यात्रा करने वाले लोगों की मन:स्थिति ट्रेन की गति के साथ-साथ बदल रही थी। रास्ते में कहीं आग लगी थी, जिसकी लपटें ट्रेन से नजर आ रही थीं। संभवत: वह स्थान अब पाकिस्तान के हिस्से में था। इसे देखकर डिब्बे का माहौल बदल गया। *''जब गाड़ी शहर छोड़ कर आगे बढ़ गई तो डिब्बे में सन्नाटा छा गया। मैंने घूम कर डिब्बे के अंदर देखा, दुबले बाबू का चेहरा पीला पड़ गया था और माथे पर पसीने की परत किसी मुर्दे के माथे की तरह चमक रही थी।''*[6] परंतु जैसे ही ट्रेन भारत की सीमा में प्रवेश करती है, वैसे ही डरा-सहमा हुआ बाबू उत्तेजित हो जाता है और चीख पड़ता है कि अमृतसर आ गया है। अब डिब्बे की भीतरी संरचना बदलने लगती है। *''पर इस बीच डिब्बे के तीनों पठान अपनी-अपनी गठरी उठा कर बाहर निकल गए और अपने पठान साथियों के साथ गाड़ी के अगले डिब्बे की और बढ़ गए। जो विभाजन पहले प्रत्येक डिब्बे के भीतर होता रहा था, अब सारी गाड़ी के स्तर पर होने लगा था।''*[7] एक देश या समाज में साथ-साथ रहने वाले लोग निडरता के साथ रहते हैं तथा उसी निडरता के साथ आवाजाही भी करते हैं कि कोई उसका नुकसान नहीं करेगा। परंतु विभाजन की घटना के कारण साथ रहने वाले अलग-अलग संप्रदाय के लोगों के बीच यह निडरता समाप्त हो गई थी। यह एक देश और समाज की प्रगति के लिए अच्छे संकेत नहीं थे।

विभाजन की घटना ने लोगों से उसका बना-बनाया अस्तित्व छीन लिया तथा उसे मुफलिसी में ढकेल दिया। कृष्णा सोबती रचित कहानी 'सिक्का बदल गया' में शाहनी के साथ यही हुआ। शाहनी अपने भरे-पूरे परिवार के साथ जिस स्थान पर रहती है, विभाजन के पश्चात वह पाकिस्तान का हिस्सा बन गया है। कई असामी और नौकर-चाकर उसके यहाँ काम करते थे। पर अब सब बदल गया है। उसे अपना बना-बनाया सब छोड़कर हिंदुस्तान वापस आना होगा। उसे सब छोड़कर आने का दुख नहीं है, परंतु उसके आसपास रहने वाले लोगों के बदले हुए सुर से उसे अत्यंत दुख पहुँचता है। उसे अब कोई अपना नहीं लगता है। *''कौन नहीं है आज वहाँ? सारा गाँव है, जो उसके इशारे पर नाचता था कभी। उसकी असामियाँ हैं, जिन्हें उसने अपने नाते-रिश्तों से कभी कम नहीं समझा। लेकिन नहीं, आज उसका कोई नहीं, आज वह अकेली है!''*[8] जिस घर को उसने अपने हाथों से बनाया है, उसी घर में आज परायी हो गई है। वह अंतर्मन से उद्वेलित रहती है और उसी समय शेरा आकर कहता है कि- देर हो रही है। *''शाहनी चौंक पड़ी। देर- मेरे घर में मुझे देर! आँसुओं की भँवर में न जाने कहाँ से विद्रोह उमड़ पड़ा। मैं पुरखों के इस बड़े घर की रानी और यह मेरे ही अन्न पर पाले हुए... नहीं, यह सब कुछ नहीं। ठीक है- देर हो रही है-''*[9] इससे बड़ी विडंबना क्या हो सकती है कि जिस शेरा को उसने अपने हाथों से कटोरे भरकर दूध पिलाया, आज वही उसे घर से

निकालना चाहता है। परंतु वह अपनी मान-मर्यादा को बरकरार रखते हुए शान से घर की देहरी छोड़ती है। मानवीय मूल्यों में आया यह ह्रास शाहनी को टीसता रहता है। इसे लेकर नरेंद्र मोहन लिखते हैं कि – *''कृष्णा सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया' की शाहनी के लिए बँटवारे के परिणामस्वरूप हुकूमत के बदल जाने और सिक्का बदल जाने का कोई अर्थ नहीं है। उसे मानवीय मूल्यों के सिक्के बदल जाने, संबंधों के निरर्थक बना दिए जाने का दु:ख है। राज पलट जाने, राजनीतिक दृष्टि से सिक्का बदल जाने से मानवीय मूल्य कैसे निरर्थक सिद्ध हो गए, यही उसकी अंतर्वेदना है।''* [10] कृष्णा सोबती ने विभाजन को लेकर कई रचनाएँ की हैं, परंतु इस कड़ी में एक और कहानी का जिक्र करना आवश्यक है। उनकी कहानी 'मेरी माँ कहाँ' भी इसी संवेदना का पड़ताल करती है। यह कहानी एक बलोच 'यूनस खाँ' तथा एक घायल बच्ची पर आधारित है। विभाजन के पश्चात दोनों संप्रदाय के लोग एक-दूसरे के रक्त के प्यासे थे। यूनस खाँ भी इसी खून का प्यासा था – *''रात-दिन सब एक हो गए। उसकी आँखे उनींदी हैं, लेकिन उसे तो लाहौर पहुँचना है। बिल्कुल ठीक मौके पर। एक भी काफिर जिंदा न रहने पाये।''*[11] तभी सहसा उसे एक खून से लथपथ घायल बच्ची सड़क के किनारे दिखती है। वह ट्रक रोककर उसे उठा लेता है और इलाज करवाने अस्पताल लेकर जाता है। वहाँ उसे यह ज्ञात हो जाता है कि यह दूसरे संप्रदाय की बच्ची है, फिर भी उसके मन में उस बच्ची के प्रति करुणा जाग जाता है – *''बलोच करुणा से बच्ची को देखता है। कौन बचा होगा इसका? वह इसे पास रखेगा। बलोच किसी अनजान स्नेह में भीगा जा रहा है...''*[12] हिंसा-प्रतिहिंसा की आग ने बलोच को हैवान बना दिया था, परंतु वह बच्ची उसके अंतर्मन के किसी कोने में छिप गई मानवता को बाहर ला देती है। परंतु उस बच्ची ने अपने आसपास इतनी हिंसा और भयावहता देखी है कि वह यूनस खाँ पर भरोसा नहीं कर पाती है और होश में आते ही अपनी माँ को पुकारने लगती है।

देश के विभाजन का आधार सांप्रदायिक था, अर्थात पाकिस्तान को अलग देश बनाने की माँग ही इस आधार पर की गई कि मुसलमानों का हक व अधिकार भारत में रहकर सुरक्षित नहीं रह सकता है। परंतु यह शोचनीय प्रश्न है कि क्या वास्तव में मुसलमानों का हक व अधिकार केवल इस्लामी राज्य के अंतर्गत ही सुरक्षित रह सकता है? क्या एक मुसलमान अपने सभी स्वधर्मी जनों के साथ मानवता से पेश आते हैं? यह कितना सत्य है और कितना असत्य? इस बात को केंद्र में रखकर अज्ञेय ने अपनी कहानी 'मुस्लिम-मुस्लिम भाई-भाई' में वास्तविकता को उजागर किया है। विभाजन के पश्चात जब एक देश से दूसरे देश में आबादी का हस्तांतरण हो रहा था, तब इसी हस्तांतरण की भीड़ में तीन मुस्लिम महिला पाकिस्तान नहीं जा पाती हैं। तीनों भय के आवरण में लिपटी हुई हैं। परंतु एक आखिरी उम्मीद अभी शेष है– एक 'स्पेशल' रेलगाड़ी, जो सीधे पाकिस्तान जाएगी। अमिना कहती है– *''सुना है एक ट्रेन आने वाली है– स्पेशल। दिल्ली से सीधे पाकिस्तान जाएगी– उसमें सरकारी मुलाजिम जा रहे हैं न? उसी में क्यों न बैठें?''*[13] परंतु जमीला के मन में संशय उत्पन्न होता है कि सरकारी मुलाजिमों के बीच बैठने को मिलेगा या नहीं? अमिना उसके संशय का निवारण करते हुए उसे इस्लाम के बंधुत्व भाव का सहारा देती है कि– जब सब मुसलमान होंगे तो क्यों नहीं बैठने देंगे? परंतु जब सरकारी अफसरों की 'स्पेशल' रेलगाड़ी आती है और तीनों उसमें चढ़ने का प्रयास करती हैं तो उनका सारा भ्रम काफुर हो जाता है। उनका अपने ही कौम के अफसरों द्वारा चरित्र-हनन किया जाता है तथा अंत में रेलगाड़ी में घुसने नहीं दिया जाता है। जब तीनों महिला महिला हठ करने लगती हैं तो एक मुसलमान अफसर कहता है कि– *''बड़ी पाकदामन बनती हो! अरे, हिंदुओं के बीच में रहीं, और अब उनके बीच भागकर जा रही हो, आखिर कैसे? उन्होंने क्या यों ही छोड़ दिया होगा? सौ-सौ हिंदुओं से ऐसी-तैसी कराके पल्ला झाड़ के चली आयी पाकदामानी का दम भरने ...''*[14] यह सुनकर तीनों अवाक रह जाती हैं। जमीला उस रेलगाड़ी का हैंडल ऐसे छोड़ती है जैसे कोई गर्म लोहा हो। इस प्रसंग से यह ज्ञात होता है कि मानवीयता का स्तर कितना गिर गया था। विभाजन की घटना पर दृष्टिपात करने पर

उसका आधार केवल सांप्रदायिक दिखाई पड़ता है, परंतु साथ-ही-साथ वह वर्गगत विभाजन भी था। यह केवल साहित्यिक विधा का चित्रण भर नहीं है, बल्कि इसके पीछे ऐतिहासिक तथ्य और तर्क भी है। 600 वर्षों तक भारत की सरजमीं पर राज करने वाला इस्लाम का आभिजात्य वर्ग अपने हाथ से शासन और आर्थिक लाभ को छिनते देख अत्यंत व्यथित थे। पाकिस्तान की माँग उन्हीं लोगों के दिमाग की उपज थी। इस बात को स्पष्ट करते हुए प्रियंवद कहते हैं कि – *''पाकिस्तान की लड़ाई शुरू से ही संपन्न, धनी उच्चवर्गीय मुसलमान का, अपने हितों का संघर्ष रही थी। मुसलमानों का बुद्धिजीवी भी इसी वर्ग से था।''*[15] वरना गाँव में रहने वाले गरीब और कामगार मुसलमान पहले जिस स्थिति में थे, वैसे ही विभाजन के समय में भी थे। जैसा जन-आंदोलन कांग्रेस और अन्य संगठनों ने किया था, वैसा आंदोलन पाकिस्तान की माँग करने वाली मुस्लिम लीग ने कभी नहीं किया था। अज्ञेय की इस कहानी में इसी प्रश्न पर विचार किया गया है कि संप्रदाय के नाम पर देश की माँग करने वाले सभी मुस्लिम क्या सच में भाई-भाई थे? बदीउज्जमाँ की कहानी 'परदेसी' में भी इसी प्रकार की समस्या का चित्रण किया गया है कि भारत छोड़कर पाकिस्तान जाने वाले मुसलमानों के साथ भी किस प्रकार दोयम दर्जे का व्यवहार किया गया। इस कहानी का पात्र 'छाको' का पूरा परिवार भारत में रहता है और वह एक चाल में फँसकर पाकिस्तान में रहने को मजबूर रहता है। अपने परिवार को भेजी गई चिट्ठी में वह अपने साथ हो रहे दुर्व्यवहार का जिक्र करता है। उसके साथ भाषायी तौर पर दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। ढाका (उस समय का पाकिस्तान, अब बांग्लादेश) में रह रहे उसके स्वधर्मीजन ही उसके बांग्ला नहीं बोलने पर उसे आँख दिखाते हैं और अपने से नीचा समझते हैं। साहित्यिक रचनाओं में उद्धृत यह प्रश्न अनायास ही नहीं उठा है।

विभाजन के पश्चात विस्थापित हुए लोग कैंपों एवं अलग-अलग जगहों में बस गए। उनके अंदर घर-बार, परिवार एवं समाज से दर-ब-दर हो जाने का घाव टीसता रहा। उनकी मनोदशा को समझने वाले अत्यंत कम लोग थे। इसी समस्या पर प्रकाश डालते हुए राजी सेठ ने 'बाहरी लोग' नामक कहानी की रचना की। इस कहानी की मुख्य पात्र एक ऐसी वृद्ध महिला है, जो विभाजन के पश्चात विस्थापित होकर नए जगह में बस जाती है। उसके पति की मौत हो जाती है तथा उसके दो बच्चे हैं, जिसमें एक अविवाहित है। विभाजन के दौरान उसने इतनी भयावहता देखी है कि उम्र के इस पड़ाव में भी वह अपने बेटे के लौटने में जरा-सी देर हो जाने पर व्याकुल हो उठती है तथा कई प्रकार के आशंकाओं से घिर जाती है। उसे लेकर लेखिका ('मैं' पात्र) एक पुरुष के पास जाती है, जो उसी मोहल्ले का रहता है। परंतु उसकी समस्या सुलझाने के बदले वह उसका मजाक उड़ाता है तथा उस पर क्या बीत रही है, वह जरा भी नहीं समझता है– *''आपको नहीं पता, इसका पेच ढीला है। पूरी तरह क्रैक है बुढ़िया... अरे, देश के टुकड़े हुए इतने बरस बीते पर इसका पटरा अभी तक वहीं बिछा है।''* [16] यह सुनकर लेखिका गहरे पीड़ा से भर जाती है। उसे लगता है कि वह जिस बात को महसूस कर रही है, उसे सामने वाला व्यक्ति कितनी संवेदनहीनता के साथ टाल देता है। *''एक असभ्य-सी चिंता ने मुझे दबोच लिया– वह अगर किसी अकस्मात में अपने बेटे को खो देती हैं तो इस विभीषिका को अपनी पीठ के कौन से हिस्से पर ढोएँगी? पिछले अभिशाप से मुक्ति पा लेंगी? या कि दोहरे भार से कुचली जाएँगी? इतना दमखम इस पतली-सी काया में क्या है कहीं?''*[17] इससे सहज ही उसके मन में चल रहे द्वंद्व का पता लगाया जा सकता है। एक ही जगह दो लोग मौजूद हैं, जिसमें एक अति संवेदनहीनता का परिचय देता है तथा दूसरी उस वृद्धा के अंतर्मन में हो रही पीड़ा को महसूस कर पाती है। विभाजन की घटना ने एक ऐसी पीढ़ी तैयार कर दी, जो उसकी भुक्तभोगी थी, उसके अंदर उस घटना का घाव उसके अंतिम साँस चलने तक टीसता रहा।

भारत विभाजन को रोकने के लिए उस समय के कई महापुरुषों ने कोशिश की, परंतु यह प्रयास सफल नहीं हो सका। इसके लिए किसी एक पक्ष को पूर्ण रूप से जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है, परंतु इस बात

के कई प्रमाण हैं कि अंग्रेजों की यह साजिश थी। डॉ. राम मनोहर लोहिया इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि– *''हिंदुस्तान की धरती पर ब्रिटिश साम्राज्यशाही का यह आखिरी और बहुत शर्मनाक कार्य था। समय बीतने के साथ-साथ विभाजन के असाध्य कलंक के सामने स्वेच्छा से दी गई स्वतंत्रता की झूठी महिमा ध्वस्त हो जाएगी। इतिहासकारों को यह आश्चर्य होगा कि जब वे अन्वेषण करेंगे कि स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व किस प्रकार इतना अधम हो सका कि एक साम्राज्यवादी कलंक के पाप के भागी के रूप में बदल गया।''*[18] इस घटना के दौरान जो अमानवीय व्यवहार हुए, उसे रोकने अथवा कम करने के लिए कई महापुरुषों ने भरसक प्रयास किया। सरदार पटेल ने लोगों में आत्मरक्षा की भावना को विकसित करने का आह्वान करते हुए कहते हैं कि– *''थोड़े से 'गुंडों' के कायरतापूर्ण कार्यों के कारण आप अपने शहर की उत्कृष्ट छवि मलिन न होने दें। यदि आप गांधीजी के पदचिह्नों पर चलते हुए अहिंसात्मक प्रतिरोध नहीं कर सकते हैं तो आप कम-से-कम एक बहादुर व्यक्ति की तरह अपने तरीके से लड़ तो सकते हैं।''*[19] इस प्रकार के प्रयासों ने विभाजन की त्रासदी को कुछ कम तो किया, परंतु वह काफी नहीं था। यह घटना इतनी मार्मिक थी कि उस समय के लोगों के जीवन का कोई भी पहलू इससे अछूता नहीं रह पाया। साहित्य तो समाज से ही उत्पन्न होता है, इसलिए यह भी उस त्रासदी का साक्षी बना। हजारी प्रसाद द्विवेदी साहित्य को लेकर कहते हैं कि – *''साहित्य मानव-जीवन से सीधा उत्पन्न होकर सीधे मानव-जीवन को प्रभावित करता है। साहित्य पढ़ने से हम जीवन के साथ ताजा और घनिष्ठ संबंध स्थापित करते हैं। साहित्य में उन सारी बातों का जीवंत विवरण होता है, जिसे मनुष्य ने देखा है, अनुभव किया है, सोचा है और समझा है। जीवन के जो पहलू हमें नजदीक और स्थायी रूप से प्रभावित करते हैं उनके विषय में मनुष्य के अनुभवों को समझने का एकमात्र साधन साहित्य है।''* [20] अर्थात् किसी घटना का सही अर्थों में जानकारी इकट्ठा करने एवं उससे सीख लेने के लिए उसके इतिहास के साथ-साथ साहित्य का अध्ययन भी उपयोगी सिद्ध होता है। विभाजन की घटना के संवेदनशील एवं सूक्ष्म पक्षों को जानने के लिए तथा मानवीय मूल्यों की पड़ताल के लिए विभाजन आधारित हिंदी कहानियों का अध्ययन आवश्यक है, जिसमें उपरोक्त वर्णित कहानियों के अलावा देवेंद्र ईस्सर की 'मुक्ति', महीप सिंह की 'पानी और पुल', बेचन शर्मा 'उग्र' कृत 'ईश्वरद्रोही', मोहन राकेश कृत 'मलबे का मालिक', नासिरा शर्मा कृत 'सरहद के इस पार', अमृत राय कृत 'व्यथा का सरगम' तथा द्रोणवीर कोहली की 'बेजबान' उल्लेखनीय हैं।

निष्कर्ष :

भारत विभाजन की घटना विश्व की चुनिंदा त्रासद घटनाओं में से एक थी। कुछ विद्वानों ने इसे 'होलोकास्ट' (भीषण नरसंहार) की संज्ञा दी है। यह मानव द्वारा अपने स्वार्थपूर्ति हेतु निर्मित एक ऐसी घटना थी, जो मानव जाति के इतिहास में कलंक की तरह अंकित है। इस स्तर पर मानवीय मूल्यों का ह्रास बहुत कम बार देखा गया है। हिंदी कहानियों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस समय मानवीय मूल्यों का गहरा संकट खड़ा हो गया था, परंतु कुछ घटनाएँ ऐसी भी हुईं, जिसने मानवता की अप्रतिम मिसाल पेश की। विभाजन केवल बाहरी स्तर पर नहीं हुआ था, यह आंतरिक स्तर पर भी हुआ था। मानवीय संवेदना व्यक्ति का बाहरी नहीं, अपितु आंतरिक तत्व है इसलिए इस घटना ने मानवीय संवेदना पर भी गहरा प्रभाव डाला। मानवीय मूल्य का ह्रास तो हुआ, परंतु उसका खात्मा नहीं हुआ। लोगों के भीतर संवेदनाएँ बची हुई थीं, जिसके कारण इतने बड़े मानवीय क्षति के बाद इस संकट की तीव्रता को कम किया जा सका। वर्तमान काल एवं परिस्थिति पर दृष्टि रखते हुए हम सबको इतिहास की इस घटना का अध्ययन कर इससे सीख लेना चाहिए तथा इस मानवीय संकट की पुनरावृत्ति न हो, इस दिशा में कदम बढ़ाने चाहिए। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. दास, डॉ. श्यामसुंदर, साहित्यालोचन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ सं 32
2. Gaur Sangal and Bagaria, RR R and GP, A foundation course in Human Values and professional ethics, Excel Books, New Delhi, 2009, Page No 219 (The universal human values are nothing but manifestation of the truth of existence (harmony, co-existence) in various dimensions of human interaction in terms of the participation in the universal order.)
3. पालीवाल, कृष्णदत्त (सं), अज्ञेय रचनावली (3), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नी दिल्ली, 2014, पृष्ठ सं. 558
4. वही, पृष्ठ सं. 565
5. वही, पृष्ठ सं. 583
6. मोहन, नरेंद्र (सं), विभाजन : भारतीय भाषाओं की कहानियाँ (1), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ सं. 259
7. वही, पृष्ठ सं 262
8. वही, पृष्ठ सं. 155
9. वही, पृष्ठ सं. 157
10. वही, पृष्ठ सं. 12
11. मोहन, नरेंद्र (सं), विभाजन : भारतीय भाषाओं की कहानियाँ (2), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ सं. 95
12. वही, पृष्ठ सं. 98
13. पालीवाल, कृष्ण दत्त (सं), अज्ञेय रचनावली (3), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ सं. 569
14. वही, पृष्ठ सं. 571
15. प्रियंवद, भारत विभाजन की अंत:कथा, पेंगुइन प्रकाशन, गुड़गाँव, 2020, पृष्ठ सं. 41
16. सेठ, राजी, बाहरी लोग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023, पृष्ठ सं. 41
17. वही, पृष्ठ सं. 47
18. लोहिया, राममनोहर, भारत विभाजन के गुनहगार, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2023, पृष्ठ सं. 26
19. चोपड़ा, डॉ. प्रभा (सं), भारत विभाजन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ सं. 166
20. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, साहित्य सहचर, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2017, पृष्ठ सं. 3

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

दक्खिनी हिंदी : भाषीय समन्वय एवं सांस्कृतिक सद्भावना की ऐतिहासिक धरोहर

अभिषेक कुमार

शोधार्थी, हिंदी तथा
आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ
वाराणसी-221002 (उत्तर प्रदेश)
9451701802
abhishekbhu97@gmail.com

शोध-सार :

मानव सभ्यता के विकास के अनादि-काल से ही भाषा ऐसे समन्वय सेतु के रूप में प्रतिष्ठित रही है, जो विविध मानवीय भाव-बोध को परस्पर अभिव्यक्त करने और रागात्मक प्रवृत्तियों को समन्वित करने का महान कार्य करती है। दो भिन्न-भिन्न समुदायों, जातियों एवं विचारों को मैत्री एवं सद्भावना के सूत्र में बाँधने वाली चिर रज्जु सर्वदा भाषा ही होती है। किसी भी भाषा का इतिहास उतना ही रोचक एवं ज्ञानवर्धक होता है, जितना कि उस देश और उसकी सभ्यता का इतिहास। यदि हम अपने भारतवर्ष की चर्चा करें तो इस विशिष्ट उप महाद्वीप की गाथा एक प्रांत से दूसरे प्रांत तक भिन्नताओं से परिपूर्ण हैं। उन्हीं विविधताओं की भित्ति को सेतु में परिवर्तित करने का श्रेय भाषा को जाता है। हमारी मातृभाषा हिंदी भाषा का स्वरूप भी उत्तर भारत से दक्षिण भारत तक आते-आते पर्याप्त परिवर्तित हो चुका है। विलक्षण बात यह है कि जिस भाषा का बीज उत्तर भारत से आयातित था उसने दक्षिण में एक विशालकाय पृथक वृक्ष के रूप में अपनी जड़े प्रसारित की हैं। दक्खिनी हिंदी भाषा का अस्तित्व पिछले प्राय: हजार वर्ष से भारतीय सभ्यता-संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में सेतु-बंध का कार्य कर रहा है। दक्खिनी के आख्यानक कवियों ने ईरान और भारत की साहित्यिक परंपराओं से पर्याप्त लाभ उठाया है।

बीज शब्द :

दक्खिनी हिंदी, साझी संस्कृति, भाषाई समन्वय, भारतीय सभ्यता-संस्कृति, निजाम राज्य, आख्यानक कवि, विविधताओं की भित्ति इत्यादि।

मूल आलेख :

दक्षिण भारत की भाषाओं के साथ दक्खिनी हिंदी एवं उसमें रचित साहित्य का एक विशिष्ट रूप प्रतिष्ठित है। प्रसिद्ध विद्वान डॉ. धीरेंद्र वर्मा के शब्दों में *''हिंदी भाषा का विकास और उसमें साहित्य-रचना का कार्य केवल उत्तरी भारत में नहीं हुआ है। दक्षिणी भारत की मुसलमानी रियासतों, उनके शासकों एवं उनके दरबार के अन्य साहित्यिकों का भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान है। मुसलमान फकीरों, सैनिकों और राज्य संस्थापकों के द्वारा साहित्यिक हिंदी दक्षिण भारत में पहुंची थी और पंद्रहवीं शताब्दी तक उसमें उच्चकोटि का साहित्य निर्मित होने लगा था।''*[1] यह जानना अत्यंत आवश्यक है कि दक्खिनी नाम क्यों पड़ा?

दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के सैनिकों ने 1297 ई. में आंध्र पर और 1308 ई. में कर्नाटक पर विजय प्राप्त की। इन राज्यों को दिल्ली का सूबा माना गया। कुछ वर्ष के उपरांत मोहम्मद बिन तुगलक ने 1327 में दौलताबाद को अपनी राजधानी बनाया। दक्षिण भारत के महत्व को जानते हुए उसने यह निर्णय लिया था। फिरोज तुगलक के राज्य काल में दक्खिन स्वतंत्र हो गया, और हसन गंगो बहमनी 3 अगस्त ने 1347 में गुलबर्गा में बहमनी राज्य स्थापित किया। फिरोज शाह की मृत्यु तक दक्खिन दिल्ली के अधिकार से मुक्त हो गया था और दोनों के मध्य कोई राजनैतिक संबंध भी नहीं रहा। दक्षिण में आदिलशाही, कुतुबशाही, बरीदशाही, इमादशाही तथा निजामशाही सल्तनतें स्थापित हुईं, जिनमें पारस्परिक होता रहा किंतु दिल्ली से इनका कोई नाता नहीं था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि ये राज्य दक्खिनी हिंदी के कवियों और साहित्यकारों को आश्रय देते थे। औरंगजेब ने 1652 में औरंगाबाद को अपना केंद्र बनाया और उसकी मृत्यु के उपरांत फिर से हैदराबाद के निजाम के वंशजों ने प्राचीन दक्खिनी सुल्तानों की बहती बराबर दक्खिनी भाषा के साहित्यकारों को आश्रय दिया। जब औरंगजेब ने दक्खिन में जाकर बीजापुर, गोलकुंडा, बीदर, बरार तथा अहमद नगर में बसे सल्तनतों पर आक्रमण कर उन्हें मिटा दिया, तब उन सल्तनतों के आश्रित कवि एवं साहित्यकार कुछ काल के लिए निराश्रित हो गए, किंतु उनकी साहित्य रचना अनवरत गतिमान रही। सन् 1652 में औरंगजेब ने औरंगाबाद को अपना केंद्र बनाया और कुछ कवियों को वहाँ पनाह मिली। उसकी मृत्यु के पश्चात मुगल शासन समाप्ति के कगार पर पहुँच गया। उसके पश्चात् ही निजाम राज्य के संस्थापक निजाम-उल-मुल्क आसफशाह स्थायी रूप से दक्खिन के सूबेदार बन गए और तब से दक्खिनी भाषा के साहित्यकारों को आश्रय और सम्मान प्राप्त होने लगा।

हिंदी अथवा हिंदवी का दक्खिनी कहलाना केवल इन दक्खिनी राज्यों के कारण है। उस समय में भी द्रविड़ भाषाओं में तेलुगु, तमिल और कन्नड बोली जाती थी। आश्चर्य की बात यह है कि भारतवर्ष के जिन प्रदेशों में हिंदवी साहित्य का विकास हुआ, वहाँ द्रविड़ भाषाओं का साहित्य पहले से ही विद्यमान था। इस संदर्भ में बाबू राम सक्सेना लिखते हैं कि *''देवगिरी में मुस्लिम राज 1327 ई. में कायम हो चुका था, पर साहित्य का पहला ग्रंथ ख्वाजाबंदा नवाज गेसू दराज मुहम्मद हुसेनी का मीराजुल आशिकीन इसके प्राय: सौ साल बाद बना। इसके मुकाबले में मराठी भाषा में महिमभट और ज्ञानेश्वर के ग्रंथ 1300 ई. के पहले रचे जा चुके थे, और तमिल, कन्नड़, तेलुगु के ग्रंथ तो कई सौ साल पहले।''* [2] ख्वाजाबंदा नवाब गेसू दराब मुहम्मद हुसैनी की अधिकतर कृतियाँ फारसी में हैं, पर तीन रिसाले मीराजुल आशकी, हिदायत नामा और रिसाला सहवारा, दक्खिनी में हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार फरिश्ता ने उल्लेख किया है कि बहमनी राज्य के कार्यालयों में हिंदी भाषा का प्रचलन था और सरकार ने उसे सरकारी भाषा का पद भी दिया था। बहमनी सल्तनत के बिखरने के पश्चात भी हिंदी का यह पद सुरक्षित रखा गया। फारसी के रहते हुए भी हिंदी को राजभाषा बनाने के पीछे कई महत्वपूर्ण कारण थे। इस प्रदेश में मराठी, कन्नड़, तेलुगु भाषाओं का प्रचलन तो था मगर उत्तर भारत से आए सिपाहियों और संत दरवेशों को इन भाषाओं का कोई विशेष ज्ञान नहीं था। कई सिपाही तो फारसी भी नहीं जानते थे। इसलिए हिंदवी अथवा दक्खिनी हिंदी के साथ खड़ी बोली हिंदी का भी अपना स्थान यथावत बना रहा।

दक्खिनी साहित्य बीजापुर के आदिलशाही और गोलकुंडा के कुतुबशाही राज्य में अपनी पूरी चमक के साथ दिखाई दिया। दिल्ली से आए मुगल सूबेदार आसफजाह 1723 ई. में स्थायी रूप से दक्खिन के नवाब पद पर आसीन हुए। कुछ सालों तक तो मुगल प्रभाव रहा, परंतु कालांतर में वे स्वाधीन हो गए। *''वाली औरंगाबादी के दिल्ली यात्रा करके लौटने के बाद जहाँ दिल्ली के कवि और ग्रंथ-कारों ने फारसी छोड़कर हिंदी या रेखता में लिखना शुरू किया, वहाँ दक्खिन में भी जबान का स्टैंडर्ड रूप निखरने लगा और साथ ही साथ स्वदेशी शब्दों का बहिष्कार और फारसी अरबी शब्दों की भरती आरंभ हुई।''* [3] इस प्रकार धीरे-धीरे दिल्ली

से आवागमन कट-सा गया। अठारहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ तक दिल्ली का केंद्र प्राय: विनष्ट हो गया, लखनऊ की स्थिति संभलने लगी और हैदराबाद भी कलाकारों के लिए अच्छा पोषक सिद्ध हुआ। इसी काल में दक्खिनी भाषा में कुछ एक हिंदू ग्रंथकार भी दिखाई पड़ते हैं, जिनमें मोहनलाल 'मेहताब' और लछिमीनारायण 'शफीक' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के प्रारंभ तक लखनऊ की नवाबी समाप्त हो गई और केवल निजाम राज्य उर्दू का पोषक बन गया। *''राज्य की ओर से खुले हाथ से उर्दू के कलाकारों और सोसाइटी की मदद की गई। कोई भी आया खाली हाथ नहीं लौटा। अब प्राय: सभी साहित्यकारों की भाषा खालिस उर्दू है। तब भी इक्का-दुक्का कवि दक्खिनी में लिख गए हैं। इनमें हाल की ठुमरियों और अजमत के हिंदी छंद अच्छे बन पड़े है। मूहिब हैदराबाद के पहले शख्स थे जिन्होंने स्त्री सुधार और स्त्री के अधिकारों पर जोर दिया।''*[4]

जैसे कि पूर्ववत उल्लेख किया गया कि दक्खिनी के पहले ग्रंथकार ख्वाजा बंदानवाब गेसूदराब सैयद हुसैनी (1318-1422) थे। इनका बाल्यकाल दक्खिन में व्यतीत हुआ और जीवन के अंतिम बीस वर्ष भी दक्खिन में ही बीते। वे अच्छे फकीर थे और उन्होंने अपने धर्म के प्रचार के लिए कुछ छोटी-छोटी पुस्तकें गद्य रूप में लिखीं। सैयद मुहम्मद हुसैनी के नाम से कुछ पद्य भी हैं, अनुमान यह है कि इसके रचयिता भी ख्वाजा बंदानवाब गेसूदराब सैयद हुसैनी ही हैं। दक्खिनी का पहला कवि निजामी, बहमनी सुल्तान अहमद शाह तृतीय के शासन काल (1460-62) में विद्यमान था। इस प्रकार दक्खिनी साहित्य का गद्य एवं पद्य रूप 14-15वीं शताब्दी के मध्य आरम्भ हो गया था। गद्य के ग्रंथों में दो प्रकार का साहित्य दिखाई देता है, धर्म संबंधी ग्रंथ और तसव्बूफ। धर्म प्रचार संबंधी ग्रंथ प्राय: फारसी से अनूदित हैं, किंतु साहित्य की दृष्टि से यह उतना महत्वपूर्ण नहीं हैं। मौलाना अब्दुल्ला ने 1622 ई. को 'एडकामूलसल्वाह' लिखा जो फारसी के ग्रंथ का अनुवाद है, जिसे दक्खिनी भाषा में रूपांतरित किया गया। तसब्बूफ के ग्रंथों की संख्या अत्यधिक है, जिसमें दर्शन और आचार शास्त्र के बारे में लिखा गया है। प्रमुख ग्रंथ मुल्ला वजही का सबरस है, जिसकी रचना 1635 ई. में की गई। *''यह ग्रंथ मौलवी डॉ. अब्दुल हक ने 1632 ई. में संपादित कर अंजुमन तरक्की उर्दू, हैदराबाद से प्रकाशित कराया। इनकी भूमिका से स्पष्ट है कि वजही इसके मौलिक ग्रंथकार नहीं हैं। मूल ग्रंथ फारसी में है।''*[5] इसी सन्दर्भ में इसके आगे यह भी लिखा गया है कि *''फातही ने दस्तूर उश्शाक नाम की एक मसनवी फारसी में लिखी थी। इसमें पाँच हजार पद्य थे। उसके बाद दो ग्रंथ और उसी विषय को लेकर लिखे गए-'शबिस्ताने ख्याल' और 'हूसनो दिल'। हूसनों दिल गद्य में था। वह बहुत लोकप्रिय हुआ। इसी को आधार मानकर वजही ने सबरस हिंदी में लिखा।''*[6]

तसब्बूफ के अन्य ग्रंथों में मीरांजी हुस्न खुदानुमा के 'शरह तमहींद हमदानी', बुहार्नुद्दीन औलिया के 'शुमायालूल् इत्किया', तूतीनामा इखला के 'हिंदी' आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से एक दो मौलिक हैं, बाकी फारसी अरबी के ग्रंथों के अनुवाद अथवा दक्खिनी का रूपांतरण है। साहित्य के अलावा विज्ञान पर भी पर्याप्त लेखन हुआ है। गद्य के अतिरिक्त दक्खिनी में वे रिसाले भी पाए गए हैं, जो उन्नीसवीं शताब्दी के पहले चरण में हैदराबाद में लिखे गए। इसमें गणित, रसायन-शास्त्र जैसे महत्वपूर्ण विषय भी थे। भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण पड़ाव तब आया, जब यूरोपीय शासन अपनी जड़ें शक्ति-संपन्न कर रहा था। दक्षिण भारत में भी मुसलमान शासकों पर यूरोपीय प्रभाव बढ़ता गया। बीसवीं शती के पूर्वार्ध में हैदराबाद के निजाम के संरक्षण में यूरोपीय विद्वानों के विभिन्न विषयों के ग्रंथों का अनुवाद उर्दू में होने लगा जिसके फलस्वरूप उस्मानिया विश्वविद्यालय में उर्दू के माध्यम से उच्चतम शिक्षा का प्रबंध संभव हो पाया।

दक्खिनी में अन्य बहुत-सी मसनवियाँ लिखी गईं, जिनमें कुछ फारसी से अनूदित हैं। मसनवी 'कदम राव व पद्म' दक्खिनी हिंदी की प्रथम कविता के रोप में मान्य है। पद्मावती और रत्नसेन की कहानी पर भी दक्खिनी में पद्मावत नामक मसनवी लिखी गई, जिसके रचनाकार गुलाम अली हैं। इसका रचना-काल 1680 ई. माना

जाता है। ऐसा माना जाता है कि मसनवियों में अधिकतर प्रेम के किस्से और कहानियाँ हुआ करती थीं। नायकों का चरित्र-चित्रण, उनके युद्ध आदि का वर्णन भी इन मसनवियों में प्राप्त होता है। इसी प्रकार नसरती का 'गुलशन इश्क' जिसमें कुँवर मनोहर और मदमालती की कथा है, वली वेलूरी की तीन मसनवियों जिनमें से एक पद्मावती की कथा है। इशरती की तीन मसनवियाँ- 'जीवन पतंग', 'चितलगन' और 'नेह दर्पण' आदि उल्लेखनीय हैं। 1596 में रचित सुल्तान इब्राहिम की रचना 'नवरस' की भाषा में हिंदी शब्द ही अधिक हैं, फारसी के न्यूनतम ही हैं।

दक्षिण भारत के गोलकुंडा राज्य के कुतुब शाही सुल्तान साहित्य प्रेमी तो थे ही, वे स्वयं एक अच्छे कवि थे। उनके साथ ही चार सुल्तान-मुहम्मद कुली (1580-1611), मुहम्मद कुतुब शाह (1611-25), अब्दुल्ला कुतुबशाह (1625-72) और अबूल हसन (1672-86) बहुत अच्छे कवि थे। मुहम्मद कुली कुतुबशाह की रचनाएँ 'कुल्लियात' के रूप में प्रकाशित हुई हैं। इन सुल्तानों की रचनाओं में विविध पारंपरिक काव्य गुण जैसे नायिका वर्णन, ऋतु वर्णन आदि पाए जाते हैं। इन्होंने मसनवी, गजल, रुबाई आदि भी लिखा है। बाबू राम सक्सेना के शब्दों में *''इन व्याख्यानों में हमने हिंदी के उस रूप का विवरण देने की कोशिश की है जो आदिकालीन कहा जा सकता है। फारसी लिपि में ही होने के कारण यह हिंदी वालों को दुर्बोध्य है। जरूरत है कि कुछ अंश शीघ्र ही देवनागरी लिपि में प्रकाशित होकर विद्वानों के सामने आवे। मेरे कथन से इतना स्पष्ट हो गया होगा कि यद्यपि हिंदी की दक्खिनी शाखा के कलाकार प्राय: सभी मुसलमान थे, तथापि अरसे तक भाषा में बहुत हद तक उन्होंने भारतीयता निभाई और भावों में भी कुछ हद तक देशीपन कायम रखा। खेद है कि यह भावना उत्तरोत्तर मिटती गई और भाषा भी हिंदू मुसलमानों के बीच भेदक बन बैठी! ईश्वर कल्याण करें।''*[7]

दक्खिनी साहित्य के इतिहास में वली मुहम्मद एक अत्यंत महत्वपूर्ण कवि हैं, जिन्होंने इस साहित्य की सामान्य, सरल स्वाभाविक धारा को उर्दू में विलीन कर दिया। इसलिए उन्हें उर्दू का बाबा आदम भी कहा जाता था। मगर उनके साहित्य ने दोनों भाषाओं को अलग स्थान देते हुए, सम्मानपूर्वक दोनों भाषाओं की पहचान बनाए रखी। उर्दू जहाँ उत्तर भारत की भाषा बनी रही, दक्खिनी, दक्षिण प्रांत की भाषा बनकर आगे बढ़ी। वली ने दक्खिनी और रेख्ता (उर्दू) दोनों भाषाओं में काव्य की रचना की। *''वली प्राय: काव्य के सभी रूपों- गजल, कसीदा, मसनवी, रुबाई, तरजी, बंद आदि में कविता करते थे। इस प्रकार प्रारंभ से ही वे दक्खिनी के उच्च कोटि के कवि माने जाने लगे थे।''*[8] यद्यपि वली की गजलों में प्रेम भावना स्पष्ट परिलक्षित होती है, तथापि वह आध्यात्मिक रूप लेकर सूफी प्रेम का रूप ग्रहण करती है। वली द्वारा दक्खिनी में रचित कविता का एक अंश अवलोकन योग्य है...

''जिसे इश्क का तीर कारी लगे। उसे जिंदगी क्यों न भारी लगे ।।

न हीवे उसे जग में हरगिज करार। जिसे इश्क की बेकरारी लगे।।

वली को कहे तू अगर एक वचन। रकीबों के दिल में कटारी लगे।।''[9]

इसी प्रकार वली द्वारा रेख्ता अथवा उर्दू में रचित कविता का एक स्वरूप देखिए -

''हुस्न का मसनदनशीं वह दिलबरे मुमताज़ है। दिलबरों का हुस्न जिस मसनद का पाअंदाज है।।

याद से उस इश्के गुलज़ारे हरम के ए वली। रंग को मेरे सदा ज्यों बोओए गुल परवाज़ है।''[10]

इस प्रकार दोनों भाषाओं के स्वरूप में अंतर और उनके सौंदर्य को वली ने अत्यंत रोचक ढंग से चित्रित किया है। अंत प्रमुख कवियों में दक्खिनी हिंदी साहित्य का सुंदर और पठनीय स्वरूप सुल्तान कुली कुतुबशाह द्वारा रचित 'हम्द' अवलोकित किया जा सकता है-

''चंद्र सूर तेरे नूर थे, नइस दिन को नूरानी किया।
तेरी सिफ्त किन कर सके, तूँ आपी मेरा है जिया।।
तुज नाम मुंज आराम है, मुंज जीव सो तुज नाम है।
सब जग को तुझ सो काम है, तुज नाम जप माला हुवा।।
तुज याद में जग मोहिया, है जग ऊपर तेरा माया,
जो जग मँगे सो तू दिया, तू ही जगत का है दया।

जीता हूँ तेरी आस थे, आया है रहम आकाश थे।
जो कुच मँगूँ तुज पास थे, सो है सो मुंज को तँ दिया।
बहु तिक मया सेती अपुन, दीना कुतुब को सब दखिन।
सीसों नबी का नीत चरन, जब लग है तन म्याने जिया।।''[11]

कहना न होगा कि दक्खिनी साहित्य के प्रकाश में आने के उपरांत उर्दू साहित्य के इतिहास लेखक तथा आलोचक इस साहित्य को उर्दू का ही एक अंग मानकर चलने लगे। दूसरी ओर हिंदी साहित्य के समीक्षक एवं इतिहास लेखक ही नहीं, बल्कि विश्वविख्यात भाषा विज्ञानी सुनीति कुमार चटर्जी जैसे लोगों ने भी दक्खिनी साहित्य को शुद्ध हिंदी के अंतर्गत रखने का समर्थन किया। भाषा विज्ञान की दृष्टि से स्पष्ट हो जाता है कि साहित्यिक दक्खिनी के भाषा-रूपों की विभिन्नता विविध बोलियों का सम्मिश्रण प्रकट करती है। जैसे इसमें महा-प्राण ध्वनियों का अल्प-प्राण उच्चारण, बहुवचन में 'ओं के स्थान पर 'आं' का प्रयोग, सर्वनाम में सामान्य सर्वनाम के साथ प्रत्यय जोड़ने की प्रक्रिया, जैसे हमना, तुमना आदि। इसी प्रकार शब्दावली में देखा जाए तो दक्खिनी हिंदी में तद्भव शब्दावली की प्रधानता है। दक्खिनी शब्दकोश में मराठी, कन्नड़, तेलुगु तथा मुंडा भाषा परिवार के भी शब्द सम्मिलित हैं। दक्खिनी साहित्यकारों ने विदेशी शब्दों को प्रसंगानुसार लिया अवश्य है, किंतु उनमें विदेशी ध्वनियों के स्थान पर परिचित देशी ध्वनियों को रख दिया है। वास्तव में दक्खिनी साहित्य में देशी साहित्यिक परंपराओं का ही पालन हुआ है। *''दक्खिनी साहित्य में भारत के प्राचीन कथानकों, सीता की पति-परायणता, राम की कर्तव्य परायणता, हनुमान की सेवा भावना आदि की भावना पर्याप्त मात्रा में मिलती है, जबकि उर्दू में इसका सर्वथा अभाव है। यद्यपि अधिकांश दक्खिनी साहित्य की मसनवियां फारसी की अनुवाद हैं, किंतु उनमें भी भारतीय कथाएँ, नदी, पर्वत आदि का उल्लेख मिल जाता है। भारतीय परंपरा में पुरुष का प्रेम-पात्र स्त्री और स्त्री का प्रेम-भाजन पुरुष होता है। दक्खिनी के अधिकांश ग्रंथों में प्रेम की यही परंपरा निभाई गई है। फारसी का प्रभाव अधिक पड़ने के कारण वली के बाद की दक्खिनी उर्दू में माशूक (प्रेयसी) का वर्णन पुलिंग में होने लगा। दक्खिनी साहित्य के कलाकार प्राय: मुसलमान थे, अत: फारसी अरबी लिपि में ही संपूर्ण साहित्य लिखा गया था। फारसी के छंद का काव्य रूप- मर्सिया, कसीदा, रुवाई, तरजीअबंद भी अपनाए गए, तथापि भाषा में बहुत दूर तक भारतीयता निभाई गई और भावों में देशीपन बना रहा। दक्खिनी साहित्य सब प्रकार से हिंदवी साहित्य है।''*[12]

प्रख्यात कथाकार मुंशी प्रेमचंद द्वारा रचित 'राम चर्चा' एक उल्लेखनीय रचना है। वे उर्दू के पारखी थे और हिंदी लेखन के लिए उनका साहित्य में आगमन एक अपूर्व युग ही बन गया है। हिंदी में 'राम चर्चा' का प्रकाशन सरस्वती प्रेस से सन 1938 ई. में प्रेमचंद के मरणोपरांत हुआ, द्वितीय संस्करण 1945 ई. और तृतीय संस्करण 1948 ई. में प्रकाशित हुआ। इसी पुस्तक को 'दक्षिण भारत हिंदुस्तानी प्रचार सभा' ने प्रेमचंद के सुपुत्र श्रीपतराय की अनुमति से 1950 ई. में प्रकाशित किया। प्रकाशक का कहना है कि *''राम की कहानी और श्री प्रेमचंद जी की कलम उसके बाद और कुछ कहने को नहीं रह जाता। इतनी आसान जबान लिखना प्रेमचंद जी का ही काम था। दक्खिन के लोग इसको पढ़कर प्रेमचंद जी की 'सलीस उर्दू' का लुत्फ उठा सकते हैं।''*[13] मुंशी प्रेमचंद की 'राम चर्चा' दक्खिनी हिंदी के सभी गुणों से रचित एक अद्भत कृति है। हिंदी के उपन्यासकार ने अपनी भाषा-सापेक्ष दक्षता के साथ-साथ भाषा के साथ धर्म को जोड़ने की मनोवृत्ति पर भी एक प्रश्न चिह्न लगा दिया। हालाँकि प्रेमचंद की दक्खिनी हिंदी में रचित यह रचना विरल है, किंतु इसका उल्लेख करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

कुल मिलाकर भारतीय भाषाओं में दक्खिनी हिंदी का इतिहास एवं इस भाषा से जुड़े साहित्य एवं साहित्यकारों की अतुलनीय देन ही इस भाषा की नींव है। सुदूर उत्तर से जिस भाषा ने दक्षिण में आकर अपना एक अलग वर्चस्व बनाया है, उस भाषा का संरक्षण आवश्यक है। हिंदी, दक्खिनी हिंदी और उर्दू भाषा के अपने क्षेत्र हैं, अपनी गरिमा और गुण हैं। ये

समस्त भाषाएँ विराट भारतवर्ष की सामासिक एवं साझी धरोहर हैं। निश्चित रूप से दक्खिनी हिंदी, हिंदी से पृथक कोई भाषा नहीं है बल्कि यह विशाल हिंदी परिवार की ही एक आवश्यक एवं अनिवार्य अंग है। यद्यपि इसका साहित्य समय के साथ उर्दू एवं फारसी से पर्याप्त प्रभावित हुआ है किंतु इसकी आत्मा हिंदी और भारतीय ही है। इसीलिए हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में इस भाषा का विश्लेषण एवं इसके साहित्यकारों की साहित्यिक कृतियों का विवेचन आवश्यक हो जाता है। आज जब विभिन्न प्रकार के विमर्शों का युग है, जब हाशिए पर डाले गए समाज अपनी अभिव्यक्ति, अपनी भाव-भंगिमा एवं अपनी भाषा में कर रहे हैं, तब ऐसे में महान हिंदी भाषा के इस दक्षिण भारतीय स्वरूप का पठन-पाठन अत्यंत आवश्यक एवं समयानुकूल है, जिससे विभिन्न प्रकार की भाषिक असमानताओं और वैमनस्य को सर्वदा के लिए समाप्त किया जा सके। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. सक्सेना, बाबूराम : दक्खिनी हिंदी, 1952 ई., हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, (भूमिका से)
2. पूर्ववत, पृष्ठ सं. 22
3. पूर्ववत, पृष्ठ सं. 37
4. पूर्ववत, पृष्ठ सं. 38
5. पूर्ववत, पृष्ठ सं. 85
6. पूर्ववत, पृष्ठ सं. 85-86
7. पूर्ववत, पृष्ठ सं. 91
8. वर्मा, धीरेंद्र, (मुख्य संपादक) : हिंदी साहित्य कोश, द्वितीय खंड, 1959 ई., भारतीय हिंदी परिषद, प्रयाग, पृष्ठ सं. 582-83
9. पूर्ववत, पृष्ठ सं. 584
10. पूर्ववत, पृष्ठ सं. 585
11. सक्सेना, बाबूराम : दक्खिनी हिंदी, 1952 ई., हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, पृष्ठ सं. 95
12. पूर्ववत, पृष्ठ सं. 103
13. वर्मा, धीरेंद्र, (मुख्य संपादक) : हिंदी साहित्य कोश, द्वितीय खंड, 1959 ई., भारतीय हिंदी परिषद, प्रयाग, पृष्ठ सं. 588

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

पिछड़े बालकों के शैक्षिक उपलब्धि में बुद्धि तथा रुचि का अवदान

खुशबू साव

स्टेट एडेड कॉलेज टीचर
आचार्य जगदीश चंद्र बोस कॉलेज
कोलकाता-700020 (पश्चिम बंगाल)
8777426454
khushbushaw9999@gmail.com

शोध-सार :

शिक्षा के क्षेत्र में बुद्धि तथा रुचि का विशेष स्थान है। शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े बालकों की बुद्धि लब्धि सामान्य बच्चों के अपेक्षाकृत कम होती है। ऐसे बालकों के बुद्धि लब्धि एवं रुचि का परीक्षण कर उनके शैक्षणिक उपलब्धि में सकारात्मक गति प्रदान करने हेतु प्रोत्साहन एवं परिमार्जित प्रबंधन आवश्यक है। ऐसे बालकों के विकास में विशिष्ट शिक्षण, विशिष्ट शिक्षक, उपचारात्मक शिक्षण एवं अभिभावकों के सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार आदि विशेष महत्व होता है ।

बीज शब्द :

पिछड़ा बालक, बुद्धि, रुचि, शैक्षिक उपलब्धि।

मूल आलेख :

शिक्षा मानव जाति तथा सभ्यता के विकास की अमूल्य धरोहर मानी जाती है। सभ्यता-संस्कृति के इतिहास में सामाजिक विकास एवं उत्थान का एकमात्र माध्यम 'शिक्षा' को माना गया है। वैदिक काल से लेकर बौद्धिक काल तक मानव के बौद्धिक क्षमता में परिवर्तन का केंद्र परिवार तथा शैक्षणिक संस्थान रहे हैं। आरंभ में आश्रम या वृक्ष तले शिक्षार्जन की प्रक्रिया से गुजरते हुए अत्याधुनिक युग में शिक्षा विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय एवं ऑनलाइन में रूपांतरित हो गई है। ऐसे में शैक्षिक योग्यता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से भारतीय संविधान की धारा 45 के अनुसार देश के सभी बालकों के लिए प्राथमिक शिक्षा नि:शुल्क एवं अनिवार्य की गई, लेकिन सरकारी मुहिम के बावजू यह सर्वविदित है कि विद्यालयी कक्षा-कक्ष में सामान्य एवं बुद्धि लब्ध बालकों के साथ-साथ पिछड़े बालकों का होना सर्वनिष्ठ है। वस्तुत: शैक्षिक उपलब्धि में बुद्धि का विशेष स्थान होता है। लेकिन यह भी सर्वस्वीकृत है कि शिक्षार्जन की प्रक्रिया में केवल बुद्धिलब्धता ही नहीं, वरन रुचि का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। इस आधार पर बुद्धि तथा रुचि का संतुलित सामंजस्य सामान्य से लेकर पिछड़े बालकों की शैक्षिक उपलब्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करती है।

सामान्यत: बालकों के पिछड़े होने के कई कारण हो सकते हैं, जिनमें शारीरिक, मानसिक कारणों के साथ-साथ वातावरण के अंतर्गत पारिवारिक, विद्यालयी एवं अन्य कारण आदि सम्मिलित हैं। समग्रित रूप में सामान्य तथा विशिष्ट बालकों की अपेक्षा पिछड़ा बालक वही है, जिसकी शैक्षिक योग्यता कम होती है। शौनल ने पिछड़े बालक को परिभाषित करते हुए लिखा है- *''पिछड़ा*

हुआ विद्यार्थी वह है, जो अपनी आयु के अन्य विद्यार्थियों की तुलना में उल्लेखनीय शैक्षणिक कमजोरी का प्रदर्शन करता है।'' [1] शौनल का यह विचार पिछड़े बालकों की स्थिति को प्रदर्शित करता है। वर्तमान शोध से यह भी प्रमाणित हो चुका है कि प्रतिभाशाली व बुद्धिसंपन्न बालक भी मनोवैज्ञानिक एवं वातावरण जैसे अन्य कारणों से पिछड़े बालक कहे जा सकते हैं। इसी संदर्भ में एस.के. मंगल का कथन महत्वपूर्ण है – *''वस्तुत: कोई भी बालक, जो उस गति से प्रगति नहीं करता, जितनी की उसकी विशेष योग्यता के अनुसार होनी चाहिए, पिछड़ा हुआ कहा जा सकता है। प्रतिभाशाली बच्चे में असाधारण योग्यता होती है, इसलिए उससे बहुत आशा की जाती है और वह उन आशाओं को पूर्ण नहीं करता तो उसे पिछड़ा हुआ समझा जाना चाहिए। दूसरी ओर यदि कोई मंद बुद्धि बालक किसी सामान्य अथवा अति सामान्य बालक के बराबर प्रगति नहीं कर पाता तो उसे तब तक पिछड़ा हुआ नहीं कहा जा सकता, जब तक कि उसकी उपलब्धि की मात्रा उससे कम न हो जितनी की वह अपनी योग्यता के आधार पर प्राप्त कर सकता है।''* [2] पिछड़े बालकों की शैक्षिक उपलब्धि में एस.के. मंगल का यह कथन सार्थक है, क्योंकि बालकों की शैक्षिक उपलब्धि में ह्रास होना ही पिछड़ापन है।

मूलत: शैक्षिक रूप से पिछड़े बालकों की बुद्धि लब्धि (आईक्यू) 76 से 89 मानी गई है। विविध शोध के आधार विद्यालयी शिक्षण में ऐसे विद्यार्थियों की संख्या सामान्यत: 15 प्रतिशत तक होती है। इस श्रेणी के बुद्धि लब्धता वाले बच्चे शैक्षिक उपलब्धि में सामान्य से भी निम्नतर प्रदर्शन करते हैं। असल में इस प्रकार के बच्चे विविध शैक्षिक गतिविधियों में सामंजस्य स्थापित करने तथा सामान्य विद्यार्थियों के समतुल्य कार्य प्रदर्शन करने में दक्ष नहीं होते। साथ ही इन विद्यार्थियों के विषयगत रुचि के प्रति अभिभावक से लेकर शिक्षक तथा शिक्षा-व्यवस्था उदासीन दृष्टिगत होते हैं, जबकि इन बच्चों को सामान्य बच्चों की अपेक्षा अधिक परीक्षण-निरीक्षण तथा मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। दरअसल, शिक्षा बालक के संपूर्ण प्रगति में अहम भूमिका निभाती है और शिक्षार्थी को सही दिशा में अग्रसर कर जीवन जीने के कौशल में पारंगत करती है। विद्यालयी शिक्षा द्वारा कक्षा में उपस्थित हर स्तर के शिक्षार्थियों को शिक्षित करने के उद्देश्य से उन्हें समाज के आधारभूत नियमों, व्यवस्थाओं, परम्पराओं, शृंखलाओं, सामाजिक प्रतिमानों, मूल्यों तथा संस्कारों से अभिहित कराया जाता है, जिससे कक्षा के समस्त शिक्षार्थियों का चतुर्दिक विकास संपन्न हो सके। इस आधार पर कम बुद्धि लब्ध बालकों के शिक्षा प्राप्ति में ज्ञान, बुद्धि, रुचि, क्षमता एवं गुण को परिमार्जित कर मानव संसाधन की शृंखला में उन्हें उत्पादक जनशक्ति में पूर्णत: शामिल करना है।

बालकों के मानसिक एवं दैहिक संरचनाओं को नियंत्रण में रखकर उचित दिशा में कार्य करने के लिए प्रेरित करने की क्रिया बुद्धि कहलाती है । बालक की शैक्षिक योग्यता ही उन्हें जन-समाज के मध्य विशिष्ट या मंद बुद्धि सिद्ध करती है। मंद बुद्धि बालकों में बौद्धिक अक्षमता के कारण शैक्षिक कार्यों की प्रगति बाधित होती है। असल में बुद्धि ही सभी कार्यों की योग्यता को प्रदर्शित करने की क्षमता रखती है। इन कार्यों में मुख्यत: शैक्षणिक कार्य की परिणति से लेकर किसी विशेष कार्य का प्रबंधन, गंभीर विषयों को समझना तथा निर्णय लेना, नित्य कार्यों को समयानुसार समाप्त करने की योजना आदि कार्य बुद्धि द्वारा ही संपन्न किए जाते हैं। वेश्लर ने बुद्धि के संबंध में कहा है – *''व्यक्ति द्वारा उद्देश्यपूर्ण कार्य करने, तर्कयुक्त चिंतन करने तथा वातावरण के साथ प्रभावी ढंग से निबटने की सार्वभौम क्षमता को बुद्धि कहते हैं।''* [3] अत: स्पष्ट है कि बुद्धि से ही शिक्षार्थियों के शैक्षणिक विकास के मानदंड तय किए जाते हैं। बुद्धि लब्धि प्रत्येक बालक के मानसिक विकास तथा जैविक उम्र के अनुरूप होती है। फ्रांसीसी सरकार ने बौद्धिक रूप से पिछड़े बालकों के शिक्षागत स्तर के परीक्षण के लिए स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी के मनोवैज्ञानिक अल्फ्रेड बीने के नेतृत्व में 19वीं सदी के अंत में एक आयोग का गठन किया। इस आयोग का मुख्य कार्य ऐसे बच्चों के शैक्षणिक विकास के लिए उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था करना रहा। इस कार्य की परिणति के लिए सर्वप्रथम अल्फ्रेड बीने ने 1895ई. में बुद्धि परीक्षण कार्य की शुरुआत करते हुए कालांतर में अपने सहयोगी साइमन के साथ मिलकर

'बिने–साइमन मानदंड' का विकास किया। इस मानदंडों के आधार पर पिछड़े बालकों की बुद्धि लब्धता का एक अनुमानित आकलन संभव हो पाया है।

औपचारिक शिक्षा–व्यवस्था में पिछड़े बालकों के मानसिक, बौद्धिक, शारीरिक, दैनिक कार्यों तथा व्यवहार में सीमित विकास होता है। इन बालकों में बौद्धिक उपलब्धि, रुचि तथा सीखने की शैली के अनुसार ही शैक्षणिक उन्नति होती है। तदनुसार, पिछड़े बालकों की शिक्षा प्रक्रिया उनकी बुद्धि लब्धता के अनुरूप होनी चाहिए, क्योंकि इन बालकों में ध्यान की कमी के कारण किसी भी विषय पर लंबी अवधि तक एकाग्रचित्त बने रहना कठिन होता है। इन बच्चों में बौद्धिक अक्षमता के कारण सोचने–समझने, वस्तुओं के बीच अंतर्संबंध, विभेद, तर्क क्षमता, विश्लेषण की सूक्ष्मता, शब्द–भंडार की कमी एवं सांख्यिक अक्षमता आदि समस्याएँ देखी जाती हैं। शैक्षिक रूप से पिछड़े बालकों की इन समस्याओं के निदान में शिक्षक, परिवार तथा परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पिछड़े बालकों की शैक्षिक उन्नति में शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका के संबंध में के.सी. पांडा का कथन सार्थक है– *''Backward learners are to be motivated. It can be done through a sense of satisfaction through a sense of accomplishment. He can learn if the situation gives him security and confidence. Good teacher pupil relationship is vital at all time.''* [4] इस प्रकार पिछड़े बालकों की शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाने के लिए प्रेरणा तथा आत्मविश्वास को सकारात्मक ढंग से बढ़ाया जाना चाहिए, जिससे सामान्य बालकों की तरह वे भी शैक्षणिक गतिविधियों में प्रवीण हो सकें।

सभी पिछड़े बालक बौद्धिक रूप से कमजोर नहीं होते। बुद्धि के साथ–साथ मानवीय संवेग भी बच्चों के पठन–पाठन एवं रुचि को प्रभावित करते हैं। संवेगात्मक रूप से असंतुलित एवं कमजोर बच्चे शैक्षिक गतिविधियों में अपनी बुद्धिगत स्तर पर सक्रिय रूप से सम्मिलित नहीं हो पाते हैं। ऐसे बच्चों की बुद्धि लब्धि परीक्षण के साथ–साथ संवेगात्मक संतुलन के लिए मनोचिकित्सक के परामर्श या सहायता अपेक्षित होती है। वस्तुतः कक्षा शिक्षण के दौरान ऐसे बच्चों को विशेष मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है, किंतु सामान्य कक्षा शिक्षण में मंद बुद्धि वाले बच्चे अपेक्षाकृत बेहतर प्रदर्शन न कर पाने के कारण शिक्षकों द्वारा नकारात्मक संबलन प्राप्त करते हैं। ऐसे में इन बालकों के शारीरिक आयु के अनुरूप उनका मानसिक व बौद्धिक विकास बाधित होता है।

बुद्धि के साथ–साथ रुचि भी पिछड़े बालकों की शैक्षणिक योग्यता के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करती है। रुचि बालकों में सीखने–सिखाने का महत्वपूर्ण घटक है। शिक्षण के क्षेत्र में बालकों की रुचि भिन्न–भिन्न हो सकती है। सामान्यतः कुछ रुचियाँ जन्मजात होती हैं तो कुछ परिवेश द्वारा अर्जित की जाती हैं। जिस विषय में बालकों की रुचि जितनी अधिक होती है, उसे सीखने तथा समझने में आसानी होती है। रुचि द्वारा ही व्यक्ति विशेष के हृदय और मस्तिष्क में उत्पन्न किसी भी वस्तु या कार्य के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है। रुचि के संबंध में क्रो एंड क्रो का कथन उपयुक्त है– *''रुचि वह अभिप्रेरक शक्ति है, जो हमें किसी व्यक्ति, वस्तु या क्रिया की ओर ध्यान देने के लिए बाध्य करती है अथवा यह एक प्रभावात्मक अनुभूति है, जो स्वयं क्रिया द्वारा अभिप्रेरित होती है। दूसरे शब्दों में रुचि किसी क्रिया का कारण भी हो सकती है और उस क्रिया में भाग लेने का परिणाम भी।''*[5] इस प्रकार रुचि वह मानसिक शक्ति है, जिसका ध्यान से विशेष संबंध है। पिछड़े बालकों में शैक्षिक क्रियाओं में रुचि की कमी के कारण उनका ध्यान पाठ्य–वस्तु के प्रति कम आकृष्ट हो पाता है। इससे कक्षा में अनुशासनहीनता की समस्या उत्पन्न होती है और उनकी शैक्षिक उपलब्धियाँ बाधित होती हैं। शिक्षागत स्तर पर पिछड़े बालकों की रुचि जागृत करने का एकमात्र लक्ष्य विद्यालयी कार्य और पाठ्यक्रम के प्रति अभिप्रेरित करना है, जिससे पिछड़े बालकों के सीखने और ग्रहण करने की क्षमता में वृद्धि हो सके।

रुचि मानव व्यवहार का अभिन्न हिस्सा है। इसी आधार पर इसे पृथक मनोवैज्ञानिक इकाई नहीं स्वीकारा जा सकता है। रुचि बालकों की शैक्षिक सफलता व असफलता में महत्वपूर्ण कारक है। अतएव, रुचि और बुद्धि भी परस्पर पृथक नहीं हैं। इस दृष्टिकोण से बुद्धि

और रुचि का समागम पिछड़े बालक की शैक्षिक योग्यता के प्रदर्शन में अपरिहार्य पक्ष है। वस्तुत: कक्षा शिक्षण के अंतर्गत पिछड़े बालकों की शैक्षिक रुचि पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। साथ ही ऐसे बच्चों के रुचि वृद्धि के लिए कक्षा शिक्षण में किसी विशेष गतिविधि व प्रक्रिया के क्रियान्वयन पर विशेष बल नहीं दिया जाता है, जबकि कक्षा में रुचि को प्रभावित करने वाले कारकों की एक अहम भूमिका होती है । इस संदर्भ में जे.सी. अग्रवाल का मंतव्य है-*''It may be remembered that interest of the learners is affected by their physical condition and the physical classroom environment. Bodily health, illness, malnutrition etc. all affect the maintenance of interest of the learners. Classroom seating arrangement, light and ventilation etc. are the other physical aspects determining interest."* 6 अत: शैक्षिक परिवेश एवं बालकों की शारीरिक अवस्था में सामंजस्य न होने के कारण इन बच्चों की अपेक्षित शैक्षिक उपलब्धि अन्य बालकों के अनुपात में कमतर नजर आती है। विविध शोध से यह भी स्पष्ट है कि पिछड़े बालकों की रुचि में शीघ्र गति से परिवर्तन घटित होता है, जिसके कारण कक्षा शिक्षण में इन बालकों का ध्यान पूर्णत: स्थिर नहीं हो पाता है। ऐसे में पिछड़े बालक कक्षा शिक्षण की सामान्य गति में बाधा उत्पन्न कर शिक्षकों द्वारा दंड के पात्र बनते हैं। इस प्रसंग में एस.बी. कक्कड़ का कथन समीचीन है-*''Slow learners are often seen to cause problems of discipline. The problems of even ordinary assignments discourage them, upon which they stop trying, drift into negative pursuits like being noisy and disruptive in the classroom and consequently attract punishment. We should ensure that such situations do not arise and we should make changes in the learning situation when the child is seen to lose interest.''* [7] बुद्धि और रुचि बालकों के सीखने-सिखाने की क्रिया में एक आवश्यक मानसिक शक्ति है। बुद्धि एवं रुचि के मध्य एक सकारात्मक एवं क्रियात्मक संबंध है। तात्पर्य है कि विषय विशेष में बालकों की रुचि जैसी होगी, उनमें बौद्धिक क्षमता का प्रदर्शन भी वैसा ही होगा। बुद्धि तथा रुचि में सामंजस्य स्थापित कर पिछड़े बालकों की शैक्षिक क्रियाओं को सुदृढ़ किया जा सकता है। इसके लिए पिछड़े बालकों की बुद्धि तथा रुचि का मूल्यांकन होना आवश्यक है, जिससे शैक्षिक क्रियाओं में उनकी प्रगति तथा कमियों का आकलन कर समस्याओं का निदान किया जा सके। प्रसिद्ध शिक्षाविद एस.के. मंगल ने भी इस प्रकार के परीक्षण को आवश्यक माना है-*''For the assessment of the various disabilities and subnormalaties in the academic and learning skills, we may make use of the standardized tests available in India and abroad.''* [8] अत: विविध भारतीय एवं पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि एवं रुचि से संबंधित अनेक प्रकार के परीक्षण किए हैं। इन परीक्षणों में बुद्धि के लिए 'व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण' एवं 'सामूहिक बुद्धि परीक्षण' पर विशेष बल दिया गया है। ऐसे बच्चों का व्यक्तिगत एवं सामूहिक परीक्षण कर उनके शैक्षिक योग्यता का विकास किया जा सकता है। 'व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण' शाब्दिक तथा अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण द्वारा पुष्ट होते हैं। शाब्दिक परीक्षण में विशेष रूप से 'बीने-साइमन बुद्धि परीक्षण मानदंड' एवं 'स्टैनफोर्ड-बीने मानदंड' उल्लेखनीय हैं। अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण में 'पिंटर-पेटर्सन क्रियात्मक मानदंड', 'अलेक्जेंडर बुद्धि परीक्षण जाँच माला' प्रचलित हैं। इसी प्रकार 'सामूहिक बुद्धि परीक्षण' भी शाब्दिक परीक्षण एवं अशाब्दिक परीक्षण में विभाजित किया गया है। शाब्दिक परीक्षण में 'आर्मी अल्फा परीक्षण' एवं 'डॉ. सिंह की बुद्धि जाँच' तथा अशाब्दिक परीक्षण के अंतर्गत 'आर्मी बीटा परीक्षण' आदि के प्रयोग द्वारा बुद्धि का परिणाम प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार रुचि संबंधी भी विभिन्न परीक्षणों का विकास हुआ है, जिससे बच्चों की रुचि के संबंध में विश्लेषण संभव हो पाया है। शिक्षा के संबंध में जिन परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है, उनमें 'कुडर्स प्रेफरेंस रिकॉर्ड', 'स्टुअर्ड एंड ब्रेनर्ड स्पेसिफिक इंटरेस्ट इंवेन्टरिस', 'क्लीटन वोकेशनल इंटरेस्ट इंवेंटरी' जैसे परीक्षण विशेष रूप से प्रचलित हैं।

उपरोक्त परीक्षण पिछड़े बालकों के शैक्षिक स्तर में सुधारात्मक कार्यों के लिए विशेष प्रयोजनीय है। इस प्रकार के आकलन द्वारा बच्चों के शैक्षिक पिछड़ेपन का पता लगाया जा सकता है। इन बालकों का सटीक एवं सतत मूल्यांकन हर स्तर पर जरूरी है। लेकिन विद्यालयी कार्यक्रम की योजना सामाजिक व शैक्षणिक असफलताओं को केंद्रीकृत कर नहीं बनाया जाना चाहिए। आवश्यकतानुसार इन बालकों के लिए सामान्य विद्यालय में एकीकृत या समावेशी शिक्षा-व्यवस्था स्थापित करने की प्रक्रिया पर बल दिया जाना चाहिए। पिछड़े बालकों की अंतर्मुखी प्रवृत्ति भी सीखने की क्रिया में बाधा पहुँचाती है। अत: पिछड़े बालकों में सीखने की शैली के विकास के लिए शैक्षिक वातावरण को उनके अनुकूल बनाकर बहिर्मुखी बनने के लिए अग्रसर करना चाहिए। इतना ही नहीं, यदि पिछड़े बालक बौद्धिक अक्षमता के कारण सामान्य विद्यालयों में पठन-पाठन में असमर्थ हों तो उनके लिए विशिष्ट विद्यालय की स्थापना अति आवश्यक है, जिससे उन्हें विशिष्ट रूप से शिक्षित किया जा सकता है। साथ ही साथ पिछड़े बालकों की बुद्धि के अनुसार ही उनके शिक्षण संस्थानों की रूपरेखा गठित कर उनकी कमियों को दूर करने का यह एक महत्वपूर्ण कदम होगा। प्रोफेसर उदय शंकर के अनुसार – *''यदि पिछड़े बालकों को सामान्य बालकों के साथ शिक्षा दी जाएगी तो वे पिछड़ जाएँगे और फलस्वरूप वे अपने स्वयं के स्तर के बालकों से और अधिक पिछड़े हुए हो जाएँगे। विशिष्ट विद्यालयों में उनको अपनी कमियों का कम ज्ञान होगा और वे अपने समान बालकों के समूह में अधिक सुरक्षा का अनुभव करेंगे। इन विद्यालयों में उनके लिए प्रतिद्वंद्विता कम होगी और प्रोत्साहन अधिक।''*[9] पिछड़े बालकों की बुद्धि तथा रुचि के उचित अनुपात के साथ विशिष्ट शिक्षकों की नियुक्ति की जानी चाहिए, जो बच्चों को उनके व्यक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश के अनुकूल शिक्षा देने के लिए तत्पर हों। शिक्षकों के मिलनसार व्यवहार, धैर्य, सकारात्मक संबलन, सहज शिक्षण कौशल के साथ-साथ पारिवारिक स्नेह, सुरक्षा एवं संवेगात्मक संबलन आदि भी आवश्यक है। परिवार के मनोबल तथा शिक्षकों का साहचर्य पिछड़े बालकों की बुद्धि तथा रुचि को शिक्षा की दिशा में अभिप्रेरित करता है। अंतत: कहा जा सकता है कि पिछड़े बालकों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रोत्साहित कर उन्हें स्वतंत्र, स्वावलंबी तथा योग्य बनाया जा सकता है, जिससे वे सामाजिक दायित्वों का निर्वहन कर पाने में सक्षम हो पाएँगे। ❑

संदर्भ सूची :

1. मंगल, एस. के., शिक्षा मनोविज्ञान, पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृ. 517.
2. वही, पृ. 518.
3. मिश्र, ब्रज कुमार, मनोविज्ञान मानव व्यवहार का अध्ययन, पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ. 683.
4. Panda. K.C. (2007). àßducation of àßxceptional Children, Reprinted 2007, New Delhi : Vikash Publishing House, p.238.
5. मंगल, एस. के., शिक्षा मनोविज्ञान, पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृ. 420.
6. Aggarwal. J.C. (2004), Essentials of Educational Psychology, Reprinted 2004, New Delhi : Vikash Publishing House, p.290.
7. kakkar S.B. (2012), Educational Psychology, Reprinted 2012, ISBN : 978-81-203-0810-7, New Delhi, PHI Learning Private Limited, p.176-177.
8. S.K. Mangal. (2012), Educating Exceptional Children An Introduction to Special Educational, Reprinted 2012, ISBN : 978-81-203-3284-3, New Delhi, PHI Learning Private Limited, p.443.
9. https://www.onlyiwin.com/2021/05/backward-child.html?m=1

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945
Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

माधवदेव की रचनाओं में कृष्ण : भक्ति, बाल्य और ब्रह्म का समन्वय

मनिका राभा
शोधार्थी, हिंदी विभाग
रवींद्रनाथ ठाकुर विश्वविद्यालय
होजाई, असम - 782436
8638041980, 8638363792
manikarabha598@gmail.com

डॉ. मनोज कुमार स्वामी
शोध निर्देशक, हिंदी विभाग
रवींद्रनाथ ठाकुर विश्वविद्यालय
होजाई, असम - 782436
8812888700
imanojkswami@gmail.com

शोध सारांश :

माधवदेव की रचनाएँ असमिया भक्ति साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं, जिनमें श्रीकृष्ण का चरित्र केवल धार्मिक आख्यान नहीं, अपितु भक्ति दर्शन का जीवंत रूप बनकर प्रकट होता है। यह शोध आलेख माधवदेव की नामघोषा, भक्ति रत्नावली, राजसूय काव्य, अर्जुन भंजन तथा झुमुरा गीतों में कृष्ण के विविध रूपों-बालक, धर्मसंरक्षक, ब्रह्मस्वरूप और भक्त-प्रेमी का विश्लेषण करता है। शोध की आवश्यकता इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि असमिया साहित्य में शिशु कृष्ण के मानवीय स्वरूप का चित्रण माधवदेव से पूर्व प्राय: अनुपस्थित था। उन्होंने पहली बार कृष्ण को एक चपल, भाव-संवेदनशील बालक के रूप में प्रस्तुत किया, जो लोक जीवन के निकट है और भक्त के हृदय में सहजता से प्रतिष्ठित होता है। यह प्रस्तुति असमिया भक्ति परंपरा को एक नया आयाम प्रदान करती है। शोध प्रविधि के अंतर्गत ग्रंथों का पाठविश्लेषण, भावात्मक व्याख्या, तुलनात्मक दृष्टिकोण (विशेषत: माधवदेव और सूरदास के संदर्भ में) तथा सांस्कृतिक-सामाजिक प्रभाव का विवेचन किया गया है। शोध में माधवदेव की भाषा, प्रतीक योजना, और भक्ति-दृष्टि को केंद्र में रखकर कृष्ण-चरित्र की बहुआयामी प्रस्तुति को समझने का प्रयास किया गया है। इस शोध से स्पष्ट होता है कि माधवदेव की रचनाओं में कृष्ण-चरित्र भारतीय भक्ति साहित्य की एक ऐसी अनमोल धरोहर है, जिसमें आस्था, प्रेम, अध्यात्म और लोक जीवन का अद्भुत समन्वय मिलता है।

बीज शब्द :

माधवदेव, कृष्ण-चरित्र, नामघोषा, भक्ति रत्नावली, झुमुरा, असमिया भक्ति साहित्य, शिशु कृष्ण, भक्ति-दर्शन, लोक जीवन।

मूल आलेख :

असम के नव-वैष्णव संप्रदाय का समग्र साहित्य भगवान विष्णु तथा उनके अवतार यदुपति श्रीकृष्ण को केंद्र में रखकर विकसित हुआ है। इस परंपरा के संतों-विशेषत: श्रीमंत शंकरदेव और श्रीमंत माधवदेव की रचनाओं में श्रीकृष्ण की लीला, महिमा और ब्रह्मत्व का भावपूर्ण चित्रण मिलता है। गीत, नाटक, काव्य और धार्मिक आख्यानों में भगवान विष्णु की विविध लीलाओं को न केवल आध्यात्मिक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है, अपितु उन्हें लोक जीवन से जोड़कर भी देखा गया है। माधवदेव की समग्र रचनाधर्मिता में कृष्ण-चरित्र

आकर्षण का मूल केंद्र है। उनके काव्य में श्रीकृष्ण केवल शास्त्रों में प्रतिष्ठित परम ब्रह्म नहीं हैं, बल्कि एक दिव्य, प्रकाशमान और संवेदनशील व्यक्तित्व के रूप में भी उभरते हैं, जो भक्त के अंत:करण से जन्मा है और कवि की कलम से आकार ग्रहण करता है। यह कृष्ण मनुष्यों के बीच स्थित ईश्वर का सजीव, सुलभ और आत्मीय रूप है। कभी वह एक सहज, चपल बालक के रूप में प्रकट होते हैं तो कभी वह ब्रह्मस्वरूप हैं, जिसकी कल्पना तक योगीगण ध्यान में भी नहीं कर पाते। माधवदेव के अनुसार यह ब्रह्म अगम्य है, जिसकी पूर्ण अनुभूति सामान्य चेतना से परे है। फिर भी, भक्त के प्रेम और श्रद्धा में वह साकार हो उठते हैं। माधवदेव की रचनाओं में श्रीकृष्ण के चरित्र की विविध विशेषताओं और बहुआयामी अभिव्यरिक्तयों पर विचार करना एक सुसंस्कृत और भावनात्मक अनुभव है। उनके साहित्य में कृष्ण दो प्रमुख रूपों में प्रकट होते हैं – एक ओर नामघोषा के माध्यम से प्रस्फुटित शाश्वत, निरंजन, ब्रह्मस्वरूप भगवान; दूसरी ओर गीत–झुमुरा में उदित शाश्वत ईश्वर का सहज, बाल रूप। माधवदेव की अन्य रचनाओं राजसूय काव्य, नाम मल्लिका तथा आदिकांड रामायण में भी भगवान विष्णु के स्वरूप का विशिष्ट चित्रण मिलता है। इन ग्रंथों में कृष्ण केवल एक धार्मिक प्रतीक नहीं, बल्कि एक जीवंत, बहुरूपी सत्ता के रूप में उपस्थित हैं, जो भक्त के भाव, लोक संस्कृति और दार्शनिक चिंतन से जुड़कर साकार होते हैं। भक्ति ग्रंथ नामघोषा की प्रथम पंक्ति में ही माधवदेव यदुपति श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहते हैं, 'निज भकतरो वैश्य' अर्थाथ कृष्ण अपने भक्तों के अधीन हैं। यह भाव भक्ति परंपरा की उस गूढ़ अनुभूति को दर्शाता है, जिसमें ईश्वर स्वयं भक्त के प्रेम में बँध जाते हैं।

श्रीकृष्ण यदुवंशी नायक के रूप में अनेक नामों से पूजित होते हैं, किंतु माधवदेव के चिंतन में उनका मूल स्वरूप वासुदेव और निराकार ब्रह्म का है। वे अनंत हैं, परमानंदमयी हैं और सर्वसाक्षी परमात्मा हैं, जो मन और बुद्धि के प्रत्येक भाव के द्रष्टा हैं। माधवदेव के दर्शन में यह ब्रह्म ही परम सत्ता है, जो प्रकृति और पुरुष दोनों में व्याप्त है। वे कहते हैं :–

''प्रकृति पुरुष दुईत करि पर
दुई हानो निज कारण''[1]

अर्थात्–प्रकृति और पुरुष दो भिन्न रूप हैं, किंतु उनकी आत्मा एक ही है। यह अद्वैत भाव माधवदेव की रचनाओं में बारंबार प्रकट होता है, जहाँ कृष्ण न केवल लीला पुरुष हैं, बल्कि ब्रह्म के उस रूप में भी प्रतिष्ठित हैं, जो भक्त के हृदय में निवास करता है।

माधवदेव की नामघोषा में श्रीकृष्ण को ज्ञान और अज्ञान के नियंत्रक के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। वे भौतिक जगत में एकमात्र चेतन शक्ति हैं, साथ ही अखंड, शुद्ध और दिव्य ज्ञान के मूर्तिमान स्वरूप भी। उनके चरणों की शरण ग्रहण करने से मोक्ष की प्राप्ति संभव है, यह माधवदेव की भक्ति परंपरा का मूल विश्वास है। श्रीकृष्ण केवल परम पुरुष या भगवान नहीं हैं, अपितु वे सृष्टि के रचयिता, काल, माया और समस्त ब्रह्मांडीय शक्तियों के अधिपति हैं। भक्तों के साथ उनका संबंध केवल दैवीय नहीं, बल्कि आत्मीय और सजीव है। वे भक्तों के मित्र हैं, सहृदय हैं, और इष्टगुरु के रूप में मार्गदर्शक भी। माधवदेव उन्हें 'प्रिय आत्मा परम देवता' कहते हैं – एक ऐसा ईश्वर जो दयालु है, भक्तवत्सल है और सौंदर्य तथा शांति के गुणों से परिपूर्ण है। माधवदेव की भगवान कृष्ण के प्रति यह गहन भक्ति ही नामघोषा की आत्मा और सौंदर्य का सार है। यह भक्ति केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि दार्शनिक और आध्यात्मिक गहराई से संपन्न है। उनकी दूसरी महत्वपूर्ण रचना भक्ति रत्नावली में भक्ति तत्व की गंभीर व्याख्या मिलती है। इसमें श्रीकृष्ण के भौतिक स्वरूप के साथ–साथ मानसिक समृद्धि और सौंदर्य का भी विशद वर्णन किया गया है। माधवदेव के अनुसार भगवान के दिव्य शरीर की सुंदरता का कोई पार नहीं है। जो भी भक्त उस सौंदर्य में लीन होता है, वह परम आनंद की अनुभूति करता है। इस भावनात्मक सौंदर्य का हृदयस्पर्शी चित्रण माधवदेव ने निम्न पंक्तियों में किया है :–

''परम सुन्दर महा मोनोहर
कृष्णर अंग यतेक
मन इन्द्रियर वृत्ति निरंतर
हरय देखि प्रत्येक।''[2]

इन पंक्तियों में माधवदेव ने कृष्ण के अंग–प्रत्यंग की दिव्यता को इस प्रकार चित्रित किया है कि मन और

इंद्रियाँ निरंतर उनकी ओर आकर्षित होती हैं और प्रत्येक जीव उनका दर्शन कर परम तृप्ति का अनुभव करता है।

ईश्वर की उपासना से भक्त के अंत:करण में निर्मल आनंद का सहज प्रवाह आरंभ होता है। माधवदेव के अनुसार जब भक्त श्रद्धा से भगवान के चरणों में समर्पित होता है, तब ईश्वर की कृपा दृष्टि उस पर प्रस्फुटित होती है। ऐसे भक्त को वे परम भाग्यशाली मानते हैं, जो न केवल सांसारिक बंधनों से मुक्त होता है, अपितु आध्यात्मिक शांति और मोक्ष की ओर अग्रसर होता है। माधवदेव की भक्ति-दृष्टि में आध्यात्मिकता केवल ज्ञान या जातिगत श्रेष्ठता से नहीं, बल्कि एकांत, निष्कलंक और भावपूर्ण भक्ति से प्राप्त होती है। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के लिए न तो ऊँची जाति की आवश्यकता है, न ही शास्त्रों के गूढ़ ज्ञान की। ईश्वर केवल भक्ति भाव से प्रसन्न होते हैं। इस भाव को वे भक्ति रत्नावली में निम्न पंक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं :-

''जाति कुलाचार धर्मज्ञान कृष्ण देवतार
नुहि अनुग्रहर कारण
किन्तु भक्ति भावे अति भजोक अजाति जाति
ताते से संतुष्ट नारायण।''[3]

इन पंक्तियों में माधवदेव ने भक्ति की सार्वभौमिकता को रेखांकित किया है। वे कहते हैं कि जाति, कुल, आचार, धर्म या ज्ञान—इनमें से कोई भी ईश्वर की कृपा का कारण नहीं है। केवल भक्ति भाव ही वह माध्यम है, जिससे नारायण संतुष्ट होते हैं। यह विचार नव-वैष्णव परंपरा की समावेशी और लोक मंगलकारी दृष्टि को दर्शाता है। इस प्रकार भक्ति रत्नावली माधवदेव की आध्यात्मिक अनुभूति, भक्ति के सार्वजनीन स्वरूप और भगवान कृष्ण की महानता को विविध उद्धरणों और भावपूर्ण चित्रणों के माध्यम से प्रस्तुत करता है। यह ग्रंथ न केवल भक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है, बल्कि सामाजिक समरसता और आध्यात्मिक समर्पण का संदेश भी देता है। माधवदेव की रचनाओं में श्रीकृष्ण सामान्यत: वेदांत के परमब्रह्म तथा एक चतुर, शरारती बालक के रूप में चित्रित होते हैं। किंतु राजसूय काव्य एकमात्र ऐसा ग्रंथ है, जिसमें कृष्ण का एक विशिष्ट, राजनैतिक और शासकीय स्वरूप उद्घाटित होता है। यहाँ वे एक परिपक्व राजकुमार, दूरदर्शी शासक और अनुभवी राजनीतिज्ञ के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। इस ग्रंथ में श्रीकृष्ण एक आदर्श शासक हैं, जो मंत्रिपरिषद के साथ गंभीर विषयों पर विचार-विमर्श करते हैं, अपने संबंधियों और सेवकों के प्रति प्रेमपूर्ण तथा सहृदय व्यवहार रखते हैं और गृहस्थ जीवन के आदर्शों का पालन करते हैं। वे शत्रुओं के लिए संहारक हैं, जबकि सहयोगियों के लिए आनंद और सुरक्षा का स्रोत। माधवदेव ने इस राजसी स्वरूप को अत्यंत भावपूर्ण शब्दों में चित्रित किया है :-

''भूषणरो भूषण सुंदर कलेवर
नरलोक विभूषण प्रभु दामोदर
सियो शरीरोक देव देबकीनंदन
भूषण करान्तो दिब्य अगरु चंदन।''[4]

अर्थात्—श्रीकृष्ण आभूषणों से अलंकृत, सुंदर शरीर वाले, नरलोक के विभूषण हैं। वे देवकीनंदन हैं, जिनका शरीर दिव्य अगरु और चंदन से सुगंधित है। यह चित्रण न केवल सौंदर्य का प्रतीक है, बल्कि उनके ब्रह्मस्वरूप और राजसी गरिमा का भी परिचायक है।

राजसूय काव्य में कृष्ण की शक्ति, महिमा और दूरदर्शिता का कोई पार नहीं है। उनके आदेश से ही दुष्ट राजा जरासंध का अंत हुआ और भक्त राजाओं को मुक्ति प्राप्त हुई। शिशुपाल, जिसने शत्रुता भाव से कृष्ण का विरोध किया, उसी क्षण मुक्ति को प्राप्त हुआ—यह दर्शाता है कि प्रभु की कृपा और न्याय दोनों ही सर्वव्यापी हैं। माधवदेव ने एक स्थान पर श्रीकृष्ण की ब्रह्म सत्ता का वर्णन इस प्रकार किया है :-

''उपाधि रहित ज्योतिरूप आत्मा एक
समष्टके व्यापी आछा आपूनि प्रत्येक
चिरानन्द पूर्ण सत्य नित्यनिरंतर
मोहोर प्रकाशे प्रकाशय चराचर
सृष्टि स्थिति प्रलयरो कारण साक्षात
जीवरों अविद्या गुछे मोहोर सेवात।''[5]

इन पंक्तियों में कृष्ण को उपाधिरहित, ज्योतिस्वरूप, चिरानंदमयी और समस्त चराचर में व्याप्त परमात्मा के रूप में चित्रित किया गया है। वे सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कारण हैं, और उनकी सेवा से जीव की अविद्या का अंत

होता है। माधवदेव की रचनाओं में कृष्ण का यह राजसी और ब्रह्मस्वरूप जितना प्रभावशाली है, उतना ही आकर्षक उनका बाल रूप भी है। गीत और झुमुरा में कृष्ण एक शरारती बालक के रूप में प्रकट होते हैं—हाथ में बाँसुरी, सिर पर मोरपंख और चपलता से भरे हुए। यह बाल स्वरूप माधवदेव की रचनाओं का मुख्य आकर्षण है, जिसमें बाल सुलभ लीलाओं और परमपुरुषत्व का अद्भुत समन्वय मिलता है। शिशु कृष्ण का यह मनमोहक और हृदयग्राही रूप अन्यत्र दुर्लभ है। केवल उत्तर भारत के संत कवि सूरदास की रचनाओं में ही इस बाल रूप की ऐसी ही भावपूर्ण झलक मिलती है। किंतु माधवदेव की प्रस्तुति में यह रूप अधिक आत्मीय, लोकसंगत और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध प्रतीत होता है।

माधवदेव की रचनाओं में बालक श्रीकृष्ण का स्वरूप अत्यंत आत्मीय और लोकसंगत है। वे हमारे भौतिक जगत के उस बालक की तरह प्रतीत होते हैं, जिसे माता-पिता स्नेह, दुलार और वात्सल्य से पोषित करते हैं। यह कृष्ण एक साधारण मानव शिशु के रूप में प्रस्तुत होते हैं, जो बाल्यकाल की चपलता, मासूमियत और शरारत से परिपूर्ण हैं। श्रीकृष्ण अपने व्यवहार में शरारती, वाणी में चतुर, और अवसरानुसार झटपट उत्तर देने वाले बालक हैं। जब वे ग्वालिन के घर से माखन चुराते हुए पकड़े जाते हैं तो अपनी चतुराई से गोपी को ही दोषी ठहराते हैं- कहते हैं, 'तुम्हारे मुँह से ही तो माखन की गंध आ रही है।' यह बाल स्वरूप न केवल हास्य और चपलता से भरपूर है, बल्कि माधवदेव की भक्ति में गहराई से रचा-बसा है। कई बार कान्हा माखन के पात्र के साथ रंगे हाथों पकड़े जाते हैं, जिसका सुंदर और मनोरम वर्णन माधवदेव की झुमुरा रचना 'चोरधरा पिंपरा गुछोवा' में मिलता है :-

''हरि बोल गोपी बड़ दुख पाईलि बाछि
पिंपरा गुचाइते लागि हात दिया आछि।''[6]

इन पंक्तियों में गोपी की पीड़ा और कृष्ण की चपलता का चित्रण अत्यंत सजीव है। कृष्ण की चतुराई के आगे गोपियाँ तर्क में हार जाती हैं। उनसे बहस में विजयी होना असंभव प्रतीत होता है। माँ यशोदा के समक्ष कृष्ण एक नादान, प्यारे बालक के रूप में रहते हैं। उनकी सारी शिकायतें, उलाहनाएँ और संघर्ष अपनी माता से ही होते हैं। कभी वे अपनी धूर्त बातों से माँ को चकमा दे देते हैं तो कभी उनकी चतुराई के सामने भोली यशोदा निरुत्तर हो जाती हैं। यह संबंध केवल वात्सल्य का नहीं, बल्कि माधवदेव की भक्ति भावना का भी प्रतीक है, जहाँ ईश्वर एक बालक के रूप में भक्त के हृदय में खेलता है।

माधवदेव के नाटक और गीत असमिया कृष्ण-कथा परंपरा में एक विशिष्ट और असाधारण वृद्धि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। यह योगदान इसलिए विशेष है, क्योंकि माधवदेव से पूर्व असमिया साहित्य में श्रीकृष्ण का चित्रण प्राय: पुरुष या किशोर रूप तक सीमित रहा था। शिशु कृष्ण के मानवीय स्वरूप, उनकी बालसुलभ चपलता, शरारतें, और भावनात्मक गहराई का समावेश असमिया साहित्य में माधवदेव के आगमन से पहले दुर्लभ था। श्रीमंत शंकरदेव ने कीर्तन, दशम, शिशु लीला खंड, कालियदमन नाटक तथा कुछ बरगीतों में बाल कृष्ण का उल्लेख अवश्य किया है, किंतु वहाँ उनका रूप दिव्य, भक्तवत्सल और अलौकिक है। शंकरदेव की रचनाओं में बाल कृष्ण की शरारतें, ईर्ष्या या धूर्तता जैसे मानवीय भावों का चित्रण नहीं मिलता-बल्कि वे एक आदर्श, भक्त-प्रेमी ईश्वर के रूप में प्रकट होते हैं। इसके विपरीत, माधवदेव ने पहली बार अपने गीतों और झुमुराओं के माध्यम से शिशु कृष्ण के मानवीय गुणों को सजीव रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। उनके कृष्ण न केवल ब्रह्म हैं, बल्कि एक ऐसा बालक भी हैं, जो माता-पिता के स्नेह में पला है, जो गोपियों से माखन चुराता है, और जो अपनी चतुराई से सबको चकित करता है। यह कृष्ण लोक जीवन के निकट हैं-हृदयग्राही, चपल और स्नेहमयी। माधवदेव के गीतों में यह बाल स्वरूप अत्यंत आत्मीयता और आकर्षण से परिपूर्ण है। उनकी रचनाएँ केवल भक्ति नहीं, बल्कि भावनात्मक अनुभूति, सांस्कृतिक आत्मीयता और मानवीय संवेदना का भी अद्वितीय समन्वय प्रस्तुत करती हैं। यही कारण है कि माधवदेव की रचनाएँ असमिया कृष्ण-कथा परंपरा में एक नवीन और सजीव अध्याय जोड़ती हैं।

माधवदेव के 'अर्जुन-भंजन' नाटक में श्रीकृष्ण का चरित्र उनके दिव्य और मानवीय दोनों स्वरूपों को समाहित

करता है, किंतु उनका बाल मनोवैज्ञानिक पक्ष विशेष रूप से आकर्षक और हृदयग्राही है। यहाँ यशोदा माता का लल्ला एक ऐसा बालक है, जो अत्यधिक स्नेह और वात्सल्य में पला-बढ़ा है। उसके पालन-पोषण में इतना अधिक स्नेह समाहित है कि थोड़ी-सी उपेक्षा भी उसे व्यथित कर देती है। बाल मनोविज्ञान के अनुसार, यह व्यवहार पूर्णत: स्वाभाविक है। शिशु को हर क्षण अपने प्रियजनों का ध्यान, स्नेह और स्पर्श चाहिए होता है। नाटक में एक अत्यंत मार्मिक दृश्य आता है, जब शिशु कृष्ण अपनी कामकाजी माँ की गोद में बैठकर स्तनपान कर रहे होते हैं तो वे चाहते हैं कि माँ उन्हें स्नेहपूर्वक दुलारें और धीरे-धीरे दूध पिलाएँ, किंतु यशोदा उस क्षण भूमि पर गिरे दूध को समेटने में व्यस्त थीं। माँ की इस व्यस्तता को शिशु कृष्ण ने उपेक्षा के रूप में अनुभव किया। उनका कोमल मन आहत हो गया और उन्होंने बचपने के विद्रोह में मथनी तोड़ दी तथा घर के सभी दूध के बर्तनों पर पत्थर फेंक दिए। यह दृश्य न केवल बालक कृष्ण की चपलता को दर्शाता है, बल्कि उनके भीतर की भाव-संवेदनशीलता और आत्मीयता को भी उजागर करता है। जब यशोदा वहाँ पहुँचीं और यह दृश्य देखा तो उन्हें तुरंत अपने पुत्र की मन:स्थिति का भान हो गया। यह क्षण माँ और पुत्र के बीच के उस गहरे भावनात्मक संबंध को दर्शाता है, जो माधवदेव की रचनाओं में बारंबार प्रकट होता है।

इस प्रकार अर्जुन-भंजन नाटक में कृष्ण का बाल स्वरूप केवल लीला नहीं, बल्कि एक जीवंत, संवेदनशील और आत्मीय अनुभव बनकर उभरता है, जो दर्शक के हृदय को स्पर्श करता है और भक्ति को भावनात्मक गहराई प्रदान करता है।

जब श्रीकृष्ण ने अपनी माता यशोदा की रुद्र मुद्रा देखी तो वे एक साधारण मानव बालक की भाँति भयभीत होकर भाग खड़े हुए। यह दृश्य कृष्ण के बाल मनोविज्ञान की उस कोमलता को दर्शाता है, जहाँ भय, असहायता और भावनात्मक प्रतिक्रिया सहज रूप से प्रकट होती है। भागते हुए, हताश कृष्ण ने अपने अंतिम अस्त्र के रूप में आँसू बहाए, सहानुभूति अर्जित करने का बालसुलभ प्रयास किया, किंतु माँ यशोदा का हृदय उस क्षण कठोर बना रहा; उन्होंने कृष्ण को अनुशासन देने के उद्देश्य से उन्हें गायों के बाड़े में बाँधने का प्रयास किया। यहीं पर कृष्ण के चरित्र की दिव्यता पुन: प्रकट होती है। यशोदा जितना भी प्रयास करतीं, रस्सी हर बार दो अंगुल छोटी पड़ जाती। यह दृश्य केवल एक शारीरिक असंभवता नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक संकेत था कि ब्रह्म को बाँधना संभव नहीं। तब रोहिणी माता यशोदा को समझाती हैं- *''यह बालक कोई साधारण मानव नहीं है। वे स्वयं नारायण हैं, जिनमें अनंत ब्रह्मांड समाहित है। उन्होंने जगत के उद्धार हेतु यशोदा के पुत्र रूप में अवतार लिया है। ऐसे प्रभु को कोई कैसे बाँध सकता है?''*[7] इस प्रसंग में कृष्ण का भक्त-प्रेमी रूप भी उजागर होता है। जब यशोदा बंधन के प्रयास में असमंजस में थीं, तो कृष्ण ने अपनी माँ की पीड़ा को समझा और स्वयं बंधन स्वीकार कर लिया। यह आत्मसमर्पण केवल एक बालक की विनम्रता नहीं, बल्कि ईश्वर की करुणा और भक्त के भावों के प्रति उनकी संवेदनशीलता का प्रतीक है।

माता यशोदा ने कृष्ण को उखोली से बाँध दिया। कृष्ण उस उखोली को खींचते हुए इधर-उधर घूमते रहे और अंतत: दो यमलार्जुन वृक्षों के बीच जा फँसे। उन्होंने उन वृक्षों को उखाड़कर स्वयं को मुक्त किया और साथ ही दो श्रापित देवताओं नलकुबेर और मणिग्रीव का उद्धार भी किया। यह प्रसंग दर्शाता है कि प्रभु की कृपा से न केवल स्वयं की मुक्ि त संभव है, बल्कि दूसरों के उद्धार का मार्ग भी प्रशस्त होता है। इसलिए यमलार्जुन वृक्षों का महत्व केवल एक कथा नहीं, बल्कि आध्यात्मिक संकेत है कि जब ईश्वर स्वयं बंधन स्वीकार करते हैं तो वह बंधन भी मुक्ति का माध्यम बन जाता है।

इस प्रकार श्रीकृष्ण स्वयं अपने भक्तों के हाथों में बँधकर न केवल अपनी विनम्रता का परिचय देते हैं, अपितु जीव को संसार के बंधनों से मुक्त करने की दिव्य लीला भी संपन्न करते हैं। यह दृश्य माधवदेव की रचनाओं में बारंबार प्रकट होता है, जहाँ ईश्वर अपने भक्त के प्रेम में बंधकर ब्रह्मत्व को भी पीछे छोड़ देता है। वास्तव में यद्यपि नाटककार श्रीकृष्ण को एक मानव बालक के रूप में चित्रित करते हैं, फिर भी दर्शकों को प्रत्येक क्षण यह अनुभूति होती है कि यह बालक कोई साधारण शिशु

नहीं, अपितु स्वयं परम ब्रह्म, पुरुषोत्तम नारायण हैं। उन्होंने लोक कल्याण और संसार के भार को उतारने के लिए यशोदा के पुत्र रूप में अवतार लिया है। माधवदेव की रचनाओं में कृष्ण का यह द्वैध स्वरूप 'मानवीय और दिव्य' एक अद्भुत संतुलन के साथ प्रस्तुत होता है। यद्यपि उनकी दिव्यता सर्वव्यापी है, फिर भी उनके बालसुलभ अभिमान, चपलता और शरारतें अधिक आकर्षक प्रतीत होती हैं। यही मानवीय पक्ष उन्हें लोक जीवन के निकट लाता है और भक्त के हृदय में गहराई से स्थापित करता है। माधवदेव ने अपने गीतों, झुमुराओं और नाटकों के माध्यम से जिस शिशु कृष्ण को चित्रित किया है, वह केवल एक धार्मिक प्रतीक नहीं, बल्कि एक जीवंत, संवेदनशील और आत्मीय अनुभव है, जो भक्ति को भावनात्मक गहराई, सांस्कृतिक आत्मीयता और आध्यात्मिक ऊँचाई प्रदान करता है।

निष्कर्ष :

माधवदेव की रचनाओं में कृष्ण-चरित्र केवल धार्मिक आख्यान नहीं, अपितु भक्ति-दर्शन का एक जीवंत और अनुभवसिद्ध रूप है। उन्होंने श्रीकृष्ण को बालक, प्रेमी, रासलीला नायक, धर्मसंरक्षक और ब्रह्मस्वरूप के विविध रूपों में चित्रित किया। किंतु इन सभी रूपों का अंतिम उद्देश्य यही था कि भक्त अपने मन, वचन और कर्म से पूर्णत: कृष्ण में लीन हो जाए। माधवदेव का कृष्ण एक ओर लोक जीवन में सहज रूप से प्रतिष्ठित है तो दूसरी ओर आध्यात्मिक चेतना का परम प्रतीक भी है। उनके साहित्य ने असम में नामधर्म और भक्ति आंदोलन को न केवल वैचारिक आधार प्रदान किया, बल्कि उसे सांस्कृतिक और सामाजिक गहराई भी दी। आज भी असम के सत्रों, नामघरों और लोक जीवन में कृष्ण-चरित्र की जो जीवंत उपस्थिति दिखाई देती है, वह गुरु शंकरदेव और माधवदेव की रचनात्मक साधना की अमर देन है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि माधवदेव की रचनाओं में कृष्ण-चरित्र भारतीय भक्ति साहित्य की एक अनमोल धरोहर है, जिसमें आस्था, प्रेम, अध्यात्म और लोकसंस्कृति का अद्भुत समन्वय मिलता है। यह साहित्य न केवल भक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है, बल्कि भावनात्मक और सांस्कृतिक चेतना को भी गहराई प्रदान करता है। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. हजारिका, सूर्य, (संपा), श्री माधवदेव बाक्यामृत, वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2015, पृष्ठ 30
2. हजारिका, सूर्य, (संपा), श्री माधवदेव बाक्यामृत, वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2015, पृष्ठ 60
3. हजारिका, सूर्य, (संपा), श्री माधवदेव बाक्यामृत, वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2015, पृष्ठ 67
4. हजारिका, सूर्य, (संपा), श्री माधवदेव बाक्यामृत, वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2015, पृष्ठ 303
5. हजारिका, सूर्य, (संपा), श्री माधवदेव बाक्यामृत, वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2015, पृष्ठ 302
6. हजारिका, सूर्य,(संपा), श्री माधवदेव बाक्यामृत, वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2015, पृष्ठ 368
7. गोस्वामी, भृगु मोहन (संपा), अर्जुन भंजन नाट, पृष्ठ 29

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

भारतीय ज्ञान परंपरा में कबीरदास के दर्शन की अभिव्यक्ति

सागर छेत्री

शोधार्थी, हिंदी विभाग
नागालैंड विश्वविद्यालय
कोहिमा परिसर, मेरिएमा-797004
8638225323
sagarchetry349@gmail.com

डॉ. बृजेश कुमार

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
नागालैंड विश्वविद्यालय
कोहिमा परिसर, मेरिएमा-797004
8318485669
brijesh@nagalanduniversity.ac.in

शोध-सार :

भारतीय ज्ञान परंपरा, जो सदियों से वेदों, उपनिषदों और षड्दर्शनों की गहन दार्शनिक सरणियों में प्रवाहित होती रही है, मध्यकाल तक आते-आते शास्त्रीय जटिलताओं और भाषाई क्लिष्टता के कारण जनसामान्य से दूर हो गई थी। ऐसे संक्रांति काल में संत कबीरदास का आविर्भाव एक युगांतरकारी घटना थी। प्रस्तुत शोध आलेख इस तथ्य का अन्वेषण करता है कि कबीर का दर्शन भारतीय ज्ञान परंपरा से विच्छिन्न नहीं है, बल्कि वह उसके उच्चतम आदर्शों विशेषकर औपनिषदिक अद्वैत और निर्गुण ब्रह्म की सहज, सरल और प्रभावकारी लोकाभिव्यक्ति है। कबीर ने धर्म और दर्शन को पांडित्य के एकाधिकार से मुक्त कर उसे अनुभव के धरातल पर प्रतिष्ठित किया और लोकभाषा (सधुक्कड़ी) के माध्यम से अध्यात्म का लोकतंत्रीकरण किया। यह आलेख उनके निर्गुण-सगुण समन्वय, अनुभववाद और सामाजिक समता के सिद्धांतों का विश्लेषण करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास करेगा कि कबीर शास्त्र को लोक के हृदय तक पहुँचाने वाले सबसे सशक्त सेतु हैं।

बीज शब्द :

कबीरदास, भारतीय ज्ञान परंपरा, भक्ति, दर्शन, निर्गुण ब्रह्म, अद्वैतवाद, मध्ययुग, सामाजिक समरसता।

मूल आलेख :

पंद्रहवीं शताब्दी का भारतीय समाज राजनीतिक अस्थिरता, धार्मिक कर्मकांडों और सामाजिक विभेद के संक्रमण काल से गुजर रहा था। उच्च दार्शनिक ज्ञान संस्कृत भाषा और ब्राह्मणवादी व्यवस्था के दुर्ग में कैद था, जबकि आम जनता भ्रम और अज्ञान के अंधकार में भटक रही थी। भारतीय समाज धार्मिक, जातिगत और सामाजिक आधारों पर विभाजित था। भक्ति आंदोलन इसी पृष्ठभूमि में एक सांस्कृतिक विद्रोह के रूप में उभरा। इस आंदोलन के केंद्र में कबीर दास (1398 ई.-1518 ई.) एक ऐसे सूर्य की भाँति चमके, जिन्होंने शास्त्रीय ज्ञान के प्रकाश को अपनी अनुभव-जन्य वाणी के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाया। कबीर के आविर्भाव को रेखांकित करते हुए शिवकुमार मिश्र लिखते हैं - *''समझौते का रास्ता छोड़कर विद्रोह का रास्ता अपनाते हुए निर्गुण भक्ति की, जो धारा भक्ति-आंदोलन की स्रोतस्वनी से फूटी कबीर उसकी सबसे ऊँची लहर के साथ सामने आए। समझौता उनकी प्रकृति में नहीं था। विद्रोह और क्रांति की ज्वाला उनकी रग-रग में व्याप्त थी सिर पर कफन बाँधकर, अपना घर फूँककर वे अलख जगाने निकले थे। उन्हें समझौता परस्तों की नहीं, अपना घर फूँककर साथ चलने वालों की जरूरत थी, वे लुकाठी लिए सरे बाजार गुहार लगा रहे थे।''*[1]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है कि *''हिंदी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई उत्पन्न नहीं हुआ।''*[2] कबीर का महत्व केवल एक समाज सुधारक या कवि के साथ-साथ एक मौलिक दार्शनिक के रूप में भी है। वे सिर्फ भक्तिकाल के एक प्रमुख कवि मात्र नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय दार्शनिक चिंतन के इतिहास में एक क्रांतिकारी मोड़ भी हैं।

कबीर के दर्शन पर चर्चा करने से पहले हम भारतीय ज्ञान परंपरा पर थोड़ी-सी चर्चा कर लेते हैं। 'परंपरा' का शाब्दिक अर्थ है - बिना किसी व्यवधान के शृंखला रूप से जारी रहना यानी चला आता हुआ क्रम, अटूट सिलसिला। इस संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं- *'' 'परंपरा' का शब्दार्थ है, एक का दूसरे को, दूसरे का तीसरे को दिया जाने वाला क्रम। वह अतीत का समानार्थक नहीं है। 'परंपरा' जीवंत प्रक्रिया है, जो अपने परिवेश के संग्रह-त्याग की आवश्यकताओं अनुरूप निरंतर क्रियाशील रहती है।''*[3] इस प्रकार ज्ञान परंपरा का अर्थ है ज्ञान, विचार, और अनुभवों का वह संग्रह जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक समाज या संस्कृति में हस्तांतरित होता है। यह परंपरा किसी विशेष समाज, संस्कृति या धर्म के सिद्धांतों, दृष्टिकोणों और जीवन के तरीके को संरक्षित करती है, जिसे सीखने और समझने की प्रक्रिया के रूप में समाज में प्रसारित किया जाता है। *''भारतीय ज्ञान परंपरा का तात्पर्य उस परंपरा से है, जो ज्ञान से उत्पन्न, ज्ञान से पोषित तथा ज्ञान से ही संचालित होती है। यह परंपरा ऋग्वेद में स्तुति, यजुर्वेद में कर्मकांड, सामवेद में संगीत तथा अथर्ववेद लोकाचार के रूप में संरक्षित है। ब्राह्मण ग्रंथ इस भारतीय ज्ञान परंपरा को लोक तथा परलोक के संबंध के रूप में सुरक्षित किए हुए हैं; वहीं उपनिषदों में ज्ञान की परंपरा के संवर्धन व संवहन की धारणा संरक्षित है। दर्शन-ग्रंथों में इसी ज्ञान परंपरा के मानव उपयोगी स्वरूप को संरक्षित रखने का उपक्रम है। परवर्ती लौकिक साहित्य में भारतीय ज्ञान परंपरा की उपादेयता को प्रतिपादित किया गया है।''*[4]

भारतीय ज्ञान परंपरा के आधार वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण, अरण्यक आदि रहे हैं। वेदों में विभिन्न विषयों के ज्ञान का विस्तार से वर्णन हैं - जैसे धर्म, संस्कृति, ज्योतिष, विज्ञान, गणित, खगोल, आयुर्वेद आदि। वेद भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम और प्रमुख ग्रंथ हैं। इनमें ब्रह्म, अध्यात्म, ज्ञान, कर्म, विज्ञान, धर्म, पर्यावरण और साहित्य आदि विभिन्न विषयों पर विस्तार से चर्चा की गई है। वेद चार हैं-ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। वेदों के उपरांत उपनिषदों ने आत्मा के ज्ञान को प्रमुखता दी, जिससे भारतीय दर्शन की नींव रखी गई। भारतीय दर्शन का सार 'मोक्ष' की प्राप्ति और 'आत्म-ज्ञान' में निहित है। उपनिषदों और शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत ने जिस निराकार, निर्गुण ब्रह्म की सत्ता स्थापित की थी, वह बौद्धिक रूप से तो अत्यंत परिष्कृत थी, किंतु सामान्य जन के लिए अमूर्त और दुरूह थी।

कबीर का प्रस्थान बिंदु यहीं से शुरू होता है। वे एक 'जुलाहे' थे और 'मसि कागद छूयो नहिं' की घोषणा करते थे। उनका दर्शन किसी संस्थान में नहीं, बल्कि काशी के घाटों, बाजारों और करघों के बीच जीवन के संघर्षों से उपजा था। उन्होंने अनुभव किया कि वास्तविक ज्ञान किसी पुस्तक में नहीं पाया जाता। अत: उन्होंने भारतीय दर्शन के क्लिष्ट सिद्धांतों को लोक-अनुभव की कसौटी पर कसना शुरू किया। कबीर ने अपने अनुभव के आधार पर अपना शास्त्र गढ़ा। नीचे हम कबीर के दर्शन के मूल तत्वों का विश्लेषण करेंगे।

कबीर के दर्शन के मूल तत्व व आधार :

कबीर का दर्शन किसी एक संप्रदाय में नहीं बँधता, फिर भी उसकी जड़ें भारतीय आध्यात्मिकता में गहरी हैं। हम कबीरदास के दर्शन के कुछ प्रमुख बिंदुओं को देखेंगे-

निर्गुण ब्रह्म की स्थापना :

सामान्य रूप से निगुर्ण शब्द का अर्थ गुण रहित होता है - अर्थात्, जिसमें कोई आकार या भौतिक विशेषता न हो। लेकिन संतकाव्य में निर्गुण साहित्य का प्रतीक न होकर गुणातीत की ओर संकेत करता है। इससे परब्रम्ह के लिए निर्गुण शब्द का प्रयोग हुआ है, जो सत्व, रजस, और तमस तीनों गुण से अतीत है। वह अनुभूति और वाणी से परे है वह घट-घट का वासी है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में ईश्वर के सगुण (साकार) और निर्गुण (निराकार) दोनों रूपों की मान्यता रही है। शंकराचार्य ने 'निर्गुण ब्रह्म' को परम सत्य माना था, लेकिन आम जनता के लिए बिना रूप, रंग और आकार

वाले ईश्वर की आराधना करना कठिन था। कबीर ने इस कठिन दार्शनिक अवधारणा को 'लोक' के लिए सहज बना दिया। उन्होंने अपने आराध्य को 'राम' कहा, लेकिन साथ ही यह स्पष्ट चेतावनी भी दी कि उनके राम दशरथ के पुत्र नहीं हैं। उन्होंने लोक को समझाया कि जिस राम का नाम वे जपते हैं, वह दशरथ का पुत्र नहीं, बल्कि वह परम तत्व है, जो कण-कण में व्याप्त है। उनके राम वह अजन्मा, निर्गुण तत्व है जो घट-घट में व्याप्त है। इस संदर्भ में कबीर कहते हैं-

''दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना।।''[5]

यहाँ कबीर शास्त्र के 'ब्रह्म' को लोक के 'राम' में बदल देते हैं, लेकिन उसके निर्गुण स्वरूप को खंडित नहीं होने देते। यह उच्च दर्शन को लोकगम्य बनाने का अद्भुत प्रयोग था।

''निर्गुण राम जपहु रे भाई,
अविगति की गति लखी न जाई।''[6]

कबीर दास ओंकार-निर्गुण की साधना को सर्वोच्च मानते हैं। उनका ब्रह्म न जाति, न रूप, न पूजा-पद्धति में बँधा है।

''मोको कहाँ ढूँढ़े रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।।''[7]

यह उपनिषद्‌ों के 'अंतर्यामि ब्रह्म' और 'अहं ब्रह्मास्मि' के दर्शन से सुसंगत है।

जैसा की हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि भारतीय दर्शन में ईश्वर के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों की चर्चा है। कबीर ने निर्गुण को चुना, लेकिन उनका निर्गुण 'शून्य' नहीं है, वह सर्वव्यापक और घट-घट वासी है। यह उपनिषद्‌ों के 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (सब कुछ ब्रह्म है) का ही विस्तार है।

'जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना, यह तत कथ्यौ ग्यानी।।''[8]

यहाँ कबीर अद्वैत वेदांत के सिद्धांत को बहुत ही सरलता से समझाते हैं कि 'आत्मा' (घड़े का जल) और 'परमात्मा' (नदी का जल) एक ही हैं, बस शरीर का भेद है।

अनुभववाद व ज्ञान मीमांसा :

भारतीय दर्शन में 'प्रमाण' का बहुत महत्व है। कबीर 'शब्द प्रमाण' (किताबों) के स्थान पर 'प्रत्यक्ष प्रमाण' (अनुभव) को वरीयता देते हैं। रूढ़िवादी परंपरा में 'शब्द प्रमाण' अर्थात् वेद-शास्त्र को सर्वोच्च माना जाता था। कबीर ने इस व्यवस्था को उलट दिया। उन्होंने 'लोक' के प्रत्यक्ष अनुभव को शास्त्रों के लिखे हुए ज्ञान से ऊपर रखा। यह एक क्रांतिकारी दार्शनिक प्रहार था। उन्होंने दावा किया कि सत्य पोथियों में नहीं, बल्कि जीवन के जीवंत अनुभव में है। वह कहते हैं -

''तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी।
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राख्यों उरझाई रे।।''[9]

कबीर ने ज्ञान को पुस्तकालयों से मुक्त कर अनुभव के धरातल पर ला खड़ा किया। उन्होंने बताया कि वास्तविक ज्ञान वही है, जो व्यक्ति स्वयं जीता और भोगता है। अर्थात् वास्तविक ज्ञान वह नहीं है, जो रटा गया हो, बल्कि वह है, जो जीवन में जिया गया हो। इस प्रकार उन्होंने दर्शन को शास्त्रों व पुस्तकों से निकालकर जीवन के रणक्षेत्र में खड़ा कर दिया, जहाँ एक अनपढ़ व्यक्ति भी आत्म-साक्षात्कार का अधिकारी बन सकता था।

कबीर का सबसे बड़ा योगदान उनकी ज्ञान मीमांसा है। वे मानते हैं :-

''पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।।''[10]

यह भारतीय साधना परंपरा के उस सिद्धांत की पुनर्पुष्टि है, जिसमें कहा गया है - ''यथार्थ ज्ञान आत्मानुभूति से आता है।''

सामाजिक समता की स्थापना :

उपनिषदों का महावाक्य 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ही ब्रह्म हूँ) या 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (सब कुछ ब्रह्म ही है) भारतीय दर्शन का शिखर है। इसका अर्थ है कि हर जीव में एक ही परमात्मा का अंश है। सिद्धांत रूप में यह स्वीकार्य था, लेकिन व्यवहार में भारतीय समाज जाति-पांति और ऊँच-नीच में बँटा हुआ था। कबीर ने इस दार्शनिक अद्वैत को सामाजिक धरातल पर उतार दिया। यदि सबमें एक ही ब्रह्म है, तो यह भेदभाव क्यों? कबीर ने जाति व्यवस्था पर जो प्रहार किए, वे केवल

सामाजिक आक्रोश नहीं थे, बल्कि उनकी गहरी दार्शनिक समझ की अभिव्यक्ति थी। वे पूछते हैं कि यदि जन्म और शरीर की प्रक्रिया एक जैसी है तो कोई ब्राह्मण और कोई शूद्र कैसे हो सकता है?

''एक बूँद एकै मल मूतर, एक चाम एक गूदा।
एक जोति में सब उत्पन्ना, कौन बाह्मन कौन सूदा।।''[11]

यह भारतीय दर्शन का लोक-जीवन में सबसे क्रांतिकारी प्रयोग था। यहाँ कबीर वेदांत के दर्शन को सामाजिक न्याय के हथियार के रूप में प्रयोग करते हैं।

वर्ण व्यवस्था व पाखंड का विरोध :

कबीर पाखंड व वर्ण व्यवस्था के घोर विरोधी रहे। उन्होंने हिंदू और मुस्लिम-दोनों धर्मों में व्याप्त पाखंडों, कर्मकांडों और बाह्याचारों का खंडन किया। चाहे पत्थर पूजने की बात हो या काकर-पाथर जोड़कर मस्जिद बनाने की, कबीर ने हर उस माध्यम पर चोट की जो मनुष्य को सीधे ईश्वरानुभव से रोकता था। उनकी यह आक्रामकता (फक्कड़पन) भारतीय दर्शन की उस धारा का प्रतिनिधित्व करती है, जो सत्य के अन्वेषण में निर्मम होती है। वे लोक को जगाने के लिए कड़वी दवा का प्रयोग करते थे।

उन्होंने जन्म आधारित श्रेष्ठता को नकारा, जो कि महाभारत और प्राचीन स्मृति ग्रंथों के कुछ अंशों में भी विमर्श का विषय रहा है। जन्म से कोई भी श्रेष्ठ होकर नहीं आता। कबीर ने स्पष्ट किया-

''जाति पाति पूछै नहिं कोई,
हरि को भजै सो हरि का होई।''[12]

उन्होंने हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्मों के कर्मकांडों पर प्रहार किया। यह भारतीय चार्वाक दर्शन या तार्किक परंपरा की याद दिलाता है, जहाँ तर्क और प्रत्यक्ष प्रमाण को महत्व दिया जाता है। कबीर जाति, पाखंड और आडंबर के प्रखर विरोधी हैं। वे जाति, धर्म, वर्ग और संप्रदाय आधारित भेदभाव का विरोध करते हैं।

''जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।''[13]

उनका दर्शन सामाजिक सुधार की दृष्टि से भारतीय ज्ञान परंपरा को सशक्त बनाता है।

गुरु की महत्ता :

भारतीय ज्ञान परंपरा में गुरु का स्थान सर्वोच्च है। कबीर ने इस परंपरा को चरम पर पहुँचाया। उनके लिए ज्ञान प्राप्ति का स्रोत शास्त्र नहीं, बल्कि 'सद्गुरु' है। कबीर दर्शन में 'गुरु' को ब्रह्म का प्रतिरूप माना गया है :-

''गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय।।''[14]

कबीरदास के लिए गुरु ही मार्गदर्शक हैं और केवल वही शिष्य को माया जाल से निकाल कर भक्ति की दहलीज तक पहुँचा सकते हैं। अपने दोहे में कबीर दास कहते हैं : -

''कबीर सतगुर ना मिल्या, रही अधूरी सीख।
स्वाँग जती का पहिरि करि, घरि घरि माँगे भीख॥''[15]

अर्थात जिसे सच्चा गुरु नहीं मिल पाता, उसका ज्ञान और साक्षात्कार अधूरा है।

यह विचार भारतीय परंपरा के उस मूल तत्व को पुष्ट करता है, जहाँ गुरु को अज्ञान के अंधकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जाने वाला माना गया है।

भारतीय ज्ञान परंपरा और कबीर का समन्वयवाद :

कबीर भारतीय ज्ञान परंपरा के समन्वयकर्ता हैं। उनके दर्शन में कई धाराओं का संगम दिखता है।

वेदांत का प्रभाव : कबीर का एकेश्वरवाद और माया का खंडन शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत से प्रभावित दिखता है। वे संसार को 'माया' या 'झूठा' बताते हैं। कबीर के अनुसार मानव की आध्यात्मिक यात्रा में सबसे बड़ी बाधा अहंकार और माया है। वे कहते हैं :-

''माया महा ठगिनी हम जानी।
तिरगुन फाँसि लिये कर डौले, बोलै मधुरी बानी।।''[16]

नाथ पंथ और हठयोग : कबीर की वाणियों में 'इड़ा', 'पिंगला', 'सुषम्ना' और 'अनहद नाद' जैसे शब्द मिलते हैं। यह सिद्ध करता है कि वे भारतीय योग परंपरा की गहराइयों से परिचित थे।

सूफी प्रेम तत्व : ज्ञान की शुष्कता को मिटाने के लिए उन्होंने सूफी मत के 'इश्क' (प्रेम) को अपने दर्शन में मिलाया। कबीर कहते हैं :-

''पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।।''[17]

कबीर का यह दोहा सूफी प्रेम तत्व से मेल खाता है। जैसे की सूफी दर्शन में प्रेम को ईश्वर तक पहुँचने का

सबसे महत्वपूर्ण मार्ग माना गया है। यहाँ 'ढाई आखर प्रेम का' से उनका मतलब बाहरी ज्ञान या कर्मकांडों से नहीं, बल्कि सच्ची प्रेम भवन से है, जो मनुष्य को परम सत्ता से जोड़ती है। इस प्रकार उन्होंने प्रेम को ही सर्वोच्च ज्ञान घोषित किया।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कबीर दास भारतीय ज्ञान परंपरा के विरोधी नहीं, बल्कि उसके सच्चे और साहसी व्याख्याकार थे। उन्होंने उस परंपरा पर जमी रूढ़ियों की धूल को झाड़ा और उसे पुन: प्राणवान बनाया। उनका दर्शन 'शास्त्र' और 'लोक' का अद्भुत संगम है। उनका दर्शन पुस्तकीय न होकर जीवन-सापेक्ष था। उन्होंने सिद्ध किया कि ऊँचे दार्शनिक सत्य केवल विद्वानों की गोष्ठियों के विषय नहीं हैं, बल्कि वे खेत-खलिहानों और बाजारों में रहने वाले सामान्य जन के जीवन का आधार भी बन सकते हैं। सही अर्थों में कबीर भारतीय मनीषा की वह मुखर 'लोक-वाणी' हैं, जिसने दर्शन को जीवन से पुन: जोड़ दिया।

कबीरदास का दर्शन भारतीय आध्यात्मिक और लोक चेतना का ऐसा संगम है, जिसने समाज को आत्मचिंतन की दिशा दी। उनका संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि वह मानवता, साम्यता, नैतिकता और आत्मज्ञान पर केंद्रित है। कबीर दास का दर्शन सिर्फ धार्मिक विमर्श नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का आधार भी है। उनकी वाणी भारतीय लोक जीवन की चेतना को व्यक्त करती है और भारतीय ज्ञान परंपरा को नई दिशा देती है। ❑

संदर्भ सूची :

1. https://www.mahashakti.org.in/2016/01/bhakti-andolan-me-kabir-ka-yogdan.html
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. कबीर. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. 2019 पृ.सं. 222
3. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. परंपरा और आधुनिकता, पृ.सं. 42
4. यादव, नीलम (सं). भारतीय ज्ञान परंपरा विविध आयाम, दिल्ली : इंशा पब्लिकैशन, 2023. पृ.सं. 91
5. दास, श्यामसुंदर. कबीर ग्रंथावली. नई दिल्ली : लोकभरती प्रकाशन, 2022. पृ.सं. 25
6. https://divyhindi.com/सगुण-और-निर्गुण-भक्ति -में/
7. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. कबीर, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. 2019. पृ.सं. 269
8. वही. पृष्ठ सं-220
9. https://kavitakosh.org/तेरा-मेरा-मनुवां/कबीर
10. द्विवेदी, मुकुंद. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली-4. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ.सं. 340
11. दास, श्यामसुंदर(सं). कबीर ग्रंथावली. नई दिल्ली : लोकभरती प्रकाशन, 2022. पृ.सं. 31
12. वही. पृ.सं. 19
13. द्विवेदी, मुकुंद. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली-4. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ.सं. 450
14. https://bhaktilok.com/guru-govind-dou-khade-kabir-ke-dohe-part-1/
15. https://bharatdiscovery.org/india/कबीर-सतगुर-ना-मिल्या-कबीर
16. https://kavitakosh.org/kk/माया-महा-ठगनी-हम-जानी/कबीर
17. द्विवेदी, मुकुंद. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली -4. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ.सं. 340

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

हिंदी की सैद्धांतिक आलोचना का प्रस्थान बिंदु भारतेंदु हरिश्चंद्र कृत 'नाटक' निबंध

आशुतोष सिंह

शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
नई दिल्ली–110007
8130459782
ashutoshvenky@gmail.com

शोध सार :

आलोचना कृति और पाठक के मध्य सेतु होती है। हिंदी साहित्य में आधुनिक काल से आलोचना विधा को व्यवस्थित आधार मिला, हालाँकि रीतिकाल में लक्षण ग्रंथों की रचना आलोचना विधा के आस-पास का ही अभिप्राय प्रस्तुत करती है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में विभिन्न विधाओं का सूत्रपात होता है या उनको एक व्यवस्थित रूप में मिलता है और इन विधाओं को व्यवस्थित रूप देने या सूत्रपात में भारतेंदु हरिश्चंद्र की भूमिका अग्रणी है। यह शोध लेख हिंदी सैद्धांतिक आलोचना के बीज बिंदुओं के रूप में भारतेंदु हरिश्चंद्र जी के नाटक निबंध की भूमिका पर आधारित है।

बीज शब्द :

आलोचना, भारतेंदु हरिश्चंद्र, नाटक निबंध, रीतिकाल।

मूल लेख :

आलोचना का शाब्दिक अर्थ विद्वानों ने *'गुण दोष निरूपण या विवेचन'*[1] बताया। आलोचना के संबंध में आई.ए. रिचर्ड्स ने कहा है – *''आलोचक के आसन पर बैठना क्या है कि मूल्यों के निर्णायक के आसन पर बैठना है।''*[2] रचनाकार ने क्या अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है? क्या उसकी अभिव्यक्ति सफल रही है? और जो अभिव्यक्त हुआ, क्या वह अभिव्यक्त होने योग्य था? जे.ई. स्प्रिंगार्न ने इन्हीं प्रश्नों के उत्तर को आलोचना का मुख्य लक्ष्य स्वीकार किया।

डॉ. अमरनाथ, आलोचना के संदर्भ में कहते हैं–*''आलोचना 'लोच' धातु से बना है – आ +लोच् + अन+ आ = आलोचना। लोच का अर्थ है देखना, इसीलिए किसी वस्तु या कृति की सम्यक व्याख्या अथवा उसका मूल्यांकन करना ही आलोचना है।''*[3]

आलोचना का गुण दोष विवेचन निर्णय मात्र के खाँचे से निकलकर कृति की विशेषताओं, उपलब्धियों एवं कमियों पर विचार, श्रेणीबद्ध रूप देना तथा रचनाकर व पाठक के मध्य एक पुल की भाँति काम करने जैसे अर्थों में विस्तार हुआ है। हिंदी आलोचना के क्षेत्र में विस्तार हुआ तथा इसके लिए या इससे संबंधित 'समीक्षा', 'आलोचना', 'समालोचना' जैसे शब्द साहित्य जगत में प्रकट हुए।

बाबू गुलाबराय ने माना कि कवि की कृति की सभी दृष्टियों से आस्वादकर पाठकों को उस प्रकार के आस्वाद में सहायता देना ही आलोचना का अर्थ है। नलिन विलोचन शर्मा ने आलोचना को सृजन प्रक्रिया का अपरिहार्य अंग कहा –*''अपने विश्लेषणात्मक रूप में आलोचना सृजन की प्रक्रिया का अपरिहार्य अंग है और यह कीट्स जैसे रुमानी कवियों को भी मान्य रहा। अपने संश्लेषणात्मक रूप में आलोचना उतना ही सृजन है, जितना किसी कृति का निर्माण। आलोचना और साहित्य–सृजन में अंतर शायद इसलिए मान लिया गया है कि आलोचना मात्र कला ही नहीं, विज्ञान भी है।''*[4] डॉ. नगेंद्र ने कहा– *''आलोचना को मैं निश्चय ही ललित साहित्य का अंग मानता हूँ। आलोचना की आत्मा कलामय है, किंतु इसकी शरीर रचना वैज्ञानिक है।''*[5]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर आलोचना का मोटे तौर पर स्वरूप अनुमान हो जाता है। सरल शब्दों में यदि आलोचना को परिभाषित किया जाए तो यह कह सकते हैं कि रचनाकार तथा पाठक के मध्य संप्रेषण के अर्थ को और भी निखारकर जो प्रस्तुत करे, वही आलोचना है अर्थात कृति और सामान्य पाठक के मध्य कार्य करने वाला पुल आलोचना है।

हिंदी में आलोचना के नए युग की शुरुआत भारतेंदु हरिश्चंद्र के सांस्कृतिक नेतृत्व में होती है। डॉ. रामदरश मिश्रा के अनुसार – *''हिंदी आलोचना का जन्म भारतेंदु काल में हुआ, यह बात सुनने में कुछ विचित्र–सी लगती है, किंतु यह सत्य है। हिंदी साहित्य में आलोचना जैसी चीज न रही हो ऐसी बात नहीं, किंतु अपने वास्तविक अर्थ में आलोचना आधुनिक युग की उपज है। यह निर्विवाद है।''*[6] रामदरश जी के कथन से यह बात निर्विवाद रूप से पुष्ट होती है कि जिस प्रकार से आधुनिक काल के आरम्भिक चरण भारतेंदु युग में आधुनिक गद्य विद्याओं जैसे– उपन्यास, निबंध का आरंभ होता है, वैसे ही आलोचना का भी। पूर्व में नलिन विलोचन शर्मा के कथन से यह बात भी प्रकट होती है कि आलोचना के आरम्भ में अंग्रेजी साहित्य की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रेरणा कहीं न कहीं अवश्य थी।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिंदी–साहित्य में युगबोध और जनचेतना का साथ–साथ विकास हुआ। *''अंग्रेज स्वयं भारतीय साहित्य की ह्रासशील रीतिकालीन परंपरा की तुलना में रोमांटिक और विक्टोरिया युग की काव्य प्रवृत्तियों को उत्कृष्ट समझते थे।''*[7] इन परिस्थितिओं को समझ भारतेंदु जी ने अपने स्वाध्याय के भारत की गौरवशाली सांस्कृतिक–साहित्यिक परिस्थिति: का अध्ययन कर हिंदी साहित्य को मौलिकता की ओर अग्रसरित किया। इस मौलिकता की पृष्ठभूमि में नवीनताबोध के साथ साहित्य के नए आयामों का उद्‌घाटन होता है तथा साहित्य को नई चेतना की स्फूर्ति मिलती है।

आलोचना अपने आरंभिक दौर में या तो सिद्धांत के आधार पर होती थी या फिर रचना के आंतरिक या बाह्य तथ्यों की छानबीन कर नई दिशा कसौटी पर उसकी समीक्षा होती थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने 'नाटक' निबंध में नाटक की विस्तृत आलोचनात्मक रूपरेखा प्रस्तुत की। 'नाटक' पर चर्चा से पूर्व सैद्धांतिक आलोचना पर प्रकाश डाल लेना समीचीन होगा।

सैद्धांतिक आलोचना :

हिंदी आलोचना में मुख्यत: आलोचना के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक प्रकार हैं। डॉ. श्यामसुंदर दास के शब्दों में–*''यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या मानें तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा।''*[8] इस कथन से आलोचना का महत्व स्पष्ट होता है।

सैद्धांतिक आलोचना के अंतर्गत आलोचक आलोचना के उन मानदंडों का निर्धारण करता है जिसके आधार पर किसी रचना का व्यावहारिक मूल्यांकन किया जाता है। सैद्धांतिक आलोचना के बीज काव्यशास्त्र में मिलते हैं। आलोचना के विकास क्रम के अंतर्गत ही किसी रचना के भीतर यदि सैद्धांतिक आलोचना के पुट मिलते हैं तो आलोचक वहाँ से भी उन मानदंडों को अपने आलोचना कर्म में समाहित करता है तथा उसको एक व्यवस्थित रूप में सामने लाता है। हिंदी आलोचना में गंभीर कार्य तो भारतेंदु युग में आरंभ हुआ, लेकिन

सैद्धांतिक आलोचना का स्वरूप निर्धारण रीतिकाल से ही लक्षण ग्रंथों की रचना उनके आधार पर अलंकार आदि का उदाहरण, टीका पद्धति, सूक्तियों के रूप में कवि से संबंधित उक्तियों आदि से आरंभ होता है। रामदरश मिश्रा सैद्धांतिक आलोचना की दृष्टि से भारतेंदु जी के 'नाटक' नामक विस्तृत निबंध को पहली और महत्वपूर्ण आलोचनात्मक कृति का दर्जा देते हैं।

कविता, नाटक, निबंध आदि साहित्यिक विद्याओं की सैद्धांतिक आलोचना के अंतर्गत इन विद्याओं के सामान्य सिद्धान्तों का निर्धारिण और विवेचन किया जाता है। किसी भाषा के साहित्यिक मानदंडों तथा काव्यशास्त्रीय निरूपण से अन्य भाषाओं की सैद्धांतिक आलोचना का प्रभावित होना स्वाभाविक किया है। हिंदी का उदाहरण देना यहाँ पर प्रासंगिक होगा, क्योंकि हिंदी काव्यशास्त्र केवल संस्कृत काव्यशास्त्र से प्रभावित न होकर पाश्चात्य काव्यशास्त्रीय परंपरा के मूल्यों से काफी प्रभावित होता है।

सैद्धांतिक आलोचना के मानदंड समय के साथ बदलते रहते हैं। यदि परिस्थितियों तथा काव्यशास्त्रीय प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में ये परिवर्तित न हो तो आलोचना दोषपूर्ण हो जाती है। यदि समकालीन समय को ही हम उदाहरण के रूप में लें तो औद्योगिकता का प्रभाव, सोशल मीडिया द्वारा निर्मित नया ढाँचा तथा उत्तर आधुनिकता के इस दौर में विकसित साहित्य की आलोचना क्या रीतिकालीन या द्विवेदीयुगीन सैद्धांतिक मानदंडों पर की जा सकती है ? शायद नहीं। निश्चित ही उत्कृष्ट सैद्धांतिक आलोचना बहुत हद तक सर्जनात्मक साहित्य पर निर्भर है, उत्कृष्ट तथा रचनात्मक साहित्य की श्रेष्ठता के आधार पर ही सैद्धांतिक आलोचना की बुनियाद को और मजबूत किया जा सकता है।

पूर्व में यह उल्लेख किया गया है कि 'नाटक' निबंध से हिंदी आलोचना में औपचारिक तौर पर सैद्धांतिक आलोचना की शुरुआत हुई। नंद किशोर नवल ने भारतेंदु काल के लेखकों विशेषकर बालकृष्ण भट्ट, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' तथा भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा दिए गए साहित्य पर विचारों को आधार बनाकर लिखा है कि– *''भारतेंदु-युग की साहित्य-संबंध मान्यताओं ने इस युग के लेखकों को नाटक रचना की ओर प्रेरित किया।.... बदली हुई परिस्थितियों में परंपरागत भारतीय नाटक को नया रूप प्रदान करने के लिए प्रेमघन तथा भारतेंदु जैसे शीर्षस्थ लेखकों ने नाटक पर अपने गंभीर विचार प्रस्तुत किए।''*[9] भाषा नाटक की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही कदाचित भारतेंदु ने 'नाटक' अथवा दृश्यकाव्य शीर्षक प्रसिद्ध निबंध लिखा।

भारतेंदु जी ने अपने इस निबंध में नाटक के विविध पक्षों पर ध्यान आकृष्ट कर उसके विभिन अंगों पर चर्चा की है। नाटक शब्द की व्याख्या करते हुए भारतेंदु ने उल्लेख किया – *''नाटक शब्द का अर्थ है नट लोगों की क्रिया। नट कहते हैं विद्या के प्रभाव से अपने या किसी वस्तु के स्वरूप के फेर कर देने वाले को था स्वयं दृष्टि रोचन के अर्थ फिरने को।''*[10] आरंभ में ही इतनी गहनता एवं गंभीरता के साथ निबंध की शुरुआत की है।

काव्य का भेद दृश्य काव्य की परिभाषा, रूपक की चर्चा एवं महत्व, उपरूपक के भेदों की चर्चा के साथ उन्होंने प्राचीन नाटकों को उदाहरण के तौर पर कालिदास के शकुंतला की चर्चा के साथ समकालीन नाटक पर विचार किया है। हिंदी में नाटक के आरंभ पर भारतेंदु ने उल्लेख किया है – *''विश्वनाथ सिंह का नाटक तथा काशी महाराज की आज्ञा से बना नाटक यद्यपि नाटक रीति से बने हैं, किंतु नाटकीय नियमों का प्रतिपालन इनमें नहीं है और छंद प्रधान ग्रंथ हैं। विशुद्ध नाटक रीति से पात्रप्रवेशादि नियम रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक कवि गिरिधरदास का 'नहुष' है।''*[11] निश्चित ही यह कथन नाटक में नवीनता तथा रूप परिवर्तन के प्रति आग्रह एवं भाषा नाटक के लिए नए नाट्यशास्त्र के प्रति भारतेंदु के विचार को प्रकट करता है।

'नाटक' निबंध के अध्ययन से भारतेंदु की दृष्टि नाटक रचना के प्रति कितनी सचेत थी यह सिद्ध होता है। साथ ही पाश्चात्य नाट्य-प्रणाली की जानकारी, नए युग की आवश्यकता, प्राचीन संस्कृत नाटकों की उपयोगिता एवं प्रासंगिकता आदि का अनुभव भारतेंदु ने हिंदी नाटकों

को नई दिशा देने हेतु किस तरह प्रयोग किया-यह उनके इस निबंध तथा उनके नाटकों में सहज ही प्रकट होता है। मदन गोपाल के अनुसार -*''हरिश्चंद्र वैसे तो एक बड़े साहित्यकार थे और उन्होंने साहित्य की सभी शाखाओं को अपने योगदान से अभिवृद्ध किया, किंतु जिस एकमात्र क्षेत्र में उनके योगदान को सदा याद किया जाता है, वह क्षेत्र है हिंदी नाटक का।''*[12]

'नाटक' निबंध में उन्होंने आलोचनात्मक विषय-वस्तु के लिए भारतीय नाट्य समीक्षा के उपादानों को दशरूपक, भरत के नाट्य-शास्त्र, साहित्य-दर्पण, काव्य प्रकाश इत्यादि से तो ग्रहण किया ही है, साथ ही नाट्य-शास्त्र के पश्चिमी रूप या सिद्धांत को स्वीकारने में उन्होंने किसी प्रकार का संकोच नहीं दिखाया। रामदरश मिश्रा के अनुसार-*''भारतेंदु हरिश्चंद्र ने यह स्पष्ट घोषित किया कि प्राचीन रुचि और संस्कार आधुनिक नाटकों के लिए उपयुक्त नहीं ठहरते।''*[13]

भारतीय नाट्य परंपरा पर अपने विचार रखने एवं उनकी विवेचना के उपरांत नवीन सूत्रों पर भारतेंदु जी विचार करते हैं। नवीन भेद पर चर्चा करने से पूर्व उन्होंने रूपक के दस भेदों, जैसे-नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन आदि के साथ महानाटक, अथ उपरूपक, नाटिका, त्रोटक आदि के विषय में समझाया है।

नवीन भेद पर भारतेंदु जी लिखते हैं - *''आज कल यूरोप के नाटकों की छाया पर जो नाटक लिखे जाते हैं और बंगदेश में जिस चाल के बहुत से नाटक बन भी चुके हैं, वह सब नवीन भेद में परिगणित हैं। प्राचीन की अपेक्षा नवीन की परम मुख्यता बारंबार दृश्यों के बदलने में है और इसी हेतु एक-एक अंक में अनेक - अनेक गर्भांकों की कल्पना की जाती है, क्योंकि इस समय में नाटक के खेलों के साथ विविध दृश्यों का दिखलाना भी आवश्यक समझा गया है।''*[14] यह कथन हिंदी नाटकों के प्रति भारतेंदु जी की नये सूत्रों की स्थापना को प्रकट करता है।

बुनियाद पर ही इमारत का निर्माण होता है। नई इमारत के लिए हर पुरानी वस्तु खराब ही हो-यह आवश्यक नहीं। इसीलिए विद्वानों ने नवीनता हेतु प्राचीन के महत्व को भी रेखांकित किया। भारतेंदु जी ने लिखा - ''नाटक आदि दृश्य काव्य प्रणयन करना हो तो प्राचीन समस्त रीति परित्याग ही करें यह आवश्यक नहीं, क्योंकि जो सब प्राचीन रीति या पद्धति आधुनिक सामाजिक लोगों की मतपोषिका होंगी वह सब अवश्य ग्रहण होंगी।''

भारतेंदु जी ने नए नाटकों की रचना में शृंगार, हास्य और कौतुक को उद्देश्य के रूप में स्वीकार करने के साथ ही उन्होंने नाटक के माध्यम से समाज को संस्कारित तथा देश-प्रेम विस्तार का भी उद्देश्य रखा।

ऐतिहासिक कथा-वस्तु के चयन पर उन्होंने कहा कि- ''किसी प्राचीन कथा-भाग का इस बुद्धि से संगठन कि, देश की उससे कुछ उन्नति हो, इसी प्रकार के अंतर्गत है।'' इस कथन से भविष्य के भारत के नव-निर्माण में पूर्वजों की ऐतिहासिक परंपरा के सूत्र समाहित करने का आग्रह प्रतीत होता है।

उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से पराधीन भारत की दबी-कुचली जनता के मध्य नवशक्ति का संचार किया। भारतेंदु ने नाटक की रचना में सामाजिक रीति-नीति में परिवर्तन की प्रक्रिया को ध्यान में रखने के पक्ष पर भी बल दिया।

डॉ. राम विलास रार्मा के अनुसार -''भारतेंदु हरिश्चंद्र ने मानव-जीवन के अध्ययन पर जो जोर दिया है, यह साहित्य के सभी अंगों के लिए सत्य है, उपन्यास और नाटकों के लिए विशेष रूप से। भारतेंदु ने नाटक नाम के निबंध में आलोचना के कुछ मूल सिद्धांत स्थिर किए हैं, जो हमारे लिए बहुत ही मूल्यवान हैं। हिंदी में व्यंग्यपूर्ण आलोचना का सूत्रपात करने वाले भी भारतेंदु ही हैं।''

निष्कर्षत: भारतेंदु जी के 'नाटक अथवा दृश्य काव्य' निबंध ने न केवल हिंदी रंगमंच को नई दिशा दिखाने का कार्य किया, अपितु आलोचकों के लिए नए सैद्धांतिक मानदंडों को भी उद्घाटित किया।

हिंदी नाटकों में नए सूत्रों का प्रतिपादन का श्रेय सर्वप्रथम भारतेंदु जी को ही जाता है। हिंदी गद्य परंपरा में भारतेंदु हरिश्चंद्र जी वो सूर्य हैं, जिसका देदीप्यमान प्रकाश साहित्य को नवीनता एवं मौलिकता के नए रास्तों के लिए प्रोत्साहित करेगा। ❑

संदर्भ-सूची :

1. बाहरी, हरदेव, हिंदी शब्दकोश, राजपाल एंड सन्स, 2013, पृ. 1
2. शर्मा, नलिन विलोचन, 'आलोचना: सृजन प्रक्रिया', आजकल, फरवरी 2016, पृ. 131
3. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 66
4. शर्मा, नलिन विलोचन. 'आलोचना : सृजन प्रक्रिया'. आजकल
5. नगेंद्र, डॉ. 'आलोचना का अन्त:स्वरूप'
6. मिश्र, रामदरश, डॉ., हिंदी आलोचना : प्रवृत्तियाँ और आधारभूमि, पृ. 9
7. भारद्वाज, अरुण, डॉ. हिंदी आलोचना अंत:यात्रा और समानांतर संदर्भ, पृ. 241
8. मिश्र, रामदरश, डॉ., हिंदी आलोचना : प्रवृत्तियाँ और आधारभूमि, पृ. 211
9. नवल, नंद किशोर, हिंदी आलोचना का विकास, राजकमल प्रकाशन, 2007, पृ. 161
10. हरिश्चंद्र, भारतेंदु, नाटक
11. सिंह, नामवर, संपादक, भारतेंदु हरिश्चंद्र प्रतिनिधि संकलन, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, पृ. 271
12. गोपाल, मदन, भारतेंदु हरिश्चंद्र, साहित्य अकादमी, 1971, पृ. 20
13. मिश्र, रामदरश, डॉ., हिंदी आलोचना : प्रवर्तियाँ और समाधान, पृ. 231
14. हरिश्चंद्र, भारतेंदु, नाटक निबंध

RNI NO. ASSBIL/2009/31008 Peer Reviewed Journal
ISSN : 2321-4945 [UGC-CARE Listed]

'यमदीप' एवं 'दरमियाना' उपन्यास में चित्रित किन्नर समुदाय की राजनैतिक संवेदनाएँ

मनोज कुमार श्रीवास्तव

शोधार्थी, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी-781001
9706133408
Kumar.manojsrivastav46@gmail.com

डॉ. परिस्मिता बरदलै

सहायक प्राध्यापिका, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी-781001
9864753226
parismita111@gmail.com

शोध-सार :

इक्कीसवीं सदी विमर्श साहित्य का वितान है, जिसमें विभिन्न प्रकार के विमर्शों का दौर गतिमान दिखलाई पड़ता है। वर्षों से समाज में विविध विषयों एवं संदर्भों में संघर्ष गतिमान है और जब यह प्रश्न-चिह्न हमारे समक्ष खड़ा हुआ तब विमर्श की बात हमारे सामने आती है। स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, आदिवासी-विमर्श, बाल-विमर्श, वृद्ध-विमर्श, दिव्यांग-विमर्श के साथ समाज से दूर जीने के लिए मजबूर तीसरी सत्ता का संघर्ष से किन्नर-विमर्श का प्रादुर्भाव हुआ।

हमारे समाज में स्त्री-पुरुष वर्ग के आलावा एक वर्ग ऐसा भी है, जो न तो स्त्री है और न ही पुरुष। ईश्वर द्वारा प्रदत्त यह वर्ग हमेशा समाज का अभिन्न अंग रहा है. जिसे किन्नर, मंगलामुखी, हिजड़ा, थर्ड जेंडर आदि कई नामों से अभिहित किया जाता रहा है। इन्हें समाज में वर्षों से उपेक्षित रहकर जीवन यापन करना पड़ रहा है, जो कि आधुनिक भारतीय समाज के लिए बेहद नीन्दनीय है। इनके देह का ऊपरी आवरण भले ही सजा-सँवरा हँसता हुआ दिखाई देता है, परंतु उनकी मन: स्थिति अंतर्द्वंद्व, संघर्ष-चेतना तथा उनके हृदय के मर्म को समझना बहुत कठिन है। अत: समाज का तीसरा पक्ष कहे जाने वाले किन्नरों की राजनैतिक समस्याओं को 'यमदीप' एवं 'दरमियाना' उपन्यास में चित्रित कर इसके उपन्यासकारों ने समाज का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया है ।

1.1 भूमिका :

संसार में मुख्यधारा के लोगों का वर्चस्व हमेशा से रहा है। इसी वर्चस्ववादी लोगों के कारण लैंगिक असमानता वाले लोगों को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। सदियों से इन्हें जेंडर सत्ता के तहत लैंगिक असमानता के कारण दबकर जीवन जीना पड़ा है। सदियों से इन्हें पितृसत्ता के तहत अपने अधिकारों से वंचित रखा जाता रहा है। इसी वंचना के कारण इन्हें माता-पिता, भाई-बहन, मित्र, शिक्षक आदि से दूर होकर जीवन व्यतीत करना पड़ता है। जो इन नाते-रिश्तों से जुड़े रहकर अपना जीवन व्यतीत करता है, उन्हें ही हमारा समाज सत्ता के लायक समझता है। इसी कारण किन्नरों को सत्ता से बेदखल होकर कुंठित जीवन जीना पड़ता है। किन्नर केंद्रित हिंदी के आलोच्य उपन्यासों में भी इसी प्रकार की वर्चस्ववादी सत्ता इन्हें समाज से वंचित कर इन्हें तिरस्कृत जीवन जीने के लिए विवश कर देता है। इन उपन्यासों में किन्नरों को राजनीति से जोड़कर अवश्य दिखाया गया है, किंतु किसी किन्नर पात्र को सशक्त राजनेता के रूप में चित्रित नहीं किया गया है, जिसके फलस्वरुप किन्नर समुदाय के लोगों

के भीतर कोई विशेष जागृति आ सके। वास्तविक रूप में देखा जाए तो वर्तमान साहित्य आज भी किन्नरों के साथ विशेष न्याय नहीं कर सका है। जरूरत है इन्हें भी एक राजनेता के रूप में, समाज सेवक के रूप में लोगों के समक्ष प्रस्तुत करने की। वर्षों से साहित्यकार, राजनेता आदि सभी किन्नर समुदाय की आवाज को अनदेखा कर स्वयं के अधिकारों के प्रति ही स्वार्थी बन कर कार्य किरते आए हैं। राजनीति में आना केवल स्वयं के स्वार्थों की पूर्ति करने का नाम नहीं है, बल्कि राजनीति समाज व देश के सभी वर्गों के विकास को ध्यान में रखकर कार्य करना है। इसी राजनीति का लाभ उठाकर इन लोगों ने किन्नर समुदाय के लोगों को पारिवारिक व सामाजिक सत्ता के क्षेत्र से बाहर कर उन्हें अपने अधिकारों से वंचित रखा है।

1.1.1 यमदीप एवं दरमियाना उपन्यास में चित्रित किन्नर समुदाय की राजनैतिक संवेदनाएँ :

यदि बात की जाए उपन्यास साहित्य की तो आलोच्य उपन्यास यमदीप, दरमियाना के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास में कई स्थलों पर किन्नर समुदाय के राजनीतिक पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। वर्तमान समय में देखे तो भारतीय राजनीति में अच्छे लोंगो का नितांत अभाव होता जा रहा है। सभी राजनेता अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु भ्रष्टाचार, शोषण, अत्याचार जैसे कर्मों में लिप्त होकर रोटी सेकने में ही लगे रहते हैं। इसके अलावा राजनीति में आनेवाले लोगों में अधिकांश व्यक्ति पर किसी–न–किसी प्रकार का भ्रष्टाचार का आरोप है, फिर भी इन्हें टिकट मिल जाता है और चुनाव जीतकर कानून के चंगुल से बच भी जाते हैं। राजनीति में ऐसे लोगों की शख्त जरूरत है, जो अपना और अपने परिवार के स्वार्थ की चिंता किए बिना सभी के हित की बात सोंचकर कार्य करे। ऐसे में देखा जाए तो किन्नर समुदाय के लोगों को भी अगर राजनीति में पर्याप्त अवसर मिले तो वह स्त्री या पुरुष की अपेक्षा अधिक इमानदारी से स्वार्थरहित होकर कार्य करेंगी, क्योंकि इनका कोई परिवार नहीं होता है, जिसके लिए ये चोरी या बेईमानी करें। इसका उदाहरण हमें आलोच्य उपन्यास यमदीप में देखने को मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास का पात्र आनंद और मानवी के बीच टेलीफोन पर राजनीति को लेकर चर्चा होती है, जिसमें मानवी आनंद से कहती है कि वर्तमान राजनीति में अशिक्षित और बुद्धिहीन लोगों का ऐसा बोलबाला हो गया है कि कोई अच्छा और सच्चा व्यक्ति राजनीति में नहीं आना चाहता। उसकी बात सुनकर आनंद कहता है कि तो क्या हम सभी उसके समक्ष घुटने टेक दें। नारी–मुक्ति की तरह ही भ्रष्टाचार से मुक्ति के लिए भी किसी न किसी को संघर्ष करना पड़ेगा। आनंद का मानना है कि इसके लिए क्लीव–संस्कृति को मिटाना पड़ेगा। यहाँ क्लीव संस्कृति हिजड़ों की संस्कृति के संदर्भ में कहा गया है। आनंद की बात सुनकर मानवी कहती है कि सामान्य लोगों से कहीं अच्छी किन्नरों की राजनीति है यथा–*''क्लीव संस्कृति तो बहुत उदात्त संस्कृति समझ में आने लगी है, आनंद। कम से कम पीठ–पीछे वार करने की या स्वार्थ–सिद्धि के लिए किसी की लाश पर चढ़कर जाने की मानसिकता तो नहीं उनकी। अभ क्लीवों का ही शासन शायद जनता को रास आए। कम–से–कम उनके पास अपना भविष्य सवांरने की लोलुपता, भावी पीढ़ियों के लिए बैंक–बैलेंस बनाने का मोह तो नहीं रहेगा।''*[1] (माधव 2021:215) प्रस्तुत कथन से तात्पर्य यह है कि स्त्री–पुरुष राजनेताओं की अपेक्षा क्लीव–संस्कृति अर्थात किन्नर–संस्कृति के लोगों का शासन अब शायद देश के लोगों को ज्यादा पसंद आए, क्योंकि किन्नर समुदाय के लोग पीठ के पीछे से वार नहीं करते हैं और नहीं किसी की हत्या कर स्वयं के स्वार्थ की पूर्ति की मंशा नहीं रखते हैं। इसके अलावा उनके न कोई परिवार या रिश्ते–नाते ही होते हैं, जिसके लिए वे बैंक–बैलेंस बनाने हेतु भ्रष्टाचार करें। ऐसी स्थिति में देखा जाये तो स्त्री–पुरुष वर्ग के शाषण से तो किन्नर समुदाय ही ज्यादा बेहतर है। उपन्यासकार ने राजनीति में व्याप्त स्वार्थ लोलुपता के कारण हमारे नेता लोगों को भ्रमित कर आपस में लड़वाने का काम करते हैं। अपना वोट बैंक बढ़ाने के लिए नेता गण कई तरह के हथकंडे अपनाते हैं। मन्नाबाबू, हरींद्र और संतोष तीनों मिलकर षरयंत्र रचते दिखाई देते हैं, यथा – *''दिल्ली के ही किसी मुद्दे से इन्हें भी मात देंगे हम। वो वंदेमातरम वाले कांड को यहां खुलकर हवा दे दो... पता करो, मुस्लिम–बहुल क्षेत्र में किस विद्यालय में सरस्वती–वंदना या मातृ–वंदना होती है दो–चार मुस्लिम नेताओं को पकड़ो। मामला ठीक हो*

जाएगा। एक प्रेस कॉनफ्रेंस का इंतजाम कर देना, बस।''[2] (माधव 2021:121)

उपरोक्त पंक्तियों के द्वारा लेखिका ने राजनीति में वोट के लिए होने वाले अनैतिक कार्यों की पोल खोलते हुए कहती है कि किस प्रकार वोट बैंक को मजबूत करने के लिए मीडिया या संस्थानों का भी दुरुपयोग किया जाता है। यदि कोई पत्रकार या संस्थान उनकी बात नहीं मानता तो उनसे वे जबरन डरा धमका कर अपनी खबर छपवाने का प्रयास करते हैं। यथा – *''वो मानवी, अरे वही अखबारवाली, जो नारी उद्धारगृह गई थी, वह अपने चंगुल में ही ह...समझो...हम उसका उपयोग कर सकते हैं इसके लिए।''*[3] (माधव 2021:121) मन्नबाबू के सहयोगियों ने मानवी पर बहुत दबाव बनाया कि वह वंदेमातरम की खबर को छापे, किंतु मानवी उनकी बात नहीं मानती और खबर छापने से साफ इनकार कर देती है। मानवी के नहीं मानने पर वे लोग उसे शारीरिक व मानसिक रुप से शोषण करने का भी प्रयास करते हैं, किंतु सफल नहीं होते। इस प्रकार देखे तो राजनीति में रहने वाले लोग कितने दुष्ट प्रवृति के होते हैं, इसका सफल रुप में चित्रण लेखिका ने किया है। अत: इसी कारण राजनीति के क्षेत्र में बदलाव की अत्यंत आवश्यकता है। समय की यह माँग है कि इसके तहत किन्नरों को भी राजनीति में समान रुप से भाग लेने का अवसर प्राप्त हो, जिसके फलस्वरूप किन्नर अपने समुदाय के लोगों की व आम जन की समस्याओं के निदान हेतु आवाज उठा सके उसे न्याय दिला सके।

राजनीति में रहने वाले लोग किस प्रकार अपने प्रशासनिक ताकत का लाभ उठाकर नारीगृह में रहने वाली अनाथ लड़कियों का शारीरिक शोषण करते हैं–इसका भी चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने किया है। नारीगृह की अध्यक्षा रीता देवी अपनी संस्था की मासूस लड़कियों को पैसे व पद के लिए बड़े–बड़े नेताओं व अफसरों के समक्ष उन्हें सौंप देती है, जिससे नेताओं व अफसरों का बिस्तर गर्म हो सके। नारीगृह में आने वाली लड़कियाँ या तो अपने परिवार से भागी हुई थीं या अनाथ व बेसहारा थीं, जिन्हें नारी उद्धार के नाम पर शरण दिया जाता था। किंतु परदे के पीछे तो कुछ और ही खेल खेला जाता है, इन्हें नेताओं और अफसरों की भोग–विलास की वस्तु समझकर उनके साथ दुष्कर्म किया जाता है। इन मासूम लड़कियों के साथ होनेवाले गंदे खेल का पर्दाफाश करने का काम पत्रकार मानवी करती है। इस प्रकार के संस्थानों में पत्रकारों व बाहर के लोगों को सुरक्षा के नाम पर अंदर जाने तक नहीं दिया जाता। इसी नारी उद्धारगृह में पुलिस अधिकारी सोना को नाजबीबी से छीनकर रखवा देते हैं। अत: किस प्रकार राजनीति के नाम पर महिलाओं का शोषण होता है इसका यथार्थ चित्रण यहाँ देखने को मिलता है।

राजनीति के नाम पर केवल समाज के लोगों का शोषण होता है। धर्म, जाति, लिंग के आधार पर ये राजनेता लोग आम लोगों को आपस में लड़वाकर दंगा–फसाद करवाते है। इस दंगे फसाद की वजह से कितने बेकसूर लोगों का जीवन बर्बाद हो जाता है। देश के गली, मोहल्ले, गाँव आदि की मूलभूत सुविधाओं जैसे–सड़क, बिजली, राशन, शिक्षा, रोजगार आदि पर कोई नेता ध्यान नहीं देता। किन्नरों की समस्याओं पर भी कोई ध्यान नहीं देता है। इन किन्नरों की बस्ती में रहनेवाले लोगों के पास किसी प्रकार की कोई मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। उदाहरण के लिए इन नेताओं ने इन्हें शिक्षा, रोजगार, सड़क, राशन, पानी, बिजली जैसी तमाम सुविधाओं से इन्हें वंचित रखा गया है। कभी किसी राजनेता ने इन किन्नरों की समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए उनकी समस्या को दूर करने का प्रयास नहीं किया। प्रस्तुत उपन्यास में हम देखते हैं कि पहली बार कोई पत्रकार किन्नर समाज के बीच पहुँचकर उनकी समस्याओं को जानने का प्रयास करती है। वह पत्रकार मानवी होती है, जो किन्नर समुदाय के बीच पहुँचकर नाजबीबी और महताब गुरु के साक्षात्कार करते हुए उनकी समस्याओं के बारे में जानने का प्रयास करती है। वह नाजबीबी से कहती है हम अखबार वालों की तरफ से आए हैं और आपसे कुछ जानना चाहते हैं–अर्थात जैसे आप भी जानती हैं कि देश के कुछ लोग स्वार्थ में देश को बाँटना चाह रहे हैं, इसके संबंध में आपकी क्या राय है? जाति, धर्म के नाम पर दंगे करवा रहे हैं, भ्रष्टाचार फैला रहे हैं...तो...आखिर आप लोग भी इसी देश के लोग हैं । इस सवाल के जवाब में नाजबीबी कहती है, *''अपने देश के लिए तो देखिए, हम लोग मर मिटेंगे। जिस तरह फौज में एक सिपाही भर्ती होता है, पुलिस होता है...सरकार हमें भी*

हथियार दे दे। मैं तो लड़ूँगी लड़ते-लड़ते हिंदुस्तान के पीछे अपना जान दे दूँगी। बस मेरी यही तमन्ना है। मैं मेजर की बेटी हूँ, मेजर की!''[4] (माधव 2021:163) इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि किन्नर के हृदय में भी स्त्री-पुरुष की भाँति अपने देश के प्रति मर मिटने का जुनुन और जज्बा होता है। जरूरत पड़ने पर किन्नर भी देश की सेवा करते हुए दुश्मनों के परखच्चे उड़ा सकती है और अपना बलिदान दे सकती है। इस प्रकार देखा जाये तो यह कहा जा सकता है कि किन्नर समुदाय को वर्षों से उनकी आशा, आकांक्षाओं को देश के लोगों ने नजरअंदाज किया है। लेकिन समय के साथ अब कुछ किन्नर सजग होकर देश में अपनी सहभागिता देने के लिए आगे आ रहे हैं, किंतु राजनीति के क्षेत्र में किन्नरों का योगदान नाम मात्र है। जो भी हो, बदलाव की बयार चल पड़ी है और धीरे-धीरे ये लोग भी राजनीति के क्षेत्र में अपना पदार्पण कर रहे हैं।

आलोच्य उपन्यास 'दरमियाना' में हम देखते हैं कि दयारानी राजनीतिक स्तर पर काम कर अपने समुदाय के लोगों की भलाई करना चाहती है वह राजनीति स्वयं के स्वार्थ की पूर्ति हेतु नहीं करना चाहती है। वह किन्नर समुदाय के लोगों की भलाई के साथ-साथ युवाओं, किसानों, अति पिछड़ों के हक लिए भी लड़ना चाहती है। वह किसी जात-पात को नहीं मानती, उसका दृष्टि में सब समान है। वह वर्तमान की राजनीतिक स्थिति का जिक्र कर कहती है, *''ये राजनीति मैं अपने लिए नहीं करती बाबू!...हाँ, आपने जो पिछली रिपोर्ट लिखी थी!... सच ही लिखा था आपने कि मैं अपने समाज के लिए कुछ करना चाहती हूँ ।...बाकी समाज को तो इन नेताओं ने बाँट ही रखा है। पहले हिंदू-मुसलमान में बाँटा । फिर हिंदुओं को हिंदुओं में...और मुसलमानों को मुसलमानों में बाँटा!... दलितों, पिछड़ों, अति पिछड़ों और न जाने किस-किस में बाँट दिया- युवाओं, किसानों, मजदूरों, बेरोजगारों वगैरा-वगैरा में!''*[5] (अखिल 2018:121) प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से सुभाष अखिल जी जहाँ एक ओर वर्तमान की राजनीतिक नेताओं की पोल खोलते नजर आ रहे हैं तथा वहीं दूसरी ओर किन्नरों की साफ-सुथरी राजनीति करने की मंशा को भी उजागर किया है। किस प्रकार दयारानी एक किन्नर होते हुए भी सामाजिक भलाई के लिए काम करना चाहती है, किन्नरों का उद्धार करना चाहती है यह इन पंक्तयों से स्पष्ट होता है, किंतु कुछ दिन बाद उनके अपने ही लोगों द्वारा षड्यंत्र रचकर दयारानी की गोली मारकर हत्या कर दी जाती है। पुलिस दयारानी की हत्या का रहस्य सुलझाते हुए बतलाती है कि दयारानी की अपनी भतीजी गीता और उसके कथित प्रेमी ने मिलकर उसकी हत्या की है। यह आपसी मतभेद की वजह से होता है। इस तरह देखें तो अधिकांश किन्नरों की मौत के षड्यंत्र के पीछे उनके ही अपने लोगों का हाथ होता है, यथा-*''शुक्रवार रात (3,जुलाई 2015) को किसी अज्ञात हमलावर ने किन्नर गुरु एवं सामाजिक कार्यकर्ता दयारानी (65) की गोली मारकर हत्या कर दी। कैला भट्टा में उनके घर के बाहर पीछे की खिड़की से गोली मारकर-तीसरे सपने की संभावनाओं को मौत की नींद सुला दिया।''*[6] (अखिल 2018:125) इस प्रकार देखे तो किन्नरों के लिए काम करने वाली किन्नर गुरु की कारुणिक मृत्यु होती है। दयारानी की भाँति ही कितने किन्नरों की हत्या करवा दी जाती है और ये हत्याएँ उनके बीच रहने वाले अपने ही लोगों की आपसी रंजिश के कारण होता है। उनके डेरे के भीतर होने वाली विभिन्न प्रकार की गतिविधियों के बारे में उनके अपने लोगों के अतिरिक्त बाहरी किसी को ज्ञात नहीं होता, उनके साथी ढोलकियों, गिरियों, शरणार्थियों के द्वारा ही उनके भीतर की खबर बाहर के लोगों के तक पहुँचती है। अत: इन्हें आपसी मतभेद की राजनीति से बाहर निकलकर एक-दूसरे के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चलना होगा तभी इनका विकास संभव है।

आलोच्य उपन्यास 'दरमियाना' में कई स्थलों पर किन्नर दयारानी की राजनीति में भूमिका स्पष्ट रूप में देखने को मिलती है। पत्रकार सुधीर दयारानी से सवाल करते हुए कहते हैं कि कैसा चल रहा है आपका चुनाव प्रचार? जिसके जवाब में दयारानी कहती है अच्छा चल रहा है। विजय नगर में उनकी अच्छी वोट है, बाकी इलाकों में भी वह बहुत मेहनत कर रही हैं। इससे पहले भी वह चुनाव लड़ चुकी हैं। जैसे मेयर का चुनाव और लोकसभा का चुनाव वह लड़ चुकी है तथा अब विधानसभा की तैयारी में लगी हैं। वह अपना अनुभव साझा करते हुए कहती है, *''बाबू, हम किसी पार्टी के बड़े नेता तो हैं नहीं!...न ही हमारे पास हराम का पैसा गुंडे-बदमाश हैं!...हम तो अपनी ईमानदारी के बल पर*

ही लड़ते हैं!''[7] (अखिल 2018:114) जैसा कि हम सभी जानते हैं कि राजनीतिक पार्टियाँ चुनाव जीतने के लिए कितने पैसे खर्च करती हैं, गुंडे-मदमाशों का इस्तेमाल करते हैं-अर्थात चुनाव में शाम, दाम, दंड, भेद आदि सभी का प्रयोग करते हैं। ये नेताओं की तरह झूठे वादे और नारे का सहारा लेकर लोगों को ठगने का काम नहीं करते। इसी कारण इनकी बात आम जन तक उतनी प्रभावी रूप में नहीं पहुँच पाती है, जितनी की बड़े नेताओं की। यथा – *''हमारी बात इन नेताओं के झूठे नारों और वादों में दब जाती है।... ऐसा नहीं कि मैं केवल चुनाव के लिए ही सामने आती हूँ!... दो अनाथ आश्रमों, दूधेश्वर नाथ मंदिर और गऊशाला के लिए भी मुझसे जो बन पड़ता है, मैं करती हूँ।... चाहो तो इलाके में किसी से पूछ लो!''*[8] (अखिल 2018:114) इन पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि किन्नर अन्य नेताओं की भाँति स्वार्थ की राजनीति नहीं करती हैं। वे नि:स्वार्थ भाव से लोगों की सेवा करने में ही विश्वास करती हैं। अत: ऐसे में किन्नरों को भी स्त्री-पुरुष के समान ही राजनीति में अवसर मिले तो वह भी सामान्य लोगों की तुलना में बेहतर कार्य कर सकती हैं।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आलोच्य उपन्यासों में चित्रित किन्नरों समुदाय की राजनैतिक संवेदनाएँ पूर्णत: स्पष्ट हो जाती हैं। किन्नर समुदाय के लोग विकृत लिंगी के रूप में पैदा होने के कारण उसके दर्द को आजीवन भोगते हैं, इसे बड़ी गंभीरता के साथ आलोच्य उपन्यासों में प्रस्तुत किया गया है। जो समाज में अकेले ही तिरस्कृत नहीं हैं, बल्कि उनकी तरह उभयलिंगि, समलैंगिक, गरीब, यौनकर्मी तथा बेसहारा महिलाएँ भी प्रभावित हैं। इसलिए जबतक समाज इनके प्रति अपनी रूढ़िवादी दृष्टिकोण को नहीं बदलेगा, तब तक इनका पूर्ण विकास अवरुद्ध रहेगा। समस्त किन्नर समुदाय लैंगिक भेदभाव के कारण वर्षों से शोषित या प्रताड़ित होता चला आ रहा है। वर्षों से शोषित यह समुदाय आज अपने सम्मान और अधिकारों की माँग के लिए खड़ा है, ऐसे में हमें अपने नजरिए को बदलने की आवश्यकता है। अपनी विकृत मानसिकता को त्यागकर, इनके अधिकारों के प्रति संवेदनशील बनकर, इनके दुखों को दूर करने की आवश्यकता है। किन्नर समुदाय भी एक मानवीय शृंखला की मजबूत कड़ी है। किन्नर भी हमारे समाज के एक महत्वपूर्ण इकाई हैं, अत: इनके भीतर भी भारतीय लोगों के समान ही सामाजिक और राजनीतिक गुण उपल्बध हैं। ये लोग भी हमारी तरह ही हमारे समाज का एक अभिन्न अंग हैं। अत: ऐसे में इनके विकास के बिना हमारे समाज व देश का पूर्ण रूप से विकास संभव नहीं है। इनके नैतिक अधिकारों की रक्षा किए बिना इन्हें समाज की मुख्यधारा के साथ जोड़ा नहीं जा सकता। यदि किन्नर समुदाय के लोगों को भी समाज में उपयुक्त अवसर एवं समान अधिकार मिले तो यह भी देश के सामाजिक एवं राजनैतिक विकास में अपनी अहम सहभागिता अदा कर सकते हैं, जिसकी आलोचना आलोच्य उपन्यास के उपन्यासकारों ने कमोबेश सभी ने की है और उनके सामाजिक एवं राजनैतिक अधिकारों के लिए सतत प्रयासरत दिखाई देते हैं। किन्नर समुदाय के लोगों में जागृति लाकर उन्हें विकास के पथ पर अग्रसर किया जा सकता है। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. माधव, नीरजा. 'यमदीप'. दूसरा संस्करण. नई दिल्ली: सामयिक प्रकाशन, 2021, पृ. 125
2. वही, पृ. 121
3. वही, पृ. 121
4. वही, पृ. 163
5. अखिल, सुभाष. दरमियाना. प्रथम संस्करण. कानपुर: अमन प्रकाशन, 2018, पृ. 121
6. वही, पृ. 125
7. वही, पृ. 114
8. वही, पृ. 114

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

साबिन आलुन : कार्बी लोक का धार्मिक ग्रंथ

तैयबुन नेशा

शोधार्थी, हिंदी विभाग
असम विश्वविद्यालय, दीफू परिसर,
कार्बी आंगलांग (असम)-782462
6001237650
taiboonnesha123@gmail.com

शोध-सार :

भारतीय संस्कृति में रामकथा का महत्वपूर्ण स्थान है। यह केवल धार्मिक आख्यान ही नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक चेतना, लोक विश्वास एवं मानव मूल्यों का दर्पण है। अन्य रामायणों की तुलना में कार्बी रामायण पूर्ण रूप से मौखिक परंपरा पर आधारित लोकगीत है। गद्य की बजाय इसकी गीतात्मक प्रस्तुति लोकोन्मुख बना देती है। कथा का आधार भले ही रामकथा हो, परंतु प्रस्तुति कार्बी जनजातीय समाज के लोक विश्वास, जीवन शैली एवं सांस्कृतिक मूल्य के आधार पर हुई है। इस दृष्टि से देखा जाए तो साबिन आलुन अन्य रामायण से अलग है।

बीज शब्द :

पूर्वोत्तर भारत, साबिन आलुन, कार्बी रामायण, लोक साहित्य एवं संस्कृति।

प्रस्तावना :

गौरतलब है कि देश में मौजूद जनजातियों में लगभग एक-तिहाई हिस्सा पूर्वोत्तर भारत में निवास करती है। इन जनजातियों की खास बात यह है कि वे अपनी स्थानीय भाषा के अलावा अंग्रेजी और हिंदी भाषा का भी इस्तेमाल करती हैं। पूर्वोत्तर भारत के इसी सांस्कृतिक विविधता में शुमार यहाँ की जनजातियाँ हमेशा से अपनी संस्कृति को लेकर काफी सतर्क रही हैं। पूर्वोत्तर भारत की विभिन्न जनजातियों की अपनी अलग-अलग लोक परंपराएँ, लोक देवी-देवता, अनुष्ठान एवं विभिन्न पर्व-त्योहार हैं, जो उनके साहित्य एवं लोक संस्कृति का आधार हैं। ये सभी जनजातियाँ भले ही हिंदी और अंग्रेजी सीखने लगी हों, लेकिन इन्हें अपनी भाषा, खान-पान, रीति-रिवाज एवं धार्मिक मान्यताओं से अत्यधिक प्रेम है। यह भावना एक ओर धार्मिक मान्यताओं, प्राचीन संस्कृति, भाषा, साहित्य, सामाजिक नियमों और अपनी वेशभूषा के प्रति अनुराग को बनाए रखने के लिए तत्पर है, तो दूसरी ओर पूर्वोत्तर भारत की विभिन्न जनजातियों ने अपनी अलग-अलग लोक परंपराएँ, लोक देवी-देवता एवं विभिन्न अनुष्ठानों को बनाए रखने का महत्वपूर्ण कार्य भी किया है।

दरअसल असम को पूर्वोत्तर भारत का प्रवेश द्वार कहा जाता है, जो विविधताओं का पर्याय है। यहाँ अनेक जनजातियाँ निवास करती हैं, जिनमें कार्बी जनजाति भी एक महत्वपूर्ण है। कार्बी जनजाति मुख्य रूप से असम के कार्बी आंगलांग क्षेत्र के अलावा डिमा हसाओ, होजाई, नगाँव, मोरीगाँव, कामरूप, कछार, एवं मेघालय में भी छिट-पुट दिखाई पड़ती है, जिनकी अपनी सभ्यता, संस्कृति, रीति-रिवाज,

रहन-सहन तथा परंपराएँ हैं। अपने रीति-रिवाज, परंपरा, लब-ओ-लहजा तथा जीवन जीने के अक्षुण्ण तरीके सुसभ्यता के प्रभाव से वंचित रहकर भी अपनी संस्कृति को बचाए रखते हैं। यहाँ एक बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि जब तक कोई व्यक्ति उनकी परंपराओं एवं धार्मिक रीति-रिवाजों के साथ हस्तक्षेप नहीं करता, तब तक यह जनजाति बड़ी ही सद्भावना के साथ जीवन-यापन करते हैं, परंतु बहुत पहले या कहें कि महाभारत काल के दौरान आर्यों ने इन जनजातियों को सभ्यता से निकालने का जोरदार प्रयत्न किया। मूलत: उन्हीं के वंशज आज विभिन्न स्थानों पर निवास करते हुए दिखाई पड़ते हैं, जिन्हें जनजाति के नाम से जाना जाता है।

कार्बी जनजाति के संदर्भ में निश्चित रूप से देशांतर गमन की बात कहना कठिन है। असम की लोक संस्कृतिक की अद्भुत कलाओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करने वाले बिष्णु प्रसाद राभा (कला गुरु) ने इन्हें 'असम का कोलंबस' कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि जिस स्थान पर कार्बी जनजाति का निवास स्थल है, उस निवास स्थल की खोज कार्बी जनजातियों के द्वारा हुई। ऐसा इसलिए प्रतीत होता है, क्योंकि इन स्थलों पर किसी अन्य जाति या जनजाति के ठहराव का साक्ष्य नहीं मिलता। कार्बी जनजाति मूलरूप से असम के कार्बी आंगलांग जिले में अधिक संख्या में निवास करती है, जो हाल ही में 'ईस्ट और वेस्ट' कार्बी आंगलांग नाम से विभाजित हुआ है। कार्बी जनजाति के संपूर्ण इतिहास को अगर जानना है, तो उनके रहन-सहन, बसने की कला, सोच-विचार, परंपरा एवं धार्मिक रीति-रिवाज तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कितने फलीभूत हैं, इससे रू-ब-रू होना आवश्यक है।

विश्लेषण :

आदिम मानव अपनी जिजीविषा को समेटे हुए जब प्रकृति के अद्भुत रहस्यमय सौंदर्य की गोद में जीने का सलीका, विकास एवं प्रगति की राह पर चला होगा, तो अनायास ही किसी न किसी रूप में उसके अंत:चेतना में अक्षुण्ण देवत्व की प्रवृत्ति जागृत हुई होगी। तब से लेकर अब तक पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है या परंपरा का स्वरूप धारण कर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती रही है। सभ्यता एवं विकास की इसी भूमि पर धर्म रूपी भव्य भवन भी टिका है, जिसे परिस्थिति एवं देश काल के अनुरूप सार्थक स्वरूप देने का निरंतर प्रयास रहा है। इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि इसमें व्यक्तिगत स्वार्थ की खाद भी मिलाई गई है।

सभ्यता एवं विकास के अनेक मोड़ों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि कुछ जनजातियां अपनी पारंपरिक मान्यताओं एवं धर्म संबंधी विकृतियों को कुछ हद तक छोड़ने में सफलता भी प्राप्त की है, तो कुछ जनजाति ऐसी भी है, जो अपने पारंपरिक जड़ मान्यताओं की मानसिकता से उबर नहीं पाई है। इसका परिणाम यह है कि वह विकास की मूल धारा से वंचित तो हैं ही साथ ही साथ अपनी भाषा, साहित्य, संस्कृति एवं कला से भी वंचित है, जिसमें उनकी संवेदनाएं विद्यमान हैं, वह भी उपेक्षित है। आधुनिकता के इस दौर में भी बदलाव की गति उनकी मानसिकता में बहुत ही मंद है।

रामायण केवल वही नहीं, जो वाल्मीकि या तुलसीदास ने लिखी हैं, बल्कि देश में इतनी रामायणों का जिक्र मिलता है कि निश्चित रूप से संख्या का पता लगा पाना संभव नहीं। देश और दुनिया की इन तमाम निराले रामायणों में से 'साबिन आलुन' भी एक है। इसे कार्बी लोक संस्करण कहा जाता है। इसमें रावण की बहन सूर्पणखा को साबिन कहा गया है और राम के भाई लक्ष्मण को खनबेनी या लोखोन की संज्ञा से अभिहीत किया गया है। प्रेमकांत महंत के द्वारा साबिन आलुन का प्रथम संकलन किया गया तथा दूसरा संकलन सैमसिंग हांसे द्वारा किया गया, जो काफी चर्चा का विषय बना। अगर इसके आधुनिक संस्करण की बात की जाए तो धर्मसिंह के द्वारा संकलित किया गया है। गौरतलब है कि साबिन आलुन में सीता का जन्म मोरनी के अंडे से होता है, धरती से नहीं। कैकेई के हठ के कारण राम का वनगमन नहीं होता, बल्कि जमीन की खोज के लिए होता है, ताकि खेती हो सके। विवाहोपरांत राम, सीता और लक्ष्मण वन जाते हैं। खेती करने के लिए कोई पर्याप्त जमीन नहीं थी। आजीविका अभियान में नराजोन पहाड़ पर पहुँचे और वहीं इनकी मुलाकात सूर्पणखा से हो जाती है। साबिन राम पर मुग्ध होती है और विवाह

का प्रस्ताव रखती है, जिस पर राम अपने विवाहित होने का तर्क देकर उसे मना करते हैं। तब सीता के पास पहुँचती है और आग्रह करती है कि वह अपने कार्पो (देवर) से विवाह करा दें। तब सीता खनबेनी (लक्ष्मण) से कहती हैं –

सामी इनुत निमसोपी
नाग्लों आंफी आरिनी
रासेन केमे कोम काली
लाले रेन नान खनबेनी

इसका अर्थ यह हुआ कि हे लक्ष्मण यह युवती बार-बार मेरे पास आती है। यह परम सुंदरी है। इससे विवाह कर लो।

सीता की प्रतिक्रिया का उत्तर उग्र स्वभाव वाले लक्ष्मण जो कि भाभी के अलावा किसी अन्य के हाथ से भोजन नहीं स्वीकारते, अपनी नाराजगी व्यक्त करते हुए कहते हैं–

जुनेक जुनेक री टेपी
चोरेन चोचे लोखेमी
पापीन इंगनाम तिबिन पी
नात्सी दोजी सो कार्बी
कार्बी काली हीईपी

अर्थात् ओ भाभी तुम अज्ञानी हो। तुम्हारे अलावा किसी के हाथ का भोजन भी नहीं करता फिर भी तुम बेकार की बात करती हो। किसी मानवी का आगमन की कल्पना भी तुम इस दुर्गम वन में कैसे कर सकती हो। यह मानवी नहीं यह एक दुरात्मा है।

दरअसल सूर्पणखा के प्रति सीता की संवेदना अधिक होने के कारण लक्ष्मण की दुरात्मा जैसे शब्द को भी अनसुना कर देती हैं और लक्ष्मण के सामने जीवन की व्यावहारिकता को रखती है। सीता की इस व्यवहारिकता के पीछे सूर्पणखा की काम बनती हुई दिखाई पड़ता है–

नांग तुम रामखे मुतीनी
पेन मिल्ड ने शिंता कुंग्री
चोजक जे मा खनबेनी
थेंग्लांग चोरलेंपराप आरी
लाले रेन नान खनबेनी

यहाँ सीता लक्ष्मण से कहती है कि मैं अकेली इस घर को कैसे संभालूँ। तुम दोनों के बीच मैं अकेली हूँ और मुझे भी किसी की सहायता की आवश्यकता है। प्रिय देवर इस युवती से विवाह कर ही लो।

हालांकि तब भी बात नहीं बन पाई और सीता के मस्तिष्क में शंकाएँ उत्पन्न होती हैं। लक्ष्मण से प्रश्न कर बैठती है कि राम के मरणोपरांत कहीं मुझसे ही विवाह तो नहीं करना चाहते। इसलिए मेरी बात टाल रहे हो। लक्ष्मण को विवश होना पड़ा। जैसे ही सूर्पणखा लक्ष्मण के करीब जाने की कोशिश करती है, तो लक्ष्मण सूर्पणखा की नाक काट देता है। तड़पती हुई सूर्पणखा वहाँ से चली गई। थोड़ी ही देर में छद्म रूप धारण कर एक सुंदर हिरण के रूप में राम के झोंपड़ी के सामने प्रकट होती है और सीता उस हिरण की खाल-मांस के लिए आग्रह करती हैं, ताकि धूप में सुखाकर कढ़ाई-बुनाई कर सके। अत: यह देखा जा सकता है कि कार्बी रामायण अन्य रामायणों की तुलना में कितना रोचक है। समानताएँ तो आप देख पा रहे होंगे, पर असमानताएँ भी बहुत दिखाई पड़ता है।

निष्कर्ष :

अन्य जनजातियों की तरह कार्बी जनजाति की भी कुछ पारंपरिक मान्यताएँ हैं, जो प्राचीन काल से चली आ रही हैं। इनमें कुछ पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक चरित्र के भी है। मुख्य रूप से कुछ ऐसी परंपराएँ हैं, जो आधुनिक संदर्भ में अप्रचलित साबित हुई हैं, तो कुछ समय की टूट-फुट को झेल रही हैं। ज्ञान-विज्ञान, नवीन शिक्षा के प्रभाव तथा अन्य भाषा एवं संस्कृति के संपर्क ने इनकी सोच-विचार में काफी हद तक परिवर्तन लाया है। इसका ही परिणाम है कि यह जनजाति आज विश्व स्तर पर अपनी अलग भाषा, साहित्य और बड़े पैमाने पर अपनी संस्कृति का उत्तम से सर्वोत्तम रूप देने का प्रयत्नशील है, परंतु प्रतिस्पर्धा के इस दौर में भी वह अपनी कला, साहित्य एवं संस्कृति को लिपिबद्ध कर अपनी विरासत को आने वाली पीढ़ी तक लिखित इतिहास नहीं सौंप सकते, क्योंकि इनके पास लिपि की नितांत अभाव है। यह बात और है कि आधुनिक शिक्षा व्यवस्था ने कार्बी जनजाति में रौशनी उकेरी, परंतु साहित्य के नए पृष्ठभूमि का अभाव आज भी दिखाई पड़ता है।

चूँकि दुनिया का महानतम महाकाव्य रामायण है, जिसे एक दुखद प्रेम कथा भी कहा जा सकता है। कर्तव्य, विश्वास, विश्वासघात, धर्म–अधर्म, मान–अपमान आदि इस पुरुष प्रधान समाज द्वारा लादी गई अभिलाषाओं, आकांक्षाओं और अधिकारों की बेड़ियों को तोड़ती साबिन आलुन समाज में स्त्री जाति के महत्वपूर्ण आयामों को दर्शाती है। इससे बढ़कर यह एक यात्रा है या फिर यह कहूँ कि सीता सी बनो वाक्य की अभिव्यक्ति है। सीता की यह यात्रा प्राचीन काल की कथा को अद्‌भुत रूप से व्यक्त तो करती ही है साथ ही प्रियजनों की स्त्री के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए, किसी भी रिश्ते में स्त्रियों का क्या अधिकार होता है तथा स्त्री को कब अपने साथ हुए अन्याय के खिलाफ संघर्ष के साथ उठ खड़ा होना चाहिए और इसका विरोध किस प्रकार करना चाहिए जैसे मुद्दों को भी दर्शाती है। ❑

संदर्भ :

गुप्ता,रमणिका। भारत के आदिवासी लेखक एवं अवदान (भाग–1)। पूर्वोत्तर भारत।
प्रथम संस्करण। नई दिल्ली : मित्तल प्रकाशन, 2006।

अनुशब्द, डॉ. पूर्वोत्तर भारत का जनजातीय साहित्य। नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2017।

समन्वय पूर्वोत्तर (खंड–4), अप्रैल–जून, 2020।

द्विभाषी राष्ट्रसेवक (अंक–8), नवंबर–दिसंबर, 2021.

श्री धन सिंह तेरन, पद्मश्री विजेता लेखक, पूर्व सदस्य, कार्बी आंगलांग ऑटोनोमस काउंसिल, दीफू से दिनांक 03/05/23, 04/05/23 को हुई लंबी बातचीत।

श्री राम सिंह तेरन, उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, हामरेंन में कार्यरत हिंदी शिक्षक से मई, 2023 को हुई लंबी बातचीत।

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945
Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

ভাষা শিক্ষণ আৰু শিশু মনোবিজ্ঞানৰ দৃষ্টিৰে হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা আৰু পানীন্দ্ৰনাথ গগৈৰ পঢ়াশলীয়া পাঠ্যপুথিৰ বিশ্লেষণ

ড° কৰবী দত্ত
সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
বীৰ ৰাঘৱ মৰাণ চৰকাৰী আদৰ্শ মহাবিদ্যালয়, ডুমডুমা-৭৮৬১৫৩
৯৮৬৪৬৮৩৭৯৯
karobidutta93@gmail.com

ড° স্বাতী কিৰণ
সহ প্ৰাধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়
ডিব্ৰুগড়-৭৮৬০০৪
৮৪৭৩০৯০৬৪৭
swatikiran2014@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

ঊনবিংশ শতিকাৰ সময়ছোৱা অসমৰ ভাষা আৰু শিক্ষাৰ ইতিহাসত এক গুৰুত্বপূৰ্ণ অধ্যায় হিচাপে বিবেচিত। ইয়াণ্ডাবু সন্ধিৰ পিছত ইংৰাজ শাসনৰ প্ৰতিষ্ঠা আৰু ১৮৩৬ চনত বাংলা ভাষাৰ প্ৰৱৰ্তনে অসমীয়া ভাষা আৰু শিক্ষাব্যৱস্থাত গভীৰ প্ৰভাৱ পেলায়। অসমীয়া ভাষাক বঙলা ভাষাৰ উপভাষা বুলি প্ৰতিপন্ন কৰাৰ অপচেষ্টাই পাঠ্যপুথি প্ৰণয়ন আৰু ভাষাৰ ক্ষেত্ৰত সংকটৰ সৃষ্টি কৰে। অৱশ্যে আমেৰিকান বেপিষ্ট মিছনেৰীসকল, আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকন, হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা, গুণাভিৰাম বৰুৱা, পানীন্দ্ৰনাথ গগৈৰ আদিৰ দৰে ভাষাপ্ৰেমীসকলৰ প্ৰচেষ্টাত অসমীয়া ভাষাৰ পুনৰ প্ৰতিষ্ঠাৰ আন্দোলন গঢ় লৈ উঠে। তাৰ ফলস্বৰূপে ১৮৭৩ চনত অসমীয়া ভাষা পুনঃ বিদ্যালয়, আদালতসমূহত শিক্ষাৰ মাধ্যম হিচাপে স্বীকৃতি লাভ কৰে। এই সময়ছোৱাত পাঠ্যপুথি প্ৰণয়ন, ভাষাৰ পুনৰুজ্জীৱন আৰু শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত গুৰুত্বপূৰ্ণ পদক্ষেপ গ্ৰহণ কৰা দেখা যায়। এই সময়ছোৱাত ৰচিত পাঠ্যপুথিসমূহে কেৱল অসমীয়া ভাষাৰ পুনৰ প্ৰতিষ্ঠা আৰু ভাষা শিক্ষণৰ আধাৰ হিচাপেই সৃষ্টি কৰা নাছিল, বৰং শিশুৰ বৌদ্ধিক, মানসিক আৰু নৈতিক বিকাশতো গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰিছিল। প্ৰস্তাৱিত গৱেষণাপত্ৰখনত ভাষা-শিক্ষণ আৰু শিশু-মনোবিজ্ঞানৰ দৃষ্টিৰে হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা আৰু পানীন্দ্ৰনাথ গগৈৰ ৰচিত পঢ়াশলীয়া পুথিসমূহৰ বিশ্লেষণ কৰা হৈছে। পত্ৰখনৰ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যে হৈছে পাঠ্যপুথিসমূহত ব্যৱহৃত ভাষা শিক্ষণ পদ্ধতি, বিষয়বস্তুৰ বিন্যাস আৰু শিশুৰ মানসিক বিকাশৰ সৈতে সামঞ্জস্য মূল্যায়ন কৰা।

বীজ শব্দ ঃ

ঊনবিংশ, শিশু-মনোবিজ্ঞান, হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা, পানীন্দ্ৰনাথ গগৈ, পঢ়াশলীয়া, পাঠ্যপুথি আদি।

১.০ বিষয়ৰ পৰিচয়

ইয়াণ্ডাবু সন্ধি অসমৰ শিক্ষাব্যৱস্থা আৰু পাঠ্যপুথিৰ ইতিহাসৰ সৈতে ওতপ্ৰোতভাৱে জড়িত। ইয়াণ্ডাবু সন্ধিয়ে অসমৰ ৰাজনৈতিক, অৰ্থনৈতিক, সামাজিক, শৈক্ষিক আদি বিভিন্ন দিশত প্ৰচুৰ পৰিৱৰ্তনৰ সূচনা কৰিছিল। ইয়াণ্ডাবু সন্ধিৰ পিছতেই এক বিশেষ কাৰণত অসমৰ ভাষা-সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰখনত সংকটৰ সৃষ্টি হৈছিল। ইংৰাজে প্ৰশাসনিক কাৰ্যৰ সুবিধাৰ্থে ইংৰাজী ভাষা জনা বাংলাভাষী বিভিন্ন কৰ্মচাৰী নিয়োগ কৰিছিল। এই কৰ্মচাৰীসকলে নিজৰ স্বাৰ্থ পূৰণৰ বাবে ইংৰাজসকলৰ মনত প্ৰত্যয় জন্মালে যে অসমীয়া ভাষাটো সুকীয়া এটা ভাষা নহয়, বঙলা ভাষাৰ এটা আঞ্চলিক ৰূপহে। সেয়ে ইংৰাজসকলে ১৯৩৫ চনত দেশীয় ভাষা আইন মতে অসমত বঙলা ভাষা প্ৰৱৰ্তন কৰে আৰু সেইমৰ্মেই ১৯৩৭ চনৰ ৯ এপ্ৰিল তাৰিখৰ পৰা অসমত অসমীয়া ভাষাৰ পৰিৱৰ্তে স্কুল, আদালত, প্ৰশাসন সকলোতে বাংলা ভাষা প্ৰৱৰ্তন কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰে। এই কাৰ্যই অসমৰ সমগ্ৰ

শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰখনকে বিশেষভাৱে প্ৰভাৱিত কৰিছিল। সেইসময়ত ইয়াৰ বিৰোধিতা কৰা কোনো শক্তিশালী পক্ষ নাছিল যদিও আমেৰিকান বেপ্টিষ্ট মিছনেৰীসকলৰ আগমনে অসমীয়া ভাষাৰ ক্ষেত্ৰখনলৈ আশাৰ বতৰা কঢ়িয়াই আনিলে। মিছনেৰীসকলে প্ৰকাশ কৰি উলিওৱা মিছেছ কাটাৰৰ Assamese Vocabulary and Phrases, কাশীনাথ তামুলী ফুকনৰ *আসাম বুৰঞ্জী পুথি*, বকুল কায়স্থৰ *গণিতৰ পুথি* আদিয়ে অসমীয়া ভাষাৰ স্বকীয় পৰিচয় প্ৰতিষ্ঠাত সহায় কৰিছিল। মিছনেৰী ৰেভ ব্ৰাউনে অসমীয়া ভাষাৰ পুনৰ প্ৰতিষ্ঠাৰ বাবে অহোপুৰুষাৰ্থ কৰিছিল। ১৮৪৮ চনত প্ৰকাশিত ব্ৰাউনৰ Grammatical Notices of the Assamese Language ৰ পাতনিত অসমীয়া ভাষাৰ পুনৰ প্ৰতিষ্ঠাৰ বাবে শক্তিশালী যুক্তি আগবঢ়োৱা হৈছিল। আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকনৰ A Few Remarks on Assamese Language পুস্তিকা, মফাট মিলচৰ ৰিপৰ্ট আদিয়েও অসমীয়া ভাষাৰ পুনৰ প্ৰতিষ্ঠাৰ বাবে সহায় কৰিছিল। মিলচে তেওঁৰ ৰিপৰ্টত বিদ্যালয় আৰু আদালতত অসমীয়া ভাষাৰ পুনৰ প্ৰতিষ্ঠাৰ পক্ষে মত প্ৰকাশ কৰিছিল। মিছনেৰীসকলে প্ৰকাশ কৰা অৰুনোদইৰ পাততো অসমীয়া ভাষাৰ বাবে যুদ্ধ কৰাৰ সুযোগ দিয়া হৈছিল। হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই ব্যাকৰণ, অভিধান লিখি অসমীয়া ভাষাৰ পুনৰ প্ৰতিষ্ঠাৰ বাবে যুঁজিছিল। অৱশেষত ঊনবিংশ শতিকাৰ সপ্তম দশক পৰ্যন্ত অৰুনোদই যুগৰ ত্ৰিমূৰ্তি আৰু মিছনেৰীসকলৰ সহযোগত অসমীয়া ভাষাৰ পুনৰ প্ৰতিষ্ঠাৰ বাবে কৰা প্ৰচেষ্টা সফল হৈছিল আৰু ১৮৭৩ চনত অসমীয়া ভাষা স্কুল, প্ৰশাসন আৰু আদালতত পুনৰ প্ৰতিষ্ঠিত হৈছিল। অসমীয়া ভাষাৰ পুনৰ প্ৰচলনৰ লগে লগে পাঠ্যপুথিৰ প্ৰয়োজনৰ কথা আহি পৰিছিল। মিছনেৰীসকলে ভাষা শিক্ষা, নৈতিক শিক্ষা, ভুগোল, গণিত, বিজ্ঞান, প্ৰকৃতিবিজ্ঞান আদি বিষয়ক লৈ পঢ়াশালিৰ উপযোগী পুথি প্ৰণয়ন কৰিছিল আৰু শিশুৰ বাবে লিখা এই পুথিসমূহ অসমৰ মিছনেৰী স্কুলবিলাকত পাঠ্যপুথি হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা হৈছিল। অসমীয়াসকলৰ ভিতৰত আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকনেই প্ৰথমে ছাত্ৰসকলৰ বাবে *অসমীয়া ল'ৰাৰ মিত্ৰ* প্ৰণয়ন কৰিছিল। যেতিয়া ইংৰাজ চৰকাৰে অসমীয়া ভাষা পুনৰ সংস্থাপিত কৰিলে তেতিয়া এই *অসমীয়া ল'ৰাৰ মিত্ৰই* পাঠ্যপুথি হিচাপে গ্ৰহণ কৰিব পৰা একমাত্ৰ গ্ৰন্থ আছিল। সেয়ে অসমীয়া ভাষা পুনৰ প্ৰচলনৰ পিছত উদ্ভৱ হোৱা পাঠ্যপুথিৰ অভাৱৰ সমস্যা দূৰ কৰিবলৈ পাঠ্যপুথি লেখাৰ প্ৰতিযোগিতাৰ আয়োজন কৰা হ'ল আৰু চৰকাৰী জাননী প্ৰকাশ কৰা হ'ল। এই জাননীৰ উত্তৰত পাণ্ডুলিপিসমূহৰ ভিতৰত হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ *অসমীয়া আদিপাঠৰ* পাণ্ডুলিপি শ্ৰেষ্ঠ বিবেচিত হৈছিল। তেখেতে ৰচনা কৰা আন এখন পাঠ্যপুথি আছিল *পাঠমালা*। ইয়াৰ উপৰি গুণাভিৰাম বৰুৱাৰ *ল'ৰাৰ পুথি*, *অসমীয়া ল'ৰাৰ ভুগোল*; ধৰ্মেশ্বৰ গোস্বামীৰ *ল'ৰাবোধ ব্যাকৰণ*, *শিশুপাঠ*; পানীন্দ্ৰনাথ গগৈৰ *ল'ৰাশিক্ষা*, মধুৰাম দাসৰ *বৰ্ণবোধ*, লম্বোদৰ বৰাৰ *ল'ৰাবোধ* আদি ঊনবিংশ শতিকাৰ পাঠ্যপুথি। এনে পাঠ্যপুথিৰ ভিতৰত ভাষাশিক্ষণ পুথিৰ উপৰিও বুৰঞ্জী, ভূগোল, জীৱনী, নীতিশিক্ষা আৰু অংক বিষয়ক পুথিও আছিল।

অসমীয়া ভাষা-শিক্ষাৰ ইতিহাসত হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা আৰু পানীন্দ্ৰনাথ গগৈৰ ৰচিত পঢ়াশলীয়া পুথিসমূহে এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰিছে। এই গৱেষণাপত্ৰখনত ভাষা শিক্ষণ আৰু শিশু মনোবিজ্ঞানৰ দৃষ্টিকোণৰ পৰা উভয় লেখকৰ পঢ়াশলীয়া পুথিসমূহৰ তুলনামূলক আৰু বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন কৰা হৈছে। শব্দচয়ন, বাক্যগঠন, বিষয়বস্তু, শিশুৰ মানসিক স্তৰৰ সৈতে সামঞ্জস্য, নৈতিক শিক্ষাৰ অন্তৰ্ভুক্তি আদিৰ জৰিয়তে এই পুথিসমূহে শিশুৰ ভাষা-উন্নয়নত কেনেদৰে সহায় কৰিছে সেই বিষয়ে অধ্যয়ন আগবঢ়োৱা হৈছে।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

'ভাষা শিক্ষণ আৰু শিশু মনোবিজ্ঞানৰ দৃষ্টিৰে হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা আৰু পানীন্দ্ৰনাথ গগৈৰ পঢ়াশলীয়া পাঠ্যপুথিৰ বিশ্লেষণ' শীৰ্ষক বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যসমূহ হ'ল —

➢ হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই ৰচনা কৰা পুথিসমূহৰ বিষয়বস্তু আৰু ভাষাগত বৈশিষ্ট্যৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা।

➢ পানীন্দ্ৰনাথ গগৈয়ে ৰচনা কৰা পুথিসমূহৰ বিষয়বস্তু আৰু ভাষাগত বৈশিষ্ট্যৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা।

➢ ভাষা শিক্ষণ আৰু শিশু মনোবিজ্ঞানৰ দৃষ্টিৰে পুথিসমূহৰ শিক্ষামূলক গুৰুত্ব নিৰূপন কৰা।

০.৩ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

ঊনবিংশ শতিকাত ৰচিত অসমীয়া বিষয়ৰ পঢ়াশলীয়া পাঠ্যপুথিসমূহে সেই সময়ত পাঠ্যপুথিৰ অভাৱ পূৰণত যথেষ্ট সহায় কৰিছিল। বিভিন্ন সময়ত ৰচিত এই পুথিসমূহৰ ভূমিকা নিৰূপণ কৰাত আলোচ্য বিষয়টোৰ গুৰুত্ব আছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

'ভাষা শিক্ষণ আৰু শিশু মনোবিজ্ঞানৰ দৃষ্টিৰে হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা আৰু পানীন্দ্ৰনাথ গগৈৰ পঢ়াশলীয়া পাঠ্যপুথিৰ বিশ্লেষণ' শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়ন কৰোঁতে মূলতঃ সমীক্ষাত্মক আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.৫ তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ

'ভাষা শিক্ষণ আৰু শিশু মনোবিজ্ঞানৰ দৃষ্টিৰে হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা আৰু পানীন্দ্ৰনাথ গগৈৰ পঢ়াশলীয়া পাঠ্যপুথিৰ বিশ্লেষণ' শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়ন কৰোঁতে মুখ্য উৎস হিচাপে নিৰ্বাচিত

লেখকৰ দ্বাৰা ৰচিত পঢ়াশলীয়া পাঠ্যপুথিসমূহ আৰু গৌণ উৎস হিচাপে বিভিন্ন আলোচনা, প্ৰবন্ধ, আলোচনী, মাতৃভাষা শিক্ষণ সম্পৰ্কীয় গ্ৰন্থ, ইণ্টাৰনেট আদিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.৬ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

প্ৰস্তাৱিত বিষয়টোৰ বিষয়বস্তুৰ পৰিসৰলৈ লক্ষ্য ৰাখি ঊনবিংশ শতিকাত প্ৰচলিত সকলোবোৰ পাঠ্যপুথিক অধ্যয়নৰ পৰিসৰত সামৰি লোৱা নাই। আমাৰ অধ্যয়নত কেৱল হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা আৰু পানীন্দ্ৰনাথ গগৈৰ দ্বাৰা ৰচিত পঢ়াশলীয়া পাঠ্যপুথিৰ সম্পৰ্কেহে গৱেষণা আগবঢ়োৱা হৈছে।

১.০ শিশু মনোবিজ্ঞান আৰু ভাষা শিক্ষণ - তাত্ত্বিক প্ৰেক্ষাপট ঃ

শিশু মনোবিজ্ঞানৰ ধাৰণা দিবলৈ যোৱাৰ আগত শিশু সাহিত্য আৰু শিশু মনোবিজ্ঞানৰ বিষয়ে জানি লোৱাটো অতিকৈ প্ৰয়োজন। কাৰণ শিশু সাহিত্য আৰু শিশু মনোবিজ্ঞান এই বিষয় দুটা এটাৰ আনটোৰ পৰিপূৰক। শিশু মনোবিজ্ঞানে শিশুৰ সৰ্বাংগীন বিকাশ সাধনৰ দিশ যেনে—শাৰীৰিক, মানসিক, সামাজিক, বৌদ্ধিক অৱস্থা আৰু আচৰণ, কাৰ্যকলাপসমূহৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰে। আনহাতে শিশু সাহিত্য ৰচনা কৰাৰ মূল উদ্দেশ্য হ'ল শিশুৰ সৰ্বাংগীন দিশসমূহৰ বিকাশ সাধন কৰা। গতিকে শিশুৰ মানসিক জগতৰ প্ৰতিটো দিশৰ বিষয়ে জনাৰ লগতে শিশুক সুস্থ সবল, আকৰ্ষণীয় ব্যক্তিত্ব গঢ়ি তুলিবৰ বাবেই শিশু মনোবিজ্ঞানৰ জ্ঞান অতি প্ৰয়োজনীয়। শিশু মনোবিজ্ঞানৰ ধাৰাটোৰ আধাৰতেই শিশু সাহিত্যৰ দৰে এটা শাখা জন্ম হ'ল।

শিশু মনোবিজ্ঞানৰ সকলো দিশৰ জ্ঞান অৰ্জন কৰি শিশুৰ উপযোগীকৈ ৰচনা কৰা সাহিত্যই শিশুৰ সামগ্ৰিক বিকাশ সাধনত সহায় কৰে। শিশু মনোবিজ্ঞানৰ অবিহনে শিশু সাহিত্যই সাৰ্থকতা লাভ কৰিব নোৱাৰে। গতিকে এজন শিশু সাহিত্যিক এজন শিশু মনোবিজ্ঞানীও। কাৰণ তেওঁ শিশুৰ সকলোবোৰ দিশ সূক্ষ্মভাৱে পৰ্যৱেক্ষণ কৰি শিশু সাহিত্যত ইয়াৰ বৈশিষ্ট্যবোৰ প্ৰতিষ্ঠা কৰে। শিশু সাহিত্য ৰচনা কৰোঁতে শিশু সাহিত্যিকে শিশুৰ মনোজগতখনৰ লগত পৰিচয় হোৱাটো অতি প্ৰয়োজন। শিশু মনোবিজ্ঞানৰ আধাৰত শিশু মনস্তত্ত্বৰ সকলোবোৰ দিশ সূক্ষ্মভাৱে অধ্যয়ন কৰি শিশু সাহিত্যৰ জৰিয়তে শিশুৰ সৰ্বাংগীন দিশৰ বিকাশ সাধন কৰাটোৱেই শিশু সাহিত্যৰ মূল উদ্দেশ্য। শিশু মনোবিজ্ঞানৰ ক্ষেত্ৰত জ্যঁ পিয়াজে, ৱাটচন, লেভ ভাইগোটস্কিৰ আদিৰ দৰে মনোবিজ্ঞানীসকলৰ তাত্ত্বিক দৃষ্টিভংগী বিশেষভাৱে উল্লেখযোগ্য। পিয়াজেৰ মতে শিশুৰ জ্ঞানাত্মক বিকাশ বিভিন্ন পৰ্যায়ৰ মাজেদি আগবাঢ়ে আৰু প্ৰাথমিক স্তৰৰ শিশুৱে স্পষ্ট, দৃশ্যমান আৰু অভিজ্ঞতাভিত্তিক বিষয়ৰ জৰিয়তেই অধিক সহজে শিকে। এই পৰ্যায়ত শিশুৰ বিমূৰ্ত চিন্তাশক্তি সম্পূৰ্ণৰূপে বিকশিত নহয়, সেয়েহে ভাষা শিক্ষণত সৰল শব্দ, চিত্ৰ, কাহিনী আৰু বাস্তৱ জীৱনৰ উদাহৰণ ব্যৱহাৰ কৰাটো প্ৰয়োজনীয়। ভাষা শিকাৰ ক্ষেত্ৰত শিশুৱে নিজৰ দৈনন্দিন অভিজ্ঞতাৰ সৈতে নতুন শব্দ আৰু বাক্য সংযোগ কৰি লয়।

আনহাতে, লেভ ভাইগোটস্কিয়ে ভাষা শিক্ষণত সামাজিক পৰিৱেশ আৰু পাৰস্পৰিক সংযোগৰ গুৰুত্বৰ ওপৰত জোৰ দিয়ে। তেওঁৰ মতে শিশুৱে সমাজ, শিক্ষক, সহপাঠী আৰু পৰিয়ালৰ সৈতে যোগাযোগৰ জৰিয়তে ভাষা আয়ত্ব কৰে। সেয়েহে প্ৰাথমিক স্তৰৰ পাঠ্যপুথিত কথোপকথনমূলক ভাষা, প্ৰশ্ন-উত্তৰ, পুনৰাবৃত্তিমূলক অনুশীলন আদি অন্তৰ্ভুক্ত কৰোটো শিশুৰ মনোবিজ্ঞানৰ সৈতে সংগতিপূৰ্ণ।

শিশু মনোবিজ্ঞান অনুসাৰে সৰল ভাষা, শব্দচয়ন, পুনৰাবৃত্তি, সৰু বাক্য, চিত্ৰধৰ্মী উপাদান, কাহিনী আৰু ছন্দ, নৈতিক আৰু সামাজিক মূল্যবোধ—এই আটাইবোৰ উপাদান শিশুৰ ভাষা শিক্ষণত বিশেষভাৱে সহায়ক। সেয়েহে প্ৰাথমিক স্তৰত এই সকলো উপাদান শিশুৰ মানসিক বিকাশৰ সৈতে সংগতি ৰাখি অন্তৰ্ভুক্ত কৰা উচিত। প্ৰাথমিক স্তৰৰ শিশুৱে ছন্দ আৰু লয়যুক্ত বাক্য সহজে মনত ৰাখে। পুনৰাবৃত্তিৰ জৰিয়তে শব্দ আৰু বাক্য শিশুৰ স্মৃতিত সহজে প্ৰতিষ্ঠা কৰাত সহায় কৰে। কাহিনীৰ জৰিয়তে শিশুৱে ভাষাৰ সৈতে আত্মিক সম্পৰ্ক গঢ়ি তোলে আৰু কল্পনাশক্তি বিকশিত হয়। চিত্ৰধৰ্মী উপাদানে শিশুৰ মনোযোগ আকৰ্ষণ কৰে আৰু বিমূৰ্ত ভাষাকো স্পষ্ট কৰি তোলে।

২.০ নিৰ্বাচিত লেখকৰ দ্বাৰা ৰচিত পঢ়াশলীয়া পাঠ্যপুথিৰ বিষয়বস্তু আৰু শ্ৰেণীবিভাগ ঃ

২.১ হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ দ্বাৰা ৰচিত পঢ়াশলীয়া পাঠ্যপুথি ঃ

আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকনৰ পিছতে হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই পঢ়াশলীয়া পাঠ্যপুথি ৰচনা কৰাত অৰিহণা যোগায়। তেওঁৰ ৰচিত পুথিসমূহে পঢ়াশলীয়া পাঠ্যপুথিৰ অভাৱ পূৰণত যথেষ্ট সহায় কৰিছিল। তেওঁৰ দ্বাৰা ৰচিত পুথিসমূহৰ ভিতৰত—

- মাতৃভাষা শিক্ষণৰ উদ্দেশ্যে ৰচিত পুথিৰ ভিতৰত—**আদিপাঠ, পাঠমালা**।
- স্বাস্থ্য ৰক্ষা সম্বন্ধীয় পুথি—**স্বাস্থ্যৰক্ষাৰ নিয়ম**। পুথিখনত বৰুৱাই মানুহৰ শৰীৰ বা স্বাস্থ্য কেনেদৰে যত্ন ল'ব লাগে তাৰ সহজ-সৰল নীতি-নিয়মৰ বিৱৰণ দিছে।
- ১৮৮২ চনত **অসমীয়া ল'ৰাৰ ব্যাকৰণ** পুথি ৰচনা কৰে। কিন্তু ইয়াৰ আগতে ১৮৫৯ চনত **অসমীয়া ভাষাৰ ব্যাকৰণ** প্ৰকাশিত হৈছিল। এইখন অসমীয়া

ভাষাত লিখা প্ৰথম ব্যাকৰণ। পৰৱৰ্তী সময়ত তেওঁ পাঠ্যপুথি প্ৰণয়নৰ দায়িত্ব পোৱাত এইখনকে **অসমীয়া ব্যাকৰণ** (১৮৭৩) নাম দি নতুনকৈ লিখি প্ৰকাশ কৰে।

- শিশু উপযোগী অভিধান—**পঢ়াশলীয়া অভিধান** (১৮৯২ ৰচনা আৰু প্ৰকাশ ১৯০৩)। তদুপৰি তেওঁৰ মৃত্যুৰ পিছত প্ৰকাশিত অভিধান *হেমকোষ*।

• অসমীয়া ল'ৰাৰ ব্যাকৰণ ঃ

ব্যাকৰণ হৈছে ভাষা শিক্ষাৰ মূল আধাৰ। ব্যাকৰণ শিক্ষাই ভাষাৰ শুদ্ধতাক বিচাৰ কৰে। এই উদ্দেশ্য আগত ৰাখিয়েই তেওঁ শিক্ষাৰ্থীসকলৰ উপযোগীকৈ বিজ্ঞানসন্মতভাৱে এই ব্যাকৰণখন ৰচনা কৰিছিল। ব্যাকৰণখনত বৰুৱাই বিদ্যাৰ্থীসকলক ব্যাকৰণৰ প্ৰাথমিক ধাৰণা যেনে—(ব্যাকৰণৰ সংজ্ঞা, বৰ্ণ-বিন্যাস প্ৰকৰণ, আখৰৰ উচ্চাৰণ, ণত্ব বিধি, ষত্ব বিধি, সন্ধি প্ৰকৰণ, শব্দ প্ৰকৰণ, লিংগ, বচন, কাৰক, সৰ্বনামৰ ৰূপ, বিশেষণ, ক্ৰিয়া, ধাতু প্ৰকৰণ) আদি বিভিন্ন বিষয়সমূহৰ সম্যক জ্ঞান দিবলৈ যত্ন কৰিছে। ব্যাকৰণখনৰ পৃষ্ঠাৰ সংখ্যা-৮৯।

• পঢ়াশলীয়া অভিধান ঃ

অভিধানখনত ২২,৩৪৬ টা শব্দ আছে। অভিধানখনত উল্লেখ থকা শব্দবোৰে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলে সহজে হৃদয়ংগম কৰিব পাৰিব। এইখন কেৱল শিক্ষাৰ্থী আৰু শিক্ষকসকলে ব্যৱহাৰ কৰিব এনে নহয়, সকলো লোকে পঢ়িব পৰাকৈ প্ৰস্তুত কৰা হৈছিল।

হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই মাতৃভা যা শিক্ষণৰ উদ্দেশ্যে ৰচনা কৰা পুথিসমূহৰ ভিতৰত—

- অসমীয়া লৰাৰ আদিপাঠ— আগছোৰা (১৮৭৫)
  মাজছোৰা (১৮৭৬)
  শেহছোৰা (১৮৭৬)

তিনিওখন পুথিৰ বিষয়বস্তুৰ ভাগবোৰ এনেধৰণৰ—

- স্বৰ আৰু ব্যঞ্জন বৰ্ণৰ পৰিচয়মূলক পাঠ • স্বৰচিহ্ন।
- স্বৰৰ সৈতে ব্যঞ্জনৰ লগ-লগাই শব্দগঠন।
- যুক্তাক্ষৰ গঠন আৰু বাক্য গঠন।
- সংযুক্ত বৰ্ণৰ জ্ঞান • ৰেফ কাৰ শব্দ।
- সাধাৰণ জ্ঞান—মাহৰ নাম, অঙ্কৰ জ্ঞান, মাটি, লেখ-জোখৰ অঙ্কৰ শিক্ষা।
- নীতিউপদেশমূলক পাঠ।

• অসমীয়া লৰাৰ আদিপাঠ (আগছোৰা) (১৮৭৫) ঃ

১৮৭৩ চনত অসমীয়া ভাষাই পুনৰ প্ৰতিষ্ঠা লাভ কৰাৰ পিছত বিদ্যালয়ত পঢ়ুৱাবলৈ পাঠ্যপুথিৰ অভাৱ হৈছিল। *সেই উদ্দেশ্যেই হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই পাঠ্যপুথি ৰচনা কৰিছিল। এইক্ষেত্ৰত হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ **আদি-পাঠেই** অসমীয়া ভাষাত পোনপ্ৰথমে ল'ৰা-ছোৱালীক আখৰ চিনাব পৰা কিতাপ।*[১] এই পুথিখনে পঞ্চাছখন পুথিৰ ভিতৰত প্ৰথম স্থান লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল।

বৰুৱাই **আদিপাঠ** পুথিখনৰ উৎস ঈশ্বৰচন্দ্ৰ বিদ্যাসাগৰৰ *বৰ্ণ পৰিচয়* পুথি। পুথিখনৰ জৰিয়তে বৰুৱাই প্ৰাথমিক স্তৰৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক অসমীয়া বৰ্ণমালাসমূহৰ লগত পৰিচয় কৰি দিছে। পুথিখনৰ 'আগছোৰা' অংশত স্বৰ-ব্যঞ্জনবৰ্ণ পৰিচয়, স্বৰচিহ্ন, শব্দ গঠন, সহজ সৰল বাক্য গঠন, নানা উপদেশমূলক নৈতিক কথাৰ শিক্ষা দিয়া হৈছে। ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ নৈতিক আৰু বৌদ্ধিক দিশৰ বিকাশ সাধন কৰাটোৱে হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ লক্ষ্য আছিল। পুথিখনত অন্তৰ্ভুক্ত বিভিন্ন দিশবোৰৰ ভিতৰত—

তিনি আখৰ যুক্ত শব্দগঠন [২]

নেহৰু	নৰিয়া	নাইবা	নলনি
খলুৱা	পমুৱা	ধনুৱা	কনুৱা

চাৰি আখৰ যুক্ত শব্দগঠন [৩]

কিলাকুটি	জিলিকনি	খলাবমা	জালিকটা
আহুকাল	তেলীশাল	থিৰিকনি	তিনিমুনি

*আদিপাঠ*ৰ আগছোৰাত সন্নিৱিষ্ট পাঠৰ মাধ্যমেৰে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক সংযুক্ত বৰ্ণৰ জ্ঞান আৰু সাধাৰণ জ্ঞানৰ শিক্ষাও প্ৰদান কৰিছে। এইবিলাকৰ মাধ্যমেৰে শিক্ষাৰ্থীসকলক চাৰিওফালৰ সাধাৰণ জ্ঞানৰ স্তৰ অন্বেষণ আৰু সম্প্ৰসাৰিত কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰিছে।

• অসমীয়া লৰাৰ আদিপাঠ (মাজছোৰা) (১৮৭৬) ঃ

পুথিখনৰ মাজছোৰা অংশটি ঊনৈশপৃষ্ঠাৰে সন্নিৱিষ্ট এখন সংযুক্ত বৰ্ণৰে পৰিপূৰ্ণ পুথি। শিক্ষাৰ্থীসকলক প্ৰাক্ প্ৰাথমিক পৰ্যায়ৰ সংযুক্ত বৰ্ণৰ জ্ঞান, ৰেফ কাৰযুক্ত শব্দ, মাহৰ নাম, অঙ্কৰ জ্ঞান, মাটি, লেখ-জোখৰ অঙ্কৰ শিক্ষা প্ৰদান কৰাত পুথিখনৰ ভূমিকা অন্যতম।

'মাজছোৰা'ৰ পুথিখনৰ জৰিয়তে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক সংযুক্ত ব্যঞ্জনবৰ্ণৰ লগতপৰিচয় কৰাই দিয়াৰ লগতে যুক্তাক্ষৰৰ জ্ঞান দিবলৈও যত্ন কৰিছে। সংযুক্ত বৰ্ণৰে কেনেদৰে শব্দ আৰু বাক্যগঠন কৰিব পাৰি সেইবিষয়েও শিক্ষাৰ্থীসকলক অৱগত কৰি তুলিছে। যেনে—

- গুলঞ্চ এবিধ ফুল।
- *বাটৰুৱা মানুহ থাকিবৰ কাৰণ সজা ঘৰক পান্থশালা বোলে।*[৪]

পুথিখনত সন্নিৱিষ্ট নীতিপাঠৰ উপদেশবোৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলৰ ভৱিষ্যত জীৱনত চৰিত্ৰ গঠনত সহায় কৰাকৈ

ৰচনা কৰিছে। যেনে—

• সজ উপদেশত শ্ৰদ্ধা কৰিবা।• এঙা গাখীৰ দুগ্ধ বোলা যায়।

হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই পুথিভাগৰ জৰিয়তে শিশুসকলক সাধাৰণ জ্ঞানৰ শিক্ষা দিবলৈ অন্তৰ্ভুক্ত কৰা দিশবোৰৰ ভিতৰত— মাহৰ নাম, বাৰৰ নাম, মাটিৰ জোখ-মাখৰ অংক, ধনৰ অংক ইত্যাদিৰ প্ৰসংগ উল্লেখ কৰিব পাৰি। তেওঁৰ আদৰ্শক আৰ্হি হিচাপে লৈ পৰৱৰ্তী সময়ত বহুজন লেখকে পাঠ্যপুথি ৰচনা কৰিছিল।

• **অসমীয়া লৰাৰ আদিপাঠ (শেহছোৱা) (১৮৭৬)ঃ**

আদিপাঠৰ শেহছোৱা অংশটি তেইশ পৃষ্ঠাৰ পাঠেৰে পৰিপূৰ্ণ। পুথিভাগত লেখকে শিক্ষাৰ্থীসকলক নৈতিক শিক্ষাৰ লগতে শিশুক নিজৰ কৰ্তব্যৰ প্ৰতি সজাগ কৰিবলৈ যত্ন কৰিছে। পুথিখনত সন্নিৱিষ্ট বিষয়কেইটি এনেধৰণৰ ঃ

- সজ আলচ • ল'ৰা কালহে বিদ্যা শিকাৰ সময়
- ভাইয়া ভনীয়াক মৰম কৰিবা • তোমাৰ পিতৃ-মাতৃক সেয়া ভক্তি কৰিবা
- দুখীয়াক পুতৌ কৰিবা • বুঢ়া মানুহক ইতিকিং নকৰিবা
- কাকো খিয়াল নকৰিবা • খং নকৰিবা
- পটন্তৰ • আপদত পৰা মানুহক ৰক্ষা কৰিবা
- লৰাৰ যিমান ভাগৰ খেদাৰো সিমান
- গছৰ জীৱ • গান্ধপশু
- কৃষ্ণসাৰ • উট • ফেঁচা
- ঢেঁৰা চৰাই • আপোনাৰ ব্যৱসায় নেৰিবা।
- লাই পালে ল'ৰা গুছে (ল'ৰাক মৰম কৰিব লাগে, লাই দিয়া অযুগুত)।

পুথিখনত সন্নিৱিষ্ট একো একোটা পাঠে শিশুক নৈতিক-উপদেশমূলক কথাৰে সৎ শিক্ষাৰ জ্ঞান দিবলৈ প্ৰয়াস কৰিবলৈ যত্ন কৰিছে। *শেষছোৱা*ৰ প্ৰত্যেকটো পাঠেই ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক চৰিত্ৰ গঠনত সহায় কৰিব পাৰিছে। বিদ্যাথীসকলৰ উদ্দেশ্য কৰি ৰচিত পাঠকেইটাক এনেদৰে ভাগ কৰিব পাৰি—

(ক) বিদ্যাৰ্থীসকলৰ দায়িত্ব আৰু কৰ্তব্য ঃ সজ আলচ। 'সজ আলচ' পাঠটোৰ মাধ্যমেৰে লেখকে শিক্ষাৰ্থীসকলক সময় থাকোঁতেই অবাবত সময় নষ্ট নকৰি জ্ঞান বিদ্যা অৰ্জন কৰাৰ শিক্ষা প্ৰদান কৰিছে।

(খ) ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকললৈ নীতি-উপদেশ ঃ

ল'ৰা কালহে বিদ্যা শিকাৰ সময়, তোমাৰ পিতৃ-মাতৃক সেৱা ভক্তি কৰিবা, কাকো খিয়াল নকৰিবা, খং নকৰিবা, ভাইয়া ভনীয়াক মৰম কৰিবা, দুখীয়াক পুতৌ কৰিবা, বুঢ়া মানুহক ইতিকিং নকৰিবা—পাঠকেইটাৰ মাধ্যমেৰে লেখকে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক জ্ঞান দিয়াৰ দিশকেইটা হ'ল— প্ৰতিটো বস্তুৰে শিকাৰ নিৰ্দিষ্ট সময় থাকে। তেনেদৰে বিদ্যা শিক্ষাও গ্ৰহণ কৰাৰ এটা নিৰ্দিষ্ট সময় থাকে। সেই শিক্ষা দিবলৈ পখিলা আৰু পৰুৱাৰ কাহিনীটোক উদাহৰণ হিচাপে দাঙি ধৰিছে। এনে পাঠ সন্নিৱিষ্ট কৰি শিক্ষাৰ্থীসকলক আদৰ্শৰ পাঠ পঢ়ুৱাবলৈ যত্ন কৰিছে।

(গ) লোক-সংস্কৃতিবিষয়ক শিক্ষা-পটন্তৰ ঃ

অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ বিভিন্ন অংগসমূহৰ লগত পৰিচয় কৰোৱাৰ লগতে পুথিভাগত অন্তৰ্ভুক্ত ফকৰা যোজনা, প্ৰবাদ, পটন্তৰবোৰ শিক্ষাৰ্থীসকলে বাস্তৱ জীৱনত কেনেদৰে প্ৰয়োগ কৰিব সেই শিক্ষা প্ৰদানত লেখকে গুৰুত্ব দিছে। পুথিখনত অন্তৰ্ভুক্ত তেনে উদাহৰণৰ ভিতৰত—

- ধন নোহোৱা জীৱন গুটি নোহোৱা গছ।
- ভয়াতুৰ কুকুৰৰ ভুকনি ডাঙ্গৰ ইত্যাদি।

(ঘ) অভিভাৱকসকললৈ সাৱধান বাণী ঃ

'ল'ৰাৰ যিমান ভাগৰ খেদাৰো সিমান', 'ল'ৰাক মৰম কৰিব লাগে, লাই দিয়া অযুগুত'—এই পাঠদুটিৰ মাধ্যমেৰে লেখকে অভিভাৱকসকললৈ উপদেশ আগবঢ়াইছে যে সন্তানক মৰম সিমানখিনিহে কৰিব লাগে যিমানখিনিৰ প্ৰয়োজন, জোখতকৈ বেছি মৰম কৰিলে সিহঁতে লাই পাই কাকো নমনা হ'ব। পিতৃ-মাতৃক অৱজ্ঞা কৰিবলৈ ল'ব আৰু উদণ্ড হৈ পৰিব। এই শিক্ষা দিবলৈ পাঠত নিৰঞ্জন নামৰ অত্যাচাৰী আৰু উদণ্ড ল'ৰাৰ প্ৰসংগ উত্থাপন কৰিছে। সেয়ে লেখকে অভিভাৱকসকলক আহ্বান জনাইছে, সন্তানক সদায় উচিত আৰু সৎ জ্ঞান দিয়াটো অভিভাৱকৰ অন্যতম দায়িত্ব আৰু কৰ্তব্য। পাঠকেইটাৰ জৰিয়তে লেখকে সন্তানক মৰমৰ সীমাবদ্ধতা থকাটো উচিত বুলি সোঁৱৰাই দিবলৈ বিচাৰিছে।

(ঙ) জীৱ-জন্তু বিষয়ক ঃ

পাঠটিত গান্ধপশু, কৃষ্ণসাৰ, উট, ফেঁচা, ঢেঁৰা চৰাই আদি কেইবিধমান পশু-পক্ষীৰ বিৱৰণ দিছে। এইকেইবিধ পশু ক'ত থাকে, কোন ঠাইত পোৱা যায়, কি খায়, বৰ্তমান সময়ত সিহঁত দুষ্প্ৰাপ্য হৈ পৰাৰ কথাও উল্লেখ কৰিছে।

(চ) উপলব্ধিমূলক শিক্ষা ঃ গছৰ জীৱ ঃ

পাঠটিৰ বিভিন্ন গছৰ বিৱৰণ দি লেখকে শিশুসকলক পৰিৱেশ সংৰক্ষণৰ শিক্ষা প্ৰদান কৰিবলৈ যত্ন কৰিছে।

(ছ) জীৱনমূলক শিক্ষা ঃ আপোনাৰ ব্যৱসায় নেৰিবা ঃ পাঠটোৱে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক জীৱন-উপলব্ধি কৰোৱাৰ শিক্ষা দিছে। পাঠটোৰ শিক্ষা মানুহৰ পৰিচয় কৰ্মৰ দ্বাৰাহে। ভাল কৰ্ম অনুসৰি ভাল ফল লাভ কৰে। ছাত্ৰ-ছাত্ৰীয়ে নিজৰ কৰ্মৰ জৰিয়তে নিজৰ

পৰিচয় গঢ় দিয়াটো অত্যন্ত আৱশ্যক। লেখকে 'আপোনাৰ ব্যৱসায় নেৰিবা' পাঠটি পুথিখনত অন্তৰ্ভুক্ত কৰিছে।

- **পাঠমালা (১৮৮২) ঃ**

হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ দ্বাৰা ৰচিত ঊনবিংশ শতিকাৰ এখন উল্লেখযোগ্য পাঠ্যপুথি হ'ল *পাঠমালা*। পুথিখনৰ সঠিক চন নিৰ্ণয় কৰাটো সহজ নহয় যদিও কিছুৰ তথ্যৰ ভিত্তিত ১৮৮২ খ্ৰীষ্টাব্দত ছপা হৈছে বুলি অনুমান কৰা হৈছে। চীফ কমিছনাৰ ইলিয়ট চাহাবৰ পৰামৰ্শমতে পাঠ্যপুথিৰ অভাৱ অনুভব কৰি তেওঁ ৰচনা কৰা **পাঠমালা** পুথিখনৰ বাবদ পুৰস্কাৰো লাভ কৰিছিল। পুথিখন ১৯৩৫ চনলৈকে বাৰটা তাঙৰণত প্ৰকাশ পাইছিল। ১২২ পৃষ্ঠাৰ আৰু তিনিটা অধ্যায়ত বিভক্ত পুথিখনত নীতি উপদেশমূলক কথা, পঞ্চতন্ত্ৰ আদিৰ দহটি আখ্যান আৰু জীৱ-জন্তু, গছ-গছনিৰ সম্পৰ্কীয় বিভিন্ন ৰচনা আছে। তদুপৰি পুথিখনত আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকন আৰু ৰাজা ৰামমোহন ৰায়ৰ চমু জীৱনীও সন্নিৱিষ্ট কৰিছে।

পুথিখনৰ বিষয়বোৰ এনেধৰণেৰে ভাগ কৰিব পাৰি—

(ক) নীতি-উপদেশমূলক কথা (নীতিসাৰ) ঃ

পাঠমালা পুথিখনৰ প্ৰথম অধ্যায়ত 'নীতিসাৰ' নামৰ পাঠ দুটি মাধ্যমেৰে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীক নীতি-উপদেশমূলক ধাৰণা দিবলৈ যত্ন কৰিছে। উদাহৰণস্বৰূপে—

- উপকাৰীৰ শলাগ লবা, অশলাগীৰ সমান পাপী নাই।[৫]

(খ) সাধুকথা সম্পৰ্কীয় ঃ

পুথিখনত সন্নিৱিষ্ট সাধুবোৰ ঈছপ, পঞ্চতন্ত্ৰ, মহাভাৰত, ৰামায়ণ আৰু মাৰ্কেণ্ডেয় পুৰাণ আখ্যানৰ পৰা সংগ্ৰহ কৰিছে। *পাঠমালা* পুথিভাগত লেখকে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ উদ্দেশ্যেই ৰচনা কৰা সাধুকথাসমূহ হ'ল— 'এজন বুঢ়া মানুহ, তাৰ পুতেক আৰু এটা গাধৰ কথা', 'দুজন বন্ধু আৰু ভালুকৰ কথা', 'গৰখীয়া আৰু বাঘৰ কথা','বামুণ আৰু পিঠা-গুড়িৰ কথা','সাপ আৰু বামুণৰ কথা', 'ধৰ্ম বুদ্ধি আৰু পাপ বুদ্ধিৰ কথা', 'এজন পিতা আৰু তেওঁৰ পুতেক বিলাকৰ কথা' ইত্যাদি।পুথিখনত সন্নিৱিষ্ট সাধুকেইটাৰ মাধ্যমেৰে লেখকে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক ভৱিষ্যত জীৱনত প্ৰয়োজন হোৱা নীতিগত উপদেশ দিবলৈ প্ৰয়াস কৰিছে। এইবোৰে বিদ্যাৰ্থীসকলৰ মনৰ পৰা কু-চিন্তা, ভাবনা আঁতৰাই সৎ চিন্তাই ঠাই পোৱাত সহায় কৰিব।

(গ) মানৱীয় গুণসম্পন্নমূলক ৰচনা ঃ

পুথিখনত অন্তৰ্ভুক্ত 'সন্মান' পাঠটোৰ মাধ্যমেৰে লেখকে কাক কেনেকৈ সন্মান কৰিব লাগে তাৰে এটি সুন্দৰ উদাহৰণ দাঙি ধৰিছে। লেখকে পাঠটিৰ জৰিয়তে দিয়া শিক্ষা—বিশ্ব-ব্ৰহ্মাণ্ডৰ সৃষ্টিকৰ্তা ঈশ্বৰক যেনেদৰে আমি পূজা, ভক্তি কৰোঁ, তেনেদৰে পিতৃ-মাতৃ, শিক্ষাগুৰু, দেশৰ ৰক্ষক, জ্যেষ্ঠজন, বৃদ্ধলোক সকলোকে শ্ৰদ্ধা আৰু সন্মান কৰিব লাগে। পাঠটিৰ জৰিয়তে শিশুসকলক চৰিত্ৰপাঠৰ জ্ঞান দিবলৈ প্ৰয়াস কৰাটো এক অন্যতম উল্লেখযোগ্য দিশ।

(ঘ) স্বাস্থ্য সম্পৰ্কীয় ৰচনা ঃ

'নিৰ্মলতা' আৰু 'অংগ পৰিচালনা' স্বাস্থ্য সম্পৰ্কীয় লেখাকেইটাৰ জৰিয়তে বিদ্যাৰ্থীসকলক সদায় পৰিষ্কাৰ-পৰিচ্ছন্নতা হৈ থকাৰ শিক্ষা আৰু বিধান দিয়াৰ উদ্দেশ্যে পুথিভাগত এনে বিষয়বস্তু সন্নিৱিষ্ট কৰিছে।

(ঙ) ছাত্ৰৰ কৰ্তব্য আৰু দায়িত্বসম্পৰ্কীয় ঃ

'মিঠা মাত আৰু সদয় ব্যৱহাৰ' পাঠটোৰে বিদ্যাৰ্থীসকলৈ উপদেশ আগবঢ়াইছে সকলোকে মিঠা মুখেৰে মাতিব লাগে, কঠুৱা মাত কোনেও ভাল নাপায়। মিঠা মাতেৰে সকলোকে বশ কৰিব পাৰে। সেয়ে অভিভাৱকসকলে এই অভ্যাস ল'ৰা-ছোৱালীক সৰুৰে পৰা গঢ়ি তুলিবলৈ যত্ন কৰিব লাগে। 'পৰিশ্ৰমৰ সুগুণ' পাঠটিত পৰিশ্ৰমৰ জৰিয়তে হোৱা লাভালাভৰ বিষয়ে বিধান দিছে। কাৰণ পৰিশ্ৰমৰ জৰিয়তে শৰীৰ সঞ্চালিত, মন দৃঢ় আৰু প্ৰফুল্ল হৈ থাকে।

(চ) ব্যৱসায় সম্পৰ্কীয় ঃ

কেৱল চাকৰিলৈ আশা নকৰি ব্যৱসায়ৰ জৰিয়তেও মানুহে সুন্দৰকৈ জীৱন উদ্‌যাপন কৰিব পাৰে এনে শিক্ষাৰে লেখকে বিদ্যাৰ্থীসকললৈ ভৱিষ্যতৰ বিধান আগবঢ়াইছে। ইয়াৰ উপযুক্ত পাঠ হিচাপে পুথিভাগত 'কৃষি, বাণিজ্য এবং অন্যান্য ব্যৱসায়'ক উদাহৰণ হিচাপে পাঠত অন্তৰ্ভুক্ত কৰিছে।

(ছ) জীৱ-জন্তু, পক্ষী, জল-জন্তু, পতঙ্গ সম্পৰ্কীয় ঃ

পুথিখনৰ কেইবাটাও অধ্যায়ত বিভিন্ন জীৱ-জন্তু যেনে—হাতী, গঁড়, পানী-ঘোঁৰা, নাহৰফুটুকী বাঘ, কেঁটেলা পহু, মৰা-চৰাই, গাগিনী, মৌ-মাখিৰ পৰিচয়, লক্ষণ, বাসস্থানৰ বিষয়ে আভাস দিছে।

(জ) গছ-গছনি সম্পৰ্কীয় ঃ

পুথিখনত বৃক্ষাদিৰ স্বাভাৱিক গুণ, কুঁহিয়াৰ, কাঠফুলা,বট, কফিগছৰ গুণাগুণ, বিভিন্ন গছৰ বৈশিষ্ট্য, আহাৰ ইত্যাদিৰ আভাস দিয়া হৈছে।

(ঝ) বিভিন্ন ধাতৰ পদাৰ্থৰ লেখা ঃ

সোণ, ৰূপ, তাম, লো, কাঁহ, পিতল আদিৰ গুণাগুণ, মানৱ জীৱনত হোৱা প্ৰয়োজনীয়তা, ব্যৱহাৰ, ব্যৱসায়, আৱিষ্কাৰৰ বিষয়ে আভাস দি ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক বিবিধ জ্ঞানেৰে পৰিপুষ্ট কৰি তোলাৰ প্ৰয়াস কৰিবলৈ যত্ন কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে।

(ঞ) জীৱনীমূলক ৰচনা ঃ

পুথিখনত ৰাজা ৰামমোহন ৰায়, আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকন, আনন্দৰাম বৰুৱাৰ দৰে মহান ব্যক্তিৰ জীৱনী লিপিৱদ্ধ

কৰিছে। তেওঁলোকৰ ব্যক্তিত্ব, আদৰ্শ, জীৱন, কৰ্ম ৰচনাৰ মাধ্যমেৰে শিশুসকলক তেওঁলোকৰ আদৰ্শ আৰু কৰ্ম সম্পৰ্কে অৱগত কৰিবলৈ বিচাৰিছে। তেওঁলোকৰ আদৰ্শৰে পৰিপুষ্ট হৈ ভৱিষ্যত জীৱনটো সুন্দৰ আৰু সুচাৰুৰূপে চলাই নিয়াত সহায় কৰিব বুলি লেখক আশাবাদী।

(ট) মহাভাৰতৰ নীতি-উপদেশমূলক লেখা ঃ

পুথিখনত অন্তৰ্ভুক্ত এনে লেখাবোৰৰ ভিতৰত—পাণ্ডৱ-পুত্ৰবিলাকৰ বধ, দ্ৰৌপদী আৰু যুধিষ্ঠিৰৰ কথোপথন।

(ঠ) ৰামায়ণ সম্পৰ্কীয় ঃ

পুথিখনত সন্নিৱিষ্ট এনে লেখাবোৰৰ ভিতৰত—ৰামচন্দ্ৰৰ প্ৰতি ভৰতৰ উক্তি, ৰামচন্দ্ৰ উত্তৰ।

(ড) পুৰাণ সম্পৰ্কীয় ঃ

বৰুৱাদেৱৰ দ্বাৰা ৰচিত পুথিখনত ৰামায়ণ, মহাভাৰত, পুৰাণ কাহিনীৰ পৰা বিভিন্ন আখ্যান-উপাখ্যান সন্নিৱিষ্ট কৰিছে। এইবোৰে বিদ্যাৰ্থীসকলক আদৰ্শ আৰু প্ৰেৰণা যোগোৱাত সহায় কৰিব পাৰিব। তেনে পাঠৰ ভিতৰত—হৰিশ্চন্দ্ৰৰ উপাখ্যান, খনীনেত্ৰৰ উপাখ্যান।

হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ পঢ়াশলীয়া পুথিসমূহত শিশু মনোবিজ্ঞানৰ গভীৰ আৰু সচেতন প্ৰয়োগ দেখা যায়। শিশু মনৰ মানসিক প্ৰবৃত্তিসমূহ যেনে— কৌতুহল, অনুকৰণ প্ৰবৃত্তি আৰু স্মৃতিশক্তিক কেন্দ্ৰ কৰি পাঠসমূহ ৰচনা কৰিছিল। সেইদৰে জীৱ-জন্তু, প্ৰকৃতি, ঘৰুৱা বস্তু, প্ৰাকৃতিক পৰিঘটনা, পৰিয়াল আৰু সমাজজীৱনৰ বিভিন্ন দিশসমূহক শিশুৱে বুজি পোৱাকৈ পাঠসমূহত স্বাভাৱিকভাৱে অন্তৰ্ভুক্ত কৰিছে। সৰল বাক্য, পুনৰাবৃত্তিমূলক শব্দচয়ন আৰু ছন্দযুক্ত বাক্য গঠন ব্যৱহাৰ কৰি শিশুসকলৰ ভাষা শিক্ষণ প্ৰক্ৰিয়া টনকিয়াল কৰিবলৈ যত্ন কৰিছে।

শেষত ক'ব পাৰি যে, হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ ৰচিত পুথিসমূহে শিশুক কেৱল ভাষাগতভাৱে দক্ষ কৰি তোলাই নহয় বৰঞ্চ সুস্থ, সচেতন আৰু মূল্যবোধসম্পন্ন নাগৰিক হিচাপে গঢ়ি তোলাৰ ক্ষেত্ৰতো গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰিছে।

২.২ পানীন্দ্ৰনাথ গগৈৰ ৰচিত পঢ়াশলীয়া পাঠ্যপুথি ঃ

অসমীয়া ভাষাৰ বিপৰ্যয়ৰ কালছোৱাত পানীন্দ্ৰনাথ গগৈয়ে প্ৰাথমিক পৰ্যায়ৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলৰ বাবে *ল'ৰাশিক্ষা আগছোৱা আৰু মাজছোৱা* পুথিৰ প্ৰস্তুতি আৰম্ভ কৰিছিল যদিও প্ৰকাশ কৰা নাছিল। ১৮৯৩ চনত ল'ৰাশিক্ষা (আগছোৱা) আৰু ১৮৯৪ চনত ল'ৰাশিক্ষা (মাজছোৱা)ৰ প্ৰথম সংস্কৰণ প্ৰকাশ পায়। ল'ৰাশিক্ষা (শেহছোৱা)ৰ কাম গগৈয়ে উত্তৰ লক্ষীমপুৰলৈ হেডপণ্ডিত হিচাপে যোগদান কৰাৰ পিছত ১৮৯৩ চনত প্ৰকাশ পায়।

পানীন্দ্ৰনাথ গগৈৰ ৰচিত পাঠ্যপুথিকেইখন হ'ল—

(ক) ল'ৰাশিক্ষা (আগছোৱা) (১৮৯৩)— প্ৰাথমিক পৰ্যায়ৰ পাঠ্য

(খ) ল'ৰাশিক্ষা (মাজছোৱা) (১৮৯৪) (প্ৰথম সংস্কৰণ প্ৰকাশ)—দ্বিতীয় শ্ৰেণীৰ পাঠ্য

(গ) ল'ৰাশিক্ষা (শেহছোৱা) (১৮৯৩)—প্ৰাথমিক পৰ্যায়ৰ পাঠ্য

(ঘ) সাহিত্য সংগ্ৰহ (১৮৯৩)
(পানীন্দ্ৰনাথ গগৈ আৰু গোহাঞিবৰুৱাৰ যুটীয়া প্ৰচেষ্টাত)—সপ্তম-অষ্টম শ্ৰেণীৰ পাঠ্য)

পুথিসমূহৰ বিষয়বস্তু আৰু শ্ৰেণীবিভাগ ঃ

- **ল'ৰাশিক্ষা (আগছোৱা) (১৮৯৩)—**

প্ৰাথমিক পৰ্যায়ৰ পাঠ্য ঃ

পুথিখনৰ তিনিছোৱা ভাগৰ ভিতৰত *ল'ৰাশিক্ষাৰ আগছোৱাত* সন্নিৱিষ্ট শিতানবোৰ এনেধৰণৰ—স্বৰবৰ্ণ, সাহমিহলি স্বৰ-ব্যঞ্জনবৰ্ণ, আখৰ জোঁটনি, স্বৰচিহ্ন, অনুস্বাৰ, বিসৰ্গ, সংযুক্ত আখৰ অন্তৰ্ভুক্ত কৰাৰ লগতে প্ৰথম, দ্বিতীয় পাঠবোৰত জীৱনৰ লাগতিয়াল উপদেশ সন্নিৱিষ্ট কৰিছে। পুথিখনত সহজ-সৰলকৈ বৰ্ণমালা লিখোৱাৰ কৌশল শিকোৱাৰ লগতে কেনেদৰে স্বৰবৰ্ণবোৰ লগ লগাই দুটা, তিনিটা আখৰ সংযুক্ত কৰিব পাৰি সেই জ্ঞান প্ৰদান কৰিছে। শিশুসকলৰ মনত সহজে সাঁচ বহুৱাৰ লগতে মনত ৰাখিব পৰাকৈ অন্তমিল মিলাই শব্দবোৰে গঠন কৰা কবিতা অন্তৰ্ভুক্ত কৰিছে। আকাৰ-ইকাৰ থকা শব্দবোৰ সুৰ লগাই সহজকৈ পঢ়ি কেনেকৈ বাক্য গঠন কৰিব লাগে সেয়াও পুথিখনত সন্নিৱিষ্ট কৰিছে।

সেইদৰে প্ৰাথমিক পৰ্যায়ৰ শিক্ষাৰ্থীসকলৰ উপযোগীকৈ সৰলৰ পৰা জটিল শব্দগঠনেৰে সাৱলীল ছন্দত কবিতা সৃষ্টি কৰি শুনিবলৈ শুৱলা কৰাৰ জৰিয়তে লেখকে শিশুৰ মনোজগতত সাঁচ বহুৱাবলৈ যত্ন কৰিছিল। যেনে—

কাকো খিয়াল নকৰিবা,
লোকক খিয়াল কৰা মানুহৰ সুখ নহয়।
দুখীয়াক পুতৌ কৰিবা,
মৰমৰ সমান ধৰম নাই।[৬]

পাঠ্যপুথি কেনেদৰে পঢ়িব লাগে, স্বাস্থ্য ভালে ৰাখিবলৈ কেনেদৰে নিজৰ যত্ন ল'ব লাগে, অভিভাৱকৰ কথা-শুনা ইত্যাদি বিভিন্ন দিশৰ শিক্ষাৰে ৰসাল আৰু সহজ-সৰলকৈ লেখকে পুথিখন সামৰিছে। আখৰ জোঁটনিৰ জৰিয়তে নিভাঁজ অসমীয়া শব্দসম্ভাৰৰ লগত পৰিচয় কৰোৱাৰ লগতে পাঠৰ মাজে মাজে জীৱনৰ লাগতিয়াল নীতি-উপদেশ দি শিশুৰ সৎ চৰিত্ৰ গঠন কৰোৱাটো আছিল তেওঁ পুথি ৰচনা কৰাৰ আঁৰৰ মূল উদ্দেশ্যে।

ল'ৰাশিক্ষা (আগছোৱা) পুথিখনৰ সপ্তম আৰু অষ্টম পাঠত দুটা সুন্দৰ কবিতাৰে সামৰণি মাৰিছে। কবিতা দুটাৰ তাল মিল, সুৰ, ছন্দ অতি মনোৰম। মাজে মাজে উপদেশসূচক বাক্য। যেনে—

সোণাময় লৰাকাল।
শিকাৰ সময় ভাল।।
শিকে যেয়ে মন পাৰি।
উঠে সেয়ে ঘোঁৰা গাড়ী।। [৭]

- **ল'ৰাশিক্ষা (মাজছোৱা) (১৮৯৪) (প্ৰথম সংস্কৰণ প্ৰকাশ)—দ্বিতীয় শ্ৰেণীৰ পাঠ্য ঃ**

১৮৯৪ চনত *ল'ৰাশিক্ষা মাজছোৱা* প্ৰথম সংস্কৰণ প্ৰকাশ পায়। পুথিখনৰ এইছোৱা প্ৰাথমিক পৰ্যায়ৰ খ-শ্ৰেণী বৰ্তমান দ্বিতীয় শ্ৰেণীৰ বাবে ৰচনা কৰিছিল। *যিটো সময়ত দেশত শিক্ষা-দীক্ষাত অতি পিচপৰা আছিল সেই সময়ত মাজছোৱা পাছ কৰিলে এটা কঠিন পৰ্যায় শেষ হোৱা বুলি ধৰি লয়। তাৰ পিচৰ পাঠ্যক্ৰম অতি হেলাৰঙে উত্তীৰ্ণ হ'ব পাৰে। আনকি আজিকালি শুনিলে আচৰিত হ'ব যে এসময়ত মাজছোৱা অৰ্থাৎ খ শ্ৰেণী ভালদৰে উত্তীৰ্ণ হ'লে মাষ্টৰী (প্ৰাথমিক বিদ্যালয়ৰ) চাকৰিও পাইছিল।* [৮]

ল'ৰাশিক্ষা মাজছোৱা পুথিখনত যুক্তাক্ষৰৰ জ্ঞান প্ৰণালীবদ্ধভাৱে উপস্থাপন কৰা হৈছে। যেনে—

সংযোগী আখৰ আৰু যুক্তাক্ষৰ গঠনৰ শিক্ষা, ৰ-কাৰ ব্যৱহাৰ, কি বৰ্ণৰ লগত ৰ সংযুক্ত হ'লে কেনেধৰণৰ শব্দগঠন হ'ব, য-কাৰ ব্যৱহাৰ, ন-কাৰ, ম-কাৰ, ল-কাৰ, ৰ-কাৰ ইত্যাদি বিভিন্ন ব্যাকৰণসন্মত বিধিবোৰো পুথিখনত সন্নিৱিষ্ট কৰিছে। পুথিখনৰ মাজে মাজে থকা নীতি-উপদেশ, সাঁথৰ, প্ৰবচনবোৰ শুনিবলৈ আৰু পঢ়িবলৈ অধিক শ্ৰুতিমধুৰ কৰি তুলিছে। যেনে—

সদ্‌গুণে মানুহৰ মন বৰকৈ আকৰ্ষণ কৰে।
কপটীয়া মিত্ৰক বিশ্বাস নকৰিবা। [৯]

পুথিখনৰ শেষৰফালে দ্বিতীয় শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলৰ উপযোগীকৈ কিছুমান সাধাৰণ জ্ঞান দিয়াৰ প্ৰয়াস কৰিছে যিবোৰে শিক্ষাৰ্থীসকলক যথেষ্ট উপকৃত কৰিব। সেইবোৰৰ ভিতৰত—সাতবাৰ, বাৰ মাহ, পোন্ধৰ তিথি, দুই পক্ষ, দশদিশ, ছয় ৰস, ছয় ঋতু। পুথিখনত তিনিটা গুৰুত্বপূৰ্ণ পাঠ সন্নিৱিষ্ট কৰিছে। সেইকেইটা হ'ল—'হেমকণ্ঠৰ পিতৃ-ভক্তি', 'ল'ৰাৰ সৎসাহ', 'গৰু'। পিতৃ-মাতৃৰ প্ৰতি সদায় ভক্তিভাৱ থাকিব লাগে, কেতিয়াও তেওঁলোকৰ অপ্ৰিয় কাম কৰিব নালাগে, পিতৃৰ আজ্ঞাৰ মতে কাম কৰিব লাগে। এনেধৰণৰ কথা শিকাবলৈ 'হেমকণ্ঠৰ পিতৃ-ভক্তি' পাঠটি সন্নিৱিষ্ট কৰিছে। অসমীয়া সমাজ-জীৱনত 'গৰু' উপকাৰিতাৰ সম্পৰ্কে জনাবলৈ গৰু ৰচনাখন পঢ়াৰ সুবিধা কৰি দিছে। এই ৰচনাখন আৰ্হি লৈ এতিয়াও প্ৰাথমিক পৰ্যায়ত ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক ৰচনা লিখনৰ শিক্ষা দিয়া দেখা যায়।

- **শেহছোৱা (১৮৯৩)—প্ৰাথমিক পৰ্যায়ৰ পাঠ্য ঃ**

১৮৯৩ চনত ৰচিত *শেহছোৱা* পুথিখন নীতি উপদেশমূলক। পুথিখনত সন্নিৱিষ্ট শিতানসমূহ এনেধৰণৰ—

(ক) সজ উপদেশ ঃ

- পিতৃ-মাতৃ দয়ালু, ঈশ্বৰ দয়াৰ সাগৰ
- বেয়া ল'ৰাৰ সঙ্গত নুফুৰিবা।
- খঙ্গক লাই নিদিবা।
- অকাৰণত জীৱহত্যা নকৰিবা।

(খ) নীতিকথা ঃ

- আজিৰ কাম আজিয়েই কৰিবা, কালিলৈ নেৰাখিবা।
- ধাৰ বা ব্যাধিৰ অৱশেষ ৰখা ভাল নহয়, কিয়নো, সি বাঢ়ি আকৌ আগৰ সমান হয়।

এনেধৰণৰ বিভিন্ন নীতিকথা ওঠৰটা পুথিখনত সন্নিৱিষ্ট কৰিছে।

(গ) পটন্তৰ ঃ পুথিখনত সন্নিৱিষ্ট কৰা পটন্তৰসমূহৰ ভিতৰত—

- টোপনিয়ে মৰণে সমান।
- সাপ মাৰি নেগুৰত বিষ থোৱা অযুগুত।

(ঘ) সাধুকথামূলক কাহিনী ঃ

- এটা ভালুক আৰু দুজন বাটৰুৱাৰ কথা।

(ঙ) স্বাস্থ্য সম্পৰ্কীয় ৰচনা ঃ

- ভাল ঘৰ
- গা আদি পৰিষ্কাৰ ৰখা।
- আহাৰ
- পানী।
- পিন্ধা কাপোৰ
- টোপনি।
- ব্যায়াম
- ৰাগীয়াল বস্তু।

(চ) উৎসাহ আৰু প্ৰেৰণামূলক লেখা ঃ

- হাতৰ বিদ্যা এটা শিকি ৰাখিবা। [১০]

পুথিকেইখনৰ মাজেৰে লেখকে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক ভাষাটোৰ প্ৰাথমিক ধাৰণা দিয়াৰ লগতে বিভিন্ন কাহিনীৰ মাজেৰে নীতি-উপদেশমূলক শিক্ষা প্ৰদান কৰিছে। অসমীয়া ভাষাক মনে প্ৰাণে ভালপোৱাৰ বাবে তেওঁৰ ৰচিত সাহিত্যসমূহত সংস্কৃতীয়া বা বঙলুৱা শব্দৰ ঠাঁচ পৰিবলৈ দিয়া নাছিল। পুথিসমূহৰ ৰচনাৰ মাজেৰে তেওঁ শিশুসকলক কৰ্তব্যবোধৰ কথাও সোঁৰৰাই দিবলৈ যত্ন কৰিছে। সময়ৰ কাম সময়ত নকৰিলে জীৱনত নানা বিপদ-বিঘিনিৰ সন্মুখীন হ'বলগীয়া হয়। এই সকলোবোৰৰ জৰিয়তে তেওঁ শিশুক নৈতিক শিক্ষা, সজ চৰিত্ৰ, স্বাস্থ্যৱান হৈ থাকিবলৈ জ্ঞান প্ৰদান কৰিবলৈ বিচাৰিছে। তেওঁৰ ৰচিত

পুথিসমূহ অধ্যয়ন কৰিলে ঊনবিংশ শতিকাৰ ভাষা-সমাজ ব্যৱস্থাৰ বিষয়েও জানিব পৰা যায়।

লেখকে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক সু-স্বাস্থ্যৱান কৰি তুলিবলৈ পাঠবোৰত বিভিন্ন ধৰণৰ প্ৰেৰণাদায়ক কথা সন্নিৱিষ্ট কৰিছে। আধুনিক সমাজ-জীৱনত সুস্থ আৰু নিৰোগী হ'বলৈ কেনেধৰণৰ বিধানৰ প্ৰয়োজন সেইবোৰ দিছে। ঊনবিংশ শতিকাৰ এই পুথিখন সাম্প্ৰতিক সময়তো অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ। গা ভালে ৰাখিবৰ বাবে আমাক কিছুমান নিয়ম আৰু বিধানৰ প্ৰয়োজন। কাৰণ এটা সুস্থ আৰু নিৰোগী শৰীৰ হৈছে মানুহৰ আটাইতকৈ ডাঙৰ সম্পত্তি। লেখকে আগবঢ়োৱা স্বাস্থ্য সম্পৰ্কীয় পৰামৰ্শসমূহ আছিল এনেধৰণৰ —

- নিতৌ ৰাতিপুৱা সোনকালে শুই উঠি দাঁত-মুখ, গা ধুই পৰিষ্কাৰ কাপোৰ পৰিধান কৰা উচিত। সেইদৰে নিৰ্মল পানী, উত্তম খাদ্য, নিয়মিত টোপনি, বিশুদ্ধ বায়ু, শ্ৰম এটা সুস্থ শৰীৰৰ বাবে অতি আৱশ্যক। এইবোৰৰ জৰিয়তে অনেক ৰোগৰ পৰা পৰিত্ৰাণ পাব পাৰি ইত্যাদি।

- লেখকে ভৱিষ্যতে উঠি অহা শিশুসকল যাতে নিচাযুক্ত দ্ৰব্যৰ প্ৰতি আসক্ত নহয় তাক সচেতন কৰাৰ উদ্দেশ্যেই পুথিখনত 'ৰাগীয়াল বস্তু' নামৰ পাঠটি সন্নিৱিষ্ট কৰিছে। ঊনবিংশ শতিকাত ডাক্তৰ, চিকিৎসা ব্যৱস্থাৰ উন্নত নোহোৱাৰ বাবে সেই সময়ৰ লেখকসকলে পঢ়াশলীয়া পাঠ্যপুথিসমূহৰ জৰিয়তে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক সকলো ধৰণৰ শিক্ষা দিবলৈ প্ৰয়াস কৰা পৰিলক্ষিত হয়।

পুথিখনত এটা উৎসাহ আৰু প্ৰেৰণামূলক লেখাও সংযোজন কৰিছে। পাঠটি হ'ল—'হাতৰ বিদ্যা এটা শিকি ৰাখিবা'। পাঠটিৰ জৰিয়তে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক শিকাব বিচাৰিছে যে হাতৰ বিদ্যা কেতিয়াও হেৰাই নাযায়। এই কথা বুজাবলৈ লেখকে জাৰ্মান দেশৰ এটা কাহিনীৰ আশ্ৰয় লৈছে। কাৰণ যিকোনো বিদ্যা হাতে কামে শিকি ৰাখিলে ভৱিষ্যতে আহিবলগীয়া বিপদৰ পৰা নিজক বচাই ৰাখিব পাৰি। সেয়ে শিশুসকলক একোটা হাতৰ বিদ্যা শিকি থবলৈ লেখকে পৰামৰ্শ আগবঢ়াইছে।

পুথিখনত আধুনিক দৃষ্টিভংগীৰে পৰিৱেশ সচেতনতাৰ লগতে জীৱ জন্তুৰ প্ৰতি আমি কেনেধৰণৰ সহনশীল মনোভাব ৰাখিব লাগে সেই কথাও সন্নিৱিষ্ট কৰিছে। 'অকাৰণত জীৱহত্যা নকৰিবা' পাঠটিত নিজীৱ জন্তুৰ প্ৰতি হিংসা নকৰি মৰম কৰিবলৈ পৰামৰ্শ দিছে। জীৱবধ কৰাটো মহাপাপ। ইহঁতক বধ কৰি আনন্দ কৰাজনৰ সমান নৰাধম নাই। সেয়ে শিশুসকলক জীৱ-জন্তু, গছ-গছনিৰ প্ৰতি সচেতন আৰু স্নেহ কৰিবলৈ পৰামৰ্শ আগবঢ়াইছে।

পানীন্দ্ৰনাথ গগৈৰ ৰচিত এই তিনিছোৱা পুথি পঢ়াশলীয়া ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলৰ বাবে অতি উপযোগী বুলি নিঃসন্দেহে ক'ব পাৰি। পুথিকেইখনত লিপিৱদ্ধ প্ৰতিটো বাক্য, কাহিনী, শব্দই শিশুৰ কোমল মনত গভীৰ ৰেখাপাত কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে বুলিব পাৰি।

৩.০ উপসংহাৰ ঃ

৩.১ সামগ্ৰিক সিদ্ধান্ত ঃ

'ভাষা শিক্ষণ আৰু শিশু মনোবিজ্ঞানৰ দৃষ্টিৰে হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা আৰু পানীন্দ্ৰনাথ গগৈৰ পঢ়াশলীয়া পাঠ্যপুথিৰ বিশ্লেষণ' — শীৰ্ষক বিষয়টি অধ্যয়ন কৰি আলোচনাৰ অন্তত লাভ কৰা সিদ্ধান্তসমূহ এনেধৰণৰ—

■ ঊনবিংশ শতিকাত মিছনেৰীসকলৰ তত্বাৱধানত গঢ় লৈ উঠা অসমীয়া ভাষাই হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ হাতত এটা পৰিশীলিত ৰূপ লাভ কৰে। পৰৱৰ্তী সময়ত তেওঁক আদৰ্শ স্বৰূপে লৈ পানীন্দ্ৰনাথ গগৈ, বলদেৱ মহন্ত, লম্বোদৰ বৰা, ৰত্নেশ্বৰ মহন্ত প্ৰমুখ্যে কেইবাজনো অসমীয়া লেখকে পাঠ্যপুথি ৰচনাত মনোনিৱেশ কৰা পৰিলক্ষিত হয়।

■ পঢ়াশালিৰ উপযোগীকৈ শিক্ষাৰ্থীসকলৰ ভাষা শিক্ষণত গুৰুত্ব দিয়াৰ উদ্দেশ্যে হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই অসমীয়া ভাষাত *অসমীয়া ল'ৰাৰ ব্যাকৰণ* আৰু শব্দ ভাণ্ডাৰৰ জ্ঞান টনকিয়াল কৰাৰ লক্ষ্যৰে *পঢ়াশলীয়া অভিধান* প্ৰণয়ন কৰিছিল। সেইদৰে, ভাষা শিক্ষণ অধিক ফলপ্ৰসূ কৰি তুলিবলৈ দুয়োজন লেখকে পুথিসমূহত সহজ-সৰল শব্দচয়ন আৰু চুটি বাক্য প্ৰয়োগত গুৰুত্ব দিয়া দেখা গৈছে।

■ উভয়ে লেখকৰ ৰচিত পুথিসমূহত শিক্ষাৰ্থীসকলৰ বৌদ্ধিক, মানসিক, শাৰীৰিক আৰু নৈতিক বিকাশত গুৰুত্ব দিয়াৰ লক্ষ্যৰে পাঠ্যপুথিসমূহত বিভিন্ন বিষয়বস্তু সন্নিৱিষ্ট কৰিছে।

■ উভয়ে লেখকৰ ৰচিত পুথিসমূহত নৈতিক মূল্যবোধ আৰু শৃংখলাবোধ চিন্তাধাৰাৰ বিকাশত গুৰুত্ব দিয়া পৰিলক্ষিত হৈছে।

■ ঊনবিংশ শতিকাৰ অসমীয়া বিষয়ৰ পাঠ্যপুথিসমূহ সেই সময়ৰ বাবে অতিশয় প্ৰয়োজনীয় হৈ পৰা পাঠ্যপুথিৰ অভাৱ পূৰণ কৰাৰ লগতে বিভিন্ন বিষয় মনোগ্ৰাহী ৰূপত উপস্থাপনতো সফল হৈছিল। আধুনিক অসমীয়া পাঠ্যপুথি প্ৰণয়নত এই পঢ়াশলীয়া পুথিসমূহৰ শিক্ষাদৰ্শন প্ৰাসংগিক আৰু অনুসৰণযোগ্য। ❑

প্ৰসংগ সূত্ৰ

[১] দীননাথ শৰ্মা, *হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা,* পৃ. ১৫, ১৯৫৪
[২] উল্লিখিত, *আদিপাঠ (আগছোৱা),* পৃ. ৪১৭-১৮
[৩] উল্লিখিত, পৃ. ৪১৮
[৪] উল্লিখিত, পৃ. ৪২৪-২৫
[৫] হে.চ.ব. *পাঠমালা,* পৃ. ৫১-৫৩
[৬] উল্লিখিত, পৃ.২৫
[৭] উল্লিখিত, পৃ. ৩২
[৮] হেমন্ত কুমাৰ, বৰুৱা (সম্পা.), *পানীন্দ্ৰনাথ গগৈ ৰচনাৱলী,* পৃ. ব (২৩)
[৯] *ল'ৰাশিক্ষা, মাজছোৱা,* পৃ.৫১-৬০
[১০] *ল'ৰাশিক্ষা, শেহছোৱা,* পৃ. ৭৪-১০০

গ্ৰন্থপঞ্জী

গোস্বামী, যতীন্দ্ৰনাথ (সংক.সম্পা.). *হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা ৰচনাৱলী,* হেমকোষ প্ৰকাশন, মনিৰাম দেৱান পথ, চান্দমাৰী, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ-১৯৯৯

গোস্বামী, যতীন্দ্ৰনাথ। *অসমীয়া ভাষাৰ ওজা হেমচন্দ্ৰ বৰুৱা,* হেম-কোষ প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ ১৯৮৫

ডেকা, উমেশ। *প্ৰসঙ্গ ঃ ঊনবিংশ শতিকাৰ অসমীয়া সাহিত্য,* চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, ২০০০

তালুকদাৰ, নন্দ (সম্পা.). *আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকনৰ ৰচনা সংগ্ৰহ,* লয়াৰ্ছ বুক ষ্টল, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৭৭

- -. *সম্বাদ পত্ৰৰ ৰ'দ কাঁচলিত অসমীয়া সাহিত্য,* বৰুৱা এজেঞ্চি, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ-ফেব্ৰুৱাৰী, ১৯৭৫

দাস, দীপ্তি দত্ত। *ভাৰতীয় নৱজাগৰণ আৰু ঊনবিংশ শতিকাৰ অসমীয়া সাহিত্যত ইয়াৰ প্ৰভাৱ,* অসম বুক ট্ৰাষ্ট, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ছেপ্তেম্বৰ ২০১৭

বৰুৱা, হেমন্ত কুমাৰ (সম্পা.)। *পানীন্দ্ৰনাথ গগৈ ৰচনাৱলী,* বাণী মন্দিৰ, কংগেছ ভৱন চৌহদ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ-ফেব্ৰুৱাৰী ২০০৩, দ্বিতীয় প্ৰকাশ-ডিচেম্বৰ, ২০০৩

ভূঞা, যোগেন্দ্ৰনাৰায়ণ (সম্পা.)। *আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকনৰ অসমীয়া লৰাৰ মিত্ৰ,* আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি সংস্থা, অসম, বৰ্তমান পুনৰ্মুদ্ৰণ ঃ জুলাই, ১৯৯৯

ৰাজখোৱা, অৰবিন্দ (সম্পা.)। *পানীন্দ্ৰনাথ গগৈ ৰচনাৱলী,* বনলতা, নতুন বজাৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, অক্টোবৰ, ২০২২

দেৱশৰ্মা, হেমচন্দ্ৰ। *অসমীয়া লৰাৰ আদিপাঠ,* কলকাতা চি.বি. লিউছ, বেপ্তিষ্ট মিছনেৰী প্ৰেছ, ১৮৭৫

বৰুৱা, হেমচন্দ্ৰ। *অসমীয়া লৰাৰ ব্যাকৰণ,* গুৱাহাটীৰ চিদানন্দ যন্ত্ৰত শ্ৰী ৰামদেৱ শৰ্মা প্ৰিণ্টাৰৰ দ্বাৰা ছপা, শক ১৮০৪

বৰগোহাঁই, মামণি গগৈ (অনুদিত). *আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যৰ পটভূমি,* মূল ঃ নগেন শইকীয়া, পূৰ্বাঞ্চল প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, ২০২২

ইংৰাজী গ্ৰন্থ ঃ

Baruah, Brinchi Kumar, *History of Assamese Literature,* Sahitya academi, New Delhi, 1985

Borpujari, H.K. *Assam in the Days of the Company, (1826-1858),* Spectrum publications, Guwahati, 2nd Edition, 1980

Borpujari, H.K. *The Comprehensive History of Assam* , (Vol.No.III, IV,V), Publication Board of Assam, 3rd Edition-2007

Saikia, Nagen. *Background of Modern Assamese Literature*, Purbanchal Prakash, Ghy, 2nd Edition-2011

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

য়েছে দৰজে ঠংচিৰ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত জনজাতীয় জীৱন চিত্ৰণ

(‘মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয়’ আৰু ‘শৰ কটা মানুহ’ উপন্যাসৰ বিশেষ উল্লিখনসহ)

ড° লুইছ গগৈ

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

অসমীয়া উপন্যাস পৰিক্ৰমাই যিসকল ঔপন্যাসিকৰ অৰিহণাৰে সমৃদ্ধ হৈ বৰ্তমান ৰূপ পাবলৈ সক্ষম হৈছে সেই সকলৰ ভিতৰত য়েছে দৰজে ঠংচি এগৰাকী অন্যতম ঔপন্যাসিক। ঠংচিৰ উপন্যাসসমূহৰ বুকুত অৰুণাচল প্ৰদেশৰ দুৰ্গম অঞ্চলত অতীজৰে পৰা বসবাস কৰি নিজৰ ভাষা সংস্কৃতিক বহন কৰি অনা জনজাতিসমূহৰ জীৱনৰ জীয়া ছবি সুন্দৰভাৱে ফুটি উঠিছে। ঠংচিৰ উপন্যাসত চিত্ৰিত হোৱা জনজাতিসমূহৰ ভিতৰত দুটা প্ৰধান জনগোষ্ঠী হ’ল - মন্‌পা আৰু চেৰদুকপেন। এই জনজাতিসমূহৰো আছে নিজস্ব ভাষা কলা-সংস্কৃতি। একেখন ঠাইতে বাস কৰিলেও এই দুয়োটা জনগোষ্ঠীৰ মাজতেই আছে বহু সামাজিক বিচিত্ৰতা, জীৱন-ধাৰণ প্ৰণালীৰ ভিন্নতা। ঠংচিৰ উপন্যাসত এই জনজাতীয় জীৱন চিত্ৰণ কেনেদৰে ফুটি উঠি সেই সম্পৰ্কে এই আলোচনা পত্ৰত বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায়ত বিশ্লেষণ দাঙি ধৰা হ’ব।

বীজ শব্দ ঃ

উপন্যাস, সমাজ, মনপা, চেৰদুকপেন, জনজাতি।

অৱতৰণিকা ঃ

অসমীয়া সাহিত্য জগতলৈ সময়ে-সময়ে বিভিন্নজন লেখক-লেখিকাই বিভিন্ন প্ৰকাশভঙ্গীৰে সাহিত্য সৃষ্টি কৰি অৱদান আগবঢ়াই আহিছে। অসমৰ নিচেই গাতে লাগি থকা সূৰ্য উঠা দেশ অৰুণাচল প্ৰদেশৰ সচেতন সাহিত্যানুৰাগী কবি-সাহিত্যিকসকলো ইয়াৰ ব্যতিক্ৰম নহয়। অৰুণাচল প্ৰদেশৰ ঘন পাহাৰত দূৰ অতীতৰ পৰা বসতি কৰি অহা বিভিন্ন জনগোষ্ঠীসমূহৰ আচাৰ-ব্যৱহাৰ, কলা-সংস্কৃতি, বিভিন্ন লোকাচাৰ জীৱন-ধাৰণ প্ৰণালীকে পটভূমি হিচাপে লৈ সাহিত্য সৃষ্টি কৰি অসমীয়া সাহিত্য কৰ্মলৈ বৰঙণি যোগোৱা কবি, সাহিত্যিক কেইগৰাকীমান হ’ল - য়েছে দৰজে ঠংচি, লুম্বেৰ দাই আদি। জনজাতীয় লেখক য়েছে দৰজে ঠংচিয়ে অসমীয়া সাহিত্যলৈ গল্পৰ লগতে ভালেকেইখন উপন্যাস ৰচনা কৰি অৱদান আগবঢ়াইছে।

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
কলিয়াবৰ মহাবিদ্যালয়, কুৱৰীতল
নগাঁৱ, অসম-৭৮২১৩৭
৯৮৬৪৬৩২৯৭০
luishgakul@gmail.com

বিষয়বস্তু বিশ্লেষণ ঃ

অৰুণাচল প্ৰদেশৰ দৃষ্টিনন্দন প্ৰাকৃতিক পৰিবেশৰ সুবাস লৈ জন্ম গ্ৰহণ কৰা য়েছে দৰজে ঠংচিয়ে অসমীয়া সাহিত্য জগতলৈ আগবঢ়োৱা উপন্যাস সমূহ হ’ল - চনম (১৯৮১), লিঙঝিক (১৯৮৩), মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয় (২০০০) আৰু শৰ কটা মানুহ (২০০৮) । ‘প্ৰান্তিক’ আলোচনীৰ বুকুত ধাৰাবাহিকভাৱে প্ৰকাশ হোৱাৰ পাছত ২০০১ চনত গ্ৰন্থকাৰে প্ৰকাশ লাভ কৰা ‘মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয়’ ঠংছিৰ ঔপন্যাসিক জীৱনৰ তৃতীয়খন উপন্যাস। এই উপন্যাসখনত অৰুণাচল প্ৰদেশৰ বিংশ শতিকাৰ পঞ্চাশৰ দশকৰ এখন জীৱন্ত ছবিৰ সন্ধেদ পোৱা যায়।

উপন্যাস এক বাস্তৱধৰ্মী সাহিত্য-সমালোচকে সঠিকভাৱেই কৈছে ঃ

"Art grows out life; it is fed by life; it reacts upon. This being so, it cannot disregard its responsibilities to life." ১

বহু জনজাতিৰ আভাস ভূমিৰূপে সৰ্বজনবিদিত অৰুণাচল প্ৰদেশৰ সামাজিক, সাংস্কৃতিক, ৰাজনৈতিক আৰু শৈক্ষিক জীৱন সলনি কৰা কেতবোৰ ঘটনা-পৰিঘটনা ঔপন্যাসিকে পাঠকৰ আগত উপন্যাসৰ মাধ্যমত নিৰ্ভেজালভাৱে দাঙি ধৰিছে।

স্বাধীনতাৰ পৰৱৰ্তী কালত অৰ্থাৎ পঞ্চাশৰ দশকৰ শেষৰফালে এই প্ৰদেশত ঘটা এটা ঘটনাক কেন্দ্ৰ কৰি 'মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয়' উপন্যাসখনৰ কথাবস্তু আগবাঢ়িছে। স্বাধীনতাৰ পৰবৰ্তী সময়ত চৰকাৰৰ উদ্যোগত তেজপুৰৰ পৰা ব'মডিলালৈকে ৰাস্তা নিৰ্মাণৰ কাম চলোৱা হৈছে। নেফালৈ সেই সময়ত বাহিৰৰ পৰা বনুৱা নি পথ নিৰ্মাণ কৰা সম্ভৱ নোহোৱা হেতুকে চৰকাৰে অৰুণাচলৰ প্ৰতিটো পৰিয়ালৰ একোজনকৈ মানুহ আনি পথ নিৰ্মাণত বনুৱা হিচাপে নিয়োজিত কৰাৰ দিহা কৰা হৈছিল।

উপন্যাসখনত খৰি কাটিবলৈ যোৱা ৰিনচিন নৰবু আৰু লগৰ ছোৱালীকেইজনীয়ে হঠাৎ হাবিৰ মাজত তিৰোতা মানুহ এগৰাকীক দেখি হতভম্ব হৈ পৰিছে। যদিও নেফা বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ আবাসভূমি সেয়ে হ'লেও তেওঁলোকৰ ইটোৰ লগত সিটো জনগোষ্ঠীৰ সম্পৰ্ক নাই বুলিবই পাৰি। বাহিৰৰ জগত সম্পৰ্কে তেওঁলোক সম্পূৰ্ণ অজ্ঞ। পথ নিৰ্মাণক কেন্দ্ৰ কৰি নেফাৰ সমাজ জীৱনলৈ অহা পৰিৱৰ্তনৰ ছবি উপন্যাসখনত ফুটাই তোলাৰ লগতে য়ামা আৰু ৰিনচিনৰ প্ৰেম কাহিনীৰ যোগেদি অৰুণাচল প্ৰদেশৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ সামাজিক দিশৰ সুন্দৰ বৰ্হিপ্ৰকাশ উপন্যাসখনত ঘটিছে।

উপন্যাসখনত পোৱা যায় যে তেওঁলোকৰ ইটো জনগোষ্ঠীয়ে সিটো জনগোষ্ঠীৰ মানুহক চিনি নাপায়; ইয়াৰ উপৰি বুজি নাপায় ইটো জনগোষ্ঠীয়ে সিটো জনগোষ্ঠীৰ মুখৰ ভাষা। জনজাতীয় সমাজখনত যে কু-সংস্কাৰ আৰু অন্ধবিশ্বাসে জনজাতীয় মানুহৰ অন্তৰৰ দ'লৈকে শিপাই আছিল সেই কথা ঔপন্যাসিকে অতি সুন্দৰ আৰু স্পষ্টভাৱে দাঙি ধৰিছে। যেতিয়া ৰিনচিন নৰবু আৰু তেওঁলোকৰ দলৰ ছোৱালীকেইজনীয়ে খৰি বিচাৰি হাবিৰ মাজত প্ৰৱেশ কৰিলে তেতিয়া ৰিনচিনৰ লগত যোৱা ছোৱালী কেইজনীয়ে উছপিচ কৰিবলৈ ধৰিলে। তেওঁলোকে ভয় খাইছে----জানোচা এই জনপ্ৰাণীহীন পাহাৰৰ ঘন হাবিৰ মাজত কিজানিবা বন মানুহ ওলায়। অলপ পিচতে তেওঁলোকে হাবিৰ মাজত এজনী তিৰোতাৰ আৰ্তনাদ শুনিলে। শব্দটো শুনাৰ লগে-লগে তেওঁলোকে ভয়ত কম্পমান হৈ পৰিছে। পিছত য়ামাক দেখি তেওঁলোকৰ মাজতে যখিনী কিম্বা বনমানুহ বুলি তেওঁলোকে ভাবিবলৈ ধৰিলে। তেওঁলোকে কি কৰো কি নকৰো ভাবি চিৰিং জাংমুৱে মাটিত পৰি থকা দা খনেৰে তাইক কাটিবলৈ বিজুলী সঞ্চাৰে দৌৰ মাৰিছে। দা লৈ খেদি যোৱাৰ কৰানো আছে। কাৰণ হ'ল -

" সিহঁতৰ ভয়, জানোচা জন প্ৰাণীহীন এই সুউচ্চ পাহাৰৰ অটব্য অৰণ্যত বন মানুহ ওলাই আহে বা। এনেকুৱা হাবিত বন মানুহ ওলাই মানুহক লৈ যোৱাৰ কিমান প্ৰবাদ বা জনশ্ৰুতি সিহঁতৰ জনজাতি সমাজৰ মাজত প্ৰচলিত হৈ আছে।" (মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয় - ১)

অৰুণাচল প্ৰদেশৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীসমূহৰ সমাজ ব্যৱস্থা প্ৰধানতঃ পিতৃতান্ত্ৰিক। বিবাহৰ ক্ষেত্ৰখনত সাধাৰণ সামঞ্জস্য থকা জনজাতীয় সমাজৰ ৰীত-নীতিবোৰ অৰুণাচলী জীৱনতো বিদ্যমান। একে ফৈদৰ মাজত বিবাহ এইসকল জনগোষ্ঠীয় লোকৰ মাজতো কঠোৰভাৱে নিষিদ্ধ। কন্যাৰ বাবে গাধন দিয়া প্ৰথা প্ৰায়বোৰ জনজাতিৰ মাজতেই আছে। অসমীয়া জনজাতীয় সমাজৰ পটভূমিক লৈ ৰচিত উপন্যাস ৰজনীকান্ত বৰদলৈৰ 'মিৰিজীয়ৰী' আৰু জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ নাটক 'ৰূপালীম'তো এনে গাধন দিয়া পৰম্পৰাৰ উল্লেখ আছে। আগৰ দিনত সাধাৰণতে মেথোন, গৰু, গাহৰি, এড়ি কাপোৰ, মণি কেৰু আদিৰে গা ধন দিয়া হৈছিল। ঔপন্যাসিক ঠংচিয়ে আলোচ্য উপন্যাসখনত সুন্দৰভাৱে এনে এক জনজাতীয় জীৱন চিত্ৰ অংকন কৰিছে। তেওঁ দেখুৱাইছে যে নিচি সম্প্ৰদায়ৰ ছোৱালীৰ সৈতে বিবাহ হ'বলৈ হ'লে ল'ৰাৰ ঘৰৰপৰা ছোৱালীৰ দাম দি থয় আৰু সেই দাম ৰূপে সচৰাচৰ মেথোন দি ৰখা হৈছিল। উপন্যাসখনৰ এই দাম দিয়াৰ কথা স্পষ্ট ----"য়ামা লগত তাৰ মতাৰ মানুহবিলাক লৈ যাইছে। য়ামা নিদা যোৱা ছোৱালী আছে। তাৰ দাম খাইছে। মতা ঘৰৰ মানুহ ধৰি লৈ গলেতু আমি একো নাই ক'ব পাৰিছে।" (মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয় - ১৭৪)

ঠংচিয়ে তেওঁৰ এই আলোচ্য উপন্যাসখনত নিচিসকলৰ মাজত প্ৰচলিত গীত-মাতৰ প্ৰসংগ উল্লেখ কৰিছে আৰু তেওঁলোকৰ গীতেৰে দাঙি ধৰিছে। ইয়াৰ জৰিয়তে নিচিসকলো যে তেতিয়াৰ পৰাই লোকগীত-মাতত চহকী আছিল তাৰ সুন্দৰ নিদৰ্শন পোৱা যায়----

"আলো পে ৰেগো গা জাঁকো কি জাঁ
য়ামা পাদম দামবো আ জাকোঁ কি জাঁ
ঙো মাতে কৰাংএ জাকোঁ কি জাঁ।"

(মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয় - ২৭)

জনজাতীয় সমাজখনত বহুলভাৱে প্ৰচলিত লাওপানীৰ ব্যৱহাৰৰ কথা উপন্যসখনত ঔপন্যাসিকে অতি সুন্দৰভাৱে দাঙি ধৰাৰ লগতে চেৰদুকপেনসকলে নিজে প্ৰস্তুত কৰা শুকান জলকীয়া, শুকান মূলা ব্যৱহাৰ কৰি প্ৰচলিত ৰীতি ৰক্ষা কৰাৰো চিত্ৰ উপন্যাসখনত উল্লেখ কৰা হৈছে। জনজাতীয় প্ৰথামতে লাওপানীত তিনিবাৰ চুমুক দিব লাগে। সেই কথাও ঠংচিয়ে সুন্দৰভাৱে দাঙি ধৰিছে। তেওঁ জনজাতীয় লোকসকলৰ মাজত বহুলভাৱে প্ৰচলিত লাওপানী প্ৰস্তুত প্ৰণালীও সুন্দৰভাৱে দাঙি ধৰিছে।

উপন্যাসখনৰ বিভিন্ন প্ৰসঙ্গত এই লাওপানীৰ উল্লেখ আছে। যথা -----". . . তেওঁ দুই এবাৰ লাওপানীৰ জুতি লৈছে। জনজাতি মানুহবিলাকৰ ঘৰলৈ গ'লে তেওঁলোকে এই লাওপানীহে যাচে, পাৰিলে লগত খাবলৈ মাছ পোৰা বা মাংস পোৰা অলপ যাচে। চাহ খোৱা নিয়মৰ সিহঁতৰ মাজত প্ৰচলন নাই।"

(মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয় - ১৫)

". . . পাত্ৰটো অলপ খালি কৰিলেই চিৰিং জাংমুৱে আহি পাত্ৰটো পূৰাই যায়, দিলীপ শইকীয়াই হ'ব হ'ব আৰু নালাগে বুলি কৈ উঠিলে ৱিনচিনে কয়, "খাব না বাবু আমাৰ নিয়ম ফালে তিন টাইম ল'ব লাগে।"

(মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয় - ১৫)

অৰুণাচলৰ নিচি জনজাতীয় লোকসকল আৰু ভিচাক জনজাতিৰ লোকসকলৰ মাজত থকা খাদ্যৰ পাৰ্থক্যও ঔপন্যাসিকে সুন্দৰভাৱে দাঙি ধৰিছে। একেখন ঠাইতে বাস কৰা দুটা জনগোষ্ঠীৰেই খাদ্য ব্যৱস্থা কিদৰে পৃথক তাক সুন্দৰভাৱে দাঙি ধৰা হৈছে - "আমি নিচিসকলে চাউলৰ ভাত খাওঁ, কিন্তু ভিচাকসকলৰ দেশত ধানৰ খেতি নহয়। সিহঁতে ধান খেতিও কৰিব নাজানে। সেই কাৰণে সিহঁতে মাকৈ, মাৰুৱা আদিকে খাই জীয়াই থাকে। আমি সেইবোৰ মাকৈ গাহৰিকহে খাবলৈ দিওঁ। গতিকে সিহঁত কিমান তলৰ জাতৰ মানুহ নিজে ভাবি চাচোন।" (মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয় - ২৪)

এইখিনিতে দেখা গৈছে যে অৰুণাচলৰ জনজাতীয় লোকসকলেও ইটোৱে আনটোক নিজতকৈ নীচ বুলি প্ৰতিপন্ন কৰাৰ এখন প্ৰতিযোগিতা বৰ্তাই ৰাখিছে। ঔপন্যাসিক ঠংচিয়ে অৰুণাচলত বাস কৰা জনজাতিসকলৰ পটভূমিত ৰচনা কৰা 'মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয়' নামৰ উপন্যাসখনত অৰুণাচলত বাস কৰা জনজাতিসকলৰ ধৰ্ম সংস্কৃতি সম্পৰ্কেও সুন্দৰ নিদৰ্শন দাঙি ধৰিছে। তেওঁৰ অপূৰ্ব বৰ্ণনাত জনজাতীয় লোকসকলৰ ধৰ্ম আৰু সংস্কৃতি বাংময় হৈ উঠিছে এইদৰে ---- "আমি মেথোন, গাহৰি, কুকুৰা কাটি উই পূজা কৰোঁ। ভিচাকবিলাকে ঢোল-তাল বজাই হাৰাং বিলাকৰ নিচিনাকৈ কিতাপ পঢ়ি পূজা কৰে। আমাৰ পূজাৰীবিলাকৰ অলৌকিক শক্তি আছে, অলৌকিক শক্তিৰ বলত মানুহ পূজাৰী হয়, সেইকাৰণে যিকোনো মানুহ পূজাৰী হ'ব নোৱাৰে। সিহঁতৰ পূজাৰীবিলাক আনৰ পৰা শিকিহে পূজাৰী হয়। গতিকে যিয়ে ইচ্ছা সিয়েই পূজাৰী হয়। কিতাপখন নাচালে সিহঁতে আমাৰ পূজাৰীৰ দৰে মুখস্থ মাতি পূজা কৰিব নোৱাৰে।" (মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয় - ২৩-২৪)

বিভিন্ন ধৰণৰ খেতিবাতি কৰি তথা জীৱ-জন্তু পুহি নিজৰ জীৱনটো চলাই নিয়াত যে এই জনজাতীয় লোকসকল সমৰ্থ নহয়, তাৰো এখন সুন্দৰ চিত্ৰ ঔপন্যাসিকে সুন্দৰভাৱে দাঙি ধৰিছে।

তেওঁলোকে মাকৈ খেতি, ধানৰ খেতি কৰাৰ উপৰিও মেথোন, গৰু আদি পুহি সংসাৰ চলাই নিবলৈ চেষ্টা কৰে যদিও তেওঁলোকৰ অৰ্থনৈতিক অৱস্থা তেনেই পুতৌ লগা। তেওঁলোকে নাজানে টকা - সিকিৰ ব্যৱহাৰৰ কথা। তৎসত্বেও তেওঁলোকৰ মাজলৈ টকাৰ আগমন ঘটিছে। টকাৰ ব্যৱহাৰেৰে তেওঁলোকক এখন নতুন জগতৰ সম্ভেদ পোৱাৰ দৃশ্য ঔপন্যাসিকে সুন্দৰভাৱে দেখুৱাইছে। এই সন্দৰ্ভত ঔপন্যাসিকে লিখিছে -

"সামান্য দিন হাজিৰা যদি এই দুখীয়া জনজাতি ভাই - ভনীসকলে পায় তাত কি লোকচান। সিহঁতে টকাৰ ব্যৱহাৰৰ কথা জানিব।" (মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয় - ৬০)

প্ৰথম অৱস্থাত, যি সময়ত মানুহে মুদ্ৰা বা টকা চিনি নাপাইছিল, সেই অৱস্থাত তেনে মানুহ মুদ্ৰা দেখি কৌতুহলী হোৱা স্বাভাৱিক। ৰাস্তাত কাম কৰাৰ বিনিময়ত যেতিয়া তেওঁলোকে নিজৰ মজুৰী লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হয়। তেওঁলোকক টকা - সিকি দিয়াৰ লগে লগে তেওঁলোক কিদৰে কৌতুহলী হৈ পৰে তাৰ উল্লেখো ঠংচিয়ে কৰিছে মনোগ্ৰহীৰূপে --- "নোট কেইখন হাতত লৈ তাৰপৰা ওলোৱা ফুৰফুৰীয়া গোন্ধটো শুঙি শুঙি চাইছে। নোটৰ ওপৰত অংকিত অশোক চক্ৰ, মহাত্মা গান্ধীৰ ছবি আৰু আখৰবিলাক খুব মন দি চাইছে। আৰু আচৰিত হৈ ভাবিছে একেখন ছবিকে হুবহু প্ৰত্যেকখন নোটৰ ওপৰত কেনেকৈ অকাঁটো সম্ভৱ হৈছে।. . ."

(মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয় - ৮৩)

ইয়াত জনজাতীয় লোকসকলৰ সৰলতা প্ৰকাশ পাইছে। 'মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয়' উপন্যাসত বাংময় হৈ উঠিছে মানুহৰ উত্তৰণৰ সংবাদো। হৃদয়ৰ পৰা হৃদয়লৈ প্ৰীতিৰ সাঁকো গঢ়াৰ এক আন্তৰিক নিষ্ঠা উপন্যাসখনৰ পাতেপাতে সন্নিবিষ্ট আছে।

ঔপন্যাসিকে এই প্ৰীতিৰ সংবাদ দিছে এইদৰে --- "এই পথ নিৰ্মাণ প্ৰক্ৰিয়া শেষ হ'লে ভৈয়ামৰ সৈতে পাহাৰৰ সংলগ্ন হ'লে, শিক্ষাৰ পোহৰ বিলাবলৈ, জনজাতীয় মানুহৰ স্বাস্থ্যৰ সেৱা কৰিবলৈ, সিহঁতৰ উন্নতিৰ হকে, সিহঁতৰ মঙ্গল কাৰ্যৰ বাবে বহুতো ভাল ভাল মানুহ আহিব এই বাটেদি। কিন্তু লগতে এই বাটেদি আহিব অসংখ্য শোষণকাৰীৰ দল। আহিব চোৰ-ডকাইত, মুখা পিন্ধা ভদ্ৰলোক। এদিন এই পাহাৰৰ মাজতো বিৰাজ কৰিব অশান্তি, অসন্তোষ। বাহিৰা কৃষ্টি, সংস্কৃতি, ভাষা, সাজ-পাৰ, ৰীতি-নীতিৰ আক্ৰমণত ইয়াৰ জনজাতীয় কৃষ্টি-সংস্কৃতি লোপ পাব, সাজ-পাৰ নাইকিয়া হ'ব, নিজৰ ধৰ্ম নিঃশেষ হ'ব, ভাষা লোপ পাব। সংখ্যাগৰিষ্ঠ জাতিৰ লগত তিষ্ঠিব নোৱাৰি সংখ্যালঘু জনজাতিবিলাক প্ৰায় নিঃশেষ হৈ যাব।"

(মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয় - ৬২)

শৰকটা মানুহ ঃ

য়েছে দৰজে ঠংচিৰ ঔপন্যাসিক জীৱনৰ চতুৰ্থখন উপন্যাস হ'ল - 'শৰ কটা মানুহ'। উপন্যাসখনত অৰুণাচলৰ মন্‌পা জনজীৱনক লৈ আৰু মন্‌পা জনজাতিৰ শৰ সৎকাৰৰ পূৰ্ণাঙ্গ পদ্ধতি ঔপন্যাসিকে অতি বিস্তৃতভাৱে দাঙি ধৰিছে। মন্‌পাসকলৰ জনজীৱনত এটা নিয়ম আছে যে তেওঁলোকৰ সমাজৰ কোনোবা ব্যক্তিৰ মৃত্যু হ'লে সেই মৃতদেহ এশ আঠ (১০৮) টুকুৰা কৰি কাটি নৈত উটাই দিব লাগে। এনে কৰ্মক তেওঁলোকৰ সমাজত অতি পবিত্ৰ জ্ঞান কৰা হয়। ঔপন্যাসিকে শৰ কটা এজন মানুহৰ দৈনন্দিন জীৱন; চিন্তা, প্ৰেম, আশা, আকাংক্ষা আদি বিভিন্ন দিশো এই উপন্যাসৰ পটভূমিত থিয় কৰাইছে। ঠংচিৰ এই উপন্যাসখনত বৌদ্ধ ধৰ্মীয় চিন্তাচেতনাৰ উদগীৰণেও উপন্যাসখনৰ মান বৃদ্ধি কৰিছে। গোবিন্দ প্ৰসাদ শৰ্মাৰ ভাষাত ---- *"আধুনিক অৰুণাচল আদি অৱস্থাৰ ইতিহাসৰ দুটি ডাঙৰ ঘটনাৰ অৰুণাচলী সমাজত পৰা প্ৰভাৱৰ অংশ হিচাপে উপন্যাসখনৰ বিশেষ মূল্য আছে। তিব্বত চীনে অধিকাৰ কৰাত দালাই লামাৰ টাৱাঙৰ গুম্পাত স্থিতি লওঁতে অৰুণাচলী বৌদ্ধ সমাজত তাৰ প্ৰভাৱ, ষাঠিৰ দশকৰ আৰম্ভণিতে চীনৰ আক্ৰমণৰ সময়ত অৰুণাচলী সকলৰ দশা - এই ঐতিহাসিক ঘটনাবোৰৰ বিৱৰণেও উপন্যাসখনক গুৰুত্ব প্ৰদান কৰিছে "*।[২]

এই উপন্যাসত অৰুণাচল প্ৰদেশৰ দুটা বৃহৎ জনগোষ্ঠী চেৰদুকপেন আৰু মন্‌পা জনগোষ্ঠীৰ কথা উল্লেখ কৰাটো হৈছে লক্ষণীয়। ঔপন্যাসিক ঠংচিয়ে সৰুৰে পৰা যদিও চেৰদুকপেন জনজাতিৰ সান্নিধ্য লাভ কৰি আহিছিল। তেওঁ মন্‌পা জনজাতিৰ সংস্পৰ্শলৈ অহা নাছিল। টাৱাং জিলাৰ উপায়ুক্ত হিচাপে যেতিয়া প্ৰায় তিনিবছৰ কটাইছিল, তেতিয়া তেওঁ মন্‌পা জনজাতিৰ সংস্পৰ্শ লৈ অহাৰ বিশেষ সুবিধা লাভ কৰে আৰু তাৰ ফলশ্ৰুতিত তেওঁ জীৱনৰ চতুৰ্থখন উপন্যাস হিচাপে 'শৰ কটা মানুহ' লিখাৰ প্ৰেৰণা লাভ কৰে। উপন্যাসখনৰ পটভূমি সন্দৰ্ভত ঠংচিয়ে নিজেই কৈ গৈছে ---

"এইখন উপন্যাসৰ পটভূমি হ'ল অৰুণাচল প্ৰদেশৰ মন্‌পা জনজাতি। সৰুকালৰ পৰা মন্‌পা জনজাতিৰ সান্নিধ্যত থাকিবলৈ পালেও আৰু বহুক্ষেত্ৰত মন্‌পা জনজাতি আৰু মই যি জনজাতিত জন্ম লৈছো সেই চেৰদুকপেন নামৰ জনজাতিৰ মাজত বহুক্ষেত্ৰত মিল থাকিলেও ভালদৰে গৱেষণা কৰি আৰু এটা জাতি বা জনজাতিৰ বিষয়ে সবিশেষ জানি নোলোৱাকৈ তাৰ ওপৰত উপন্যাস লিখি উলিয়াব নোৱাৰি। প্ৰায় তিনিবছৰ কাল টাৱাং জিলাৰ উপায়ুক্ত হৈ থাকোঁতে এই মন্‌পা জনজাতিৰ সমাজ আৰু মন্‌পা মানুহক বহুত ওচৰৰ পৰা দেখাৰ সুযোগ ঘটিছিল, টাৱাং জিলাৰ ভৌগোলিক অৱস্থান, তাৰ প্ৰাকৃতিক সৌন্দৰ্যৰ লগত নিবিড়ভাৱে মুখামুখি হোৱাৰ সৌভাগ্য হৈছিল। গতিকে এই মন্‌পা জনজাতিক লৈ, বিশেষকৈ মৃত মানুহৰ শৰ কাটি সৎকাৰ কৰা প্ৰথাৰ ওপৰত এই উপন্যাসখন লিখাৰ সাহস গোটাব পাৰিলো।" (পাতনি; শৰ কটা মানুহ)

'শৰ কটা মানুহ' উপন্যাসখনত বৰ্ণিত দিৰাংজং গাঁৱত বাস কৰা আও থাম্পাৰ পিতৃ প্ৰদত্ত নাম আছিল দ্যাৰগে নৰবু। মন্‌পা জনগোষ্ঠীৰ মৃতদেহ সৎকাৰ পদ্ধতিৰ লগত জড়িত আও থাম্পাৰ কাহিনীৰ লগতে আন বহুতো গুৰুত্বপূৰ্ণ কথা উপন্যাসখনৰ পাতত সন্নিবিষ্ট হৈ আছে। শৰ কটা কামটো যেনেকুৱা লেতেৰা মানুহজনো তেনেকুৱাই লেতেৰা বুলিয়েই ধাৰণা হয়। উপন্যাসখনতো শৰ কটা মানুহজন প্ৰচণ্ড লেতেৰা। তেওঁৰ কাপোৰ কানিবোৰো অত্যন্ত লেতেৰা আৰু দুৰ্গন্ধময়; মানুহৰ শৰ কাটোতে চিটিকি আহি লগা গেলা তেজ-পূঁজ, গেলা মাংস, চৰ্বি আদিৰে লুতুৰি-পুতুৰি হৈ নিজেই মহ, দাঁহ আৰু ওকণিৰ আশ্ৰয় স্থলি হৈ পৰিছে। এই বৰ্ণনা অতি ঘৃণণীয়--- "মানুহজন যেনেকুৱা লেতেৰা, তাৰ কাপোৰ কানিবোৰ তেনেদৰে অত্যন্ত লেতেৰা, দুৰ্গন্ধময়। মানুহৰ শৰ কাটোতে লগা তেজ, পূঁজ, গেলা মাংস, চৰ্বি, প্ৰস্ৰাৱ, পাইখানা আদিৰে পিষ্ট হৈ কাপোৰ কানিবিলাকত এক ডাঠ চামনি পৰি গৈছে আৰু তাৰ ওপৰত অগণন ওকণিয়ে নিজৰ প্ৰজনন ক্ষেত্ৰ আৰু বিচৰণ ভূমি তৈয়াৰ কৰি লৈছে।"

(শৰ কটা মানুহ - ৭-৮)

ঠংচিৰ উপন্যাসৰ কথা আলোচনা কৰিবলৈ গৈ এম কামালুদ্দিন আহমেদে কৈছে যে - *"য়েছে দৰজে ঠংচি (জন্ম ১৯৫২) অৰুণাচলৰ জনজাতীয় জীৱনৰ ৰূপকাৰ। প্ৰাঞ্জল ভাষা আৰু কথন ৰীতিৰে দ্যাৰগে নৰবু নামৰ শৰ কটা মানুহ এজনৰ জীৱন আৰু তাৰ পৰিৱেশ অবিস্মৰণীয় ৰূপত ফুটাই তুলিছে। ঠংচিৰ উপন্যাস 'শৰ কটা মানুহ' (২০০৪)ত অৱশ্যে অলৌকিকতাৰ সমাবেশে উপন্যাসখনৰ পতিয়নযোগ্যতা ভালেখিনি হ্ৰাস কৰিছে।"*[৩]

কিন্তু সেয়া হ'লেও অৰুণাচলত বসতি কৰা মন্‌পাসকলে পালন কৰি অহা বিভিন্ন উৎসৱ অনুষ্ঠানৰ বৰ্ণনা ঔপন্যাসিক ঠংচিয়ে অতি সুন্দৰভাৱে দাঙি ধৰিছে। শৰতকালত মন্‌পাসকলে টাৱাং গোম্পান টোৰগ্যা উৎসৱ পালন কৰে। টোৰগ্যাৰ পিছতে মন্‌পাসকলে নতুন বছৰৰ লোচেৰ উৎসৱ পালন কৰে। পোন্ধৰ দিনৰ পৰা ত্ৰিশদিন পৰ্যন্ত মন্‌পাসকলে এই উৎসৱ পালন কৰে।

মন্‌পা জনজাতিৰ এই উছৱৰ বৰ্ণনাই উপন্যাসখনৰ সমৃদ্ধ কৰি তুলিছে এইদৰে ---- "লোচেৰত খাবৰ কাৰণে গোটেই বছৰ ধৰি সাঁচি ৰখা ভালতকৈ ভাল খাদ্য সম্ভাৰ উলিয়াব। মানুহবিলাকে, য়াকৰ ঘিউত সুস্বাদ খাপচে তৈয়াৰ কৰিব, নতুন কাপোৰ, জোতা, টুপী কিনিব বা চিলাব আৰু নতুন বছৰৰ প্ৰথম কুকুৰাৰ ডাক দিয়াৰ লগে-লগে বিছনা এৰি নিজৰ নিজৰ ঘৰৰ দুৱাৰ বন্ধ কৰি গোটেই পৰিয়ালৰ মানুহবিলাকে য়াকৰ শুকান মাংস, বিবিধ শস্য দি ৰন্ধা সুস্বাদু থুকপা খাব। ঘিউত কণী দি গৰম কৰা আৰাক খাব, দিনটো ইটো-সিটো খাই থাকিব, ...।"

(শৰ কটা মানুহ - ৯৭)

মন্‌পাসকলৰ মাজত কেণ্টাৰ নামেৰে প্ৰচলিত এক অনুষ্ঠান হ'ল ল'ৰা-ছোৱালীৰ জন্মৰ পিছত সোঁৱৰণী প্ৰস্তুতকৰণৰ ৰীতি। লামাই কেণ্টাৰ কৰি নৱজাতকৰ নামকৰণ কৰে। তেওঁলোক লামাৰ ওচৰলৈ যাওঁতে আৰাক, খাটা আৰু শস্যৰ টোপোলা লৈ যোৱাৰ এক নিয়ম আছে। আওঁ তাম্পা নামৰ চৰিত্ৰটোৱে তেওঁৰ ছোৱালীজনীৰ কেণ্টাৰ চাবলৈ লামাৰ ওচৰলৈ যোৱা কাৰ্যৰ যোগেদি এই কথাসমূহ সুন্দৰ ৰূপত প্ৰকাশ্যমান হৈছে - ". . . ছোৱালীজনীৰ কেণ্টাৰ চাবলৈ দিম। লামাক যাচিবলৈ মোক দুবটল আৰাক, খাটা এটা আৰু শস্যৰ টোপোলা এটা বান্ধি দে।" (শৰ কটা মানুহ - ৪৪)

জনজাতীয়সকলৰ মাজত প্ৰচলিত আৰাক মদ বা লাওপানী আদিৰ প্ৰচলনেৰে ঔপন্যাসিকে এখন সম্পূৰ্ণ জনজাতীয় জীৱনৰ চিত্ৰ অংকন কৰিছে। আনহাতে ঔপন্যাসিকে উপন্যাসখনৰ চৰিত্ৰবোৰৰ মুখত প্ৰয়োগ কৰা ভাষাৰ জৰিয়তেও এখন পিছপৰা সাধাৰণ গাঁৱলীয়া জনজাতীয় চিত্ৰ অংকন কৰিবলৈ যৎপৰোনাস্তি চেষ্টা চলাইছে।

'শৰ কটা মানুহ' উপন্যাসখনত তিব্বতীয়সকলে মন্‌পাসকলৰ ওপৰত চলোৱা অত্যাচাৰ আৰু শোষণৰ বাস্তৱ চিত্ৰও ঠংচিয়ে অতি সুন্দৰভাৱে প্ৰকাশ কৰিছে। উপন্যাসখনৰ কাহিনীত কেইবাটিও সত্য ঘটনা আৰু কেইবাজনো সঁচা মানুহৰ চৰিত্ৰ সম্পৃক্ত হৈ আছে। ১৯৫০ চনৰ বৰ ভূমিকম্পই অসমৰ লগতে অৰুণাচলতো প্ৰচুৰভাৱে ক্ষতিসাধন কৰিছিল। টাৱাঙত বহুত মানুহৰ মৃত্যু হৈছিল, মন্‌পা গাঁৱৰ শিল আৰু মাটিৰে নিৰ্মিত ঘৰবিলাক ভাগি পৰিছিল। তাৰ বিৱৰণো ঔপন্যাসিকে দিছে ------- "চুৰবি গাঁৱৰ প্ৰায় বিশজন মানুহৰো প্ৰাণ গৈছিল। সেই ভূমিকম্পৰ জোকাৰণিত। তাৰ ভিতৰত আছিল ৰিজোম্বাৰ মাক চেংছোম আৰু ভনীয়েকজনী।"

(শৰ কটা মানুহ - ৬০)

ভূমিকম্পৰ পিছতে মন্‌পা অঞ্চলৰ প্ৰশাসন তিব্বতৰ পৰা ভাৰত চৰকাৰলৈ হস্তান্তৰ কৰা হয়। এই ঘটনা ঐতিহাসিক আৰু সত্য। দালাই লামাক ভাৰত চৰকাৰে আশ্ৰয় দিয়াৰ পিছতে চীনে ভাৰত আক্ৰমণ কৰে। এই যুদ্ধৰ বীভৎস পৰিৱেশ বৰ্ণনা অতি বাস্তৱসন্মত ৰূপত উপন্যাসখনত তুলি ধৰা হৈছে এইদৰে ---

"মৃতদেহবিলাক একেবাৰে টুকুৰা-টুকুৰ হৈ গৈছে কাৰোবাৰ জ্বলি যোৱা দেহাটো আছে, হাত-ভৰি-মূৰ নাই·; কাৰোবাৰ সম্পূৰ্ণ নিম্নাংশ একেবাৰে নাই। গুলী লাগি মৰা মানুহৰ শৰ নহয়, বোমা পৰি ক্ষত-বিক্ষত হৈ মৃত্যুক আঁকোৱালি লোৱা মানুহবিলাকৰ অৱশেষবিলাকহে তাত পৰি আছে। সম্পূৰ্ণ দেহাৰে সৈতে পৰি থকা শৰবিলাকৰ ওচৰলৈ কুকুৰ বিলাকে এতিয়াও যোৱা নাই, কিন্তু দেহবিলাক টুকুৰা-টুকুৰ হৈ যোৱা ঠাইত এতিয়া কুকুৰবিলাকে খোৱা-কামোৰা আৰম্ভ কৰি দিছে। ....।"

(শৰ কটা মানুহ - ১২৪)

উপন্যাসখনৰ আৰম্ভণিতে যিখন সমাজৰ কথা ঔপন্যাসিকে দাঙি ধৰিছে, সেইখন শিক্ষা-দীক্ষাৰ পোহৰ নপৰা অসংস্কৃত সমাজ যেনেই অনুমান হয়, কিন্তু উপন্যাসখনৰ শেহৰ ফালে গাড়ীৰ চলাচল, মোবাইল-বাইক আদি ব্যৱহাৰৰ কৰা সময়ে জনজাতীয় সমাজখনলৈ অহা পৰিৱৰ্তনৰ কথাকে চিহ্নিত কৰিছে।

উপসংহাৰ ঃ

য়েছে দৰজে ঠংচিৰ আলোচ্য উপন্যাস দুখনৰ মাজেদি অৰুণাচলী মন্‌পা আৰু চেৰদুকপেন নামৰ জনগোষ্ঠী দুটাৰ সমাজ সংস্কৃতি, জীৱনধাৰণ প্ৰণালী আদিৰ এখনি বাস্তৱ ছবি পোৱা যায়। একেখন ঠাইতে বাস কৰিলেও ইটো জনগোষ্ঠীৰ লগত সিটোৰ ভাষা-সমাজ-সংস্কৃতি তথা জীৱনধাৰণ প্ৰণালী পৃথক, এই সকলো কথা 'মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয়'ত অতি সুন্দৰভাৱে প্ৰকাশ কৰাৰ উপৰি পাহাৰৰ শিল কাটি ভৈয়ামৰ লগত পথ নিৰ্মাণৰ যোগেদি সমন্বয় সাধন হোৱাৰ লগতে পাহাৰীয়া অঞ্চল অৰুণাচললৈকো কেনেদৰে পৰিৱৰ্তন আহি পৰিছে তাকো সুন্দৰভাৱে প্ৰকাশ কৰা হৈছে। আনহাতে 'শৰ কটা মানুহ' উপন্যাসখনত মন্‌পাসকলৰ শৱ সৎকাৰৰ লগতে তিব্বতীয়সকলে মন্‌পাসকলৰ ওপৰত কৰা অত্যাচাৰৰ ছবিও ঔপন্যাসিকে সুন্দৰভাৱে দাঙি ধৰিছে। মন্‌পাসকলৰ উৎসৱ - পাৰ্বণ সামাজিক ৰীতি-নীতি, নৃত্য-গীত, সাজ-সজ্জা, খাদ্যভাস আদিৰো সুন্দৰভাৱে উপন্যাসখনত ফুটি উঠিছে। ❑

প্ৰসঙ্গসূচী ঃ

১। বৰপূজাৰী, জিতাঞ্জলী। অসমীয়া উপন্যাসত জনজাতীয় জীৱন। প্ৰথম প্ৰকাশ - ১৯৯৯। পৃষ্ঠা-৬২

২। শৰ্মা, গোবিন্দ প্ৰসাদ। আশীৰ দশক আৰু তাৰ পৰৱৰ্তী কালৰ ঔপন্যাসিকসকল। ডেকা, হৰেকৃষ্ণ (সম্পা.)। গৰীয়সী। ডিচেম্বৰ - ২০০৭। পৃষ্ঠা - ৬৬।

৩। আহমেদ, এম কামালুদ্দিন। অসমীয়া উপন্যাস (১৯৯৩-২০১০)। বৰগোহাঞি, হোমেন (সম্পা.)। অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী, ষষ্ঠ খণ্ড। তৃতীয় প্ৰকাশ ২০১৫। পৃষ্ঠা - ৭২৫-৭২৬।

মুখ্য সমল ঃ

১। ঠংচি, য়েচে দৰজে। মৌন ওঁঠ মুখৰ হৃদয়। নৱম সংস্কৰণ। গুৱাহাটী ঃ বনলতা, ২০১৫। মুদ্ৰিত।

২। -------,-------- -----। শৰ কটা মানুহ। ষষ্ঠ প্ৰকাশ। গুৱাহাটীঃ বনলতা, ২০১৫। মুদ্ৰিত।

গৌণ সমল ঃ

১। ঠাকুৰ, নগেন (সম্পা.)। এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস। দ্বিতীয় প্ৰকাশ। গুৱাহাটী ঃ জ্যোতি প্ৰকাশন, ২০১২। মুদ্ৰিত।

২। দাস, অমল চন্দ্ৰ (সম্পা.)। অসমীয়া উপন্যাস পৰিক্ৰমা। প্ৰথম প্ৰকাশ। ডিব্ৰুগড় ঃ বনলতা, ২০১২। মুদ্ৰিত।

৩। বৰপূজাৰী, জিতাঞ্জলী। অসমীয়া উপন্যাসত জনজাতীয় জীৱন । প্ৰথম প্ৰকাশ। গুৱাহাটী ঃ চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ১৯৯৯। মুদ্ৰিত।

৪। বৰগোহাঞি, হোমেন (সম্পা.)। অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (ষষ্ঠ খণ্ড)। তৃতীয় প্ৰকাশ। গুৱাহাটী ঃ আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা কলা - সংস্কৃতি সংস্থা, অসম, ২০১৫। পৰিৱৰ্ধিত সংস্কৰণ।

৫। শইকীয়া, অজিৎ। জনজাতীয় জীৱন ভিত্তিক অসমীয়া উপন্যাস। গুৱাহাটী ঃ সাৰদা প্ৰকাশন, ২০০৫। মুদ্ৰিত।

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945
Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

মিচিং সংস্কৃতি ঃ এটি চমু আলোকপাত

ড° নিলাক্ষী মিলি মেদক

সহকাৰী অধ্যাপিকা, সংস্কৃত বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-০১
৭০৯৯৮০৮৯০৯
Nilakshimili1981@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

সংস্কৃতি হ'ল কোনো এটা জাতিৰ বা মানৱ-জনগোষ্ঠীৰ মাজত শ শ, হাজাৰ হাজাৰ বছৰ ধৰি শিক্ষা-আদৰ্শ, ভাষা-সাহিত্য, আচাৰ-নীতি, ৰুচি-অভিৰুচি, জ্ঞান-ধৰ্ম, প্ৰেম-প্ৰীতি, হৰ্ষ-বিষাদ, কল্পনা-বিলাস, বিশ্বাস-অন্ধবিশ্বাস আদিৰ মাজেদি গঢ় লৈ উঠা সুষম বৈশিষ্ট্যৰ সামূহিক ৰূপ। সহজ ভাষাত ক'বলৈ হ'লে জান্তৱ প্ৰকৃতিৰ পৰা মানৱীয় প্ৰকৃতিলৈ মানুহক উন্নীত কৰা মানৱীয় কৰ্মৰাজিয়েই সংস্কৃতি। অসম, ভাৰতৰ উত্তৰ-পূব দিশত অৱস্থিত শতাধিক জাতি-জনগোষ্ঠীৰ বাসভূমি তথা মিলনভূমি বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ সাংস্কৃতিক বৈশিষ্ট্যৰ আৰু বৈচিত্ৰ্যতাৰ মাজত সমন্বয় ঘটি সংহতি স্থাপন হৈছে এই অসম দেশত। অসমৰ এটি অন্যতম জনগোষ্ঠী হ'ল মিচিং জনগোষ্ঠী। মিচিং সংস্কৃতি মূলতে মংগোলীয় সংস্কৃতি যদিও দীৰ্ঘকাল ধৰি অসমত বসবাস কৰি অহা বাবে আৰ্য মংগোলীয়, অষ্ট্ৰিক আদি নানা জাতি-উপজাতিৰ যৌগিক সংস্কৃতিৰ প্ৰবাহত পৰি কিঞ্চিত সলনি হোৱা দেখা যায়। বিশেষকৈ অসমত আৰ্যমূলৰ পৰা উদ্ভৱ হোৱা ভাষা আৰু ধৰ্মৰ প্ৰভাৱ মিচিং সমাজত যথেষ্ট পৰিছে। "মিচিং সংস্কৃতি ঃ এটি চমু আলোকপাত" আলোচনা পত্ৰখনৰ জৰিয়তে মিচিং জনগোষ্ঠীৰ সংস্কৃতিৰ বিষয়ে আলোচনা কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

মিচিং, সংস্কৃতি, কৃষ্টি, মিৰি।

অৱতৰণিকা ঃ

কৃষ্টি আৰু সংস্কৃতি পদ দুটা সলনাসলনিকৈ প্ৰয়োগ হোৱা দেখা যায়। হেমকোষ অভিধানে কৃষ্টি শব্দৰ অৰ্থ নিম্নোক্তধৰণে ব্যক্ত কৰিছে—

১। কৃষ্টি-সংস্কৃতি, চাহকৰণ, খেতিৰ বাবে মাটি যুগুত কৰা কাৰ্য (Cultivation, tilling Act of ploughing)।

২। কৃষ্টি-আচাৰ-ৰুচি, শিল্প-কলা, শিক্ষা আদি মানৱ জীৱনৰ বিভিন্ন ক্ষেত্ৰত হোৱা উৎকৰ্ষ সাধন।

সংস্কৃতি-মানৱ সমাজৰ জ্ঞান-বিশ্বাস, ৰীতি-নীতি, আচাৰ-ব্যৱহাৰ, নৈতিকতা, উৎসৱ-অনুষ্ঠান, আইন-কানুন, শিল্প-কলা আৰু বৌদ্ধিক উৎকৰ্ষ সাধনৰ আন দিশবোৰ সামৰা সামাজিক ৰূপেই সংস্কৃতি।

দেখা যায়, কৃষ্টিত কৰ্ষণৰ কথা থাকে। কৰ্ষণ প্ৰক্ৰিয়াৰ দ্বাৰা যি পোৱা যায়, সেয়ে কৃষ্টি আৰু কৃষ্টিক কৰ্ষণ কৰি যি পোৱা যায়, ই সংস্কৃতি। সংস্কৃতি বুলিলে সমাজৰ অংগীভূতৰূপে মানুহে আহৰণ কৰা ভাষা-কলা-কৃষ্টি, আচাৰ-ব্যৱহাৰ, ৰীতি-নীতিত, ধ্যান-ধাৰণা, জ্ঞান-বিশ্বাস, খাদ্যাভাস আৰু অন্যান্য সামাজিক দিশবোৰৰ পৰিমাৰ্জিত সামগ্ৰিক ৰূপেই সংস্কৃতি। কিন্তু কৃষ্টিত এনেধৰণৰ পৰিমাৰ্জন নাথাকে।

Shorter English Dictionary (vol-1)ত কোৱা হৈছে—

"Culture (I) A cultivation of field or Piece of land.

(II) Cultivation of development of mind, manners etc, improvement of education or training.

(III) Refinement, tastes and manners, artistic and intellectual side of civilization.

(IV) Particular form, stage or type of intellectual development or civilization of society, or group, characterised by its distinctive customs, achievements, Products outlooks etc."

সমাজ জীৱন, প্ৰকৃতি গুণ আদি বৈশিষ্ট্যৰ আধাৰত সংস্কৃতি কেইটামান শ্ৰেণীত বিভক্ত কৰিব পাৰি, যেনে—

১। আদিম সংস্কৃতি বা প্ৰাক ঐতিহাসিক সংস্কৃতি (অনানুষ্ঠানিক বা অলিখিত সংস্কৃতি)।

২। গঞা সংস্কৃতি।

৩। শিষ্ট বা অভিজাত আনুষ্ঠানিক বা লিখিত সংস্কৃতি।

গঞা সংস্কৃতি দুটা ভাগত বিভক্ত—

১। লোক সংস্কৃতি বা জন সংস্কৃতি বা লোকবিদ্যা।

২। জনজাতিৰ বা জনজাতীয় সংস্কৃতি।

লোক সংস্কৃতিৰ ইংৰাজী প্ৰতিশব্দ হিচাপে folklore শব্দৰ ব্যৱহাৰ কৰা হয়। (Folk) লোক, যি লোক গাঁৱত বাস কৰে, যি কৃষি, হস্তশিল্প অৰ্থনীতিত নিৰ্ভৰশীল, পৰম্পৰাত বিশ্বাসী। (Lore)ৰ অৰ্থ জনসাধাৰণৰ কৃতি, তেওঁলোকৰ বিভিন্ন আচৰণ, জ্ঞান-বিদ্যা আদি লোকসংস্কৃতিৰ অংগীভূত বিষয়বোৰ হৈছে, জনশ্ৰুতি, সাধুকথা, সাঁথৰ মন্ত্ৰ, লোকবিশ্বাস, পোছাক-পৰিচ্ছদ, আ-অলংকাৰ, লোকনৃত্য, নাচ, লোক-কলা, বাদ্যযন্ত্ৰ, সংগীত, ভাষা, দোৱান, লোক-সাহিত্য বা বাচিককলা, লোক কবিতা, ঘৰ-বাৰী নিৰ্মাণ প্ৰণালী, ইত্যাদি।

মিচিং সংস্কৃতি ঃ

মিচিং (মিৰি) জনগোষ্ঠীটো অসম আৰু অৰুণাচলৰ খিলঞ্জীয়া অধিবাসী। তেওঁলোকৰ এক বৰ্ণময় চহকী সংস্কৃতিৰ অধিকাৰী। মিচিং সংস্কৃতিক লোকসংস্কৃতিৰ অন্তৰ্গত কৰিব পাৰি, যাক ইংৰাজীত folk-culture আৰু মিচিংত Mi-Dirbi আখ্যা দিব পাৰি। (Mi = মানুহ, লোক, Dirbi = সংস্কৃতি) মিচিং সমাজৰ অতীতৰ পৰা চলি অহা ৰীতি-নীতি, আচাৰ-ব্যৱহাৰ, চাল-চলন, ধ্যান-ধাৰণা, পোছাক-পৰিচ্ছদ, আ-অলংকাৰ, লোকনৃত্য, নাচ, বাদ্যযন্ত্ৰ, লোকসাহিত্য বা বাচিক কলা, সাধুকথা, জনশ্ৰুতি, সাঁথৰ, বিশ্বাস ইত্যাদিৰ এক সমন্বিত ৰূপেই মিচিং সংস্কৃতি।

মিচিং সংস্কৃতিৰ সম্পদৰাজিৰ এটি চমু আভাস দিয়া হ'ল—

১। পোছাক-পৰিচ্ছদ ঃ

পুৰুষৰ সাজ-পোছাক (শৰীৰৰ নিম্নাংশৰ) ঃ

উগন	ধুতি বা চুৰীয়া
গন বৰ উগন	বৰ চুৰীয়া
গন্ ৰ' উগন	খাটি চুৰীয়া (মিবুৱে পৰিধান কৰা চুৰীয়া)
গন্ কক্ উগন	পোন্ধ মাৰি পিন্ধা চুৰীয়া (কম কাপোৰৰ)
গন য়াৰ উগন	দীঘল আকৃতিৰ চুৰীয়া
গনিন উগন	পুৰণি চুৰীয়া

পুৰুষৰ সাজ-পোছাক (শৰীৰৰ উৰ্ধ্বাংশৰ) ঃ

মিব বা মিলবং গালুগ্	পুৰুষৰ চোলা
লুগ্ ৰ' গালুগ্	খাটি চোলা (পূজা আদিত পিন্ধা হয়)
গাদু গালুগ্ তুবগ্ গালুগ্	জিম কাপোৰৰ চোলা
লুব্ ৰৌ বা মিবু গালুগ্	মিবুৱে পৰিধান কৰা চোলা। (চোলাৰ ডিঙি ইংৰাজী 'V' আখৰৰ দৰে, কাপোৰৰ ৰং ঈষৎ বগা বৰণৰ ফুল বছা কাপোৰৰ চোলা।
দুমৌৰ	গামোচা
মৌৰ পুং	দীঘল আকৃতিৰ মূৰৰ পাগুৰি
ঔঃ তুপ	মূৰত মৰা গামোচা
ঔৰ্ কক্	মাফলা
লুংকাপ	"
লুপ্ জগ গালুগ	পুৰুষৰ বুকু ফলা চোলা

মহিলাৰ সাজ-পোছাক (শৰীৰৰ নিম্নাংশৰ) ঃ

এগে	মেখেলা
য়াকান মচাং এগে	ক'লা বুটা বছা মেখেলা
গেৰ'	মেখেলাত ওপৰত মেৰিওৱা মেঠনি
গাপা	মেখেলা বিশেষ
গৌগৃং এগে	সচৰাচৰ ব্যৱহাৰ কৰি থকা মেখেলা
য়েত্ চাং	শাড়ীজাতীয় বস্ত্ৰ
চেগ্ ৰৌগ্	মেঠনি জাতীয় বস্ত্ৰ
কেগ্ ৰৌগ্	"
নিচেগ্	কেঁচুৱা বোকোচাত লোৱা কাপোৰ

মহিলাৰ সাজ-পোছাক (শৰীৰৰ ওপৰৰ অংশৰ) ঃ

নৌং গালুগ্	মহিলাৰ চোলা (ব্লাউজ)
ৰিঃ বি	ৰং-বিৰঙৰ চাদৰ বিশেষ
গাচেং	"
পৌঃ ৰে	মেখেলাৰ লগত পৰিধান কৰা চাদৰ বিশেষ

য়াম্ব	কন্যাই পিন্ধা চোলা বিশেষ
ৰুম্বং	চাদৰ জাতীয় বস্ত্ৰ
গাঃ ৰে	,,
পঃ টুপ	মিচিং মহিলাই পৰিধান কৰা গামোচা জাতীয় বস্ত্ৰ, উৰণি
কুঃ পাৰ (পাকপৰ)	চেমনীয়া মিচিং মহিলাই পিন্ধা চেলেং জাতীয় বস্ত্ৰ।

চাদৰ হিচাপে ব্যৱহৃত কাপোৰ

গাদু	জিম কাপোৰ
তাপুম গাচৰ	এড়ী চাদৰ

আ-অলংকাৰ (পুৰুষৰ)

দগ্ নৌ	মণি-মুকুতা
তাক্ পৰ	এবিধ কেৰু
তাদগ্	এবিধ মণি-মুকুতা

২। আ-অলংকাৰ (মহিলাৰ)

তাকপৰ	এবিধ কেৰু
তাকপি	গুটি মণি
পিচিৰিং	কাণফুলি
কংগে	খাৰু
কেন্ তু-মাদলি	কেৰু-মণি
দগ্ নৌ তাগদ	পোৱাল মণি
দগ চিৰি	মণি
বিৰ্ বিৰ্	কাণত পিন্ধা অলংকাৰ বিশেষ
লাক্ পুন	হাতত পিন্ধা অলংকাৰ বিশেষ

৩। বাদ্যযন্ত্ৰ

ডুমডুম	ঢোল
দেন্ দুন্	টোকাৰী জাতীয় বাদ্যযন্ত্ৰ
তাপুং	পেঁপা জাতীয় বাদ্য
ঔজুপ তাপুং	পানীলাউৰ শুকান খোলাৰে তৈয়াৰী পেঁপা
দৌৰ কি তাপুং	বাঁহেৰে নিৰ্মিত পথালিকৈ বজোৱা বাঁহী
তুঃ তক তাপুং	এটা মূৰত ফুঁ দি বজোৱা বাঁহী (বাঁহেৰে নিৰ্মিত)
তুঃ লুং তাপুং	বাঁহী
জৌগ্ ৰে তাপুং	ম'হৰ শিঙৰ পেঁপা

ঔজুগ্ তাপুঙৰ শ্ৰেণী

লৃঃ চিগ তাপুং	তিনিটা নলাযুক্ত পেঁপা (পানীলাউৰ শুকান খোলাৰে তৈয়াৰী পেঁপা)
পুমচু তাপুং	দুটা নলাযুক্ত পেঁপা (পানীলাউৰ শুকান খোলাৰে তৈয়াৰী পেঁপা)
তাম্ ব তাপুং	এটা নলাযুক্ত পেঁপা (পানীলাউৰ শুকান খোলাৰে তৈয়াৰী পেঁপা)

অন্যান্য বাদ্যযন্ত্ৰ ঃ

গুংগাং	গগনা
য়কচা	তৰোৱাল
লৌঃ নং (লৌঃ লং)	বৰকাঁহ
মাৰবাং (বাৰ্ বাং)	কাঁহী জাতীয় বাদ্য
লুঃ পি	তাল
কক্ তৌৰ	টগ্ টগ্
পিঃ লি	ম'হৰ শিঙৰ পেঁপা বা লাউৰ শুকান খোলাত লগাই বজোৱা এবিধ সৰু বাঁহী।
তুঃ তগ	মূৰত ফুঁ দি এবিধ সৰু বাঁহী দেন্ দুন মেগেলা গছেৰে নিৰ্মিত চতুৰ্ভুজীয়া এবিধ বাদ্যযন্ত্ৰ
দেন্ তুগ্	বাঁহৰ দুই মূৰ খোলা পাবেৰে তৈয়াৰী ঢোলৰ দৰে মাৰিৰে বজোৱা এবিধ বাদ্য।
দুম্ পাগ	দেন্ তুগৰ দৰে এবিধ বাদ্যযন্ত্ৰ, বাঁহৰ দুই মূৰ খোলা ঢোলৰ দৰে মাৰিৰে বজোৱা এবিধ বাদ্য।
ৰাইকৰং	তামোল গছ ফালি ঘাট ঘাট কৰি কাটি তৈয়াৰ কৰা বাদ্যযন্ত্ৰ, বৰা গাহৰিৰ দাঁতেৰে ঘঁহি বজোৱা হয়।

৪। পৰম্পৰাগত খেল-ধেমালি ঃ

(ক) পানীৰ খেল ঃ

আচি আচ্ বাঃ নাম	সাতোঁৰ
বাঃ জুক্ বাঃ নাম	থিয় সাতোঁৰ
কৌল্ লাদ বাঃ নাম	চিলনি সাতোঁৰ
বাগ্ চুম্ না, দুব্ ৰা বাঃ নাম	গৰাৰ পৰা জাঁপ মাৰি, বুৰ মাৰি সাতোঁৰা
কিঃ লিংকি বাঃ নাম	কলহৰ সহায়ত সাতোঁৰা
পিঃ ম্ পুদ মলা বাঃ নাম	মেখেলা ফুলাই সাতোঁৰা

(খ) স্থলৰ খেল ঃ

চিংকিন লৌগ্ নাম	ৰবাৰ টেঙাৰ বল খেল
দৌপৃ কুঃ নাম	ঢোল খেল
দগ্ দৃগ্ দুগ্ নাম	পেং দৌৰ খেল

পুক্ কি দৌমনাম	টাংগুটি খেল
য়ৌঃ মুন্ চুনাম	মল্লযুদ্ধ
ইগি এট্ কা মুনচুনাম	খুবলিমাৰি (খুন্দনা) পাকমাৰি ধৰা খেল
ই পুগ আব্ নাম	ধনু-কাঁড় মৰা খেল
দুগ্ কামুন চুনাম	দৌৰ খেল
বুঃ বুং কিদ্ নাম	ভোঁ ভোঁ খেল
অল্ লুং দুকামুনচাম	নাও খেল

(গ) ল'ৰা-ছোৱালীৰ খেল ঃ

ৰুকুনি মুনাম	পুৰুষ-মহিলাৰ, ল'ৰা-ছোৱালী আদিৰ প্ৰতিকৃতি সাজি সাজ-পোছাক পিন্ধোৱা খেল।
বৌদু-গাচৰ চুম্ নাম	ক্ষুদ্ৰ ক্ষুদ্ৰ কাপোৰ বোৱা খেল।
বেত্ চাক চঃ মান	কলহৰ ভঙগুড়ি খেল।
মিগাপ গাপচুনাম	লুকা-ভাকু (লুকা-লুকি) খেল।
পঃ পৃৰ য়াদ্ নাম	বাঁহেৰে সজা সৰু পাংখা বতাহত ঘূৰোৱা খেল।
আঃ য়ৌ লৌ চুনাম	গুটি লুকুৱা খেল।
চুল্ লি অকুম মনাম	বালিঘৰ সজা খেল।
অল্ লুং পুঃ বম নাম	সোঁতত সৰু নাও উটোৱা খেল।

৫। খাদ্যাভাস ঃ

লাই আম আমবৃন আপিন	লাহী ধানৰ চাউলৰ ভাত
বাওঁ আম আমবৃন আপিন	বাওঁধানৰ চাউলৰ ভাত
আম্ পি আমবৃন	বৰা চাউলৰ ভাত
পেঃ ৰেদ অয়িং	মাটিমাহৰ তৰকাৰী
কলমাং অয়িং	কলামাহৰ তৰকাৰী
তুলেঃ অয়িং	লাইশাকৰ তৰকাৰী
তাক পিয়াং অয়িং	খহটা ডিমৰু পাতৰ তৰকাৰী
অম্ বে অয়িং	মেচাকি শাকৰ তৰকাৰী
ইঃ কুং অয়িং	বাঁহগাজৰ তৰকাৰী
তাকুক্ অয়িং	ডিমৰু জাতীয় এবিধ মিহি পাতৰ তৰকাৰী
তাজৃগ অয়িং	ডিমৰু জাতীয় এবিধ মধ্যমীয়া মিহি পাতৰ তৰকাৰী।
নৌকুং অয়িং	নলটেঙা পাতৰ তৰকাৰী
অকাং অয়িং	ঢেঁকীয়া শাকৰ তৰকাৰী
পাঃ তাং অয়িং	মাটি-কাদুৰীৰ তৰকাৰী
পিতাং অয়িং	পিঠাগুড়িৰ তৰকাৰী
কৰাইগুড়ি অয়িং	ভজা চাউলৰ গুড়ি তৰকাৰী
লাঃ চৰ অয়িং	সিজোৱা পাতশাকৰ তৰকাৰী

মাছ-মাংস

এয়েগ্ আদিন	গাহৰি মাংস
পৰগ্ আদিন	মুৰ্গী মাংস
চবেন্ আদিন্	ছাগলী মাংস
চান না অঙ/ ঙচান্	শুকান মাছ
নাম চিং	শুকান মাছৰ গুড়ি

পনীয়া আহাৰ

পঃৰ' আপং	ক'লা ছাই মদ (চাউলৰ পৰা তৈয়াৰী)
নগিন্ আপং	বগা চাই মদ (চাউলৰ পৰা তৈয়াৰী)

উৎসৱ-পাৰ্বণ

আলি-আয়ে-লৃগাং	বসন্ত উৎসৱ (খেতি আৰম্ভণিৰ উৎসৱ)
পঃ ৰাগ	খেতি চপোৱা সময়ৰ উৎসৱ

৭। লোক সাহিত্য বা বাচিক কলা ঃ

(মৌখিকভাৱে চলি অহা)

আঃ বাং	ধৰ্মীয় গীত
কাবান্	বিননি গীত
অই-নি তম্	প্ৰেমৰ গীত
কঃ নিঃ নাম্	নিচুকনি গীত
লুলিঃ লুকাম্	জতুৱা ঠাঁচ
লৃয়্ লুকাম্	প্ৰবচন
লেকে দঃ য়িং	সাধুকথা
কেদ্ নৌ আগম	সাঁথৰ

ধৰ্মীয় লোকবিশ্বাস

আবুদঃ ঞি	পিতৃ সূৰ্য (দেৱতা)
আনা পঃ ল	মাতৃ চন্দ্ৰ (দেৱী)
চেঃ দৃ	সৃষ্টিকৰ্তা (স্ত্ৰী-প্ৰকৃতি)
মেঃ ল	সৃষ্টিকৰ্তা (পুৰুষ)

৮। লোক নৃত্য ঃ

গুম্ ৰাগ চঃ নাম	গুম্ৰাগ নাচ। ডেকা-গাভৰু, বুঢ়া-বুঢ়ী, বয়সস্থ আদি সকলো লোকে উৎসৱ-অনুষ্ঠানত পৰিৱেশন কৰা নাচ বিশেষ। (গুম্ ঢোলৰ শব্দ, ৰাগ উৎসৱ)
চৌল্লয়া চঃ নাম	চৌল্লয়া নাচ। ডেকা-গাভৰুৱে দলবদ্ধ হৈ পৰিৱেশন কৰা নাচবিশেষ। (চল্লয়া

	মৰমৰ, নাচৰ আৰম্ভণিত চেল্লয়া বুলি উচ্চাৰণ কৰা হয়)
পৌৰৌলি চঃ নাম	লৌৰৌলি নাচ। ডেকা-গাভৰুৱে পৰিৱেশন কৰা নাচ বিশেষ। (লৌৰৌলি নিসংগতা প্ৰকাশ কৰা শব্দ)
মিবু দাগ লা চুম্ না চঃ নাম	মিবুৱে (দেওধাই) জঁকি উঠা আৰু নাচ-বাগ কৰি বিচৰণ কৰা কাৰ্য। ই এক নাচ বিশেষ।
লত্তা চঃ নাম	চোলাতৰ ধেমেলিয়া নাচ। (বিঃদ্রঃ- চ নাম ৰং-ধেমালি, চ নাম নাচ, মাক্ চাং চ নাম নাচোন)

সামৰণি ঃ

সামৰণিত ইয়াকে ক'ব পাৰি যে মিচিং সংস্কৃতি পৰম্পৰা আশ্ৰয়ী। পৰম্পৰা সৈতে খাপ নাখালে মানুহে সংস্কৃতি গ্ৰহণ নকৰে। পিছে পৰম্পৰা স্থবিৰ নহয়, গতিশীল। সময় আগবঢ়াৰ লগে লগে, সমাজৰ পৰিৱৰ্তনৰ লগে লগে পৰম্পৰাৰো পৰিৱৰ্তন হয়। মিচিং সাংস্কৃতিক জীৱন ধাৰালৈও কেতবোৰ পৰিৱৰ্তন অহা দেখিবলৈ পোৱা যায়। কিন্তু এই পৰিৱৰ্তনে যাতে মিচিং সংস্কৃতিৰ পৈতৃক প্ৰাণটোৰ অপমৃত্যু ঘটাব নোৱাৰে তাৰ প্ৰতি সচেতন হ'ব লাগে। ❑

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

কাগয়ুং, ভৃগুমুনি (সম্পা.)। মিচিং সংস্কৃতিৰ আলেখ্য। সংশোধিত আৰু পৰিবৰ্ধিত সংস্কৰণ, গুৱাহাটী, ১৯৮৯

গগৈ, লীলা। অসমৰ সংস্কৃতি। বনলতা প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, দ্বাদশ সংস্কৰণ, ২০১৯

দলে, বসন্ত কুমাৰ। মিচিং সমাজ সংস্কৃতিৰ সমীক্ষা। চন্দ্ৰ প্ৰকাশন, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, ২০০৮

পায়েং, সদানন্দ। মিচিং জনজাতিসমাজ আৰু সংস্কৃতি। প্ৰথম সংস্কৰণ, গোগামুখ, প্ৰকাশ-১৯৯৬

ডেকা, নমিতা (সম্পাদনা)। সংস্কৃতি-বিচিত্ৰা। বীণা লাইব্ৰেৰী, গুৱাহাটী, ১৯৯০

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ নাটকত লোকসংস্কৃতিৰ সমল

ড° নীলাক্ষি ডেকা

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
ডিগবৈ মহিলা মহাবিদ্যালয়
ডিগবৈ (অসম)-৭৮৬১৭১
৯১০১৭১৪৭৮২
nilakshideka210@gmail.com

প্ৰস্তাৱনা ঃ প্ৰতিজন লেখকৰ ৰচনাৰ অন্তৰালত লেখকৰ সমাজ আৰু সামাজিক মনস্তত্ত্বই ঠাই পাই। সৰুৰে পৰা লেখকজন ডাঙৰ-দীঘল হোৱা পৰিৱেশে তেওঁৰ চিন্তা-ধাৰাত প্ৰভাৱ পেলায়। ফলশ্ৰুতিত লেখকৰ ৰচনাত সেইবোৰ দীপ্তমান হৈ উঠে। সমাজৰ এক অংগ হ'ল সমাজৰ সংস্কৃতি। পৰম্পৰা, ৰীতি-নীতিৰ পৰা আৰম্ভ কৰি মানুহজনে পিন্ধা সাজ-পাৰ, কথা কোৱাৰ ভংগী, তেওঁৰ খাদ্যাভাস, সংস্কাৰ আদিয়ে ব্যক্তিজনৰ সংস্কৃতিৰ ব্যাপকতা নিৰ্ণয় কৰে। 'একোটা জাতিৰ জনমানসৰ ঐতিহ্য সামাজিক ৰীতি-নীতি আৰু বিশ্বাসৰ অভিব্যক্তি ধৰা পৰে জাতিটোৰ লোক সংস্কৃতিত। লোক সংস্কৃতিৰ মৌলিক আৰু সবাতোকৈ গুৰুত্বপূৰ্ণ উপাদান বিলাক হ'ল- ভাষা আৰু সাহিত্য। সাহিত্যত প্ৰতিফলিত হয় একোটা সংস্কৃতিৰ ধ্যান-ধাৰণা আৰু চিন্তা-কল্পনাৰ স্বাক্ষৰ।' (ধীৰেন্দ্ৰ নাথ দত্ত, 'অসমীয়া লোক সাহিত্য ঃ বৈচিত্ৰ্য আৰু ঐক্য', ৩০৫)

সাহিত্যৰ অন্যান্য বিধাৰ দৰে নাটক এক বিযেশ বিধা। নাট্যকাৰজনে নাটক এখন সৃষ্টি কৰোঁতে প্লটটো যিকোনো এখন সমাজ বাস্তৱ অভিজ্ঞতা নাইবা কল্পনাৰ ভিত্তিত তৈয়াৰ কৰি লয়। নাটকৰ ভাৱবস্তু, বিষয়বস্তু, মঞ্চ কলা-কৌশলতো সংস্কৃতিয়ে ব্যাপক প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিব পাৰে।

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ সমসাময়িক কালচোৱালৈ মন কৰিলে দেখা যায় যে সেই সময়ত বহু কেইটা ঘটনা-পৰিঘটনাই অসমীয়া সংস্কৃতিলৈ ভাবুকি কঢ়িয়াই আনিছিল। মোৱামৰীয়া বিদ্ৰোহ, ইয়াণ্ডাবু সন্ধি, অসমীয়া ভাষাৰ সলনি বাংলা ভাষাৰ প্ৰচলন আদি ঘটনাই অসমীয়া সাহিত্য-সংস্কৃতিক ভয়ংকৰ গৰাহত পেলাইছিল। অসমীয়া ভাষাৰ পৰিৱৰ্তে অসমত বাংলা গীত-মাত, সুৰ, বাদ্যই অগ্ৰাধিকাৰ লাভ কৰিবলৈ ধৰিছিল। ফলত অসমীয়া লোক-সংস্কৃতিৰ বিশ্বাস, পৰম্পৰা, ৰীতি-নীতি আদি বিলুপ্তিৰ পথত আহি পৰিছিল। এনে পৰিস্থিতিক বিপৰীত প্ৰত্যাহ্বান জনোৱাৰ সাহস কেইজনমান অসমীয়াই হে কৰিলে। তাৰে ভিতৰত জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা আছিল অন্যতম। তেওঁ সৎ, সাহসী আৰু প্ৰচণ্ড বুদ্ধিদীপ্ততাৰে অসমীয়া ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিক সমৃদ্ধ কৰি তুলিলে। তেখেতৰ সুন্দৰৰ সাধনা আৰু পোহৰমুখী চিন্তা-দৰ্শনে অসমীয়া সংস্কৃতিৰ জগতখনক সুকীয়া মাত্ৰা দান কৰিলে। অসমীয়া লোকগীত, লোকমন, লোককথা আদি উপাদানসমূহকে অসমীয়া সাহিত্যৰ মূল সোঁতা হিচাপে লৈ ৰচনা কৰি উলিয়ালে কবিতা, উপন্যাস, গীত আৰু নাটক আদি সাহিত্যৰ বিবিধ ৰূপ।

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ নাটকৰ পৰিচয় ঃ আধুনিক অসমীয়া নাট্য বুৰঞ্জীৰ অন্যতম শ্ৰেষ্ঠ নাট্যকাৰ জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা। সৰ্বমুঠ ৯ খন নাটক ৰচনা কৰা নাট্যকাৰজনৰ নাটকসমূহৰ বিষয়বস্তু আছিল সুকীয়া। যদিও এই নখন নাটকৰ দুখন অসম্পূৰ্ণ হৈ ৰ'ল। তেওঁৰ নাটকসমূহ হ'ল— শোণিত কুঁৱৰী (১৯০৭), কাৰেঙৰ লিগিৰী (ৰচনা ১৯২৫-২৬, প্ৰকাশ ১৯৩৭), ৰূপালীম (ৰচনা ১৯৩৬, প্ৰকাশ ১৯৬০), লভিতা (১৯৪৮), খনিকৰ, সোণপখিলী, নিমাতী কইনা (ৰচনা ১৯৩৬, প্ৰকাশ ১৯৬৪)। অতুল চন্দ্ৰ হাজৰিকা, মিত্ৰদেৱ

মহন্ত আদিৰ দৰে আধুনিক নাট্যকাৰৰ সমসাময়িক হৈও জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ নাটকক সুকীয়া বুলি কোৱাৰ কাৰণ বিশ্লেষণ কৰিলে একে আষাৰে ক'ব পৰা কথাটো হ'ল তেওঁৰ নাটকসমূহ প্ৰাচ্য আৰু পাশ্চাত্যৰ নাটকৰ সুগভীৰ অধ্যয়নৰ ফচল বুলিব পাৰি। কিয়নো তেওঁৰ নাটকত স্বাধীনতা আন্দোলনৰ পৰা আৰম্ভ কৰি, ভাৰতীয় পুৰাণৰ প্ৰভাৱ, কাল্পনিক ৰোমাণ্টিক জগতৰ পৰা কাল্পনিক লোককথাৰ প্ৰভাৱ, ৰজা-মহাৰজাৰ পৰা দাস-দাসীৰ জীৱনৰ বিবিধ দিশ নাটকত দীপ্ত হৈ উঠিছে।

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ 'শোণিত কুঁৱৰী' নাটকখন পাঁচটা অংকত বিভক্ত। নাটকৰ মূল কাহিনীটো পৌৰাণিক আখ্যানক কেন্দ্ৰ কৰি লোৱা হৈছে। পীতাম্বৰ কবিৰ 'উষা-পৰিণয়', অনন্ত কন্দলিৰ 'কুমৰ হৰণ' আৰু ভাগৱতৰ দশম স্কন্ধৰ শেষ ভাগৰ পৰা কাহিনীটো গ্ৰহণ কৰা হৈছে। শোণিতপুৰৰ ৰজা বাণৰ জীয়ৰী উষা আৰু শ্ৰীকৃষ্ণৰ নাতি অনিৰুদ্ধৰ প্ৰেম, চিত্ৰলেখাৰ চাতুৰ্যতা আৰু হৰি-হৰৰ যুদ্ধই নাটকৰ মূল কাহিনী। এটা পৌৰাণিক আখ্যানক অৱলম্বন কৰি জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাই মৌলিক প্ৰতিভাৰে অসমীয়া নাট্যজগতত 'শোণিত কুঁৱৰী'ৰ দৰে নাটক সংযোজন কৰিলে। পৌৰাণিক কাহিনীটোক তেওঁ বাস্তৱধৰ্মিতাৰে উপস্থাপন কৰাত সফল হৈছে। নাটকখনত চিত্ৰলেখাই অনিৰুদ্ধক শোণিতপুৰলৈ আনিবৰ বাবে তামসিক বিদ্যাৰ পৰিৱৰ্তে নৃত্য-গীতৰ মাধূৰ্য্যৰ সহায় লৈছে। নাট্যকাৰৰ ভাৰতীয় চিত্ৰবিদ্যা আৰু নৃত্যকলাৰ গভীৰ প্ৰতীতি ইয়াত প্ৰকাশ পায়। অসমীয়া থলুৱা মাত-কথা, গীত আদিৰ প্ৰয়োগৰ ফলত নাটকখন অধিক বাস্তৱ সন্মত আৰু আধুনিক অসমীয়া নাট্যপ্ৰেমীৰ বাবে অধিক প্ৰযোজ্য হৈ পৰিছে।

অসমীয়া নাটকত দৃশ্যসজ্জাৰ দীঘলীয়া নিৰ্দেশ বা বৰ্ণনা সংযোগ কৰি জ্যেতিপ্ৰসাদে ইয়াক নাটকৰ চৰিত্ৰ, পৰিস্থিতি আৰু ঘটনাৰ গতি দান কৰাৰ ক্ষেত্ৰত এক নতুন গতি আনিছিল। এই ৰীতিটো তেওঁ পশ্চিমীয়া নাট্যকাৰ হেন্‌ৰিক ইবছেন, জৰ্জ বাৰ্ণাড শ্ব', গেলছৱৰ্থি আদি নাট্যকাৰৰ পৰা লাভ কৰিছিল। জ্যোতিপ্ৰসাদৰ পৰৱৰ্তী নাট্যকাৰসকলৰ নাটকত ইয়াক বহুল পৰিমাণে প্ৰয়োগ কৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়। দৃশ্যসজ্জাৰ পৰিৱেশনটোৱেই নাটকৰ কাহিনীৰ পটভূমি দাঙি ধৰাৰ লগতে ঘটনাৰ গতিবেগ সূচনা কৰে। শোণিতকুঁৱৰী লোকধৰ্মী নাটকৰূপে দিল্লীত পুৰষ্কৃত হৈছিল।' (জ্যোতিপ্ৰসাদ শইকীয়া (সম্পা.), জ্যোতিপ্ৰসাদৰ সৃষ্টি আৰু চেতনা, ৩৬৪) 'শোণিত কুঁৱৰী' নাটকৰ সংলাপৰ কাব্যধৰ্মিতাই নাটকখনক অধিক উজ্জল কৰি তুলে। লগতে চৰিত্ৰৰ প্ৰকৃতি আৰু মানসিক অৱস্থা প্ৰকাশৰ বাবে যথোপযুক্ত হৈছে।

মধ্যযুগীয় আহোম ৰাজতান্ত্ৰিক ব্যৱস্থাৰ পটভূমিত ৰচিত এখন নাটক হ'ল 'কাৰেঙৰ লিগিৰী'। কাল্পনিক ৰোমাণ্টিক ধৰ্মী নাটক হোৱাৰ লগতে বাস্তৱিক পৰিস্থিতি বৰ্ণনাই নাটকখনক সুকীয়া বৈশিষ্ট্যপূৰ্ণ কৰি তুলিছে। নাটকখন সৰ্বমুঠ পাঁচটা অংকত বিভক্ত। নাটকখনৰ চৰিত্ৰৰ মুখৰ সংলাপ আটাইতকৈ উল্লেখনীয় দিশ। তৃতীয় অংকৰ প্ৰথম দৰ্শনত সুন্দৰ কোঁৱৰে শেৱালীৰ তেওঁৰ প্ৰতি থকা প্ৰেমৰ বিষয়ত কৰা প্ৰশ্নসমূহ অসমীয়া নাটকৰ সংলাপৰ ক্ষেত্ৰত বিশেষ আৰু অভিনৱ সংযোজন বুলিব পাৰি। সংলাপৰ জৰিয়তে নাট্যকাৰৰ প্ৰগতিশীল চিন্তাৰ উমান পোৱা যায়। লগতে নাটকখনৰ মঞ্চ নিৰ্দেশনাও তাৎপৰ্যপূৰ্ণ।

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ তৃতীয়খন কাল্পনিক নাটক হ'ল 'ৰূপালীম'। নাটকখনত বেলজিয়াম নাট্যকাৰ মৰিচ ষ্টোৰ লিঙ্কৰ 'মোন্নাভান্না'ৰ ছাঁ পৰা বুলি নাট্যকাৰে উল্লেখ কৰি গৈছে। নাটকখনত নাৰী চৰিত্ৰৰ সমান্তৰালভাৱে পুৰুষৰ মানসিক দ্বন্দ্ব প্ৰকাশ পাইছে। সমান্তৰালভাৱে ফুটি উঠিছে প্ৰেম আৰু ঈৰ্ষা। বাসনাত উন্মাদ হৈ পৰা মণিমুগ্ধৰ দৰে চৰিত্ৰৰো পৰিৱৰ্তন ঘটি জ্ঞান-পোহৰৰ সন্ধান লাভ কৰিছে।

জ্যোতিপ্ৰসাদৰ 'লভিতা' নাটক তেখেতৰ সম্পূৰ্ণ প্ৰথমখন বাস্তৱভিত্তিক নাটক। নাটকৰ কেন্দ্ৰিয় চৰিত্ৰ লভিতাৰ যোগেদি নাট্যকাৰে এক বিপ্লৱী সত্বাৰ সৃষ্টি কৰিছে। এগৰাকী সৰলমনৰ গাঁওত বাস কৰা ছোৱালীক কেনেদৰে স্বাধীনতা সংগ্ৰামে আকৰ্ষণ কৰে আৰু বিপ্লৱী হৈ নিজকে দেশৰ বাবে দান কৰিবলৈ প্ৰস্তুত হৈ পৰে তাকে নাটকখনত দেখুওৱা হৈছে। মূল কাহিনীৰ সমান্তৰালভাৱে সমাজত উচ্চ-নীচৰ ভেদা-ভেদ, বিশ্বাসহীনতা, মূল্যবোধৰ অৱক্ষয় আদি দেখুওৱা হৈছে।

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ আন এখন নাট্যধৰ্মী নাটক 'খনিকৰ'। নাটকখনৰ মূল উদ্দেশ্য অসমৰ পৰা ক্ৰমাৎ হেৰাই যাবলৈ ধৰা ভাস্কৰ্য বিদ্যাৰ প্ৰচলন কৰা। নাটকখন সন্দৰ্ভত সত্যেন্দ্ৰ নাথ শৰ্মাই কোৱা এষাৰ কথা প্ৰণিধানযোগ্য— 'খনিকৰত বাস্তৱতা আছে, কিন্তু জ্যোতিপ্ৰসাদৰ নাট্যপ্ৰতিভাৰ প্ৰতিনিধিমূলক স্বাক্ষৰ গ্ৰহণ নকৰে।' (প্ৰফুল্ল নাথ বৰা, জ্যোতিপ্ৰসাদৰ নাটক, ১০৬)

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ নাটকত লোক-সংস্কৃতি ঃ লোক সংস্কৃতি বুলি ক'লে এটা জাতিৰ জাতীয় জীৱনৰ সকলোবোৰ দিশকে সামৰি লয়। লোক সমাজত পালন কৰা ৰীতি-নীতি, আচাৰ-আচৰণ, উৎসৱ-অনুষ্ঠান, বিশ্বাস-পৰম্পৰা, লোক ভাষা, লোক নৃত্য, লোকগীত আদি দিশসমূহক সামৰি লয়। আলোচনাৰ সুবিধাৰ বাবে লোক সংস্কৃতিক মৌখিক লোকবিদ্যা, লোকাচাৰ, ভৌতিক সংস্কৃতি আৰু লোক পৰিৱেশ্য

কলা হিচাপে চাৰি ভাগত ভাগ কৰা হৈছে। লোক কবিতা বুলিলে বিহু গীত, হুঁচৰি, বিয়ানাম, জিকিৰ, জাৰি, বাৰমাহী গীত, নাঙলী গীত আদিক বুজায়। লোক কাহিনীৰ ভিতৰত বিভিন্ন জনশ্ৰুতি, সাধুকথাক অন্তৰ্ভুক্ত কৰিব পৰি। লোক জীৱনত প্ৰচলিত প্ৰবাদ-প্ৰবচন, সাঁথৰ, ডাকৰ বচন, যোজনা, পটন্তৰ, মন্ত্ৰ আদিক লোক কাহিনীত সামৰা হয়। লোক সমাজৰ মাত কথা, গালি-শপনি আদিক লোক ভাষা শ্ৰেণীত অন্তৰ্ভুক্ত কৰিব পাৰি।

সামাজিক লোকাচাৰ বুলিলে উৎসৱ, অনুষ্ঠান, অৱসৰ বিনোদন, খেল-ধেমালী, লোক ঔষধ আৰু লোক ধৰ্ম আদিক অন্তৰ্ভুক্ত কৰিব পাৰি। অসমৰ লোক সমাজত বিভিন্ন উপলক্ষত বিভিন্ন উৎসৱ-অনুষ্ঠান পালন কৰা হয়। প্ৰধানকৈ বিহু, লখিমী সবাস, মহোহো, ভঠেলী, ভেকুলী বিয়া, জন্মাষ্টমী, মনসা পূজা আদি উল্লেখযোগ্য। বুৰঞ্জী অনুসৰি জানিব পাৰি যে আহোমৰ শাসনৰ সময়ত অনেক খেল-ধেমালীৰ প্ৰচলন আছিল। ভৌতিক সংস্কৃতিৰ ভিতৰত লোক কলা, লোক শিল্প, লোক সুপতি কলা, লোক আভৰণ আৰু লোক ৰন্ধন শৈলীক সামৰা হয়। লোক সমাজত প্ৰয়োজন অনুসাৰে নাৰী-পুৰুষ সকলোৱে বিভিন্ন সামগ্ৰী পৰম্পৰাগতভাৱে নিৰ্মাণ কৰি লয়। এনেদৰেই অসমত হস্ত শিল্পৰ প্ৰচন হৈ আছে। লোক স্থপতি কলাৰ ভিতৰত ঘৰ-দুৱাৰ নিৰ্মাণ, নামঘৰ নিৰ্মাণ, গোসাঁই ঘৰ, ডেকা চাং, গাভৰু চাং আদি। লোক পৰিৱেশ্য কলাৰ অন্তৰ্গত বিষয়বোৰ হৈছে গীত আৰু নৃত্য-নাটৰ সমষ্টি।

লোক পৰিৱেশ্য কলাৰ অন্যতম ভাগ লোকগীতসমূহ। লোকগীতে বহন কৰে বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ বৈশিষ্ট্য। অসমীয়া লোকগীতৰ ভিতৰত প্ৰধানকৈ বেলাড, ধৰ্মীয় গীত, বিহুগীত, আই নাম, ধাই নাম, নিচুকণি গীত, চিকাৰৰ গীত, নাঁও খেলৰ গীত, শিশুৰ খেল-ধেমালীৰ গীত, গৰখীয়া গীত, বাৰমাহী গীত আদি পোৱা যায়।

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাই অসমৰ লোকগীতৰ সুৰ আৰু শৈলীসমূহ মৌলিক প্ৰতিভাৰে প্ৰয়োগ কৰি নাটকৰ গীতসমূহক সুকীয়া কৰি তুলিলে। ইয়াৰ মূলতে আছিল জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ জাতীয় ঐতিহ্য আৰু মূল্যবোধৰ প্ৰতি গভীৰ আস্থা। তেওঁৰ কেৱল গীতেই নহয় সামগ্ৰিক ৰচনাকেই যদি চোৱা হয় দেখা যায় যে তেওঁৰ ৰচনাত অসমীয়া সংস্কৃতিৰ ৰেহ-ৰূপ প্ৰদৰ্শন অন্যতম উদ্দেশ্য আছিল। লোক সংস্কৃতিৰ ক্ষেত্ৰখন অধ্যয়নৰ বাবে জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ ৰচনাৱলীয়ে বিশেষ সমল যোগায়।

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ প্ৰথম প্ৰকাশিত নাটক 'শোণিত কুঁৱৰী'ৰ আৰম্ভণিতে দিয়া গীতটোত অসমীয়া বিয়া নামৰ সুৰৰ সৈতে মিল দেখা যায়। পুনৰাবৃত্তিৰ যোগেদি গীতৰ কথাংশ প্ৰয়োগ কৰাৰ বৈশিষ্ট্য লোকগীতৰ অন্যতম দিশ। 'শোণিত কুংৱৰী' নাটকৰ গীতত এনেদৰে এই দিশটো প্ৰতিফলিত হৈ উঠিছে—

'(কোনে) গছে গছে পাতি দিলে ফুলৰে শৰাই
(ৰাম ৰাম)
কলীয়া ভোমোৰা জুঞ্জৰি আহে গোন্ধকে ধিয়াই
(ৰাম ৰাম)...'

গীতটোৰ সৈতে অসমীয়া বিয়ানমাৰ গঠনপ্ৰণালীৰ সাদৃশ্য দেখা যায়। এনেধৰণৰ বিয়ানামৰ উদাহৰণ তলত দিয়া হ'ল—

'ৰাম ৰাম মাৰাৰ অলংকাৰ, ৰাম ৰাম থোৱা কাটি কৰি
ৰাম ৰাম, দেউতাৰাৰ অলংকাৰ থোৱা হে।
ৰাম ৰাম, ৰামে দি পঠাইছে, ৰাম ৰাম, বিচিত্ৰ অলংকাৰ
ৰাম ৰাম, হাতে যোৰে কৰি লোৱা হে।...'

দুয়োটা গীততে ৰাম ৰাম অংশটোৱে সুৰ, তাল আৰু লয়ৰ বিচিত্ৰতা দান কৰিছে। দুয়োটা গীততে অসমীয়া বিয়া নামৰ সুৰ বিৰাজমান।

'শোণিত কুঁৱৰী' নাটকৰ আন এটি গীত—

আমাৰে সখীয়া আকুল বিয়াকুলে
সপোনৰ হাঁহিটি চাই
সপোনৰ কোঁৱৰে আহুদি খোৱালে
মতলীয়া সখী খায়।
দিঠকৰ বাতৰি সপোনত মিলিলে
আছিল সখী বাটে চায়...'

এই গীতটোৰ সতে অসমীয়া নিচুকণি গীত গীতৰ সাদৃশ্য দেখা যায়—

'আমাৰে মইনা শুব এ
বাৰীতে বগৰী ৰুব এ
বাৰীৰে বগৰী পকী সৰি যাব
আমাৰে মইনাই বুটলি খাব।'

'শোণিত কুঁৱৰী' নাটকৰ সমাপ্তি অধ্যায়ত চিত্ৰলেখাৰ মুখত দিয়া গীতত বিহুগীতৰ প্ৰভাৱ দেখা যায়—

চৰাই কুমলীয়া, মুকলিমুৰীয়া, গাৰ বনৰীয়া গীত
মন উৰো উৰো, কৰে তোৰ লগতে, মোৰে উৰণীয়া চিত।
উষা জিৰণীয়া, পায় লগৰীয়া, সন্ধিয়াৰ দেশলৈ যায়
অকলনোশৰীয়া, কৰি মোক সখীয়া, গ'লা মিলনৰে নিশাটি পায়।'

উষাৰ বিদায়ৰ মুহূৰ্তত চিত্ৰলেখাই গোৱা গীতত লোকগীতৰ সুৰ আৰু কথাৰ প্ৰভাৱ বিদ্যমান—

'বেলি ডুবু ডুবু মন উৰো উৰো
নুশুনিলে তোমাৰ মাত ৰ'ব মই নোৱাৰো।'

একেটা অঙ্কতে চিত্ৰলেখাই বিয়ানামধৰ্মী এটি গীত গাইছে—

'বাৰীৰ পিছে ফালে তগৰ
সখীৰ তাঁতৰশালে তগৰ
বহি জোলা ফুল বাছে কি তগৰ
আজি শুদা হ'ব উষাৰে নগৰ।'

নাটকখনত প্ৰয়োগ কৰা উক্তগীতৰ লগত তলত দিয়া বিয়ানামৰ মিল আছে—

'বাৰীৰ পিছফালে অ' মন তগৰ
কান্দে তাঁতৰ শালে অ' মন তগৰ
উৰালত কান্দিলে অ' মন তগৰ
আজি শুদা হ'ব উষাৰে নগৰ...।'

'শোণিত কুঁৱৰী' নাটকৰ শেষত দিয়া গীতটোত বিয়ানামৰ সুৰৰ সংযোগ সাধন হৈছে—

'পিৰালি সুন্দৰী পদুম গধূলি গোপাল,
পদুম গধূলি গোপাল,
আজিৰ পৰা বাইদেউ তোমাৰ বিষয় জঞ্জাল
পুদুম বিষয় জঞ্জাল...।'

'শোণিত কুঁৱৰী' নাটকৰ 'ৰূপহ কোঁৱৰৰে চুমা পৰশতে...', 'অ' সখী আহিব আহিব প্ৰিয়া...' গীত দুটিত ক্ৰমান্বয়ে বিয়া নাম আৰু নিচুকণি গীতৰ সুৰৰ পৰশ পৰিছে।

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ আন এখন নাটক 'ৰূপালীম'ত অসমৰ জনজাতীয় সমাজৰ চিত্ৰণ ঘটিছে। জনজাতীয় সমাজৰ ৰীতি-নীতি, পৰম্পৰা, আচাৰ-আচৰণ, লোক বিশ্বাস আদিৰ প্ৰতিফলন 'ৰূপালীম' নাটক। অসমীয়া জাতীয় জীৱনৰ বৈশিষ্ট্য বহনকাৰী কৃষ্টি-সংস্কৃতিৰ আভাস দিয়া হৈছে নাটকখনত। 'নাটকখনত প্ৰতিফলিত জনজাতীয় সমাজখন অসমীয়া সমাজৰ সৈতে অধিক পৰিচিত বাবেই ৰূকমী গাভৰুৰ মুখতো আমি শুনিবলৈ পাওঁ বিয়ানাম, আইনামৰ ভুৱনভুলোৱা সুৰ।' (লীলাৱতী শইকীয়া বৰা, 'জ্যোতি অন্বেষণ' (সম্পা), ১০৩)

'ৰূপালীম' নাটকৰ আৰম্ভণিতে মায়াব'ৰ পেঁপাৰ লহৰত ৰূপালীমৰ কণ্ঠত যিটো গীত দিয়া হৈছে তাৰ গঠন প্ৰণালীত ল'ৰা-ধেমালীৰ আভাস পোৱা যায়—

'জিৰ জিৰ জিৰ জিৰ
জিৰ জিৰ নিজৰি জিৰ জিৰ নিজৰি অ'
টুলবুল টুলবুল কৈ
হালধীয়া
সৰাপাতৰ
নাওখনি গৈ গৈ... (প্ৰথম অঙ্ক)

জ্যোতিপ্ৰসাদৰ 'লভিতা' এখন বাস্তৱধৰ্মী নাটক। এই নাটকত মূলত দেশপ্ৰেম উদ্বুদ্ধ গীত সন্নিৱিষ্ট কৰা হৈছে। নাটকখনৰ 'দূৰণিৰ উটি অহা...' গীতটো শুনিলে 'তেজীমলাৰ মাকৰ সাধু'লৈ মনত পেলায় দিয়ে।

এইটো গীতৰ শেষত নাট্যকাৰে লভিতাৰ মুখত এটা বনগীত দিছে—

'মোৰ বাৰীত ফুলিলে ইন্দ্ৰজিত মালতী
তোৰ বাৰীত পৰিলে ছাঁ
তোৰে মনৰ কথা উটুৱাই আনিলে
সন্ধিয়াৰ বাউলী বা।'

'লভিতা' নাটকৰ প্ৰথম অঙ্ক, প্ৰথম দৰ্শনত নামনি অসমৰ লোকগীত 'খিছাগীত'ৰ প্ৰয়োগ কৰিছে। গীতটো এনেধৰণৰ—

'বাইদেউ বাইদেউ
ৰজাৰ জী আইদেউ
দোলাখন আনি দে যওঁ
বাইদেউৰ দৰাটো
ফেৰেকা ঠেঙীয়া
ভিনিকি ধিন্দাও দাও।'

সেইদৰে নাটকখনৰ আনএটা গীত 'অ' আমাৰ গাঁও'ত অসমীয় লোকসমাজৰ বিভিন্ন দিশ প্ৰতিফলিত হৈছে।

'নিমাতী কইনা' নাটকত নিমাতীৰ মাত উলিয়াবৰ বাবে কৃষক জীয়ৰীসকলে নানা শস্যৰ সম্ভাৰ লৈ আনিছে। নাট্যকাৰে গীতৰ জৰিয়তে এই দৃশ্য প্ৰকাশ কৰিছে। গীতৰ সুৰে সম্পূৰ্ণৰূপে অসমীয়া লোকগীতক প্ৰতিপন্ন কৰে—

'আমাৰ চকুলোৰে পানী দি জীয়ালো
মণিকী মাধুৰ ধান
তোমালৈ আনিছোঁ জগতৰে শইচ
এৰা অ' নিমাতীৰ মাত...।'

গীতটোত বিয়ানামৰ কৰুণ সুৰ প্ৰকাশ পাইছে।

'সোণ পখিলী' নামৰ শিশু নাটকখনত খেল-ধেমালীৰ গীত প্ৰয়োগ কৰিছে—

'কেং কুৰু কেং কুৰু
ঘেং কুৰ কুৰু
বনে বনে মনে মনে
ফুৰোঁ ফুৰোঁ ফুৰোঁ ফুৰোঁ
ডেং কাটা ডিং কাটা
শিং কাটা ঠিং
কিটি টিং কিটি...'

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ 'শোণিত কুঁৱৰী' নাটকতো এটি লোকগীতৰ প্ৰয়োগ কৰিছে—

'মই হেনো বুঢ়ী

(পাৰো) উজুটিত উফৰাব ডেকা তিনিকুৰি।
এইজনী কোন? পূৰ্ণিমাৰ জোন
মোৰ ৰূপৰ জমক চা, চমক খাই যা
বৰকৈ নেচাবি বোপাই যাবি উটি বুৰি।
ককাল যদিও হেকেৰা
গাল দুখন পকা থেকেৰা
কত ডেকাই মোক নিবলৈ ফুৰিছিল ঘূৰি
(দিছিল কুৰি কুৰি)

নাট্যকাৰে ‘কনকলতা’ নাটকৰ আৰম্ভণিতে যি বিহুৰ দৃশ্যৰ অৱতাৰণা কৰিছে তাতো অসমীয়া লোকগীতৰ সমল পোৱা যায়। প্ৰথম অঙ্কত পুতলাই আৰম্ভ কৰা হুচৰি নামৰ কথা উল্লেখ কৰিব পাৰি—

‘দেউতাৰ পদুলিত গোন্ধাইছে মাধুৰী
কেতেকী মলেমলোই ঐ
গোবিন্দাই ৰাম।’

‘নিমাতী কইনা’ নাটকৰ এটা গীতত নিচুকণি গীতৰ সুৰ শুনিবলৈ পোৱা যায়—

‘নিমাতী কইনা!
নাহাঁহি মইনা
ক’ত থৈ আহিলা
চেনেহৰ মইনা মাত?
চেনেহৰ মইনা নুবুলি মইনা
চেনেহৰ মইনা মাত?...’

ঠিক তেনেদৰে ‘কাৰেঙৰ লিগিৰী’ নাটকতো ধেমেলীয়া গীতৰ প্ৰভাৱ দেখা যায়—

‘চেংকলি নিকলি
কাঁহী-বাতি নুধুলি
ঠেহ পাতি নাখালি ভাত,
সাতাম পুৰীয়া সেন্দুৰৰ
যোৰ ফোট মাৰিলি
গোন্ধ তেল ঘঁহিলি গাত।’

লোকগীতৰ তালে তালে লোক নৃত্যৰ সংযোজন আছিল জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ নাটকৰ গীতৰ অন্যতম দিশ। লোকনৃত্য সম্পৰ্কে নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মাই তেখেতৰ ‘অসমীয়া লোক সংস্কৃতিৰ আভাস’ গ্ৰন্থত কৈছে যে—‘যি নৃত্য ৰীতিবদ্ধ, পৰিমাৰ্জিত আৰু সুগঢ়ী নহয় তেনে নৃত্যই লোক নৃত্য। লোক নৃত্যৰ অনুষংগৰ বিভিন্নতালৈ লক্ষ্য কৰি এই নৃত্যক এনেদৰে ভাগ কৰিব পাৰি ঃ সংস্কাৰমূলক নৃত্য, প্ৰণয়াঞ্চ মূলক নৃত্য, বন্ধুত্ব স্থাপনৰ প্ৰসংগত অনুষ্ঠিত নৃত্য, কৃষি নৃত্য, জ্যোতি বিদ্যাৰ লগত জড়িত নৃত্য, আনন্দ প্ৰদৰ্শনৰ উদ্দেশ্যে প্ৰদৰ্শিত নৃত্য, বহুৰা নৃত্য, যাদুমূলক নৃত্য ইত্যাদি’। (পৃষ্ঠা, ৩৩৪)

লোকনৃত্যৰ লগত জড়িত হৈ থাকে লোক বাদ্য আৰু লোকগীত। অসমৰ বিহু নাচ, আলি আয়ে লৃগাঙৰ নাচ, বাগৰুম্বা আদি লোকনৃত্য। জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাই অসমৰ থলুৱা বিবিধ সমল সংগ্ৰহ কৰি অসমীয়া নৃত্যৰ অন্য এক ৰূপ দিবলৈ সক্ষম হৈছিল। সেই সময়ত বঙালী সংস্কৃতিয়ে অসমীয়া জনসমাজত প্ৰভূত্ব বিস্তাৰ কৰি থকাৰ পিছতো জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ পৰম্পৰাগত সমলৰ মিশ্ৰণত সৃষ্ট লোনৃত্যই আকৰ্ষণৰ কেন্দ্ৰ বিন্দু হৈ পৰিছিল। তেওঁ অসমীয়া লোকনৃত্যক সৰ্বভাৰতীয় পৰ্যায়লৈ উত্তৰণ ঘটোৱাৰ পোষকতা কৰিছিল।

‘শোণিত কুঁৱৰী’ নাটকৰ প্ৰথম অংকৰ প্ৰথম দৰ্শনতে চিত্ৰলেখাৰ জৰিয়তে এটা নৃত্য কৰা দেখাইছে। নৃত্যৰ নাম ‘পদুমকলি নাচ’। অসমীয়া সংস্কৃতিৰ বিহু নাচ আৰু ভাওনাৰ নৃত্য ভংগীৰ অনুৰূপ গ্ৰহণ কৰি তেওঁ পদুমকলি নাচৰ সৃষ্টি কৰিছিল। এই সম্পৰ্কে বিষ্ণুপ্ৰসাদ ৰাভাই কৈছিল যে— ‘অসমীয়া সুৰৰ লগতে শোণিত কুঁৱৰী নাচতো জ্যোতিয়ে অসমীয়া সাঁচৰ, ঠাঁচৰ, সত্ৰৰ ছেও, দেও দি সংযোজন কৰি অপৰূপ মঞ্চনৃত্য সৃষ্টি কৰে। চিত্ৰলেখাৰ পদুমকলি নাচৰো বিহু নাচ আৰু ভাওনা নাচৰ বিবিধ ভঙ্গীমাৰে সমাবেশ কৰি দেখুওৱা হয়।’ চিত্ৰলেখাৰ জৰিয়তে নাট্যকাৰ জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাই বহুবাৰ মঞ্চত নৃত্য কৰাইছে। ইয়াত ফুটি উঠিছে অসমৰ ভিন্ন জাতি-জনজাতিৰ লোকনৃত্যৰ ভঙ্গীমা, লয়লাস, ৰূপসজ্জা। ‘শোণিত কুঁৱৰী’ নাটকৰ কুঁজি বুঢ়ী চৰিত্ৰৰ যোগেদিও নাট্যকাৰে নৃত্য কৰোৱাইছে। এই নৃত্যত প্ৰয়োগ কৰা হৈছে বিহু নাচৰ ভঙ্গীমা। ‘ৰূপালীম’ নাটকত ৰুণুক, জুনুক, ঠুনুকে নগা পাহাৰৰ পাৰে পাৰে যি নৃত্য কৰিছে সি জনজাতিসকলৰ লোকনৃত্যৰ আৰ্হি দাঙি ধৰিছে। ‘সোণ পখিলী’ নাটকৰ তৃতীয় দৃশ্যত বাওনা চৰিত্ৰবোৰক দিয়া নৃত্যই অসমীয়া জনজাতীয় নৃত্যৰ ইংগিত দিয়ে। জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাই অসমীয়া বিহু নাচ আৰু কামৰূপী নাচৰ সংযোগ ঘটাই মঞ্চ সাফল্য লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল।

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰলাৰ নাটকত লোক শিল্পকলাৰ নিদৰ্শনো দেখা যায়। তেওঁ জাতীয় ঐতিহ্য প্ৰকাশক কোনো অংশকে বাদ দিয়া নাছিল। নাটকৰ পৰিৱেশ নিৰ্মাণৰ প্ৰসংগত লোক শিল্পকলাই মুখ্য স্থান লাভ কৰিছিল। ‘কাৰেঙৰ লিগিৰী’ নাটকৰ সুন্দৰ কোঁৱৰৰ শোৱনি কোঠা সজাবৰ বাবে নিৰ্দেশ দিছিল যে সেই কোঠাত এখন পালেং, শিতানৰ বেৰত জাপি আদি থ’বলৈ কৈছিল।

অসমীয়া সংস্কৃতিৰ অবিচ্ছেদ্য অংগ শৰাই আৰু চালপীৰাৰ প্ৰয়োগ কৰিছে এনেদৰে—

''চালপীৰাৰ বাওঁফালে হাতেৰে ঢুকি পোৱাত চালপীৰাৰ সমান বহল ওখ এখন বৰ বহল সোণৰ শৰাই।' (কাৰেঙৰ লিগিৰী, প্ৰথম অঙ্ক, প্ৰথম দৰ্শন)

ৰজাৰ চালপীৰাৰ বাবে চালপীৰাৰ খুঁটাত সোণ-ৰূপৰ ফুল কটিবলৈ নিৰ্দেশ দিছে। লগতে ৰূপালীম আৰু 'কাৰেঙৰ লিগিৰী' নাটকত তাঁতশালৰ প্ৰয়োগ কৰি অসমীয়া সংস্কৃতিৰ আন এক গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ নাটকত দাঙি ধৰিলে—

'সোঁ ফালে বেৰৰ দাঁতিত কাঞ্চন কুঁৱৰীয়ে এখন দলিচাত বহি টাকুৰী এটাত এৰি কাটিবলৈ ধৰে...।' (কাৰেঙৰ লিগিৰী, দ্বিতীয় অঙ্ক, প্ৰথম দৰ্শন)।

ৰূপালীম নাটকতো নাট্যকাৰে তাঁত বোৱাৰ দৃশ্য সংলগ্ন কৰিছে। এই তাঁতশালখন ককাঁলত মেৰাই লোৱা। নাট্যকাৰে নিৰ্ধাৰিত কৰি দিছে। একেখন নাটকতে টুলুঙা নাৱৰ প্ৰসংগ পোৱা গৈছে। লগতে উৰাল, কুলা, চালনী আৰু অসমীয়া সংস্কৃতিৰ সম্পদ বানবাটীৰ প্ৰয়োগ দেখাইছে। লোক শিল্পৰ উপৰি অসমীয়া কলা-কুশলীয়ে নিৰ্মাণ কৰা অস্ত্ৰ-শস্ত্ৰ, ৰান্ধনী ঘৰৰ মাৰলী, সোনৰ পালেং, তামোল পানৰ বটা, গছি শলিতা, যঁতৰ, মহুৰা আদিৰ প্ৰয়োগ কৰিছে।

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ নাটকত লোক বাদ্যৰ প্ৰয়োগ অনেক সময়ত দেখা গৈছে। তত্ বাদ্যৰ ভিতৰত বীনা আৰু টোকাৰীৰ প্ৰয়োগ অধিক। 'শোণিত কুঁৱৰী' নাটকত উষাই বীনা বজোৱা দেখাইছে। 'কনকলতা' নাটকৰ আৰম্ভনিতে যি বিহুৰ পৰিৱেশ নিৰ্মাণ কৰিছে তাত বিভিন্ন লোক বাদ্য প্ৰয়োগ কৰিবলৈ নিৰ্দেশ দিয়া হৈছে—'তাৰ তলতে কম বয়সীয়া ল'ৰাৰ দ'ল এটাই টকা, পেঁপা, ঢোল, তাল, টোকাৰী আৰু বীণ লৈ হুঁচৰি গায় আছিল।' (প্ৰথম অঙ্ক)

'ৰূপালীম' নাটকৰ ষষ্ঠ অংকত নাট্যকাৰে লোকবাদ্যৰ প্ৰয়োগ কৰিবলৈ দিছে এনেদৰে—'সভাৰ একাষে দহজনীমান ছোৱালীয়ে হাতত বীণা, কৰতাল আৰু বাঁহী লৈ ঐক্যতান বজাব লাগিছে...।' (দ্বিতীয় অঙ্ক)

নাটকত আৱনদ্ধ বাদ্যৰ প্ৰয়োগেৰে পৰিস্থিতি অধিক গম্ভীৰ আৰু স্পষ্ট কৰি তোলা হৈছে। 'ৰূপালীম' নাটকৰ সপ্তম অঙ্কত ৰূপালীমৰ মৃত্যুদণ্ডৰ দৃশ্যটো অধিক শোকাকুল, অধিক ভয়ানক আৰু স্পষ্ট কৰিবলৈ নাট্যকাৰে ভেৰি, জয়ঢোল আদি বাদ্য বজাবলৈ নিৰ্দেশ দিছে। ঘনবাদ্য হিচাপে 'শোণিত কুঁৱৰী' আৰু 'ৰূপালীম' নাটকত তাল আৰু কৰতালৰ প্ৰয়োগ কৰিছে। সুষিৰ বাদ্য বাঁহী, পেপাঁ, শংখ আদিৰ প্ৰয়োগ কৰিছে। 'শোণিত কুঁৱৰী' নাটকৰ দ্বিতীয় দৰ্শনত বাণ ৰজাৰ শিবিৰত থকা শিৱই শংখধ্বনি শুনা দেখাইছে।

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাই কৈছিল যে—'যি জাতি প্ৰগতিৰ ৰাজ-আলিলৈ উলাই আহিছে, সেই জাতিৰ স্থাপত্য হ'ব লাগিব আন্ধাৰ বাটৰ দিক নিৰ্ণয় কৰা এটা আলোক স্তৰৰ দৰে। সেই স্থাপত্যই জনতাক আগবাঢ়িবলৈ পোহৰৰ জিলিঙনি ছটিয়াই থাকিব লাগিব। স্থাপত্যই জনতাক আগবঢ়াই নিবও পাৰে, এটা স্থিতিশীল অৱস্থাত ৰাখি থবও পাৰে আৰু সংকীৰ্ণ সংৰক্ষণশীলতাক খামুচি ধৰি থাকিবলৈকো মন্ত্ৰ দিব পাৰে।' (অসমীয়া স্থাপত্য নৱৰূপ, ৰচনাৱলী, ৪৭৮)

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ জাতীয় চেতনাত লোক স্থাপত্যৰ নিৰ্দশন আছিল অন্যতম। তেখেতে এই দিশটো নাটকসমূহতো পাৰ্যমানে প্ৰয়োগ কৰিছে। 'শোণিত কুঁৱৰী' নাটকত বাণ ৰজাৰ সিংহাখন, বাণ ৰজাৰ ৰাজকাৰেং আদিত লোক স্থাপত্য কলাৰ সমল প্ৰয়োগ কৰিছে। 'কাৰেঙৰ লিগিৰী' নাটকত সুন্দৰ কোঁৱৰৰ কোঠাৰ যি বিবৰণ তাত অনেক লোক স্থাপত্য কলাৰ প্ৰয়োগ কৰিছে— 'কাৰেং— সুন্দৰ কোঁৱৰৰ শুৱনি কোঠা। কোঠাৰ সোঁ মাজতে পাছৰৰ বেৰৰ দাঁতিলৈ পথালিকৈ এটা সিংহৰ মূৰ আৰু আগ ভৰিৰ ওপৰত থিয় হোৱা ঠগৰ খুৰা লগোৱা সোণ খটোৱা চাল পীৰা... তাৰ মাজতে খুৰাবোৰত সোণ-ৰূপৰ ফুলকটা আৰু ওপৰত ডাঠ দলিচা পৰা... দুৱাৰৰ ওপৰ ভাগ কলডিলৰ গঢ়ৰ ৰূপৰ আৰু ফুলকটা, কোঠাৰ ভিতৰলৈ মেল খায়...' (প্ৰথম অঙ্ক)

'ৰূপালীম' নাটকত নাট্যকাৰে জুনাফাৰ যি চাংঘৰ দেখাইছে, সেই ঘৰ লোক স্থাপত্য কলাৰে নিদৰ্শন। 'নিমাতী কইনা' নাটকত যি জ্যোতিদেশৰ বৰ্ণনা আছে, তাত লোক-স্থাপত্য কলাৰ সমল প্ৰয়োগ কৰিছে। লোক-স্থাপত্য কলাৰ অংশ হিচাপে 'লভিতা' নাটকত দেখুওৱা ভঁৰাল ঘৰৰ উদাহৰণ দিব পাৰি।

নাটকসমূহত লোক আভৰণ বিচাৰ কৰিলে নাৰীৰ সাজ-পাৰ, পুৰুষৰ সাজ-পাৰ আৰু আ-অলংকাৰসমূহ পোৱা যায়। পুৰুষৰ সাজ-পাৰৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰধানকৈ চুৰীয়া, গাত খনীয়া লোৱা, মূৰত পাগ মৰা আদি দিছে। নাৰীৰ সাজ-পাৰৰ ক্ষেত্ৰত দেখা যায় যে মুগা বা পাটৰ ৰিহা, মেখেলা, গাত খনীয়া লোৱা দেখাইছে। ৰূপালীমৰ দৰে জনগোষ্ঠীয় গাভৰুক বুকুত মেথনি মাৰি মেখেলা পিন্ধিবলৈ দিয়া হৈছে।

সাজ-সজ্জা আৰু প্ৰসাধন, আ-অলংকাৰলৈ ভালদৰে মন কৰিলে দেখা যায় যে নাটকৰ চৰিত্ৰৰ ৰূপ দিবলৈ বিশেষভাৱে প্ৰসাধনৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিয়া হোৱা নাছিল। কেৱল চৰিত্ৰক বুজি উঠাকৈ অতীৱ প্ৰয়োজনীয় দিশতহে গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছিল। নাৰীক সাজিবৰ বাবে ফুলৰ মালা পৰিধান কৰিবলৈ দিয়া হৈছে। ৰাজকীয় নাৰীৰ প্ৰসাধনৰ বাবে হাতত গোটা খাৰু, কাণত লঙাবাৰু, কৰিয়া, ডিঙিৰ মণি আদি পিন্ধিবলৈ দিয়া হৈছে।

নাটকসমূহত পোৱা সামাজিক লোকাচাৰসমূহ নাটকৰ অন্যতম গুৰুত্বপূৰ্ণ সমল। নাটকসমূহত পৰিৱেশ নিৰ্মাণৰ বাবে বিভিন্ন সময়ত বিভিন্ন লোকাচাৰ পালন কৰা দেখাইছে। 'কাৰেঙৰ লিগিৰী' নাটকত সুন্দৰ কোঁৱৰৰ বিয়াৰ উপলক্ষে ৰাজ-আলিবাটত উৎসৱমুখৰ পৰিস্থিতি সৃষ্টি কৰে। লগতে এই নাটকত উষা আৰু অনিৰুদ্ধৰ বিবাহ উৎসৱ পালন কৰা দেখা যায়। পৰম্পৰাগত বিশ্বাস অনুসৰি দৰা আৰু কইনাই এজনে আনজনক মালা পিন্ধায় আৰু আয়তীয়ে উৰুলি দিয়ে।

'কনকলতা' নাটকত বিহু পালন কৰা হৈছে। ইয়াত বিহুৰ সৈতে জড়িত ৰীতি-নীতি আৰু নৃত্য-গীত আৰু বাদ্যৰো প্ৰসংগ দাঙি ধৰিছে।

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ নাটকত অসমীয়া পৰম্পৰাগত লোকবিশ্বাসৰ প্ৰতিফলন ঘটিছে। লোকবিশ্বাসসমূহৰ লগত জনসাধাৰণৰ সৰল বিশ্বাস, আৱেগ-অনুভূতি তথা ৰীতি-নীতি জড়িত হৈ থাকে। 'শোণিত কুঁৱৰী' নাটকত যিকোনো শুভ কৰ্ম কৰাৰ আগত গণকৰ যোগেদি দিন, মাহ, বাৰ আদি চাই লোৱা বিশ্বাস দেখাছে। কুঁজি বুঢ়ীয়ে বাণৰজাক উষাৰ বিৰুদ্ধে গোচৰ দিবলৈ যোৱাৰ আগতে গণকৰ হতুৱাই সময় নিৰ্ণয় কৰি গৈছে।

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ নাটকত লোক সংস্কৃতিৰ সমল বিচাৰ কৰিলে লোক খাদ্যৰ প্ৰয়োগো পোৱা যায়। নাটকসমূহত পোৱা এনে লোক খাদ্যৰ উদাহৰণ হ'ল—

পানীয় ঃ লাওপানী, ফটিকা

পাহাৰীয়া জনজাতীয় খাদ্য ঃ আলু, কচু

জলপান ঃ কোমল চাউল, গুৰ, পিঠা

অন্যান্য ঃ গাখীৰ, কুহিয়াৰ আদি।

জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ নাটকত লোক সাংস্কৃতিক সমলৰ বিচাৰ কৰ দেখা গ'ল যে অসমীয়া লোক জীৱনৰ একাংশ তেওঁৰ নাটকত সন্নিৱিষ্ট হৈ আছে। ভাৰতীয় নৃত্য কলা আৰু সংগীতৰ ওপৰত থকা জ্যোতিপ্ৰসাদৰ গভীৰ প্ৰীতি আৰু অধ্যয়নে তেখেতৰ নাটকসমূহক বিশিষ্ট মাত্ৰা দান কৰিছে। আধুনিক নাটকত লোক সংস্কৃতিৰ বিবিধ সমল প্ৰয়োগ কৰি অসমৰ লোক সংস্কৃতিৰ জাতীয় ঐতিহ্যক আধুনিকতাৰ সংমিশ্ৰনেৰে নব্যৰূপ দিবলৈ যত্ন কৰা দেখা গ'ল। ❑

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

আগৰৱালা, জ্যোতিপ্ৰসাদ, 'আইদেউৰ জোনাকী বাট', জ্যোতিপ্ৰসাদ ৰচনাৱলী, ২০১৩

গোঁহাই, হীৰেণ, 'ভাবীকালৰ খনিকৰ', জ্যোতিপ্ৰকাশন ঃ ২০০৩

ঐ, 'জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা ৰচনাৱলী', অসম প্ৰকাশন পৰিষদ ঃ ২০০৭

বৰুৱা, বিৰিঞ্চি কুমাৰ, 'অসমীয়া ভাষা আৰু সংস্কৃতি', জাৰ্নাল এম্পৰিয়াম, নৱম সংস্কৰণ ঃ ২০০১

বৰুৱা, প্ৰহ্লাদ কুমাৰ, 'জ্যোতি মণিষা', বনলতা ঃ ২০০৩

ঐ, 'জ্যোতিপ্ৰসাদৰ নাটক' বনলতা ঃ ২০০৯

ৰূপকোঁৱৰ জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা জন্ম শতবাৰ্ষিকী উদ্‌যাপন সমিতি, ডিব্ৰুগড়, 'ৰূপান্তৰৰ শিল্পী জ্যোতিপ্ৰসাদ', বনলতা ঃ ২০০৩

শৰ্মা, নবীন চন্দ্ৰ, 'অসমীয়া লোক-সংস্কৃতিৰ আভাস', বীনা লাইব্ৰেৰী ঃ গুৱাহাটী, ২০১৮

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানী ঃ এক সমীক্ষামূলক অধ্যয়ন

ড° মালবিকা বাগ্‌লাৰী

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
নৱজ্যোতি মহাবিদ্যালয়, কলগাছিয়া
বৰপেটা, অসম-৭৮১৩১৯
৯১০১৪৩০০১২
baglarimalabika49@gmail.com

অৱতৰনিকা ঃ

চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানী, এগৰাকী দুঃসাহসী অগতানুগতিক তথা অনন্য ব্যক্তিত্বৰ অসাধাৰণ নাৰী, যিগৰাকী নাৰীৰ কলমেৰে সাহিত্য সৃষ্টি হোৱাৰ লগতে অসমৰ নাৰী সমাজৰ জাগৰণ হৈছিল। সমাজত নাৰীৰ হকে, সামাজিক বৈষম্যৰ বিৰুদ্ধে আৰু পুৰুষ প্ৰধান সমাজৰ পৰম্পৰাগত পুৰুষতান্ত্ৰিক গোড়ামীৰ বিৰুদ্ধে সজোৰে আন্দোলন কৰা অসমৰ প্ৰথম গৰাকী নাৰী। এক সুকীয়া ব্যক্তিত্ব যাৰ শিৰে শিৰে নাৰী সত্বা, নাৰী অধিকাৰ প্ৰৱাহিত হৈ আছিল। বাল্য বিবাহৰ বিৰোধিতা, বিধবা বিবাহৰ প্ৰতি সমৰ্থন, নাৰী শিক্ষা, নাৰী স্বাধীনতা, নাৰীৰ আৰ্থিক স্বৱলম্বীতা আদি বিষয়ৰ লগতে নাৰীৰ স্বাধীনতা আন্দোলনত অংশগ্ৰহণত চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীৰ অৱদান স্বীকাৰ্য, সৰ্বজনবিধিত। এক কথাত কুৰি শতিকাৰ অসমীয়া নাৰীমুক্তি আন্দোলনত চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীৰ অৱদান একক বুলি কলে ভুল কোৱা নহব। অসমৰ নাৰীবাদী আন্দোলনৰ নেত্ৰী বা হোতা চন্দ্ৰপ্ৰভাই অৱহেলিত, বঞ্চিত নাৰী সমাজৰ বাবে আৰ্থিক সংস্থাপনৰ বাট মুকলি কৰিবৰ বাবে নাৰী মুক্তি চেতনাক অধিক গুৰুত্ব দিছিল। চন্দ্ৰপ্ৰভাই নাৰী মুক্তি চেতনাৰ বাট মুকলি কৰি অসমীয়া নাৰীৰ স্বাধীনতাক পূৰ্ণ সমৰ্থন জনাইছিল।

জন্ম আৰু শিক্ষা জীৱন ঃ

চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীৰ জন্ম হয় ১৯০১ চনত বৰপেটা জিলাৰ বজালীৰ দৈশিঙৰী গাঁৱত। চন্দ্ৰপ্ৰভা আছিল পিতৃ ৰতিৰাম মজুমদাৰ আৰু মাতৃ গংগা পুৰিয়াৰ সপ্তম কন্যা সন্তান। চন্দ্ৰপ্ৰভাৰ পিতৃয়ে চন্দ্ৰপ্ৰভাক ভগ্নী ৰামেশ্বৰীৰ সৈতে ওচৰৰে ভালুকী গাঁৱলৈ পঢ়িবলৈ পঠিয়ায়। তাত মাহীয়েকৰ তত্বৱধানত পঢ়ে যদিও পৰ্যাপ্ত সা-সুবিধা নথকাত চন্দ্ৰপ্ৰভাই প্ৰত্যাহবান জনাই ভনীয়েকক লগত লৈ তাৰ কিছু নিলগত ল'ৰাৰ স্কুল এখনলৈ পঢ়িবলৈ যায়। স্কুলখনৰ নাম আছিল কঠালমুৰী এম.ভি.স্কুল। সেই সময়ৰ যাতায়ত ব্যৱস্থা সুচল নাছিল বাবে দুয়ো ভগ্নীয়ে যথেষ্ট কষ্ট ভোগ কৰিবলগীয়া হৈছিল। পিতৃ ৰতিৰাম মজুমদাৰে যাতায়ত ব্যৱস্থা আৰু সামাজিক কঠোৰতাৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি দুয়োকে স্কুললৈ নপঠিওৱাৰ সিদ্ধান্ত লয়। পিতৃৰ এই সিদ্ধান্তই চন্দ্ৰপ্ৰভাৰ মনত আৰু সেই ঘৰখনত এক অপ্ৰতিকৰ পৰিস্থিতিৰ সৃষ্টি হয়। সেই সময়ত চন্দ্ৰপ্ৰভাই এগৰাকী সৎ নিষ্টাবান, আদৰ্শবাদী শিক্ষকৰ সান্নিধ্য লাভ কৰে। তেওঁ হৈছে কৃষ্ণকান্ত দত্ত। তেখেতৰ চন্দ্ৰপ্ৰভা আৰু ভগ্নী ৰামেশ্বৰীৰ জীৱনলৈ পৰিবৰ্তন অনাত যি ভূমিকা সেয়া শলাগিবলগীয়া। চন্দ্ৰপ্ৰবাৰ জীৱনৰ লক্ষ্য আছিল শিক্ষয়ত্ৰী হোৱা আৰু ভগ্নী ৰামেশ্বৰীৰ জীৱনৰ লক্ষ্য আছিল চিকিৎসক হোৱা। জীৱনৰ লক্ষ্য আগত ৰাখি চন্দ্ৰপ্ৰভাই দৈশিঙৰী গাঁৱৰ অকয়া নামৰ ভিতৰুৱা অঞ্চলত এখন স্কুল স্থাপন কৰে। সেই সময়ত স্কুল পৰিদৰ্শক নীলকান্ত বৰুৱাই স্কুল পৰিদৰ্শন কৰি মুগ্ধ হয়, আনন্দিত হয়। এইগৰাকী স্কুল পৰিদৰ্শকৰ চেষ্টাত চন্দ্ৰপ্ৰভা আৰু ভগ্নী ৰামেশ্বৰী নগাঁৱৰ মিশ্যন স্কুলত পঢ়িবলৈ সুযোগ লাভ কৰে। নগাওঁৰ

মিশ্যন স্কুলত সকলো ছাত্ৰ-ছাত্ৰীকে খৃষ্টধৰ্মৰ প্ৰতি আকৃষ্ট কৰোৱাৰ প্ৰচেষ্টা স্কুল কতৃপক্ষৰ দেখা যায়। এই কাৰ্যত চন্দ্ৰপ্ৰভাই বিৰোধিতা কৰি কতৃপক্ষৰ ৰোষত পৰে। স্কুল কতৃপক্ষৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ প্ৰতি বৈষম্যমূলক আচৰণ আৰু ধৰ্মান্তৰিতকৰণৰ কাৰ্যত বিতুষ্ট হৈ ভাৰতীয় ছাত্ৰীৰ মৰ্যদা ৰক্ষাৰ বাবে যুঁজ দিছিল চন্দ্ৰপ্ৰভাই। সেই সময়তে চন্দ্ৰপ্ৰভাই নীলকান্ত বৰুৱাৰ সহযোগত নগাওঁৰ ছোৱালী মিশ্বন স্কুলৰ পৰা নৰ্মাল পাছ কৰি তেজপুৰৰ চোৱালী স্কুলত শিক্ষকতা কৰিবলৈ লয়। তেজপুৰলৈ গৈ চন্দ্ৰপ্ৰভাই বিভিন্নজনৰ সান্নিধ্য লাভ কৰে আৰু তেওঁলোকৰ অনুপ্ৰেৰণাত নাৰী শিক্ষাৰ বাট মুকলি কৰে। তেওঁ সান্নিধ্য লাভ কৰা ব্যক্তি সকলৰ ভিতৰত জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা, বিষ্ণুপ্ৰসাদ ৰাভা, দণ্ডিনাথ কলিতা, অমিয় কুমাৰ দাস, পৰমানন্দ আগৰৱালা, চন্দ্ৰধৰ শৰ্মা, কিৰণময়ী আগৰৱালাৰ নাম লব লাগিব।

চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীৰ সাহিত্যিক জীৱন ঃ

চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানী আছিল সুক্ষ্ম চিন্তাৰ অধিকাৰী, দুৰদৰ্শী, লেখক, সুবক্তা। তেওঁ 'পিতৃ ভিঠা' (১৯৩৭) উপন্যাসেৰে নাৰী স্বাধীনতা আৰু নাৰী অধিকাৰ সম্পৰ্কে সজোৰে মাত মাতিছে। স্ত্ৰী শিক্ষাৰ গুৰুত্ব আৰু প্ৰয়োজনীয়তাৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীয়ে উক্ত উপন্যাসখন লিখিছিল। উক্ত 'পিতৃ ভিঠা' উপন্যাসৰ কাহিনী এক প্ৰেম কাহিনী য'ত পুৰুষ সত্বা আৰু নাৰী সত্বাৰ সম অধিকাৰৰ নিৰ্মোহ বিশ্লেষণ কৰা হৈছে। উপন্যাসিক চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীয়ে উপন্যাসখনৰ জৰিয়তে নাৰী-পুৰুষৰ সম অধিকাৰৰ প্ৰসংগ উত্থাপন কৰি এনেদৰে কৈছে "ছোৱালী আনৰ ঘৰলৈ যাব লাগিব বুলিয়েই বংশৰ মান মৰ্যদা পিতৃ পিতামহৰ ভেটি মাটি আনক দিব পাৰিবেন?" (পিতৃ ভিঠা- পৃ ঃ ২৩)

তেনেদৰে লেখিকাই নাৰীবাদী সমাজ সচেতক হিচাপে বহু গল্প প্ৰবন্ধ লিখিছিল, যিবোৰে সেই সময়ৰ সমাজত বিশেষ প্ৰবাৰ পেলাইছিল। চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানী অসম মহিলা সমিতিৰ মুখপত্ৰ 'অভিযাত্ৰী'ৰ সম্পাদক আছিল। মুখপত্ৰৰ সম্পাদক হিচাপে 'ঘৰ জেউতি'ৰ পাতত চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীয়ে পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজ ব্যৱস্থাৰ বিৰুদ্ধে তীব্ৰ প্ৰতিবাদ কৰিছে। তেওঁ কৈছে "তেওঁলোকে গৃহগণ্ডীৰ ভিতৰত আৱদ্ধ থাকিব লাগিব নে গৃহগণ্ডীৰ বাহিৰত কিবা কৰ্তব্য কৰিব।" (ঘৰ জেউতি- পঃ ৯৬) তেওঁ আৰু কৈছে - "এদল লোকে হাজাৰ ভূকি থাকিলেও নাৰী সমাজত সঞ্চাৰ হোৱা প্ৰাণস্পন্দনৰ অন্ত নহয়।" (ঘৰ জেউতি- পঃ ৭৮৯) চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীয়ে জয়মতী, মূলাগাভৰু, কনকলতাৰ দৰে নাৰীৰ উদাহৰণৰে কৈছে "ৰাজকীয় কাৰ্যত তিৰোতাৰ যোগদান আহোম ৰাজত্বৰ দিনত একো নতুন কথা নাছিল।" (ঘৰ জেউতি- পঃ ৫৮৯)

নকলেও হ'ব যে তেওঁৰ ব্যক্তিত্বত অনমনীয় দৃঢ়তা আৰু গতিশীলতা পোৱা যায়। তেওঁ কৈছে "সৰু কথা, ঠেক মন, নীচ ভাৱ, হিচাৰ সংকীৰ্নতা, কুসংস্কাৰ দলিয়াই পেলাওঁক, আগে আগে সমাজ সংস্কাৰ কৰি পুৰুষক দেখাওঁক। নিৰিহ তিৰোতা বুলি আৰু কিমান দিন বহি থাকবি।" (ঘৰ জেউতি- পঃ ৫৯৬) তেওঁৰ অন্যান্য উপন্যাস অপাৰিজিত, কণ্ঠমালা, শেষ আশ্ৰয় ইত্যাদি বিভিন্ন সময়ত প্ৰকাশিত হৈছিল।

বিভিন্ন অপৰাধৰ অপৰাধী হৈ তেওঁক জেললৈ নিয়া হৈছিল। যদিও স্বাধীনতাৰ নামত জেললৈ যোৱা বাবেই তেওঁক সেই অঞ্চলত সম্বৰ্ধনা জনোৱা হৈছিল।

অক্লান্ত নাৰীবাদী নেত্ৰী চন্দ্ৰপ্ৰভানীৰ জীৱনভিত্তিক উপন্যাস 'অভিযাত্ৰী' লিখি উলিয়াইছিল নিৰুপমা বৰগোহাঞিয়ে। বৰগোহাঞিয়ে চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীৰ জীৱন আৰু কৰ্ম সম্পৰ্কে বিষদ বিৱৰণ দাঙি ধৰি কৈছে "অসমৰ কোনো নাৰীৰ সবাতোকৈ আগতে যদি শ্ৰদ্ধা যাচিব লাগে কেইগৰাকী হ'ল চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানী। উপন্যাসখনৰ বাবে সমল বুলিবলৈ চন্দ্ৰপ্ৰভা আৰু দণ্ডিনাথৰ মাজত আদান-প্ৰদান হোৱা চিঠি পত্ৰই মূল। চন্দ্ৰপ্ৰভাক জানিবলৈ সেই সময়ত কোনো প্ৰমানিক জীৱনী পোৱা নাছিল।

চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীৰ সামাজিক জীৱন ঃ

চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানী আছিল সমাজৰ নিপিড়ীত বঞ্চিত নাৰীৰ বাবে কাম কৰা নাৰী আন্দোলনৰ নেত্ৰী, কংগ্ৰেছৰ সংক্ৰিয় কৰ্মী, অসম মহিলা সমিতিৰ সম্পাদক আৰু ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনৰ নেত্ৰী। পাশ্চাত্য শিক্ষাৰে শিক্ষিত হৈ বিভিন্ন প্ৰতিবন্ধকতাৰ মাজেৰে প্ৰতিকূল পৰিস্থিতিৰ মাজেৰে ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনত যোগ দি নাৰী জাগৰণৰ সৃষ্টি কৰা মহিলা। তেওঁ অসম প্ৰাদেশিক মহিলা সমিতি (১৯২৬) স্থাপন কৰি পিছপৰা নাৰীৰ বাবেও কাম কৰিছিল। বিশেষকৈ আৰ্থিক স্বাৱলম্বীতাৰ বাবে বোৱা কটা, চিলাই, ধাত্ৰী বিদ্যা আদি কামত প্ৰশিক্ষণ দিয়াৰ লগতে গান্ধীৰ আদৰ্শৰে উদ্ধোদ্ধ হৈ মহিলাক অসহযোগ আন্দোলনত যোগ দিবলৈ প্ৰেৰণা যোগায়। চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীৰ এই কৰ্মই তেওঁক এগৰাকী সাহসী, উদ্যমী নাৰী বুলি পৰিচয় দিয়ে। সেই সময়ত নগাঁৱত বহা অসম সাহিত্য সভাৰ অধিৱেশনত নাৰীৰ অৱস্থান সম্পৰ্কে চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীয়ে এক জাগৰণ সৃষ্টি কৰি নাৰীক স্বাধীন হবলৈ আহ্বান জনায়। গড়ল ভাঙি ওলাই আহিবলৈ আহ্বান জনায়। তেওঁৰ এই আহ্বানৰ প্ৰতি সন্মান জনাই বহু নাৰী মুকলিকৈ ওলাই আহিছিল। শইকীয়ানীৰ মতে নাৰীসকল সংবদ্ধ নহলে পুৰুষতন্ত্ৰৰ বিৰুদ্ধে যুঁজ দিব নোৱাৰিব। তেওঁ গোৱালপাৰাত বহা অসম মহিলা সমিতিৰ সম্পাদিকাৰ

প্ৰতিবেদনত মহিলা সকলক স্বাৱলম্বী, আত্মনিৰ্ভৰশীল, কৰ্মপটু কৰি গঢ়ি তুলিবলৈ আহ্বান জনাইছিল। তেওঁৰ মতে নাৰীৰ ভূমিকা অবিহনে সমাজৰ উন্নতি সম্ভৱ নহয়। নিম্ন বৰ্গৰ প্ৰতি থকা সহানুভূতিশীল মনোভাৱে সাহসী আৰু দক্ষ নেতৃত্ব দিব পৰা ক্ষমতাৰ বাবেই চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীয়ে ৰাজনৈতিক সামাজিক কামত অংশগ্ৰহণ কৰি নাৰীক স্বাধীন হবলৈ সুবিধা দিছিল। গভীৰ মানৱতাবোধেই চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীৰ কৰ্মজীৱনৰ মূল চালিকা শক্তি। স্পষ্টবাদী, সাহসী, এক সুকীয়া ব্যক্তিত্বৰ অধিকাৰী আছিল। চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীয়ে ৰক্ষণশীল পুৰুষপ্ৰধান সমাজৰ বিৰোধিতা কৰি সাহিত্য সৃষ্টিৰ লগতে বিভিন্ন সাংগঠনিক কাম কৰি গৈছিল। বৰপেটাৰ কীৰ্তন ঘৰৰ কাষতে থকা কুৱাত নিম্ন শ্ৰেণীৰ লোকে পানী তুলিব নোৱাৰা ঘটনাক তীব্ৰ প্ৰতিবাদ সাব্যস্ত কৰে। নকলেও হব যে সেই সময়ত এফালে আছিল পৰম্পৰাপুষ্ট অসমীয়া সমাজ আৰু আনফালে আধুনিক চিন্তা চেতনাৰে সমৃদ্ধ উদীয়মান নব্য সমাজ। তেনে এখন ৰক্ষণশীল পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজৰ বিৰোধিতা কৰি চন্দ্ৰপ্ৰভাই নাৰীক সৱল, সাহসী, আত্মনিৰ্ভৰশীল, স্বাৱলম্বী কৰি তুলিবলৈ আপ্ৰাণ চেষ্টা কৰিছিল। চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানী আছিল ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনত যোগদান দিয়া অসমৰ নেত্ৰী, অসম মহিলা সমিতিৰ নেত্ৰী। চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীয়ে বিভিন্ন ঠাইত অগ্নিবৰ্ষা ভাষণেৰে মহিলাক উত্তেজিত কৰি তুলিছিল। ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনৰ সৈতে জড়িত হৈ চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীয়ে ১৯৩১ চনৰ ২৯ মাৰ্চত ফৰাচী চহৰত ভাৰতীয় জাতীয় কংগ্ৰেছৰ অধিবেশনত অসমৰ হৈ প্ৰতিনিধিত্ব কৰে।

উপসংহাৰ ঃ

চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীৰ জীৱন, চৰিত্ৰ কৰ্মই অসমত নাৰী সমাজত এক উত্তৰণৰ সৃষ্টি কৰে। এক কথাত তেওঁৰ কৰ্মই যিদৰে এক জোৱাৰৰ সৃষ্টি কৰিছিল। তেনেদৰে সেই সময়ৰ মাজত তেওঁৰ কৰ্মই নাৰী সমাজে এক অপবাদ মূৰ পাতি লব লগা হৈছিল। কাৰণ সেই সময়ৰ পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজত কুমাৰী মাতৃত্বক চন্দ্ৰপ্ৰভাই বোজা বুলি ধৰা নাছিল, বৰং সাহসীকতাৰে নিজৰ পৰিচয়েৰে পৰিচিত কৰি তুলি এক পৰিচয় প্ৰদান কৰিছিল। এই কাৰ্যক সহজ বোলাতো একেবাৰেই সম্ভৱ নাছিল। যিটো কাৰ্য চন্দ্ৰপ্ৰভাই বিভিন্ন পৰিস্থিতিৰ মাজেৰে কৰি গৈছিল।

বহুক্ষেত্ৰত এগৰাকী নাৰী হিচাপে চন্দ্ৰপ্ৰভাক ক্ষনে ৰুষ্ট ক্ষনে তুষ্ট ভাৰতীয় নাৰী বুলি কবই লাগিব। কাৰণ চন্দ্ৰপ্ৰভাই নিজৰ কৰ্মৰ জৰিয়তে পতিব্ৰতা পত্নী বা নাৰীৰ ব্ৰত পালন কৰি থাকিল যদিও সেইজন প্ৰিয় পুৰুষৰ পৰা তেওঁ একো নাপালে। দণ্ডীনাথৰ প্ৰতি প্ৰেম ভালপোৱা আৱেগ চন্দ্ৰৰ আছে যাক তেওঁ পৱিত্ৰ প্ৰেম বুলি ভাৱে। দণ্ডীনাথৰ কাৰ্যই প্ৰচণ্ড ক্ৰোধ চন্দ্ৰপ্ৰভাক আগ্নেয়গিৰিৰ দৰে উত্তপ্ত কৰি তুলিছিল। কাৰণ দণ্ডীনাথৰ সেই কাৰ্য আছিল কাপুৰুষালি। ফলত দণ্ডীনাথৰ তেজ মঙহৰ সন্তানে অপমানৰ বোজা মূৰ পাতি লব লগা হৈছিল। কেতিয়াবা তেওঁ দণ্ডীনাথক আৰ্থিক দুৰব্যস্থা, ধৈৰ্য, সহ্য শক্তিৰ যুক্তিবাদী মহৎ অন্তৰৰ গৰাকী বুলি কৈছে আকৌ কেতিয়াবা কাপুৰুষ বুলি কৈছে। সেইজন প্ৰিয় পুৰুষৰ দ্বাৰা তেওঁ আৰু তেওঁৰ পুত্ৰ পৰিত্যক্ত হৈয়ে থাকিল। এই কাৰ্যই তেওঁক তেওঁৰ কৰ্মৰ পৰম্পৰা বিৰোধী কৰি তোলে বুলি কবই লাগিব। ফলত চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানী সেই সময়ৰ সমাজত এক বিতৰ্কিত চৰিত্ৰ হৈ পৰা দেখা গৈছিল। এফালে তীব্ৰ আত্মসচেতন, অহংকাৰী আৰু বিদ্ৰোহী চৰিত্ৰ চন্দ্ৰপ্ৰভাই প্ৰেমিকৰ সৈতে চিঠিৰ আদান-প্ৰদান কৰি নিজৰ প্ৰেমাস্পদৰ সৈতে সম্পৰ্ক ৰাখিছিল।

চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীৰ জীৱনৰ বহু ঘটনাই আচৰিত কৰি তোলে তাত সন্দেহ নাই। তেওঁ নিজকে স্বামীৰ দ্বাৰা পৰিত্যক্ত পতিপ্ৰাণা ৰমনী বুলি কয়। তেওঁ প্ৰেমৰ উপহাৰ অতুলক ৰখাৰ দৰেই চিঠিবোৰো সযতনে সাঁচি ৰাখিছে। বহু সময়ত সেই চিঠিবোৰত প্ৰেম ভালপোৱাৰ লগতে ঘৃণা মিশ্ৰিত হৈ থাকে- নিৰুপমা বৰগোহাঁঞিৰ ভাষাত " অমূল্যহৈও, অতিকৈ অমূল্য ইয়াৰ ভিতৰত থকা চিঠিবোৰ যে অসমৰ এজন অতি মুধাফুটা সাহিত্যিকৰ নিজৰ প্ৰাণৰ সমস্ত আৱেগ সমস্ত দুখ-বেদনা উদাৰ দি লিখা চিঠি।" অভিযাত্ৰী -পৃ- ২৫২

বহু ক্ষেত্ৰত চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীৰ কাৰ্যক সেই সময়ৰ সমাজত বলিয়ালী বুলি কোৱা হৈছিল। উদাহৰণ স্বৰূপে সৰ্ব তিৰোতাৰ দৰে সেন্দুৰ লোৱা, চাইকেল চলোৱা কংগ্ৰেছৰ সভাত যাবলৈ ছুটি নিদিয়াত চাকৰি ইস্তাফা দিয়া মৰমৰ প্ৰতিদান অতুলক লৈ বিভিন্ন সভা সমিতিলৈ যোৱা আদি কাৰ্যই তেওঁক এক প্ৰকাৰৰ পাগলামী অথচ সাহসীকতাৰ পৰিচয় দিয়ে। তেওঁৰ মতে তাই আৰু তাইৰ প্ৰেমিক প্ৰিয় পুৰুষজনৰ পৱিত্ৰ প্ৰেম ভালপোৱাৰ আনন্দ মিলনৰ স্মাৰক। ইয়াক কোনেও কলংক বা ব্যাভিচাৰ বুলি কব নোৱাৰে। আনকি তেওঁ পৱিত্ৰ প্ৰেমৰ স্বাক্ষৰ অতুলক তেওঁ বিদ্বান আৰু গুণী মানুহৰ পুত্ৰ বুলি কৈছে। কেতিয়াবা দণ্ডীনাথ তেওঁৰ বাবে প্ৰিয়তম পুৰুষ আৰু কেতিয়াবা নিষ্ঠুৰ দেৱতা। তেওঁ নিজে পুৰুষতান্ত্ৰিক ৰক্ষণশীল বুলি বুজিও সেই সমাজৰ বঞ্চনা, প্ৰৱঞ্চনা, গঞ্জনা মূৰ পাতি লৈয়ো শেষলৈকে তেওঁৰ প্ৰতি শ্ৰদ্ধা নকৰাকৈ থকা নাছিল।

এক কথাত নিৰ্ভীক আৰু স্বাধীন চেতিয়া স্বভাৱ তেওঁৰ চৰিত্ৰৰ অন্যতম বৈশিষ্ঠ্য। আত্মসচেতনাৰ জীৱন্ত প্ৰতিমূৰ্ত্তি চন্দ্ৰপ্ৰভা সেই সময়ৰ সমাজৰ নাৰী জাগৰণৰ সৃষ্টি কৰাৰ মূল কাৰণ আছিল সেই সময়ৰ পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজ ব্যৱস্থা। উচ্চ, নীচ ভেদাভেদৰ প্ৰতি বীতৰাগ জন্মাৰ ফলতেই অথবা ব্যক্তিগত আক্ৰোশৰ ফলতেই চন্দ্ৰপ্ৰভাৰ হাতত জন্ম হৈছিল নাৰী জাগৰণৰ আন্দোলন। তেওঁৰ মতে নাৰী পুৰুষ বিদ্বেষী নহয়, পুৰুষৰ বিৰুদ্ধে নাৰীৰ কেৱল ওজৰ আপত্তি নহয়, ই এক সামাজিক দৰ্শনহে।

চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীৰ ব্যক্তিগত জীৱন যিহেতু সংগ্ৰাম, সংঘাতেৰে পূৰ্ণ আছিল সেয়ে আৰ্থিক অনাটন, পিছপৰা ঠাইৰ পৰা গ্ৰহণ কৰা শিক্ষা অথবা পিছপৰা অঞ্চলৰ সামাজিক ব্যৱস্থাই চন্দ্ৰপ্ৰভাৰ ব্যক্তিগত জীৱন তিক্ত কৰি তুলিছিল। অৱশ্যে সাহসী, তেজস্বী, সংস্কাৰমুক্ত নাৰী হিচাপে চন্দ্ৰপ্ৰভাই ব্যক্তিগত জীৱনৰ হুমুনিয়াহক উজ্জীৱিত কৰি তুলিছিল। কেৱল এয়ে নহয়, কুমাৰী মাতৃত্বৰ বোজা বহন কৰি নিজৰ পৰিচয়েৰে নিজক আৰু সন্তানক সমাজৰ আগত দাঙি ধৰিছিল। সেই সময়ছোৱাত এই কামৰ বাবে চন্দ্ৰপ্ৰভাক কিমান সাহসৰ প্ৰয়োজন হৈছিল সেয়া নকলেও হব। এক কথাত তেনে এগৰাকী নাৰী অসমত দ্বিতীয় গৰাকী নোলায় বুলি একে আষাৰে কব লাগিব। চন্দ্ৰপ্ৰভাৰ জীৱনৰ সংঘাত অবিবাহিতা অৱস্থাত গৰ্ভৱতী হৈ পুনৰ বজালীৰ পিতৃগৃহলৈ উভতি অহা ঘটনাই চন্দ্ৰপ্ৰভাৰ মানসিক, সামাজিক সংঘাতৰ কথাকে কয়। ফলত গোড়া, মতান্ধ পুৰুষ প্ৰধান সমাজৰ বিৰুদ্ধে নাৰী মুক্তিৰ চেতনা জাগ্ৰত কৰে চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীয়ে। তেওঁ কোনো পিতৃ বা স্বামীৰ পৰিচয়েৰে পৰিচিত নহৈ তেনে পুৰুষতান্তিক বন্ধনৰ পৰা মুক্ত হৈ স্বপৰিচয়েৰে নিজক উপস্থাপিত কৰিছিল, পৰিচিত কৰিছিল। সেই সময়ৰ সমাজ ব্যৱস্থাতো চন্দ্ৰপ্ৰভা আছিল মুক্ত। কোনো শিকলিৰে চন্দ্ৰপ্ৰভাক বান্ধি ৰাখিব পৰা নাছিল। পিতৃ পৰিচয়ৰ পৰা বঞ্চিত পুত্ৰ অতুলক নিজৰ পৰিচয়েৰে ডাঙৰ দীঘল কৰিছিল। কেৱল এয়ে নহয়, অতুলৰ বিবাহৰ সময়ত ছোৱালী পক্ষক আগতীয়াকৈ অতুলৰ পৰিচয় সম্পৰ্কে জনাইছিল। তেওঁৰ মতে ল'ৰাৰ যেনেকৈ ছোৱালীৰ সকলো আতিগুৰি জনাৰ অধিকাৰ আছে, ছোৱালীৰো তেনেকৈ ল'ৰাৰ সেই সকলোবোৰ জনাৰ অধিকাৰ আছে।

নিজৰ উপাধি পৰিচয়েৰে পৰিচিত চন্দ্ৰপ্ৰভাই ব্যৱসায় বা বাণিজ্যকে ধৰি সমাজৰ বহু কামেই নাৰীৰ অধিকাৰ থকা বুলি প্ৰমাণ কৰি গাড়ীৰ ব্যৱসায়তো আত্ম নিয়োগ কৰিছিল। এই কাৰ্যই চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীক এগৰাকী ব্যৱসায়ী বুলি পৰিচয় দিছিল।

একেধাৰে নাৰীবাদী সংগঠক, শিক্ষয়ত্ৰী, স্বাধীনতা সংগ্ৰামী, লেখিকা, সুবক্তা আৰু বলিষ্ঠ ব্যক্তিত্বৰ অধিকাৰী চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানী। এই গৰাকী সবল ব্যক্তিত্বৰ তপস্বিনীৰ একতা, ধৈৰ্য আৰু বিশ্বাসৰ দৃঢ়তা স্পষ্টকৈ দেখা পোৱা যায়। ❑

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

দেৱী সন্ধ্যা ঃ ঘৰ জেউতি আৰু তৎকালীন সমাজ, বান্ধৱ, ২০২১
ভড়ালী অজিত, কলিতা ৰজিতা (সম্পা) বিষয় নাৰী ঃ আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকন কলেজ নগাও, ২০২০
ঠাকুৰ নগেন ঃ (সম্পা) এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস, জ্যোতি প্ৰকাশন, ২০০০

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

মহেন্দ্ৰ নাথ বৰাৰ "স্মৃতিপটত আমেৰিকা" ভ্ৰমণ গ্ৰন্থৰ এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন

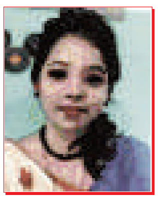

লক্ষীপ্ৰিয়া হাজৰিকা

গৱেষক ছাত্ৰী, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-০১
(সহকাৰী অধ্যাপিকা, ছয়দুৱাৰ মহাবিদ্যালয়)
৬০০০৩৬১৪৯৭
lakhipriyahazarika1997@gmail.com

ড° কল্পনা শৰ্মা কলিতা

সহযোগী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়চ গুৱাহাটী-০১
৭৫৭৮৯৩৯৮৯০
kalpana.sarma2@gmail.com

মানসিক প্ৰশান্তি, জ্ঞান লাভ, বুদ্ধিৰ বিকাশ, সু-স্বাস্থ্য আৰু সুস্থ মনৰ অধিকাৰী হ'বৰ বাবে মানুহে ভ্ৰমণ কৰে। কিছুসংখ্যক লোকে ভ্ৰমণৰ জৰিয়তে প্ৰাপ্ত অভিজ্ঞতা লিখিত ৰূপত আনক জনাবলৈ আগ্ৰহ কৰে। এই ধৰণৰ আগ্ৰহী মনৰে এজন ভ্ৰমণ কাহিনী লেখক হ'ল মহেন্দ্ৰ নাথ বৰা। বৰা অসমীয়া ভ্ৰমণ সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰখনলৈ অৱদান আগবঢ়োৱা ভ্ৰমণ কাহিনী লেখকসকলৰ ভিতৰত কম চৰ্চিত আৰু গৰিষ্ঠ সংখ্যক পাঠকৰে অপৰিচিত এজন লেখক। বৰাই ক্ৰমে **"বিদেশৰ বতৰা"** (ইংলেণ্ড, ফ্ৰান্স, ইটালী, জাৰ্মান আৰু হ'লেণ্ডৰ বিজ্ঞানাগাৰ দৰ্শন কৰাৰ অভিজ্ঞতা প্ৰকাশক) আৰু **"স্মৃতিপটত আমেৰিকা"** (১৯৯২ চনত আমেৰিকা ভ্ৰমণ বিষয়ক) নামৰ দুখন ভ্ৰমণ গ্ৰন্থ প্ৰকাশ কৰে। বৰাই আমেৰিকা ভ্ৰমণকালত লাভ কৰা বিচিত্ৰ অভিজ্ঞতা পাঠকক জ্ঞাত কৰিবৰ বাবে **"স্মৃতিপটত আমেৰিকা"** গ্ৰন্থখন প্ৰকাশ কৰে। সেইবাবে গ্ৰন্থখনৰ আগকথাত বৰাই উল্লেখ কৰিছে এনেদৰে- "সেয়ে ১৯৭২ আৰু ১৯৭৪ চনত মই কৰা ইউৰোপ ভ্ৰমণৰ তুলনাত এইবাৰৰ আমেৰিকা ভ্ৰমণ বিশেষ তাৎপৰ্যপূৰ্ণ আছিল। মোৰ বিদেশৰ অভিজ্ঞতাৰ কথা ৰাইজক বিলাই দিয়াৰ হেঁপাহতে "স্মৃতিপটত আমেৰিকা" নামেৰে পুথিখন যুগুত কৰি উলিয়ালোঁ।" পৰিতাপৰ বিষয়, এখন অতি উন্নত মানদণ্ডৰ তথ্যভিত্তিক ভ্ৰমণ গ্ৰন্থ "স্মৃতিপটত আমেৰিকা" ৰ বিষয়ে আলোচনা আৰু চৰ্চা কেইটামান প্ৰবন্ধৰ সম্যক আলোচনাতে সীমাবদ্ধ। তাৰোপৰি সম্প্ৰতি এই ভ্ৰমণ গ্ৰন্থখনো দুৰ্লভ। কিন্তু এই দুৰ্লভ আৰু অপৰিচিত গ্ৰন্থখন অধ্যয়ন আৰু চৰ্চা কৰাৰ যথেষ্ট প্ৰয়োজন আছে। গ্ৰন্থখনৰ সন্দৰ্ভত বৰাই আগকথাতে এটি মন্তব্য আগবঢ়াই আৰু এই মন্তব্যটোৰ জৰিয়তে গ্ৰন্থখনৰ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আৰু সামাজিক ক্ষেত্ৰখনত গ্ৰন্থখনৰ প্ৰাসংগিকতা কিমান সেই কথাৰ অনুমান কৰিব পাৰি। মন্তব্যটো এনেধৰণৰ - **"ইতিমধ্যে বহুজন লেখকে আমেৰিকাৰ ভ্ৰমণ কাহিনীক পুথি আকাৰে প্ৰকাশ কৰি উলিয়াইছে। ভিন ভিন মানুহে ভিন ভিন ৰুচিৰে লিখা এইবোৰ ভ্ৰমণ কাহিনী পুথিৰ মাজেদি ৰাইজে আমেৰিকাৰ বিভিন্ন দিশৰ সম্যক ধাৰণা উপলব্ধি কৰিব পাৰিছে। সেয়ে আমেৰিকা ভ্ৰমণ অভিজ্ঞতাৰ আনবোৰ কথা বাদ দি বিজ্ঞান - সভা, বিজ্ঞানাগাৰ আৰু সমাজখনৰ যিবোৰ কথাই আমাৰ সমাজখনৰ লগত তুলনামূলকভাৱে ৰিজাই চাওঁতে মোৰ মনত ক্ৰিয়া কৰিছে, সেইবোৰৰ ওপৰত গুৰুত্ব দি মই পুথিখন যুগুত কৰাৰ প্ৰয়াস কৰিছোঁ।"** গতিকে গ্ৰন্থখন অধ্যয়ন কৰাৰ গুৰুত্ব উপলব্ধি কৰিয়ে সচেতন পাঠক সমাজৰ বাবে প্ৰবন্ধটো প্ৰস্তুত কৰা হৈছে।

১৯৯১ চনৰ জুন মাহত উত্তৰ আমেৰিকাৰ কলৰাডো বিশ্ববিদ্যালয়ত অনুষ্ঠিত হোৱা আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় বিজ্ঞান সভাত ভাৰতৰ দুজন প্ৰতিনিধিয়ে অংশগ্ৰহণ কৰাৰ সুযোগ লাভ কৰে। উৎকল বিশ্ববিদ্যালয়ৰ অধ্যাপক ইউ. দাস আৰু অসমৰ গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়ৰ

অধ্যাপক মহেন্দ্ৰ নাথ বৰাই সন্মিলনখনত ভাৰতক প্ৰতিনিধিত্ব কৰি যোগদান কৰে। সন্মিলনখনত যোগদান কৰাৰ লগতে আমেৰিকাৰ প্ৰবাসী অসমীয়াৰ সহযোগত অনুষ্ঠিত "অসম দিৱস"ত অংশগ্ৰহণৰ উদ্দেশ্যে বৰা আমেৰিকালৈ যাত্ৰা কৰে। যাত্ৰাকালত বৰাই প্ৰত্যক্ষ কৰা ঘটনাবোৰ সমালোচনাত্মক দৃষ্টিভংগীৰে গ্ৰন্থখনত উপস্থাপন কৰে। কাহিনীত অপ্ৰয়োজনীয় ব্যক্তিগত আমোদ-প্ৰমোদৰ অযথা বৰ্ণনাৰ পৰা বৰুৱা মুক্ত হোৱা দেখা যায়। বিমানত সহযাত্ৰী হিচাপে লগ পোৱা ব্যক্তিসকল, আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় সন্মিলন, কলৰাডো বিশ্ববিদ্যালয়ৰ বিজ্ঞানাগাৰ, বিজ্ঞানীসকলৰ চিন্তা-চৰ্চা, স্বদেশৰ চিন্তা, আমেৰিকাৰ যুৱ-মানসিকতা, বিদেশৰ শিশু আৰু কিশোৰসকলৰ জীৱনধাৰা, প্ৰবাসী অসমীয়াসকলৰ স্বদেশপ্ৰেম, বৌদ্ধিক চিন্তাধাৰা এই সকলোবোৰ গ্ৰন্থখনৰ মাজেৰে উন্মেষ ঘটাইছে। বৰাই ঠায়ে ঠায়ে স্পৰ্শকাতৰ দিশৰ উন্মোচন, বিদেশ আৰু স্বদেশৰ তুলনামূলক চিন্তা, কোনো কোনো ঠাইত জতুৱা ঠাঁচ, ফকৰা-যোজনাৰ প্ৰয়োগে গহীন বিষয়বোৰকো বিৰক্তি নলগাকৈ গভীৰভাৱে অনুভৱ কৰিব পৰাকৈ পাঠকসকলক মুগ্ধ কৰি ৰাখে।

গ্ৰন্থখনৰ আৰম্ভণিতে বৰাই বিমানত সহযাত্ৰী হিচাপে লগ পোৱা ব্যক্তিৰ প্ৰসংগ উত্থাপন কৰি কেইটামান স্পৰ্শকাতৰ দিশ উন্মোচন কৰিছে। পোনপ্ৰথমে বৰাই সহযাত্ৰী হিচাপে আহমেদাবাদৰ শ্ৰীযশোৱন্ত মেহ্ৰোট্ৰা নামৰ এজন ডাক্তৰৰ সান্নিধ্য পায়। দেশৰ জনগণক সেৱা কৰাৰ দুৰ্বাৰ হেঁপাহ থকা সত্বেও তেওঁ লণ্ডনত বসতি কৰি চিকিৎসা সেৱা আগবঢ়াইছে। ইয়াৰ জৰিয়তে নিজ দেশত প্ৰতিভা বিকাশৰ পৰ্যাপ্ত পৰিমাণে সুবিধা নথকা, সঠিক পাৰিশ্ৰমিকৰ অভাৱ, প্ৰতিভাই উপযুক্ত স্বীকৃতি নোপোৱাৰ দিশটো উদঙাই দিয়ে। মেহ্ৰোট্ৰা সম্পৰ্কে বৰাই গ্ৰন্থখনত এনেদৰে উল্লেখ কৰিছে - "ডাক্তৰ হৈ জননীক সেৱা কৰাৰ দুৰ্বাৰ হেঁপাহ থকা সত্বেও তেওঁৰ আশা পূৰণ নহ'ল। প্ৰতিভাৰ স্বীকৃতি নেপাই বহুত মেধালোকে তেওঁৰ দৰে দেশ এৰি বিদেশৰ প্ৰবাসী হ'ব লগা কৰুণ কথাবোৰলৈ মোৰ মনত পৰিলে।" (পৃঃ-১) দ্বিতীয়বাৰ বৰাই এজন মিঃজি লিবন্ নামৰ আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় কাপোৰ বেপাৰী এজনক কাষৰ আসনত বহি থকা অৱস্থাত লগ পায়। লিবন্ বিশ্বৰ প্ৰায়বোৰ ঠাইলৈ ব্যৱসায়ৰ সংক্ৰান্তত ঘূৰিছে। তেওঁ বৰাক কথা প্ৰসংগত ভাৰতত পৰ্যাপ্ত পৰিমাণৰ কেচাঁ সামগ্ৰী থকা সত্বেও বস্ত্ৰ উদ্যোগে বিশ্বক কিয় চমৎকৃত কৰিব পৰা নাই বুলি প্ৰশ্ন কৰিছে। "ভাৰতলৈ মই কেবাবাৰো গৈছো। আপোনালোকৰ দেশৰ মানুহবোৰ সোৰোপা। বস্ত্ৰ উদ্যোগৰ সকলোধৰণৰ কেঁচা সামগ্ৰী থকা ভাৰতে বস্ত্ৰ উদ্যোগত বিশ্বক চমক খুৱাব পাৰিব লাগিছিল। কষ্ট নকৰাকৈ ভাৰতৰ মানুহে ধনী হ'বলৈ বিচাৰে।" (পৃঃ-২) পেৰিছৰ এই বেপাৰীজনৰ কথাই ভাৰতৰ শোচনীয় স্বৰূপ বিদেশৰ মানুহে অনুভৱ কৰা কথা জানিব পৰা গৈছে। বৰাই কলৰাডোলৈ যাত্ৰা কৰোঁতে চিকাগোৰ দুগৰাকী মহিলা সহযাত্ৰী লগ পায়। মিচেছ্ ই. হাৰ্ভি আৰু মিচেছ্ চি. হোলষ্টে দুয়োগৰাকী দুখন বিদ্যালয়ৰ শিক্ষয়িত্ৰী। দুয়োগৰাকী মহিলাৰ সৈতে বৰাৰ পৰিচয় ঘটে। কথা প্ৰসংগত বৰাই আমেৰিকাত সুন্দৰ দৃশ্যবোৰ উপভোগ কৰি আনন্দিত হোৱাৰ কথা ব্যক্ত কৰে। বৰাৰ প্ৰশংসাসূচক মন্তব্য শুনি হোলষ্টে প্ৰত্যুত্তৰ দিয়ে এনেদৰে - "মানুহে কি কৰিব নোৱাৰে, প্ৰয়োজন দেশাত্মবোধ। এওঁলোক ইটালিয়ান বংশধৰ। আমি জাৰ্মান। আমেৰিকালৈ আহি সকলো হৈ পৰিছোঁ আমেৰিকান। আমি আটায়ে আমেৰিকাক ভাল পোৱাৰ মানসিকতাৰে কাম কৰিছোঁ বাবে দেশৰ ইমান উন্নতি হৈছে। আপুনিও আকাশৰ পৰা ইমান সুন্দৰ ৰূপত এইবোৰ দেখা পাইছে।" (পৃঃ-৪) ইয়াৰ জৰিয়তে প্ৰবাসী ব্যক্তিৰ কৰ্মভূমিৰ প্ৰতি থকা আন্তৰিকতাৰ উমান পোৱা গৈছে। ডেট্ৰেইডৰ পৰা চিকাগোলৈ যাওঁতে বৰাই বিমানত সহযাত্ৰী হিচাপে মিঃ জে. ইয়াটাক নামৰ এজন জাপানী ইঞ্জিনিয়াৰ লগ পায়। বৰাই ইঞ্জিনিয়াৰজনক কিহৰ গুণত জাপানে প্ৰযুক্তি কৌশলেৰে বিশ্বক চমক খুৱাব পাৰিছে বুলি সোধাত জাতীয় চেতনাৰ বলত বুলি উত্তৰ দিয়ে। "হাতত বন্দুক লোৱাতকৈ হাতুৰী, বটালী, কোৰ আৰু কটাৰী লৈ আমি নানা ইলেক্টনিক উদ্যোগ আৰু কৃষিপাম কৰাত ব্ৰতী হলো। হৰতাল, ধৰ্ণা আৰু অনশন আদি কৰাতকৈ কৰ্ম বিপ্লৱৰ জোৱাৰে প্লাৱন অনাত আমি গুৰুত্ব দি প্ৰগতিৰ সোপান ৰচিবলৈ সক্ষম হলোঁ।" (পৃঃ-৬) জাপানী ইঞ্জিনিয়াৰজনৰ কথাযাৰে বৰাক অসমৰ মিলিটেৰীৰ পাশৱিক অত্যাচাৰত পংগু হৈ পৰা ডেকা যুৱকসকলৰ কথাই মনত আমনি দিয়ে। চিকাগোৰ পৰা ওৱাংছিটন ডি.চি. লৈ কৰা বিমানযাত্ৰাত বৰাই এগৰাকী ভাৰতীয় মহিলাক লগ পালে। তেখেত মিচেছ্ এলী গুপ্তা উত্তৰ প্ৰদেশৰ এগৰাকী অধ্যাপিকা। গৰম বন্ধত স্বামী ড° এচ. গুপ্তাৰ ওচৰলৈ আহিছে। কম্পিউটাৰত উচ্চশিক্ষা গ্ৰহণ কৰি ভাৰতত উপযুক্ত সংস্থাপন নাপাই স্বামী আমেৰিকাত সংস্থাপিত হয়। সেইবাবে ভাৰতৰ কথা কৈ মিচেছ্ এলী গুপ্তাই ক্ষোভ প্ৰকাশ কৰিছে "ভাৰতত যোগ্যজনৰ সমাদৰ নাই বাবে মোৰ স্বামী ব্ৰেইন খেৰইনৰ বলী হ'বলগীয়া হৈছে। আমি এৰা-এৰি হৈ আৰু কিমান দিন থাকিম? এদিন হয়তো স্বদেশৰ মোহ এৰি ময়ো দেশ এৰি আমেৰিকাত প্ৰবাসী হ'বহি লাগিব।" (পৃঃ-৬)

ইয়াৰ পিছতে বৰাই আমেৰিকাৰ কলৰাডো বিশ্ববিদ্যালয়ত "একাদশ তাপীয় প্ৰাকৃতিক ধৰ্ম অধ্যয়নৰ আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় আলোচনা চক্ৰ" সম্পৰ্কে বিস্তৃত বৰ্ণনা আগবঢ়ায়।

আলোচনাচক্ৰখনিত বিশ্বৰ নানা ঠাইৰ ৩৩২ জন বিজ্ঞানীয়ে অংশগ্ৰহণ কৰে। বিশ্বৰ বিভিন্ন ঠাইৰ বিজ্ঞানীসকলৰ মহামিলনৰ ক্ষেত্ৰৰূপে গঢ়ি উঠা এই আলোচনাচক্ৰত ৩২ জন জাপানী, ১৯ জন ৰাছিয়ান আৰু ১৫ জন চীনা বিজ্ঞানীয়ে যোগদান কৰা দেখি বৰা অভিভূত হৈ পৰে। আনহাতে ভাৰতৰ মাত্ৰ দুজনে এই সন্মিলনত যোগদান কৰা দেখি উদ্যোক্তাসকলে ভাৰতৰ আন তিনিখন ঠাইৰ আমন্ত্ৰিত বিজ্ঞানীসকলৰ অনুপস্থিতিৰ কাৰণ জানিব বিচাৰে। বৰাই আৰ্থিক সমস্যা, টিকট ক্ৰয়ৰ দৰে নানা সমস্যাৰ কথা উল্লেখ কৰি অনুপস্থিতিৰ কাৰণ দৰ্শায়।

সন্মিলনখনত বৰাৰ ওচৰলৈ ভাৰতীয় ছয়জন বিজ্ঞানী আহে। অৱশ্যে তেওঁলোকৰ জন্মগত পৰিচয়হে ভাৰতীয়। কিয়নো ভাৰতৰ সেই কেইজন সু-সন্তানে বিদেশৰ বিশ্ববিদ্যালয়সমূহক প্ৰতিনিধিত্ব কৰিহে এই সন্মিলনত অংশগ্ৰহণ কৰে। সেইসকল ভাৰতীয় সু-সন্তানৰ ভিতৰত ক্ৰমে ড° টি.কে. বোস। তেওঁ এজন কলিকতাৰ বিজ্ঞানী হৈয়ো কানাডাৰ কুইবেক বিশ্ববিদ্যালয়ক প্ৰতিনিধিত্ব কৰে। উত্তৰ প্ৰদেশৰ অধ্যাপক এ.কে. মেহৰোট্ৰা। এওঁ কানাডাৰ কেলগেৰী বিশ্ববিদ্যালয়ক প্ৰতিনিধিত্ব কৰে। যাদৱপুৰৰ অধ্যাপক এচ্.এন. বিশ্বাসে নেদাৰলেণ্ড বিশ্ববিদ্যালয়ক প্ৰতিনিধিত্ব কৰে। পঞ্জাবৰ ড° আৰ, চি, প্ৰসাদে নিউ ব্ৰুন্সউইক বিশ্ববিদ্যালয়ক প্ৰতিনিধিত্ব কৰে। হাউষ্টনৰ ৰাইচং বিশ্ববিদ্যালয়ক উত্তৰ প্ৰদেশৰ ড° কে,পি, শুক্লাই প্ৰতিনিধিত্ব কৰে। বিহাৰৰ ড° ডি,এ, ৰায়ে নিউৰ্য়কৰ ষ্টে বিশ্ববিদ্যালয়ক প্ৰতিনিধিত্ব কৰে। এইসকলে আমেৰিকাত প্ৰবাসী জীৱন-যাপন কৰিলেও বিজ্ঞানাগাৰত প্ৰাণ ঢালি গৱেষণা কৰে। তেওঁলোকে বৰাক লগ পাই জন্মভূমিৰ বিষয়ে জানিব বিচাৰিছে, বৰাক তেওঁলোকে আপোন মানুহ হিচাপে আদৰি লৈছে। এইবোৰ দেখি বৰাই যিমান আনন্দিত হৈছে সিমান দুঃখিত ও হৈছে। "অৱশ্যে আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় সন্মিলনৰ মজিয়াত ভাৰতীয় বিজ্ঞানীৰ ব্ৰেইন খেবইনৰ কৰুণ দৃশ্যৰ জ্বলন্ত ছবিখন দেখি মোৰ মনত আক্ষেপ ওপজে।" (পৃঃ-১২) ৩২১ খন গৱেষণা প্ৰবন্ধ এই সন্মিলনত পাঠ কৰা হয়। বৰায়ে দুটা গৱেষণামূলক প্ৰবন্ধ পাঠ কৰাৰ সুযোগ পায়। বৰাই মুগা আঁহৰ তাপীয় ধৰ্ম আৰু বৈদ্যুতিক গুণ সম্পৰ্কে পাঠ কৰে। বৰাই নিজৰ জন্মভূমিৰ কেঁচা সামগ্ৰী মুগা আঁহৰ ওপৰত পাঠ কৰা প্ৰবন্ধ দুটাৰ বিষয়ে সজীৱ আলোচনা হ'ল। জাপানী বিজ্ঞানী ড° এইচ্ হিনাটাই যুটীয়াভাৱে গৱেষণা কৰিবলৈ আগ্ৰহ প্ৰকাশ কৰাৰ লগতে চীনা বিজ্ঞানী ড° জি,চি, ঝৱে মুগা আঁহৰ বিষয়ত গৱেষণা কৰিবলৈ কিছু মুগা লেটা বৰাক পঠাবলৈ কোৱা কথাই বৰাক যথেষ্ট উৎসাহ যোগালে। "জাপানী বিজ্ঞানী ড° এইচ্ হিনাটাই যুটীয়াভাৱে গৱেষণা কৰিবলৈ আগ্ৰহ প্ৰকাশ কৰা দেখি আৰু চীনা বিজ্ঞানী ড° জি,চি, ঝৱে মুগা আঁহৰ বিষয়ত গৱেষণা কৰিবলৈ কিছু মুগা লেটা পঠাবলৈ কোৱা কথাই মোক কিমান অনুপ্ৰাণিত কৰিছিল, তাক মই ভাষাৰে বৰ্ণনা কৰিব নোৱাৰোঁ।" (পৃঃ- ১৫)

ভাৰতীয় বিজ্ঞানীসকলে আমেৰিকাত বিজ্ঞানৰ ক্ষেত্ৰখনলৈ অৱদান আগবঢ়োৱা দেখি বৰাই সন্তোষ প্ৰকাশ কৰিছে। নিজৰ দেশৰ অমূল্য ৰত্নৰ সদ্ব্যৱহাৰ কৰিব নাজানি হেৰাই যাবলৈ ধৰা ৰত্নক বুটলি আনি উপযুক্ত সা-সুবিধাৰে উজ্জ্বলাই তুলিবলৈ চেষ্টা কৰা আমেৰিকাক বৰাই অন্তৰেৰে ধন্যবাদ দিছে। ড° কে, পি, শুক্লা, ড° ডি, এ, ৰায় ইয়াৰ উৎকৃষ্ট উদাহৰণ। এওঁলোকে আমেৰিকাত সকলোধৰণৰ সুবিধা লাভ কৰি নিজৰ দক্ষতা বৃদ্ধি কৰি আমেৰিকাক সেৱন কৰাৰ লগতে জীৱনটোক ধন্য কৰিছে। "ভাৰি খুৱ ভাল পাওঁ যে আমেৰিকাৰ বিভিন্ন বিজ্ঞানাগাৰত ভাৰতৰ বহুত বিজ্ঞানীয়ে নিষ্ঠাৰে গৱেষণাত ব্ৰতী থাকি সুনাম অৰ্জন কৰিছে।" (পৃঃ ৩৩)

বৰাই আমেৰিকাৰ শিক্ষা, সমাজ জীৱন আৰু গৱেষণা সম্পৰ্কে বিস্তৃতভাৱে গ্ৰন্থখনত দাঙি ধৰিছে। চিৰসেউজ প্ৰাকৃতিক সৌন্দৰ্যৰে ভৰপূৰ আমেৰিকাৰ এখন মহানগৰী হৈছে ব'ল্ডাৰ। এই মহানগৰখনতে বিজ্ঞান প্ৰযুক্তিবিদ্যাৰে চিৰ যৌৱনা বিশ্বৰ অগণন বিজ্ঞানীৰ আদৰ্শ আৰু অনুকৰণীয় কলৰাডো বিশ্ববিদ্যালয় স্থাপিত। কলৰাডো বিশ্ববিদ্যালয়ৰ পৰিৱেশে বিশ্বৰ বিশাল ক্ষেত্ৰৰ জনগণক আকৰ্ষিত কৰাৰ দৰে বৰাকো মন্ত্ৰমুগ্ধ কৰে। বিশ্ববিদ্যালয়খন প্ৰত্যক্ষ কৰি বৰাই অনুভৱ ব্যক্ত কৰিছে এনেদৰে-"শিক্ষা, গৱেষণা আৰু অধ্যাপনাৰ সকলো সা-সুবিধাৰে ভৰপূৰ কমনীয় পৰিৱেশৰ মোহত মোৰো তাতে ৰৈ আহিম যেন লাগে।" (পৃঃ ১৭)

আমেৰিকাত কম্পিউটাৰ, দূৰদৰ্শন আৰু টেলিফোনেৰে বৃহৎ অট্টালিকাবোৰ এনেদৰে সংলগ্ন হৈ আছে যে কোনোবা এটা কম্পিউটাৰত হাত দিলেই নিমিষতে বিচৰা সকলো তথ্য লাভ কৰে। ৰাস্তাই ঘাটে ওলমি থকা টেলিফোন দাঙি ধৰিলেই নিমিষতে বিচৰা ব্যক্তিজনক লগ পায়। তাৰোপৰি বিচৰা বস্তুটোও টেলিফোন দাঙি ধৰিলেই টেবুলতে লাভ কৰে। কম্পিউটাৰৰ সহায়তে যন্ত্ৰই ফুলনিত মালিৰ পৰিৱৰ্তে পানী দিয়ে। ঘাঁহ-বন চিকুণাইৰখা কামো জমাদাৰে ছুইচ্‌ত হাত বুলালেই পৰিষ্কাৰ হৈ যায়। সকলোবোৰে কাম যন্ত্ৰ-পাতিৰ সহায়তে সম্ভৱ হোৱা দেখি বৰা অভিভূত হৈ পৰিছে। "ছুইচ টিপি বয়-বস্তু ক্ৰয় কৰাকে ধৰি বৰ বৰ অট্টালিকা নিৰ্মাণৰ বিভিন্ন আৰু প্ৰযুক্তি কৌশলবোৰ যিদৰে ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে সেইবোৰ দেখি মই বিস্ময়ত হতবাক হওঁ। তাত ন টা দিন কটালোঁ এদিনো এক মুহূৰ্তৰ কাৰণে বিজুলী সৰবৰাহ বন্ধ হোৱা নেদেখিলো।" (পৃঃ ১৮) গাড়ী পাৰ্ক কৰাৰ ক্ষেত্ৰতো যন্ত্ৰই সহায় কৰে। "আপুনি

গৈ গাড়ীখন ৰখাই গাড়ীত থকা নিৰ্দিষ্ট ক'ডৰ সংকেত ছুইছত হাত দিয়াৰ লগে লগে লোৰ পথালিকৈ ৰখা ডাংমাৰি ডাং খাই যায় আৰু আপোনাৰ গাড়ীখন পাৰ হৈ যোৱাৰ লগে লগেই পুনৰ নামি পথালি হৈ ৰয়।" (পৃঃ ৩৮) তাৰোপৰি গৱেষণাগাৰ আৰু কিছুমান গুৰুত্বপূৰ্ণ কোঠাৰ দুৱাৰত তলা মাৰি থোৱাৰ ব্যৱস্থা নাই। বৈদ্যুতিক কৌশলেৰে দুৱাৰ খোলাৰ ব্যৱস্থা আছে। "বিশেষ ৰঙৰ লেপন থকা পিটলৰ সৰু চেপেটা প্লেট এখন থাকে। সেইখনৰ মূৰটো দুৱাৰত থকা বিন্ধাত সুমুৱাই দিয়ক আলোক বৈদ্যুতিক ক্ৰিয়া ঘটি দুৱাৰৰ চাবি খোলা খাব আৰু নীলা পোহৰ এটা স্পষ্ট হৈ ওলাব। প্লেটখন তেতিয়া উলিয়াই আনক দুৱাৰখন খোল খাই যাব।" (পৃঃ ১৯)

বিশ্ববিদ্যালয়ৰ বুকচেণ্টাৰ আৰু পুথিভঁৰালো বিজ্ঞান আৰু প্ৰযুক্তিবিদ্যাৰ নানান কলা কৌশলেৰে সু-সজ্জিত। কিতাপ-পত্ৰ আৰু শ শ চকী টেবুলৰ লগতে জেৰক্স মেচিনবোৰ সজাই থোৱা হয়। বিশেষ প্ৰয়োজন হ'লে নিজে ছুইছ টিপি ৫০ পেন্স ভৰাই ফটোষ্টেত কপি ল'ব পাৰে। খোৱা-বোৱাৰ ক্ষেত্ৰতো সকলো ব্যৱস্থা তৎক্ষণাৎ টেবুলত পাব পৰাকৈ নিৰ্দিষ্ট পইচা ভৰাই ছুইচ টিপি দিলেই হয়। ওচৰতে ছেলফ্ চাৰ্ভিছ বেংকৰো ব্যৱস্থা আছে চেক্ ভঙোৱা আৰু নোট ভঙোৱা কামবোৰো ছুইছ টিপি দিলেই তৎক্ষণাৎ সম্ভৱ। সেইদৰে বাছ, টেক্সি, বিমানৰ প্ৰয়োজন হ'লেও টেলিফোনটো দাঙি ল'লেই ওচৰত থকা ট্ৰেভেল সহায়ক কোঠাত থকা সু-সজ্জিত কম্পিউটাৰে সকলো ধৰণৰ খবৰ গ্ৰহণ কৰি টেবুলতে সকলো খবৰ যোগান ধৰে। এইবোৰ দেখি বৰা হতবাক হৈছে "এনেদৰে আপুনি যিফালে চকু ফুৰাই, সেইফালেই দেখিব প্ৰযুক্তি কৌশলৰ অফুৰন্ত আদব কায়দাৰে বিশ্ববিদ্যালয়ৰ কাৰুকাৰ্যত সোণত সুৱগা চৰাইছে। বিশ্ববিদ্যালয়ৰ বিভিন্ন বিভাগলৈ চালেও চকু থৰ হয়। বিজ্ঞান আৰু প্ৰযুক্তিবিদ্যাৰ কলা-কৌশলেৰে বিতোপন তিনিকুৰি বিৰাট অট্টালিকাৰ অত্যাধুনিক সা-সৰঞ্জাম আৰু জ্ঞান গৱেষণাৰ ব্যৱস্থাৱলীক কিদৰে বৰ্ণনা কৰিব পাৰি ভাবিব পৰা নাই।" (পৃঃ ১৯)

কলৰাডো বিশ্ববিদ্যালয়ৰ ফিচ্‌কে প্লেনেটেৰিয়ামটো বিশ্বৰ ভিতৰত পৰিচিত তাৰকা গৃহ। ৮ জুনৰ পৰা অনুষ্ঠিত হোৱা আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় জ্যোতি বিজ্ঞান সন্মিলনত বিশ্বৰ বিভিন্ন ঠাইৰ মানুহে যোগদান কৰে। বৰাও সৌভাগ্যৱান যে এনে এখন সন্মিলনত যোগদান কৰিবলৈ সুবিধা পায়। এই সন্মিলনত জাপানী বিজ্ঞানীয়েও অংশগ্ৰহণ কৰি প্ৰশংসা কৰাটোত বৰা আচৰিত হৈছে। "ইলেক্ট্ৰনিক প্ৰযুক্তি কৌশলত বিশ্বক চমক লগোৱা জাপানী বিজ্ঞানীও তাৰকা গৃহটোৰ মোহত মুহিত হোৱাতো কম কথা নহয়।" (পৃঃ-২০) কলৰাডো বিশ্ববিদ্যালয়ৰ ডুনে ফিজিকেল লেবৰেটৰিটো দ্বিতীয় বৃহৎ বিভাগ। এই বিভাগটো পদাৰ্থ বিজ্ঞানৰ সকলো শাখাই আকৰ্ষণীয়। পদাৰ্থ বিজ্ঞানৰ অধ্যাপক হিচাপে স্বাভাৱিকতে বৰাক এই বিভাগটোৱে আকৰ্ষণ কৰে। জুলীয়া স্ফটিক, মহাকাশ আৰু নিউক্লিয়েৰ বিজ্ঞানৰ বিষয়ৰ জুন মাহৰ পৰা ধাৰাবাহিকভাৱে অনুষ্ঠিত হোৱা আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় সন্মিলনলৈ বিশ্বৰ বিভিন্ন প্ৰান্তৰ শ শ বিজ্ঞানী আগমণ ঘটে। এই অনন্য পৰিৱেশত যোগদানৰ সুবৰ্ণ সুযোগ বৰাই লাভ কৰে। এই বিভাগটোৰ বিষয়ে তাতে পোষ্ট ডক্টৰেল গৱেষণা কৰি থকা উৰিষ্যাৰ ড° পি, মহন্তীৰ মুখত গুণ গৰিমা শুনি বৰা অভিভূত হৈছে। এই বিভাগটোত চাৰিজন এমেৰিটাচ্ অধ্যাপক, ৩৬ জন অধ্যাপক, ২১ জন এচ'চিয়েট অধ্যাপক, ১৮ জন ৰীডাৰ, ১৬ জন প্ৰবক্তাৰ উপৰিও বিভাগটোত ৩৫ জন পোষ্ট ডক্টৰেল গৱেষক আৰু ১৪৮ জন সাধাৰণ গৱেষক আছে। তাৰোপৰি বছৰি ৪ খন আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় সন্মিলন আৰু তিনিদিনত একোখনকৈ গৱেষণা পত্ৰ প্ৰকাশ হোৱাটোৱে বিভাগটোৰ গুৰুত্ব আৰু মহত্ব প্ৰকাশ কৰে। কলৰাডো বিশ্ববিদ্যালয়ৰ লাইফ চায়েন্স বিভাগটো তৃতীয় বৃহত্তম বিভাগ। এই বিভাগটোতো গ্ৰীষ্মকালীন দুখন আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় বিজ্ঞান সন্মিলন অনুষ্ঠিত হয়। এই বিভাগটোৰ বিৰাট মেন্‌জিঞ্জাৰ প্ৰেক্ষাগৃহত ২৪ জুনৰ ৰাতিপুৱাৰ পৰা অনুষ্ঠিত হোৱা আলোচনাচক্ৰত বৰাইও যোগদান কৰে। এই বিভাগটোৱেও বিজ্ঞান আৰু প্ৰযুক্তিবিদ্যাৰ চমৎকৃত কৌশলেৰে বিশ্বৰ অন্য প্ৰান্তৰ বিজ্ঞানীক আকৰ্ষণ কৰে। ইঞ্জিনিয়াৰিং চেণ্টাৰটো কলৰাডো বিশ্ববিদ্যালয়ৰ সৰ্ববৃহৎ বিভাগ। প্ৰযুক্তি কৌশলৰ সকলোখিনি সুবিধাই এই বিভাগত উপলব্ধ। দুখন আন্তৰাষ্ট্ৰীয় সন্মিলনৰ লগতে চাৰিটা কম্পিউটাৰ কৰ্মশালা একেলগে চলি থকা দেখি বৰা অভিভূত হৈছে। পাঁচ দিন ধাৰাবাহিকভাৱে চলি থকা আলোচনা চক্ৰৰ সাৰাংশ ফুলনিত চাহ খোৱাৰ সময়ত চাহৰ টেবুলবোৰত সজাই থোৱা টি.ভি. ত প্ৰদৰ্শন হোৱা দেখি বৰা আনন্দিত হৈছে। পাঁচ দিনৰ সন্মিলনৰ বৰাই বহু উদাৰমনা বিজ্ঞানীৰ লগত ওচৰ সম্বন্ধ স্থাপন কৰি তেওঁলোকৰ পৰা বহু নজনা কথা আয়ত্ত কৰি ল'লে। এই দিনবোৰে বৰাক যথেষ্ট উপকৃত আৰু অনুপ্ৰাণিত কৰাৰ লগতে বৰাই লাভ কৰা অভিজ্ঞতা সাৱলীল ৰূপত গ্ৰন্থখনত ব্যক্ত কৰে।

বৰাই আমেৰিকাৰ প্ৰবাসী অসমীয়াসকলৰ স্বদেশ-প্ৰেমৰ চিত্ৰণো গ্ৰন্থখনত হৃদয়স্পৰ্শীভাৱে প্ৰকাশ কৰিছে। আমেৰিকাৰ প্ৰবাসী অসমীয়াসকলে জন্মভূমি ভাৰতক সেৱা কৰিবৰ বাবে দুৰ্বাৰ হেঁপাহ পুহি ৰাখে। সেইবাবে সময় আৰু সুবিধা পালেই ভাৰতীয় আপোন মানুহবোৰৰ আগত জননীক সেৱা কৰাৰ কথা ব্যক্ত কৰে। বৰাই এনে আমেৰিকান প্ৰবাসী অসমীয়া বহু ব্যক্তিৰ সান্নিধ্য আমেৰিকাত লাভ কৰি আনন্দিত হৈছে। তেনে

ব্যক্তিসকলৰ ভিতৰত মিচৌৰী কলম্বিয়াৰ অধ্যাপক ডেৱী বিশ্বনাথন উল্লেখযোগ্য। তেওঁ অৱসৰ পোৱাৰ পিছতে ছমাহৰ বাবে ভাৰতলৈ ভিজিটিং প্ৰফেচাৰ হিচাপে যাব। সেই কথাই বিশ্বনাথনে কিমান যে স্ফুৰ্তিৰে কৈছিল বৰা দেখিয়ে ৰোমাঞ্চিত হৈ পৰিছিল। নিজা জন্মভূমিৰ বিজ্ঞানীসকলক লগ পোৱাৰ লগতে মনৰ কথা তেওঁলোকৰ লগত পাতিব পাৰিব বুলি কৈ তেওঁ আনন্দিত হৈ পৰিছিল। তাৰোপৰি মীচেচ্ বিশ্বনাথনে জন্মভূমিক কেনেকৈ সেৱা কৰিছে সেই কথা এনেদৰে কৈছে- "শিক্ষয়িত্ৰী হিচাপে ইয়াত সকলো পাই সুখেৰে আছো যদিও মৰমৰ জন্মভূমিৰ বাবে একো কৰিব নোৱাৰিলেও এখন অনাথ আশ্ৰমৰ বাবে আৰ্থিক অনুদান দি আছোঁ। দুটা মাহ তাত মই সেৱা কৰিবলৈ পাম। সেয়ে খুব ভাল লাগিব। বছেৰেকত এবাৰকৈ মই আপোন অনুষ্ঠানটোলৈ যাওঁ।" (পৃঃ-৩৩)

বৰাই ৫ জুলাইৰ **"অসম দিৱস"** উপলক্ষে আমেৰিকাত অনুষ্ঠিত সন্মিলত **সন্মিলিত অতিথিৰ ভাষণ** আৰু **বিশিষ্ট অতিথিৰ ভাষণত** আগবঢ়োৱা বক্তৃতা লিখিতৰূপত গ্ৰন্থখনৰ শেষৰফালে পাঠক সমাজলৈ আগবঢ়াইছে। তেখেতে সৌভাগ্যক্ৰমে অসম দিৱসৰ সন্মিলনত আমেৰিকাৰ প্ৰবাসী অসমীয়াসকলৰ সান্নিধ্য লাভ কৰি নিজকে ধন্য মানিছে। আমেৰিকাৰ প্ৰবাসী অসমীয়াসকলে বৰাক যি শ্ৰদ্ধা, মৰম আৰু সন্মান যাচিছে সেয়াই জন্মভূমিৰ প্ৰতি থকা অকৃত্ৰিম মৰমৰ স্বাক্ষৰ বহন কৰে। বৰাই এই সন্মিলনত যোগদান কৰি প্ৰতিভাশালী অসমীয়াসকলে অন্য দেশত নিজকে আত্ম প্ৰতিষ্ঠা কৰি বিদেশৰ পৰা জন্মভূমিক স্মৰণ কৰা দেখি দুঃখিত হৈ পৰিছে। জন্মভূমিয়ে তেওঁলোকৰ প্ৰতিভাক উপযুক্ত মৰ্যাদা দি নিজ দেশৰ উন্নতিত তেওঁলোকৰ বুদ্ধি আৰু সু-চিন্তাক খটুৱাব নোৱাৰা বিষয়টো অতি দুৰ্ভাগ্যজনক বুলি মন্তব্য কৰিছে। বৰাই আপ্লুত হৈ পৰিছে প্ৰবাসী আমেৰিকান অসমীয়াসকলে পৰিধান কৰা অসমীয়া পোছাক আৰু পৰিৱেশন কৰা সাংস্কৃতিক সন্ধিয়া উপভোগ কৰি। **" এই পৰিৱেশত ডাঙৰ হোৱা মোৰ মাতৃ, ভতিজা আৰু সন্তান তুল্য শিশু আৰু কিশোৰৰ দ্বাৰা অসমীয়া কলা সংস্কৃতিৰ বিবিধ গান আৰু নৃত্যৰে আয়োজন কৰিছে সাংস্কৃতিক সন্ধিয়া। এইয়া হৈছে অসমীয়া কলা সংস্কৃতিৰ সজীৱ কৰি ৰখাৰ সুন্দৰ নিদৰ্শন। আপোনালোক আই, বাই, বৌৰ, ফুলাম মুগা আৰু পাতৰ পোছাকবোৰ দেখি মই পাহৰি গৈছো এইয়া অসম নে সুদূৰ আমেৰিকা।"** (পৃঃ-১৩৩)

গ্ৰন্থখনত আগবঢ়োৱা বৰুৱাৰ মন্তব্যসমূহে তলত উল্লেখ কৰা দিশসমূহ উন্মোচিত কৰে। দিশসমূহ হৈছে এনেধৰণৰ-

(ক) প্ৰবাসী অসমীয়াসকল ব্ৰেইন-খেকইনৰ বলি হোৱাৰ কৰুণ দৃশ্য স্পৰ্শকাতৰূপত গ্ৰন্থখনত প্ৰতিফলিত হৈছে।

(খ) অসমৰ বস্ত্ৰ শিল্পই সমগ্ৰ বিশ্বত সৃষ্টি কৰিব পৰা এক উদ্যোগ অথচ স্থবিৰ হৈ থকা শোচনীয় অৱস্থাটোৰ উন্মেষ ঘটিছে।

(গ) আমেৰিকাবাসীৰ কৰ্মস্পৃহা, কৰ্মদ্যোমী মন, কৰ্মভূমিৰ প্ৰতি থকা গভীৰ প্ৰেম আৰু আন্তৰিকতাই দেশখনৰ প্ৰগতিত অৰিহণা যোগাইছে।

(ঘ) আমেৰিকাত মেধা আৰু যোগ্যতাসম্পন্ন ব্যক্তিক উপযুক্ত সা-সুবিধা প্ৰদান কৰি দেশৰ উন্নতিত চিন্তা আৰু কৰ্মৰ ব্যৱহাৰ কৰে।

(ঙ) প্ৰবাসী অসমীয়াসকলে প্ৰবাসতে অসমীয়া ভাষা, সাহিত্য, সংস্কৃতিৰ চৰ্চা কৰাৰ মধুৰ মুহূৰ্তবোৰ পাঠকসকলে হৃদয়ংগম কৰিব পাৰে।

এইদৰে গ্ৰন্থখনৰ প্ৰায় প্ৰতিটো পৃষ্ঠাতে যথেষ্ট তথ্য-সমৃদ্ধ আৰু স্পৰ্শকাতৰ বিষয় ভ্ৰমণ গ্ৰন্থখনৰ জৰিয়তে উত্থাপন কৰিছে। ভ্ৰমণৰ জৰিয়তে প্ৰত্যেক্ষ দৃষ্টিৰে অনুভৱ কৰা সকলোবোৰ অভিজ্ঞতা যৎসন্তৰ মন-চক্ষুত সাঁচি ৰাখি অভিজ্ঞতাবোৰ যাতে পাঠকসকলে পঠনৰ জৰিয়তে উপলব্ধি কৰিব পাৰে তাৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি স্পষ্ট আৰু মনোৰঞ্জনধৰ্মীৰূপত গ্ৰন্থৰ মাধ্যমেৰে উপস্থাপন কৰিছে। মুঠতে একেষাৰতে এখন উন্নত মানৰ ভ্ৰমণ গ্ৰন্থ হিচাপে "স্মৃতিপটত আমেৰিকা" গ্ৰন্থখনক মৰ্যাদা প্ৰদান কৰিব পাৰি। ❑

প্ৰসংগসূত্ৰ ঃ

মূলগ্ৰন্থ ঃ

বৰা, মহেন্দ্ৰ নাথ ঃ "স্মৃতিপটত আমেৰিকা" প্ৰথম প্ৰকাশ, গুৱাহাটী বনলতা, ১৯৯২

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

উত্তৰ-শংকৰী যুগত অসমীয়া ভাষালৈ পুৰাণৰ অনুবাদ

প্ৰিয়ংকা ভাগৱতী

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
মহাপুৰুষ শ্ৰীমন্ত শঙ্কৰদেৱ
বিশ্ববিদ্যালয়, নগাঁও, অসম-৭৮২০০১
৯১০১৮-৪৫২২৪
priyanka.bhagawati1111@gmail.com

ড° সমুজ্জ্বল শইকীয়া

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
মৰিগাঁও মহাবিদ্যালয় (স্বায়ত্তশাসিত)
মৰিগাঁও, অসম-৭৮২১০৫
৮৬৩৮৭-৮৮৭৯৬
samutjalnlc@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

উত্তৰ-শংকৰী যুগৰ কাব্য সাহিত্যৰ বেছিভাগেই আছিল অনুবাদমূলক। মহাভাৰত, ৰামায়ণ আৰু বিবিধ পুৰাণৰ অনুবাদ অসমীয়া কবিসকলে কৰিছিল। উত্তৰ-শংকৰী যুগত অসমীয়া ভাষালৈ 'শ্ৰীমদ্ভাগৱদ্ পুৰাণ', 'ব্ৰহ্মবৈৱৰ্ত্ত পুৰাণ', 'মাৰ্কণ্ডেয় পুৰাণ', 'বিষ্ণু পুৰাণ', 'বৃহন্নাৰদীয় পুৰাণ', 'পদ্মপুৰাণ', 'ধৰ্ম পুৰাণ', 'স্কন্ধ পুৰাণ', 'হৰিবংশ', 'সাত্বত তন্ত্ৰ' আদি সংস্কৃত পুৰাণসমূহৰ অনুবাদ হৈছিল। পুৰণি অসমীয়া কবিসকলে জনসাধাৰণৰ বোধগম্য হোৱাকৈ সহজ-সৰল ৰূপত পুৰাণবোৰ অনুবাদ কৰিছিল। ফলস্বৰূপে অসমৰ বহু লোকৰ ধৰ্মীয় চিন্তা-চেতনাত অনূদিত পুৰাণৰ কাহিনী আৰু ইয়াৰ আদৰ্শই প্ৰভাৱ পেলাইছিল। প্ৰাচীন কালৰেপৰা পুৰাণ সাহিত্যক অসমৰ হিন্দু ধৰ্মাৱলম্বীয় লোকে আদৰি লৈ ইয়াৰ কাহিনী আৰু আদৰ্শক দৈনন্দিন জীৱনত পালন কৰাৰ প্ৰমাণ পোৱা যায়। সাম্প্ৰতিক কালতো 'শ্ৰীমদ্ভাগৱদ্ পুৰাণ'ৰ দৰে মহাপুৰাণৰ চৰ্চা ব্যাপক ৰূপত হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। অসমত পুৰাণ অনুবাদ কৰা কবিসকলৰ ভিতৰত শংকৰদেৱ, অনন্ত কন্দলী, ভট্টদেৱ, অনিৰুদ্ধদেৱ, কেশৱচৰণ কায়স্থ, গোপালচৰণ দ্বিজ, জয়ৰাম, কলাপচন্দ্ৰ, বিষ্ণু ভাৰতী, কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্তী, ৰতিকান্ত দ্বিজ, ৰুচিনাথ কন্দলী, শিৱনাথ দ্বিজ, ভুৱনেশ্বৰ বাচস্পতি, ভাগৱত মিশ্ৰ আদি অন্যতম। এই কবিসকলে সংস্কৃত ভাষাৰ পুৰাণবোৰ অধ্যয়ন কৰিছিল আৰু সাঁচিপাতৰ পুথিৰ জৰিয়তে তাৰ অৰ্থ বা সাৰ লিখি অসমৰ জনসাধাৰণৰ বাবে প্ৰকাশ কৰিছিল। এই গৱেষণাপত্ৰত উত্তৰ-শংকৰী যুগৰ অসমীয়া ভাষালৈ অনূদিত পুৰাণ সাহিত্যৰ আভাস দিয়া হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

উত্তৰ-শংকৰী, পুৰাণ, অনুবাদ, ব্ৰহ্মবৈৱৰ্ত্ত, মাৰ্কণ্ডেয়, বিষ্ণু, বৃহন্নাৰদীয়, পদ্ম, ধৰ্ম, স্কন্ধ, হৰিবংশ, সাত্বত তন্ত্ৰ।

০.০ অৱতৰণিকা ঃ

প্ৰাক-শংকৰী যুগৰে পৰা ৰামায়ণ, ব্যাসদেৱকৃত মহাভাৰত, জৈমিনীকৃত মহাভাৰতৰ উপৰিও অন্যান্য সংস্কৃত পুৰাণ সাহিত্যৰ অনুবাদ হৈছিল। হেম সৰস্বতী, মাধৱ কন্দলীৰ পৰৱৰ্তী কালত শংকৰদেৱে শ্ৰীকৃষ্ণৰ মহত্ব প্ৰচাৰৰ উদ্দেশ্যৰে 'শ্ৰীমদ্ভাগৱদ্ পুৰাণ'ৰ ১ম, ২য়, ৬ষ্ঠ, ৮ম, ১০ম, ১১শ আৰু ১২শ স্কন্ধ অনুবাদ কৰি অসমৰ সমাজত পুৰাণ সাহিত্যক জনপ্ৰিয় কৰি তোলে। কবি অনন্ত কন্দলীয়েও 'ভাগৱত পুৰাণ'ৰ দশম স্কন্ধটো অনুবাদ কৰিছিল। উত্তৰ-শংকৰী যুগত একাধিক কবিয়ে বিভিন্ন সংস্কৃত পুৰাণ অধ্যয়ন কৰি অনুবাদ কাৰ্যত নিমগ্ন হৈছিল। কবিসকলে জনসাধাৰণৰ উপযোগী কৰি পুৰাণৰ সাৰুৱা কথাবোৰ সংক্ষিপ্তকৈ অনুবাদ কৰিছিল। অনূদিত পুৰাণসমূহে অসমৰ সমাজ জীৱনৰ ধৰ্মীয় চিন্তা-ভাৱনাত প্ৰভাৱ পেলোৱাৰ কথা অনুমান কৰিব পাৰি। অনূদিত পুৰাণৰ উপৰিও দৈত্যাৰি ঠাকুৰ, শ্ৰীৰাম আতা, গোপাল মিশ্ৰ, দ্বিজ ৰত্নাকৰ, শিৱ শৰ্মা, দ্বীন দ্বিজ, গোপালচৰণ দ্বিজ

আদি কৱিসকলে পুৰাণৰ আধাৰত নাট আৰু কাব্য ৰচনা কৰিছিল। উত্তৰ-শংকৰী যুগত অসমীয়া ভাষালৈ অনূদিত সংস্কৃত পুৰাণসমূহে অসমত পুৰাণৰ কাহিনীক জনপ্ৰিয়তা প্ৰদান কৰাৰ লগতে পুৰাণ অধ্যয়ন আৰু গৱেষণাৰ বহল পথ তৈয়াৰ কৰে।

০.১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰাৰ প্ৰধান উদ্দেশ্য হৈছে —

(১) উত্তৰ-শংকৰী যুগৰ পুৰাণ সাহিত্য আৰু ইয়াৰ অনুবাদকসকলৰ সমীক্ষাত্মক আলোচনা কৰা।

(২) উত্তৰ-শংকৰী যুগৰ পুৰাণ সাহিত্যৰ বিভিন্ন দিশ প্ৰকাশ কৰি অধ্যয়ন আৰু গৱেষণাৰ বাট মুকলি কৰা।

০.২ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হৈছে। উত্তৰ-শংকৰী যুগত অসমীয়া ভাষালৈ অনুবাদ হোৱা পুৰাণ আৰু পুৰাণ অনুবাদকৰ সমীক্ষা কৰি বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰে গৱেষণাপত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰা হৈছে।

০.৩ গৱেষণা পত্ৰৰ পৰিসৰ ঃ

উত্তৰ-শংকৰী যুগত অসমীয়া ভাষালৈ অনুবাদ হোৱা 'শ্ৰীমদ্ভাগৱদ্ পুৰাণ', ' ব্ৰহ্মবৈৱৰ্ত্ত পুৰাণ', 'মাৰ্কণ্ডেয় পুৰাণ', 'বিষ্ণু পুৰাণ', 'বৃহন্নাৰদীয় পুৰাণ', 'পদ্মপুৰাণ', 'ধৰ্ম পুৰাণ', 'স্কন্ধ পুৰাণ', 'হৰিবংশ', 'সাত্বত তন্ত্ৰ' আদি পুৰাণসমূহক গৱেষণাপত্ৰৰ পৰিসৰত সামৰা হৈছে।

১.০ 'শ্ৰীমদ্ভাগৱদ্ পুৰাণ'ৰ অনুবাদ ঃ

সংস্কৃত ওঠৰ পুৰাণৰ ভিতৰ 'শ্ৰীমদ্ভাগৱদ্ পুৰাণ' অন্যতম। 'শ্ৰীমদ্ভাগৱদ্ পুৰাণ'ৰ সাৰ্থক অনুবাদ অসমীয়া ভাষাত প্ৰথমে শংকৰদেৱে কৰাৰ পিছতে একাধিক কৱিয়ে ভাগৱত পুৰাণৰ বিভিন্ন স্কন্ধ অনুবাদ কৰে। পুৰণি অসমীয়া কৱিসকলে কেৱল পুৰাণৰ অনুবাদ কৰাই নহয়; পুৰাণৰ কাহিনীৰ আধাৰত মৌলিক কাব্য আৰু নাটকো ৰচিছিল। উত্তৰ-শংকৰী কালত 'শ্ৰীমদ্ভাগৱদ্ পুৰাণ'ৰেই অনুবাদ সবাতোকৈ বেছি হোৱা দেখা যায়। যিহেতু শংকৰদেৱে ওঠৰ পুৰাণৰ ভিতৰত ভাগৱত পুৰাণকে অগ্ৰাধিকাৰ দি ইয়াৰ ভিত্তিতেই অসমত নৱবৈষ্ণৱ আন্দোলন গঢ়ি তুলিছিল।

শংকৰদেৱৰ পৰৱৰ্তী কালত অসমত ভাগৱত পুৰাণ অধ্যয়ন কৰা লোকৰ সংখ্যা বৃদ্ধি হোৱাত ভাগৱত পুৰাণৰ কাহিনীৰ আলমত কাব্য, নাট, গীত আদিও ৰচিত হয়। সংস্কৃত ভাগৱত অসমত ইমান জনপ্ৰিয় হৈ পৰে যে ভট্টদেৱে ভাগৱতখন চমুকৈ গদ্যত অনুবাদ কৰি জনসাধাৰণক সুকীয়া সোৱাদ দিছিল।

উত্তৰ-শংকৰী যুগত সংস্কৃত 'শ্ৰীমদ্ভাগৱদ্ পুৰাণ'ৰ খণ্ড একাধিক কৱিয়ে পদত অনুবাদ কৰি গৈছে। অনিৰুদ্ধদেৱে চতুৰ্থ আৰু পঞ্চম স্কন্ধ; শ্ৰীহৰিদাসে তৃতীয় আৰু পঞ্চম স্কন্ধ; কেশৱচৰণ কায়স্থই সপ্তম, অষ্টম আৰু নৱম স্কন্ধ; গোপালচৰণ দ্বিজে তৃতীয় আৰু অষ্টম স্কন্ধ। শ্ৰীহৰিদাসে তৃতীয় স্কন্ধ, পঞ্চম স্কন্ধ; কেশৱচৰণ কায়স্থই সপ্তম, অষ্টম, নৱম স্কন্ধ; জয়ৰাম, কলাপচন্দ্ৰ, বিষ্ণু ভাৰতী, অনিৰুদ্ধদেৱ আৰু শ্ৰীচন্দ্ৰদেৱে চতুৰ্থ স্কন্ধ; শ্ৰীচন্দ্ৰদেৱে চতুৰ্থ স্কন্ধৰ 'পৃথু বংশ কথন', 'ৰুদ্ৰৰ নাৰায়ণ স্তৱ', 'শিৱৰ কৃষ্ণৱ ৰূপ বৰ্ণন', 'যোগাযোগ স্ত্ৰোত্ৰ' অংশ; নিত্যানন্দদেৱে অষ্টম স্কন্ধৰ 'মৎস্য চৰিত্ৰ' অংশ; কমললোচনে অষ্টম স্কন্ধৰ 'মৎস্য অৱতাৰ কথন' অংশ অনুবাদ কৰিছে।

অসমীয়া ভাষাত গদ্যত 'শ্ৰীমদ্ভাগৱদ্ পুৰাণ' প্ৰথমে অনুবাদ কৰে ভট্টদেৱে। গুৰু দামোদৰদেৱৰ আজ্ঞা অনুসৰি ভট্টদেৱে সংক্ষিপ্তকৈ ভাগৱত অনুবাদ কৰে। ভট্টদেৱে ভাগৱত সংক্ষিপ্ত আৰু সৰলকৈ অনুবাদ কৰাৰ ক্ষেত্ৰত দামোদৰদেৱে বহুতো দিহা-পৰামৰ্শ দিয়াৰ কথা জনা যায়। দামোদৰদেৱৰ নীতি-নিৰ্দেশনা মানি ভট্টদেৱে ১৫৯৩ৰ পৰা ১৫৯৭ খৃষ্টাব্দৰ ভিতৰত 'কথা-ভাগৱত' সম্পূৰ্ণ কৰে। ভট্টদেৱে ভাগৱতৰ শ্লোক ভাঙনি কৰোঁতে শ্ৰীধৰ স্বামীৰ টীকাৰ সহায় লৈছে। সহজসাধ্য কৰিবৰ কাৰণে তেওঁ পাৰেমানে যত্ন কৰিছে। কিন্তু মহেশ্বৰ নেওগে কৈছে যে— *"কম কথাৰ ভিতৰত তেওঁ বহুতো তত্ত্ব সামৰিবলগা হোৱা বাবে তেওঁৰ লেখাৰ অৰ্থ উপলব্ধি কৰাত পাঠকৰ স্বাভাৱিকতে বেগ পৰিব।"*[১]

'সতীৰ চৰিত্ৰ' নামৰ এখন পুথি কলাপচন্দ্ৰৰ নামত পোৱা যায়। এইখনি চতুৰ্থ স্কন্ধৰপৰা দশম অধ্যায়লৈকে ভাগৱত পুৰাণৰ অন্তৰ্গত পয়াৰ কাব্য আৰু ২২৯ টা পদত পুথিখনি সমাপ্ত হৈছে। কবি কলাপচন্দ্ৰই নৃপতি চূড়ামণি নৰনাৰায়ণৰ প্ৰশস্তিবচন কৰি ৰাজ প্ৰসাদত অনুবাদ কৰাৰ কথা স্বীকাৰ কৰিছে। দক্ষযজ্ঞত স্বামী শিৱক কৰা অপযশৰ বাবে সতীৰ আত্মহনন, বীৰভদ্ৰৰ দ্বাৰা দক্ষবধ, দেৱতাসকলৰ অনুৰোধত দক্ষৰ পুনৰ্জন্ম, ইত্যাদি 'সতীৰ চৰিত্ৰ' অংশটোত বৰ্ণিত হৈছে। কাব্যখনত কৈলাশৰ বৰ্ণনা মনোৰমকৈ কৰিছে। কলাপচন্দ্ৰ দ্বিজে 'পৃথুৰ চৰিত্ৰ' নামৰ পুথি এখনিও লিখিছিল।

২.০ 'ব্ৰহ্মবৈৱৰ্ত্ত পুৰাণ'ৰ অনুবাদ ঃ

সংস্কৃত মহাপুৰাণ 'ব্ৰহ্মবৈৱৰ্ত্ত পুৰাণ'ত ১৮০০০ শ্লোক আছে। অধ্যায় সংখ্যা এশ তেত্ৰিশটা। পুৰাণখন চাৰিটা খণ্ডত বিভক্ত— ব্ৰহ্ম-খণ্ড, প্ৰকৃতি-খণ্ড, গণেশ-খণ্ড আৰু কৃষ্ণ-খণ্ড। কৃষ্ণৰ ৰূপ, মহিমা বৰ্ণোৱাই হৈছে 'ব্ৰহ্মবৈৱৰ্ত্ত পুৰাণ'ৰ মুখ্য উদ্দেশ্য। উত্তৰ-শংকৰী যুগৰ কেইবাজনো কবিয়ে দৰঙী ৰজা হয়নাৰায়ণৰ দিনত এই পুৰাণখনৰ খণ্ড অনুবাদ কৰিছে। 'ব্ৰহ্মবৈৱৰ্ত্ত পুৰাণ'ৰ অনুবাদকসকল হৈছে — কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্তী (কৃষ্ণজন্ম খণ্ড), বলোৰাম দ্বিজ (কৃষ্ণজন্ম খণ্ডৰ একাংশ),

দুৰ্গেশ্বৰ দ্বিজ (প্ৰকৃতি খণ্ড), ৰতিকান্ত দ্বিজ (ব্ৰহ্ম খণ্ড, প্ৰকৃতি খণ্ড, গণেশ খণ্ড আৰু কৃষ্ণ খণ্ডৰ একাংশ); নন্দেশ্বৰ দ্বিজ, নৰোত্তম দ্বিজ, খৰ্গেশ্বৰ দ্বিজ (এই তিনিওজন কবিয়ে কৃষ্ণজন্ম খণ্ডৰ বাকী অংশ অনুবাদ কৰিছে)।

ৰতিকান্ত দ্বিজে 'ব্ৰহ্মবৈৱৰ্ত্ত পুৰাণ'ৰ প্ৰথম তিনিটা খণ্ড আৰু কৃষ্ণজন্ম-খণ্ডৰ একাংশ পদ্যত অকলেই অনুবাদ কৰিছে। দৰঙী ৰজা হয়নাৰায়ণে কবিক 'ব্ৰহ্মবৈৱৰ্ত্ত পুৰাণ' অনুবাদ কৰিবলৈ অনুপ্ৰেৰণা যোগাইছিল। 'ব্ৰহ্মবৈৱৰ্ত্ত পুৰাণ'ৰ বাকীখিনি সম্পূৰ্ণ কৰে নন্দেশ্বৰ দ্বিজ, খৰ্গেশ্বৰ দ্বিজ আৰু নৰোত্তম দ্বিজে। দৰঙী ৰজা হৰনাৰায়ণৰ আদেশত এই চাৰিওজনে 'ব্ৰহ্মবৈৱৰ্ত্ত পুৰাণ' অনুবাদ কৰে। পুথিখন অনুবাদ কৰি সম্পূৰ্ণ কৰে ১৭৯৫ খ্ৰীষ্টাব্দত। দুৰ্গেশ্বৰ দ্বিজে ব্ৰহ্মবৈৱৰ্ত্ত-পুৰাণৰ প্ৰকৃতি-খণ্ডটো অসমীয়ালৈ অনুবাদ কৰিছে। সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই 'অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত' গ্ৰন্থত যশোধৰ দ্বিজ নামৰ এজনে প্ৰকৃতি-খণ্ডৰ মনসা আখ্যানটো অনুবাদ কৰিছিল বুলি কৈছে। বলৰাম দ্বিজ নামৰ এগৰাকী কবিয়েও 'ব্ৰহ্মবৈৱৰ্ত্ত-পুৰাণ'ৰ 'কৃষ্ণজন্ম খণ্ড'ৰ অংশ ১৭৩০ শকত অনুবাদ কৰি সম্পূৰ্ণ কৰিছিল।

খ্ৰীষ্টীয় অষ্টাদশ শতিকাৰ প্ৰথমাৰ্ধৰ কবি কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্তীয়ে শিৱসিংহ আৰু ৰাণী প্ৰমথেশ্বৰীৰ আদেশত 'ব্ৰহ্মবৈৱৰ্ত্ত পুৰাণ'ৰ কৃষ্ণজন্ম খণ্ডটো অনুবাদ কৰে। কবিয়ে মূলৰ সকলো কথা অনুবাদত ৰাখিছে। কৃষ্ণৰ জন্মৰপৰা বৈকুণ্ঠ প্ৰয়াণলৈকে আভাস ইয়াত আছে। ৰাধা-কৃষ্ণৰ প্ৰেমৰ চিত্ৰ, ৰাসলীলা বৰ্ণনাত কবিয়ে অধিক গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছে। ৰাধা-কৃষ্ণৰ প্ৰেমৰ চিত্ৰ ইয়াত কামোদ্দীপক হৈ উঠিছে। কৃষ্ণ খণ্ডৰ অনুবাদত এনে কামোদ্দীপক প্ৰেমৰ চিত্ৰ দেখি হৰিনাথ শৰ্মা দলৈয়ে বুলিছে *"হয়তো পৃষ্ঠপোষক ৰজা-ৰাণী, আন আন সভাসদ আৰু বৈষয়িক আনন্দৰ মাজত বিহাৰ কৰা ডা-ডাঙৰীয়াসকলৰ মনৰ খোৰাক যোগোৱাৰ উদ্দেশ্যেই কবিয়ে এই খণ্ড ৰচনা ইন্দ্ৰিয়লিপ্সাৰ পৰিপূৰক হোৱা অনুপাতে জাতিষ্কাৰ কৰি তুলিছে"।* [২]

৩.০ 'মাৰ্কণ্ডেয় পুৰাণ'ৰ অনুবাদ ঃ

উত্তৰ-শংকৰী যুগৰ কেইবাগৰাকীও কবিয়ে শাক্তধৰ্মীয় 'মাৰ্কণ্ডেয় পুৰাণ'ৰ বিভিন্ন অংশৰ অনুবাদ কৰিছে। পীতাম্বৰ দ্বিজে খ্ৰীষ্টিয় ষোড়শ শতিকাৰ মধ্যভাগতে যুৱৰাজ সমৰসিংহৰ পৰামৰ্শমতে সংস্কৃত শাক্ত গ্ৰন্থ 'মাৰ্কণ্ডেয় পুৰাণ'ৰ অন্তৰ্গত শ্ৰীশ্ৰীচণ্ডী পদত অনুবাদ কৰে। মহেশ্বৰ নেওগে পুথিখন ১৪৫২ শকমানৰ বুলি অনুমান কৰিছে আৰু মহাৰাজ নৰনাৰায়ণৰ ৰাজত্বৰ আদি ভাগত ৰচিত হৈছে বুলিছে। কোচবিহাৰৰ ৰাজকীয় পুথিভঁৰালত পোৱা এটি প্ৰতিলিপিত 'মাৰ্কণ্ডেয় চণ্ডী'ৰ ৰচনাকাল লিখা হৈছে এইদৰে — "বেদ পক্ষ বাণ আৰু শশাঙ্ক শকত।" এই মতে হ'লে পুথিৰ ৰচনা কাল ১৫২৪ শক (১৬০২ খ্ৰী.) হয়। পুথিৰ নকলকাৰে লেখক পীতাম্বৰ সিদ্ধান্তবাগীশ বুলিও লিখিছে। সমৰ সিংহৰ দিনত, ৰজাৰ কথা মানি ৰচিছে কাৰণে পুথিৰ পদত সমৰ সিংহৰ নাম আছে। সংস্কৃত 'মাৰ্কণ্ডেয় পুৰাণ' এখন মহাপুৰাণ। ইয়াৰ শ্লোকৰ সংখ্যা ৯০০০ আৰু অধ্যায় ১৩৭ টা। ইয়াৰপৰাই দেৱী মাহাত্ম্যৰ কথা লৈ অসুৰ চণ্ডীৰ বধৰ কথাখিনি পীতাম্বৰে দ্বিজে অনুবাদ কৰিছে। *"শ্ৰীশ্ৰীচণ্ডীৰ, বিশেষকৈ অসুৰ-বধ-আখ্যানৰ বৰ্ণনাসমূহত কবিৰ কাব্যিক-প্ৰতিভা লক্ষণীয়, ইয়াত মুকলি অনুবাদ ৰীতিয়ে কবি প্ৰতিভাৰ বিশেষত্ব প্ৰদৰ্শন কৰিছে।"*[৩] উল্লেখনীয় যে, পীতাম্বৰ দ্বিজেই হৈছে সংস্কৃত সাহিত্যৰপৰা প্ৰথম অসমীয়া শাক্ত সাহিত্যৰ অনুবাদক। এওঁ হৈছে অসমীয়া শাক্ত গ্ৰন্থৰ অনুবাদৰ বাট দেখুৱাওতা।

ৰুচিনাথ কন্দলী অষ্টাদশ শতিকাৰ আহোম ৰজা ৰাজেশ্বৰ সিংহৰ ৰাজত্ব কালৰ কবি আছিল। তেখেতে 'মাৰ্কণ্ডেয় পুৰাণ'ৰ শ্ৰীশ্ৰীচণ্ডীৰ অসমীয়া পদানুবাদ কৰে। অৱশ্যে শ্ৰীশ্ৰীচণ্ডী মূলৰ অবিকল অনুবাদ নহয়। দেৱী মাহাত্ম্যৰ ঘটনাক্ৰমৰ সঙ্গতি ৰক্ষা কৰি ইয়াত কবিয়ে 'কালিকা-পুৰাণ', 'বামন পুৰাণ', 'মাৰ্কণ্ডেয় পুৰাণ' আৰু 'ব্ৰহ্মবৈৱৰ্ত্ত পুৰাণ' আদিৰ কথাও আনিছে। "মিসলাই পূৰ্ব্বকবি পথ অনুসৰি।" উগ্ৰচণ্ডা, ভদ্ৰকালী আৰু দশভূজা দুৰ্গাদেৱীৰ এই তিনিজন্মৰ আখ্যান *কালিকা-পুৰাণ*ৰ পৰা ৰুচিনাথ কন্দলীয়ে তেওঁৰ ৰচনাৰ অন্তৰ্ভুক্ত কৰিছে। ৰম্ভাসুৰৰ তপস্যা, শিৱৰপৰা তেওঁৰ বৰলাভ, মহিষাসুৰৰ জন্মাদি আৰু লগতে শুম্ভ-নিশুম্ভ নামৰ ৰক্তবীজৰ আখ্যান বামন-পুৰাণৰ আখ্যানৰ আধাৰত প্ৰতিষ্ঠিত। *শ্ৰীশ্ৰীচণ্ডীৰ মূল-চৰিত্ৰ সুৰথৰ পূৰ্বপুৰুষসকলৰ পৰিচয়মূলক কথাখিনি 'ব্ৰহ্মবৈৱৰ্ত্ত-পুৰাণ'ৰ পৰা কবিয়ে আহৰণ কৰিছে। আকৌ, ধৰ্মপক্ষী চাৰিটাৰ আখ্যানভাগ তেওঁ মাৰ্কণ্ডেয়-পুৰাণৰ পৰা গ্ৰহণ কৰিছে। গতিকে ক'বপৰা যায়—ৰুচিনাথ কন্দলীয়ে বিভিন্ন পুৰাণৰপৰা কথাবস্তু সংগ্ৰহ কৰি তেওঁ শ্ৰীশ্ৰীচণ্ডী সমৃদ্ধ আৰু পৰিপুষ্ট কৰি তুলিছে। তেওঁৰ অনুবাদকৃতিৰ কোনো অংশ মূলানুগ, কোনো অংশ বিস্তৃত আৰু কোনো কোনো অংশ সংক্ষিপ্ত অথচ ভাবপ্ৰবাহক।* [৪]

পণ্ডিত হেমচন্দ্ৰ গোস্বামীয়ে ৰুচিনাথ কন্দলীৰ এই পুথিখনিৰ সন্দৰ্ভত 'চণ্ডী' নামৰ এটা প্ৰবন্ধও 'ঊষা' আলোচনীত লিখিছিল। তাত তেওঁ লিখিছে — *"আমি পণ্ডিত শ্ৰীযুত গৌৰীদত্ত মিশ্ৰ বিদ্যাভূষণৰ পৰা মাৰ্কেণ্ডেয় পুৰাণৰ অন্তৰ্গত দেৱী মাহাত্ম্য বা চণ্ডীৰ অসমীয়া ভাঙ্গনি এখনি পাইছোঁ। পুথিখনিত ২৫ টা পাত আছে; আৰু অসমীয়া পদত লিখা। আমাৰ হাতত এই পুথিখনি পৰাৰ আগেয়ে আমাৰ ভাষাত*

চণ্ডীৰ ভাঙ্গনি আছে বুলি আমি জনা নাছিলোঁ। ...এই চণ্ডী ৰুচিনাথ কন্দলীয়ে অসমীয়া পদলৈ ভাঙ্গে।"[৫] তেওঁ এইখন পুথি ১৬৮১ শকত (১৭৫৯ চন) ৰচিছে বুলি অনুমান কৰিছে।

কবি শিৱনাথ দ্বিজে ১৬৬৭ শকত 'মাৰ্কণ্ডেয় পুৰাণ'ৰ অংশ শ্ৰীশ্ৰীচণ্ডী অংশৰ পদ্যানুবাদ কৰে। এই অনুবাদ পুথিত তিনিটা আখ্যান পোৱা যায় — মধুকৈটভ-বধ, মহিযাসুৰ-বধ আৰু শুম্ভ-নিশুম্ভ-বধ। শুম্ভ-নিশুম্ভ-বধত কবিৰ বিস্তৃত-ৰূপায়ণত দিয়া মনোনিবেশ লক্ষণীয়। শিৱনাথ দ্বিজৰ কাব্যিক প্ৰতিভা 'শ্ৰীশ্ৰীচণ্ডী' পুথিয়ে দাঙি ধৰিছে।

আন এগৰাকী কবি ৰঙ্গনাথ দ্বিজেও 'মাৰ্কণ্ডেয় পুৰাণ'ৰ শ্ৰীশ্ৰীচণ্ডী অংশ অনুবাদ কৰিছিল। অনুবাদত কবিৰ মৌলিকতা আছে। অনুদিত পুথিৰ প্ৰায়ভাগ মূলানুগ, ভাষা লালিত্যপূৰ্ণ আৰু অৰ্থব্যঞ্জক। 'মাৰ্কণ্ডেয় পুৰাণ'ৰ শ্ৰীশ্ৰীচণ্ডীৰ অনুবাদ মধুসূদন মিশ্ৰ নামৰ এজনেও কৰিছিল বুলি সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই কৈছে।

৪.০ 'বিষ্ণুপুৰাণ'ৰ অনুবাদ ঃ

উত্তৰ-শংকৰী যুগত বৈষ্ণৱধৰ্মীয় 'বিষ্ণুপুৰাণ' কেইবাজনো কবিয়ে অনুবাদ কৰিছে। তাৰ ভিতৰত এজন হৈছে ভাগৱত মিশ্ৰ। এওঁ হৈছে বিষ্ণুপুৰাণৰ প্ৰথমজন অসমীয়া অনুবাদক। ভাগৱত মিশ্ৰই 'সাত্বত তন্ত্ৰ' নামৰ পুথিখনিৰো ৰচক। এওঁৰ গুৰু দামোদৰদেৱ। কিয়নো বিষ্ণুপুৰাণৰ ভাঙনিত দামোদৰদেৱক 'মোৰ নিজ গুৰু' বুলিছে। শৰৎচন্দ্ৰ গোস্বামীয়ে এওঁৰ প্ৰকৃত নাম ৰঘুনাথ মিশ্ৰ বুলি কৈছে। শিৱনাথ বৰ্মনে 'বিষ্ণুপুৰাণ' খনি ভাগৱত মিশ্ৰই সম্পূৰ্ণকৈ অনুবাদ কৰিছিল নে, নে অংশবিশেষ অনুবাদ কৰিছিল, সেয়া জনা নাযায় বুলি কৈছে। হেমচন্দ্ৰ গোস্বামীৰ 'অসমীয়া সাহিত্যৰ চানেকী'ত ভাগৱত মিশ্ৰৰ 'বিষ্ণুপুৰাণ'ৰ যমৰ নগৰৰ বৰ্ণনা আৰু নৰকৰ বৰ্ণনা পোৱা যায়। ভাগৱত মিশ্ৰই সোতৰ শতিকাৰ আদি ভাগত ইয়াক সমাপন কৰে বুলি সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই মতপোষণ কৰিছে।

পৰশুৰাম দ্বিজ নামৰ আন এগৰাকী কবিয়ে 'বিষ্ণুপুৰাণ' খনি সম্পূৰ্ণকৈ অনুবাদ কৰিছিল। বাণীকান্ত কাকতীয়ে 'এছ্‌পেক্টছ্ অব্ আৰলি আছামিজ লিটাৰেশ্যাৰ' গ্ৰন্থত কৈছে যে, ১৮৩৬ চনত পৰশুৰাম দ্বিজে তেজপুৰৰ চন্দ্ৰসেন নামৰ এজন লোকৰ অনুপ্ৰেৰণাত এই পুৰাণখন অনুবাদ কৰে। উত্তৰ-শংকৰী যুগত ৰামগোবিন্দ নামৰ এজন লোকে পুৰাণ কথাৰ আলমত 'বিষ্ণু-পুৰাণ' পুথিখনি লিখিছিল বুলি দেৱেন্দ্ৰনাথ বেজবৰুৱাই অনুমান কৰিছে।

৫.০ 'বৃহন্নাৰদীয় পুৰাণ'ৰ অনুবাদ ঃ

ভুৱনেশ্বৰ বাচস্পতি নামৰ এজন লেখকে 'বৃহন্নাৰদীয় পুৰাণ' খন অসমীয়া ভাষালৈ অনুবাদ কৰিছিল। কছাৰী ৰজা তাম্ৰধ্বজৰ পুতেক সুৰদৰ্পনাৰায়ণ আৰু মাক চন্দ্ৰপ্ৰভাৰ আদেশত 'বৃহন্নাৰদীয় পুৰাণ' খন ভুৱনেশ্বৰ বাচস্পতিয়ে অনুবাদ কৰে। অনূদিত পুথিখনি নগাঁৱৰ ৰহা অঞ্চলৰ লোক এজনৰ ঘৰৰ পৰা উদ্ধাৰ হৈছিল। ইয়াত বৈষ্ণৱ মাৰ্গ, বিষ্ণু ভক্তি, বৈষ্ণৱ ব্ৰত, উৎসৱ আদি প্ৰকাশ হৈছে। কবিয়ে অনুবাদ কৰা পুথিক 'নাৰদীয় কথামৃত' বুলিছে।

৭.০ ধৰ্মপুৰাণৰ অনুবাদ ঃ

উত্তৰ-শংকৰী যুগত ধৰ্মপুৰাণৰ অনুবাদো অসমীয়া ভাষালৈ হৈছিল। 'ধৰ্ম পুৰাণ' হৈছে এখনি উপ-পুৰাণ। শিৱসিংহ, ৰাণী অম্বিকাদেৱী আৰু পুত্ৰ উগ্ৰসিংহৰ ইচ্ছানুসৰি কবিচন্দ্ৰ দ্বিজে 'ধৰ্ম পুৰাণ' ১৭৩৫ চনত অনুবাদ কৰিছিল। পুথিখনি নকল কৰে বধ নামৰ এজন লেখকে। পুথিখনি সচিত্ৰ। শ্ৰাদ্ধ-তৰ্পন, ব্ৰত-উপবাস তথা ধৰ্ম সম্বন্ধীয়, গাৰ্হস্থ্য সম্বন্ধীয় কথা ইয়াত পোৱা যায়। সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই লিখিছে — *"ধৰ্ম পুৰাণত সাহিত্যিক বা কাব্যিক সৌন্দৰ্য বিশেষ নাই; কিন্তু অনুবাদকৰ সৰলভাৱে প্ৰকাশ কৰিবপৰা পাণ্ডিত্যই আৰু ছন্দৰ নিমজ গতিয়ে পুৰাণখন সুপাঠ্য কৰি তুলিছে।"*[৬]

শংকৰোত্তৰ যুগত কেইবাজনো লেখকে 'ধৰ্ম পুৰাণ' অনুবাদ কৰিছে। কোচ ৰজাৰ ৰাজত্বকালত দ্বিজ ৰামানন্দ নামৰ এজনে 'ধৰ্ম-পুৰাণ' (স্যামন্তক-হৰণ) ভাঙনি কৰিছিল। আন এজন কবি লক্ষীকান্ত দ্বিজেও 'ধৰ্ম-পুৰাণ'ৰ পদৰপৰা পুথি এখনি লিখিছিল বুলি মহেশ্বৰ নেওগে কৈছে। পুথিখনি বৰপেটাৰপৰা পোৱা গৈছিল। পদৰ মাজত 'পদ্মপুৰাণ', 'নামমালিকা' আৰু শংকৰদেৱৰ কথাও আছে বুলিছে। ঊনবিংশ শতিকাৰ আদিভাগত পৰশুৰাম দ্বিজে চন্দ্ৰসেন নামৰ এজন লোকৰ অনুপ্ৰেৰণাত 'ধৰ্ম পুৰাণ' অনুবাদ কৰে।

৮.০ হৰিবংশ ঃ

'শ্ৰীমদ্ভাগৱদ্ পুৰাণ'ৰ তৃতীয় স্কন্ধ আৰু অষ্টম স্কন্ধৰ পদ ভাঙনি কৰা গোপালচৰণ দ্বিজে 'হৰিবংশ', 'শ্ৰীমদ্ভাগৱদ্ পুৰাণ', 'বিষ্ণু পুৰাণ'ৰ কথা মিলাই 'হৰিবংশ' নামৰ এখন অনুবাদমূলক পুথি ৰচনা কৰিছিল। 'হৰিবংশ'ত পাৰিজাত হৰণৰ কথা পোৱা যায়। চৰিত্ৰ, পৰিস্থিতি আদিৰ অংকনত শংকৰদেৱৰ নাটৰ প্ৰভাৱো ইয়াত পৰিছে। হেমচন্দ্ৰ গোস্বামীৰ 'অসমীয়া সাহিত্যৰ চানেকী' পুথিত গোপালচৰণ দ্বিজৰ 'হৰিবংশ'ৰ পদ সন্নিৱিষ্ট হৈছে।

বিদ্যাচন্দ্ৰ কবিশেখৰ ভট্টাচাৰ্যই "ৰাজেশ্বৰসিংহ নৰপতিৰ (১৭৫১-৬৯) তনয় মহামতি চাৰুসিংহ আৰু তেওঁৰ দ্ৰুপদ-দুহিতা-সদৃশ পত্নী প্ৰেমদাৰ আজ্ঞা-মুক্তামালা শিৰে ধৰি 'হৰিবংশ' পদ নিবন্ধ কৰে" বুলি মহেশ্বৰ নেওগে কৈছে। এই পুথিত কবিয়ে নানা কথা মিশ্ৰণ কৰি কৃষ্ণ আৰু ৰাধাৰ কেলি-

বিলাস মুকলিকৈ প্ৰকাশ কৰিছে। পুথিখনিৰ ঠায়ে ঠায়ে ৰুচিৰ সংযম ৰক্ষা হোৱা নাই। সেয়ে সেই সময়ৰ এখনি শৃঙ্গাৰ-প্ৰধান সাহিত্যৰ প্ৰতিনিধিত্বমূলক ৰচনা বুলি 'হৰিবংশ'ক কৈছে। বিদ্যাশেখৰ নামৰ এগৰাকী অনুবাদকে অনুবাদ কৰা হৰিবংশৰ 'বিষ্ণুপৰ্ব'হে এতিয়ালৈকে পোৱা গৈছে। মূলত ৰাধা চৰিত্ৰৰ বিষয়ে নাই যদিও কবিশেখৰৰ অনুবাদত ৰাধা চৰিত্ৰই ঠাই পাইছে।

সপ্তদশ শতিকাত ভবানন্দ নামৰ এজন লোকে 'হৰিবংশ'ৰ একাংশ অনুবাদ কৰিছিল। ৰাধা-কৃষ্ণৰ প্ৰেম-লীলা আৰু শৃঙ্গাৰ-ৰস প্ৰধান কাহিনী ইয়াত পোৱা যায়। এইখনি সংস্কৃত হৰিবংশৰ অনুবাদ নহয়। এই *"কাব্যখনত যেনেকৈ লৌকিক ৰাধা-চৰিত্ৰৰ বিভিন্ন ৰূপৰ প্ৰকাশ দেখা পোৱা যায়, তাৰ কবিত্বতো সেইদৰে লোক-গীতিৰ স্পৰ্শ মাজে মাজে অনুভৱ কৰিব পাৰি। ৰাধাৰ অভিমান ভাঙিবলৈ কৃষ্ণই ৰাতিৰ চাৰিটা প্ৰহৰৰ এটাৰ পিছত আনটোত কৰা অনুনয় অসমীয়া বিয়ানামৰ 'প্ৰথম প্ৰহৰ ৰাত্ৰি ফুলি আছে' আদি স্তৱকটিৰ প্ৰায় আক্ষৰিক সাদৃশ্য চকুত লগা।"* [৭] এই পুথিখনিয়ে প্ৰত্ন অসমীয়া ভাষাৰ নিদৰ্শন থকা 'শ্ৰীকৃষ্ণ-কীৰ্তন'ৰ ঐতিহ্য ৰক্ষা কৰিছে বুলি কোৱা হৈছে।

ভবানন্দৰ হৰিবংশ নামৰ পুথিখন কোচবিহাৰৰ ৰাজকীয় পুথিভঁৰালত থকাৰ কথা প্ৰতাপচন্দ্ৰ গোস্বামীয়ে 'আৱাহন' আলোচনীত লিখা 'ভাটীৰ ৰংপুৰত অসমীয়া সাহিত্যৰ অনুসন্ধান' নামৰ প্ৰবন্ধত উল্লেখ কৰিছে। তেওঁ পোৱা প্ৰতিলিপিটোৰ সন্দৰ্ভত লিখিছে — "এই পুথি আধাৰুৱা। লেখকৰ নাম ভবানন্দ। ওজাপালীয়ে গাবৰ নিমিত্তে ৰাগ ৰাগিণী আৰু দিহা আছে। এই ভবানন্দ কামৰূপী মানুহ; তেওঁ ৰঘুদেৱ নাৰায়ণ ৰজাৰ পাঠক আছিল।

ৰঘুদেৱ নৃপতিৰ পাঠক ভবানন্দ।
কামৰূপ দ্বিজকুল কুমুদিনী চন্দ্ৰ।।

ভবানন্দনৰ লিখিত কোনো পুথিও ইয়াৰ আগেয়ে ওলোৱা নাই।" [৮]

৯.০ সাত্বত তন্ত্ৰ ঃ

ভাগৱত মিশ্ৰৰ 'সাত্বত তন্ত্ৰ' খনি পদানুবাদ। ইয়াৰ আন এক নাম 'নাৰদ-পঞ্চৰাত্ৰ'। *"সাত্বত শব্দৰ অৰ্থ বিষ্ণু আৰু বিষ্ণুভক্ত। যি ধৰ্ম আলোচনাপূৰ্বক বিষ্ণুভক্তসকলে কাম্য কৰ্মাদি পৰিহাৰ কৰি দাস্য সখ্যাদি ৰতি অৱলম্বনক্ৰমে শ্ৰৱণ, কীৰ্তন, স্মৰণ, বন্দন প্ৰভৃতি নৱবিধ ভক্তিৰদ্বাৰাই ভগবানক আৰাধনা কৰে, সেই ধৰ্মৰ নাম সাত্বত ধৰ্ম।"* [৯] সাত্বত শাস্ত্ৰ প্ৰাচীন কালত সংস্কৃত ভাষাতো লিখা হৈছিল। জনামতে, যদুবংশীয় অংশুৰ পুত্ৰ মহাধনুৰ্ধৰ, দানশীল, মহাপ্ৰতাপী সাত্বত ৰজাই এখন মহাশাস্ত্ৰ ৰচনা কৰিছিল। ভাগৱত শাস্ত্ৰৰো আন এক নাম হ'ল সাত্বত সংহিতা। লক্ষ্য কৰিব পাৰি যে, ভগৱান বিষ্ণু বা কৃষ্ণৰ সৈতে সাত্বত তন্ত্ৰৰ পুথিৰ সম্পৰ্ক আছে। ভাৰতীয় প্ৰান্তিয় ভাষাত ৰচিত হোৱা এই পুথিখনিতো ভক্তিতত্ব আৰু বিষ্ণু পুৰাণৰ কথা আছে। নটা পটলত পুথিখনি বিভাজিত। তিনিশ ছয়সত্তৰটা পদত ভাগৱত মিশ্ৰই পুথিখনি অসমীয়ালৈ অনুবাদ কৰিছে। 'সাত্বত-তন্ত্ৰ' পুথিৰ প্ৰথম আৰু দ্বিতীয় পটলত বিৰাট পুৰুষৰ সৃষ্টিৰ সবিশেষ কথা আছে। তৃতীয় পটলত পূৰ্ণ, অংশ, কলা প্ৰভৃতিৰ কথা বৰ্ণিত হৈছে। চতুৰ্থ পটলত ভক্তিৰ ভেদৰ কথা বৰ্ণিত হৈছে। পঞ্চম পটলত 'যুগধৰ্ম মোক্ষৰ সাধন'ৰ বৰ্ণনা কৰিছে। ষষ্ঠ পটলত 'বিষ্ণু নাম সহস্ৰেক' আৰু 'নামৰ মহিমা' বৰ্ণিত হৈছে। সপ্তম পটলত 'বিষ্ণু নাম'ৰ বত্ৰিশ অপৰাধ তথা দশ অপৰাধ, প্ৰায়শ্চিত্তৰ বিধান কাৰণবোৰ বৰ্ণনা কৰা হৈছে। অষ্টম পটলত সৰ্বহাৰ ৰহস্য নিৰূপণ কৰা হৈছে। নৱম পটলত তন্ত্ৰমতৰ বিকাশৰ কথা আছে।

এই পুথিত দিয়া আত্মপৰিচয়ৰ মতে ভাগৱত মিশ্ৰ দামোদৰদেৱৰ শিষ্য হয়। 'সাত্বত-তন্ত্ৰ' নামেৰে পুথি এখনি ভাগৱত ভট্টাচাৰ্য নামৰ এজনে ৰচনা কৰিছিল বুলি সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই কৈছে।

হেমচন্দ্ৰ গোস্বামীয়ে 'অসমীয়া পুথিৰ বৰ্ণনাত্মক তালিকা' গ্ৰন্থতো 'সাত্বত তন্ত্ৰ' নামৰ এখন পুথিৰ নাম সন্নিৱিষ্ট কৰিছে। পুথিৰ লেখকৰ নাম অজ্ঞাত। অজ্ঞাত যদিও মহেশ্বৰ নেওগে পুথিখনৰ শেষত পোৱা মনোহৰ নামটোৰ ভিত্তিত ইয়াৰ ৰচক অইন কোনোবা মনোহৰ হ'ব পাৰে বুলি অনুমান কৰিছে। এই পুথিত বিশ্বব্ৰহ্মাণ্ডৰ নিয়ন্ত্ৰকৰূপে বিৰাট পুৰুষৰ উৎপত্তিৰ বৰ্ণনা; সপ্ৰেমা, ভাগৱতী আৰু নিগুনা এই ত্ৰিবিধ ভক্তিৰ বৈশিষ্ট্য; নামৰ মহিমা আৰু অপৰাধ আদি ভক্তিৰে সৈতে সম্পৰ্কিত বিষয়বোৰ বৰ্ণনা কৰিছে। এইখন 'সাত্বত তন্ত্ৰ'তো নটা অধ্যায় আছে।

এই পুথিৰ গদ্য ভট্টদেৱৰ গদ্যৰ আদৰ্শত ৰচনা হৈছে যদিও ইয়াৰ ভাষা অধিক সৰল আৰু ইয়াত ঘৰুৱা, তদ্ভৱ শব্দৰ ব্যৱহাৰ বেছি। 'সাত্বত-তন্ত্ৰ' নামৰ পুথি এখন শৰৎচন্দ্ৰ গোস্বামীয়ে ১৯৪৩ চনত সম্পাদনা কৰি অসম সাহিত্য সভাৰপৰা প্ৰকাশ কৰিছে।

ভট্টদেৱৰ নামত 'সাত্বত তন্ত্ৰ' নামৰ অনুবাদমূলক পুথি এখনি পোৱা যায়। নাৰদৰ উপদেশ মতে যদুবংশীয় অংশুৰ পুত্ৰ মহাবলী সাত্বতৰাজে 'সাত্বত তন্ত্ৰ' প্ৰণয়ন কৰা বুলি কথিত আছে। 'সাত্বত তন্ত্ৰ'ৰ কেইবাটাও সাঁচিপতীয়া পাঠ পোৱা গৈছিল। তাৰে এটাত ভণিতা পেলাইছে দীন লক্ষ্মীনাথ নামৰ এজনে। এই পুথিৰ প্ৰতিলিপিৰ শক ১৭৬৪।

১০.০ 'যোগিনী তন্ত্ৰ'ৰ অনুবাদ ঃ

সংস্কৃত যোগিনী তন্ত্ৰ পুথিখন শংকৰোত্তৰ কালত

অসমীয়ালৈ অনুবাদ হয়। আহোম সেনাপতি কনচেং বৰপাত্ৰ গোহাঞিৰ বংশধৰ ৰামচন্দ্ৰ বৰপাত্ৰই পদত মুকলি অনুবাদ কৰে আৰু শেষ কৰে ১৬৮৬ খ্ৰীষ্টাব্দত।

ৰামচন্দ্ৰ বৰপাত্ৰই অনুবাদ কৰা যোগিনী তন্ত্ৰত এঘাৰটা খণ্ড আছে। সেইবোৰ হৈছে — জন্মখণ্ড, মুক্তিখণ্ড, সাধনখণ্ড, দৰ্শনখণ্ড, মহাত্ম্যখণ্ড, অৰ্চনাখণ্ড, স্তুতিখণ্ড, পঞ্চতীৰ্থখণ্ড, পূজাখণ্ড, উৎসৱখণ্ড, জ্ঞানখণ্ড। ৰামচন্দ্ৰ বৰপাত্ৰই বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ প্ৰভাৱত গৌৰীয়ে হাজোৰ মন্দিৰত প্ৰবেশ কৰা, মাধৱ মন্দিৰৰ আচাৰ-অনুষ্ঠান আদিৰ কথা ইয়াত লিখিছে। ডিম্বেশ্বৰ নেওগে 'কীৰ্তন-ঘোষা'ৰ অনুকৰণত ৰামচন্দ্ৰ বৰপাত্ৰই 'হয়গ্ৰীৱ-মাধৱ' নামৰ এখন পুথি পদত লিখিছিল বুলিও কৈছে। কিন্তু দুখন পুথি ৰচনা কৰা নাই; বৰং একেখনেই বুলি হৰিনাথ শৰ্মা দলৈ আদি সমালোচকে মতপোষণ কৰিছে। ❑

উপসংহাৰ ঃ

উত্তৰ-শংকৰী যুগত অসমীয়া ভাষালৈ অনূদিত পুৰাণ সাহিত্যৰ অধ্যয়নৰ অন্তত কিছুমান সিদ্ধান্ত উপনীত হ'ব পাৰি। সেইবোৰ এনেধৰণৰ —

(ক) পুৰণি অসমৰ কবিসকলে সংস্কৃত টোলত অধ্যয়ন কৰি সংস্কৃত কাব্য সাহিত্য অধ্যয়ন কৰিছিল আৰু অসমীয়া ভাষালৈ অনুবাদ কৰাত গুৰুত্ব দিছিল।

(খ) বিভিন্ন সংস্কৃত পুৰাণ অধ্যয়নৰ এক অনুকূল পৰিৱেশ অসমত গঢ়ি উঠিছিল।

(গ) সংস্কৃত পুৰাণ সাহিত্যৰ অনুবাদ কৰাৰ ফলত পুৰাণৰ কাহিনীবোৰ জনসাধাৰণে জানিব পাৰিছিল। শংকৰদেৱ, অনন্ত কন্দলী আদি প্ৰখ্যাত কবিৰ প্ৰভাৱত উত্তৰ-শংকৰী যুগৰ পুৰাণ অনুবাদসকলে পুৰাণৰ হিন্দুধৰ্মীয় কাহিনীবোৰক অসমৰ সমাজত জনপ্ৰিয় কৰি তুলিছিল।

(ঘ) উত্তৰ-শংকৰী যুগৰ কবিসকলে অসমত সংস্কৃত ভাষাৰ চৰ্চাৰ লগতে পুৰাণ চৰ্চাৰ এটা সবল পৰিৱেশ তৈয়াৰ কৰে।

প্ৰসংগ সূত্ৰ ঃ

[১] মহেশ্বৰ নেওগ, 'অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা', পৃ.৩৪
[২] হৰিনাথ শৰ্মা দলৈ 'অসমীয়া-সাহিত্যৰ পূৰ্ণ-ইতিহাস', পৃ.২৩৭
[৩] 'অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী', (তৃতীয় খণ্ড), পৃ.১০২
[৪] উল্লিখিত, পৃ.৯০-৯১
[৫] বেণুধৰ শৰ্ম্মা, 'হেমচন্দ্ৰ গোস্বামী ৰচনাৱলী', পৃ.৩৪৬-৪৭
[৬] সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মা, 'অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত', পৃ.২১৬
[৭] মহেশ্বৰ নেওগ, পূৰ্বোল্লিখিত, পৃ.২১৪
[৮] দীননাথ শৰ্ম্মা, 'আৱাহন', ৪ৰ্থ বছৰ, ১ম সংখ্যা, পৃ. ৮
[৯] শৰৎচন্দ্ৰ গোস্বামী, 'সাত্বত তন্ত্ৰ', ভুমিকা, পৃ.৪

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

গোস্বামী, শৰৎচন্দ্ৰ, 'সাত্বত তন্ত্ৰ', অসম সাহিত্য সভা, যোৰহাট
দলৈ, হৰিনাথ শৰ্মা (সম্পা.), 'কথা-ভাগৱত', পূৰ্বভাৰতী, ১৯৮৭
নেওগ, মহেশ্বৰ, 'অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা', চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, একাদশ তাঙৰণ, ২০১০
শৰ্মা, নবীন চন্দ্ৰ (সম্পা.) 'শ্ৰীশ্ৰীচণ্ডী', বাণী প্ৰকাশ, ১৯৯১
শৰ্মা, বাণীকান্ত (সম্পা.), 'অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী' (তৃতীয় খণ্ড), আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি সংস্থা, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ২০১৭
শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ, 'অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত', সৌমাৰ প্ৰকাশ, দশম সংস্কৰণ, ২০১১
শৰ্ম্মা, দীননাথ, আৱাহন', ৪ৰ্থ বছৰ, ১ম সংখ্যা
শৰ্ম্মা, বেণুধৰ (সম্পা.), 'হেমচন্দ্ৰ গোস্বামী ৰচনাৱলী', অসম সাহিত্য সভা, ১৯৭২
হাজৰিকা, পৰীক্ষিত (সম্পা.), 'শ্ৰীশ্ৰীচণ্ডী', ডালিমী প্ৰকাশন, ১৯৯৫

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

অসমীয়া মহিলা লেখকৰ আত্মজীৱনীত প্ৰতিফলিত নাৰীৰ মানসিক সংঘাত

(মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ 'আধালেখা দস্তাবেজ'ৰ বিশেষ উল্লিখনসহ)

প্ৰাৰ্থনা গগৈ
গৱেষক ছাত্ৰী, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-০১
৮১৩৩০৭০২৬৮
parthanapg1@gmail.com

ড° অম্বেশ্বৰ গগৈ
সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-০১
০৯৮৫৪০৭৪৭৭১
ambeswar.gogoi@cottonuniversity.ac.in

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

মনৰ ভাৱ-অনুভূতি প্ৰকাশৰ পৰিমাৰ্জিত আৰু মধুৰ ৰূপেই হৈছে সাহিত্য। কোনো জাতিৰ চিন্তা-ভাৱনা, কল্পনা আদৰ্শ আৰু জীৱন ধাৰণৰ পদ্ধতি আদি সাহিত্যৰ মাধ্যমেৰে প্ৰকাশ হয়। জীৱনৰ এনে এটা অংশ, এনে এক অৱস্থা, এনে এক অভিব্যক্তি নাই, যি সাহিত্যৰ মাজেৰে ৰূপায়িত হ'ব নোৱাৰে। জীৱনৰ এটা অংশ হিচাপে মানসিক সংঘাত (Trauma)কো সাহিত্যৰ অধ্যয়নৰ ভিতৰত সামৰা হৈছে। সাহিত্য আৰু মানসিক সংঘাত (Trauma)ৰ আন্তঃসম্পৰ্কৰ ফলত সাহিত্যত বিভিন্ন ট্ৰমাটিক অভিজ্ঞতা প্ৰকাশ পায়। সেয়েহে আত্মজীৱনীতো লেখকে জীৱনৰ এটা অংশ হিচাপে মানসিক সংঘাতৰ বিভিন্ন দিশবোৰক প্ৰতিফলিত কৰাৰ প্ৰয়াস কৰে।

অসমীয়া সাহিত্যলৈ আত্মজীৱনী সাহিত্যই গুৰুত্বপূৰ্ণ বৰঙণি আগবঢ়াইছে। এই ক্ষেত্ৰত নাৰী আত্মজীৱনীকাৰসকলৰ অৱদানো যথেষ্ট। সেয়েহে এই গৱেষণা পত্ৰত অসমীয়া মহিলা লেখকৰ আত্মজীৱনীত প্ৰতিফলিত নাৰীৰ মানসিক সংঘাত (Trauma)ক গৱেষণাৰ বিষয় হিচাপে বাছি লোৱা হৈছে। গৱেষণা পত্ৰখনিৰ পৰিসৰলৈ লক্ষ্য ৰাখি মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ 'আধালেখা দস্তাবেজ' আত্মজীৱনীখনকে গৱেষণাৰ মাজত সামৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

নাৰী, আত্মজীৱনী, মানসিক সংঘাত, মামণি ৰয়ছম গোস্বামী।

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

ইংৰাজী 'Trauma' শব্দটোৰ অসমীয়া প্ৰতিশব্দ হিচাপে 'মানসিক সংঘাত' পদটি ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। অতিশয় দুখজনক, নেতিবাচক তথা তীব্ৰ পৰিঘটনাজনিত মানসিক চাপ, যিবোৰৰ সৈতে মোকাবিলা কৰাটো কঠিন তথা নিয়ন্ত্ৰণৰ বাহিৰত তেনে অৱস্থাকে সাধাৰণতে মানসিক সংঘাত বা Trauma বুলি কোৱা হয়। মানসিক সংঘাত সমাজৰ বিভিন্ন কাৰকৰ পৰা সৃষ্টি হ'ব পাৰে। যিহেতু সাহিত্য হৈছে সমাজৰ দাপোনস্বৰূপ, সেয়েহে সাহিত্যৰ বিভিন্ন বিধাসমূহৰ মাজত মানসিক সংঘাতৰ প্ৰতিফলন সহজেই উপলব্ধ। সাহিত্যৰ এক অন্যতম গুৰুত্বপূৰ্ণ বিধা হৈছে- আত্মজীৱনী। আত্মজীৱনীত এজন লেখকে নিজৰ জীৱনৰ বিভিন্ন তিতা-কেহা অভিজ্ঞতা, মনৰ অৱস্থা, বিভিন্ন ঘাত-প্ৰতিঘাত, ঘটনা-পৰিঘটনা আদি দিশসমূহ কলাত্মকভাৱে উপস্থাপন কৰে। ই একধৰণৰ ব্যক্তিনিষ্ঠ সাহিত্য। ইয়াৰ মাজেদি জীৱনীকাৰৰ বাল্যকাল, যৌৱনকাল আৰু বৃদ্ধাৱস্থা আদিৰ লগতে সমকালীন সমাজখনৰ স্বৰূপো প্ৰতিফলিত হয়।

বিশ্বৰ অন্যান্য সাহিত্যৰ দৰে অসমীয়া সাহিত্যতো বিভিন্ন আত্মজীৱনী ৰচিত

হৈছে। অসমীয়া ভাষাৰ প্ৰথম পূৰ্ণাংগ আত্মজীৱনীমূলক গ্ৰন্থ হৰকান্ত শৰ্মা মজুমদাৰ বৰুৱাৰ 'সদৰামীনৰ আত্মজীৱনী' (১৯৬০) যদিও প্ৰকাশৰ দিশৰ পৰা লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ 'মোৰ জীৱন সোঁৱৰণ' (১৯৪৪) খনেই প্ৰথম। ইয়াৰ পৰৱৰ্তী সময়ত পদ্মধৰ চলিহাৰ 'জীৱন বীণাৰ সুৰ' (১৯৬৩), হৰিনাৰায়ণ দত্তবৰুৱাৰ 'জীৱন-স্মৃতি', পদ্মনাথ গোহাঁঞিবৰুৱাৰ 'মোৰ সোঁৱৰণী' (১৯৭১) আদি প্ৰকাশ পায়। এনেদৰেই অসমীয়া আত্মজীৱনী সাহিত্যই সমৃদ্ধিশালী হৈ উঠে।

তদুপৰি মহিলা লেখকৰ আত্মজীৱনীয়েও অসমীয়া সাহিত্যৰ ভঁৰাল টনকিয়াল কৰিছে। ১৯৭১ চনতে প্ৰকাশিত ৰাজবালা দাসৰ 'তিনিকুৰি দহ বছৰৰ স্মৃতি' খনেই হৈছে অসমীয়া ভাষাত মহিলা ৰচিত প্ৰথমখন আত্মজীৱনী। তেওঁৰ পিছত ১৯৭৭ চনত নলিনীবালা দেৱীৰ দ্বাৰা প্ৰকাশিত আত্মজীৱনী 'এৰি অহা দিনবোৰ', 'আগছোৱা', 'মাজছোৱা' আৰু পাছছোৱা এই তিনিটা খণ্ডত বিভক্ত। ৰাজবালা দাসৰ 'তিনিকুৰি দহ বছৰৰ স্মৃতি' আৰু নলিনীবালা দেৱী 'এৰি অহা দিনবোৰ' এই দুয়োখন আত্মজীৱনীয়ে ব্যক্তিগত জীৱন সোঁৱৰণৰ মাজেদি অসমীয়া সমাজত নাৰীৰ স্থান আৰু তাৰ ক্ৰমবিৱৰ্তনৰ পৰিচয় দঙি ধৰে। তেতিয়াৰ পৰাই সাম্প্ৰতিক সময়লৈকে কেইবাগৰাকী মহিলা লেখকৰ আত্মজীৱনীয়ে অসমীয়া সাহিত্য সমৃদ্ধিশালী কৰি তুলিছে।

'অসমীয়া মহিলা লেখকৰ আত্মজীৱনীত প্ৰতিফলিত নাৰীৰ মানসিক সংঘাত (Trauma)' শীৰ্ষক গৱেষণাপত্ৰৰ জৰিয়তে মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ আত্মজীৱনী 'আধালেখা দস্তাবেজ'ত নাৰীৰ মানসিক সংঘাত সম্পৰ্কীয় দিশসমূহ কেনেদৰে প্ৰতিফলিত হৈছে সেই সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা হ'ব।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

'অসমীয়া মহিলা লেখকৰ আত্মজীৱনীত প্ৰতিফলিত নাৰীৰ মানসিক সংঘাত (Trauma)' শীৰ্ষক বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যসমূহ নিম্নলিখিত ধৰণৰ—

(১) অসমীয়া আত্মজীৱনী আৰু অসমীয়া মহিলা লেখকৰ আত্মজীৱনী সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা।

(২) মানসিক সংঘাত (Trauma) আৰু সাহিত্যত তাৰ প্ৰতিফলন সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা।

(৩) নিৰ্বাচিত আত্মজীৱনীত প্ৰতিফলিত মানসিক সংঘাত (Trauma) সম্পৰ্কীয় দিশসমূহ ফঁহিয়াই আলোচনা কৰা।

০.৩ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

'অসমীয়া মহিলা লেখকৰ আত্মজীৱনীত প্ৰতিফলিত নাৰীৰ মানসিক সংঘাত (Trauma)' শীৰ্ষক বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ গুৰুত্বসমূহ এনেধৰণৰ—

(১) অসমীয়া সাহিত্যত মহিলা লেখকৰ আত্মজীৱনীৰ সম্পৰ্কে পূৰ্বতে গৱেষণা হৈছে যদিও নাৰীৰ মানসিক সংঘাত (Trauma)-ক কেন্দ্ৰীয় বিষয়বস্তু হিচাপে লৈ বৰ্তমানলৈকে অধ্যয়ন হোৱা নাই। সেয়েহে এই বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে।

(২) এনেধৰণৰ অধ্যয়নে সাহিত্যত মানসিক সংঘাত (Trauma) ৰ প্ৰকৃতি বা স্বৰূপ, ইয়াৰ বিভিন্ন কাৰক আৰু সমাধান আদি দিশবোৰ পাঠকৰ আগত তুলি ধৰাত সহায় কৰে। সেয়েহে এই বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব অপৰিসীম।

(৩) নিৰ্বাচিত আত্মজীৱনীখনত নাৰীৰ ওপৰত হোৱা শাৰীৰিক আৰু মানসিক নিৰ্যাতন, সামাজিক অপব্যৱহাৰ, কু-সংস্কাৰ আদিৰ বিৰুদ্ধে বলিষ্ঠ নিদৰ্শন দাঙি ধৰিছে। সেই বাবে উক্ত বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

গৱেষণা পত্ৰখনত আত্মজীৱনী আৰু তাত প্ৰতিফলিত নাৰীৰ মানসিক সংঘাত সম্পৰ্কীয় দিশসমূহৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰিবলৈ যাওঁতে বিষয়-বিশ্লেষণ আৰু ঠায়ে ঠায়ে বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.৫ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

যিহেতু অসমীয়া মহিলা লেখকৰ আত্মজীৱনীৰ পৰিসৰ অতি বিস্তৃত আৰু এখন গৱেষণা পত্ৰত সেইসমূহৰ সামগ্ৰিক অধ্যয়ন সম্ভৱ নহয়, সেয়েহে গৱেষণা কৰ্মটিৰ সীমাবদ্ধতালৈ লক্ষ্য ৰাখি মামণি ৰয়ছম গোস্বমীৰ আত্মজীৱনী 'আধালেখা দস্তাবেজ'ত প্ৰতিফলিত নাৰীৰ মানসিক সংঘাত সম্পৰ্কীয় দিশসমূহকহে গৱেষণাৰ অধ্যয়নৰ পৰিসৰৰ ভিতৰত সামৰি লোৱা হৈছে।

০.৬ তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ

গৱেষণা পত্ৰখনত 'মুখ্য' আৰু 'গৌণ' দুয়োপ্ৰকাৰৰ সমল ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। মুখ্য সমল হিচাপে মামণি ৰয়চম গোস্বামীৰ 'আধালেখা দস্তাবেজ' আত্মজীৱনীখন লোৱা হৈছে আৰু গৌণ সমল হিচাপে বিষয়ৰ সৈতে সংগতি থকা অপ্ৰকাশিত গৱেষণা গ্ৰন্থ, বিভিন্ন প্ৰাসংগিক গ্ৰন্থ, প্ৰৱন্ধ, আলোচনী, গৱেষণা পত্ৰিকাৰ লগতে অন্যান্য ৱেবচাইটৰ পৰা লাভ কৰা বিষয় সম্পৰ্কীয় বিষয় তথ্যক ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে।

১.০ মূল বিষয়ৰ বিশ্লেষণ

১.০.১ অসমীয়া আত্মজীৱনী আৰু অসমীয়া মহিলা লেখকৰ আত্মজীৱনী ঃ চমু পৰিচয়

আত্মজীৱনী হৈছে জীৱনী সাহিত্যৰ এটা ভাগ। জীৱনী আৰু আত্মজীৱনী সমগোত্ৰীয় যদিও দুয়োবিধৰ প্ৰকৃতিৰ ভিন্নতা

আছে। জীৱনীত বিষয়, ব্যক্তি আৰু গ্ৰন্থকাৰ বেলেগ। আনহাতে আত্মজীৱনীত বিষয় আৰু গ্ৰন্থকাৰ একেজনেই ব্যক্তি। গতিকে, আত্মজীৱনীৰ প্ৰকৃতি আত্মনিষ্ঠ। আনহাতে, জীৱনীত যিহেতু ব্যক্তিবিশেষৰ জীৱন কথা অন্য এজনে লিখে সেয়ে জীৱনীৰ প্ৰকৃতি বস্তুনিষ্ঠ। আত্মজীৱনী সম্পৰ্কে বিভিন্নজন পণ্ডিতে ভিন ভিন মতামত আগবঢ়াইছে—

ৰয় পাস্কেলৰ *ডিজাইন এণ্ড ট্ৰুথ ইন অট'বায়গ্ৰাফী*ৰ মতে- "নিজৰ ৰুচিক কেন্দ্ৰ কৰি লেখা আত্মজীৱনীত ব্যক্তিৰ ব্যক্তিত্বই বিশিষ্ট ৰূপ পৰিগ্ৰহণ কৰালৈকেহে বাহ্য সংসাৰৰ প্ৰয়োগ ঘটে।" (শৰ্মা ১৭৬)

ৰবীন্দ্ৰনাথ ঠাকুৰৰ মতে, "আত্মজীৱনী ব্যক্তিৰ স্মৃতিৰ সংযোগত গুঁঠি উলিওৱা জীৱন ইতিহাস নহয়। বৰং ই অজ্ঞাত চিত্ৰকৰে কল্পনা অনুসৰি তৈয়াৰ কৰা চিত্ৰ।" (দাস ১৫৭)

গোবিন্দ প্ৰসাদ শৰ্মাৰ মতে, "আত্মজীৱনী লেখকে নিজে নিজৰ বিষয়ে লিখা জীৱনী য'ত তেওঁ নিজক কেনেভাৱে যুঁজিছে তেনেভাৱে অংকন কৰিছে আৰু নিজৰ জীৱনৰ ঘটনাবোৰ যেনেভাৱে গ্ৰহণ কৰিছে সেইবোৰৰ পৰিচয় তেনেভাৱেই দিছে।" (দাস ১৫৭)

উপৰোক্ত সংজ্ঞাসমূহৰ ভিত্তিত আমি ক'ব পাৰোঁ যে, আত্মজীৱনী হৈছে সাহিত্যৰ এনে এক বিধা য'ত লেখকে নিজ জীৱন পৰিক্ৰমাৰ লগতে তেওঁৰ সমসাময়িক সমাজখনৰ বিভিন্ন দিশসমূহৰ যথাযথ চিত্ৰ অংকন কৰি পাঠকৰ সন্মুখত তুলি ধৰে।

অসমীয়া আত্মজীৱনীৰ ইতিহাস বৰ বেছি পুৰণি নহয়। ঊনবিংশ শতিকাৰ শেষাৰ্দ্ধত হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাই ৰচনা কৰা 'আত্মজীৱন চৰিত' নামৰ ৰচনাখনেই অসমীয়া সাহিত্যত আত্মজীৱনী লেখাৰ প্ৰথম প্ৰয়াস। অসমীয়া ভাষাৰ প্ৰথম পূৰ্ণাংগ আত্মজীৱনীমূলক গ্ৰন্থ হৰকান্ত শৰ্মা মজুমদাৰ বৰুৱাৰ 'সদৰামীনৰ আত্মজীৱনী' (১৯৬০) যদিও প্ৰকাশৰ দিশৰ পৰা লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ 'মোৰ জীৱন সোঁৱৰণ' (১৯৪৪) খনেই প্ৰথম। ১৯৭১ চনত গ্ৰন্থকাৰে প্ৰকাশিত পদ্মনাথ গোহাঞিবৰুৱাৰ মোৰ সোঁৱৰণী আত্মজীৱনীখনে প্ৰথম অৱস্থাত ১৯৩১ চনতেই আৱাহনৰ পাতত ধাৰাবাহিকভাৱে প্ৰকাশ লাভ কৰিছিল। সেয়ে প্ৰকাশৰ ফালৰ পৰা ১৯২২ চনৰ পৰা 'বাঁহী'ত ধাৰাবাহিকভাৱে প্ৰকাশিত লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ 'মোৰ জীৱন সোঁৱৰণ'ৰ পিছতেই এইখন দ্বিতীয় অসমীয়া আত্মজীৱনী। অসমীয়া সাহিত্যৰ আন বিভাগসমূহৰ দৰে আত্মজীৱনী ৰচনাৰ ধাৰাটো দেশে স্বাধীনতা লাভ কৰাৰ আগলৈকে পত্ৰে-পুষ্পে বিকশিত হোৱা নাছিল। আনকি স্বাধীনতাৰ পিছতো এই সাহিত্যৰ বিকাশ সীমিত আছিল। ষাঠি দশকৰ পৰাহে আত্মজীৱনী ৰচনাৰ প্ৰৱণতা এটা গঢ় লৈ উঠে। সেইবোৰৰ ভিতৰত- পদ্মধৰ চলিহাৰ 'জীৱন বীণাৰ সুৰ' (১৯৬৩), হৰিনাৰায়ণ দত্ত বৰুৱাৰ 'জীৱন স্মৃতি' (১৯৬৬), বেণুধৰ ৰাজখোৱাৰ 'মোৰ জীৱন দাপোণ' (১৯৬৯), শৈলধৰ ৰাজখোৱাৰ 'অতীতৰ সোঁৱৰণী' (১৯৬৯), নজৰ আলিৰ 'মোৰ জীৱনৰ কিছু কথা' (১৯৬৯) আদি উল্লেখযোগ্য আত্মজীৱনী।

বিংশ শতিকাৰ সত্তৰ দশকতো ভালেকেইজন বিশিষ্ট ব্যক্তিয়ে আত্মজীৱনী ৰচনাৰ কাম হাতত লয়। ১৯৭১ চনতেই প্ৰকাশিত 'কৃষ্ণ শৰ্মাৰ ডায়েৰী' গ্ৰন্থখন স্বাধীনতা সংগ্ৰামী কৃষ্ণ শৰ্মাৰ ৰাজহুৱা জীৱনৰ চিত্ৰধৰ্মী বৰ্ণনা। একে বছৰতেই প্ৰকাশিত (১৯৭১) প্ৰতাপচন্দ্ৰ গোস্বামীৰ দ্বাৰা ৰচিত 'জীৱন স্মৃতি আৰু কামৰূপী সমাজ' নামৰ খনত লেখকৰ নিজৰ বৰ্ণনা থকাৰ লগতে কুৰি শতিকাৰ প্ৰথমাৰ্ধৰ অবিভক্ত কামৰূপ সমাজ জীৱনৰ বৰ্ণনা পোৱা যায়। ১৯৭৩ চনত প্ৰকাশিত পূৰ্ণচন্দ্ৰ শৰ্মাৰ 'মোৰ অতীতৰ সোঁৱৰণী' আৰু নগাঁও জিলাৰ 'মুক্তিসংগ্ৰাম' আত্মজীৱনীখনত লেখকৰ জীৱনবৃত্তান্তৰ লগতে স্বাধীনতা সংগ্ৰামত নগাঁও জিলাৰ ভূমিকা সম্পৰ্কীয় দিশসমূহ লিপিবদ্ধ আছে। ১৯৭৪ চনত প্ৰকাশিত নিত্যানন্দ বৰদলৈৰ আত্মজীৱনী 'পুৰণি দিনৰ ৰেঙণি' ত লেখকৰ ব্যক্তিগত জীৱন সোঁৱৰণৰ লগতে সমসাময়িক শিক্ষা-সংস্কৃতি, সাহিত্যও অভিব্যক্ত হৈছে। ১৯৮০ চনৰ দুখন অসমীয়া আত্মজীৱনী প্ৰকাশিত হৈছিল। সেয়া হ'ল দেৱেশ্বৰ শৰ্মাৰ 'হেৰাই যোৱা দিনবোৰ' আৰু ধনাই বৰাৰ 'মোৰ জীৱন যাত্ৰাৰ কথা'। ১৯৮১ চনত প্ৰকাশিত অতুলচন্দ্ৰ হাজৰিকাৰ 'স্মৃতিলেখা' আৰু ১৯৮৩ চনত অমিয় কুমাৰ দাসৰ 'জীৱনস্মৃতি' প্ৰকাশ পায়। ১৯৮৫ চনত পূৰ্ণেশ্বৰ দিহিঙ্গীয়াৰ 'আত্মজীৱনৰ স্মৃতি ৰোমন্থন' আত্মজীৱনীখন প্ৰকাশ পায়। অম্বিকাগিৰি ৰায়চৌধুৰীৰ 'মোৰ জীৱন ধুমুহাৰ এছাটি' আত্মজীৱনীখনত লেখকৰ ব্যক্তিগত আৰু ৰাজহুৱা জীৱনৰ সু-সমন্বয় ঘটাৰ লগতে অসমৰ বিভিন্ন দিশে স্থান পাইছে। ১৯৮৮ চনত মহেশ্বৰ নেওগৰ আত্মজীৱনী 'জীৱনৰ দীঘ আৰু বাণী' আৰু একে সময়তে হোমেন বৰগোহাঞিৰ 'আত্মানুসন্ধান' নামৰ আত্মজীৱনী প্ৰকাশ পায়। ১৯৮৯ চনত প্ৰকাশিত ত্ৰৈলোক্যনাথ গোস্বামীৰ 'অতীতৰ কথা' আত্মজীৱনীখনত তেওঁৰ জীৱনৰ বিচিত্ৰ অভিজ্ঞতা প্ৰকাশ পোৱাৰ উপৰিও লেখকৰ সমসাময়িক সমাজখনো প্ৰতিফলিত হৈছে।

নৱৈৰ দশকত প্ৰকাশিত উল্লেখযোগ্য আত্মজীৱনী- মহেন্দ্ৰ বৰাৰ 'উপলা নদীৰ দৰে', হোমেন বৰগোহাঞিৰ 'ধুমুহা আৰু ৰামধেনু', নীলিমা দত্তৰ 'লুইতৰে পানী যাবি অ' বৈ', ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াৰ 'জীৱন বৃত্ত', গৌৰীশংকৰ ভট্টাচাৰ্যৰ 'সবিনয় নিবেদন' আৰু পবিত্ৰ নাথ শৰ্মাৰ 'মুক্তিযোদ্ধাৰ জীৱন যুদ্ধত'।

একবিংশ শতিকাত প্ৰকাশ পোৱা অসমীয়া আত্মজীৱনী-তিলক হাজৰিকাৰ 'আবেলিৰ ছাঁ', হীৰেণ গোহাঁইৰ 'বতাহত ক'ৰ গধূলি গোপাল', 'হেঙুল আকাশ, ক'লা চাইকেল আৰু এজন আৰোহী', 'সপোনৰ দিকচৌ বনত', নগেন শইকীয়াৰ 'ধূলিৰ-ধেমালি', হোমেন বৰগোহাঞিৰ 'মোৰ হৃদয় এখন যুদ্ধক্ষেত্ৰ', নীলমণি ফুকনৰ 'পাতি সোণাৰুৰ ফুল', ৰংবং তেৰাঙৰ 'মোৰ জন্ম হোৱাটো অন্ততঃ সচাঁ', কেশৱ মহন্তৰ 'সিপাৰত তুমি কল্পনা মোৰ', অজিত বৰুৱাৰ 'স্মৃতিকথা', লক্ষ্মীনন্দন বৰাৰ 'কাল-বলুকাত খোজ', ৰঞ্জু হাজৰিকাৰ 'জীৱনৰ হাত ৰং' আৰু ২০১৩ চনত প্ৰকাশিত প্ৰবীণ চন্দ্ৰ দাসৰ আত্মজীৱনীৰ প্ৰথম খণ্ড 'ববচা বনত বকুল বুটলি'।

তদুপৰি বহুতো মহিলা লেখকেও অসমীয়া আত্মজীৱনী সাহিত্যলৈ ভালেখিনি অৱদান আগবঢ়াইছে। ১৯৭১ চনত প্ৰকাশিত ৰাজবালা দাসৰ 'তিনি কুৰি দহ বছৰৰ স্মৃতি'খনেই হৈছে অসমীয়া ভাষাত মহিলা ৰচিত প্ৰথমখন আত্মজীৱনী। তেওঁৰ পিছত ১৯৭৭ চনত প্ৰকাশিত নলিনীবালা দেৱীৰ আত্মজীৱনী 'এৰি অহা দিনবোৰ' (তিনিটা খণ্ড) শীৰ্ষক আত্মজীৱনীখন ৰচনা কৰে। ১৯৮৮ চনত প্ৰকাশিত মামণি ৰয়চম গোস্বামীৰ আত্মজীৱনী 'আধালেখা দস্তাবেজ' ত নাৰীৰ মন আৰু নাৰীৰ জীৱনৰ বহু বৰ্ণময় ৰূপ প্ৰতিফলিত হৈছে। ১৯৯৩ চনত প্ৰকাশিত নিৰুপমা বৰগোহাঞিৰ 'বিশ্বাস আৰু সংশয়ৰ মাজেদি' আত্মজীৱনীখনত তেওঁৰ ব্যক্তিগত জীৱনৰ লগতে তেওঁৰ আদৰ্শৰাজি আৰু সমসাময়িক সমাজখন প্ৰতিফলিত হৈছে। একে বছৰতে নীলিমা দত্তৰ আত্মজীৱনী 'লুইতৰে পানী যাবি অ' বৈ'য়ো প্ৰকাশ পাইছিল।

একবিংশ শতিকাত প্ৰকাশ পোৱা মহিলা লেখকৰ আত্মজীৱনীবোৰ হ'ল - নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈৰ 'জীৱন জীৱন বৰ অনুপম', মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ 'দস্তাবেজৰ নতুন পৃষ্ঠা', সবিতা গোস্বামীৰ 'মন গংগাৰ তীৰত', অনিমা গুহৰ 'জীৱনৰ জোৱাৰ ভাটাৰ মাজেদি', ইন্দিৰা মিৰিৰ 'মই আৰু নেফা', চিত্ৰলেখা ফুকনৰ 'হৃদয় নদীৰ পানচৈ', কাবেৰী কছাৰী ৰাজকোঁৱৰৰ 'ইচ্ছা-অনিচ্ছা সত্বেও কিছু কথা' আৰু জুলী বৰুৱাৰ 'বিজয়িনী' ইত্যাদি।

এইদৰে বিভিন্ন মনোগ্ৰাহী, ব্যতিক্ৰমী আৰু ঐতিহাসিক দৃষ্টিকোণৰ পৰা সৃষ্টি হোৱা আত্মজীৱনীসমূহে অসমীয়া আত্মজীৱনী সাহিত্যৰ ভঁৰাল গুণগত আৰু সংখ্যাগত দিশৰ পৰা টনকিয়াল কৰিছে।

১.০.২ মানসিক সংঘাত (Trauma) ঃ

মানসিক সংঘাত (Trauma) হৈছে কোনো দুখজনক পৰিঘটনাৰ সন্মুখীন হোৱা ব্যক্তি বিশেষৰ শৰীৰ আৰু মনৰ এক অতিশয় শোচনীয় অৱস্থা। যাৰ ফলত ব্যক্তিজনৰ মনত অসহায়তা, ভয় বা শক্তিহীনতাৰ অনুভৱ হয়। অক্সফ'ৰ্ড অভিধান অনুসৰি— *Trauma refers to a deeply distressing experience causing severe emotional shock with long-lasting effects, often linked to a physical injury or a major psychological event like abuse, disaster, or combat, leading to conditions such as PTSD, originating from the greek word for 'wound'. It can be an immediate, shocking wound, or a profound, lingering psychological injury from an overwhelming experience, impacting mental and physical health long-term.*

অৰ্থাৎ ট্ৰমা অৰ্থ হৈছে দীৰ্ঘস্থায়ী প্ৰভাৱৰ সৈতে গুৰুতৰ আবেগিক জোকাৰণিৰ সৃষ্টি কৰা গভীৰভাৱে দুখজনক অভিজ্ঞতা, যি প্ৰায়ে শাৰীৰিক আঘাত বা নিৰ্যাতন, দুৰ্যোগ বা যুদ্ধৰ দৰে দৰে ডাঙৰ মানসিক পৰিঘটনাৰ সৈতে জড়িত, যাৰ ফলত পি টি এচ ডিৰ দৰে অৱস্থাৰ সৃষ্টি হয় (যিটো গ্ৰীক্ শব্দ 'ঘাঁ'ৰ পৰা উৎপত্তি হৈছে)। ই তাৎক্ষণিক, মৰ্মান্তিক বা কোনো বিস্ময়কৰ অভিজ্ঞতাৰ পৰা সৃষ্টি হোৱা আঘাত হ'ব পাৰে যিয়ে ব্যক্তিৰ শৰীৰ আৰু মনত দীৰ্ঘদিনীয়া প্ৰভাৱ পেলায়।

মানসিক সংঘাত বা ট্ৰমাৰ উৎপত্তি ঃ

'Trauma' মূলত এটা গ্ৰীক্ শব্দ। ১৮৬০ৰ দশকলৈকে 'ট্ৰমা' শব্দটোৰ জৰিয়তে ইয়াৰ মূল গ্ৰীক্ অৰ্থ 'শাৰীৰিক আঘাত'ক বুজোৱা হৈছিল। ১৮৬৬ চনত লণ্ডনৰ ইউনিভাৰ্চিটি অৱ হস্পিটেলৰ শল্যচিকিৎসা বিভাগৰ অধ্যাপক জন এৰিক এৰিক্সনে প্ৰথমে 'ট্ৰমা' শব্দটো ব্যৱহাৰ কৰিছিল। প্ৰথমাৱস্থাত শাৰীৰিক আঘাতৰ ক্ষেত্ৰত ব্যৱহাৰ কৰা ট্ৰমা শব্দটোৱে পিছলৈ মানসিক পীড়াৰ কথাও বুজাবলৈ লয়। স্নায়ু বিশেষজ্ঞ জিন মাৰ্টিন চাৰকট্ (Jean Martin Charcot) য়েট্ৰমা আৰু মানসিক অসুস্থতাৰ সম্পৰ্কটোৰ বিষয়ে পোন প্ৰথমবাৰৰ বাবে অনুসন্ধান আগবঢ়ায়।

ট্ৰমা (Trauma) সম্পৰ্কীয় মনোবিশ্লেষণাত্মক তত্ত্বৰ উদ্ভৱ হৈছিল ঊনবিংশ শতিকাত। এই তত্ত্বৰ মূল গৱেষকসকল হ'ল-ছিগমুণ্ড ফ্ৰয়েড, জোচেফ ব্ৰুয়াৰ, পিয়েৰ জেনেট, জিন মাৰ্টিন চাৰ্কেট, আব্ৰাম কাৰ্ডিনাৰ, মৰ্টন প্ৰিন্স ইতাদি। ফ্ৰয়েডে জোচেফ ব্ৰুয়াৰৰ সৈতে লিখা ফ্ৰয়েডৰ প্ৰাৰম্ভিক তত্ত্ব সম্পৰ্কীয় গ্ৰন্থ 'Studies on Hysteria' (1985) আৰু 'Beyond the Pleasure Principle' (1920) গ্ৰন্থত তেওঁৰ দ্বাৰা অভিযোজিত তত্ত্বসমূহে ট্ৰমা সমালোচকসকলৰ ট্ৰমাৰ ধাৰণাগত নিয়োগত আধিপত্য বিস্তাৰ কৰে।

ফ্ৰয়েডৰ প্ৰাৰম্ভিক গ্ৰন্থখনত তেওঁ যুক্তি দিছে যে যৌন নিৰ্যাতনৰ দমনীয়, পূৰ্বৰ আঘাতজনিত অভিজ্ঞতাৰ পৰা হিষ্টেৰিয়া গঢ় লৈ উঠে। ফ্ৰয়েড আৰু ব্ৰুয়াৰে গ্ৰন্থখনত উল্লেখ কৰিছে যে মূল আঘাতজনিত বাস্তৱ ঘটনাটো ব্যক্তি এজনৰ বাবে ট্ৰমাজনক নহয় বৰঞ্চ সেই ঘটনাটোৰ স্মৃতিতহে ট্ৰমাজনক কাৰণ নিহিত হৈ থাকে আৰু সেই স্মৃতিয়েই যন্ত্ৰণাৰ সৃষ্টি কৰে।

আন এগৰাকী মনোবিজ্ঞানী জিন মাৰ্টিন চাৰ্কটৰ ট্ৰমা তত্ত্বৰ মতে, দুৰ্ঘটনাৰ দৰে গুৰুতৰ আবেগিক শ্বক বা ভয়ে ব্যক্তি বিশেষৰ স্নায়ুতন্ত্ৰত ঋণাত্মক প্ৰভাৱ (পক্ষাঘাত, কনভালশ্বন বা খিচুঁনি আদি) পেলোৱাৰ লগতে শাৰীৰিক বিসংগতিৰ সৃষ্টি কৰে। তেওঁ কৈছে যে পূৰ্বতে পোৱা শাৰীৰিক আঘাতে পাছলৈ মানসিক সংঘাত বা ট্ৰমা উৎপন্ন কৰিব পাৰে যিয়ে ব্যক্তিৰ মনত এক বিচ্ছিন্ন অৱস্থাৰ সৃষ্টি কৰে।

বিংশ শতিকাৰ শেষৰ দশকৰ ফালে ট্ৰমা সম্পৰ্কীয় অধ্যয়নে বিস্তৃতি লাভ কৰিলে। পূৰ্বৰ পৰম্পৰাগত ধাৰণাটোৰ পাছত দ্ৰুতগতিত ট্ৰমা সম্পৰ্কীয় বহুত্ববাদী ধাৰণা কিছুমানে গা কৰি উঠিল। এই ধাৰণাবোৰে ট্ৰমাক কেৱল ব্যক্তিগত PTSD (Post Traumatic Stess Disorder) হিচাপে চোৱাৰ বাহিৰেও ব্যক্তিৰ মগজু, শৰীৰ আৰু সমাজত ইয়াৰ প্ৰভাৱ সম্পৰ্কেও অধ্যয়ন কৰে। তদুপৰি এই ধাৰণাসমূহে ট্ৰমাৰ প্ৰভাৱত সৃষ্টি হোৱা বৰ্ণবাদ, দৰিদ্ৰতা আদি দিশবোৰো সাঙুৰি লয়।

মানসিক সংঘাত বা ট্ৰমাৰ বৈশিষ্ট্য ঃ

তলত ইয়াৰ বৈশিষ্ট্যসমূহ চমুকৈ আলোচনা কৰা হ'ল—

(ক) **স্মৃতি বিভ্ৰাট ঃ** মানসিক সংঘাত বা ট্ৰমাৰ ফলত স্মৃতি বিভ্ৰাটৰ সৃষ্টি হয়। অৰ্থাৎ এজন ব্যক্তিয়ে তেওঁৰ জীৱনৰ গুৰুত্বপূৰ্ণ কিছুমান অংশ পাহৰি যায়।

(খ) **নেতিবাচক চিন্তা ঃ** মানসিক সংঘাতে ব্যক্তি মনত নেতিবাচক বা ঋণাত্মক ধাৰণা কিছুমান জন্ম দিয়ে। যিয়ে ব্যক্তিজনৰ লগতে তেওঁৰ চৌপাশৰ সমাজখনৰ ওপৰতো নেতিবাচক প্ৰভাৱ পেলায়।

(গ) **অতিৰিক্ত সতৰ্কতা ঃ** মানসিক সংঘাতে এজন ব্যক্তিৰ মনত অহৰহ ত্ৰাসৰ সৃষ্টি কৰে। ভয়, সন্দেহ, উদ্বিগ্নতা আদিৰ বাবে ব্যক্তিজনে অতিৰিক্ত সতৰ্কতা অৱলম্বন কৰে।

(ঘ) **আৱেগ প্ৰৱণতা ঃ** মানসিক সংঘাত বা ট্ৰমাই ব্যক্তিক অতিশয় আবেগিক কৰি তোলে আৰু যাৰ ফলত চিন্তা-চৰ্চাত ইতিবাচক আবেগৰ সমাপ্তি ঘটে।

ইয়াৰ উপৰিও মানসিক সংঘাত বা ট্ৰমাৰ ফলত অমনোযোগিতা, সহজে জিকাৰ খাই উঠা, চিন্তিত হোৱা, অনবৰতে সতৰ্ক হৈ থকা, টোপনিৰ পৰিমাণ হ্ৰাস পোৱা, ক্ৰোধ নাইবা আক্ৰমণাত্মক ভাবৰ বিস্ফোৰণ হোৱা, ধ্বংসাত্মক আচৰণত লিপ্ত হোৱা, আত্মহত্যাৰ দৰে ভয়ানক ভাব-চিন্তা মনলৈ অহা আদি লক্ষণে দেখা দিয়ে।

১.০.৩ মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ 'আধালেখা দস্তাবেজ'ত প্ৰতিফলিত নাৰীৰ মানসিক সংঘাত (Trauma) ঃ

জ্ঞানপীঠ বঁটা প্ৰাপক লেখক, গৱেষক, অধ্যাপক মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ 'আধালেখা দস্তাবেজ' অসমীয়া আত্মজীৱনী সাহিত্যলৈ এক অনবদ্য উপহাৰ। তেওঁৰ লেখনীৰাজিত নিজ জীৱনৰ ভিন্ন অভিজ্ঞতাৰ প্ৰভাৱ সুস্পষ্ট। তেওঁ নিজৰ জীৱনকালত বিভিন্ন পীড়াজনিত অভিজ্ঞতাৰে জৰ্জৰিত হৈছিল যদিও তেনে পৰিস্থিতিত অদম্য সাহস দেখুৱাই সাহিত্যকে আত্ম উদ্ধাৰৰ অস্ত্ৰ হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰি সমাজ তথা সাহিত্যলৈ এক নতুন বাৰ্তা প্ৰেৰণ কৰিছিল।

মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে আত্মজীৱনীখনত নিজৰ লগতে তেওঁ নিজ চকুৰে দেখা নাৰী চৰিত্ৰসমূহৰ মানসিক সংঘাতৰ বিষয়ে বৰ্ণনা কৰিছে। তেওঁৰ আত্মজীৱনীখনত মানসিক সংঘাতৰ প্ৰভাৱ তথা পৰিণাম স্পষ্টৰূপত দেখিবলৈ পোৱা যায়। মানসিক সংঘাতৰ চিত্ৰণৰ জৰিয়তে লেখিকাই ভুক্তভোগীৰ জীৱনপঞ্জী দাঙি ধৰিছে। আত্মজীৱনীখনৰ আৰম্ভণিতে লেখিকাৰ "এক প্ৰকাৰ নৈৰাশ্য আৰু দুঃখবোধে মোৰ হৃদয়ৰ লগত যেন ঘৰ বান্ধিয়ে লৈছিল।" (গোস্বামী ১১) — এই বাক্যশাৰীয়ে তেওঁৰ মানসিক সংঘাতৰ সম্ভেদ দিয়ে। দেউতাকক কেন্সাৰ ৰোগত তিলতিলকৈ মৃত্যু হোৱা দেখা পোৱা ঘটনাই তেওঁক ভিতৰৰ পৰা ভাঙি পেলাইছিল। দেউতাকৰ অবিহনে জীয়াই থাকিব নোৱাৰা এক মনোভাৱ নিজৰ মাজত গঢ় দি তুলিছিল। সেয়েহে দেউতাকৰ বিয়োগৰ পিছত তেওঁৰ মনত আত্মহত্যাৰ দৰে ভয়ানক চিন্তাও মনৰ মাজত থিতাপি লৈছিল। লেখিকাৰ বহুতো আবেগসিক্ত মনোভাৱ তেওঁৰ লেখনিৰ মাজেৰে প্ৰকাশ পাইছে— "হৃদয়ৰ কত তৰপ পিঁয়াজৰ তৰপৰ দৰে এতৰপ দুতৰপকৈ খহি পৰিল। কত নতুন নতুন মুখ আহিল, নতুন সম্বন্ধ আহিল, কিন্তু কোনেও মনৰ সেই পুৰণা অদৃশ্য ভাৰধাৰাৰ সঙ্গীক ধ্বংস কৰিব নোৱাৰিলে। পুৱা সূৰ্য উদয়ৰ সময়তো মই হতাশা আৰু দুঃখবোধৰ চিকাৰ হৈছিলো। যি সময়ত মানুহে নতুন পোহৰৰ ৰশ্মিৰ পিছে পিছে যাত্ৰা কৰাৰ ইচ্ছা প্ৰকাশ কৰে সেই সময়ত মই যেন কবৰস্থানৰ কবৰহে লেখ-জোখ লৈছিলো।" (গোস্বামী ২৯) দেউতাকৰ মৃত্যু আৰু পৰৱৰ্তী সময়ত প্ৰিয়জনৰ লগত বিচ্ছেদ হোৱাৰ দাৰুণ পৰিণতিৰ কথা ভাবি তেওঁ কাতৰ হৈ পৰিছিল। এনে ভয়ানক পৰিস্থিতিৰ সন্মুখীন হোৱাৰ তেওঁৰ হাবিয়াস নাছিল বুলি আত্মজীৱনীখনত স্পষ্টভাৱে উল্লেখ কৰিছে।

লেখিকাৰ দেউতাকৰ মৃত্যুৰ পিছত তেওঁৰ কাৰণে বিবাহৰ যি বন্দবস্ত চলিছিল, সেই ক্ষেত্ৰতো তেওঁ হতাশাৰ সন্মুখীন হ'ব লগা হৈছিল আৰু তাৰ ফলশ্ৰুতিত তেওঁ মানসিক সংঘাতত ভুগিছিল। ইয়াৰ উপৰিও আত্মহত্যা কৰাৰ চেষ্টা, বহুতো শুভাকাংক্ষী থকাৰ হেতুকে সমাজৰ পৰা পোৱা নানান ককৰ্থনাই তেওঁক অন্তৰ্দ্বন্দত ভোগাইছিল। এইবোৰৰ উপৰিও অন্য এজন থকাৰ স্বত্বেও দুদিনৰ চিনাকি ব্যক্তিৰ লগত আইনী বিবাহ আৰু সেই বিবাহক মানি ল'ব নোৱাৰি বিচ্ছেদ হোৱা আদি পৰিঘটনাই তেওঁক গভীৰ মনোকষ্ট দিছিল। যিবোৰে পৰৱৰ্তী সময়ছোৱাত তেওঁৰ জীৱনলৈ মানসিক অস্থিৰতা নমাই আনিছিল। লেখিকাৰ স্বামীৰ অনাকাংক্ষিত মৃত্যুৱে তেওঁক নিদ্ৰাৰ বড়ি সেৱন কৰিবলগীয়া হোৱাৰ দৰে মানসিক পৰিস্থিতিৰ সন্মুখীন কৰোৱাইছিল— "মনত এক অদ্ভুত প্ৰতিক্ৰিয়া আৰম্ভ হৈছিল। খাই থাকোঁতে যি ভেনিটি বেগত সুগন্ধি আতৰৰ বটল আছিল এতিয়া সেই বেগত নিদ্ৰাৰ বড়ি এটা দুটাকৈ গোট খালে। এনে এক মানসিক অৱস্থা লৈ সচাঁকৈয়ে জীয়াই থকা যায় নে?" (গোস্বামী ৬৭)

মামণি ৰয়ছম গোস্বামী গৱেষণা কাৰ্যৰ বাবে বৃন্দাবনত থাকিবলগীয়া হৈছিল। ঈশ্বৰৰ দেশ বুলি খ্যাত যদিও তেনে এখন ঠাইৰ লগত নিজক প্ৰথমে খাপ খোৱাব নোৱাৰি তেওঁ এক অদ্ভুত মানসিক যন্ত্ৰণাত ভুগিছিল। তদুপৰি আত্মজীৱনীখনত লেখিকাই বৃন্দাবনত মৰিবলৈ বুলি এৰি থৈ অহা নাৰীসকলৰ বৈধব্য জীৱনৰ যন্ত্ৰণাকো প্ৰতিফলিত কৰিছে। অন্ধকাৰ কুঠৰীত কীট-পতংগৰ দৰে জীয়াই থকা বিধৱাসকলৰ (শাৰীৰিক, মানসিক নিৰ্যাতন তথা পৰিয়ালৰ অপব্যৱহাৰ) বিধস্ত হোৱা সংঘাতপূৰ্ণ জীৱনে লেখিকাৰ মনতো অশান্তিৰ সৃষ্টি কৰিছিল।

আত্মজীৱনীখনত লেখিকাই এগৰাকী হাড়ে-ছালে লগা মিলিটেৰীয়ে অনা বেশ্যা এগৰাকীৰ প্ৰতিচ্ছবি বৰ্ণনা কৰিছে। বেশ্যাগৰাকীৰ স্বামী দলং নিৰ্মাণ কাৰ্যত হোৱা দুৰ্ঘটনাত মৃত্যুবৰণ কৰাৰ ফলত পৰিয়ালৰ পোহপালৰ উদ্দেশ্যে এই পথকে বাছি লৈছে। এইখিনিতে নাৰীগৰাকীৰ মানসিক সংঘাত দৃষ্টিগোচৰ হৈছে— প্ৰথমে স্বামীৰ অনাকাংক্ষিত মৃত্যু আৰু দ্বিতীয়তে, পৰিয়াল পোহপাল দিয়াৰ উদ্দেশ্যে বাধ্যত পৰি নিজৰ একো নথকা দেহ বিক্ৰী কৰাৰ দৰে কদৰ্য কামত লিপ্ত হোৱা।

লেখিকাই আত্মজীৱনীখনত ব্ৰাহ্মণ বিধৱাৰ জীৱনৰ ওপৰত হোৱা নিৰ্মম স্বৰূপটো উদঙাই দেখুৱাইছে। যোল্ল-সোতৰ বছৰ বয়সতে বিধৱা হোৱা লেখিকাৰ পেহীয়েকৰ ওপৰত চলোৱা অত্যাচাৰ, অশুচি বুলি ভাবি আন ব্ৰাহ্মণ ছোৱালীক চুবলৈ নিদিয়া, মাহেকীয়া হোৱাৰ সময়ত উৰিয়াম কাঠৰ খাট এখনৰ ওপৰতে তিনিদিন থাকিবলৈ দিয়া, নিধুতিৰ সময়ত পালন কৰিবলৈ কোৱা নীতি-নিয়মসমূহ নিষ্ঠুৰ হোৱাৰ লগতে অস্বাস্থ্যকৰ আছিল, লেখিকাই নিজেই দেখা বৈধব্য জীৱনৰ এক ভয়ঙ্কৰ নমুনা, যিয়ে এগৰাকী নাৰীৰ মানসিক সংঘাতৰ সৃষ্টি কৰে।

মানসিক সংঘাতে ব্যক্তিৰ বাহ্যিক দিশবোৰতো প্ৰভাৱ পেলায়। সেই কথা তেওঁৰ আত্মজীৱনীখনত পোৱা যায় এইদৰে— "মোৰ মূৰৰ চুলি অবিন্যস্ত আছিল। শৰীৰৰ কাপোৰ কানিও অসংলগ্ন, মাধুৰ মৃত্যুৰ পাছত মোৰ চকুৰ তলত বৰ গভীৰভাৱে এটা দাগ বহি গৈছিল।" (গোস্বামী ৭১) মানসিক সংঘাতে যে কেৱল মনৰ ক্ষতি সাধন কৰে এনে নহয় শাৰীৰিক ক্ষতিও সাধন কৰে। আত্মজীৱনীখনত উল্লিখিত যশোদা, জয়ন্তী, সতৰী আদি নাৰী চৰিত্ৰসমূহৰ জৰিয়তে সিহঁতকেইজনীৰ বিধ্বস্ত জীৱনৰ বিৱৰণ আৰু মানসিক সংঘাতৰ চিত্ৰণ কৰা হৈছে। বৃন্দাবনত বাস কৰা ৰাধেশ্যামী অৰ্থাৎ ভজন কৰি খোৱা বেছিভাগ বিধৱাই পাৰিবাৰিক অশান্তিৰ বাবে ব্ৰজধামত আশ্ৰয় লৈছিল বুলি লেখিকাই উল্লেখ কৰিছে। ইয়াৰ উপৰিও এগৰাকী বৃদ্ধা বিধৱাই ঔষধ আৰু উন্নত চিকিৎসাৰ অভাৱত তিলতিলকৈ মৃত্যুবৰণ কৰা তথা কত বৃদ্ধা ৰাধেশ্যামীয়ে পইচাৰ অভাৱত নিজক বেমাৰৰ পৰা উদ্ধাৰ কৰিব নোৱাৰি মৃত্যুবৰণ কৰা জ্বলন্ত উদাহৰণ আত্মজীৱনীখনত পোৱা যায়। আত্মজীৱনীখনত ৰাধেশ্যামীসকলৰ দলৰে ললিতা দাসীৰ মুখৰপৰা ৰাধেশ্যামীসকলৰ জীৱনৰ ট্ৰমাটিক অভিজ্ঞতা (মানসিক, শাৰীৰিক নিৰ্যাতন)ৰ কাহিনী বৰ্ণনা কৰিছে এইদৰে— "যোৱা ৰাতি গোপীনাথ বজাৰৰ 'সোৱাং' (সঙ্গীত সভা) চাবলৈ মধুবন, গোবৰ্ধন, বৰসালা, নন্দগাঁও আৰু মথুৰাৰ ভক্ত এসোপাৰ লগত গুণ্ডা কিছুমানো আহিছিল। ৰাতি দুটামানে ভাং আৰু মদ খাই মনিৰৰ পৰা উভতি যোৱা দুগৰাকী বুঢ়ী ৰাধেশ্যামীৰ ওপৰত জঁপিয়াই পৰিল। সিহঁতৰ কাপোৰ কানি আঁজুৰি-আচুঁৰি খুলিলে। সিহঁতৰ হাড়-ছাল ওলোৱা দেহক নগুৰ নাকতি কৰি যোল্ল বছৰীয়া ছোৱালীৰ তেজৰ উত্তাপ বিচাৰিব ধৰিলে। দুয়োজনীৰ পকা চুলিৰ বান্ধ খুলি পৰিল। কানি-কাপোৰ দূৰলৈ চিটিকি পৰিল।...." (গোস্বামী ৩১) পুৰুষৰ পাশৱিক অত্যাচাৰৰ ভাগি হৈ ব্যভিচাৰিণী বুলি খ্যাত হোৱা বিধৱাসকলৰ মানসিক সংঘাত আত্মজীৱনীখনত প্ৰতিফলিত হৈছে। এনেবোৰ অভিজ্ঞতাই লেখিকাৰ মানসপটত অশান্তি আৰু অসন্তুষ্টিৰ সৃষ্টি কৰিছিল। তেওঁৰ নিজৰ জীৱনৰ হতাশা, যন্ত্ৰণাবোৰ সাহিত্য চৰ্চাৰ জৰিয়তে অতিক্ৰম কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰিছিল। সেয়েহে জীৱনৰ সৰহভাগ সময় সাহিত্য সাধনাতে ব্ৰতী হৈ আছিল। তেওঁ আত্মজীৱনীখনত কৈছে যে, "সাহিত্যতেই আশ্ৰয় লোৱা

সময়খিনি শান্তিৰ সময় আছিল। বাকী সময়বোৰ অশান্তি আৰু অসন্তুষ্টিত মন ভৰি আছিল।" (গোস্বামী ২৮)

এনেদৰেই মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে তেওঁৰ আত্মজীৱনী 'আধালেখা দস্তাবেজ'ত নিজৰ লগতে তেওঁৰ জীৱন কালত বিভিন্ন ঠাইত লগ পোৱা নাৰীসকলৰ মানসিক সংঘাতৰ বিষয়ে বৰ্ণনা কৰিছে।

সামগ্ৰিক সিদ্ধান্ত ঃ

অসমীয়া মহিলা লেখকৰ আত্মজীৱনীত প্ৰতিফলিত নাৰীৰ মানসিক সংঘাত (Trauma) শীৰ্ষক গৱেষণা কৰ্মৰ অন্তত লাভ কৰা সিদ্ধান্তসমূহ এনেধৰণৰ—

(ক) সামাজিক বৈষম্য, প্ৰচলিত কু-প্ৰথা, নাৰীৰ নিম্ন সামাজিক প্ৰস্থিতি ইত্যাদিৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত আত্মজীৱনীখনৰ নাৰী চৰিত্ৰসমূহে দৰিদ্ৰতা, নিৰ্যাতন, অৱহেলা, অপমান আদিৰ সন্মুখীন হৈছে আৰু এনেবোৰ কাৰণতেই তেওঁলোকৰ মানসিক সংঘাতৰ সৃষ্টি হৈছে।

(খ) মামণি ৰয়চম গোস্বামীৰ 'আধালেখা দস্তাবেজ'ত প্ৰতিফলিত ঘটনা বা অভিজ্ঞতাবোৰ তেওঁৰ কেৱল নিজৰ নহয়। তাত তেওঁ নিজৰ মানসিক সংঘাতৰ লগতে জীৱনৰ বিভিন্ন সময়ত লগ পোৱা আন নাৰীসকলৰো মানসিক সংঘাতৰ বিষয়ে উপস্থাপন কৰিছে।

(গ) আত্মজীৱনীকাৰে তেওঁ প্ৰত্যক্ষ কৰা হিন্দুসকলৰ পবিত্ৰ তীৰ্থক্ষেত্ৰ বৃন্দাবনৰ সমাজ জীৱনৰ অৱক্ষয়িত ৰূপটো আত্মজীৱনীখনত দাঙি ধৰাৰ লগতে তাত থকা নাৰীৰ মানসিক, শাৰীৰিক নিৰ্যাতন আৰু তাৰ ফলত সৃষ্টি হোৱা নাৰীসকলৰ মানসিক সংঘাতৰ দিশটোও পাঠকৰ আগত দাঙি ধৰিছে।

(ঘ) আত্মজীৱনীখনত লেখিকাই নিজৰ জীৱনৰ অভিজ্ঞতা, পুৰুষ-নাৰীৰ সম্পৰ্কৰ জটিলতা আৰু নাৰীৰ যন্ত্ৰণাসমূহ প্ৰকাশ কৰিছে। সেয়েহে আত্মজীৱনীখনক নাৰীৰ অধিকাৰ আৰু সামাজিক ন্যায়ৰ বাবে এক গুৰুত্বপূৰ্ণ কণ্ঠস্বৰ বুলি অভিহিত কৰিব পাৰি।

(ঙ) গ্ৰন্থখনত কেৱল মানসিক সংঘাতেই নহয়, তাৰ প্ৰতিকাৰৰ উপায়ো তেওঁ উল্লেখ কৰি গৈছে। জীৱনৰ হতাশা, যন্ত্ৰণাবোৰ দূৰ কৰিবৰ বাবে তেওঁ মানুহক সাহিত্যৰ ওচৰ চাপিবলৈ আহ্বান জনাইছে। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

মুখ্য উৎস ঃ

গোস্বামী, মামণি ৰয়ছম। *আধালেখা দস্তাবেজ*। ষ্টুডেন্টচ্ ষ্ট'ৰচ।১৯৮৮।

গৌণ উৎস ঃ

ইংৰাজী গ্ৰন্থ ঃ

Alexander, Jeffrey C. *Trauma : A social Theory*. Polity Pres. 2012.

Andermahr, Sonya. *Decolonizing Trauma Studies : Trauma and postcolonialism*. MDPI. 2016.

Buelens, Gert. *The Future of Trauma Theory : Contemporary Literay and Cultural Criticism*. Routledge Taylor and Francis Group.2014

Valent, Paul. *Trauma and fulfillment Therapy*. Routledge.1999.

অসমীয়া গ্ৰন্থ ঃ

কটকী, প্ৰফুল্ল। *সাহিত্য আৰু সংজ্ঞা*। গুৱাহাটী ইউনিভাৰ্চিটি প্ৰেচ। ২০১৭।

ডেকা, নমিতা। *স্বাধীনোত্তৰ কালৰ অসমীয়া সাহিত্যলৈ মহিলাৰ অৱদান*। বাণী মন্দিৰ। ২০১৩।

দাস, অমলচন্দ্ৰ। *অসমীয়া আত্মজীৱনী আৰু আত্মজীৱনী অধ্যয়ন*। পূৰ্বাঞ্চল প্ৰকাশ। ২০১৮।

দেৱী, সন্ধ্যা। *নাৰী ঃ বন্ধন আৰু মুক্তি*। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ। ২০০৭।

বৰগোহাঞি, হোমেন। *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী*। আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি সংস্থা। ১৯৯৩।

বৰমুদৈ, আনন্দ। *সমাজ-সাহিত্য-সমালোচনা*। এচিক আবাসন। ১৯৯৫।

শৰ্মা, অঞ্জলি। *অসমীয়া মহিলাৰ জীৱন আৰু কৰ্ম*। বনলতা। ২০১৭।

শৰ্মা, গোবিন্দ প্ৰসাদ। *জীৱনী আৰু আত্মজীৱনী অসমীয়া আৰু পাশ্চাত্যত*। বনলতা। ২০০৯।

অসমীয়া গৱেষণা গ্ৰন্থ ঃ

কিৰণ, স্বাতী। *মহিলা ৰচিত ভাৰতীয় আত্মজীৱনীত নাৰীৰ সামাজিক স্থিতিৰ প্ৰতিফলন*। ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়। ২০১৫।

দিহিঙ্গীয়া, দীপশিখা। *অসমীয়া উপন্যাসত ট্ৰমাৰ চিত্ৰণ*। ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়। ২০২২।

ফুকন, ৰাশি দেউধাই। *অসমীয়া আত্মজীৱনীত ইতিহাসৰ প্ৰতিফলন ঃ এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন*। ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়। ২০২১।

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

ঋক্‌বৈদিক যুগত ভাৰতীয় নাৰী আৰু বিংশ শতিকাৰ অসমীয়া সমাজত নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি ঃ এক তুলনামূলক অধ্যয়ন

(নিৰুপমা বৰগোহাঞিৰ অভিযাত্ৰী উপন্যাসৰ বিশেষ উল্লিখনেৰে)

বৰ্ণালী দত্ত
গৱেষক ছাত্ৰী, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-০১
৭০০২৩০০৮৫৩
duttabornali51@gmail.com

ড° স্বপ্নালী দাস
সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-০১
৯৩৬৫৫৭০৬৪০
swapnalidasghy@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

সাম্প্ৰতিক সময়তো নাৰীৰ দমন আৰু শোষণৰ ছবিখনৰ অন্ত পৰা নাই। নাৰী আৰু পুৰুষ উভয়ৰে পাৰস্পৰিক সহযোগিতাৰ অবিহনে সমাজ এখন গঢ়ি তোলা অসম্ভৱ। উৎপাদন প্ৰক্ৰিয়াৰ আৰ্থ-সামাজিক স্থিতিৰ ওপৰতে নাৰী-পুৰুষৰ সামাজিক স্থিতি নিৰ্ভৰ কৰে। আদিম যুগত একোগৰাকী নাৰীয়ে দলৰ নেতৃত্ব বহন কৰিছিল। নাৰীয়ে চিকাৰ কৰাৰ পৰা আৰম্ভ কৰি দলৰ বিভিন্ন সমস্যা, প্ৰয়োজনীয়তা আদি সকলো দিশ চোৱা-চিতা কৰাত মূখ্য ভূমিকা পালন কৰিছিল। কিন্তু পিছৰ পৰ্যায়ত উৎপাদন প্ৰক্ৰিয়াৰ সৈতে পুৰুষসকল জড়িত হৈ পৰে। নাৰীৰ সামাজিক মৰ্যদা ক্ৰমাত হ্ৰাস পায়। ভাৰতৰ প্ৰেক্ষাপটত নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি সম্পৰ্কত লিখিত সাহিত্য, প্ৰাচীন ভাৰতীয় আৰ্য সভ্যতাৰ ইতিহাস, সবাতোকৈ পুৰণি ধৰ্মগ্ৰন্থ বেদতে পোৱা যায়। ৰেদত প্ৰাচীন ভাৰতীয় আৰ্যসকলৰ ধ্যান - ধাৰণা, ৰীতি - নীতি, জীৱন - ধাৰণ পদ্ধতিৰ সম্পৰ্কে উল্লেখ পোৱা যায়। বৈদিক সংহিতা চাৰিখন - ঋক্, যজু, সাম আৰু অথৰ্ব। চাৰিখন বেদৰ ভিতৰত ঋক্‌বেদেই আটাইতকৈ পুৰণি। ঋক্‌বেদত সেই সময়ৰ ভাৰতীয় নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি সম্পৰ্কে উল্লেখ কৰা হৈছে। উক্ত গৱেষণা পত্ৰখনত ঋক্‌বৈদিক যুগত নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি আৰু বিংশ শতিকালৈকে সুদীৰ্ঘ কাল অতিক্ৰম কৰাৰ পিছত নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি কেনে ধৰণৰ পৰিৱৰ্তন ঘটিছে এই সম্পৰ্কে নিৰুপমা বৰগোহাঁঞিৰ অভিযাত্ৰী উপন্যাসৰ আধাৰত তুলনামূলক অধ্যয়ন কৰাৰ যত্ন কৰা হৈছে।

সূচক শব্দ ঃ

ঋক্‌বৈদিক যুগত নাৰী, বিংশ শতিকাৰ অসমীয়া সমাজত নাৰী, অভিযাত্ৰী, চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানী।

০.০ অৱতৰণিকা ঃ

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

আদিম যুগত নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি মৰ্যদাসম্পন্ন আছিল যদিও ক্ৰমাত নাৰীৰ মৰ্যদা নিম্নগামী হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। বৈদিক যুগ ভাৰতীয় সভ্যতা আৰু সংস্কৃতিৰ বিকাশৰ স্বৰূপ হিচাপে অভিহিত কৰিব পাৰি। চাৰিখন বেদৰ ভিতৰত ঋক্‌বেদ প্ৰথম। ঋক্‌বৈদিক যুগৰ ভাৰতীয় নাৰীৰ গৌৰৱোজ্জ্বল ইতিহাস বিশেষভাৱে উল্লেখনীয়। নাৰীৰ সামাজিক স্থিতিৰ উত্থান পতনৰ দীৰ্ঘ পৰিক্ৰমাৰ পিছত বিংশ শতিকাৰ সমাজখনৰ পটভূমিত নাৰীয়ে শিক্ষাৰ জৰিয়তে বিকাশৰ দিশলৈ গতি কৰা পৰিলক্ষিত হয়। নাৰীৰ এই বিকাশৰ যাত্ৰা কোনো পধ্যে মশৃণ নাছিল, তৎস্বত্বেও নাৰীয়ে আগুৱাই যোৱাৰ

যুগান্তকাৰী ভেটি নিৰ্মাণ কৰে। নিৰুপমা বৰগোহাঁঞিৰ অভিযাত্ৰী উপন্যাসৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীক এই আলোচনাৰ মূল আধাৰ হিচাপে ধৰা হৈছে। উপন্যাসখনৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ চন্দ্ৰপ্ৰভাই সৰুৰে পৰা বহু প্ৰত্যাহ্বানৰ সন্মুখীন হৈছে। তেওঁ শিশু অৱস্থাতে বুজি উঠিছিল যে শিক্ষাইহে মানুহক সৰ্বাংগীন বিকাশত সহায় কৰিব। লিংগ বৈষম্য, জাত-পাতৰ বিচাৰ, আৰ্থিক অনাটন, ব্যক্তিগত জীৱনত সমাজৰ কটু সমালোচনা আদি বিভিন্ন সমস্যাবোৰক প্ৰত্যাহ্বান জনাই গঠনমূলক কামেৰে তেওঁ নিজৰ লগতে সমাজৰ আৰু দেশৰ হিতৰ কাৰণে আজীৱন চেষ্টা কৰে। নিৰুপমা বৰগোহাঁঞিৰ অভিযাত্ৰী উপন্যাসখনে বিংশ শতিকাৰ প্ৰাক্-স্বাধীন আৰু স্বাধীনোত্তৰ অসমীয়া সমাজখনক প্ৰতিফলিত কৰিছে। ঋক্‌বৈদিক যুগত নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি আৰু বিংশ শতিকাৰ নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি, সম্পৰ্কে তুলনামূলক অধ্যয়ন কৰোঁতে ইয়াৰ মাজৰ সময়খিনিৰো প্ৰাসংগিকতা নুই কৰিব নোৱাৰি। গতিকে সমান্তৰালভাৱে এই বিষয়েও অধ্যয়নৰ পৰিসৰত অৰ্ন্তভুক্ত কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

(১) ঋক্ বৈদিক যুগৰ প্ৰেক্ষাপটত নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি সৰ্ম্পকে অধ্যয়ন কৰা।

(২) নিৰুপমা বৰগোহাঞিৰ অভিযাত্ৰী উপন্যাসৰ বিংশ শতিকাৰ অসমীয়া সমাজত নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি সৰ্ম্পকে অধ্যয়ন কৰা।

(৩) ঋক্‌বৈদিক যুগৰ নাৰী আৰু বিংশ শতিকাৰ অসমীয়া সমাজৰ নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি সম্পৰ্কে তুলনামূলক অধ্যয়ন কৰা।

০.৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

ঋক্‌বৈদিক যুগৰ নাৰী আৰু বিংশ শতিকাৰ অসমীয়া সমাজৰ নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়ন কৰোতে মূলতঃ তুলনামূলক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ আৰু উৎস ঃ

শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়ন কৰোঁতে মূলতঃ ঋকবৈদিক সমাজত নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি আৰু বিংশ শতিকাৰ অসমীয়া সমাজত নাৰীৰৰ সামাজিক স্থিতি সম্পৰ্কে অধ্যয়নৰ পৰিসৰত সামৰি লোৱা হৈছে।

গৱেষণা কৰ্মত মুখ্য আৰু গৌণ দুয়ো প্ৰকাৰৰ সমল ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। মুখ্য উৎসকেন্দ্ৰীক সমলৰ ভিতৰত বৈদিক সাহিত্যৰ আলোচনা সম্বলিত গ্ৰন্থ আৰু ষ্টুডেন্টচ্ ষ্টʼৰচ্ প্ৰকাশনৰ দ্বাৰা ২০১৯ চনত প্ৰকাশিত নিৰুপমা বৰগোহাঞিৰ অভিযাত্ৰী উপন্যাসৰ প্ৰথম সংস্কৰণ। আনহাতে গৌণ সমল হিচাপে বিষয়ৰ লগত জড়িত বিভিন্ন প্ৰাসংগিক গ্ৰন্থ, আলোচনী আৰু গৱেষণা পত্ৰিকাৰ সহায় লোৱা হৈছে।

১.০ মূল বিষয়ৰ আলোচনা ঃ

ঋক্‌বেদ প্ৰাচীন ভাৰতীয় আৰ্য সমাজৰ প্ৰথম আৰু প্ৰধান ধৰ্মগ্ৰন্থ। ঋকবেদখনক সেই সময়ছোৱাৰ সভ্যতা আৰু সংস্কৃতিৰ ক্ৰমবিকাশৰ ইতিহাস হিচাপে গণ্য কৰা হয়।

ঋক্‌বেদৰ সময়ছোৱা ভাৰতীয় নাৰীৰ গৌৰৱৰ সময় বুলি অভিহিত কৰিব পাৰি। বৈদিক যুগত নাৰীক পুৰুষৰ সৈতে সমানে ধৰ্মশাস্ত্ৰৰ শিক্ষা দিয়াৰ লগতে শিল্পবিদ্যা, সামৰিক শিক্ষা, অস্ত্ৰবিদ্যা, সুকুমাৰ কলা আদি সকলো বিষয়তে প্ৰাধান্য দিয়া হৈছিল। তদানীন্তন সময়ছোৱাত ব্ৰাহ্মণ, ক্ষত্ৰিয় আৰু বৈশ্য এই তিনিটা উচ্চ জাতিৰ তিৰোতাসকলৰ শিক্ষা গ্ৰহণৰ অধিকাৰ থকাৰ লগতে তেওঁলোক শিক্ষয়িত্ৰী পদত অধিষ্ঠাত্ৰী আছিল। ঋক বৈদিক যুগত মন্ত্ৰদ্ৰষ্টা নাৰী, শিক্ষয়িত্ৰী, ছাত্ৰী, তপস্বিনী, ব্ৰহ্মচাৰিণী আৰু ব্ৰহ্মবাদিনী আদি নাৰী সম্পৰ্কে আলোচনা পোৱা যায়।

১.০.১ বেদৰ মন্ত্ৰদ্ৰষ্টা নাৰী ঃ

ঋক্‌বেদত বেদৰ মন্ত্ৰদ্ৰষ্টা নাৰী ঋষিৰ নাম পোৱা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে বিশ্ববাৰা, অপালা, ৰোমশা, লোপামুদ্ৰা, অম্ভৃনীবাক্, কাক্ষিৰতী, ঘোষা, জাৰিতা, শ্ৰদ্ধা, কামায়নী, জুহু, পৌলাসী আদি। ইয়াৰ উপৰি বেদমন্ত্ৰ কথোপকথনত ঋক সংহিতাৰ অংশগ্ৰহণ কৰা সৰ্পৰাজ্ঞী, ইন্দ্ৰানী, যমী, উৰ্বশী আদি নাৰীৰ নাম পোৱা যায়।

১.০.১.১ উপনয়ন আৰু গায়ত্ৰীত অধিকাৰ ঃ

ঋক্‌বেদ সংহিতাৰ দিনৰ পৰা সূত্ৰ সাহিত্যৰ কাললৈকে তিনিটা উক্ত শ্ৰেণীৰ মহিলাৰ লগুণ দিয়াৰ ব্যৱস্থা আছিল। তেওঁলোকে গায়ত্ৰীমন্ত্ৰ জপ কৰিছিল। যজ্ঞাগ্নি প্ৰজ্বলিত কৰিছিল আৰু অন্যান্য শাস্ত্ৰৰ লগতে বেদো অধ্যয়ন যম নামে স্মৃতিশাস্ত্ৰ ৰচয়িতা ঋষিয়ে কৈছে—

"পুৰাকল্পে কুমাৰীণাং মৌঞ্জীবন্ধনমিষ্যতে।
অধ্যাপনঞ্চ বেদানাং সাৱিত্ৰীবচনংতথা।।"

সমকালীন সময়ছোৱাত ছোৱালীৰো উপনয়ন সংস্কাৰ বা লগুণ লোৱাৰ অধিকাৰ আছিল। স্মৃতিশাস্ত্ৰৰ ৰচয়িতা হাৰীত নামৰ এজনৰ মতে সমসাময়িক সমাজত ব্ৰহ্মবাদিনী আৰু সদ্যোবধু নামেৰে দুই শ্ৰেণীৰ নাৰী আছিল। এই দুই শ্ৰেণীৰ নাৰীৰ ভিতৰত ব্ৰহ্মবাদিনী নাৰীৰ উপনয়নত অধিকাৰ আছিল। এওঁবিলাকে যজ্ঞযগ্নি প্ৰজ্বলিত কৰিছিল, বেদ অধ্যয়ন কৰিছিল আৰু নিজৰ ঘৰতে ভিক্ষা মাগিছিল বুলি জনা যায়।

সদ্যোবধু নামৰ আনটো শ্ৰেণীৰ নাৰীৰ লগুণ দিয়াৰ পাছত বিয়া দিয়া হৈছিল। যদিও এই নিয়মটো আৰ্যজাতিৰ 'ইণ্ডোএৰিয়ান' শাখাৰ মাজত লুপ্ত হ'ল তথাপি ই এতিয়াও ইণ্ডো-ইৰাণীয় শাখাৰ মাজতে প্ৰচলিত আছে।

স্মৃতিকাৰ হাৰীতে বিৱৰণ দিয়া দুই শ্ৰেণীৰ নাৰীৰ ভিতৰত ব্ৰহ্মবাদিনীসকলে বিয়া নকৰিছিল, এওঁলোকে নৈষ্ঠিত ব্ৰহ্মচাৰী ল'ৰাবিলাকৰ নিচিনাকৈ চিৰকাল অবিবাহিত হৈ থাকিব বুলি প্ৰতিজ্ঞা কৰিছিল। সদ্যেবধু নাৰীসকলক উপকুৰ্বান ব্ৰহ্মচাৰী ল'ৰাবিলাকৰ সৈতে তুলনা কৰিব পাৰি। ল'ৰাৰ দৰেই এই শ্ৰেণীৰ ব্ৰহ্মচাৰীসকলে গুৰুগৃহত শিক্ষা সাং কৰি ঘৰলৈ উভতি গৈ বিবাহকাৰ্য সমাধা কৰি গাৰ্হস্থ্য জীৱনৰ পাতনি মেলিছিল। বৈদিক যুগত তিৰোতাসকলক যজ্ঞসূত্ৰ ধাৰণ কৰোৱা আৰু দ্বিজশ্ৰেণীৰ পুৰুষৰ নিচিনাকৈ তেওঁলোকৰ বেদ অধ্যয়নৰো যে অধিকাৰ আছিল এই সম্পৰ্কে কমলাকাৰৰ স্মৃতি চন্দিকা আৰু নিৰ্ণয়পিঞ্জু আদিৰ নিচিনা কিছুমান হিন্দু আইন বিষয়ক প্ৰখ্যাত গ্ৰন্থয়ো প্ৰমাণ কৰে। অৱশ্যে মনুসংহিতা ৰচনা কালত এই প্ৰথা একেবাৰে লুপ্ত হৈ গ'ল। পি, ভি, কাণেইতেওঁৰ ধৰ্মশাস্ত্ৰৰ ইতিহাস (History of dharmashastra)ত এই সম্পৰ্কে উল্লেখ কৰিছে।

১.০.১.২ বেদ আৰু যজ্ঞত অধিকাৰ ঃ

ঋক্‌বৈদিক যুগত পত্নীৰ অবিহনে যজ্ঞ কাৰ্য সম্পন্ন হ'ব নোৱাৰে। গতিকে তিৰোতাৰ প্ৰতিশব্দ 'পত্নী' শব্দৰ যজ্ঞকাৰ্যত সাহায্যকাৰিণী অৰ্থই মূল ব্যুৎপত্তিগত অৰ্থ আছিল। বিবাহতো কন্যাই বেদমন্ত্ৰ উচ্চাৰণ কৰিব লাগিছিল। পাণিনিয়ে কঠী, কহবৃচী আদি শব্দৰ গঠন সম্বন্ধে কিছুমান নিয়ম প্ৰণালী নিৰ্দেশ কৰিছে। 'কঠী' শব্দই বেদৰ কঠশাখাৰ অধ্যয়নকাৰিণী ছাত্ৰীক বুজায়। আনহাতে 'বৃহবৃচী' শব্দটো ঋকবেদৰ বৃহবৃচ শাখাৰ অধ্যয়নকাৰী নাৰীক বুজায়।

১.০.১.৩ নাৰী শিক্ষয়িত্ৰী ঃ

বৈদিক যুগত নাৰী অধ্যয়নৰতা ছাত্ৰীৰ উপৰি শিক্ষয়িত্ৰীও আছিল। পাণিনিয়ে এই ক্ষেত্ৰত আচাৰ্যা আৰু উপাধ্যায়া, আচাৰ্যানী আৰু উপাধ্যায়ী এই কেইটা শব্দৰ সম্বন্ধে উল্লেখ কৰি গৈছে। তেওঁৰ ধাৰণাৰ স্পষ্টতাৰ কাৰণে কৈছে যে আচাৰ্যা আৰু উপধ্যায়া সকল শিক্ষিতা শিক্ষয়িত্ৰী আছিল, কিন্তু আচাৰ্যানী আৰু উপাধ্যায়ী তেওঁলোক শিক্ষকৰ পত্নী আছিল। অশিক্ষিতা নাৰীও শিক্ষকৰ পত্নী হ'ব পাৰিছিল। পাণিনিৰ এই সূত্ৰৰ ওপৰত মন্তব্য কৰোঁতে পতঞ্জলিয়ে তেওঁৰ বিশ্ববিশ্ৰুত গ্ৰন্থ 'মহাভাষ্য'ত আচাৰ্যা আৰু উপধ্যায়া এই দুটা শব্দৰ উদাহৰণস্বৰূপে অতীত ভাৰতৰ কেইগৰাকীমান স্ত্ৰী শিক্ষয়িত্ৰী নাৰীৰ কথা উনুকিয়াইছে। আপিশালী নামে বৈয়াকৰণৰ ব্যাকৰণ শিক্ষয়িত্ৰীগৰাকীয়ে নিজে অধ্যয়ন কৰিছিল আৰু শিক্ষা দিছিল সেয়ে তেওঁক আপিশালা বুলিছিল। ঔদমেধী নামৰ আন এগৰাকী শিক্ষয়িত্ৰীৰ কথা জনা যায়। এওঁৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক উদমেধ বুলিছিল।

কাশিকাবৃত্তি নামে পাণিনিৰ ব্যাকৰণৰ এটি টীকাৰ গ্ৰন্থকাৰে কাশকৃৎস্ন ব্ৰাহ্মণী নামে এগৰাকী শিক্ষয়িত্ৰীৰ নাম উল্লেখ কৰিছে; এওঁ কাশাকৃৎস্ন নামেখ্যাত বৈয়াকৰণৰ ব্যাকৰণ শিকাইছিল।

১.০.১.৪ বিদুষী নাৰী ঃ

সংহিতা ব্ৰাহ্মণ আৰু উপনিষদকে আদি কৰি বিশাল বৈদিক সাহিত্যত ভালেমান বিদুষী নাৰীৰ নাম পোৱা যায়। তাৰ ভিতৰত গাৰ্গী আছিল উচ্চশিক্ষিতা বিদুষী আৰু যশস্বিনী নাৰী ঋষি, এওঁ বৈদিক যুগৰ বিদুষী নাৰীসকলৰ মাজত সৰ্বশ্ৰেষ্ঠা আছিল। ৰজা জনকৰ ৰাজসভাত শিক্ষা আৰু ধৰ্মবিষয়ক তৰ্ক-বিতৰ্ক যাজ্ঞবল্ক্য ঋষিয়ে অন্যান্য সকলো ঋষিকে পৰাস্ত কৰিছিল যদিও তেওঁ ব্ৰহ্মবাদিনী নাৰী ঋষি গাৰ্গীক তৰ্কত পৰাস্ত কৰিব পৰা নাছিল। তেওঁলোক দুয়ো শাস্ত্ৰ বিচাৰত সমান হৈয়ে থাকিল। যাজ্ঞবল্কৰ পত্নী মৈত্ৰেয়ী আৰু কাত্যায়নী সম্পৰ্কে উল্লেখ আছে। সংস্কৃত নাটকবোৰত থকা ভালেমান পৰিব্ৰাজিকা বা তপস্বিনীৰ চৰিত্ৰই বৈদিক যুগৰ পিছতো ব্ৰহ্মবাদিনীৰ অস্তিত্ব প্ৰমাণ কৰে।

১.০.১.৫ নৃত্য-গীত প্ৰভৃতি শিক্ষা ঃ

বৈদিক যুগত ললিত কলাৰ ব্যাপক চৰ্চাৰ বহু প্ৰমাণ পোৱা যায়। নৃত্য-গীতৰ চৰ্চা পুৰুষ-নাৰী উভয়েই কৰিছিল যদিও বৈদিক যুগত ইয়াক বিশেষকৈ নাৰীৰ উপযোগী সুকুমাৰ কলা বুলি গণ্য কৰা হৈছিল।

১.০.১.৬ সামৰিক প্ৰশিক্ষণ ঃ

ঋকবেদত ৰণক্ষেত্ৰত অস্ত্ৰচালনা কৰি শত্ৰুৰ লগত যুদ্ধ কৰা বীৰাঙ্গনাৰ নাম পোৱা যায়। ৰজা নমুচিৰ ৰাণীয়ে যুদ্ধক্ষেত্ৰত স্বামীৰ সহকাৰিণী হৈ যুঁজিছিল। অশ্বিনীকুমাৰ যুগলৰ উদ্দেশ্যে ৰচনা কৰা ঋকবেদৰ এফাকি মন্ত্ৰত খেলৰজাৰ ৰাণী বিস্পলা নামে এগৰাকী বীৰাঙ্গনাৰ ৰণক্ষেত্ৰত যুদ্ধবিদ্যা আৰু সাহসৰ সম্পৰ্কে উল্লেখ কৰিছে। শত্ৰুৰ বিপক্ষে যুদ্ধ কৰোঁতে তেওঁ কৰঙনত বৰ বেয়াকৈ আঘাত পাইছিল, যাৰ ফল তেওঁৰ সেই আহত কৰঙন কাটি পেলাই তাৰ ঠাইত লোহাৰ কৰঙন লগাই ল'ব লগা হৈছিল। (অয়োময়ী জংঘা)। ঋকবেদৰ এই (১-১১৬-১৫) মন্ত্ৰফাকিয়ে তিৰোতাৰ বীৰত্ব, সামৰিক শিক্ষা, নৈপুণ্য আৰু তাৰ লগতে মুদ্‌গলানী নামৰ আন এগৰাক নিৰ্ভীকচেতা, কাবিশাৰদ, বীৰাঙ্গনা সামৰিক প্ৰশিক্ষণ, বীৰত্ব আৰু ৰণ চাতুৰ্যৰ জ্বলন্ত দৃষ্টান্তস্বৰূপ। ঋক

সংহিতাৰ (১০-১০২-২) মন্ত্ৰত নিৰ্ভীক, দুৰ্জয়, সাহসী মুদগলানীৰ দ্বাৰা শত্ৰুৰ পিছে পিছে খেদি যোৱাৰ বীৰত্বব্যঞ্জক যুদ্ধৰ অপূৰ্ব বৰ্ণনা আছে।

ঋকবেদৰ নানা সূক্তৰ বৰ্ণনাৰ পৰা অনুমান কৰিব পাৰি যে সেই কালৰ নাৰী স্বাধীন আছিল। নাৰীয়ে মুকলি মনেৰে ফুৰা-চকা কৰিব পাৰিছিল। ঋকবৈদিক সময়ত বাল্য বিবাহ নাছিল। ৰজস্বলা হোৱাৰ পাছতহে ছোৱালীক বিয়া দিয়াৰ নিয়ম আছিল। পতি নিৰ্বাচনত যুৱতীসকলে বহুখিনি স্বাধীনতা লাভ কৰিছিল। অৱশ্যে বিবাহ বাধ্যতামূলক নাছিল। ইচ্ছা কৰি কোনো নাৰী অবিবাহিত হৈওঁ থাকিব পাৰিছিল। সতীদাহ প্ৰথা ঋকবৈদিক সমাজত নাছিল।

ঋকবৈদিক ভাৰতীয় সমাজখন কিন্তু পাছলৈ একেদৰে নাথাকিল। ঋকবেদৰ পিছৰ পৰ্যায়ত ক্ৰমাৎ নাৰীৰ ঘৰুৱা কামৰ বাহিৰে কোনো শিক্ষা নাছিল। ঋকবৈদিক সমাজখনৰ ভাঙোনৰ সূত্ৰপাত হৈছিল উপনিৱেশৰ যুগত। এই যুগত ব্যক্তিগত সম্পত্তিৰ চেতনা পৰিপক্ক হৈ উঠাৰ লগতে জাতিভেদ প্ৰথাও কঠোৰ হৈ পৰিছিল। ব্যক্তিগত সম্পত্তিৰ উদ্ভাৱনে মানুহ স্বাৰ্থপৰ আৰু লুভীয়া কৰি তুলিছিল। নাৰী ক্ৰমাৎ পণ্য সামগ্ৰীত পৰিণত হৈছিল। ঋকবেদৰ যুগত যি স্বাধীন নাৰীৰ ৰূপ পোৱা যায় ব্ৰাহ্মণ, আৰণ্যক আৰু উপনিষদৰ যুগত সেই নাৰীয়ে পিতৃ, স্বামী আৰু পুত্ৰৰ অধীনতা স্বীকাৰ কৰিবলৈ বাধ্য হৈছিল।

মনুসংহিতাত আছে—

"পিতা ৰক্ষতি কৌমাৰে, ভৰ্তা ৰক্ষতি যৌৱনে।
ৰক্ষন্তি স্থৱিৰে পুত্ৰা ন স্ত্ৰী স্বাতন্ত্ৰমৰ্হতি।।"

ক্ৰমাৎ অন্ধবিশ্বাস, কু-সংস্কাৰ, জাত-পাতৰ বিচাৰ অস্পৃশ্যতাকে ধৰি নানাধৰণৰ সামন্তীয় ৰীতি-নীতি-পৰম্পৰাৰে আচ্ছন্ন সমাজখনৰ প্ৰতিচ্ছবি পৰিলক্ষিত হয়। বিংশ শতিকাৰ সময়ছোৱালৈকে সমাজ ব্যৱস্থাত বিশেষ পৰিৱৰ্তন হোৱা বুলি ক'ব পৰা নাযায়। বৈদিক যুগৰ শেষৰ স্তৰ আৰু ব্ৰাহ্মণ যুগৰ পৰৱৰ্তী যুগেই উপনিষদৰ যুগ। এই যুগতেই জাতিভেদ প্ৰথা ক্ৰমাৎ কঠোৰ হৈ আহিছিল। জন্মান্তৰবাদ ধাৰণাও স্পষ্ট হৈ উঠিছিল। ব্যক্তিগত সম্পত্তিৰ চেতনাই মানুহক স্বাৰ্থপৰ কৰি তুলিছিল। আনহাতে ঋকবৈদিক যুগত মৰ্যাদাসম্পন্ন সামাজিক স্থিতি হেৰুৱাই এই যুগতে নাৰী পণ্য সামগ্ৰীৰ দৰে হৈ পৰিছিল। জীৱন ধাৰণৰ কাৰণে নাৰীৰ ক্ষেত্ৰত সুকীয়া নিয়ম হ'ল। এই নিয়ম অতিক্ৰম কৰা নাৰীগৰাকী সামাজিক ৰোষত পৰিবলগীয়া হ্বিধাই নাৰীক ক্ৰমাৎ যন্ত্ৰচালিত পুতলাৰ দৰে হৈ পৰিল।

ব্ৰাহ্মণ যুগত নিজৰ স্বাৰ্থ সিদ্ধিৰ কাৰণে পুৰুষে নাৰীক ব্যৱহাৰ কৰিছিল। শিক্ষালাভৰ জৰিয়তে পুৰুষেই পণ্ডিত বোলাইছিল। তেনে পণ্ডিতে লিখা আটাইবোৰ গ্ৰন্থতে নাৰী অৱদমনৰ নীতি-নিৰ্দেশনা বান্ধি দিছিল। উদাহৰণস্বৰূপে ঐতৰেয় ব্ৰাহ্মণৰ মতে ভাল স্ত্ৰী এগৰাকীয়ে কেতিয়াও স্বামীৰ কথাত আপত্তি বা তৰ্ক নকৰে অৰ্থাৎ স্বামীয়ে যিমানেই অপকৰ্ম নকৰক লাগে তেওঁৰ কামৰ প্ৰতিবাদ কৰিব নোৱাৰে। মহীদাস ঐতৰেয় নামৰ এজনে এইধৰণৰ ভিত্তিহীন একপক্ষীয় চিন্তাধাৰাবোৰৰ প্ৰকাশ ঘটে। ঐতৰেয় ব্ৰাহ্মণত কন্যাই সকলো দুখৰ মূল বুলি ধৰা হৈছে। শতপথ ব্ৰাহ্মণত শূদ্ৰ আৰু কাউৰীৰ লগত নাৰীক স্থান দিয়া হৈছে। বৈদিক যুগৰ সামাজিক প্ৰস্থিতি ক্ৰমাৎ হেৰাই যাবলৈ ধৰিলে। ছোৱালীৰ জাত-কৰ্ম, অন্নপ্ৰাসন্ন আদিত বৈদিক মন্ত্ৰ নিষিদ্ধ কৰা হ'ল। তৎকালীন সময়ছোৱাত উপনয়ন নহ'লে বৈদিক শিক্ষা লাভ কৰিব নোৱাৰে এই কথালৈ লক্ষ্য কৰি যাজ্ঞবল্কই ছোৱালীৰ উপয়ন বন্ধ কৰি নাৰী প্ৰগতিৰ প্ৰতিবন্ধক হিচাপে থিয় দিয়ে।

সেই সময়ত ৰাজন্যবৰ্গৰ বাবে গণিকাৰ সাহচৰ্য প্ৰয়োজন আছিল, যাৰ কাৰণে ছোৱালীৰ বাবে নৃত্য-গীতৰ দৰে ৬৪ কলাৰ শিক্ষা লোৱাৰ বাধ্যতামূলক আছিল। পত্নীৰ চকুৰ সন্মুখতেই বিত্তবান স্বামীয়ে গণিকাৰ কাষলৈ যোৱাৰ কথা জানিও প্ৰতিবাদ কৰিবলৈ পত্নীগৰাকীৰ সাহস নাছিল। অশিক্ষিত মহিলা এগৰাকীয়ে আত্মনিৰ্ভৰশীল হৈ জীয়াই থাকিব পৰা সাহস নাছিল, যাৰ কাৰণে পুৰুষৰ দ্বাৰা প্ৰতাৰিতা লাঞ্ছিতা হৈয়ো স্বামীগৃহত নীৰৱে সকলো সহ্য কৰি জীয়াই থাকিবলৈ বাধ্য হৈছিল। বৈদিক যুগৰ শেষৰ স্তৰ আৰু ব্ৰাহ্মণ যুগৰ পৰৱৰ্তী যুগেই উপনিষদৰ যুগ। এই যুগতেই জাতিভেদ প্ৰথা ক্ৰমাৎ কঠোৰ হৈ আহিছিল। জন্মান্তৰবাদ ধাৰণাও স্পষ্ট হৈ উঠিছিল। ব্যক্তিগত সম্পত্তিৰ চেতনাই মানুহক স্বাৰ্থপৰ কৰি তুলিছিল। আনহাতে ঋকবৈদিক যুগত মৰ্যাদাসম্পন্ন সামাজিক স্থিতি হেৰুৱাই এই যুগতে নাৰী পণ্য সামগ্ৰীৰ দৰে হৈ পৰিছিল। জীৱন ধাৰণৰ কাৰণে নাৰীৰ ক্ষেত্ৰত সুকীয়া নিয়ম হ'ল। এই নিয়ম অতিক্ৰম কৰা নাৰীগৰাকী সামাজিক ৰোষত পৰিবলগীয়া হ্বিধাই নাৰীক ক্ৰমাৎ যন্ত্ৰচালিত পুতলাৰ দৰে হৈ পৰিল।

ব্ৰাহ্মণ যুগত নিজৰ স্বাৰ্থ সিদ্ধিৰ কাৰণে পুৰুষে নাৰীক ব্যৱহাৰ কৰিছিল। শিক্ষা লাভৰ জৰিয়তে পুৰুষেই পণ্ডিত বোলাইছিল। তেনে পণ্ডিতে লিখা আটাইবোৰ গ্ৰন্থতে নাৰী অৱদমনৰ নীতি-নিৰ্দেশনা বান্ধি দিছিল। উদাহৰণস্বৰূপে ঐতৰেয় ব্ৰাহ্মণৰ মতে ভাল স্ত্ৰী এগৰাকীয়ে কেতিয়াও স্বামীৰ কথাত আপত্তি বা তৰ্ক নকৰে অৰ্থাৎ স্বামীয়ে যিমানেই অপকৰ্ম নকৰক লাগে তেওঁৰ কামৰ প্ৰতিবাদ কৰিব নোৱাৰে।

মহীদাস ঐতৰেয় নামৰ এজনে এইধৰণৰ ভিত্তিহীন একপক্ষীয় চিন্তাধাৰাবোৰৰ প্ৰকাশ ঘটে। ঐতৰেয় ব্ৰাহ্মণত কন্যাই সকলো দুখৰ মূল বুলি ধৰা হৈছে। শতপথ ব্ৰাহ্মণত শূদ্ৰ আৰু কাউৰীৰ লগত নাৰীক স্থান দিয়া হৈছে। বৈদিক যুগৰ সামাজিক প্ৰস্থিতি ক্ৰমাৎ হেৰাই যাবলৈ ধৰিলে। ছোৱালীৰ জাত-কৰ্ম, অন্নপ্ৰাসন্ন আদিত বৈদিক মন্ত্ৰ নিষিদ্ধ কৰা হ'ল। তৎকালীন সময়ছোৱাত উপনয়ন নহ'লে বৈদিক শিক্ষা লাভ কৰিব নোৱাৰে এই কথালৈ লক্ষ্য কৰি যাজ্ঞবল্কই ছোৱালীৰ উপয়ন বন্ধ কৰি নাৰী প্ৰগতিৰ প্ৰতিবন্ধক হিচাপে থিয় দিয়ে।

তৈত্তেৰীয় উপনিষদত নাৰী শিক্ষা বিৰোধী মন্তব্য দাঙি ধৰিছে এনেদৰে — 'যিসকল নাৰীয়ে শিক্ষা লাভ কৰে, নাৰী হৈও তেওঁলোক পুৰুষ। (১।১৪।৪)' সেই সময়ত ৰাজন্যবৰ্গৰ বাবে গণিকাৰ সাহচৰ্য প্ৰয়োজন আছিল, যাৰ কাৰণে ছোৱালীৰ বাবে নৃত্য-গীতৰ দৰে ৬৪ কলাৰ শিক্ষা লোৱাৰ বাধ্যতামূলক আছিল। পত্নীৰ চকুৰ সন্মুখতেই বিত্তবান স্বামীয়ে গণিকাৰ কাষলৈ যোৱাৰ কথা জানিও প্ৰতিবাদ কৰিবলৈ পত্নীগৰাকীৰ সাহস নাছিল। অশিক্ষিত মহিলা এগৰাকীয়ে আত্মনিৰ্ভৰশীল হৈ জীয়াই থাকিব পৰা সাহস নাছিল, যাৰ কাৰণে পুৰুষৰ দ্বাৰা প্ৰতাৰিতা লাঞ্চিতা হৈয়ো স্বামীগৃহত নীৰৱে সকলো সহ্য কৰি জীয়াই থাকিবলৈ বাধ্য হৈছিল। প্ৰাচীন ভাৰতত নাৰীক দুই ধৰণে সংজ্ঞাবদ্ধ কৰা হৈছিল। ভোগৰ সামগ্ৰী আৰু পুত্ৰৰ জননী। শাস্ত্ৰকাৰসকলে নাৰীৰ ভোগ্যৰূপৰ কথা বাৰে বাৰে উল্লেখ কৰিছে। ভোগ্য বস্তু কাৰণেই নাৰীয়ে দক্ষিণাৰ গোধন, সোণ, ৰথ, গজ, অশ্ব আদিৰ লগত স্থান পাইছিল। যজ্ঞৰ শেষত পুৰোহিতক অন্যান্য দান-দক্ষিণা দিয়াৰ লগতে বহু ৰমণীকো দক্ষিণা স্বৰূপে আগবঢ়োৱা হৈছিল। আগস্ত্য ধৰ্মসূত্ৰত পোৱা যায় বিবাহৰ যোগেদি কন্যাক দান কৰা হয়, কিন্তু কেৱল স্বামীক নহয় স্বামীৰ পৰিয়ালক। (২।১০।২৭।৩)

১.২.৩ মধ্যযুগীয়া সমাজ ব্যৱস্থাত নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি ঃ

মধ্যযুগীয়া সমাজব্যৱস্থাত নাৰীয়ে পুৰুষ অধীনত চাৰিবেৰৰ মাজত আবদ্ধ হৈ জীৱন কটাবলগীয়া হৈছিল। সমসাময়িক সমাজত কন্যা সন্তান বিভিন্ন প্ৰকাৰে অন্ধবিশ্বাস, কুসংস্কাৰৰ বলি হ'ব লগা হৈছিল। কন্যাশিশু হত্যা, বাল্যবিবাহ, পৰ্দাপ্ৰথা, সতীদাহপ্ৰথা আদিৰ উপৰি বিধৱাৰ ওপৰত অযুক্তিকৰ নিয়ম বান্ধি জীৱন জীয়াৰ পথ অধিক জটিল কৰি তুলিছিল। মধ্যভাৰতত কন্যা সন্তান জন্ম পোৱাটো অভিশাপ স্বৰূপ বুলি ধৰি লৈ কন্যা সন্তানক জন্মৰ পিছতেই হত্যা কৰা হৈছিল। কন্যা সন্তানক বিয়া দিয়াৰ ক্ষেত্ৰত যৌতুক প্ৰথা আৰ্থিকভাৱে দুৰ্বল পিতৃ-মাতৃৰ বাবে বোজা স্বৰূপ হৈ পৰিছিল। গতিকে এই বোজাৰ পৰা পৰিত্ৰাণ পাবৰ কাৰণে কন্যা সন্তানক হত্যা কৰা হৈছিল। শিক্ষাৰ অভাৱত অন্ধবিশ্বাস, কুসংস্কাৰে সমাজখনত বিৰূপ প্ৰভাৱ পেলাইছিল। অৱশ্যে বংশ ৰক্ষাৰ নিমিত্তে জীয়াই থাকিবলৈ সুযোগ পোৱা কন্যা সন্তানক আঠ-ন বছৰ বয়সতে বয়সস্থ ব্যক্তিৰ সৈতে বাল্যবিবাহ দিয়া হৈছিল। বয়সস্থ ব্যক্তিৰ সৈতে বিয়া দিয়াত কেতিয়াবা কণমানি ছোৱালীজনীয়ে স্বামীগৃহলৈ নোযোৱাকৈয়ে বৈধব্য জীৱন অতিবাহিত কৰিছিল। মধ্যযুগত ভাৰতৰ কিছু কিছু ঠাইত সতীদাহ প্ৰথাই সমাজত বিৰূপ প্ৰভাৱ পেলাইছিল। মধ্যপ্ৰদেশৰ সৌগৰৰ কাষৰ এৰাণ নামৰ ঠাইৰ এটা স্তম্ভলিপিত ইয়াৰ স্মৃতিচিহ্ন পোৱা গৈছে।

সতীদাহ প্ৰথা চাৰিপ্ৰকাৰত ভাগ কৰা হৈছিল— *স্বামীৰ চিতাত জঁাপ দিয়া, মাটিৰ ঘৰ সাজি তাৰ ভিতৰত স্বামীৰ দেহ কোলাত লৈ জুইত ভস্মীভূত হোৱা, গাঁতৰ ভিতৰত স্বামীৰ দেহ দগ্ধ হোৱাৰ সময়ত তাত জঁাপ দিয়া, মৃত স্বামীৰ সৈতে একেলগে কবৰস্থ হোৱা।*[১]

সহমৰণ মাংগলিক কাৰ্যৰ দৰে প্ৰতিপন্ন কৰিবৰ কাৰণে উক্ত সময়খিনি ঢাক-ঢোল, শংখ-ঘণ্টা আদি মাংগলিক উৰুলি, মন্ত্ৰৰে ঠাইডোখৰ মুখৰিত কৰি তোলা হৈছিল। জীয়া-কেঁচা দেহটোৰ অগ্নিদগ্ধৰ চিৎকাৰ যাতে কাণত নপৰে তাৰ কাৰণে এই বিশেষ প্ৰস্তুতি কৰা হৈছিল। ইয়াৰ উপৰি অগ্নিদগ্ধ মহিলাগৰাকীৰ মৃত্যু নিশ্চিত কৰিবলৈ অবিৰতভাৱে চিতাৰ ওপৰত চিৎকাৰ কৰা মহিলাগৰাকীলৈ নাৰিকল দলিওৱা হৈছিল। পুৰুষপ্ৰধান সমাজ ব্যৱস্থাই এই প্ৰথা জীয়াই ৰখাত সাৰ-পানী যোগাইছিল। মধ্যযুগত মোগল সম্ৰাট জাহাংগীৰে ১৬২০ চনত কোনো বিধৱা মহিলাক সতী নাযাবৰ কাৰণে নানা উপহাৰ আৰু ধনৰ প্ৰতিশ্ৰুতি দিছিল যদিও সফল হ'ব পৰা নাছিল। ঔৰঙ্গজেবে ১৬৬৯ চনত সতীদাহ প্ৰথাৰ বিৰুদ্ধে নিষেদ্ধাজ্ঞা জাৰি কৰিছিল। তেওঁৰ এই পদক্ষেপত বহু মহিলায়ে অগ্নিদগ্ধ হোৱাৰ পৰা নিজকে ৰক্ষা কৰিব পাৰিছিল যদিও ইয়াৰ পৰা মুক্ত হ'ব পৰা নাছিল। ক্ষত্ৰিয় মহিলাসকলৰ ওপৰত পাৰিবাৰিক সামাজিক হেঁচাই এক প্ৰকাৰৰ সতীদাহ প্ৰথা বাধ্যতামূলক কৰি তুলিছিল। ১৮ শতিকাৰ শেষৰ ফালে মাৰাঠা ৰাজ্যত সতী প্ৰথা নিষিদ্ধ হোৱা বুলি ক'ব পাৰি। ইয়াৰ পিছত এই প্ৰথাৰ বিৰুদ্ধে পৰ্তুগীজ সকলেও চেষ্টা চলায়। এইদৰে বিভিন্নজনে নিজৰ নিজৰ শাসন কালত সমাজৰ কু-প্ৰথাক নিঃশেষ কৰাৰ চেষ্টা চলাইছিল যদিও ১৯ শতিকাত বৃটিছসকলে ভাৰতবৰ্ষত শাসন কৰিবলৈ লোৱাৰ পৰাই সমাজ সংস্কাৰৰ বিভিন্ন দিশবোৰ উন্মোচন হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। অসমত

সতীদাহ প্ৰথাৰ প্ৰচলন নাছিল। অৱশ্যে নগৰ সভ্যতা গঢ় লৈ উঠাৰ অন্তৰালত প্ৰাচীন গ্ৰীচ, ৰোম, মিচৰ, ফিনিচিয়া, বেবিলন, ভাৰতবৰ্ষৰ লগতে অসমতো দেৱদাসীৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা আছিল। ঊনবিংশ শতিকাত বৃটিছসকলে ভাৰতৰ জনসাধাৰণ ক যিদৰে শাসন আৰু শোষণ দুয়োটাই কৰিছিল, তাৰ বিপৰীতে অন্ধবিশ্বাস, কু-সংস্কাৰৰ গ্ৰাসত ডুব যাবলৈ ধৰা সমাজখনত সমাজ সংস্কাৰৰ ক্ষেত্ৰত বিশেষভাৱে বৰঙণি যোগাইছিল বুলি বিনা দ্বিধাই ক'ব পাৰি। বৃটিছসকলৰ সংস্কাৰ আন্দোলনৰ ফলত ভাৰতীয় মহিলাৰ এক নতুন অধ্যায়ৰ সূচনা হ'ল। বৃটিছসকলে সতীদাহ প্ৰথা নিঃশেষ কৰিবলৈ সক্ষম হয়। ইয়াৰ লগতে বিধৱা বিৱাহ প্ৰচলন, স্ত্ৰী শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত গুৰুত্ব, বহু বিবাহ নিষিদ্ধ, সতীদাহ প্ৰথাৰ ক্ষেত্ৰত বাধা আৰোপ কৰা, দেৱদাসী আদি বিভিন্ন দিশত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছিল। ১৯৮৮ চনত ভাৰতবৰ্ষত সতীদাহ প্ৰথা বন্ধ কৰাৰ লগতে একেটা বছৰৰ পৰা পৰা দেৱদাসী নৃত্যও বেআইনী ঘোষণা কৰাৰ পিছৰে পৰা এই প্ৰথা লাহে লাহে নোহোৱা হৈ আহে। ভাৰতৰ সমাজ ব্যৱস্থাত লাহে লাহে পাশ্চাত্য শিক্ষাৰ প্ৰভাৱ পৰিবলৈ ধৰে।

১.২.৪. ঊনবিংশ আৰু বিংশ শতিকাৰ প্ৰেক্ষাপটত নাৰীৰ সামাজিক স্থিতিৰ অৱলোকন ঃ

বৃটিছসকলে সমাজ সংস্কাৰৰ দিশত লোৱা বিভিন্ন পদক্ষেপ সমূহৰ ভিতৰত শিক্ষাৰ দিশটোত বিশেষ গুৰুত্ব প্ৰদান কৰিছিল। তেওঁলোকৰ এই শিক্ষা ব্যৱস্থাত কোনো ধৰণৰ লিংগ বৈষম্য নাই, বৰঞ্চ নাৰী শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত অধিক গুৰুত্ব প্ৰদান কৰিছিল। ভাৰতীয় শিক্ষাৰ প্ৰথমটো আয়োগ ১৮৮২ চনত উইলিয়াম হাণ্টাৰৰ নেতৃত্বত গঠন হয়। হাণ্টাৰে নাৰী শিক্ষাৰ প্ৰয়োজনীয়তা অনুভৱ কৰি কেতবোৰ পৰামৰ্শ আগবঢ়াইছিল।

(ক) চৰকাৰী ধন ল'ৰা-ছোৱালীৰ শিক্ষাৰ বাবে সমভাৱে বিতৰণ কৰা।
(খ) বিনামূলীয়া স্ত্ৰী শিক্ষাৰ ব্যৱস্থা কৰা।
(গ) দূৰৰ ছাত্ৰীৰ কাৰণে আবাস আৰু দুখীয়া ছাত্ৰীৰ বাবে বৃত্তিৰ ব্যৱস্থা কৰা।
(ঘ) যিবোৰ ঠাইত স্ত্ৰী-শিক্ষাৰ দায়িত্ব গ্ৰহণৰ বাবে স্থানীয় সংস্থাৰ অভাৱ তাত চৰকাৰে দায়িত্ব গ্ৰহণ কৰিব লাগে।

বৃটিছসকলে তেওঁলোকৰ শাসন কালত ভাৰতবৰ্ষত স্ত্ৰী-শিক্ষাৰ উন্নতিৰ কাৰণে বিভিন্ন সময়ত বিভিন্ন আয়োগ গঠন কৰিছিল। এইবোৰৰ ভিতৰত উদৰ প্ৰতিবেদন, হান্টাৰ আয়োগ, লৰ্ড কৰ্জনৰ শিক্ষানীতি অন্যতম। স্ত্ৰী-শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত ডেলহাউছীৰ পৃষ্ঠপোষকতাত ১৮৪৯ চনত প্ৰথমে বেথুন স্কুল আৰু তাৰ পিছত বেথুন কলেজ স্থাপন হয়। এইখন ভাৰতবৰ্ষৰ প্ৰথম মহিলা কলেজ। তেওঁলোকৰ উদ্দেশ্য আছিল *'Better wives and better mother in the homes.'* [২]

ধৰ্মপ্ৰচাৰৰ উদ্দেশ্যে অসমলৈ অহা খ্ৰীষ্টান মিছনেৰী সকলেও স্ত্ৰী- শিক্ষাৰ প্ৰতি সচেতন আছিল আৰু স্ত্ৰী-শিক্ষাৰ হকে স্কুল প্ৰতিস্থাকে ধৰি বিভিন্ন গঠনমূলক কাম কৰে। সমসাময়িক সমাজত ধৰ্মান্ধতা, কুসংস্কাৰ, অন্ধবিশ্বাসে গুৰিলৈকে শিপাই যোৱা জাতিটোৰ বাবে শিক্ষা বোলা কথাটো একেবাৰে গৌণ হৈ পৰিছিল। হলিৰাম ঢেকিয়াল ফুকন, যজ্ঞৰাম খাৰঘৰীয়া ফুকন আৰু আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকন এখেতসকলে বংগৰ অনুকৰণত অসমৰ স্ত্ৰী শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত আগভাগ লৈছিল। ইয়াৰ উপৰি গুণাভিৰাম বৰুৱাৰ স্ত্ৰীশিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত অগ্ৰণী ভূমিকা আছিল। শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত শিক্ষিত ব্যক্তিসকলৰ অবদানে ৰক্ষণশীল নিৰক্ষৰ সমাজখনৰ অধিকাংশ লোককে প্ৰভাৱিত কৰিব পৰা নাছিল , ফলস্বৰূপে নাৰীৰ উত্তৰণৰ বিষয়টো অতি লেহেমীয়া গতি ৰে আগবাঢ়িছিল। অসমীয়া সমাজখনত তেতিয়াও অন্ধবিশ্বাস, কু-সংস্কাৰে শিপাই আছিল। পৰম্পৰা আৰু পৰিবৰ্তনৰ এই সন্ধিক্ষণৰ কালছোৱাত ছোৱালী এজনীয়ে লিংগ বৈষম্য, বাল্য- বিবাহ, পৰিবেশ, পৰিয়াল, অৰ্থনীতি আদি বিভিন্ন ধৰণৰ সমস্যা আৰু প্ৰত্যাহ্বান নেওচি শিক্ষাৰ জৰিয়তে নিজৰ লগতে সমাজৰ উত্তৰণ সাধন কৰাটো কোনো পধ্যে সহজ সাধ্য নাছিল। তৎসত্বেও কেইবাগৰাকী নাৰীয়ে পৰম্পৰা আৰু পৰিবৰ্তৰ সন্ধিক্ষণত প্ৰত্যাহ্বান নেওচি নিজৰ ব্যক্তিত্বৰ উত্তৰণ সাধন কৰাৰ লগতে সমাজৰ উত্তৰণ ঘটোৱাত বৰঙণি যোগাইছে।

অসমীয়া সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰত নিৰুপমা বৰগোহাঞিৰ অৱদান লেখত ল'বলগীয়া। সমাজ-সচেতন সাহিত্যিক গৰাকীৰ কেইবাখনো উপন্যাসত সমসায়িক সমাজৰ নাৰীৰ সামাজিক স্থিতিৰ বাস্তৱ স্বৰূপ প্ৰকাশ ঘটিছে। তেওঁৰ কেইবাখনো উপন্যাসত দেখা গৈছে সমস্যা আৰু প্ৰত্যাহ্বানৰ গ্ৰাসত মৃত্যু অথবা মৃত্যুসম জীৱন জীয়া নাৰী আৰু তাৰ সমান্তৰালভাৱে প্ৰকাশ পাইছে সমস্যাক প্ৰত্যাহ্বান জনাই নিজৰ লগতে সমাজত যিহেতু এই অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য হৈছে - প্ৰত্যাহ্বান অতিক্ৰমি নিজৰ লগতে সমাজৰ বিকাশ সাধন কৰা নাৰী। গতিকে নিৰুপমা বৰগোহাঞিৰ নিৰ্বাচিত গঠনমূলক উপন্যাস এই অধ্যয়নৰ মূখ্য উ ল্ডঋীব্য।

নিৰুপমা বৰগোহাঞিৰ অভিযাত্ৰী উপন্যাসখনৰ জৰিয়তে তদানীন্তন অসমীয়া সমাজত নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি সম্পৰ্কে

আলোচনা কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। নিৰুপমা বৰগোহাঞিৰ অভিযাত্ৰী উপন্যাসখন চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীৰ জীৱনভিত্তিক উপন্যাস। উপন্যাসখনত কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰৰ লগতে সমাজৰ আনুষংগিক দিশ নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি আদিও সুন্দৰভাৱে কাহিনীৰ লগে লগে প্ৰকাশ ঘটিছে।

সমসাময়িক সমাজত ধৰ্মান্ধতা, কুসংস্কাৰ, অন্ধবিশ্বাসে গুৰিলৈকে শিপাই যোৱা জাতিটোৰ বাবে শিক্ষা বোলা কথাটো একেবাৰে গৌণ হৈ পৰিছিল। হলিৰাম ঢেকিয়াল ফুকন, যজ্ঞৰাম খাৰঘৰীয়া ফুকন আৰু আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকন এখেতসকলে বংগৰ অনুকৰণত অসমৰ স্ত্ৰী শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত আগভাগ লৈছিল। ইয়াৰ উপৰি গুণাভিৰাম বৰুৱাও স্ত্ৰীশিক্ষাৰ পৃষ্ঠপোষক আছিল।

চন্দ্ৰপ্ৰভা সৰুৰে পৰা শিক্ষাৰ প্ৰতি আগ্ৰহী আছিল। কণমানি অৱস্থাৰ পৰা চন্দ্ৰপ্ৰভাই শিক্ষাৰ কাৰণে প্ৰত্যাহ্বানৰ সন্মুখীন হ'ব লগা হৈছিল। বিংশ শতিকাৰ অসমীয়া সমাজখনত নাৰীৰ বাবে পৰম্পৰাগতভাৱে চলি অহা অযুক্তিকৰ নীতি-নিয়মবোৰ প্ৰচলিত হৈ আছিল যদিও ইয়াৰ মাজেৰে একাংশ নাৰীয়ে শিক্ষাৰ উত্তৰণৰ দিশত বিশেষভাৱে কাম কৰে ইয়াৰ ভিতত চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানী নাম লেখত ল'ব লগীয়া। উপন্যাসখনৰ আৰম্ভণিতে শিশু চন্দ্ৰপ্ৰিয়া ৰ মানসিক অন্তৰ্দ্বন্দ্বৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। 'চন্দ্ৰপ্ৰিয়াৰ চুলি ছিঙি নিজকে আকুহি-বাকুহি বখলিয়াবৰ মন যায়। *পঢ়া-শুনা এই চখটোনো ভগৱানে তাইক কিয় এনেকৈ দিলে, গাঁৱৰ আন ছোৱালীবোৰোতো আছে, সিহঁতৰ কাৰো এনেকৈ পঢ়ালৈ ধাউতি নাই। সিহঁতবোৰ ঘৰৰ কাম-কাজ লৈয়ে সন্তুষ্ট, কাৰো গৰজ নাই এনেকৈ বোকা-পানী গছকি বাট কুৰি বাই ল'ৰাৰ এম ভি স্কুল এখনত পঢ়ি 'পণ্ডিতনী হ'বলৈ অহাৰ'।*[৩]

সমাজত নাৰীৰ হেতু প্ৰচলিত কিছুমান নিয়মে নাৰীক পৰাধীন কৰিহে তুলিছিল। প্ৰাইমেৰী পাছ কৰি বাল্যবিবাহৰ বন্ধনত বান্ধখোৱা চন্দ্ৰপ্ৰভাই এই বন্ধনৰ পৰা বিনা দ্বিধাই মুক্তহৈ মাত্ৰ তেৰ বছৰ বয়সতে ছোৱালীৰ কাৰণে স্কুল প্ৰতিষ্ঠা কৰিছিল।

'তাৰ মানে তোমাৰ বয়স এতিয়া মাত্ৰ তেৰ বছৰ! আৰু ছোৱালী হৈয়ো তোমাৰ আৰু ভনীয়েৰাৰ পঢ়া-শুনাৰ প্ৰতি ইমান হেঁপাহ' নীলকান্ত বৰুৱাই স-প্ৰশংস বিস্ময়ৰ ভাৱেৰে ক'লে -

'মই কিন্তু মহোদয়, দেহাটোৰ বাহিৰে আন কথাত ল'ৰা-ছোৱালীৰ কিবা প্ৰভেদ আছে বুলি নাভাবো। ঈশ্বৰে আমাক সৃষ্টি কৰাৰ সময়ত এই কথা কৈ পঠিওৱা নাই যে ল'ৰাইহে পঢ়া-শুনা কৰিব পাৰিব, ছোৱালীয়ে নোৱাৰে।' চন্দ্ৰই সসম্ভ্ৰমে যদিও অসহিষ্ণু মাতেৰে ক'লে।'[৪]

ইমান কম বয়সীয়া ছোৱালীজনীৰ প্ৰতিভা আৰু সাহস দেখি স্কুল পৰিদৰ্শকনীলকান্ত বৰুৱাই চন্দ্ৰপ্ৰভা আৰু ৰজনীপ্ৰভাক নগাঁৱৰ মিছন স্কুলত পঢ়াৰ সুবিধা কৰি দিয়ে। পিছত নগাঁও মিছন স্কুলৰ পৰা শিক্ষা সাং কৰি তেজপুৰত শিক্ষয়িত্ৰী পদত যোগদান কৰে। নগাঁৱত শিক্ষা সমাপ্ত কৰি চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীয়ে তেজপুৰত শিক্ষকতা কামত অধিস্থিত হয়। স্বাধীনতা আন্দোলনত জ্যেতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা, কিৰণময়ী আগৰৱালাৰ দৰে আন দেশপ্ৰেমীৰ সৈতে স্বাধীনতা আন্দোলনত সক্ৰিয়ভাৱে অংশগ্ৰহণ কৰে।

'আইসকল, আপোনালোক মানুহ নহৈ জন্তু নেকি যে এই গৰালৰ ভিতৰত সোমাই আছে? আপোনালোকে এনেকৈ নিজকে লুকুৱাই আঁৰত বহি থাকি পুৰুষৰ হুকুমৰ দাসী বুলি পৰিচয় দিয়া নাই নে? আপোনালোকৰ যদি অলপো আত্মসন্মান আছে তেন্তে এই গৰালৰ ভিতৰৰ পৰা তুৰন্তে ওলাই আহক আৰু নিজকে এই অপমানৰ পৰা বচাওক।'[৫]

একেটা সময়তে দণ্ডীনাথ কলিতাৰ সৈতে গন্ধৰ্ব বিবাহপাশত আৱদ্ধ হয়। দুয়োৰে প্ৰেমৰ সাক্ষী স্বৰূপে এটি পুত্ৰ সন্তান জন্ম হয়। জাত-পাতৰ বিচাৰত পিতৃ-মাতৃৰ কথা কোনোমতে অৱজ্ঞা কৰিব নোৱাৰি আজ্ঞাকৰী পুত্ৰ দণ্ডীনাথ কলিতাই অন্য এগৰাকী ছোৱালীক বিয়া কৰায়। চন্দ্ৰপ্ৰভাৰ সৈতে চিঠিৰেই সম্পৰ্ক অটুত ৰাখে। ৰক্ষণশীল সমকালীন সমাজত পিতৃ পৰিচয়ৰ অবিহনে এগৰাকী নাৰীয়ে সন্তান ডাঙৰ কৰাৰ কথাটো কোনোপধ্যে সহজ নাছিল। *'কিন্তু মই তেজপুৰত থাকিব নোৱাৰিলোঁ। কুষ্ঠৰোগীৰ দৰেই মানুহৰ ঘৃণা আৰু বেশ্যাৰ দৰে অপযশ মূৰত লৈ মই সেইখিনি ঠাইৰ পৰা পলাই আহিব লগা হ'ল। কিয়? কিয়? মোৰ কি অপৰাধ? আৰু যদি অপৰাধ কৰিছিলোৱেই মই অকলে সেই অপৰাধ কৰিছিলোনে? তেওঁ কৰা নাছিল নে? তেন্তে তাৰ শাস্তি মই কিয় অকলেই মূৰ পাতি ল'ব লগা হ'ল? মই অকলেই সকলো কলংকৰ বোজা মূৰত লৈ আজি ঘৃণাৰ পাত্ৰীৰ জীৱন কটাব লগীয়া হৈছে কিয়, মই এজনী তিৰোতা মানুহ আৰু তেওঁ পুৰুষ মানুহ? কাৰণটো এইটোৱেই নহয়।' জানো? হয় একমাত্ৰ কাৰণ এইটোৱেই।'*[৬]

জাত-পাতৰ ভেদাভেদৰ বিৰুদ্ধে সদা সচেতন নাৰী গৰাকীয়ে নিজেই জাত-পাতৰ বিচাৰত এক প্ৰকাৰৰ সমগ্ৰ জীৱন সমাজৰ সৈতে যন্ত্ৰণাকাতৰ জীৱন জীয়াব লগা হৈছিল।

স্বাধীনতা আন্দোলনত বিংশ শতিকাৰ মহিলাৰ অৱদান উল্লেখনীয়। দেশৰ কাৰণে কনকলতা বৰুৱাই প্ৰাণ আহুতি দিয়ে। পুষ্পলতা দাসে ভগৎ সিঙক ফাঁচি দিয়াৰ বাবে প্ৰতিবাদ কৰাৰ দোষত তেওঁক বিদ্যালয়ৰ পৰা অব্যাহতি দিয়া

হয়, গুণেশ্বৰী দেৱী, মুক্তবালাদেৱী, চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানী, অমলপ্ৰভা দাস আদিৰ লগতে বহু দেশপ্ৰেমী নাৰীয়েও স্বাধীনতা আন্দোলনত অংশগ্ৰহণ কৰি জে'ল খাটিব লগা হৈছিল। দেশৰ চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীৰ নেতৃত্বত অসমত প্ৰথমটো নাৰী সংগঠন 'অসম মহিলা সমিতি' ১৯২৬ চনত গঠন কৰে। অসমৰ গাঁৱে-ভূঞে মহিলাসকলক সংগঠিত কৰাৰ ক্ষেত্ৰত মহিলা সমিতিয়ে গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছিল। চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীয়ে মহিলা সমিতি গঠন কৰি সভাৰ প্ৰতিবেদন কমলালয়া কাকতিৰ দ্বাৰা প্ৰকাশিত প্ৰথম অসমীয়া মহিলা আলোচনী ঘৰজেউতিৰ পাতত প্ৰকাশ কৰিছিল। চন্দ্ৰপ্ৰভাৰ মতে গৃহবন্দী বা অৱৰোধ প্ৰথা অতীতৰ অসমত কোনো দিনেই নাছিল। তেওঁৰ লেখাত জয়মতী, মূলাগাভৰুৰ বীৰত্বৰ গাথা সম্পৰ্কে উল্লেখ কৰিছে।

চন্দ্ৰপ্ৰভাই বুৰঞ্জীৰ পাতত ভেজা দি আহোম ৰাজকাৰ্যত তিৰোতাৰ যোগদান যে একো নতুন কথা নাছিল এই সম্পৰ্কে উল্লেখ কৰিছে। ঠিক একেদৰে তেওঁৰ আন এটা লেখা 'উন্নতিৰ পথত ৰুশ নাৰী' শীৰ্ষক নিবন্ধত ৰুছ নাৰী কেনেকৈ উন্নতিৰ শীৰ্ষ স্তৰত উপনীত হ'ল তাৰ আভাস দিছে। বিংশ শতিকাৰ অসমীয়া সমাজখনতো পুৰুষসকল নাৰীৰ বিকাশত বাধা হোৱা দেখা নাযায়। বৰং শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত তেওঁলোকৰ অৱদান প্ৰশংসনীয়। এই সম্পৰ্কে চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীয়ে লিখিছে —

'আমাৰ আসামৰ শিক্ষিত পুৰুষসকল সদায় উদাৰ। আমাৰ কামত তেওঁলোক বাধা হোৱা নাই, আমিয়েই বৰং আগবাঢ়ি অহা নাছিলোঁ।'[৭]

সমাজ এখনৰ সৰ্বাংগীন উন্নতিৰ কাৰণে স্ত্ৰীশিক্ষাৰ বিষয়টো অত্যন্ত গুৰুত্বপূৰ্ণ। তাৰ কাৰণে চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীৰ লগতে মহিলা সমিতিৰ অৱদান উল্লেখনীয়। বিভিন্নধৰণৰ প্ৰত্যাহ্বান মাজেৰে শিক্ষাৰ জৰিয়তে নিজৰ লগতে দেশৰ উৎকৰ্ষ সাধনত তেওঁৰ আজীৱন প্ৰচেষ্টা উল্লেখনীয়।

২.০ **সিদ্ধান্ত আৰু সামৰণি ঃ**

— শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত ঋক্ বৈদিক সমাজত বিশেষ গুৰুত্ব প্ৰদান কৰা হৈছিল। বিংশ শতিকাৰ অসমীয়া সমাজখনতো শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত স্ত্ৰীসকলে পুনৰ জাগি উঠাৰ চেষ্টা কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে।

— ঋক্‌বৈদিক যুগত কেৱল উচ্চশ্ৰেণী যেনে— ব্ৰাহ্মণ, ক্ষত্ৰিয়, বৈশ্য এই তিনি শ্ৰেণীয়ে শিক্ষা গ্ৰহণ কৰাৰ কথা উল্লেখ আছে; কিন্তু বিংশ শতিকাৰ অসমীয়া সমাজত বিশেষকৈ শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত শ্ৰেণী বৈষম্য পূৰ্বৰ তুলনাত হ্ৰাস হোৱা পৰিলক্ষিত হয়।

— বিদুষী নাৰী সম্পৰ্কে ঋক বেদত উল্লেখ আছে। বিদুষী নাৰী ঋষিয়ে পুৰুষৰ সৈতে (শাস্ত্ৰত পুৰুষৰ সৈতে) সমকক্ষ আছিল, ঠিক একেদৰে বিংশ শতিকাতো অভিযাত্ৰী উপন্যাসখনৰ আধাৰত দেখা যায় চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীয়ে পুৰুষৰ সৈতে সমানে শিক্ষা আৰু সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰত সমকক্ষ হোৱাৰ লগতে উদাত্ত ভাষণেৰে সভাত চিকৰ আঁৰত বহি থকা মহিলাক মুকলি আকাশৰ তললৈ ওলাই আহিবলৈ বাধ্য কৰাইছিল।

— ঋকবৈদিক সময়ত নাৰীয়ে শত্ৰুৰ বিপক্ষে যুদ্ধ কৰাৰ উদাহৰণ লক্ষণীয়। ঠিক একেদৰে অভিযাত্ৰী উপন্যাসখনত চন্দ্ৰপ্ৰভাৰ লগতে আন মহিলাসকলে স্বাধীনতা আন্দোলনত যোগদান কৰি সাহসিকতা আৰু দেশপ্ৰেমৰ পৰিচয় দাঙি ধৰে।

— ঋকবৈদিক সময়ত শিক্ষাৰ লগতে নাৰীয়ে অন্যান্য আনুষংগিক দিশত যিদৰে গুৰুত্ব প্ৰদান কৰা দেখা যায়, ঠিক একেদৰে বিংশ শতিকাৰে চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীয়ে মহিলা সমিতিৰ জৰিয়তে নাৰী স্বাৱলম্বী হ'ব পৰাকৈ শিক্ষাৰ লগতে আনুষংগিক দিশতো গুৰুত্ব প্ৰদান কৰিছিল, যিবোৰ মহিলাক কৰ্মোদ্যমী কৰি তোলাত সহায় কৰিছিল।

—বেদক প্ৰাচীন ভাৰতীয় প্ৰথম ধৰ্মগ্ৰন্থ বুলি জনা যায়। প্ৰাচীন ভাৰতীয় সমাজত নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি সম্পৰ্কে ঋকবেদত পোৱা যায়। এই যুগত নাৰী বহুক্ষেত্ৰত স্বাধীন আছিল। ঋকবৈদিক সময়ৰ পিছৰ পৰা লাহে লাহে নাৰীৰ সামাজিক মৰ্যাদা হ্ৰাস পাবলৈ ধৰে। ঋকবৈদিক যুগৰ পিছৰ সময়ছোৱাত ঋকবৈদিক যুগৰ চিন্তা-ধাৰাক অনুসৰণ কৰা হ'লে নাৰীৰ সামাজিক মৰ্যাদা পিছৰ সময়খিনিত যদি বৰ্তি থাকিলহেঁতেন বিংশ শতিকালৈকে এই সুদীৰ্ঘ সময়ছোৱা অতিক্ৰম কৰাৰ পিছত নাৰীয়ে শিক্ষাৰ লগতে স্বাৱলম্বী হৈ জীয়াই থাকিবলৈ নতুনকৈ সংগ্ৰাম কৰিব লগা নহ'লহেঁতেন।

—ঋকবৈদিক যুগত যিদৰে মহিলাৰ উৎকৰ্ষ সাধনত পুৰুষসকল বাধাৰ প্ৰাচীৰস্বৰূপে থিয় দিয়া নাছিল, ঠিক একেদৰে বিংশ শতিকাৰ অসমীয়া সমাজখনতো পুৰুষসকল নাৰীৰ বিকাশত বাধা হোৱা দেখা নাযায়।

মহিলাৰ শিক্ষা তথা আত্মনিৰ্ভৰশীলতাৰ প্ৰসংগত মহিলা নিজেই আগুৱাই অহাৰ লগতে প্ৰত্যেকেই কৰ্মসংস্কৃতিৰে সমাজৰ বিকাশত সহায়ক হ'ব লাগিব, তেতিয়াহে সমাজ তথা দেশ এখনৰ সৰ্বাংগীন বিকাশ সম্ভৱপৰ হ'ব। ❑

পাদটীকা ঃ

১। ৰাজখোৱা, অজন্তা। নাৰী ঐতিহ্য আৰু বাগধাৰা, ঐকান্তিক, দ্বিতীয় সংস্কৰণ, ২০২০, পৃ. ৫৭
২। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ১০০
৩। বৰগোহাঞি, নিৰুপমা। অভিযাত্ৰী, ষ্টুডেণ্টচ্ ষ্ট'ৰ্চ্, প্ৰথম সংস্কৰণ, ২০১৯, পৃ. ১২
৪। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ.৬৯
৫। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ১৮০
৬। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ৮৬
৭। মহন্ত, অপৰ্ণা (সম্পা.)। ঘৰ-জেউতি, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, **২০০৮**, পৃ.৭৪৯

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

১। কলিতা, নিৰঞ্জন। অসমীয়া জীৱনভিত্তিক উপন্যাস এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন, বাণী মন্দিৰ, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০৯
২। ঠাকুৰ, নগেন। এশ বছৰীয়া অসমীয়া উপন্যাস, জ্যোতিপ্ৰকাশন, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০০
৩। বসু, যোগীৰাজ। বেদৰ পৰিচয়, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, অষ্টম সংস্কৰণ ২০১৯
৪। বৰগোহাঞি, নিৰুপমা। অভিযাত্ৰী, ষ্টুডেণ্টচ্ ষ্ট'ৰ্চ্, প্ৰথম সংস্কৰণ, ২০১৯
৫। বৰা, জুনু। নাৰী ঊনবিংশ শতিকাৰ পৰা বিংশ শতিকালৈ, পূৰ্বায়ণ প্ৰকাশ, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০২৩
৬। দাস, মঞ্জুমালা। নাৰী আৰু অন্যান্য, মিতালী অফছেট প্ৰিণ্টাৰ্চ, ২০২২
৭। মহন্ত, অপৰ্ণা (সম্পা.)। ঘৰ-জেউতি, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, **২০০৮**
৮। ৰাজখোৱা, অজন্তা। নাৰী ঐতিহ্য আৰু বাকধাৰা, ঐকান্তিক, ২০১৭
৯। শইকীয়া, ডিম্বেশ্বৰ। বৈদিক সাহিত্য সংস্কৃতিৰ জিলিঙনি, ঋতুৰাজ প্ৰিণ্টাৰ্চ, ২০০৪

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

মামণি ৰয়চম গোস্বামীৰ *“দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা”* উপন্যাসত আত্মজীৱনীমূলক উপাদান ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন

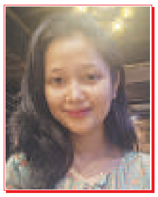

প্ৰাৰ্থনা ফুকন

গৱেষক ছাত্ৰী, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-০১
৭০৮৬৪৩৮৯৪৯
phukanprarthana123@gmail.com

ডঃ মহেশ্বৰ কলিতা

প্ৰাধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-০১
৯৮৬৪০৭৫০৯০
kalitasir2020@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

অসমীয়া সাহিত্য জগতৰ এগৰাকী স্বনামধন্য মহিলা সাহিত্যিক হৈছে মামণি ৰয়চম গোস্বামী। একো একোটা জীৱন্ত ঘটনাক সামান্যতম কল্পনাৰ আৱেশেৰে সাহিত্য ৰূপ প্ৰদান কৰাত গোস্বামী সিদ্ধহস্ত। অসমৰ লগতে ভাৰতবৰ্ষ আৰু পৃথিৱীৰ ভিন্ন প্ৰান্তৰ প্ৰেক্ষাপটক সাহিত্যত উপস্থাপন কৰা গোস্বামীৰ লেখাৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত হৈছে — শ্ৰমিক শ্ৰেণীৰ যন্ত্ৰণাকাতৰ জীৱন সংগ্ৰাম, পৰম্পৰাগত ন্যায় আৰু সমাজ-ব্যৱস্থাৰ প্ৰতি বিৰোধভাব, সমাজত নাৰীৰ প্ৰাপ্য অধিকাৰ-মৰ্যদাক লৈ তীব্ৰ প্ৰতিবাদ, দেহজ প্ৰেম, দেহোপজীৱিনীৰ জীৱন অন্বেষণ, ভাৰতীয় ৰাজনৈতিক আৰু অৰ্থনৈতিক পৰিৱেশ-পৰিস্থিতি, বিদেশ ভ্ৰমণৰ সময়ত গোটোৱা অনেক স্মৃতি। এই সকলোবোৰৰ লগতে সত্ৰীয়া সমাজ-জীৱনক লৈ ৰচিত গোস্বামীৰ *“দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা”* উপন্যাসখন অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যৰ ভঁৰালত এক অনবদ্য অৱদানৰূপে জিলিকি ৰ'ব। সত্ৰৰ পৰিৱেশত শৈশৱ অতিবাহিত কৰা লেখিকাই উপন্যাসখনত সত্ৰীয়া সমাজ-জীৱনৰ অনেক ঘটনা-পৰিঘটনাৰ কথা উল্লেখ কৰিছে। বাস্তৱ আধাৰিত ঘটনা প্ৰবাহৰ বিৱৰণ থকা উপন্যাসখনক লেখিকাৰ আত্মজীৱন কথাৰ এক অংশ বুলিলেও ভুল নহ'ব। কাহিনীৰ কাল্পনিকতা আৰু দুই-এটি চৰিত্ৰক বাদ দি উপন্যাসখনত বৰ্ণিত প্ৰায়বোৰ চৰিত্ৰকে লেখিকাই বাস্তৱ জীৱনৰ পৰা বুটলি আনিছে। দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধৰ শেষৰ ফালে তথা ভাৰতে স্বাধীনতা লাভ কৰা সময়ছোৱাৰ দক্ষিণ কামৰূপৰ সত্ৰসমূহৰ ভগ্নপ্ৰায় সমাজ - জীৱনৰ ছবি উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত হৈছে। পতন হ'বলৈ ধৰা এখন ৰক্ষণশীল সমাজ, সামন্তবাদী সমাজ ব্যৱস্থাৰ ঠাইত সাম্যবাদৰ উকমুকনি, আদবয়সতে স্বামীহাৰা হোৱা সত্ৰৰ গোসাঁনীসকলৰ বাবে নিৰ্মিত আচুতীয়া নিয়ম-নীতি, সমাজে তেওঁলোকৰ প্ৰতি কৰা লাঞ্ছনা, অনাদৰ-অৱহেলা আৰু তেওঁলোকৰ মনত প্ৰোথিত হৈ থকা কামনা-বাসনা, নিঃসংগতাবোৰৰ নিখুঁত ছবি উপন্যাসখনৰ মাজেৰে পৰিব্যাপ্ত হৈছে। আমাৰ এই অধ্যয়নত *“দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা”* উপন্যাসখনত বৰ্ণিত সত্ৰীয়া সমাজ-জীৱন আৰু ইয়াত সংঘটিত হোৱা বিভিন্ন ঘটনাৱলী আৰু চৰিত্ৰসমূহৰ সৈতে জড়িত হৈ থকা লেখিকাৰ বাস্তৱ জীৱনৰ অভিজ্ঞতাসমূহক আলোচনা কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

আত্মজীৱনী, উপন্যাস, মামণি, সত্ৰীয়া সমাজ, সত্ৰ।

অৱতৰণিকা ঃ

সাহিত্যৰ দুটা সমৃদ্ধ ভাগ স্বৰূপে আত্মজীৱনী আৰু উপন্যাসক বিভিন্ন সময়ত আলোচনা কৰি অহা হৈছে। সাহিত্যৰ অন্যতম ৰূপ হৈছে আত্মজীৱনী। এগৰাকী লেখকে যেতিয়া নিজে নিজৰ জীৱনবৃত্তান্ত ৰচনা কৰে তেতিয়া তেনে সাহিত্যিক আত্মজীৱনী বোলা হয়। গোবিন্দ প্ৰসাদ শৰ্মাই তেখেতৰ *‘জীৱনী আৰু আত্মজীৱনী ঃ অসমীয়া আৰু*

পাশ্চাত্যত' গ্ৰন্থত আত্মজীৱনী সম্পৰ্কত এইদৰে উল্লেখ কৰিছে—

"আত্মজীৱনী কোনো লোকৰ জীৱনৰ কোনো এক অৱস্থানত বা কোনো এছোৱা কালত নিজৰ বিষয়ে মানসিক আত্মপ্ৰকাশ আৰু আত্মবিচাৰ।" (শৰ্মা, *জীৱনী আৰু আত্মজীৱনী ঃ অসমীয়া আৰু পাশ্চাত্যত*, পৃ.১৭০)।

আনহাতে, কল্পনাৰ পূৰ্ণ উপস্থিতিৰে সৈতে লেখকে ব্যক্তিগত অথবা সমাজ অধিকৃত কেতবোৰ জীৱন্ত ঘটনাক একোটা দীঘলীয়া কাহিনী আৰু চৰিত্ৰৰ সমাৱেশেৰে উপস্থাপনৰ যো-জা কৰিলে তেনে সাহিত্যক উপন্যাস বোলা হয়। "Encyclopaedia Britannica"ত উপন্যাসৰ সংজ্ঞা প্ৰদান কৰা হৈছে এনেদৰে - 'A sustained story which is not historically true, but might very easily be so.' (বৰা, সাহিত্য উপক্ৰমণিকা, পৃ.১৩৪)

সাহিত্যৰ পথাৰত দুয়োবিধ ৰচনাই নিজৰ সুকীয়া পৰিচয়েৰে পাঠকৰ দৃষ্টি আকৰ্ষণ কৰি আহিছে। উপন্যাসত কাল্পনিকতাৰ সমাৱেশ পৰিলক্ষিত হোৱাৰ দৰে আত্মজীৱনীকাৰে নিজৰ জীৱন সমৃদ্ধ ৰচনা কৰোঁতে বহুসময়ত ঘটনাৱলীৰ বিশ্লেষণত কাল্পনিকতাৰ সহায় লয়। প্ৰথম পুৰুষত ৰচিত এনে সাহিত্যই চমুকৈ আত্মজীৱনীমূলক উপন্যাসৰূপে সাহিত্যত আলোচিত হৈ আহিছে। কোনো বাস্তৱ চৰিত্ৰই যেতিয়া প্ৰথম পুৰুষত নিজৰ জীৱনৰ সত্যক বিকৃত নকৰাকৈ কল্পনাৰ সহায়েৰে ৰসোত্তীৰ্ণ ৰচনাৰ সৃষ্টি কৰে তেতিয়া তেনে সাহিত্যক 'আত্মজীৱনীমূলক উপন্যাস' বোলা হয়। এইখিনিতে উল্লেখ কৰিব লাগিব, আত্মজীৱনীৰ এই ধাৰাত লেখকে বহুসময়ত নিজৰ জীৱনৰ ঘটনাৱলী বৰ্ণনা কৰাৰ দৰে কেতিয়াবা কোনো কাল্পনিক চৰিত্ৰ এটাৰ জীৱন কাহিনীকো প্ৰথম পুৰুষত বৰ্ণনা কৰিব পাৰে। "এই শ্ৰেণীৰ আত্মজীৱনীমূলক উপন্যাস একমাত্ৰ ইয়াৰ গঢ়টো (form) আত্মজীৱনীমূলক বাবেহে- অৰ্থাৎ প্ৰথম পুৰুষত বৰ্ণিত বাবে। ইয়াত বৰ্ণিত অভিজ্ঞতাৱলী বাস্তৱ নহ'বও পাৰে। এই শ্ৰেণীৰ আত্মজীৱনীমূলক উপন্যাস গঢ়ৰ পিনৰ পৰা আত্মজীৱনীমূলক-গঢ়গত আত্মজীৱনীমূলক উপন্যাস (formal autobiographical novel)." (শৰ্মা, *জীৱনী আৰু আত্মজীৱনী ঃ অসমীয়া আৰু পাশ্চাত্যত*, পৃষ্ঠা-২৭৭)

আত্মজীৱনীকাৰে ঘটনাৰ বিস্তৃতিত কাল্পনিকতাৰ সংযোগ কৰি প্ৰথম পুৰুষত আত্মজীৱনীমূলক উপন্যাস ৰচনা কৰাৰ দৰে বহু লেখক-সাহিত্যিকে উপন্যাসৰ শৈলীৰে ব্যক্তিগত জীৱনৰ অনেক ঘটনা-পৰিঘটনাক বাস্তৱ আৰু কল্পিত চৰিত্ৰৰ সহযোগত বৰ্ণনা কৰে। এনে উপন্যাসত প্ৰথম পুৰুষৰ সলনি তৃতীয় পুৰুষত কাহিনীয়ে বিকাশ লাভ কৰে। কাহিনী আৰু চৰিত্ৰ নিৰ্মাণত বাস্তৱ আৰু কল্পিত চৰিত্ৰৰ সমাৱেশ ঘটে বাবে এনে উপন্যাসক আত্মজীৱনীমূলক উপন্যাসৰ শাৰীৰ পৰা পৃথক কৰা হয়। "উপন্যাসত আত্মজৈৱনিক উপাদান কিছু পৰিমাণে থকাত অস্বাভাৱিকতা একো নাই। সেইবুলি তেনে উপাদান থাকিলেই তাক আত্মজীৱনীমূলক উপন্যাসৰ শাৰীত থ'ব নোৱাৰি।" (মিশ্ৰ, উপন্যাস, পৃষ্ঠা-৩০)। এনে উপন্যাসত লেখকৰ জীৱনৰ অনেক উপাদান থাকে, কিন্তু লেখকৰ জীৱন মূল কাঠামো নহয়। লেখকে নিজৰ জীৱনৰ কিছুমান অংশ, অনুভৱ, স্মৃতি কাহিনীত সন্নিৱিষ্ট কৰে উপন্যাসৰ মূল উ ল্ডঋীব্য কল্পনাক সাৰোগত কৰি।

আত্মজীৱনীমূলক উপাদান সম্বলিত তেনে এখন উপন্যাস হিচাপে আমি আৰ.কে.নাৰায়ণৰ শৈশৱৰ ঘটনাক লৈ ৰচিত "swami and friends" শীৰ্ষক উপন্যাসখনৰ নাম ল'ব পাৰোঁ। অসমীয়া সাহিত্যত আমি হোমেন বৰগোহাঁঞিৰ "সাউদৰ পুতেকে নাও মেলি যায়" গ্ৰন্থখনৰ কথা ক'ব পাৰোঁ। গ্ৰন্থখনৰ মূল চৰিত্ৰ 'বাপুকণ'ৰ মাজেৰে লেখকৰ শৈশৱ আৰু যৌৱনৰ অনেক অভিজ্ঞতাই স্থান লাভ কৰিছে। সাহিত্যৰ এই ধাৰা উপন্যাসৰ উপৰিও কবিতা, গল্প, নাটকৰ মাজতো বহুসময়ত দেখিবলৈ পোৱা যায়।

ভাৰতীয় সাহিত্য জগতত নিজৰ সুকীয়া ব্যক্তিত্ব, অধ্যয়নশীল মন আৰু মানৱীয় আৱেগ উদ্বেলিত চিন্তা-চৰ্চাৰে আজীৱন সাহিত্য সাধনাত ব্ৰতী হোৱা প্ৰসিদ্ধ লেখিকা, মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ সাহিত্যত ব্যক্তিগত জীৱনৰ সৰু-বৰ অনেক অভিজ্ঞতাৰ প্ৰতিফলন ঘটিছে। গোস্বামীৰ আত্মকথা *'আধালেখা দস্তাবেজ'* আত্মজীৱনীমূলক ৰচনা হ'লেও, তেখেতৰ অধিকাংশ সাহিত্যতে আত্মজীৱনীৰ কম-বেচি প্ৰভাৱ পৰিলক্ষিত হৈছে। বিশেষকৈ উপন্যাস সাহিত্যৰ পটভূমি নিৰ্মাণত তেখেতে ব্যক্তিগত তথা বাস্তৱ ঘটনা একোটাক কল্পনাৰ ৰহনেৰে সজাই-পৰাই তাক এক পূৰ্ণাঙ্গ সাহিত্যলৈ পৰ্যবসিত কৰা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। শ্ৰমিকৰ বেদনা, বৈধব্য নাৰীৰ জীৱন যন্ত্ৰণা, জীৱ হত্যাৰ নিৰ্মম দৃশ্য, পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজত এচাম পুৰুষৰ নিকৃষ্ট মানসিকতা, সমাজত প্ৰচলিত কেতবোৰ অযৌক্তিক ধ্যান-ধাৰণা, ধনতন্ত্ৰৰ পতন, সাম্যবাদৰ উত্থান ইত্যাদি উপন্যাসৰ বিষয়বোৰ তেখেতৰ বহু সময়ত লাভ কৰা অভিজ্ঞতাৰ পৰা বোটলা। হেমন্ত কুমাৰ ভৰালীয়ে এই সম্পৰ্কত তেখেতৰ গ্ৰন্থ *'মামণি ৰয়ছম ঃ স্বপ্ন-দুঃস্বপ্নৰ ডায়েৰী'*ত উল্লেখ কৰি কৈছে —"ড° মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে বাস্তৱৰ ঘটনাবোৰৰ পৰাই লিখে, জীৱনত বিভিন্ন সময়ত লগ পোৱা মানুহকে লেখনীৰ চৰিত্ৰ হিচাপে গঢ় দিয়ে। আচলতে ক'বলৈ গ'লে

মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ প্ৰতিটো গল্প বা উপন্যাসেই আত্মজীৱনী অথবা আত্মজীৱনীৰ উপাদানেৰে সমৃদ্ধ।" (ভৰালী, *মামণি ৰয়ছম ঃ স্বপ্ন-দুঃস্বপ্নৰ ডায়েৰী*, পৃষ্ঠা-২৫)।

শৈশৱৰ অভিজ্ঞতাৰে পুষ্ট লেখিকাৰ তেনে এখন উপন্যাস হৈছে *"দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা"*। এই উপন্যাসখনে কঢ়িয়াই আনিছে অসমীয়া সমাজ-সংগঠনত গুৰুত্বপূৰ্ণ অৱদান আগবঢ়োৱা সত্ৰ সংস্কৃতিৰ এক আলেখ্য। বিশেষকৈ দামোদৰীয়া সত্ৰীয়া পৰম্পৰাৰে গঠিত সত্ৰসমূহৰ দৈনন্দিন জীৱন-প্ৰক্ৰিয়া, পৰম্পৰা, নীতি-নিয়ম, আচাৰ-বিচাৰ, ন্যায়-ব্যৱস্থাৰ লগতে সত্ৰত ডাঙৰ-দীঘল হোৱা জীয়ৰী-বোৱাৰীৰ সৌভাগ্য আৰু দুৰ্ভাগ্যৰ এখন উমৈহতীয়া ছবি—উপন্যাসখনত দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। বিশেষকৈ ঔপন্যাসিকৰ পূৰ্বপুৰুষে সঞ্চালন কৰা দক্ষিণ কামৰূপৰ জগলীয়া নৈৰ পাৰত থকা আমৰঙ্গা সত্ৰৰ সম্ভ্ৰান্ত সত্ৰাধিকাৰ মহাপ্ৰভুৰ লগতে তেওঁৰ পৰিয়ালবৰ্গৰ ক্ৰমাৎ জহি-খহি যোৱা প্ৰাচীন গৌৰৱ-গৰিমা, সত্ৰৰ কঠোৰ অনুশাসনে জুৰুলা কৰা স্বামীহাৰা গোসাঁনীসকলৰ জীৱন-দুৰ্দশা, শোষণ-নিষ্পেষণ, সত্ৰ পৰিৱেশত সংঘটিত হোৱা কেতবোৰ অসামাজিক ঘটনা-পৰিঘটনা, দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধ আৰু ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনে সত্ৰৰ সমাজ-জীৱনত পেলোৱা প্ৰভাৱ, তীব্ৰ হাৰত বঢ়া কানিৰ প্ৰচলন, ভূমি সংস্কাৰ, সাম্যবাদৰ উত্থান ইত্যাদি বিষয়বোৰে বিশেষভাৱে গুৰুত্ব লাভ কৰিছে। উপন্যাসত প্ৰতিফলিত এই ঘটনাৱলীসমূহ যে লেখিকাই শৈশৱৰ অধিক সময় অতিবাহিত কৰা তেওঁৰ পিতৃভিঠা আমৰঙ্গাত লাভ কৰা বাস্তৱ অভিজ্ঞতাৰ ফচল তাত কোনো সন্দেহ নাই। তেখেতৰ আত্মজীৱনী *আধালেখা দস্তাবেজ*ৰ লগতে বিভিন্ন সময়ত আগবঢ়োৱা সাক্ষাৎকাৰ আৰু বহু গ্ৰন্থ-আলোচনীত আগবঢ়োৱা তথ্যৰ ভিত্তিত ইয়াৰ সত্যতা প্ৰতীয়মান হয়।

গৱেষণাৰ উদ্দেশ্য ঃ

দ্বিতীয় মহাসমৰৰ শেষ তথা ভাৰতে স্বাধীনতা লাভৰ সময়ছোৱাৰ পটভূমিৰে নিৰ্মিত হোৱা *"দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা"* প্ৰকৃতাৰ্থত এখন আঞ্চলিক উপন্যাস। এই উপন্যাসত বৰ্ণিত কামৰূপৰ জগলীয়া নৈৰ পাৰত থকা দামোদৰীয়া পৰম্পৰা আশ্ৰিত আমৰঙ্গা সত্ৰ আৰু সত্ৰৰ অঞ্চলবাসীৰ জীৱন-ধাৰণ, ধৰ্মবিশ্বাস, বিবিধ সংস্কাৰৰ লগতে তেওঁলোকৰ মাজত প্ৰচলিত ভাব-ধাৰা, চিন্তা-চেতনা, ধ্যান-ধাৰণাক লেখিকাই লাভ কৰা ব্যক্তিগত অভিজ্ঞতাৰ ভিত্তিত অংকন কৰিছে। শৈশৱৰ অধিক সময় অতিবাহিত কৰা গোস্বামীৰ সমগ্ৰ জীৱনত এই সত্ৰখনৰ প্ৰভাৱ অপৰিসীম। সত্ৰৰ পৰিৱেশত আৰ্জিত অভিজ্ঞতাসমূহক তেওঁ বিভিন্ন সাক্ষাৎকাৰ, আলোচনী, পত্ৰিকা, গ্ৰন্থ আলোচনাত সুযোগ পালেই উল্লেখ কৰিছে। আত্মজীৱনীতো আমৰঙ্গাৰ অনেক স্মৃতি পৰিলক্ষিত হৈছে। আমাৰ এই অধ্যয়নত লেখিকাৰ *"দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা"* উপন্যাসত পৰিলক্ষিত হোৱা আত্মজীৱনীকেন্দ্ৰিক উপাদানসমূহৰ এক আলোচনা আগবঢ়োৱা হ'ব। এটি কাল্পনিক কাহিনীক অধিকৃত কৰি ৰচিত লেখিকাৰ এই উপন্যাসখনত উপলব্ধ সমলসমূহৰ সত্যতা বিচাৰ আমাৰ এই আলোচনাই সামৰি ল'ব।

গৱেষণাৰ পদ্ধতি ঃ

"দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা" উপন্যাসখনত পৰিলক্ষিত সত্ৰীয়া সমাজ-জীৱন, বিধৱা মহিলাৰ যন্ত্ৰণাকাতৰ জীৱন-সংগ্ৰাম, স্বাধীনতা আন্দোলন, দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধ, কানি নিবাৰণ আন্দোলন, চিলিং আইন, সত্ৰৰ পৰম্পৰা-সংস্কৃতি, ন্যায়-ব্যৱস্থা, কমিউনিষ্টৰ উত্থান আদি বিষয়বোৰৰ সৈতে থকা লেখিকাৰ বাস্তৱ অভিজ্ঞতা আৰু উপন্যাসত ইয়াৰ প্ৰতিফলন সম্পৰ্কত বিস্তৃত আলোচনা দাঙি ধৰোতে বিশ্লেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনাত্মকউভয় পদ্ধতিৰ প্ৰয়োগ কৰা হৈছে। তথ্যৰ সত্যাসত্য প্ৰমাণ কৰিবলৈ বিভিন্ন আলোচনী, গৱেষণা গ্ৰন্থ, বহুকেইটা সাক্ষাৎকাৰ আৰু বিভিন্ন কিতাপ-পত্ৰৰ সহায় লোৱা হৈছে।

উপন্যাসৰ চমু কাহিনীভাগ ঃ

উপন্যাসৰ আৰম্ভণি হৈছে আমৰঙ্গা সত্ৰৰ সত্ৰাধিকাৰ মহাপ্ৰভুৰ একমাত্ৰ পুত্ৰ ইন্দ্ৰনাথ চৰিত্ৰৰ মাজেৰে। ইন্দ্ৰনাথে বৰিহাটৰ বিখ্যাত ব্যৱসায়ী তথা শৈশৱৰ বন্ধু বলোৰাম দাসৰ ঘৰত তাচৰ আড্ডা শেষ কৰি সদায় ঘৰলৈ উভতি অহাত প্ৰায় মাজনিশাই হয়। ইন্দ্ৰনাথৰ অপেক্ষাত বৈ থাকে ইন্দ্ৰনাথৰ মাতৃ গোসাঁনী আই আৰু চিকাৰহাটীৰ স্বামীভিঠা ত্যাগ কৰা বিধৱা পেহীয়েক দুৰ্গা। অধিকাৰ মহাপ্ৰভুৰ পুত্ৰ ইন্দ্ৰনাথ উচ্চশিক্ষিত হোৱাৰ লগতে এক সংস্কাৰবাদী মনৰ গৰাকী আছিল। মাজনিশা ঘৰ সুমুৱা ইন্দ্ৰনাথক গোসাঁনী আয়ে সদায় সদায় বলোৰামৰ ঘৰত তাচৰ আড্ডা মাৰি থকাতকৈ ৰঙাভিঠাৰ মাটিখিনিৰ খবৰ লৈ আহিব পাৰে বুলি উপদেশ দিয়ে। গোসাঁইৰ ৰঙাভিঠাৰ মাটিখিনিত ইতিমধ্যে কমিউনিষ্টসকলে বাহৰ পাতিছে। মাকৰ পৰামৰ্শ শুনি ইন্দ্ৰনাথে আকৌ মাক গোসাঁনীক খুৰীয়েক সৰু গোসাঁনীৰ দৰে হ'বলৈ কোৱাৰ লগতে মাটিৰ মীমাংসাও নিজকে কৰিবলৈহে কয়। সত্ৰাধিকাৰৰ পত্নী হৈ মাটিৰ হিচাপ-নিকাচ কৰা বিষয়টোত মাকে অসন্তুষ্টি প্ৰকাশ কৰে। সৰু গোসাঁনী ইন্দ্ৰনাথৰ খুৰাক ৰমানন্দ গোস্বামীৰ পত্নী। নিজস্ব ব্যক্তিত্বৰে মহীয়ান সৰু গোসাঁনীয়ে স্বামীৰ মৃত্যুৰ পাছৰে পৰা স্বামীৰ সম্পত্তিসমূহৰো তদাৰক কৰি আহিছে। তাৰ উপৰিও শিষ্যক শৰণ দি, বিবাদ মীমাংসা কৰি, বিভিন্ন সমস্যাৰ সমাধান দি পোৱা ধনেৰে কাৰো ওচৰত হাত নপতাকৈ স-সন্মানেৰে

জীৱন-ধাৰণ কৰি আছে। আনহাতে ইন্দ্ৰনাথৰ সৈতে পিতৃগৃহলৈ কেইদিনমানৰ বাবে অহা দুৰ্গাক শহুৰেকে যথাসময়ত লৈ যোৱাৰ প্ৰতিশ্ৰুতি দিয়ে যদিও তেওঁ নাহে। দুৰ্গা ওলাই অহাৰ পাছৰে পৰা স্বামীগৃহত যথেষ্ট উন্নতি হৈছিল, যাৰ বাবে পৰিয়ালৰ লোকে দুৰ্গাক পাপগ্ৰহ বুলি ভাবি দুনাই ঘৰলৈ অনাৰ কথা ভবা নাই। ভৱিষ্যতৰ কথা চিন্তা কৰি দুৰ্গাক স্বামীগৃহলৈ উভতি গৈ স্বামীৰ প্ৰাপ্য সম্পত্তি বিচাৰ কৰিবলৈ কোৱা ইন্দ্ৰনাথক দুৰ্গাই নানাভাৱে গালি-শপনি পাৰে। বৈধব্যৰ নিয়ম-নীতিসমূহ পালন কৰি অহা দুৰ্গাই স্বামীৰ অস্থি বিসৰ্জন দিবৰ বাবে তীৰ্থলৈ যোৱাৰ আশাৰে বৌয়েক গোসাঁনীক অলপ টকা বিচাৰে, কিন্তু টকা নিদিয়াত বৌয়েকৰ সৈতে খকা-খুন্দা লাগি ওচৰতে থকা সৰু বৌয়েক সৰু গোসাঁনীৰ ঘৰলৈ গুচি যায়, লগত একমাত্ৰ সম্বল টিনৰ বাকচটো লৈ যায়। পাচত ইন্দ্ৰনাথৰ বুজনিত ঘৰলৈ ঘূৰি আহে যদিও বাকচটো থৈ আহে। সৰু গোসাঁনীৰ ঘৰুৱা কাম-বনৰ লগতে তেওঁৰ মাটি-সম্পত্তিৰ তদাৰক কৰিবলৈ মহীধৰ নামে এজন ডেকা বামুণ বহু বছৰ ধৰি সহায়ক হিচাপে তেওঁৰ লগতে আছে। মহীধৰক সৰু গোসাঁনীয়ে খুব মৰম আৰু বিশ্বাস কৰিছিল। অৱশেষত এই মহীধৰ বামুণটোৱে দুৰ্গাই থৈ অহা বাকচৰ সোণখিনি চুৰি কৰাৰ লগতে সৰু গোসাঁনীৰ বিশ্বাস জয় কৰি এদিন তেওঁৰ সমস্ত ভূ-সম্পত্তি আত্মসাৎ কৰি পলাবলৈ চেষ্টা কৰে। কিন্তু ৰাইজৰ তৎপৰতাত মহীধৰ বামুণৰ প্ৰকৃত স্বৰূপ ধৰা পৰে। গতিকে প্ৰথমাৱস্থাত সোণ হেৰুৱাত মহীধৰৰ হাত আছে বোলা কথাত আপত্তি দৰ্শোৱা সৰু গোসাঁনীয়ে অৱশেষত নিজৰ ভুল স্বীকাৰ কৰে। মহীধৰৰ এনে ধূৰ্তালিয়ে সৰু গোসাঁনীক সন্মুখৰ জটিল বাস্তৱিকতাৰ সৈতে পৰিচয় কৰাই দিয়ে। ইফালে সোণৰ অলংকাৰ কেইপদ হেৰুৱাই অসহায় হৈ পৰা দুৰ্গাই অৱশেষত যক্ষ্মা ৰোগত আক্ৰান্ত হৈ এক জীৰ্ণ-শীৰ্ণ ৰূপত শহুৰেকৰ ঘৰলৈ উভতি যায়। সত্ৰৰ সত্ৰাধিকাৰ মহাপ্ৰভুৰ মাটি-বাৰী, খেতি-খোলা চোৱা-চিতাৰ দায়িত্ব শম্ভূ মহৰীক দিয়া হৈছিল যদিও হিচাপৰ খেলিমেলি কৰাত ইন্দ্ৰনাথে নিজেই বিষয়টো সমাধানৰ বাবে আগবাঢ়ে আৰু তাতেই ইন্দ্ৰনাথৰ দিবাকৰ ভাগৱতীৰ জী ইলিমনৰ সৈতে সাক্ষাৎ হয়। ইলিমনৰ প্ৰতি ইন্দ্ৰনাথৰ প্ৰেম লাহে লাহে বাঢ়ি আহিবলৈ ধৰে। সৰুতে মাক ঢুকুৱা ইলিমনৰ মনৰ কথা, মাকৰ বিয়াত লগতে লাগি অহা যঁতৰ ঘূৰোৱা বুঢ়ীয়ে অনুভৱ কৰে আৰু এদিন নিশা ইলিমন শান্তি হোৱাত বুঢ়ীয়ে তাচৰ আড্ডাৰ পৰা উভতি অহা ইন্দ্ৰনাথক ইলিমনৰ সৈতে বিয়া কৰোৱাৰ বাবে প্ৰস্তাৱ দিয়ে। বামুণৰ জী ইলিমনক বিবাহৰ প্ৰতিশ্ৰুতি দিয়াটো ইন্দ্ৰনাথৰ পক্ষে সম্ভৱ নহ'ল। কিন্তু বুঢ়ীৰ অনুৰোধত ইন্দ্ৰনাথে কানিৰ টোপোলাৰে দিবাকৰ ভাগৱতীৰ মন জয় কৰি ইলিমনলৈ মন মেলা কোচ বিহাৰৰ কানীয়া বামুণটোক পুলিচক গতাই দি ইলিমনৰ জীৱন ৰক্ষা কৰে। ইফালে বঙৰাৰ গোসাঁই বংশলৈ বিয়া দিয়া সত্ৰাধিকাৰ মহাপ্ৰভুৰ জীয়ৰী গিৰিবালা শান্তি বিয়াৰ পিছতে বিধৱা হোৱাত মাকৰ ঘৰলৈ উভতি আহে। চৰিত্ৰহীন স্বামী লাতু গোস্বামীৰ প্ৰতি আন্তৰিকতা নথকা গিৰিবালাই স্বামীৰ মৃত্যুৰ বেলিকাও উদাসীন আচৰণ প্ৰদৰ্শন কৰে। ইফালে ঘৰলৈ অহা গিৰিবালাক চাবলৈ তিৰোতাসকলে ভিৰ কৰাত দৰ্জা বন্ধ কৰি তাই ধমধমকৈ বেৰত গুৰিয়াবলৈ ধৰে। জীয়ৰীৰ ঘৰলৈ উভতি অহা কথাটোৱে মাক গোসাঁনীক কষ্ট দিছিল। তেনেস্থলত স্বামীৰ সা-সম্পত্তিৰ ভাগ নকৰাকৈ ঘৰলৈ উভতি অহাটো ভাল হোৱা নাই বুলি আপত্তি কৰা মহিলাখিনিক অধিকাৰ মহাপ্ৰভুৰ দক্ষিণ ৰাণী মৌজাৰ নাৰগাঁৱৰ মাটিখিনি দিয়াৰ কথা গোসাঁনীয়ে উল্লেখ কৰে। পেহীয়েক দুৰ্গাৰ দৰে বৈধব্য জীৱনৰ নীতি-নিয়মবোৰ মানিবলৈ ইচ্ছা নকৰা গিৰিবালাই সত্ৰাধিকাৰ গোসাঁইৰ পিতৃ সদানন্দ বুঢ়া গোসাঁইৰ বছৰেকীয়া সকামত বামুণে ৰন্ধা খাহি মাংসৰ গোন্ধত ৰ'ব নোৱাৰি ক'ব নোৱাৰাকৈয়ে মাংসৰ আঞ্জা মুখত ভৰাই অৱশেষত প্ৰায়চিত্ত হ'বলগীয়া হয়। ইফালে স্বামী গৃহৰ পৰা অহা বিধৱা ভনীয়েক গিৰিবালাক মন ভাল লগাবলৈ ইন্দ্ৰনাথে প্ৰাচীন পুথি-পাজিৰ জ্ঞান অৰ্জনৰ বাবে অহা মাৰ্ক চাহাবৰ কামত সহায় কৰিবলৈ পৰামৰ্শ দিয়ে। সময় বাগৰাৰ লগে লগে গিৰিবালা মাৰ্ক চাহাবৰ প্ৰেমত পৰে। সন্ন্যাসী মাৰ্ক চাহাবে এই সম্পৰ্ক আগবঢ়োৱাতো উচিত নহ'ব বুলি জানি গিৰিবালাক বুজনি দিয়ে। মাৰ্ক চাহাবৰ লগত থকা গিৰিবালাৰ সম্পৰ্কৰ কথা মানুহৰ মুখে মুখে বিয়পি পৰে আৰু এদিন মুষলধাৰ বৰষুণৰ ৰাতি মনৰ অশান্তি পাতলাবলৈ মাৰ্ক চাহাবৰ ওচৰ চপা গিৰিবালাক গাৱঁৰ ৰাইজে মাৰ্ক চাহাবৰ সৈতে শাৰীৰিক সম্পৰ্ক ঘটা বুলি ভাবি দাৰুণ প্ৰায়চিত্তৰ সন্মুখীন কৰায়। কুল পুৰোহিতে মেযদাহ কৰি পৰাচিত কৰিবলৈ গিৰিবালাক এটা ঘৰৰ ভিতৰত সুমুৱাই জুই লগাই দিয়ে। কিন্তু গিৰিবালা ঘৰটোৰ পৰা উলাই অহাৰ পৰিবৰ্তে অৱশেষত মৃত্যুক সাবটি লয়। মৃত্যুৰ মাজেৰে গিৰিবালাই সমাজৰ ধৰ্মান্ধতা আৰু গোড়ামীৰ প্ৰতি তীব্ৰ প্ৰতিবাদ কৰি থৈ যায়।

মূল কাহিনীটোৰ উপৰি কিছুমান উপ-কাহিনী উপন্যাসখনত পল্লৱিত হৈছে। স্বাধীনতা আন্দোলন, দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধ, কানি নিবাৰণ আন্দোলন, চিলিং আইন, সত্ৰৰ সকলোৰে মৰমৰ জগন্নাথ হাতীটোৰ বৰ্ণনা আদি এইক্ষেত্ৰত উল্লেখযোগ্য।

মূল আলোচনা ঃ

কলমৰ শক্তিৰে বিশ্ব দৰবাৰত সুনাম কঢ়িয়াবলৈ সক্ষম

হোৱা, জ্ঞানপীঠ বিজয়ী মামণি ৰয়চম গোস্বামী অসমৰ এগৰাকী খ্যাতনামা লেখিকা। জীৱন কালত ভাৰতৰ লগতে বিদেশৰ বিভিন্ন ঠাই পৰিভ্ৰমণ কৰি পোৱা অভিজ্ঞতাৰে সাহিত্য চৰ্চা কৰা এইগৰাকী লেখিকাৰ উপন্যাস সাহিত্যই বিশ্ব সাহিত্যত এক সুকীয়া পৰিচয় লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। অসমৰ এক আঢ্যৱন্ত পৰিয়ালত জন্মগ্ৰহণ কৰা এইগৰাকী লেখিকাই বহুসময়ত তেখেতৰ ব্যক্তিগত জীৱনৰ হা-হুমুনিয়াহবোৰক সাহিত্যত তুলি ধৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়। সমগ্ৰ জীৱন সংঘাট - সংঘৰ্ষৰ মাজেৰে পাৰ কৰা গোস্বামীৰ জীৱনৰ বহুকেইটা অভিজ্ঞতাই তেখেতক সমাজৰ কঠিন বাস্তৱৰ সৈতে পৰিচয় কৰি দিয়াৰ লগতে অসমীয়া সমাজৰ পাৰম্পৰিক নীতি-নিয়মসমূহৰ প্ৰতি সচেতন কৰি তুলিছিল। এটি ৰক্ষণশীল অসমীয়া পৰিয়ালত ডাঙৰ হোৱা মামণি ৰয়চম গোস্বামীৰ মতে সমাজত প্ৰচলিত পৰম্পৰাসমূহ বহুসময়ত মানুহ তথা জীৱ-জন্তুৰ প্ৰতি কৰা চৰম অন্যায়ৰ বাদে আন একো নহয়। গোস্বামীৰ অধিকাংশ সাহিত্যৰ পটভূমিও সমাজে অৱহেলাৰ দৃষ্টিৰে চোৱা লোকসকল আৰু নিৰীহ জীৱকুলক কেন্দ্ৰ কৰিয়ে ৰচিত হোৱা দেখা যায়। অসমীয়া সমাজ-জীৱনে গা কৰি উঠা গোস্বামীৰ তেনে এখন উপন্যাস হৈছে *"দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাউদা"*। সত্ৰীয়া সমাজ-জীৱনক লৈ ৰচিত গোস্বামীৰ *"দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাউদা"* উপন্যাসখন অসমীয়া সাহিত্যত একক আৰু অনন্য ৰূপে জিলিকি ৰ'ব। গোস্বামীৰ আগতে অসমীয়া ৰক্ষণশীল সমাজ জীৱন ইমান উদংভাৱে হয়তো কোনো অসমীয়া সাহিত্যিকৰে সাহিত্যত পৰিলক্ষিত হোৱা নাই। শৈশৱৰ অধিকাংশ সময় অতিবাহিত কৰা জগলীয়াৰ পাৰৰ আমৰঙ্গা সত্ৰক পটভূমিস্বৰূপে লৈ ৰচিত উপন্যাসখনত দামোদৰীয়া সত্ৰৰ পৰম্পৰা-সংস্কৃতি, ৰীতি- নীতিৰ এক আলেখ্য প্ৰতিফলিত হৈছে। আমৰঙ্গাৰ চৌপাশৰ পৰিৱেশৰ এক গধুৰ স্মৃতি গোস্বামীয়ে ওৰেটো জীৱন কঢ়িয়াই লৈ ফুৰিছিল। যাৰ বাবে হয়তো দিল্লী বিশ্ববিদ্যালয়ৰ আধুনিক ভাৰতীয় ভাষা বিভাগৰ অধ্যাপকৰ পদত নিযুক্তি লাভ কৰি দিল্লীৰ স্থায়ী আৱাসী হোৱাৰ পাছতো এইগৰাকী লেখিকাই সুযোগ পালেই নিজৰ পুৰণি ঘৰলৈ আহিছিল। শৈশৱৰ সেই সম্ভ্ৰান্ত গোস্বামীৰ পিতৃ পুৰুষৰ আমৰঙ্গাৰ ঘৰখন সময়ৰ লগে লগে জৰাজীৰ্ণ অৱস্থালৈ পৰ্যৱসিত হৈছিল। এসময়ৰ অসমৰ এই সম্ভ্ৰান্ত সত্ৰীয়া পৰিয়ালটিয়ে সময়ৰ লগে লগে কেনে এক দুৰ্বিসহ জীৱন পাৰ কৰিবলগীয়া হৈছিল তাৰ বৰ্ণনা উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত হৈছে। উপন্যাসখন সন্দৰ্ভত লেখিকাই উল্লেখ কৰি কৈছে -

"কোনো লেখকে হয়তো নিজৰ লেখা লৈ কেতিয়াও সুখী হ'ব নোৱাৰে। তথাপিও কওঁ, "দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা" খনেই মোৰ শ্ৰেষ্ঠ সাহিত্যকৃতি। অন্ততঃ মই এই বুলিয়েই ভাবো। সেইখন উপন্যাস লিখি থাকোতে মই এক অনন্য তৃপ্তি লাভ কৰিছিলোঁ। মই মোৰ শিশুকাললৈ উভতি গৈছিলোঁ। আমাৰ পুৰণি ঘৰ, আমৰঙ্গা সত্ৰ, জগলীয়া নৈ আৰু পৰিয়ালৰ সেই হেৰাই যোৱা মানুহবোৰে মোৰ সৰ্বত্ৰতে বিচৰণ কৰি ফুৰিছিল। সেই সময়ৰ সত্ৰৰ ওচৰে-পাজৰে থকা সকলো চৰিত্ৰকে মই অঙ্কন কৰাৰ চেষ্টা কৰিছিলোঁ। সেইখন লিখি থাকোতে মই কেবাবাৰো দিল্লীৰ পৰা আমৰঙ্গা সত্ৰলৈ গৈছিলোঁ। মানুহৰ অন্তহীন বিচ্ছেদৰ কৰুণ কাহিনীৰ কথা সেই সত্ৰই মোক সোঁৱৰাই আছিল।" (ভৰালী, *মামণি ৰয়ছম ঃ স্বপ্ন-দুঃস্বপ্নৰ ডায়েৰী,* পৃষ্ঠা.৫৯)

সত্ৰৰ পৰিৱেশত পাৰ কৰা শৈশৱৰ সোণালী দিনবোৰৰ স্মৃতি গোস্বামীৰ হৃদয়ত সজীৱ হৈ আছিল। সাহিত্য সৃষ্টিত তেখেতৰ এই স্মৃতিবোৰে সদায়েই অনুপ্ৰেৰণা যোগায় আহিছিল। এবাৰ এটা সাক্ষাৎকাৰত ৰাজীৱ মেহৰোত্ৰাই গোস্বামীৰ সাহিত্য সৃষ্টিৰ আঁৰৰ অনুপ্ৰেৰণা সম্পৰ্কত সোধা প্ৰশ্নত তেখেতে এইদৰে উল্লেখ কৰে—

"You can't define, Sometime a incident and I write mostly about a downtrodden even animals, I am very fond of the Animals. My childhood playmate was an àßlephant. In our childhood days, I used to passed my time in South Kamrup, that is in the Monestry of Satra of my forfathers. So, there I always used to play with an elephant, and elephant ran a mark, killed villegers, and in presence of our eyes he was spot death. And that remained embedded in my heart for a long time." (Conversation – Dr. Indira Goswami/28-11-2014/ Áówww.youtube.com/@rajivmehrotraofficial)।

গোস্বামীৰ অন্যান্য সাহিত্যৰ দৰে *"দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা"* উপন্যাসখনৰ পটভূমি বাস্তৱ আধাৰিত। উপন্যাসখনত বাস্তৱৰ অধিকাংশ চৰিত্ৰক কল্পনাৰ ৰহণেৰে সম্পূৰ্ণ নতুন ৰূপেৰে সজাই তোলা হৈছে। বিভিন্ন সময়ত লগ পোৱা চৰিত্ৰসমূহৰ লগতে কাল্পনিক কেতবোৰ চৰিত্ৰৰ উল্লেখে উপন্যাসখনক পৰিপূৰ্ণতা প্ৰদান কৰিছে। কাহিনী আৰু চৰিত্ৰ সন্দৰ্ভত আগবঢ়োৱা লেখিকাৰ মতামতৰ জৰিয়তে এই কথা স্পষ্ট হয় এনেদৰে ঃ

"দক্ষিণ কামৰূপৰ আমৰঙ্গা সত্ৰৰ পৰা অনুপ্ৰেৰণা লাভ কৰি মই এই উপন্যাসখনি ৰচনা কৰিছোঁ। এই সত্ৰত মই শৈশৱৰ অনেক দিন অতিবাহিত কৰিছিলোঁ। এই দিনবোৰৰ স্মৃতি জীৱনৰ আটাইতকৈ মনোমোহা স্মৃতি আছিল। সেয়ে আজি সুদীৰ্ঘকাল

এই সত্ৰৰ পৰা আঁতৰি আছো যদিও মোৰ হৃদয়ত এই সত্ৰৰ স্মৃতি সজীৱ হৈ আছে। উপন্যাসখনত অংকিত চৰিত্ৰবোৰ, মোৰ জীৱনৰ আটাইতকৈ প্ৰিয় চৰিত্ৰ কিছুমানৰ মাজৰ পৰা বুটলি লৈছোঁ। এই চৰিত্ৰবোৰ মই দক্ষিণ কামৰূপৰ এই সত্ৰত লগ পাইছিলোঁ। তেওঁলোক মোৰ জীৱনৰ একোটা অংশৰ দৰে আছিল; এতিয়াও আছে। এই উপন্যাসত মই এই চৰিত্ৰবোৰক কল্পনাৰ ৰহণেৰে সম্পূৰ্ণ নতুন কৰি গঢ়ি তুলিছোঁ। কোনো কোনো ঠাইত লগ পোৱা চৰিত্ৰৰ মাথো জঁকাটোহে বাকী আছে। ইয়াত অধিকৃত চৰিত্ৰবোৰ কাল্পনিক। কাহিনীটিও সম্পূৰ্ণভাৱে কাল্পনিক। ” (গোস্বামী, *দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা*, পৃষ্ঠা-৫)

আমৰঙ্গা সত্ৰৰ সামগ্ৰিক জীৱন-ধাৰাক লৈ সমগ্ৰ উপন্যাসৰ কাহিনীভাগ ৰচিত হৈছে যদিও সত্ৰ-সংস্কৃতিৰ আচাৰ পদ্ধতিৰ লগতে সত্ৰৰ দৈনন্দিন পালনীয় আচৰণসমূহৰ সামান্যতম প্ৰকাশো উপন্যাসখনত দেখিবলৈ পোৱা নাযায়। তদুপৰি অধিকাৰ মহাপ্ৰভুই আগবঢ়োৱা দুই এটা প্ৰত্যক্ষ তথা পৰোক্ষ উক্তিক বাদ দি সত্ৰাধিকাৰগৰাকীৰ সক্ৰিয় উপস্থিতি বা তেনে কোনো ধৰ্মীয় আচাৰ-আচৰণৰ বৰ্ণনা উপন্যাসখনত উল্লেখ কৰা হোৱা নাই। জামবাৰী, আমৰঙ্গা আৰু গড়ৈমাৰী সত্ৰৰ একছত্ৰী সত্ৰাধিকাৰ তথা লেখিকাৰ ককাদেউতাকৰ অনেক বীৰত্বৰ কাহিনী সৰুকালতে তেওঁ বিভিন্নজনৰ মুখেৰে শুনিছিল। কিন্তু ককাদেউতাকৰ শৌৰ্য-বীৰ্যৰ যশস্যা কৰি সত্ৰ পৰিচালনাত তেখেতৰ ভূমিকা সম্পৰ্কত বৰ্ণনা আগবঢ়োৱাৰ পৰিৱৰ্তে সত্ৰৰ পৰিৱেশত সংঘটিত হোৱা ঘটনা-পৰিঘটনাসমূহৰ এক স্পষ্ট ছবি পাঠকৰ ওচৰত তুলি ধৰাটোহে ঔপন্যাসিকৰ মূল লক্ষ্য বুলিব পাৰি আৰু সেইবাবে সত্ৰাধিকাৰৰ জীৱন চানেকি উপন্যাসৰ মূল বিষয়ৰূপে পৰিগণিত হোৱা নাই। তাৰ পৰিৱৰ্তে উপন্যাসখনত এনে বহু চৰিত্ৰৰ কাৰ্যকলাপ বৰ্ণিত হৈছে যিবোৰক বাস্তৱ জীৱনৰ হুবহু প্ৰতিফলন বুলিব পাৰি। চৰিত্ৰৰ সমান্তৰালকৈ সত্ৰৰ লগত জড়িত কেতবোৰ উপ-কাহিনীৰ উল্লেখে উপন্যাসখনক এক অনন্য মাত্ৰা প্ৰদান কৰিছে।

পুৰুষ আৰু নাৰী চৰিত্ৰৰে ঠাহ খাই থকা উপন্যাসখনত পুৰুষৰ তুলনাত নাৰী চৰিত্ৰসমূহৰ বৰ্ণনাই পাঠকৰ দৃষ্টি বিশেষভাৱে আকৰ্ষিত কৰিছে বুলি ক'লেও বঢ়াই কোৱা নহ'ব। লেখিকাই সৰুকালতে লগ পোৱা সত্ৰৰ কেইগৰাকীমান বিধৱা নাৰীৰ কৰুণ জীৱন গাঁথাৰ উল্লেখে উপন্যাসখনক অধিক প্ৰাণৱন্ত কৰি তুলিছে। ব্ৰাহ্মণ পৰিয়ালৰ বিধৱা নাৰীয়ে পালন কৰিবলগীয়া কঠোৰ নীতি-নিয়মসমূহৰ বিতং বিৱৰণ এই উপন্যাসখনে তুলি ধৰিছে। দুৰ্গা, গিৰিবালা, সৰু গোসাঁনী, আদি চৰিত্ৰবোৰ লেখিকাই লগ পোৱা আমৰঙ্গা সত্ৰৰে বিধৱা ছোৱালী-বোৱাৰী। সত্ৰৰ নীতি-নিয়মৰ মাজেৰে পাৰ হোৱা এওঁলোকৰ কঠোৰ সংগ্ৰামময় জীৱনটোক উপন্যাসৰ মাধ্যমেৰে তুলি ধৰিব পৰাটো লেখিকাৰ জীৱনৰ সৰ্বোত্তম সফলতা।

এই নাৰীসকলৰ ভিতৰত উল্লেখযোগ্য 'দুৰ্গা' নামৰ চৰিত্ৰটি হৈছে লেখিকাৰ এগৰাকী সম্পৰ্কীয় পেহীয়েক। উপন্যাসত দুৰ্গাক যিধৰণেৰে গোস্বামীয়ে উপস্থাপন কৰিছে ঠিক একেধৰণৰ এক দুৰ্ভাগ্যপূৰ্ণ জীৱন তেওঁ বাস্তৱতো ভোগী আহিছিল। নমান পেহী নামে চৰ্চিত এই মহিলাগৰাকীৰ ভাগ্যৰ দ্বাৰা প্ৰতাৰিত হোৱা দুৰ্বিসহ জীৱনটোৱে পাঠকৰ অন্তৰ সহানুভূতিৰে উপচাই পেলাইছে। এই নমান দেৱীয়ে বিধৱাৰ পালনীয় সকলো নিয়ম-নীতি কোনো প্ৰতিবাদ নকৰাকৈ নীৰৱে পালন কৰি গৈছিল। নমান দেৱী সম্পৰ্কত লেখিকাই কৰা এক দীঘলীয়া আলোচনা 'মামণি ৰয়চম গোস্বামী *স্বপ্ন-দুঃস্বপ্নৰ ডায়েৰী'* শীৰ্ষক গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰা হৈছে। এই আলোচনাই দুৰ্গাই যে সেইগৰাকী নামান দেৱী তাক অতি স্পষ্টৰূপে প্ৰতীয়মান কৰিছে। স্বামীৰ অকাল মৃত্যুয়ে কাঢ়ি লৈ যোৱা দেৱীৰ সুখ, স্বামীস্বাচ্ছন্দ্যহীনতাৰ এক বিষাদগ্ৰস্ত ছবি লেখিকাৰ বক্তব্যৰ মাজেৰে ফুটি উঠিছে।

"নমান দেৱী নামৰ আন এগৰাকী আত্মীয়াৰ চৰিত্ৰও অঙ্কন কৰিছিলোঁ। তেওঁ কেৱল পোন্ধৰ বছৰ বয়সতেই বৈধব্যৰ দুৰ্ভাগ্যক গ্ৰহণ কৰিবলগীয়া হৈছিল। তেওঁ অন্তৰেৰে পঢ়া-শুনা ভাল পাইছিল যদিও সেই সময়ৰ সমাজৰ অদ্ভুত ৰীতি-নীতিৰ বন্ধনৰ বলি হৈ তেওঁ কোনোকালেই বিদ্যালয়ৰ মুখ দেখা নাপালে। সেই সময়ত সত্ৰৰ অধিকাৰসকলৰ জীয়ৰীহঁত আছিল অসূৰ্যস্পৰ্শা। হয় হয়, আকাশৰ সূৰ্যয়ো তেওঁলোকক বোলে দেখা পালে দায়ৰ কথা আছিল। তেওঁলোকে কোনো তথাকথিত নীচ জাতিৰ মানুহক সামান্য স্পৰ্শ পৰ্যন্ত কৰাও তেতিয়া এক অপৰাধ হিচাপেই গণ্য হৈছিল। তেনে কৰিলে, গৰুৰ গোবৰ আৰু মূত্ৰৰ লগত পানী মিহলাই প্ৰস্তুত কৰা এক জুলীয়া অদ্ভুত মিশ্ৰণ পান কৰি প্ৰায়শ্চিত্ত কৰি তেওঁলোকে ধৰ্ম ৰক্ষা কৰাৰ এক আচৰিত প্ৰয়াস কৰিছিল। নমান দেৱী নামৰ এই পবিত্ৰপ্ৰাণা বিদূষী মহিলাগৰাকীৰ যোৱা বছৰ (৮২ চন) ৮৪ বছৰ বয়সত দেহাৱসান হয়। এই বিশাল জীৱনকালৰ বেছি ভাগ সময়েই তেওঁ এটি সৰু কাঠৰ কোঠালিত নিজৰ মৃত স্বামীৰ কাঠৰ খৰম এযোৰক পূজা কৰিয়েই কটাইছিল। যদিও তেওঁক তেতিয়া ৰাজাপুখুৰীৰ (যাৰ বেছিখিনিয়েই আছিল জনৈক মুছলিম প্ৰশাসকে দান কৰা মাটি) গোসাঁনী হিচাপেই গণ্য কৰা হৈছিল। নমান দেৱীয়ে আচলতে এক অভাৱনীয় আৰু অবৰ্ণনীয় দাৰিদ্ৰ্যৰ দুৰ্ভাগ্যৰ মাজেৰেই বস্তুতঃ গোটেই জীৱন পাৰ কৰিলে। তেতিয়া বিধৱা গোসাঁনীসকলে কেৱল নিৰামিষ খাদ্যকে ধৰি নানা ধৰণৰ

ধৰ্মীয় তথা সামাজিক বাধ্য-বাধকতাৰ মাজেৰে জীৱন কটাবলগীয়া হৈছিল। আহাৰ মাহত বছৰি পৰা 'অম্বুবাচী'ৰ সময়ত তেওঁলোকক পোৰা, ভজা বা সিজোৱা কোনো খাদ্য চাৰিদিন পৰ্যন্ত খাবলৈ অনুমতি দিয়া নহৈছিল। আনকি তেওঁলোকে সেই সময়ত ভৰিৰে মাটি স্পৰ্শ কৰাটোও দোষৰ কথা আছিল। গতিকে সেই দিনকেইটাৰ বেছিখিনি সময়েই তেওঁলোকে কাঠৰ বিছনাত উঠি থাকিয়েই কটাইছিল।" (*ভৰালী*, মামণি ৰয়ছমঃ স্বপ্ন- দুঃস্বপ্নৰ ডায়েৰী, পৃষ্ঠা-৯৫)

দুৰ্গাৰ দৰে আন এগৰাকী দুৰ্ভগীয়া নাৰী হৈছে 'সৰু গোসাঁনী'। দুৰ্গাৰ দৰে অকালতে স্বামীক হেৰুওৱা সৰু গোসাঁনীয়ে সাতাম-পুৰুষীয়া সত্ৰ-সমাজৰ নীতি-নিয়মসমূহৰ মাজত থাকিও দুৰ্গাৰ তুলনাত যথেষ্ট ভাল স্থিতিত আছিল। স্বামী বিয়োগৰ পাছত দুৰ্গাৰ দৰে স্বামীৰ চিন্তাত দিন পাৰ কৰাৰ পৰিৱৰ্তে সম্পূৰ্ণ এক অকলশৰীয়া স্বাধীন জীৱন তেওঁ পাৰ কৰিছিল। কেৱল সেয়াই নহয়, গোঁসাইৰ পত্নী বুলি পোৱা সন্মান আৰু স্বামীয়ে নিজ গুণে আহৰণ কৰা মাটি-বাৰীখিনিকে হাত সাবটি বহি নাথাকি তেখেতে শিষ্যক শৰণ আৰু বিবাদ মীমাংসা তথা সমস্যাৰ সমাধান দি কাৰো ওচৰত হাত নপতাকৈ স-সন্মানেৰে থকাৰ ব্যৱস্থাও কৰি লৈছিল। সৰু গোসাঁনীৰ এই গুণটোৱে সেই সময়ৰ নাৰীৰ স্বাৱলম্বী তথা সাহসী মনটোকে প্ৰতিপন্ন কৰিছে। উপন্যাসত দেখিবলৈ পোৱা এই সৰু গোসাঁনী হৈছে লেখিকাৰ দেউতাকৰ এগৰাকী দূৰ সম্পৰ্কীয়া বৌয়েক। সৰু গোসাঁনী সম্পৰ্কত পোনপটীয়াকৈ লেখিকাই ক'তো উল্লেখ নকৰিলেও বিভিন্ন সময়ত আগবঢ়োৱা তেখেতৰ বক্তব্যৰ মাজেৰে এই কথা স্পষ্ট হৈ পৰিছে। কাহিনীৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি লেখিকাই মূল চৰিত্ৰটিৰ সামান্য সাল-সলনি কৰিছে। বিশেষকৈ সৰু গোসাঁনীৰ মহীধৰৰ সৈতে থকা সম্পৰ্কটিৰ বাস্তৱত কোনো প্ৰমাণ নাই। স্বাধীনচিতীয়াকৈ থকা এইগৰাকী নাৰীয়ে নিজৰ অকলশৰীয়া জীৱনত কোনো পুৰুষৰ সান্নিধ্য লাভ কৰা, সেই মহীধৰে সৰলতাৰ সুযোগ লৈ সৰু গোসাঁনীক বিশ্বাসঘাটকতা কৰা আদি বিষয়বোৰ লেখিকাৰ সম্পূৰ্ণ নিজা সৃষ্টি। সৰু গোঁসানী চৰিত্ৰটিৰ মাজেৰে লেখিকাই নাৰীৰ স্বাৱলম্বিতাৰ ধাৰণাটো সুস্পষ্ট কৰি তোলাৰ লগতে পুৰুষৰ দৰে স্বামীহাৰা নাৰীয়েও নিঃসঙ্গ জীৱনৰ সঙ্গী লাভ কৰাটো পাপ নহয়, বৰঞ্চ ই এক প্ৰাপ্য অধিকাৰ, সেই কথাটোকে পাকে প্ৰকাৰে পাঠকৰ দৃষ্টিগোচৰ কৰিবলৈ বিচাৰিছে। সৰু গোসাঁনীৰ পৰিচয় সম্পৰ্কত লেখিকাই এইদৰে বক্তব্য দাঙি ধৰিছে —

"তেতিয়া সত্ৰত এগৰাকী 'গোঁসানী' আছিল, তেওঁক মই আবু বুলি মাতিছিলোঁ। তেওঁ মোৰ দেউতাৰ দূৰ সম্পৰ্কীয় বৌয়েক আছিল। গোঁসানীয়ে স্বামীৰ মৃত্যুৰ পাছত আচৰিতভাৱে এক সম্পূৰ্ণ অকলশৰীয়া জীৱন কটাইছিল। অৱশ্যে তেওঁৰ নিজা শিষ্যসকল আছিল। গোঁসানীয়ে পৰম আত্মতুষ্টিৰ মাজেৰে মাজে মাজে নিজৰ শিষ্যসকলৰ অনুৰাগ-আনুগত্যৰ বিষয়েও বৰ্ণনা কৰিছিল; বিশেষকৈ কোনোবা নৰীয়াপাটিত পৰিলে কেনেকৈ তেওঁবিলাকে গোঁসানীৰ ভৰি ধুৱাই সেই পানী পান কৰি ৰোগমুক্তিৰ চেষ্টা কৰিছিল সেই কথা মই সৰুতে তেওঁৰ মুখত একাধিকবাৰ শুনিবলৈ পাইছিলোঁ।" (ভৰালী, *মামণি ৰয়ছম ঃ স্বপ্ন-দুঃস্বপ্নৰ ডায়েৰী*, পৃষ্ঠা-৯৪)

উপন্যাসত বৰ্ণিত আন এক নাৰী চৰিত্ৰ হৈছে 'গোঁসানী আই'। স্বভাৱত গহীন-গম্ভীৰ আৰু সম্ভ্ৰান্ত পৰিয়ালৰ জীয়ৰী তথা গোঁসাইৰ পত্নীগোঁসানী আইৰ এক সংঘাতপূৰ্ণ জীৱন ছবি উপন্যাসত প্ৰতিফলিত হৈছে। তাৰে ভিতৰত জীয়ৰী গিৰিবালাৰ অকাল স্বামী বিয়োগ, গিৰিবালাৰ মাৰ্ক চাহাবৰ প্ৰতি বাঢ়ি অহা প্ৰেম আৰু তাইৰ স্বাধীনচেতিয়া মনটোৱে অনেক সময়ত সত্ৰাধিকাৰৰ ঘৰখনলৈ সংকট কঢ়িয়াই আনিছিল। সত্ৰাধিকাৰৰ পত্নী হিচাপে গোঁসানী আয়ে সত্ৰৰ নিয়ম- শৃংখলা অক্ষুন্ন ৰখাৰ লগতে নিজৰ কৰ্তব্য আৰু দায়িত্ব পালনৰ প্ৰতি সদায় সচেষ্ট আছিল। সত্ৰৰ নিয়মৰ বিৰুদ্ধে যোৱা কাকো তেওঁ ৰেহাই দিয়া নাছিল। জীয়ৰী গিৰিবালাৰ ক্ষেত্ৰতো তাৰ ব্যতিক্ৰম হোৱা নাছিল। গিৰিবালাই ছাগলী মাংস খোৱা আৰু মাৰ্ক চাহাবৰ কোঠাত মাজৰাতি প্ৰৱেশ কৰাৰ অপৰাধত হোৱা প্ৰায়শ্চিত্ত পৰ্বত গোঁসানীয়ে সক্ৰিয় ভূমিকা পালন কৰিছিল। সমাজত নিজৰ প্ৰভাৱ অক্ষুন্ন ৰাখি পুৰুষপ্ৰধান সমাজে নিৰ্ধাৰণ কৰি থোৱা নীতি-নিয়মসমূহ আখৰে আখৰে পালন কৰা গোঁসানী আইৰ চৰিত্ৰত লেখিকাই নিজৰ আইতাকক ৰূপায়ন কৰা দেখা গৈছে। তেখেতে উল্লেখ কৰা অনুসৰি—

"মোৰ মানসত আইতাৰ অস্তিত্ব মচিব নোৱাৰা চাপেও মোক মোৰ উপন্যাসৰ বাবে অন্য এক চৰিত্ৰ সৃষ্টিৰ অনুপ্ৰেৰণা দিছিল। মোৰ আইতা আছিল কামৰূপ জিলাৰ অৰপুটৰ এগৰাকী গোঁসাইৰ দুহিতা। তেওঁ যিখন দোলাত উঠি আমাৰ অঞ্চলটোত মাজে মাজে ঘূৰা-পকা কৰিছিল, সেইখন এতিয়াও আমাৰ ঢেকীশালত পৰি আছে। আইতাই নিজৰ কাপোৰ নিজেই বৈ-সী লৈছিল। দৰাচলতে তেতিয়াই প্ৰত্যেকগৰাকী সন্মানীয়া অসমীয়া মহিলাই নিজা বস্ত্ৰ ঘৰতে নিজেই তৈয়াৰ কৰি লৈছিল। অন্য কি, জাকজমকতাপূৰ্ণ আহোম ৰাজ-পৰিয়ালৰ মহাৰাণী ফুলেশ্বৰী, অম্বিকাদেৱী আদিয়েও নিজ পৰিধেয় বস্ত্ৰ নিজে বৈ পিন্ধিছিল। আইতাই অৱসৰ বিনোদনৰ অংশ হিচাপে মাজে মাজে এটি সৰু কোঠালিত বহি ঘণ্টাৰ পিছত ঘণ্টা ধৰি হোকা

হুপি হুপি কটাইছিল। স্বভাৱতে তেওঁ আছিল স্বল্পভাষী আৰু মোৰ মনত পৰে, মাজে মাজে বহু সময়জুৰি তেওঁ কোনো এক গভীৰ চিন্তা-জগতত অকলে অকলে বিচৰণ কৰিছিল।" (ভৰালী, *মামণি ৰয়ছম ঃ স্বপ্ন-দুঃস্বপ্নৰ ডায়েৰী*, পৃষ্ঠা-৯৫)

উপন্যাসখনৰ মুখ্য নাৰী চৰিত্ৰৰূপে জিলিকি উঠা গিৰিবালা চৰিত্ৰটিৰ মাজেৰে বহুসময়ত লেখিকা মামণি ৰয়চম গোস্বামীৰ উপস্থিতি অনুভৱ কৰিব পাৰি। কম বয়সতে বিধৱা হোৱা গিৰিবালা আছিল অত্যন্ত জেদী, প্ৰতিবাদী, সাহসী তথা স্বাভিমানী স্বভাৱৰ ছোৱালী। স্বামীৰ মৃত্যুক এক সাধাৰণ ঘটনা বুলি ভাবি অকনো দুখ প্ৰকাশ নকৰি গিৰিবালাই মাকৰ ঘৰলৈ উভতি আহে, জীৱনৰ বাকী সময়ছোৱা সত্ৰৰ আন বিধৱাসকলৰ দৰে স্বামীৰ চিন্তাত দিন পাৰ নকৰি স্বাধীনভাৱে জীয়াই থকাৰ পৰিকল্পনা কৰে। বৈধব্য সাজ পৰিধান কৰা গিৰিবালাই সত্ৰ সমাজৰ কঠোৰ অনুশাসনবোৰ উফৰাই পেলাই নিজা ধৰণেৰে জীৱনটোক লৈ যোৱাৰ চেষ্টা কৰে। কোনো নিয়মেই গিৰিবালাক বান্ধি ৰাখিব পৰা নাছিল। সকামত ছাগলীৰ মাংস খোৱা, মাৰ্ক চাহাবৰ প্ৰেমত পৰা, সমাজৰ সকলো বাধা অতিক্ৰম কৰি মূষলধাৰ বৰষুণৰ মাজতো উদগ্ৰীৱ হৈ মাৰ্ক চাহাবৰ সংগ বিচাৰি যোৱা ইত্যাদি দিশবোৰে গিৰিবালাৰ মাজেৰে লেখিকা মামণি ৰয়চম গোস্বামীৰে প্ৰতিফলন ঘটা বুলি প্ৰমাণ কৰে। গোস্বামীয়ে কোৱা এটা উক্তিৰ মাজেৰে এই কথা অধিক স্পষ্ট হৈ পৰে এনেদৰে—

"মোৰ লিখনিৰ পৰা মোৰ জীৱনটোক মই কেতিয়াও আঁতৰাই নাৰাখো। বিধৱাসকলৰ দুখ-দুৰ্দশাৰ বিষয়ে মই বহু গল্প লিখিছোঁ। বিপৰ্যস্ত জীৱন লৈ জীয়াই থকা বহু বিধৱাক মই শৈশৱৰে পৰা আজি পৰ্যন্ত লগ পায়েই আছোঁ। বিধৱাসকলক ৰীতি-নীতিৰ গণ্ডীৰে হেচাঁ মাৰি ধৰা সমাজখনক মই ঘৃণা কৰোঁ। তাৰেই প্ৰতিবাদ কৰো মোৰ সাহিত্যযোগে। কিন্তু মাথোঁ সাহিত্যতে নহয়, মোৰ ব্যক্তিগত জীৱনতো ইয়াৰ বিৰোধিতা কৰিছোঁ। স্বামীৰ মৃত্যুৰ পাছত মই এদিনো 'বিধৱা'ৰ দৰে জীয়াই থকা নাই। মনা নাই কোনো ৰীতি-নীতি। মই সদায়েই বিশ্বাস কৰো পত্নীহাৰা পুৰুষৰ দৰেই স্বামীহাৰা নাৰীৰো সম-অধিকাৰ থকা উচিত। সাহিত্যতেই মাথোঁ নহয়, ব্যক্তিগত জীৱনতো এই কথা মই আখৰে আখৰে পালন কৰিছোঁ। তাৰ বাবে আত্মীয়ৰ পৰা বহু তিৰস্কাৰ পাইছোঁ। বহুতেই ছিঃ ছিঃ বুলিছিল। কিন্তু মই কাকো গ্ৰাহ্য নকৰিলোঁ। ইমানখিনি সাহস থকাৰ বাবেই এই কথাবোৰ নিৰ্মোহভাৱে মোৰ সাহিত্যত সোমাইছে। দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাউদাত গিৰিবালাৰ যোগেদি মই স্বাধীন নাৰীৰ সন্ধান কৰিছোঁ। যি সমাজৰ অপ্ৰয়োজনীয় ৰীতি-নীতিৰ গণ্ডী ভাঙি মেলেচক ভাল পাবলৈ শিকিছে। মাথোঁ সেয়াইনে? মেলেচ গুচি যাব বুলি শুনি বৰষুণৰ ৰাতি গিৰিবালাই তেওঁৰ দুৱাৰ ঢকিয়াইছিল। সেই যুগৰ নাৰীৰ এয়া কম প্ৰতিবাদনে?" (মামণি ৰয়ছম স্বপ্ন-দুঃস্বপ্নৰ ডায়েৰী, পৃষ্ঠা:৪৬,১৯৯৮)

আগৰ দিনত গাঁওসমূহত দেখা যায়, দূৰ সম্পৰ্কীয় পেহী-মাহীহঁত বহু দিনৰ মূৰত গাঁৱৰ ঘৰখনলৈ আহিলে ওচৰৰ মহিলাসকলে ভাল-বেয়া খবৰ ল'বলৈ অহা-যোৱা কৰে। মনৰ কথা দুই-এষাৰ পাতি সুখ-দুখৰ ভাগ বতৰা কৰে। তদুপৰি বিয়া-সবাহ, সকাম-নিকাম বা তেনেধৰণৰ কিবা সামাজিক অনুষ্ঠান হ'লে আৰু ঘৰসমূহত কিবা অঘটন বা বিপদ-আপদ হ'লে গাঁৱৰ এই মহিলাসকলেই আগ-ভাগ লয়। তেনে এক আত্মীয় ভাবৰ পৰিৱেশ গোস্বামীৰ গাঁৱৰ ঘৰখনতো আছিল।

"খটিয়ামাৰিৰ নমান, নলিনী বাই আদি পেহীহঁত আহে। মাৰাকুছিৰ ঘটি বাই ল'ৰা-ছোৱালীজাক লৈ আহে। আৰু আহে ৰাজাপুখুৰীৰ মেনি, ৰেণু, ডাঙৰ পেহী, ভেবেলী বাই, চিকুণ বাই আদি অসংখ্য মানুহ। আগফালৰ চন্দন গছজোপাৰ তলৰ বাৰাণ্ডা, কোণীয়াকৈ থকা মধুৰীআমজোপাৰ তলত থকা বাৰাণ্ডা আৰু একেবাৰে পিছফালে ভলুকা, শাল, বেল আৰু অসংখ্য ঘাঁহ-বনেৰে ভৰি থকা আমাৰ প্ৰকাণ্ড বাৰীখনক মুখ কৰি থকা পিছফালৰ বাৰাণ্ডাতো মানুহে গিজগিজাব ধৰে। ডাঙৰ পেহী আৰু নমান পেহীয়ে সাধাৰণতে আমাক অৰ্থাৎ সৰু-সৰু ল'ৰা-ছোৱালীজাকক নচুৱাইছিল। মই কেতিয়াবা এওঁলোকৰ ওচৰলৈ গ'লেও তিনি খোজ পিছুৱাই গৈছিল। কাৰণ আমি গাৱঁৰ ল'ৰা-ছোৱালীবোৰৰ মাজত কোনো জাতৰ বিচাৰ নকৰি খেলা-ধূলা কৰিছিলোঁ। (ভৰালী, *মামণি ৰয়ছম ঃ স্বপ্ন-দুঃস্বপ্নৰ ডায়েৰী*, পৃষ্ঠা-৮৮)

দুৰ্গা আৰু গিৰিবালা বিধৱা হৈ অহাৰ পাছতো গাওঁখনৰ জীয়ৰী-বোৱাৰী,ল'ৰা-ছোৱালীবোৰে জুমা-জুমি কৰি সিহঁতৰ অৱস্থাৰ বুজ ল'বলৈ আহিছে। গিৰিবালাই কিন্তু এইসকল মহিলাক প্ৰশ্ৰয় দিয়া নাই। কিয়নো বহুতে দুখৰ সমভাগী হ'বলৈ আহিলেও ঈৰ্ষাপৰায়ণ অনেকেই গোঁসাইৰ জীয়ৰীৰ মৰহি পৰা সুখ-আনন্দৰ ৰং চাবলৈহে ঢাপলি মেলিছে। এক কথাত মহিলাৰ ই এক সহজাত স্বভাৱ। স্বামীৰ নামৰ সেন্দুৰ কপালত জিলিকাই ৰাখিব পৰাটো নাৰীৰ সৌভাগ্যৰ বিষয়। তেনেস্থলত গোঁসাইৰ জীয়ৰীয়ে স্বামীক হেৰুৱাই স্বামীভিঠা ত্যাগ কৰি পিতৃগৃহলৈ উভতি অহা কথাটোত এচাম তিৰোতাই মুখেৰে প্ৰকাশ নকৰিলেও ভিতৰি যে আনন্দ নোপোৱাকৈ থকা নাছিল, সেই কথা নুই কৰিব নোৱাৰি। উপন্যাসত গিৰিবালা ঘৰলৈ উভতি অহাক কেন্দ্ৰ কৰি তিৰোতাৰ যি ভিৰ পৰিলক্ষিত হৈছে সেয়া লেখিকাৰ বাস্তৱৰ অভিজ্ঞতাৰ পৰাই বুটলা। কোনোবাই যদি দুখ কৰিছে, কোনোবাই উপদেশ দিছে, কোনোবাই আকৌ

বিধৱাৰ পালনীয় নীতি-নিয়মবোৰ সোঁৱৰাই আছে।

“নুচুবি ! নুচুবি’ এইমাত্ৰ বাঁৰী হোৱা তিৰি, ঐ শিৰত সেন্দুৰ পিন্ধা তিৰিহঁত !!”

“গাড়ী গৈ পাছ চোতাল পোৱাৰ লগে লগে কাঁথিত বহি থকা তিৰীজাকে ছৈৰ ওচৰলৈ লৰি আহিল।”

“ভিৰৰ মাজৰ পৰা কোনোবা এজনীয়ে ক’লে, স্বভাৱ-চৰিত্ৰ একেদৰেই আছে। বোৱা-কটাতো মন নাই, পৰ্বতৰ দৰে একোটা দিন কেনেকৈ কটাব মাইচানাই।” (*গোস্বামী, দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা,* পৃষ্ঠা-৪৩)

“এনকে যে মাইচানাটোক লৈ আহিলি বঙৱাৰ গহায়ে যদি আৰু নিবা নাহে?”

“হায় হায়, একেবাৰে যদি দুৰ্গাৰ অৱস্থাই হয় ! মাটি-বাৰী সপাৰ যাব।” (*গোস্বামী,দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা,* পৃষ্ঠা-৪৪)

নাৰী চৰিত্ৰসমূহৰ দৰে সত্ৰৰ পৰিৱেশত লগ পোৱা লেখিকাৰ শৈশৱৰ লগৰী ৰাজেন্দ্ৰ নামৰ হাতীটো আৰু কাল্টু মাউতৰ বিষয়েও তেখেতে উপন্যাসত উল্লেখ কৰিছে। ৰাজেন্দ্ৰ অৰ্থাৎ জগন্নাথ (উপন্যাসত) আছিল অধিকাৰ মহাপ্ৰভূৰ ঘৰৰ পোহনীয়া হাতী। সৰুতে গোস্বামী সত্ৰলৈ যোৱাৰ সময়ত এই হাতীটোৰ সৈতে অধিক সময় অতিবাহিত কৰিছিল। হাতীটোৰ সৈতে এক এৰাব নোৱাৰা সম্পৰ্ক লেখিকাৰ গঢ় লৈ উঠিছিল। কিন্তু পাছলৈ বনৰীয়া হাতীবোৰ বশ কৰিবলৈ যোৱা ৰাজেন্দ্ৰ নিজেই কিছু উগ্ৰ হৈ উঠিছিল। তাৰ উগ্ৰতাই এনে চূড়ান্ত ৰূপ লাভ কৰিছিল যে এদিন সি সত্ৰৰে এজন খেতিয়কক হত্যা কৰিছিল। মানুহ হত্যাৰ অপৰাধত চৰকাৰে তাক গুলীয়াই মৰাৰ আদেশ প্ৰদান কৰিছিল। ৰাজেন্দ্ৰ সম্পৰ্কত লেখিকাই উল্লেখ কৰা অনুসৰি -

“মই লিখিছিলোঁ কেনেকৈ মোৰ পিতা তেওঁৰ ভায়েক অৰ্থাৎ মোৰ খুড়াই সম্পূৰ্ণ আনুষ্ঠানিকতাৰে বিশেষ পোছাক পৰিধান কৰি মহাপয়োভৰেৰে আৰু গৌৰৱেৰে মহাজনসকলৰ পৰিয়ালৰ বিয়াৰ অনুষ্ঠানবিলাকলৈ লৈ গৈছিল। হয়, হয়, ৰাজেন্দ্ৰকো এইবোৰ অনুষ্ঠানৰ বাবে বিশেষ ধৰণেৰে সজোৱা হৈছিল। যেতিয়া সু-সজ্জিত গাদীখন তাৰ পিঠিত তুলি দিয়া হৈছিল, তেতিয়া সি আনকি নিজা ধৰণেৰে তাৰ সেই সন্তুষ্টিও প্ৰকাশ কৰিছিল। মই এই হাতীটোৰ সান্নিধ্যত পাৰ হোৱা মোৰ শৈশৱৰ দিনবোৰৰ বিষয়ে বিশদভাৱে লিখিছিলোঁ। বৰ্ণনা কৰিছিলোঁ, এবাৰ সি পাগলৰ দৰে হৈ গাঁওবাসী এজনক হত্যা কৰাৰ পিছত অসম চৰকাৰৰ প্ৰচলিত আইনৰ গণ্ডীৰ ভিতৰত কেনেকৈ নিষ্ঠুৰভাৱে তাক গুলীয়াই হত্যা কৰা হৈছিল। তাক গুলীয়াই মৰা দিন ধৰি মোৰ মা-দেউতাই কেনে দুৰ্দান্ত মানসিক যন্ত্ৰণাৰ মাজেৰে দিনবোৰ অতিবাহিত কৰিছিল, তাকো মই বিশদভাৱে বৰ্ণনা কৰিছিলোঁ। (ভৰালী, *মামণি ৰয়ছম ঃ স্বপ্ন-দুঃস্বপ্নৰ ডায়েৰী,* পৃষ্ঠা-৯৪)

উপন্যাসতো লেখিকাই ৰাজেন্দ্ৰৰ দুৰ্ভাগ্যপূৰ্ণ জীৱনটোক অকনো সাল-সলনি নকৰাকৈ উপস্থাপন কৰিছে। ভাঠি খুলি পগলা হোৱা দঁতাল হাতী জগন্নাথৰ বাঢ়ি অহা উপদ্ৰৱে গাওঁখনলৈ কঢ়িয়াই অনা ভয়ানক সন্ত্ৰাসৰ বিৱৰণ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত হৈছে। সত্ৰৰ এই হাতীটোৱে সত্ৰৰ ল’ৰা-ছোৱালীবোৰৰ সৈতে ৰং-তামাচা কৰাৰ পৰা মানুহ মৰালৈকে, এক দীঘলীয়া ঘটনাৰ সাক্ষী হৈ ৰৈছে সত্ৰৰ মানুহবোৰ। লেখিকাৰ লগতে তেওঁৰ পৰিয়াল তথা ওচৰ-চুবুৰীয়াৰো যে জগন্নাথ মৰমৰ আছিল তাক উপন্যাসখন পঢ়িলেই অনুমান কৰিব পাৰি।

“ভাঠি খোলা হাতী জগন্নাথে তেতিয়াও মানুহ মৰা নাছিল। সেইবাবে সত্ৰৰ আশে-পাশে সন্ত্ৰাসৰ সৃষ্টি কৰিছিল যদিও তাক গুলীয়াই মৰাৰ আদেশ ওপৰৰ পৰা অহা নাছিল। আনকি ৰাইজ আৰু গোঁসায়েও এই হাতীটো যে কেতিয়াবা গুলীয়াই মাৰিবলগীয়া হ’ব এই কথা চিন্তা কৰা নাছিল। সকলোৱে এটাই আশা কৰিছিল-সি যাতে মানুহ নামাৰে। উৰপুত, পাত হালধীয়া আদিৰ গোঁসাইহঁতৰ ভাঠি-খোলা হাতী জিৰাঙৰ পিনে পলাই যোৱাৰ দৰে এই হাতীও পলাই যাওক। আহ ! কেনে গাম্ভীৰ্যপূৰ্ণ হাতী আছিল। বাটেদি গ’লে সকলোৱে মোৰ দোৱাইছিল। ভৰিৰ নখ ওঠৰটা আছিল বাবে সকলোৱে বৰ সুলক্ষণীয়া হাতী বুলিছিল। শিখসকলে যুদ্ধত ব্যৱহাৰ কৰা সেই ভাঁজ লোৱা তৰোৱালৰ দৰে আছিল তাৰ দাঁত।” (*গোস্বামী, দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা,* পৃষ্ঠা-১৪৮)।

জগন্নাথৰ দৰে কাল্টু কানীয়াৰ উল্লেখো উপন্যাসখনত পৰিদৃশ্যমান হৈছে। “কাল্টু কানীয়াই আকৌ এবাৰ থেৰো-গেঁৰো কৰি উঠিল। কোৱাৰিৰে বাগৰি পৰা লেলাউটি আৰু ধূলি লাগি তাৰ এখন গাল একেবাৰে লপথপ হৈ আছিল। বৰ কুৎসিত লাগিল ইন্দ্ৰনাথৰ।” (*গোস্বামী, দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা,* পৃষ্ঠা-৩২)। উপন্যাসৰ এই কাল্টু কানীয়াৰ কথা লেখিকাই তেওঁৰ আত্মজীৱনীত উল্লেখ কৰিছে এনেদৰে- “হাতীৰ মাউত কাল্টু কানীয়া আছিল। সত্ৰত সি আমাৰ অত্যন্ত প্ৰিয় চৰিত্ৰ আছিল। কানি সেৱন কৰি থকা সময়ত মই কেতিয়াবা তাৰ ওচৰত উপস্থিত হৈছিলোঁ। বৰ যত্নেৰে সি পাণ কিছুমান মিহি মিহিকৈ কাটি লৈ খোলাত ভাজিছিল।” (*গোস্বামী, আধালেখা দস্তাবেজ,* পৃষ্ঠা-৭৪)।

এনেদৰে সত্ৰৰ পৰিৱেশত দেখিবলৈ পোৱা সৰু-বৰ সকলো ঘটনাৰ উল্লেখ উপন্যাসখনত বৰ্ণিত হৈছে। লেখিকাই

সৰুকালৰে পৰাই জীৱ-জন্তুক যথেষ্ট মৰম কৰিছিল। মানৱীয় ইচ্ছা-আকাংক্ষাবোৰ পূৰণৰ লক্ষ্যৰে জীৱ হত্যা কৰা বিষয়টো লেখিকাই পচন্দ কৰা নাছিল। অনেক সময়ত ইয়াৰ বিৰোধিতাও কৰিছিল। সৰুতে এবাৰ গাঁৱৰ ঘৰলৈ যাওতে ককাকৰ শ্ৰাদ্ধত ভোজৰ বাবে কিদৰে পাঠা ছাগলীৰ বলি দিয়া হৈছিল, তাৰ বিৱৰণ লেখিকাই নিজৰ আত্মজীৱনীত উল্লেখ কৰিছে।

"সেই ঠাইৰ পৰা আঁতৰি বাৰীৰ পাছৰ ৰবাব টেঙাজোপাৰ তলত ভিৰ পতা মানুহবোৰৰ ওচৰলৈ গৈছিলোঁ। সিহঁতে পাঠা মাৰিবলৈ গাঁত খান্দিছিল। তিনি চাৰিটা মানুহে ধৰি এই গাঁতৰ ভিতৰত পাঠাৰ মূৰটো সুমুৱাই দিছিল। তাৰ পাছত মাটি জাপি মূৰটো একেবাৰেই পুতি পেলাইছিল। এই দৃশ্য মাহঁতে ল'ৰা-ছোৱালীবোৰক চাবলৈ নিদিছিল। তথাপি মই এটা সময়ত ৰবাব টেঙাৰ তলত উপস্থিত হৈছিলোঁ।

বিস্ময়ত অভিভূত হৈ সেই মাৰাত্মক যন্ত্ৰণাৰ দৃশ্য চাইছিলোঁ। হৃদয়ৰ মাজত এই যন্ত্ৰণাৰ ছবি শিলৰ ৰেখাৰ দৰে অঙ্কিত হৈ ৰৈছিল।" (*গোস্বামী, আধালেখা দস্তাবেজ,* পৃষ্ঠা-৭৮)

আত্মজীৱনীত উল্লেখিত এই ঘটনাৰ বিৱৰণ উপন্যাসত পোনপতীয়াকৈ নাই যদিও পাঠা বলি দিয়া ঠাইকনৰ উল্লেখ বহু ঠাইত কৰা দেখা গৈছে।

"আঁঠুত মূৰ গুঁজি বিনাই থকা গোঁসানী হঠাৎ সজাগ হৈ উঠিল। তেঁও ঠিয় হ'ল। এইবাৰ তিৰোতাজাকক তেওঁ উৎসৱৰ সময়ত পাচফালৰ পাঠামৰা কাঁথিৰ ওচৰলৈ মাতি নিলে।

(এইখিনিতে পূৰ্বপুৰুষসকলৰ শ্ৰাদ্ধৰ সময়ত গাঁত খান্দি ডিঙি পুতি পাঠা মাৰা হৈছিল। তেতিয়াৰ পৰা এই কাঁথিৰ নাম পাঠামাৰা কাঁথি হৈছিল।) (*গোস্বামী, দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা,* পৃষ্ঠা-৪৪)

অতিপাত হাৰত নিষিদ্ধ কানিৰ ব্যৱহাৰ সেই সময়ৰ আন এক জলন্ত সমস্যা আছিল। ভাৰতে স্বাধীনতা লাভ কৰিলেও কানিৰ পৰা মুক্ত হ'ব পৰা নাছিল। অসমৰ গাৱেঁ-ভূঞেঁ থকা সৰহসংখ্যক অসমীয়াৰ বাবে কানি অবিহনে জীৱন-ধাৰণ কৰাটো একপ্ৰকাৰ অসম্ভৱেই হৈ পৰিছিল। কানিয়ে কিদৰে অসমৰ জনগণক সোৰোপা কৰি তুলিছিল তাৰ বৰ্ণনা লেখিকাই তেওঁৰ আত্মজীৱনী *আধালেখা দস্তাবেজত* উল্লেখ কৰিছে এনেদৰে -

"পিতাৰ মুখত শুনিছিলো সত্ৰখনৰ আধা মানুহ কানিৰ গ্ৰাসত লিপ্ত হৈ আছিল। পিতাহঁতৰ চেষ্টাত হেৰামদতো কানিয়াসকলৰ চিকিৎসা কেম্প সজা হৈছিল। হাতীৰ মাউত কাল্টু কানীয়া আছিল। সত্ৰত সি আমাৰ অত্যন্ত প্ৰিয় চৰিত্ৰ আছিল। কানি সেৱন কৰি থকাৰ সময়ত মই কেতিয়াবা তাৰ ওচৰত উপস্থিত হৈছিলোঁ।"

অকল কাল্টুৱেই কানি খাইছিলনে? সেই সময়ত দক্ষিণ পাৰৰ হাতী মহলৰ প্ৰায় সকলোবোৰ কানীয়াই সম্ভৱ কানি খাইছিল।" (*গোস্বামী, আধালেখা দস্তাবেজ,* পৃষ্ঠা-৭৪)

সত্ৰৰ পুৰুষ-মহিলা উভয়েই কানিৰ কৱলত। কানি নিবাৰণৰ অনেক আইনী ব্যৱস্থা সেই সময়ৰ গান্ধীবাদী চৰকাৰখনৰ নেতৃত্বত গঢ় লৈ উঠিছিল যদিও ফলপ্ৰসু হোৱা নাছিল।

"কানীয়াসকলক আত্মশুদ্ধিৰ বাবে গোটাই ৰখা শিবিৰটিৰ বিষয়েও মই মোৰ উপন্যাসত লিখিছিলোঁ। বাৰ্দ্ধক্যই সাবটি লোৱা আগৰকালৰ কিছু কানীয়াৰ অলপতে মই লোৱা সাক্ষাৎকাৰৰ ভিত্তিতে মই এই শিবিৰৰ বিৱৰণ দিবলৈ চেষ্টা কৰিছিলোঁ। সাক্ষাৎকাৰ লোৱা আমাৰ সত্ৰৰ কানীয়াসকলৰ ভিতৰত বেছিভাগেই আছিল বৃদ্ধা তিৰোতা; যিসকলে নিজৰ যুৱতীকালত কিছুদিন হ'লেও এই শিবিৰত কটাবলগীয়া হৈছিল।" (ভৰালী, মামণি ৰয়ছম স্বপ্ন-দুঃস্বপ্নৰ ডায়েৰী, পৃষ্ঠা-৯৫)

উপন্যাসখনৰ অধিকাংশতে কানিৰ ভয়াৱহতা তথা সজাগতাৰ ছবি ফুটি উঠিছে। কানিৰ কৱলত পৰি ধ্বংসগ্ৰস্ত হৈ পৰা সত্ৰৰ পুৰুষ-মহিলাসকলৰ বিৱৰণ উপন্যাসখনত পোৱা গৈছে এনেদৰে-

"হাফপেণ্ট পিন্ধা টেঁটেৰা হেণ্ডিমেণ্টটোৱে আটাহ পাৰি উঠিল, "খোৱা-বোৱা মাফৎ! দৰৱ-পাতিও মাফ। পিছে আমাৰ তিৰীমখাই কি কৰিব?"

"হয় হয়! আমাৰ কানীয়া তিৰিমখাই কি কৰিব? বাৰাভাতেৰী তিৰীহঁতে কি কৰিব?"

"কানিৰ কাণ কাটি বিক্ৰী কৰা তিৰীহঁত-বাৰাভাতেৰীহঁত, কানি খাই পাগৰ বাহিৰ হবাৰ বিহ খেদাহঁতে কি কৰিব?" (*গোস্বামী, দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা,* পৃষ্ঠা-৫৫)

কানিৰ ভয়ঙ্কৰ প্ৰচলনৰ লগতে সত্ৰ সমাজত পৰিলক্ষিত জাতি-ভেদ প্ৰথাৰ ধাৰণায়ো উপন্যাসত স্থান লাভ কৰিছে। সৰু থাকোতে জাত-পাতৰ বিচাৰ নকৰি গাঁৱৰ ল'ৰা-ছোৱালীজাকৰ সৈতে খেলা-ধূলা কৰাৰ বাবে লেখিকাৰ গাৰ কাষৰ পৰা তিনি খোজ পাছত পেহীয়েকহঁত আছিল। পৰৱৰ্তী সময়তো বিয়াৰ ক্ষেত্ৰত জাত-পাতৰ বাবেই লেখিকাই বহু যন্ত্ৰণা ভুগিবলগীয়া হৈছিল। জাত-পাতৰ বিচাৰে কিদৰে মানুহৰ আন্তঃ-সম্পৰ্কক আঘাত কৰিছিল তাক গিৰিবালা আৰু মাৰ্ক চাহাবৰ লগতে ইন্দ্ৰনাথ আৰু ইলিমনৰ প্ৰেমৰ মাজেৰে লেখিকাই উপন্যাসত উল্লেখ কৰিছে। দামোদৰীয়া সত্ৰত প্ৰচলিত বৈবাহিক নিয়ম সম্পৰ্কত লেখিকাই কৈছে-

"তেতিয়া আমাৰ সত্ৰৰ গোঁসাই অৰ্থাৎ অধিকাৰ মহাপ্ৰভুসকলে পুষ্পিতা নোহোৱা ছোৱালীৰ লগতো ধৰ্মসন্মতভাৱে বিবাহপাশত আৱদ্ধ হ'ব পাৰিছিল। ইয়াৰ বাহিৰে অন্য পৰিয়ালৰ কন্যাৰ আনকি ব্ৰাহ্মণ কন্যাৰো তেৰাসৱে পাণী গ্ৰহণ কৰিব নোৱাৰিছিল।" (ভৰালী, মামণি ৰয়ছম স্বপ্ন-দুঃস্বপ্নৰ ডায়েৰী, পৃষ্ঠা ৯৪)

এনেদৰে, লেখিকাৰ ব্যক্তিগত জীৱনৰ অভিজ্ঞতাই কল্পনা আৰু আবেগৰ সহযোগত "দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা" উপন্যাসৰ মাজেৰে প্ৰাণ পাই উঠিছে। আত্মজীৱনীমূলক উপাদানেৰে ভৰপূৰ এই উপন্যাসখনিয়ে লেখিকাৰ অন্তৰৰ সাহসীকতাৰে যেন পৰিচয় দাঙি ধৰিছে। সত্ৰৰ সমাজ-জীৱনক লৈ ৰচিত এই উপন্যাসখন অসমীয়া সাহিত্যৰ ভৰাঁলত এক জীৱন্ত দলিলৰূপে জিলিকি থাকিব।

সামৰণি ঃ

আঞ্চলিক উপন্যাসৰূপে চৰ্চিত 'দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা" উপন্যাসখনত লেখিকাৰ শৈশৱৰ অনেক জীৱন্ত ঘটনাই ঠন ধৰি উঠিছে। দামোদৰীয়া সত্ৰ-পৰম্পৰাক লৈ ৰচিত হোৱা এইখনেই অসমীয়া সাহিত্যৰ প্ৰথমখন উপন্যাস। এই উপন্যাসখনে ব্ৰাহ্মণ্যবাদী ধাৰণাৰে পৰিচালিত দামোদৰীয়া সত্ৰৰ কঠোৰ শাসন-পদ্ধতিৰ উল্লেখ কৰিছে সত্ৰৰে এসময়ৰ পুৰুষ-নাৰীসকলক কেন্দ্ৰ কৰি। অকালতে বৈধব্যৰ আচোৰ পৰা গোস্বামীৰ জীৱনটোক সত্ৰৰ পালনীয় নিয়মবোৰে বিপৰ্যস্ত কৰি তুলিছিল। বিধৱা হ'ল বুলিয়েই নাৰীক পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতিৰ গণ্ডীৰে হেঁচা মাৰি ধৰা সমাজখন কেতিয়াও আদৰ্শ সমাজৰ নিদৰ্শন হ'ব নোৱাৰে। নাৰী-পুৰুষৰ সম-মৰ্যাদা, সম অধিকাৰেহে এখন সুস্থ-সৰল সমাজ গঠনত সহায়ক হৈ উঠে। ধৰ্মক জীৱনৰ সৰ্বস্ব কৰি আগবঢ়া সমাজ কেতিয়াও জনসাধাৰণৰ হিতসাধনকাৰী হ'ব নোৱাৰে। দক্ষিণ কামৰূপৰ দামোদৰীয়া পন্থাৰ সত্ৰসমূহত বৈধব্য নাৰীৰ অসহনীয় যন্ত্ৰণাক লেখিকাই প্ৰত্যক্ষ কৰাৰ লগতে অনুভৱ কৰিছিল। তেওঁলোকৰ আহত, দুৰ্বিসহ জীৱনে গোস্বামীক ভিতৰি প্ৰতিবাদী কৰি তুলিছিল। ধৰ্মান্ধত বুৰ যোৱা সমাজখনক উদ্ধাৰৰ লক্ষ্যৰে ৰচিত হোৱা এই উপন্যাসখনে অসমৰ এক জটিল সময়ৰ ছবি পোহৰলৈ আনিছে। অন্যায় সহ্য কৰি স্বামীৰ চিন্তাত দিন পাৰ কৰা সেই দুৰ্ভগীয়া সত্ৰৰ নাৰীসকলৰ ছবি উপন্যাসত তুলি ধৰাৰ মাজেৰে আগন্তক দিনত এনেবোৰ ঘটনা যাতে পুনৰ সংঘটিত নহয় তাৰ এক বাৰ্তা লেখিকাই জনমানসত প্ৰচাৰ কৰিছে। এসময়ৰ বিশাল সা-সম্পত্তিৰে গিজগিজাই থকা সত্ৰসমূহৰ ক্ষণভঙ্গুৰ ছবিৰ উপস্থাপনে সত্ৰ-সংস্কৃতিৰ কৌটিকলীয়া পৰম্পৰাৰ জহি-খহি যোৱা ভিতৰচোৰাৰ এক বিৱৰণ উপন্যাসখনে দাঙি ধৰিছে। 'একালৰ বৃন্দাবন একালত পৰে চন' বোলা কথাষাৰক এইক্ষেত্ৰত বিশেষভাৱে প্ৰয়োগ কৰিব পাৰি। আনহাতে গিৰিবালাৰ প্ৰতিবাদী স্থিতিৰ মাজেৰে লেখিকাই সত্ৰ সমাজৰ নীতি-নিয়মবোৰক উপেক্ষা কৰি তাৰ ঠাইত নতুন দিনৰ শুভাৰম্ভ কৰিবলৈ এক প্ৰয়াস কৰিছে বুলিব পাৰি। লেখিকাৰ এই উপন্যাসখনে সমাজলৈ আগবঢ়াইছে সমতাৰ এক বাৰ্তা। নাৰী-পুৰুষৰ সম অধিকাৰৰ লগতে সমাজত প্ৰচলিত উচ্চ-নীচ, জাত-পাতৰ ভেদভাব পৰিহাৰ আৰু অপ্ৰাসংগিক কেতবোৰ নিয়ম-নীতিৰ পুনঃ সংশোধনৰ এক বাৰ্তা উপন্যাসখনত প্ৰতীয়মান হৈছে। দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধ আৰু স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ উল্লেখে স্বাধীন অসমৰ থৰক-বৰক আন্তঃগাঁথনিৰ কথাকে যেন প্ৰমাণ কৰিছে। কানিৰ প্ৰভাৱত পৰি ক্ৰমাত ধ্বংসস্তূপলৈ পৰিণত হোৱা অসমৰ পুৰুষ-মহিলাসকলৰ দুৰ্ভাগ্যপূৰ্ণ জীৱন ছবিৰ বৰ্ণনাই এসময়ৰ অসমৰ অস্থিৰ বাতাবৰণকে যেন পুনৰ প্ৰতীয়মান কৰিছে। ❑

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

১. গোস্বামী, মামণি ৰয়ছম। *আধালেখা দস্তাবেজ*। চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, পাণবজাৰ,গুৱাহাটী। প্ৰথম সংস্কৰণ,১৯৮৮।

২. গোস্বামী, মামণি ৰয়ছম। *দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা*। চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী। দ্বিতীয় সংস্কৰণ, ২০১৮।

৩. বৰা, মহেন্দ্ৰ। সাহিত্যে উপক্ৰমণিকা। ষ্টুডেন্টচ্ ষ্ট'ৰচ্, কলেজ হোষ্টেল ৰোড, গুৱাহাটী। পঞ্চম সংস্কৰণ, ছেপ্তেম্বৰ, ২০১৩।

৪. ভৰালী, হেমন্ত কুমাৰ। *মামণি ৰয়ছম স্বপ্ন-দুঃস্বপ্নৰ ডায়েৰী*। চিত্ৰলেখা প্ৰকাশন,পল্টন বজাৰ, গুৱাহাটী। প্ৰথম প্ৰকাশ ১৯৯৮।

৫. মিশ্ৰ, কৃষ্ণ কুমাৰ। প্ৰসংগঃ উপন্যাস। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী। প্ৰথম প্ৰকাশ, ডিচেম্বৰ, ২০০৮।

৬. শৰ্মা, গোবিন্দ প্ৰসাদ। জীৱনী আৰু আত্মজীৱনীঃ *অসমীয়া আৰু পাশ্চাত্যত*। বনলতা, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী। তৃতীয় সংস্কৰণ, ফেব্ৰুৱাৰী, ২০১৯।

৭. www.youtube.com/@rajivmehrotraofficial

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

মিত্রদেৱ মহন্তৰ প্ৰহসনত লোকসাংস্কৃতিক উপাদান
(কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকৰ বিশেষ প্ৰসংগত)

চয়নিকা বৰা
গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
মাজুলী সাংস্কৃতিক বিশ্ববিদ্যালয়
মাজুলী, অসম-৭৮৫১০৬
৭৮৯৬৪৭২৭৭৫
borahchayanika788@gmail.com

ড° শুভজ্যোতি বৰগোহাঁই
সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
মাজুলী সাংস্কৃতিক বিশ্ববিদ্যালয়
মাজুলী, অসম-৭৮৫১০৬
৯১০১৩৭০৫১২
subhajyotiborgohain265@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

অসমীয়া নাট্যসাহিত্যত মিত্ৰদেৱ মহন্ত এজন গুৰুত্বপূৰ্ণ প্ৰহসন নাট্যকাৰ। মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ প্ৰহসনসমূহ অসমীয়া লোকসংস্কৃতিৰ এক জীৱন্ত দলিল স্বৰূপ। বিশেষকৈ কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকখনত গ্ৰাম্য সমাজত প্ৰচলিত লোকবিশ্বাস, লোক অনুষ্ঠান, লোকভাষা, লোকসাহিত্যৰ প্ৰতিফলন দেখা যায়। নাট্যকাৰজনে এই লোকসাংস্কৃতিক উপাদানসমূহক নাট্যগাঁথনিৰ মূল আধাৰ হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰি গ্ৰাম্য সমাজৰ বাস্তৱ পৰিৱেশ সাৱলীলভাৱে উপস্থাপন কৰিছে। কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা প্ৰহসনত ব্যৱহৃত আঠমঙলা অনুষ্ঠানটি লোকসাংস্কৃতিক উপাদানৰ এক উল্লেখযোগ্য নিদৰ্শন। এই অনুষ্ঠানৰ জৰিয়তে নাট্যকাৰে লোকবিশ্বাস, অবৈজ্ঞানিক চিন্তাধাৰা আৰু লোকভাষা ব্যংগাত্মক ৰূপত দৰ্শকৰ আগত উন্মোচিত কৰিছে।

বীজ শব্দ ঃ

মিত্ৰদেৱ মহন্ত, প্ৰহসন, কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা, নাটক, লোকসংস্কৃতি।

১.০০ অৱতৰণিকা ঃ

প্ৰহসন হৈছে এক শ্ৰেণীৰ নাটক য'ত ৰূপায়িত হয় সমাজ জীৱনৰ গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশৰ পৰা আহৰণ কৰা লঘু বিষয়বস্তুযুক্ত অতিৰঞ্জিত বা অবাস্তৱ ঘটনা। সংস্কৃত সাহিত্যত প্ৰহসন বুলি এবিধ দৃশ্যকাব্য আছে; ইয়াৰ বিষয়বস্তু প্ৰায়েই পুৰাণ-মহাভাৰত আদিৰ· প্ৰকাশভংগী লঘু আৰু অসংলগ্ন। কিন্তু আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যত যিবোৰ প্ৰহসন বা ধেমেলীয়া নাট আছে তাৰ বিষয়বস্তু প্ৰায়েই সামাজিক। *চৰিত্ৰৰ বচন ঠায়ে ঠায়ে অসংলগ্ন হ'লেও প্ৰধানত হাস্যৰসৰ প্ৰধান উৎস কেৱল বচনসমূহৰ ওপৰতে নিৰ্ভৰ নকৰে; পৰিস্থিতিৰ যোগেদিহে হাস্যৰস সঞ্চাৰ কৰিবলৈ চেষ্টা কৰা হয়। অবান্তৰ পৰিস্থিতি প্ৰদৰ্শনৰ উপৰি বাস্তৱ অৱস্থাৰ আলম লৈও হাস্যৰস উথলোৱা পৰিবেশ সৃষ্টি কৰা হয়।*[১] প্ৰহসন দুবিধ-এবিধ শুদ্ধ আৰু আনবিধ মিশ্ৰ। 'ভাৰতৰ নাট্যশাস্ত্ৰৰ মতে শৈৱগুৰু ('ভগৱত'), ব্ৰাহ্মণ আৰু অন্যান্য চৰিত্ৰৰ যোগেদি হোৱা ধেমেলীয়া বাস্তৱ - প্ৰায় দৃশ্য সম্বলিত নাটক শুদ্ধ প্ৰহসন। দাস, দাসী, বিট, ধূৰ্ত আৰু অসতী দুষ্ট তিৰোতাসৰৰ মাজত হোৱা অসৎ দৃশ্য আৰু কথোপকথন সম্বলিত নাটকক মিশ্ৰ প্ৰহসন বোলা হয়। *প্ৰহসনবোৰত ঠগ, প্ৰবঞ্চনা আদিৰ চিত্ৰ থাকে। ই 'বীথী'-লক্ষণ-যুক্ত হ'ব লাগে।"*[২]

অসমীয়া লোকসংস্কৃতি হৈছে অসমীয়া সমাজ আৰু সভ্যতাৰ এক গভীৰ আৰু বিস্তৃত প্ৰকাশ। যুগে যুগে চলি অহা লোকবিশ্বাস, লোকপৰম্পৰা, লোক অনুষ্ঠান, লোক প্ৰবাদ আৰু লোক জীৱনৰ দৈনন্দিন কাৰ্য্যই অসমীয়া সমাজখনক গঢ় দি আহিছে। এই লোকসাংস্কৃতিক উপাদান সমূহকে লৈ বিভিন্ন সময়ত বিভিন্ন ধাৰাৰ সাহিত্য ৰচিত হৈছে। সাহিত্য, বিশেষকৈ নাট্য সাহিত্য এই লোকসাংস্কৃতিক উপাদানসমূহ প্ৰকাশ আৰু সংৰক্ষণৰ শক্তিশালী মাধ্যমৰূপে পৰিগণিত হৈছে।

মিত্ৰদেৱ মহন্ত হৈছে তেনে প্ৰহসন পৰম্পৰাৰে নাটক ৰচনা কৰি খ্যাতি লাভ কৰা এজন ব্যক্তি। বিংশ শতিকাৰ পৰা নাটক ৰচনা কৰা মহন্তই জীৱনকালত বহুতো প্ৰহসন ৰচনা কৰিছিল যদিও সকলোবোৰ প্ৰকাশ নহ'ল আৰু কিছুমান উদ্ধাৰ কৰিব পৰা নগ'ল। তেওঁৰ বৰ্তমানপ্ৰাপ্ত প্ৰহসনবোৰ হ'ল- মৰণ দুৱাৰ, লেকলৌ লানি, কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা, বিয়া-বিপৰ্য্যয়, নিবোকা ৰজা, টেঙ্গৰ-ভেঙ্গৰ, এটা চুৰট, ভোটৰ ৰগৰ, স্বৰ্গ নে মৰ্ত্য, চোৰৰ ওৰ আৰু ভাঙ-কাছাৰী।

মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ প্ৰহসনসমূহৰ ভিতৰত কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকখন লোকসংস্কৃতিক উপাদানৰ সফল প্ৰয়োগৰ এক উৎকৃষ্ট নিদৰ্শন। **মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ প্ৰহসনত লোকসাংস্কৃতিক উপাদান (কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকৰ বিশেষ প্ৰসংগত)** শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে অসমীয়া সমাজত প্ৰচলিত আঠমঙলা অনুষ্ঠান, লোকসাহিত্য, লোকবিশ্বাস, লোকভাষা এই বিষয়সমূহ অধ্যয়নৰ কৰা হ'ব।

১.০১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ প্ৰহসনত লোকসাংস্কৃতিক উপাদান (কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকৰ বিশেষ প্ৰসংগত) শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখনৰ উদ্দেশ্যসমূহ এনেধৰণৰ—

- মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ প্ৰহসনসমূহৰ বিষয়ে জ্ঞাত হোৱা।
- মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকখনত ব্যৱহৃত লোকসাংস্কৃতিক উপাদানসমূহ বিশ্লেষণ কৰা।
- নাটকখনত লোকসাংস্কৃতিক উপাদানসমূহে কেনেদৰে নাট্যৰূপ গঠন হোৱাত সহায়ক হৈছে অধ্যয়ন কৰা।

১.০২ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

অসমীয়া লোকসংস্কৃতি অসমৰ সমাজ-সভ্যতাৰ মূল ভেঁটি স্বৰূপ। এই লোকসংস্কৃতিক উপাদানসমূহ সাহিত্যত বিশেষকৈ নাট্যসাহিত্যত, সজীৱ ৰূপত প্ৰতিফলিত হৈ সমাজৰ আভ্যন্তৰীণ গঠন, বিশ্বাস ব্যৱস্থা আৰু মানসিকতাৰ স্বৰূপ উন্মোচন কৰে। মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ প্ৰহসন নাটকসমূহ এই দিশত গুৰুত্বপূৰ্ণ, কাৰণ তেওঁৰ নাটকত লোকসংস্কৃতি কেৱল পটভূমি হিচাপে ব্যৱহৃত নহয়, বৰঞ্চ সমাজ সমালোচনাৰ এক শক্তিশালী মাধ্যম হিচাপে পৰিগণিত হৈছে। তেওঁৰ 'কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা' শীৰ্ষক নাটকখন এইশ্ৰেণীৰ নাটকৰ উৎকৃষ্ট উদাহৰণ। তেওঁৰ নাটকৰ অধ্যয়নে সেই সময়ত প্ৰচলিত চিন্তাধাৰা, সমাজ আৰু সমাজৰ নিয়মসমূহ জনাত সহায় কৰিব, সেয়ে এই গৱেষণা পত্ৰ অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ।

১.০৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ প্ৰহসনত লোকসাংস্কৃতিক উপাদান (কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকৰ বিশেষ প্ৰসংগত) শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোতে বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতি আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিক আধাৰ হিচাপে লোৱা হৈছে।

গৱেষণা পত্ৰত ব্যৱহৃত পদ্ধতিক দুটা ভাগত ভাগ কৰা হৈছে—

- তথ্য সংগ্ৰহৰ পদ্ধতি
- তথ্য বিশ্লেষণৰ পদ্ধতি

● তথ্য সংগ্ৰহৰ পদ্ধতি ঃ

গৱেষণা পত্ৰৰ বাবে তথ্য সংগ্ৰহ কৰোতে মুখ্য সমল হিচাপে মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ নাটকসমূহৰ সহায় লোৱা হৈছে। গৌণ সমলৰ বাবে প্ৰাসংগিক গ্ৰন্থ আৰু বিভিন্ন আলোচনীৰ সহায় লোৱা হৈছে।

● তথ্য বিশ্লেষণৰ পদ্ধতি ঃ

বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায়ত মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ নাটকসমূহৰ বৰ্ণনা কৰা হৈছে আৰু বিশেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায়ত গৱেষণা পত্ৰত প্ৰাপ্ত লোকসাংস্কৃতিক উপাদানসমূহ বিশ্লেষণাত্মক কৰা হৈছে।

১.০৪ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ প্ৰহসনত লোকসাংস্কৃতিক উপাদান (কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকৰ বিশেষ প্ৰসংগত) শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোতে মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকত ব্যৱহৃত হোৱা লোকসাংস্কৃতিক উপাদান যেনে— লোকসাহিত্য, লোক অনুষ্ঠান আৰু লোকভাষাসমূহক সামৰি লোৱা হৈছে।

২.০০ মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকৰ লোকসাংস্কৃতিক উপাদান ঃ

১৯১৮ চনতেই মিত্ৰদেৱ মহন্তই ৰচনা কৰা কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকখনৰ পটভূমি হৈছে অসমীয়া গ্ৰাম্য লোকসমাজ। মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ উক্ত প্ৰহসনখন অসমীয়া লোকসমাজত প্ৰচলিত লৌকিক ধেমেলীয়া এটি সাধুকথাৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰি ৰচনা কৰিছে। নাটকখনত নাট্যকাৰে অতি আবাস্তৱ পৰিস্থিতি আৰু অন্যহাতেদি জোঁৱায়েক চেঙেলীৰ চৰিত্ৰত অতিৰঞ্জিত বোল সানি দৰ্শকক হঁহুৱাব খুজিছে। কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকখনত ন-জোঁৱাই চেঙেলীয়ে শহুৰেকৰ ঘৰত আঠমঙলা খাবলৈ গৈ হোৱা দুদৰ্শা-দুৰ্গতি আদিৰ কথা সুন্দৰভাৱে বৰ্ণিত হৈছে। চেঙেলীৰ বিলাই-বিপত্তি দেখি

দৰ্শকৰ পৰা সহানুভূতি আদায় কৰাৰ পৰিৱৰ্তে হাঁহিয়াতৰ পাত্ৰহে হৈ পৰিছে।

কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকখন হৈছে গ্ৰাম্য জীৱনৰ প্ৰতিনিধি আৰু তেনে গ্ৰাম্যসমাজতে জন্ম আৰু বিকাশ লাভ কৰে লোকসংস্কৃতিয়ে। সাহিত্যিকসকলে যেতিয়াই লোকসমাজৰ জীৱন স্বৰূপ অংকন কৰে তেতিয়াই লোকসংস্কৃতিৰ বিভিন্ন সমলে তাত ভূমুকি মাৰে। মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকখনো তাৰ ব্যতিক্ৰম নহয়। প্ৰহসনখনত প্ৰতিফলিত হোৱা সমলৰ আভাস দাঙি ধৰা হ'ল-

লোকসাহিত্য ঃ

অসমীয়া লোকসংস্কৃতিৰ প্ৰথম ভাগটিয়েই হৈছে লোকসাহিত্য। লোকসাহিত্য হৈছে লোক বিশ্বাসৰ প্ৰতিচ্ছবি।[৩] য'ত প্ৰতিফলিত হৈ থাকে লোক জীৱনৰ চিন্তা, কল্পনা, আৱেগ-অনুভূতি, সুখ-দুখ, আশা-নিৰাশা, শ্ৰদ্ধা-ভক্তি আৰু বিশ্বাস। মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা প্ৰহসনখনটো বিভিন্ন লোকসাহিত্যৰ উপাদান যেনে - জতুৱা ঠাঁচ, যোজনা-পটন্তৰ, ফকৰা, লোক অনুষ্ঠান, লোকবিশ্বাস আদি বিদ্যমান।

জতুৱা ঠাঁচ ঃ

অসমীয়া সাহিত্যৰ এবিধ উপাদান হৈছে লোকোক্তি। আৰু সেই লোকোক্তিৰ অন্যতম ৰূপ হৈছে জতুৱা ঠাঁচসমূহ। মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ প্ৰহসনখনত জতুৱা ঠাঁচৰ প্ৰয়োগ বিদ্যমান। এনে ভাষাৰ প্ৰয়োগে নাটকসমূহ জনসাধাৰণৰ অধিক কাষ চপাত সহায় কৰিছিল। উদাহৰণস্বৰূপে —

সাত ঘাটৰ চেঙেলী (কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা, পৃ. ৪৪৮)
মুখ আগলিকা (পূৰ্বোক্ত, পৃ. ৪৪৫)
কুকুৰীকণা (পূৰ্বোক্ত, পৃ. ৪৪৭)

যোজনা-পটন্তৰ ঃ

যোজনা-পটন্তৰ হৈছে লোক-সাহিত্যৰ এটি অমূল্য সম্পদ। মানুহে বাস্তৱ অভিজ্ঞতাৰ পটভূমিত যি জ্ঞান আৰ্জিছিল, সেই জ্ঞানৰ একো একোটি মণি-মুকুতাই হ'ল প্ৰবচন বা যোজনা-পটন্তৰ। বহুতেই কথাৱাশিক 'ফকৰা-যোজনা' শব্দৰে সামৰিব খোজে যদিও ভালকৈ বিশ্লেষণ কৰি চালে প্ৰবচন, ফকৰা, যোজনা-পটন্তৰ আটাইবোৰৰেই সুকীয়া সুকীয়া লক্ষণ বিদ্যমান।[৪] উদাহৰণস্বৰূপে—

মেকুৰীৰ ধৰিবা গলধনত, গৰুৰ ধৰিবা লেজত,
ঘোঁৰাৰ চুলিত, হাতীৰ কাণত, মানুহৰ গলত।
(পূৰ্বোক্ত, পৃ. ৪৪১)

নাই পো গোঁফে। নাই পো মুখে।। নাই পো ধুনে।
নাই পো গুণে।। নাই পো ধনী।। নাই পো ল-নি।।
(পূৰ্বোক্ত, পৃ. ৪৩৭)

আলচা কথা নহয় সিদ্ধি, বাটত আছে কণা বিধি।
(পূৰ্বোক্ত, পৃ. ৪৪৭)

ফকৰা ঃ

ফকৰা মানে এফাকি কথা; কিন্তু সাধাৰণ কথা নহয়, পাৰমাৰ্থিক অৰ্থবোধক কথাহে। বহু সময়ত মানুহে গোপনে বা ইঙ্গিতত কথা-বতৰা পাতিবলগীয়া হয়। চোৰ-ডকাইতৰ মাজতো এনে ইঙ্গিতময় ভাষাৰ প্ৰচলন আছে। এনেকৈ ইঙ্গিতত কথা-বতৰা কওঁতে এটা নতুন ভাষাৰ জন্ম হয়, যিটো ভাষাৰে দেখা-দেখিকৈ কথা পাতিলেও আনে নুবুজে। *এইদৰে ধৰ্মৰ গোপনীয়তা ৰক্ষা কৰা বা গাম্ভীৰ্য বৰ্দ্ধনৰ বাবে কিছুমান কথা ৰচনা কৰা হৈছিল সেয়ে ফকৰা।*[৫] উদাহৰণস্বৰূপে—

আগফালে চালে মুগাৰ চুৰিয়াৰ ফেৰ।
পাছফালে চালে ঢকুৱাৰ বেৰ।।
(কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা, পৃ. ৪৪৮)

ভীমক মানিলে গদাকো মানিব লাগে।
(পূৰ্বোক্ত, পৃ. ৪৪৪)

লোক-অনুষ্ঠান ঃ

কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকখনত অসমীয়া লোক-অনুষ্ঠানৰ প্ৰতিচ্ছবি সুন্দৰ ৰূপত প্ৰকাশ পাইছে। বিবাহ অনুষ্ঠান হৈছে প্ৰত্যেক সমাজৰে এক অবিচ্ছেদ্য অংগ। বিবাহ অনুষ্ঠানেৰে অন্তৰ্গত এটা অনুষ্ঠান হৈছে আঠমঙলা অনুষ্ঠান। এই অনুষ্ঠানকে আঁত ধৰি নাট্যকাৰে নাটকখন আগবঢ়াই নিছে। আঠমঙলা অনুষ্ঠান হৈছে বিয়াৰ আঠ দিনৰ দিনা কইনাৰ ঘৰলৈ ন দৰা-কইনা গৈ কৰা কিছুমান নিয়ম। নাটকখনত জোঁৱায়েক চেঙেলীৰ মাক কচুখাতীৰ মতেই বিয়াৰ আঠদিনৰ দিনা শহুৰেকৰ ঘৰলৈ গৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে—

কচুখাতী ঃ মন কৰিলেই চন। তোৰ জানো বেয়া এটা
হ'লে মই ভাল পাওঁ? যাতোগুণে আজি
নোযোৱাকৈ থাকিব নেপায়? কোনোমতে
বাৰে তেৰে কুড়ি ভৰি ঘৰখন পাতিলোঁ;
এতিয়া তই যদি নেযাৱ, যিহে মোৰ শতৰু
কাইলৈকে বেমাৰী কুমাৰী বুলি এখনকে
দহখন কৰি লগাই দিয়ক, কাইলৈ ধৰি
ঘৈণীয়েৰ ওলাই যাব; তেতিয়া বোপাই
তয়ো মৰিলি, ময়ো মৰিলোঁ।
(কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা, পৃ. ৪৩৬)

আঠমঙলা অনুষ্ঠানত যাওঁতে মান ধৰিবলৈ নতুন কাপোৰ নতুন মিতিৰৰ ঘৰলৈ নিয়াটো এক পৰম্পৰা। সেইয়া নাট্যকাৰগৰাকীয়ে সংলাপৰ জৰিয়তে প্ৰকাশ কৰিছে—

চেঙেলী - হওঁতে বৌএ বেয়া কথাযাৰ কোৱা নাই। আঠমঙলা খাবলৈ গ'লে পোনে পোনেই মান ধৰা কানি-কাপোৰ এসাজ লাভ, কিন্তু মই গ'লে তেনেকৈ, নগৰৰ মুখ নেদেখা, হজুৰা-চহা জোঁৱাই যোৱা দি নেযাও। দস্তুৰ মতে নগৰীয়া ভদৰ মানুহ খোৱা দি খাম। আজি-- কালি দিনত যিমান উত্তম পোছাক সিমান মান। কথাতে কয় বোলে— নাই পো গোঁফে। নাই পো মুখে। নাই পো ধুনে। নাই পো গুণে। নাই পো ধনী।। নাই পো ল-নি।।

(পূৰ্বোক্ত, পৃ. ৪৩৬)

লোকবিশ্বাস ঃ

লোকবিশ্বাস হৈছে গ্ৰাম্যসমাজৰ চহালোকৰ মনত পৰম্পৰাগতভাৱে সোমাই থকা কিছুমান বিশ্বাস, আচাৰ-আচৰণ আৰু ধাৰণা। যাৰ কোনো বৈজ্ঞানিক ভিত্তি নাই, ই আৱেগ বা অতিপ্ৰাকৃত ধাৰণাৰ ওপৰত প্ৰতিষ্ঠিত। এই বিশ্বাসবোৰ এটা প্ৰজন্মৰ পৰা এটা প্ৰজন্মলৈ মৌখিকভাৱে বৈ আহিছে। মিত্ৰদেৱ মহন্তইয়ো তেনে লোকবিশ্বাস নাটকৰ মাজলৈ টানি আনিছে। উদাহৰণস্বৰূপে—

ঈশ্বৰ সম্পৰ্কীয় লোকবিশ্বাস ঃ

অসমীয়া লোকসমাজত ঈশ্বৰ সম্পৰ্কীয় লোকবিশ্বাস শিপাই থকা দেখা যায়। বিধাতাৰ লিখন, বিপদত পৰিলে ঈশ্বৰে ৰক্ষা কৰিব, পাপ কামত লিপ্ত হ'লে ভগৱানে শাস্তি দি এইবোৰ হৈছে একো একোটা লোকবিশ্বাস। মিত্ৰদেৱ মহন্তই কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকখনটো তেনে লোকবিশ্বাস সম্পৰ্কীয় উপাদান ব্যৱহাৰ কৰিছে। উদাহৰণস্বৰূপে—

চেঙেলী- (স্বগতঃ) কথাযাৰ হ'লে মিছা নহয়। (ধঁপাত খাই) আজিকালিৰ যিহে তিৰোতা, তেনেকুৱা কৰিবও পাৰে। মই কথাযাৰ বুধিৰে গুপুততে ৰাখিছোঁ গুণেহে ইমানকে হৈ আছে। বাৰু যি হয় মানে কৰিবই লাগিব। ঈশ্বৰে কৰিলে বুধি সন্ধিত ঢেৰ ওলাব। (প্ৰকাশ্য) পইচা আছেনে, পাঁচ টকামান লাগে। (পূৰ্বোক্ত, পৃ. ৪৩৬)

ধনী-দুখীয়াৰ সম্পৰ্কীয় লোকবিশ্বাস ঃ

কিছুমান লোকৰ মনত ভাৰ ভেটি ভালকৈ দিলেহে বা দিব পাৰিলেহে মানুহজন ধনী বুলি লোকবিশ্বাস আছে। মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ নাটকত সেইয়া সুন্দৰ ৰূপত প্ৰকাশ পাইছে। উদাহৰণস্বৰূপে—

গেন্ধাই ঃ আৰু যোৱাঁ পতি গান্ধ তেল মছলাৰে দুজেপ পূৰকৈ নিবা; তেহে তাঁহতে জানিব—"আমাৰ ভিনীহে বৰ চহকী, বৰ ফুৰ্তিবাজ।" (পূৰ্বোক্ত, পৃ. ৪৪০)

লোকভাষা ঃ

লোকভাষা হৈছে দৈনন্দিন মানুহে কৈ থকা কথিত ভাষা। মিত্ৰদেৱ মহন্তই গোটেই প্ৰহসনকেইখনৰ সমান্তৰালকৈ কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকখনটো লোকভাষাৰ প্ৰয়োগ কৰিছে। মিত্ৰদেৱ মহন্তই ভাষাৰ শুদ্ধৰূপ প্ৰয়োগ কৰাত অহোপুৰুষাৰ্থ কৰিছিল। তেওঁ প্ৰহসনখনত কথিত ভাষা, বঙলা ভাষা আৰু অসমীয়া বঙলামিশ্ৰিত ভাষা প্ৰয়োগ কৰিছে।

অসমীয়া গালিসূচক শব্দ ঃ

লোকভাষাৰ এটা গুৰুত্বপূৰ্ণ উপাদান হ'ল গালি-গালাজৰ ভাষা। গ্ৰাম্যসমাজত অবৈধ আৰু অশ্লীল গালি-গালাজ কৰাটো তেনেই সাধাৰণ ঘটনা। মহন্তই এই গালি সূচক শব্দবোৰ তেওঁৰ নাটকৰ সংলাপৰ অংশীদাৰ কৰিছে।

নাটেশৰী (পৃ. ৪৪৬)
জহনীযাতী (পৃ. ৪৪৬)
নিধক (পৃ. ৪৪৬)
কটাযোৱা (পৃ. ৪৪৯)
হেৰামজাতী (পৃ. ৪৪৯)

লোক চৰিত্ৰ ঃ

মিত্ৰদেৱ মহন্তই কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকখনত গ্ৰাম্যসমাজৰ কিছুমান চৰিত্ৰৰ নাম ব্যৱহাৰ কৰিছে। উদাহৰণস্বৰূপে— কচুখাটী, চেঙেলী, গন্ধাই, ধনাই, ৰঙিলা, ডাউকী, মেচী।

মিত্ৰদেৱ মহন্তই কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকখনৰ চৰিত্ৰসমূহৰ মুখত কথ্য ভাষা প্ৰয়োগ কৰিছে। উদাহৰণস্বৰূপে-

চেঙেলী- এৰা দেও, বজাৰ-সমাৰ কৰি আহোঁতে আহোঁতে বেলি হ'ল। মই এই খৰাগৰুৱা গাঁৱৰ পৰা আহোঁ।

(পূৰ্বোক্ত, পৃ. ৪৪০)

ধনাই- আৰু এই জনীৰো মুখ নহয় কাতিমহীয়া কলখাৰ যা। তই তোৰ কাম কৰগৈ (ৰঙিলাৰ প্ৰস্থান)

(পূৰ্বোক্ত, পৃ. ৪৪৪)

কচুখাতী- ইঃ এইবোৰ চোলা-কাপোৰে গাই নাহে ? যাৰ পতি পাঁচ টকাকৈ ৰূপ ভাঙিবলৈ হ'লে শহুৰেৰৰ ঘৰলৈকে লোহাৰ পেড়া এটা চপচপীয়াকৈ ভৰাই থ।

(পূৰ্বোক্ত, পৃ. ৪৩৬)

৩.০০ উপসংহাৰ ঃ

অসমীয়া নাট্য সাহিত্যত প্ৰহসন ৰচনাৰে খ্যাতি অৰ্জন কৰা মিত্ৰদেৱ মহন্তই তেওঁৰ গোটেইকেইখন প্ৰহসনৰ সমান্তৰালকৈ কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকখনটো লোকসাংস্কৃতিক উপাদান আৰু হাস্যৰসৰ সমন্বয়ে নাটকখনক অধিক প্ৰাণৱন্ত আৰু সমাজসংলগ্ন কৰি তুলিছে। সাহিত্য হৈছে সমাজৰ দাপোনস্বৰূপ সেয়েহে সাহিত্যত সমাজত ঘটা ঘটনা আৰু লোকসাংস্কৃতিক উপাদানসমূহ কবি, সাহিত্যিক, নাট্যকাৰসকলে তেওঁলোকৰ ৰচনাৰাজিত প্ৰতিফলিত কৰে। মিত্ৰদেৱ মহন্তইয়ো তেখেতৰ কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকত লোকসাংস্কৃতিক উপাদানৰ প্ৰয়োগ কৰিছে।

আলোচনাৰ শেষত পোৱা গ'ল যে মহন্তই লোকসাংস্কৃতিক উপাদানৰ এটা গুৰুত্বপূৰ্ণ অংশ লোকসাহিত্যক নাটকখনত অংকিত কৰিছে। তেওঁৰ চৰিত্ৰ সংলাপৰ ভাষাত জতুৱা ঠাঁচ, যোজনা-পটন্তৰ, ফকৰা আদিবোৰৰ সংযোগ কৰিছে। মহন্তই অসমীয়া সমাজৰ আঠমঙলা নিয়মটোক নাটকৰ মাজলৈ টানি আনিছে। য'ত অসমীয়া গ্ৰাম্য সমাজৰ বিয়াৰ ৰীতি-নীতিসমূহ ভালদৰে ফুটি উঠিছে। ইয়াৰ উপৰি মহন্তই নাটকৰ চৰিত্ৰসমূহৰ মুখত কথ্য ভাষাৰ প্ৰয়োগ কৰি দৰ্শকৰ অধিক কাষ চপাই আনিবলৈ সক্ষম হৈছে। কুকুৰীকণাৰ আঠমঙলা নাটকখনত আঠমঙলা অনুষ্ঠান, লোকবিশ্বাস, লোকভাষা আৰু গ্ৰাম্যসমাজৰ সজীৱ প্ৰতিফলনে পাঠক আৰু দৰ্শকক বিনোদন প্ৰদান কৰাৰ লগতে চিন্তাশীল কৰাৰ এক শক্তিশালী মাধ্যম প্ৰদান কৰিছে। ❑

প্ৰসংগ সূত্ৰ ঃ

(১) অসমীয়া নাট্যসাহিত্যৰ জিলিঙনি, হৰিচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৯-১০
(২) অসমীয়া নাট্যসাহিত্যৰ জিলিঙনি, হৰিচন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৩
(৩) অসমীয়া লোক-সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা, লীলা গগৈ, পৃ. ১১
(৪) অসমীয়া লোক-সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা, লীলা গগৈ, পৃ. ৪৯
(৫) অসমীয়া লোক-সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা, লীলা গগৈ, পৃ. ৪২

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

অসমীয়া ঃ

আহমেদ, কুতুবুদ্দিন. মিত্ৰদেৱ মহন্ত. সাহিত্য অকাডেমি, ২০১২.
গগৈ, লীলা. অসমীয়া লোক-সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা. বনলতা, ডিব্ৰুগড়, ২০২১.
ভট্টাচাৰ্য্য, হৰিচন্দ্ৰ. অসমীয়া নাট্য সাহিত্যৰ জিলিঙনি. লয়াৰ্ছ বুক ষ্টল, পানবজাৰ গুৱাহাটী, ২০১৯.
শইকীয়া, নগেন, ভট্টাচাৰ্য, অজয় কুমাৰ আৰু বৰঠাকুৰ, সত্যকাম (সম্পা.). মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ ৰচনাৱলী. প্ৰেমানন্দ ন্যাস, দুলীয়াজান, ১৩ জুন ২০১২.
শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ. অসমীয়া নাট্য সাহিত্য. সৌমাৰ প্ৰকাশ, ২০২০.

ইংৰাজী ঃ

Sharma, Basanta Kumar. THàß àßVOLUTION OF ASSAMàßSàß COMàßDY. Gurukul Prakashan, Guwahati, 1998.

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

মিচিং জনগোষ্ঠীৰ নৱজাগৰণৰ পটভূমিকাত টাবুৰাম টাইদ চৰ্চাৰ প্ৰাসংগিকতা

খগেন পেগু

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
নৰ্থ লখিমপুৰ কলেজ (স্বায়ত্তশাসিত)
খেলমাটি, নৰ্থ লখিমপুৰ-৭৮৭০৩১
৮১৩৫৯২৬৩৫২
khagenmp1234@gmail.com

ড° অৰবিন্দ ৰাজখোৱা

সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
নৰ্থ লখিমপুৰ কলেজ (স্বায়ত্তশাসিত)
খেলমাটি, নৰ্থ লখিমপুৰ-৭৮৭০৩১
৭০০২৯৬৮৯৩২
arabindarajkhowa2011@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

প্ৰাক স্বাধীনতা কালৰ পৰাই এচাম জন জাতীয় নেতাই অসমৰ ৰাজনীতি আৰু সমাজ জীৱনত, সাংস্কৃতিক ক্ষেত্ৰত এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰি আহিছে। জনজাতিটোৰ উত্তৰণৰ ক্ষেত্ৰত এই ব্যক্তিসকলৰ ভূমিকা উল্লেখনীয়। তেওঁলোকৰ বলিষ্ঠ ত্যাগ, অৱদান আৰু বৌদ্ধিক চিন্তা-চৰ্চাৰ বাবেই জনজাতিসকলে বিভিন্ন সময়ত নানা সা-সুবিধাৰ লগতে কলা, সাহিত্য, সংস্কৃতিৰ ক্ষেত্ৰত নিজকে পুনঃ প্ৰতিষ্ঠিত কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল; যদিও কোনো ব্যক্তি বিশেষৰ জৰিয়তে সাহিত্য-সংস্কৃতি উত্তৰণ, জাতীয়তাবাদী চিন্তাৰ প্ৰেক্ষাপটো পুৰণি নহয়। ব্ৰিটিছ ঔপনিৱেশিক সময়ৰ পৰা জনগোষ্ঠীয় ভাষা, সাহিত্য, সংস্কৃতিৰ তথ্য সংগ্ৰহ আৰু লিখিত ৰূপত সংৰক্ষণ আৰম্ভ হৈছিল যদিও এইবোৰত যথেষ্ট বিভ্ৰান্তি ৰৈ গৈছিল। এই আটাইবোৰ দিশ পঢ়ি; বিচাৰ বিশ্লেষণ কৰি শুদ্ধ ৰূপত পুন প্ৰতিষ্ঠাৰ জটিল বিদ্যায়তনিক কাম যি কেইগৰাকী ব্যক্তিৰ ওপৰত ন্যস্ত হৈছিল সেইসকলৰ ভিতৰত লেখত ল'ব লগীয়া এজন ব্যক্তি আছিল টাবুৰাম টাইদ। টাইদ একাধাৰে ভাষাতত্ত্ববিদ, গৱেষক, শিক্ষাবিদ, বুদ্ধিজীৱী, কবি, গীতিকাৰ, সুৰকাৰ, নিবন্ধকাৰ, প্ৰশাসক, সংগঠক হিচাপে পৰিচিত। টাবুৰাম টাইদ মিচিং সমাজৰ লগতে বৃহত্তৰ অসমীয়া সমাজ জীৱনৰো এগৰাকী পুৰোধা ব্যক্তি হিচাপে জীৱিত কালতেই স্বীকৃতি লাভ কৰিছিল। কাৰণ তেওঁ ভাষা, সাহিত্য, সমাজ আৰু সংস্কৃতিৰ গভীৰ অধ্যয়নৰ যোগেদি অন্যান্য কিছুমান দিশত বাটকটীয়াৰ ভূমিকা লৈছিল।

বীজশব্দ ঃ

টাবুৰাম টাইদ, নৱজাগৰণ, জনগোষ্ঠী, মিচিং।

০.০০ অৱতৰণিকা ঃ

০.০১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

উনৈশ শতিকাৰ পৰা ইতিহাস বিজ্ঞানত ৰেনেচাঁছ শব্দটো ব্যৱহাৰ কৰি আহিছে। ইয়াৰ আক্ষৰিক অৰ্থ হ'ল নৱজন্ম। পাশ্চাত্য ইতিহাসবিজ্ঞানীসকলে সাধাৰণতে এই শব্দটোক ইউৰোপীয় ইতিহাসৰ এক বিশেষ খণ্ডকালত চিহ্নিত কৰাৰ ক্ষেত্ৰতেই ব্যৱহাৰ কৰি আহিছে। ইউৰোপৰ মধ্যযুগৰ শেষৰফালে ১৪-১৬ শতিকাত যি ব্যাপক হাৰত বৌদ্ধিক-সাংস্কৃতিক উন্মেষ ঘটিছিল তাকেই চিহ্নিত কৰাৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰথমতে ফৰাচী ভাষাত আৰু তাৰ পিচত ইংৰাজী ভাষাত উন্নৈশ শতিকাতেই এই শব্দটোৰ প্ৰয়োগ আৰম্ভ হয়। জীৱনমুখী চিন্তাধাৰা, সভ্যতাৰ জ্ঞান বিচাৰ, বিজ্ঞানমনস্কতা, ধৰ্ম উদাসীনতা, যুক্তিবাদ, শিল্পসাহিত্য, বৌদ্ধিক, সাস্কৃতিক, নান্দনিক ধ্যান-ধাৰণা আদি এই নৱজন্মত প্ৰতিফলিত হৈছিল। ভাৰতৰ ইতিহাসবিজ্ঞানীসকলে এই এউৰোপীয় সভ্যতা সংস্কৃতিৰ এই ৰেনেচাঁকে 'নৱজাগৰণ' বুলি আখ্যা দিয়ে। ভাৰতীয় ইতিহাস বিজ্ঞানীসকলেও উনৈশ শতিকাৰ ভাৰতীয় 'নৱজাগৰন'ক লৈ বিশেষভাৱে পৰ্যলোচনা কৰি আধুনিক ভাৰতীয় সভ্যতা সংস্কৃতিৰ

ভিত্তি স্বৰূপে তাকেই চিহ্নিত কৰিছে। ভাৰতৰ এই ৰেনেচাঁছ বা নৱজাগৰণক দুটা বেলেগ বেলেগ প্ৰবাহে প্ৰভাৱিত কৰিছিল। এটা আছিল মুলতঃ ধৰ্ম সংস্কৃতিৰ প্ৰবাহ আৰু আনটো হ'ল যুক্তবাদী প্ৰবাহ, জ্ঞানবিচাৰ বা ধৰ্মত উদাহীনতাৰ প্ৰবাহ। এই দুয়োতা বৌদ্ধিক, সাংস্কৃতিক প্ৰবাহে অৱশ্যে কোনো কোনো ঠাইত পৰস্পৰে পৰস্পৰক স্পৰ্শ কৰি গৈছে। কিন্তু ইতিহাস আৰু সমাজবিজ্ঞানৰ দৃষ্টিত দুয়োটা প্ৰবাহৰ চৰিত্ৰই বেলেগ বেলেগ। ধৰ্ম আন্দোলনৰ মূল লক্ষ্য আছিল ধৰ্ম। বিশেষকৈ হিন্দুধৰ্মৰ নৱমূল্যায়ন অথবা নতুন নামত আধুনিকীকৰণ। যদিওবা তাৰ মাজতে কিছু কিছু সংস্কাৰৰ পৰিকল্পনাও নথকা নহয়। এফালৰ পৰা চাবলৈ গলে এই ধৰ্মসংস্কাৰৰ প্ৰবাহক ১৬-১৭ শতিকাত হোৱা ইউৰোপৰ ধৰ্ম সংস্কাৰ লগত তুলনা কৰিব পৰা যায়। আনহাতেদি দ্বিতীয় প্ৰবাহটোৰ মূল লক্ষ্য আছিল আধুনিক যুক্তিবাদ আৰু জ্ঞানবিচাৰৰ মাধ্যমেৰে সভ্যতা, সমাজ ও সংস্কৃতিৰ পুৰ্নমূল্যায়ন। ধৰ্মৰ পৰিৱৰ্তে যুক্তি ও জ্ঞানবিচাৰক এই প্ৰবাহৰ স্ৰষ্টাসকলে প্ৰাধান্য দিছিল। এফালৰ পাৰ চাব গ'লে ১৯ শতিকাৰ ভাৰতৰ এই বৌদ্ধিক, সাংস্কৃতিক প্ৰবাহটোক ইউৰোপৰ ১৪-১৬ শতিকাৰ নৱজাগৰণৰ লগত তুলনা কৰিব পৰা যায়। (বৰা, সুৰেন্দ্ৰ নাথ, পৃ.৭৪)

আমি জানো যে ইতিহাসে ঢুকি নোপোৱা দিনৰে পৰা ভিন্ন সময়ত ভিন্ন পথেৰে উত্তৰ পূৰ্বঞ্চললৈ নানা নৃগোষ্ঠীৰ আগমন ঘটিছিল। এই নৃগোষ্ঠীসমূহ হৈছে, ক্ৰমেঃ অষ্ট্ৰ'লয়দ, দ্ৰাবিড়, আলপাইন, ককেচীয়, মঙ্গোলীয় আদি। বৰ্তমান উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলত বসবাস কৰা সৰহ সংখ্যক লোকেই মঙ্গোলীয়, আলপাইন, অষ্ট্ৰলয়দ নৃগোষ্ঠীৰ অৰ্ন্তগত। বৰ্তমান ভাৰতবৰ্ষত সংবিধান স্বীকৃত বহু জনগোষ্ঠী উত্তৰ-পূব ভাৰতত বসবাস কৰি আছে। বড়ো, কাৰ্বি, মিচিং, ডিমাচা, ৰাভা, ডেউৰী, চিংফৌ, গাৰো, তিৱা, হাজং, মেইতেই, কুকি, মিজো, টাংচা, নক্তে, ৰানছু, টাংখুল, কন্যাক, টাই-টুৰুং, টাই-খামটি, টাই-আইতন, টাই-খামযাং, টাই ফাংকে, খাচী, জয়ন্তীয়া, শবৰ, কোল-মুণ্ডা, আদি জনগোষ্ঠীবোৰে উত্তৰ পূব ভাৰতত—অসম, অৰুণাচল প্ৰদেশ, নগালেণ্ড, মণিপুৰ, মিজোৰাম, ত্ৰিপুৰা আদিত বাস কৰি আছে। এই জনগোষ্ঠীসমূহৰ প্ৰায় সংখ্যকেই মঙ্গোলীয়, অষ্ট্ৰলয়দ গোষ্ঠীৰ। (কোঁৱৰ, অৰ্পণা, পৃ.৩)। উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ এই জনগোষ্ঠীয় ৰাজ্যসমূহৰ ভিতৰত এক প্ৰধান ৰাজ্য হ'ল অসম। অসম এখন বিভিন্ন জাতি-জনজাতিৰে পৰিপূৰ্ণ ৰাজ্য। অসমৰ সামাজিক, সাংস্কৃতিক, শৈক্ষিক, ৰাজনৈতিক আদি সকলো ক্ষেত্ৰতে এই জাতি- জনজাতিসমূহ সংপৃক্ত হৈ আছে। অসমত বৰ্তমান বসবাস কৰি থকা জনগোষ্ঠীসমূহৰ ভিতৰত মঙ্গোলীয় লোকৰ সংখ্যাই অধিক। এই জনগোষ্ঠীৰ লোকসকল হৈছে—ডিমাছা কছাৰী, সোণোৱাল কছাৰী, শৰণীয়া কছাৰী, বড়ো কছাৰী, মেছ কছাৰী, বৰ্মন কছাৰী, গাৰো, হাজং, কোচ, আহোম, খামটি, টুৰুং, আইতন, ফাকে, খাময়ং, মিজো, কাৰ্বি, মৰাণ, বৰাহী, চিংফৌ, মটক, নগা, দেউৰী, ৰাভা, তিৱা আৰু মিচিং আদি। এই জনগোষ্ঠীসমুহৰ কোনো কোনোৱে অসমৰ পাহাৰীয়া অঞ্চলত আৰু কোনো কোনোৱে ভৈয়াম অঞ্চলত বসবাস কৰি আছে। (উল্লিখিত, পৃ.৪)।

মিচিংসকল হৈছে অসমৰ প্ৰধান অন্যতম জনগোষ্ঠী। নৃতাত্বিক দিশৰ পৰা মিচিংসকল বৃহৎ মঙ্গোলীয় গেষ্ঠীৰ লোক আৰু ভাষাতত্বৰ ফালৰ পৰা বৃহত্তৰ চীন-তিব্বতীয় পৰিয়ালৰ অৰ্ন্তগত উত্তৰ অসম শাখাৰ ভাষা-ভাষী লোক। অসমৰ তিনিচুকীয়া, ডিব্ৰুগড়, ধেমাজি, লখিমপুৰ, শিৱসাগৰ, যোৰহাট, গোলাঘাট, মাজুলী, বিশ্বনাথ আৰু শোণিতপুৰ জিলাৰ বিভিন্ন ঠাইত মিচিংসকলৰ জনবসতি অধিক দেখা যায়। তদুপৰি অৰুণাচল প্ৰদেশৰ পুব চিয়াং, দিবাং ভেলী আৰু লোহিত জিলাতো মিচিংসকলৰ কিছু জনবসতি পোৱা যায়। যেতিয়া অসমত শৈক্ষিক, সামাজিক, সাংস্কৃতিক সকলো প্ৰেক্ষাপটতে নৱজাগৰণৰ ঢৌৱে ইতিমধ্যে স্থায়ী ৰূপ লৈছিল, সেই সময়ছোৱাৰ বহু বছৰ পাছত জনগোষ্ঠীটোৱে নিজকে সামগ্ৰিক প্ৰেক্ষাপটসমূহৰ সৈতে চিনাকি হোৱাৰ প্ৰচেষ্টা আৰম্ভ কৰি ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ মাজত জাগৰণৰ বীজ ৰোপণ কৰিছিলহে মাত্ৰ বুলি ক'ব পাৰি। তেওঁলোকে উপলব্ধি কৰিবলৈ শিকিলে যে ভাষা আৰু সাহিত্য সমাজৰ তথা মানুহৰ অন্তৰৰ ভাব-চিন্তা প্ৰকাশৰ, জাতিটোৰ পৰিচয়ৰ এক বলিষ্ঠ ম্যধ্যম।

তুলসী দাসে কৈছিল - 'যি জাতিৰ সাহিত্য নাই সেই জাতি জীয়ায় থাকিও মৰাৰ দৰে'। এই কথা উপলব্ধি কৰি অসমৰ অন্যান্য জাতিসমূহৰ দৰে মিচিংসকলেও নিজৰ অস্তিত্ব ৰক্ষাৰ স্বাৰ্থত, জনগোষ্ঠীটো প্ৰতিষ্ঠাৰ স্বাৰ্থত স্বাধীনতাৰ বহু বছৰ পিছত নানা সংগ্ৰামত অৱতীৰ্ণ হয়। এই সংগ্ৰামৰ ফলশ্ৰুতিতেই এটা সময়ত নানা দ'ল সংগঠনৰ জন্ম হয়। এই দ'ল সংগঠনক নেতৃত্ব দিয়াৰ স্বাৰ্থতে, জাতীয়তাবাদী চিন্তাধাৰাৰে সেই সময়তে মিচিং জনগোষ্ঠীমূলীয় বহুতো ব্যক্তিৰ উত্থান হয়।

এতেকে মিচিং জনগোষ্ঠীৰ ভাষা- সাহিত্য চৰ্চাৰ ইতিহাস বৰ প্ৰাচীন নহয়; অৰ্বাচীন। ঔপনিৱেশিক কালছোৱাত ইংৰাজ শাসক আৰু খ্ৰীষ্টান মিছনেৰীসকলৰ দ্বাৰা যেতিয়া অসম শাসনাধীষ্ঠ হৈ আছিল সেই সময়ত মিছনেৰীসকলে গভীৰ বুদ্ধিদীপ্ততাৰে অসমৰ বিভিন্ন জাতি - জনগোষ্ঠীসমূহৰ মাজত খ্ৰীষ্টান ধৰ্ম প্ৰচাৰৰ বাবে চেষ্টা কৰিছিল। সেই খ্ৰীষ্ট ধৰ্ম প্ৰচাৰৰ প্ৰভাৱ এটা সময়ত উজনিৰ মিচিং জনগোষ্ঠীৰ মাজতো সোমাই

পৰে। ধৰ্ম প্ৰচাৰৰ স্বাৰ্থত কিছু দিনৰ পাছত তেওঁলোকে উপলব্ধি কৰিলে যে এই জনগোষ্ঠীৰ ভাষা অসমত বসবাস কৰা অন্য জাতি-জনগোষ্ঠীতকৈ পৃথক। সেয়ে মিছনেৰীসকলে প্ৰথমে জনগোষ্ঠীটোৰ ভাষা সম্পৰ্কে কিছু অধ্যয়নৰ চৰ্চা আৰম্ভ কৰে। ফলত তেওঁলোকে ব্যাকৰণিক টোকা আৰু শব্দৰ তালিকা প্ৰস্তুত কৰি মিচিং ভাষাটো চৰ্চাৰ প্ৰাথমিক বুনিয়াদ নিৰ্মাণ কৰে। কিন্তু সেই ধাৰাই সবল ৰূপ নাপালে। মিচিং ভাষা-সংস্কৃতিক বিজ্ঞানসন্মতভাৱে অধ্যয়ন কৰিবলৈ সেই সময়ত কোনো বিশেষ ব্যক্তি বা প্ৰতিষ্ঠান ওলাই নাহিল। ইংৰাজ গুচি যোৱাৰ বহু বছৰ পাছত এই অভাৱ দূৰ কৰিবলৈ যি কেইগৰাকী স্বজাতীয় পণ্ডিত - গৱেষক আগবাঢ়ি আহিল। সেই ব্যক্তিসকলৰ ভিতৰত পোনচাতেই টাবুৰাম টাইদৰ নাম ল'ব পাৰি। তেওঁ অসমীয়া ভাষাৰ লগতে মিচিং ভাষা-সমাজ-সংস্কৃতি সম্পৰ্কে যথেষ্ট গৱেষণামূলক প্ৰবন্ধ, গ্ৰন্থ আদি লিখি একপ্ৰকাৰ অভূতপূৰ্ব অৱিহণা আগবঢ়ালে। আনহাতে সংগঠনবোৰৰ নানা কাৰ্যপন্থাই, সমাজ সংস্কাৰৰ ভিন্ন নীতিবোৰেও জনগোষ্ঠীটোৰ অস্তিত্ব ৰক্ষা কৰাত, সামগ্ৰিক প্ৰতিষ্ঠাত এক উল্লেখযোগ্য ভূমিকা পালন কৰে।

০.০২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

প্ৰদত্ত গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰাৰ মূল উদ্দেশ্য হ'ল —

(ক) নৱজাগৰণ, নৱজাগৰণৰ গুৰুত্ব, বৈশিষ্ট সম্পৰ্কে পৰিচিত হোৱা।

(খ) মিচিংসকলৰ সাংগঠনিক, শৈক্ষিক, সামাজিক প্ৰেক্ষাপট বিচাৰ কৰা।

(গ) মিচিং জনগোষ্ঠীৰ নৱজাগৰণত টাবুৰাম টাইদৰ ভূমিকা সম্পৰ্কে পৰিচিত হোৱা।

(গ) মিচিং জনগোষ্ঠীৰ ভাষা, সাহিত্যি, সংস্কৃতি চৰ্চাৰ মাজেৰে নৱজাগৰণত টাবুৰাম টাইদৰ অৱদান সম্পৰ্কে মূল্যায়ন কৰা।

(ঘ) মিচিং জনগোষ্ঠীৰ নৱজাগৰণত টাবুৰাম টাইদৰ গুৰুত্বতা বিচাৰ কৰা।

০.০৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

মিচিংসকলৰ নৱজাগৰণৰ প্ৰেক্ষাপথ আৰু এই নৱজাগৰণৰ গুৰুত্ব বিচাৰ কৰাই গৱেষণাৰ মূল বিষয়। এই বিষয়ৰ চৰ্চাৰ আৰম্ভনিতে নৱজাগৰণ সম্পৰ্কে আশিংক ধাৰণা দি মিচিং জনগোষ্ঠীৰ নৱজাগৰণক মূলতঃ পৰিসৰত সামৰা হৈছে। নৱজাগৰণৰ সৈতে জড়িত মিচিং জনগোষ্ঠীয় ব্যক্তি বিশেষৰ, সাংগঠনিক অনুষ্ঠানবোৰৰ মাজেৰে টাবুৰাম টাইদৰ সাহিত্য চৰ্চা, সাংগঠনিক ভূমিকা, ভাষিক প্ৰতিষ্ঠা, লোকসাহিত্যিক অৱদান আদি দিশসমূহক পৰিসৰত সামৰি লোৱা হৈছে। লগতে বিষয়টো বিশ্লেষণৰ মাজেৰে প্ৰয়োজনীয় আনুসংগিক বিষয় কিছুমানো অধ্যয়নে সামৰি লৈছো।

০.০৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

গৱেষণাৰ পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোতে মূলতঃ বিশ্লেষণ পদ্ধতি (Analytical Method) লগতে বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতি (Descriptive Method) সহায় লোৱা হৈছে।

১.০০ মিচিং জনগোষ্ঠীয় নৱজাগৰণৰ পটভূমি ঃ

অসমৰ মঙ্গোলীয় গোষ্ঠীৰ অন্তৰ্গত অন্যান্য জনগোষ্ঠীসমূহৰ দৰে মিচিংসকলৰ কোনো নিজা ৰাজ্য বা ৰাজ্য শাসনৰ ইতিহাস নাই। কিন্তু অসমৰ সামাজিক, সাংস্কৃতিক আৰু ৰাজনৈতিক ইতিহাসত মিচিংসকলৰ অৱস্থান অধিক শক্তিশালী ৰূপতেই লক্ষ্য কৰা যায়। মিচিংসকলে ব্ৰহ্মপুত্ৰ উপত্যকাত বসতি কৰিবলৈ গৈ যিবোৰ জনগোষ্ঠীৰ সৈতে ওচৰ সম্পৰ্ক গঢ়ি উঠিছিল সেইবোৰৰ ভিতৰত অন্যতম আছিল চুতীয়া আৰু আহোমসকল। ঐতিহাসিক তথ্যমতে এই চুতীয়া আৰু আহোমসকলৰ সৈতে মিচিংসকলৰ সংঘাট-বিৰোধিতা তথা যুঁজ-বাগৰৰ ফলত কিছুসংখ্যক ৰণত মিচিংসকলৰ হাতত চুতীয়া আৰু আহোম সেনা পৰাস্ত হৈছিল। আনহাতে আহোমসকলে চুতীয়া ৰাজ্য আক্ৰমন কৰাৰ সময়তো বহুতো চুতীয়া লোকে মিচিঙৰ ঘৰত আশ্ৰয় লৈছিল। ফলত নিজৰ জীৱনৰ মোহত, প্ৰশাসন ব্যৱস্থা, ৰাজ্য ৰক্ষা আদি স্বাৰ্থত জনগোষ্ঠীসমূহৰ মাজত সামাজিক, সাংস্কৃতিক সম্পৰ্ক গঢ় লৈ উঠিছিল। ফলত 'আহোম মিৰি', 'চুতীয়া মিৰি' আদি নামেৰে বিভিন্ন ফৈদৰ জন্ম হৈছিল। তদুপৰি অৰুণাচলৰ অকা, আবৰ, ডফলা আদিৰ লগতে নগা জনগোষ্ঠীসমূহৰ লগতো মিচিংসকলে সংঘাট কৰিছিল। আনকি বিট্ৰিছসকলৰ শাসন ব্যৱস্থাৰ পিছতো আবৰসকলৰ অত্যাচাৰ-উৎপিড়নক প্ৰতিহত কৰবলৈ বিট্ৰিছে মিচিংসকলকে নিয়োজিত কৰিছিল। এইদৰে নানা যুদ্ধ-বিগ্ৰহ তথা সংঘাটৰ পৰিচয়েৰে সেই সময়ৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক আৰু ৰাজনৈতিক ইতিসাহত মিচিংসকলৰ অৱস্থান শক্তিশালী ৰূপতেই লক্ষ্য কৰা যায়।

আনহাতে বিট্ৰিছ শাসন কালৰ তথা উনবিংশ শতিকাৰ মিচিংসকলৰ সমাজ ব্যৱস্থালৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা পোৱা যায় যে বিট্ৰিছে অসম দখল কৰাৰ পিছত মানৰ আক্ৰমনত অস্থিৰ হৈ পৰা ৰাজ্যখনলৈ সাময়িকভাৱে হলেও এক শান্তিৰ বাতাৱৰণ ঘূৰি আহিছিল। কিন্তু সেই বাতাৱৰণৰ সদ্ব্যৱহাৰ কৰাৰ পৰা মিচিংসকল বিশেষকৈ বঞ্চিত হ'ব লগীয়া হৈছিল। আনহাতে, বিট্ৰিছ শাসনৰ লগে লগে ইংৰাজী শিক্ষা ব্যৱস্থাৰ আলমত অসমত যি এক আধুনিক যুগৰ সুচনা হৈছিল, সেই প্ৰভাৱৰ পৰাও মিচিং সমাজ আঁতৰত থাকিবলগীয়া হৈছিল। তাৰ ফল এয়ে আছিল যে যি সময়ত ইংৰাজী শিক্ষাৰে শিক্ষিত বৰ্ণ

হিন্দু অসমীয়া সমাজখনে বৃটিছ প্ৰদত্ত সা-সুবিধা ভোগ কৰি দেৎপতদোপে আগবাঢ়ি গৈছিল। সেই সময়ত যাতায়ত-যোগাযোগ ব্যৱস্থাই ঢুকি নোপোৱা মিচিংসকলে তেওঁলোকৰ আদিম সমাজ ব্যৱস্থাটোৰ মাজতে আবদ্ধ হৈ থাকিব লগীয়া হৈছিল।

প্ৰকৃতি প্ৰদত্ত সকলো উপাদানেৰে পৰিপুষ্ট মিচিংসকলে নদী উপত্যকাকেন্দ্ৰিক এক সুকীয়া সমাজ ব্যৱস্থা গঢ়ি তুলিছিল, যিখন সমাজ ব্যৱস্থাক লৈ সুখী আৰু অভ্যস্ত হোৱা বাবেই তেওঁলোকে শিক্ষা-দীক্ষা বা বৰ্হিবিশ্বৰ আন আধুনিক উপাদানসমূহৰ প্ৰতি নিস্পৃহ হৈ ৰৈছিল। আনহাতে, তাৰ বিপৰীতে মিচিংসকলে শিক্ষা-দীক্ষা বা বৰ্হিবিশ্বৰ অন্য আধুনিক যুগৰ সভ্যতা-সংস্কৃতিৰ প্ৰতি বিৰাগভাজন হৈ থকা বাবেই অজ্ঞতা, অন্ধবিশ্বাস, কু-আচাৰ আদিত অধিকতৰ নিমজ্জিত হৈ পৰিছিল। ইয়াৰ মূল কাৰণটো আছিল নিৰক্ষৰতা।

উল্লেখ্য যে বৃটিছে অসম দখল কৰাৰ পিছত প্ৰয়োজনৰ তাগিদাত ৰাজ্যখনৰ নগৰ-চহৰসমূহৰ ঠাই বিশেষে শিক্ষানুষ্ঠান পাতি ইংৰাজী শিক্ষা প্ৰদানৰ ব্যৱস্থা কৰিছিল যদিও নগৰ-চহৰৰ পৰা দূৰৱৰ্তী, যোগাযোগ - যাতায়ত ব্যৱস্থাই ঢুকি নোপোৱা ঠাইবোৰত শিক্ষাৰ প্ৰসাৰত মুঠেও গুৰুত্ব দিয়া নাছিল। ফলত মিচিংসকলৰ দৰে আওহতীয়া ঠাইত বসবাস কৰা জনগোষ্ঠীসমূহ বৃটিছৰ দ্বাৰা প্ৰৱৰ্তিত এই আধুনিক শিক্ষা ব্যৱস্থাৰ পৰা দীৰ্ঘদিন ধৰি বঞ্চিত হৈয়ে থাকিবলগীয়া হৈছিল। পৰিস্থিতি এনে আছিল যে সমগ্ৰ উনবিংশ শতিকা ধৰি মিচিংসকলৰ মাজৰ পৰা এজনো শিক্ষিত ব্যক্তি ওলাই আহিব পৰা নাছিল। মিচিংসকলৰ প্ৰথম শিক্ষিত লোক হিচাপে সোণাৰাম পাএাং কটকীয়ে প্ৰাথমিক বিদ্যালয় অতিক্ৰম কৰিছিল ১৯০১ চনতহে। (দাস, মনীন্দ্ৰ, পৃ.২০১)। পাএাং কটকীও মাত্ৰ নৱম শ্ৰেণীতে শিক্ষা সামৰিব লগা হৈছিল। পাএাং কটকীৰ এই শিক্ষাৰ সুদীৰ্ঘ যুগৰ পাছত ১৯১৯ চনত মিচিংসকলৰ এজন যুৱকে মেট্ৰিক পৰীক্ষাত উত্তীৰ্ণ হ্বলৈ সক্ষম হৈছিল। যুৱক জনৰ নাম আছিল বীৰু চন্দ্ৰ মিৰি। পৰৱৰ্তী পৰ্যায়ত মিচিংসকলৰ মাজৰ পৰা অন্য এজন যুৱকে বি এ পাছ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। তেওঁ নাম আছিল চাৰু চন্দ্ৰ দলে। যিটো সময়ত কটন কলেজ স্থাপনেৰে (১৯০১) উচ্চ শিক্ষাৰ আৰম্ভণি হৈছিল। যি সময়ত অসমীয়া আনন্দৰাম বৰুৱাই গ্ৰেজুৱেট (১৮৬৯)হৈ শৈক্ষিক ক্ষেত্ৰখনত উত্তৰণ ঘটাইছিল সেই সময়ত মিচিংসকলে শিক্ষাৰ সৈতে নিজকে পৰিচয় ঘটাইছিলহে মাত্ৰ। শিক্ষাক্ষেত্ৰত এনেদৰে প্ৰায় ছয় দশক কাল পাছপৰি থকা মিচিংসকলৰ বাবে সামাজিক সাংস্কৃতিক উত্তৰণৰ দিশটো স্বাভাৱিকতে অপাংক্তেয় হৈ ৰবলৈ বাধ্য হৈছিল। কিন্তু পলমকৈ হ'লেও এদিন এই অৱস্থাৰ অৱসান ঘটিছিল। মিচিংসকলৰ অজ্ঞান, অন্ধকাৰৰ কৰাল গ্ৰাহৰ পৰা উদ্ধাৰ কৰি সংস্কাৰৰ দিশলৈ আগবঢ়াই নিয়াৰ বাবে প্ৰেক্ষাপটত আবিৰ্ভাৱ হৈছিল এজন অ-মিচিং লোক, যাৰ নাম হৈছে পীতাম্বৰ দেৱগোস্বামী। মাজুলীৰ গড়মূৰ সত্ৰত সত্ৰাধিকাৰ, স্বাধীনতাৰ যুঁজাৰু, এইগৰাকী পীতাম্বৰ গোস্বামীয়েই কুৰি শতিকাৰ তৃতীয়টো দশকৰ আগভাগতে মিচিং নৱজাগৰণৰ সূত্ৰপাত ঘটাইছিল, যাৰ সুদূৰপ্ৰসাৰী প্ৰভাৱ মিচিং সমাজখনৰ বাবে অৱশ্যেই আদৰণীয় হৈ পৰিছিল। মিচিং নৱজাগৰণৰ এই সমস্ত পক্ৰিয়াত সত্ৰাধিকাৰগৰাকীৰ একান্ত সহযোগীৰ ৰূপত অৱতীৰ্ণ হৈছিল সেইসকল নৱশিক্ষিত মিচিং ডেকা, যিসকলে পিছলৈ সামাজিক-সাংস্কৃতিক, শৈক্ষিক-ৰাজনৈতিক আদি সকলো ক্ষেত্ৰতে নেতত্ব বহন কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। (উল্লিখিত, পৃ.২০১)

সেয়ে ক'ব পাৰো যে কোনো ভাষাৰ সহায়ত, কোনো ব্যক্তিৰ উদ্যোগত বা নেতৃত্বত মিচিং ভাষাক লিখিত ৰূপ দিবলৈ চেষ্টা কৰা ভাষাতাত্ত্বিক অধ্যয়ন বৰ বেছি পুৰণি কথা নহয়। ঠিক তেনেদৰে ভাষা সৃষ্টিৰ সমান্তৰালভাৱে কোনো ব্যক্তি বিশেষৰ জৰিয়তে সাহিত্য-সংস্কৃতি উত্তৰণ, জাতীয়তাবাদী চিন্তাৰ প্ৰেক্ষাপটো পুৰণি নহয়। ব্ৰিটিছ ঔপনিৱেশিক সময়ৰ পৰা জনগোষ্ঠীয় ভাষা, সাহিত্য, সংস্কৃতিৰ তথ্য সংগ্ৰহ আৰু লিখিত ৰূপত সংৰক্ষণ আৰম্ভ হৈছিল যদিও এইবোৰত যথেষ্ট বিভ্ৰান্তি ৰৈ গৈছিল। এই আটাইবোৰ দিশ পঢ়ি; বিচাৰ বিশ্লেষণ কৰি শুদ্ধ ৰূপত পুন প্ৰতিষ্ঠাৰ জটিল বিদ্যায়তনিক কাম যি কেইগৰাকী ব্যক্তিৰ ওপৰত ন্যস্ত হৈছিল সেইসকলৰ অন্যতম আছিল টাবুৰাম টাইদ। টাইদে যিহেতু মিচিং জনগোষ্ঠীৰ লোক আছিল সেয়ে তেওঁৰ সাহিত্যত মিচিংসকলৰ ভিন্ন দিশ প্ৰতিফলন হোৱাটো স্বাভাৱিক। সেয়ে টাইদে নিজৰ জাতিটোৰ উত্তৰণৰ বাবে, প্ৰতিষ্ঠাৰ বাবে জাতিটোৰ ভাষা-সংস্কৃতি সম্বলিত বিভিন্ন গ্ৰন্থ ৰচনা কৰিছিল। য'ত এহাতে অসমৰ শিক্ষা সংস্কৃতিৰ কিছুমান অন্তৰ্দশী আলোচনা আৰু আনহাতে মিচিং ভাষা-সমাজ-সংস্কৃতি, পৰম্পৰা আদি ইতিবৃত্তৰো নিৰ্ভৰশীল বিশ্লেষণ আছে। কাৰণ টাইদে অনুভৱ কৰিছিল সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ মাজেদিহে এটা জাতি, এখন সমাজ জীৱন্ত হৈ থাকে। সেয়ে টাইদে বিভিন্ন দৃষ্টিৰে সাহিত্য - সংস্কৃতিৰ ঐতিহ্য অন্বেষণ কৰিছিল। জনগোষ্ঠীটো প্ৰতিষ্ঠাৰ কাৰণে চেষ্টা কৰিছিল।

মিচিং ভাষাৰ ব্যাকৰণ আৰু অভিধান প্ৰণয়ন কৰাৰ লগতে মিচিং সমাজ-সংস্কৃতি সম্পৰ্কে যথেষ্ট গৱেষণামূলক প্ৰবন্ধ লিখি তেওঁ একপ্ৰকাৰ অভূতপূৰ্ব অৰিহণা আগবঢ়াবলৈ চেষ্টা কৰিছিল। য'ত মিচিং জনগোষ্ঠীটোৰ উত্থানৰ বাবে, গভীৰ প্ৰচেষ্টা আছিল। টাইদ যিমান ইংৰাজী ভাষা-সাহিত্য অধ্যয়নেৰে পুষ্ট আছিল; সিমানেই গভীৰ শ্ৰদ্ধা আৰু হেঁপাহেৰে নিজৰ জাতিৰ ভাষা-

সাহিত্যক জীয়াই ৰাখিবলৈ চেষ্টা চলাইছিল। সেয়ে টাইদক মিচিং জনগোষ্ঠীয় নৱজাগৰণৰ এজন দক্ষ খনিকৰ বুলি ক'ব পাৰি।

২.০০ মিচিং জনগোষ্ঠীৰ নৱজাগৰণত টাবুৰাম টাইদ ঃ

বিগত প্ৰায় এশ বছৰত জনজাতীয় লোকৰ সাৰ্বিক উন্নতিৰ বাবে নিৰ্দিষ্ট সংগঠন, অনুষ্ঠান কিছুমানৰ ভূমিকা যেনেদৰে লেখত লবলগীয়া আছিল তেনেদৰে ব্যক্তি বিশেষৰ উদ্যোগো এই ক্ষেত্ৰত সমানে অপৰিহাৰ্য হিচাপে বিবেচিত হৈ আহিছে। ব্যক্তি আৰু অনুষ্ঠান যেতিয়াই এই ক্ষেত্ৰত একত্ৰিত হৈ পৰে তেতিয়া তাৰ প্ৰভাৱ আৰু বেছি দৃঢ় ৰূপত সমাজত প্ৰতিফলিত হয়। প্ৰাক স্বাধীনতা কালৰ পৰাই এচাম জনজাতীয় নেতাই অসমৰ ৰাজনীতি আৰু সমাজ জীৱনত এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰি আহিছে। (গোহাঁই, পেইম থি, পৃ.১৯০)। জনজাতিটোৰ উত্তৰণৰ ক্ষেত্ৰত এই ব্যক্তিসকলৰ ভূমিকা উল্লেখনীয়। তেওঁলোকৰ বলিষ্ঠ ত্যাগ, অৱদান আৰু বৌদ্ধিক চিন্তা-চৰ্চাৰ বাবেই জনজাতিসকলে বিভিন্ন সময়ত নানা সা-সুবিধাৰ লগতে কলা, সাহিত্য, সংস্কৃতিৰ ক্ষেত্ৰত নিজকে পুনঃ প্ৰতিষ্ঠিত কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। সেই ব্যক্তিসকলৰ ভিতৰত লেখত ল'ব লগীয়া এজন ব্যক্তি হ'ল — টাবুৰাম টাইদ। টাইদ একাধাৰে ভাষাতত্ত্ববিদ, গৱেষক, শিক্ষাবিদ, বুদ্ধিজীৱী, কবি, গীতিকাৰ, সুৰকাৰ, নিবন্ধকাৰ, প্ৰশাসক, সংগঠক হিচাপে পৰিচিত। টাবুৰাম টাইদ মিচিং সমাজৰ লগতে বৃহত্তৰ অসমীয়া সমাজ জীৱনৰো এগৰাকী পুৰোধা ব্যক্তি হিচাপে জীৱিত কালতেই স্বীকৃতি লাভ কৰিছিল। কাৰণ তেওঁ ভাষা, সাহিত্য, সমাজ আৰু সংস্কৃতিৰ গভীৰ অধ্যয়নৰ যোগেদি অন্যান্য কিছুমান দিশত বাটকটীয়াৰ ভূমিকা লৈছিল।

২.০১ টাবুৰাম টাইদৰ সাংগঠনিক ভূমিকা ঃ

টাবুৰাম টাইদ নানান শিক্ষাৰে শিক্ষিত হৈ যেতিয়া নিজ ৰাজ্যলৈ, নিজ সমাজলৈ উভতি আহিল সেই সময়ছোৱাতো মিচিং সমাজখন অন্ধবিশ্বাস, কু-সংস্কাৰ, অশিক্ষিত আদিৰে ভৰা এখন সমাজ হৈ আছিল। সেই সন্ধিক্ষনতে টাবুৰাম টাইদৰ সন্মুখত আহি পৰিল নিজকে সংস্থাপিত কৰাৰ প্ৰয়োজনীয়তা আৰু পিছ পৰি থকা সমাজখনত আগবঢ়াই নিয়াৰ কৰ্তব্য আৰু প্ৰত্যাহ্বান। নিজৰ জীৱনক সংস্থাপিত কৰাৰ তাগিদাত টাবুৰাম টাইদে ১৯৬৭ চনত কটন কলেজত শিক্ষকতাৰ পদত যোগদান কৰে আৰু সেই সূত্ৰে টাবুৰাম টাইদ গুৱাহাটীৰ বাসিন্দা হৈ পৰিল (বৰগোহাঞি হোমেন,পৃ. ৩১৬) সেই সন্ধিক্ষণতে ভিন্ন ক্ষেত্ৰতে পিছপৰি থকা মিচিং সমাজখনৰ কথা টাবুৰাম টাইদৰ মনত গভীৰভাৱে ৰেখাপাত কৰি আহিছিল। ভাষা-সাহিত্য, সমাজ-সংস্কৃতি, শিক্ষা-দীক্ষা, অৰ্থনীতি সম্পৰ্কীয় কথাবোৰে তেওঁক চিন্তিত কৰি তুলিছিল। বিভিন্ন সমস্যাৰে জৰ্জৰিত মিচিং সমাজখনক উন্নতিৰ পথলৈ আগবঢ়াই নিবলৈ হ'লে এখন সামাজিক সংগঠনৰ প্ৰয়োজন টাবু টাইদে গভীৰভাৱে উপলব্ধি কৰিছিল। সেয়ে তেওঁ ১৯৬৮ চনত 'সদৌ গুৱাহাটী মিচিং কৌবাং' গঠন কৰে। (উল্লিখিত, পৃ.৩১৬)। ৰাইজৰ সিদ্ধান্ত মৰ্মে টাবুৰাম টাইদক সংগঠনটোৰ সভাপতি আৰু নাহেন্দ্ৰ পাদুনক সম্পাদকৰ পদত অধিষ্ঠিত কৰা হয়। এই 'সদৌ গুৱাহাটী মিচিং কৌবাং' পৰৱৰ্তী সময়ত ১৯৭২ 'মিচিং আগীম কৌবাং' (মিচিং সাহিত্য সভা) ৰূপত অধিষ্ঠিত হয়। এই কৌবাং গঠন হোৱাৰ লগে লগে প্ৰথম সিদ্ধান্ত গ্ৰহণ বা প্ৰয়োজনীয়তা আহি পৰে মিচিং ভাষাৰ লিপি নিৰ্ধাৰণ কৰাতো। এয়া মিচিংসকলৰ সাহিত্য চৰ্চাৰ ক্ষেত্ৰতেই হওঁক বা নিজৰ জাতীয়তাবাদী চিন্তাৰ উন্মেষৰ বাবেই হওঁক। কোনটো ভাষাত মিচিংসকলে ভাষা চৰ্চা কৰিব ? কি লিপি গ্ৰহণ কৰিব ? অসমীয়া লিপি গ্ৰহণ কৰিব নে ৰোমান লিপি গ্ৰহণ কৰিব। এই সিদ্ধান্তৰ পৰীক্ষামূলক আঁচনি স্বৰূপে প্ৰথম নাহেন্দ্ৰ পাদুনৰ দ্বাৰা *'মিচিং ভাষাৰ লিপি ঃ এক পৰীক্ষামূলক আঁচনি'* গ্ৰন্থখন প্ৰকাশৰ ব্যৱস্থা কৰা হয়। এই গ্ৰন্থখনৰ জৰিয়তে মিচিং ভাষাক লিখিত ৰূপ দিয়াৰ প্ৰস্তুত কৰা আঁচনিৰ পৰীক্ষা কৰা হয়। এই পুথিখন প্ৰকাশ হয় ১৯৬৯ চনত। এই গ্ৰন্থখনৰ পিছত টাবুৰাম টাইদৰ দ্বাৰা ৰচিত *'Mising Agom Ayyir'* গ্ৰন্থখন প্ৰকাশ হয়। এই পুথিখন প্ৰকাশ হয় ১৯৭১ চনত। এই পুথিখন আছিল ৰোমান লিপিৰে মিচিং ভাষাক লিখিত ৰূপ দিয়াৰ এক পৰীক্ষামূলক আঁচনি। গুৱাহাটী মিচিং কৌবাঙৰ দ্বাৰা প্ৰকাশ কৰা এই দুয়োখন পুথিয়েই মিচিং ভাষাক লিখিত ৰূপ দিয়াৰ ক্ষেত্ৰত ঐতিহাসিক পদক্ষেপ। ইয়াৰ পাছৰ পৰাই মিচিং ভাষাক লিখিত ৰূপ দিয়া আৰু মিচিং ভাষা-সাহিত্য চৰ্চাৰ পৰিৱেশ গঢ়ি উঠে বুলি ক'ব পাৰি। এই ঐতিহাসিত পৰিঘটনাবোৰৰ সৈতে টাবুৰাম টাইদে এটা সংগঠনৰ মুৰব্বী হিচাপে আৰু ব্যক্তিগতভাৱে ওতপ্ৰোতভাৱে জড়িত হৈ পৰি মিচিং জাতিসত্তাক সবল ৰূপত গঢ়ি তোলাত এক বাস্তৱ পদক্ষেপ গ্ৰহণ কৰিছিল। (উল্লিখিত, পৃ.৩১৭)

প্ৰায় আঠ বছৰ কালজোৰা অধ্যয়ন, গৱেষণা আৰু পৰীক্ষা-নিৰীক্ষাৰ আৰু বাদানুবাদৰ অন্তত সংশোধিত ৰোমান লিপিকেই মিচিং ভাষাৰ লিপি হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হয়। ১৯৮০ চনত খেৰকটামুখত অনুষ্ঠিত মিচিং আগম কৌবাঙৰ চতুৰ্থ অধিৱেশনত ইয়াক আনুষ্ঠানিকভাৱে গ্ৰহণ কৰা হয়। সেই ৰোমান লিপি সাম্প্ৰতিক সময়লৈকে অব্যাহত আছে। সেই সময়তে কৌবাঙ তথা শিক্ষিত মিচিংসকলে অনুভৱ কৰিলে যে ভাষা এটা প্ৰচাৰ তথা বিকাশ লাভ কৰিবলৈ হ'লে ৰাইজৰ আশাশুধীয়া প্ৰচেষ্টাৰ লগতে চৰকাৰী পৃষ্ঠপোষকতা নিতান্তই প্ৰয়োজনীয়। এই

গুৰুত্বতা উপলব্ধি কৰি মিচিং ৰাইজ আৰু আগম কৌবাঙে মিচিং ভাষাক প্ৰাথমিক বিদ্যালয়ত ভাষা বিষয় হিচাপে পঢ়োৱাৰ আৰু শিক্ষক নিযুক্তিৰ দাবী উত্থাপন কৰে। মিচিং ৰাইজ আৰু আগীম কৌবাঙৰ দাবীক সন্মান জনাই অসম চৰকাৰে ১৯৮৫ মিচিং ভাষাক স্বীকৃতি প্ৰদান কৰে। কিন্তু শিক্ষক নিযুক্তিৰ ক্ষেত্ৰত চৰকাৰে গুৰুত্ব নিদিয়াৰ ফলত আগম কৌবাং আৰু জাতীয় সংগঠনসমূহে একগোট হৈ সংগ্ৰাম আৰম্ভ কৰে। এই সংগ্ৰামৰো দাবী মানি ১৯৮৬ চনত মিচিং ভাষা শিক্ষকৰ নিযুক্তি আৰম্ভ কৰে। মিচিং ভাষাক লিখিত ৰূপ দি বিকাশৰ পথেদি আগবঢ়াই নিয়াৰ যি প্ৰবল আশা-আকাংক্ষা মিচিং ৰাইজে পুহি ৰাখিছিল তাক মিচিং আগীম কৌবাঙে বাস্তৱ ৰূপ দিয়াৰ ক্ষেত্ৰত সাফল্য লাভ কৰিছিল। সেয়ে আগীম কৌবাঙৰ প্ৰতি মিচিং ৰাজ্যৰ আস্থা বাঢ়িছিল। পূৰ্বতে উল্লিখিত যে টাইদ কেৱল সাগংঠনিক পৰিসৰতে সীমাবদ্ধ হৈ জনগোষ্ঠীটোৰ উত্তৰণৰ ভাৰ কান্ধত তুলি লোৱা নাছিল; সাংগঠনিক কাৰুকাৰ্যক নেপথ্যত ৰাখি সাহিত্য চৰ্চাত মাজেৰেহে প্ৰধানত নিজৰ সমাজখনক প্ৰতিষ্ঠা কৰাৰ চেষ্টা কৰিছিল।

২.০২ টাবুৰাম টাইদৰ সাহিত্য চৰ্চা ঃ

মিচিংসকলে ভাষা হিচাপে ৰোমান লিপি গ্ৰহণ কৰাৰ পৰৱৰ্তী সময়ৰে পৰা টাবুৰাম টাইদে ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতি চৰ্চাত নিজকে আত্মনিয়োগ কৰি জাতিটোক আগুৱাই নিয়াত অগ্ৰণী ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছিল। তেওঁ বিজ্ঞানসন্মত তথা প্ৰণালীবদ্ধভাৱে ব্যাকৰণ, অভিধান ৰচনা কৰি মিচিং ভাষাটোক তথা জাতিটোক প্ৰতিষ্ঠা কৰিছিল। লগতে মিচিং ভাষা-সমাজ-সংস্কৃতি সম্পৰ্কে যথেষ্ট গ্ৰন্থ আৰু গৱেষণামূলক প্ৰবন্ধ লিখি একপ্ৰকাৰ অভূতপূৰ্ব অৱিহণা আগবঢ়ালে। টাইদৰ গ্ৰন্থবোৰক আমি তিনি ধৰণে ভাগ কৰিব পাৰোঁ—

(ক) মিচিং ভাষা বিষয়ক গ্ৰন্থ

(খ) মিচিং সমাজ-সংস্কৃতি বিষয়ক গ্ৰন্থ

(গ) অন্যান্য গ্ৰন্থ

(ক) মিচিং ভাষা বিষয়ক গ্ৰন্থ ঃ

ভাষাক মূল ভেটি হিচাপে প্ৰতিষ্ঠা কৰি সঠিকভাৱে লিপিবদ্ধ আৰু প্ৰকাশ কৰিবলৈ তথা ভাষাসমূহৰ পদ্ধতি গত ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ ব্যাকৰণ আৰু অভিধানৰ যে প্ৰয়োজন এই কথা টাবুৰাম টাইদৰ জ্ঞাত আছিল। সেয়ে তেওঁ প্ৰথমে ব্যাকৰণ আৰু অভিধান ৰচনাক প্ৰাধান্য দিছিল। টাইদৰ দ্বাৰা প্ৰণীত প্ৰথমখন অভিধান হ'ল *A Dictionary of the Mising language*। গ্ৰন্থখনৰ প্ৰকাশ কাল ১৯৯০ চন। ই মিচিং ভাষাৰ দ্বিতীয়খন অভিধান। টাইদৰ এই অভিধানখন কলেৱৰত সৰু আৰু ইয়াত সীমিত সংখ্যক শব্দহে আছে যদিও শব্দবোৰৰ প্ৰণালীবদ্ধ আৰু যথাযথ ব্যৱহাৰে অভিধানখনক মূল্যবান কৰি তুলিছে। অভিধানখনত বৰ্ণনাক্ৰমিক স্বৰ বৰ্ণ আৰু ব্যঞ্জন বৰ্ণত সুকীয়াকৈ পাণিনীয় মডেলত ভাগ কৰি উপস্থাপন কৰিছে। প্ৰয়োজন সাপেক্ষে কেতবোৰ শব্দৰ ব্যুৎপত্তি বিশ্লেষণ কৰি দেখোৱাৰ বাবে অভিধানখনৰ পৰা বিজ্ঞানসন্মত সমল লাভ কৰিব পৰা হৈছে। মূল মিচিং শব্দৰ অৰ্থৰ ইয়াত ইংৰাজী আৰু অসমীয়া ভাষাত দিয়া হৈছে।

টাবুৰাম টাইদৰ মূখ্য সম্পাদনাত প্ৰকাশিত মিচিং ভাষাৰ আন এখন অভিধান হ'ল *Mising Gompir Kumsung* বা মিচিং শব্দকোষ। এইখন এখন পূৰ্ণাঙ্গ মিচিং অভিধান। আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা, কলা, সংস্কৃতি সংস্থাই প্ৰকাশ কৰা এই অভিধানখনৰ প্ৰকাশ কাল ২০১০ চন। এই অবিধানখনে কেইবাটাও বৈশিষ্ট্য সামৰি লৈছে। প্ৰায় ১৯৭০ দশকৰ পৰাই মিচিং ভাষাৰ উচ্চাৰণক নিজস্ব সংগতি দিবৰ বাবে ৰোমান লিপিৰ আধাৰত যি এটি নতুন লিপি ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ লোৱা হ'ল, এইখন অভিধান সেই লিপিৰেই প্ৰণীত হৈছে। অভিধানখনৰ পাতনিতে মিচিং ভাষা আৰু ব্যাকৰণ সম্পৰ্কে ভাষা-বিজ্ঞানসন্মত এক নাতিদীৰ্ঘ পৰিচয় আগবঢ়াইছে আৰু অভিধানখনৰ পাতনিত মিচিং ভাষাৰ ১৯০ পৃষ্ঠাৰ এখন ব্যাকৰণ সংযোজিত কৰি দিয়া হৈছে।

অভিধান ৰচনাৰ সমান্তৰালভাৱে টাইদে ভাষা চৰ্চাৰ প্ৰয়োজনত দুখন ব্যাকৰণো ৰচনা কৰে।তেওঁৰ প্ৰথমখন ব্যাকৰণ পুথি *Mising Gomlam Potin* খন এখন লেখতলবলগীয়া ব্যাকৰণ পুথি।পুথিখন ২০১৩ চনত মিচিং আগম কৌবাঙে প্ৰকাশ কৰে।পুথিখনত মিচিং ভাষা, মিচিং ভাষাৰ সন্ধি, প্ৰকৃতি, সৰ্গ আৰু শব্দ, বাক্য, শব্দ আৰু পদ, বিশেষ্য আৰু সৰ্বনাম, বচন আৰু লিংগ, বিশেষণ, সংখ্যা, উপশব্দ আৰু সংখ্যাবাচক উপশব্দ, কাৰক, ক্ৰিয়াপদ, ক্ৰিয়াৰ কাল, ক্ৰিয়াৰ ভাৱ, ক্ৰিয়া বিশেষণ, অব্যয় আৰু সংযোজক, নঞৰ্থক বাক্য, তুলনা বাক্য, উক্তি, বিপৰীতাৰ্থক শব্দ, জতুৱা ঠাঁচ, প্ৰবচন আৰু পৰিভাষা সম্পৰ্কে তাত্বিক দিশৰ পৰা উদাহৰণসহ বিশ্লেষণ আগবঢ়াইছে।

Mising Gomlam Potin পুথিখনৰ পাছত টাবুৰাম টাইদে মিচিং ভাষাৰ ধ্বনিতত্ত্ব আৰু মিচিং ভাষাৰ ব্যাকৰণ সম্পৰ্কীয় এখন তত্বপূৰ্ণ গ্ৰন্থ প্ৰকাশ কৰে। আন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি সংস্থাই প্ৰকাশ কৰা টাইদৰ দ্বতীয়খন ব্যাকৰণ পুথি হ'ল— *An Introduction to Mising Phonology and Grammar*। এই ব্যাকৰণখনৰ প্ৰকাশ হয় ২০১৬ চনত। এই ব্যাকৰণ খনত মিচিং ভাষাৰ ধ্বনি আৰু ব্যাকৰণৰ দিশসমূহক বিজ্ঞানসন্মতভাৱে আলোচনা কৰা হৈছে। ২৬৩ পৃষ্ঠাজোৰা

গ্ৰন্থখনত মুঠ চাৰিটা অধ্যায় আছে। প্ৰথম অধ্যায়ত মিচিংসকলৰ লগতে মিচিং ভাষা পৰিয়ালৰ পৰিচয় বিস্তৃতভাৱে আগবঢ়াইছে। অধ্যায়টোত মিচিং বৰ্ণ বা আখৰবোৰৰ পৰিচয়ো সন্নিৱিষ্ট কৰা হৈছে। দ্বিতীয় অধ্যায়ত মিচিং ভাষাৰ ধ্বনি আৰু ধ্বনিতত্ত্বৰ বিস্তৃত বৰ্ণনা আছে। তৃতীয় অধ্যায়ত মিচিং ভাষাৰ ৰূপতত্ত্বৰ বিষয়বস্তু শব্দ, সৰ্গ, বিশেষ্য আৰু বিশেষ্যৰ শ্ৰেণীবিভাজন, সৰ্বনাম আৰু সৰ্বনামৰ প্ৰকাৰ, বচন আৰু বচনৰ প্ৰকাৰ, লিঙ্গ আৰু লিঙ্গ নিৰ্ণয়, কাৰক আৰু কাৰকৰ বিভিন্ন প্ৰকাৰ, বিশেষণ আৰু বিশেষণৰ ভাগ, ক্ৰিয়া আৰু ক্ৰিয়াৰ প্ৰকাৰ, অব্যয় আৰু শব্দ গঠন সম্পৰ্কীয় দিশবোৰ ভাষাবৈজ্ঞানিক দৃষ্টিভংগীৰে বিশ্লেষণ কৰিছে।

(খ) মিচিং সমাজ-সংস্কৃতি বিষয়ক গ্ৰন্থ ঃ

যিকোনো জাতি-জনগোষ্ঠীৰ জাতিসত্তাৰ মূল উপাদান হৈছে ভাষা। সেই কথা উপলব্ধি কৰি টাইদে প্ৰথমে ভাষা চৰ্চা কৰিছিল যদিও কেৱল ভাষা চৰ্চাতেই নিজকে সীমাবদ্ধ কৰা নাছিল। ভাষা চৰ্চাৰ সমান্তৰালভাৱে জনগোষ্ঠীটোৰ সমাজ-সংস্কৃতি তথা মিচিং জনজীৱনৰ সৈতে সম্পৰ্কীত গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশসমূহ বিভিন্ন দৃষ্টিভংগী আৰু বিশ্লেষণৰ মাজেৰে সমাজক তুলি ধৰাৰ প্ৰয়াস কৰিছিল। কাৰণ সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ মাজেদি এটা জাতি, এখন সমাজ জীৱন্ত হৈ থাকে। সেয়ে টাবুৰাম টাইদে বিভিন্ন দৃষ্টিৰে সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ ঐতিহ্য অন্বেষণ কৰিছিল। জনগোষ্ঠীটো প্ৰতিষ্ঠাৰ কাৰণে চেষ্টা কৰিছিল বুলি ক'ব পাৰি। টাইদৰ ভিন্ন গ্ৰন্থ তথা প্ৰবন্ধবোৰত তাৰ প্ৰকাশিত ৰূপ আমি দেখা পাওঁ। এই গ্ৰন্থবোৰৰ জৰিয়তে মিচিং জনগোষ্ঠীটোৰ লোকসাহিত্য চৰ্চাৰ সামগ্ৰিক প্ৰেক্ষাপট সম্পৰ্কে আভাস পাওঁ।

তেওঁৰ সাহিত্য-সংস্কৃতি বিষয়ক এখন গ্ৰন্থ হ'ল ***একুঁকি নিবন্ধ***। অসমীয়া ভাষাত লিখা এইখন গ্ৰন্থ মিচিং সাহিত্য সভাই প্ৰকাশ কৰি উলিয়াই ২০০৭ চনত। টাইদৰ ***একুঁকি নিবন্ধ*** সংকলনত প্ৰকাশিত প্ৰবন্ধ — 'মিচিংসকলৰ ধৰ্মীয় সংস্কৃতি, মিচিং সমাজত নাৰীৰ স্থান, অইনিঃতমৰ পটভূমি, মিচিং ভাষা-সাহিত্য, ৰঙালী বিহুৰ বতৰা, মিচিং জনগোষ্ঠীৰ কলা আৰু শিল্প, মিচিং ৰীঙাম্ অ্‌ৰ্‌ৰই আদি উল্লেখযোগ্য প্ৰবন্ধ। এই প্ৰবন্ধসমূহতেই মিচিংসকলৰ পৰম্পৰা, ৰীতি-নীতি, লোকবিশ্বাস, লোকাচাৰ আদি বিভিন্ন দিশৰ উল্লেখ পোৱা যায়। কাৰণ টাইদে বিশ্বাস কৰিছিল যে, এটা জাতিৰ লোকসাহিত্য তথা সংস্কৃতি জাতিটোৰ অবিচ্ছেদ্য অংগ আৰু প্ৰধান পৰিচয়। জাতীয় সংস্কৃতিৰ বুৰঞ্জীহে জাতিটোৰ প্ৰকৃত বুৰঞ্জী। এই সংস্কৃতিক, ঐতিহ্যক টাইদে সাহিত্যৰ জৰিয়তে দাঙি ধৰাৰ প্ৰয়াস কৰিছিল। বিশ্বৰ আগত চিনাকি দিয়াৰ বাট মুকলি কৰিছিল।

তেওঁৰ আন এখন সংস্কৃতি বিষয়ক গ্ৰন্থ হ'ল *Glimpses I* ***একঁকি নিবন্ধ***ৰ আনুসংগিক বিষয়ৰ উপৰি *Glimpses* নামৰ ইংৰাজী গ্ৰন্থখনত উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ জনগোষ্ঠীক অধ্যয়নত সামৰি; মিচিংসকলৰ ভাষা-সমাজ-সংস্কৃতিকে ধৰি বিশেষকৈ অনুসুচিত জনজাতি সম্পৰ্কীয় বহুতো গুৰুত্বপূৰ্ণ আলোচনা সন্নিবিষ্ট কৰিছে। ভাষা, শিক্ষা, সংস্কৃতি—এই তিনিটা শিতানেৰে তেখেতৰ ভিন্নসুৰী চিন্তা-চেতনাৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। এই গ্ৰন্থখন ***একঁকি নিবন্ধ***ৰ তুলনাত অধিক পৰিকল্পিত, বিস্তৃত আৰু শিক্ষাসদী তথা বৌদ্ধিক চিন্তাৰে সমৃদ্ধ হৈছে বুলি ক'ব পাৰি।

টাবু টাইদৰ সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ ক্ষেত্ৰখনত আন এক সংযোজন হ'ল *Ya:yok Do:ying* নামৰ গ্ৰন্থখন। গ্ৰন্থখন ৰসৰাজ জেবৱৰুৱাৰ ***বুঢ়ী আইৰ সাধু*** গ্ৰন্থখনৰ মিচিং ভাষালৈ কৰা অনুবাদ। মিচিং সাহিত্য সভাৰ দ্বাৰা গ্ৰন্থখন ২০০৫ চনত প্ৰকাশ কৰা হৈছিল। অনিল কুমাৰ পেগুৰ লগত যুটীয়াভাৱে অনুবাদ কৰা গ্ৰন্থখনৰ যোগেদি কন কন মিচিং লৰা-ছোৱালীক ৰসৰাজৰ সাধুকথাৰ ৰস উপভোগ কৰোৱাৰ উদ্দেশ্যে টাইদে গ্ৰন্থখন প্ৰকাশ কৰিছিল।

তেওঁৰ আন এখন শিশু উপযোগী পদ্য সংকলন হ'ল *Poman Moman*। গ্ৰন্থখন প্ৰাথমিক শিক্ষা সঞ্চালকৰ দ্বাৰা অনুমোদিত হৈ অসম ৰাজ্যিক পাঠ্যপুথি প্ৰণয়ন আৰু প্ৰকাশন নিগম লিমিটেডৰ দ্বাৰা ১৯৮৭ চনত প্ৰথম প্ৰকাশ কৰা হয়। গ্ৰন্থখনৰ প্ৰায়বোৰ পদ্যই মিচিং সমাজ-সংস্কৃতিক উপস্থাপন কৰা দেখা যায়।

(গ) অন্যান্য গ্ৰন্থ

টাইদৰ সৃষ্টিৰাজি কেৱল মিচিং ভাষা-সাহিত্য বা মিচিং সমাজ -সংস্কৃতিতে সীমাবদ্ধ নাছিল। বৃহত্তৰ অসমীয়া সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ সৈতেও তেওঁ পৰিচিত তথা অৱদান উল্লেখনীয়। *English For School* ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ মাজত জনপ্ৰিয় এখন ইংৰাজী ব্যাকৰণ। টাইদে উদয় দত্তৰ লগত যুটীয়াভাৱে স্কুলীয়া ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ উপযোগীকৈ এই ব্যাকৰণখন ৰচনা কৰিছিল। টাবুৰাম টাইদৰ আন এক গ্ৰন্থ হ'ল —*The Scheduled Tribes of Assam*। এই গ্ৰন্থখন তথ্য আৰু জনসংযোগ বিভাগে ২০১৭ চনত প্ৰকাশ কৰে। গ্ৰন্থখনৰ এটি অধ্যায়ত টাইদে সুদীৰ্ঘভাৱে অসমৰ অনুসূচিত জনজাতিৰ বিষয়ে আলোচনা আগবঢ়াইছে। তদুপৰি পাহাৰীয়া জনজাতি আৰু ভৈয়াম জনজাতিৰ বিষয়ে সুকীয়া সুকীয়াকৈ দুটা অধ্যায়ত বিশদ বিৱৰণ আগবঢ়াইছে। তেওঁৰ আন এখন উল্লেখযোগ্য গ্ৰন্থ হ'ল—*Banikanta kakati ঃ The Man and His Works*। এই গ্ৰন্থখন টাইদ আৰু ৰঞ্জিৎ দেৱগোস্বামীৰ দ্বাৰা সম্পাদিত এখন উৎকৃষ্ট গ্ৰন্থ। গ্ৰন্থখনত কেৱল ড° বানীকান্ত কাকতিৰ সাহিত্যকৰ্মই সন্নিৱিষ্ট হৈ থকা নাই; গ্ৰন্থখনত সন্নিৱিষ্ট হৈ আছে অসমীয়া

ভাষা আৰু সাহিত্যৰ তত্ত্বগধুৰ সমল। তদুপৰি এক অসম, আমাৰ শিক্ষা, অসমীয়া ভাষাত লিপ্যন্তৰ, ৰঙালী বিহুৰ বতৰা, পাশ্চাত্য চিত্ৰশিল্পৰ ৰেঙণি, বিট্ৰেনৰ মুকলি বিশ্ববিদ্যালয়, লণ্ডনৰ নেশ্যনেল গেলেৰী আকৌ চালোঁ আদি উৎকৃষ্ট প্ৰবন্ধৰাজিৰ বিচক্ষন সৃষ্টিৰে অসমীয়া সাহিত্য-সংস্কৃতিলৈ টাবুৰাম টাইদে এক অনবদ্য অৱদান আগবঢ়াইছে।

২.০৩ টাবুৰাম টাইদৰ সংগীত চৰ্চা ঃ

জাতীয়তাবাদী উত্তৰণত টাবুৰাম টাইদৰ অৱদান কেৱল সাহিত্যিক ক্ষেত্ৰখনতেই সীমাবদ্ধ নহয়। সংগীত চৰ্চাৰ দ্বাৰাও তেওঁ মিচিং জনগোষ্ঠীৰ নৱজাগৰণক সমৃদ্ধ কৰিছিল। জাতিপ্ৰেমমূলক, সংস্কাৰমূলক, জাগৰণমূলক গীতে মিচিং সমাজত আলোড়নৰ সৃষ্টি কৰিছিলন, নৱজাগৰণৰ প্ৰয়োজনীয়তা উপলব্ধি কৰাইছিল। টাইদৰ এক জাতিপ্ৰেমমূলক গীত হ'ল—

Rengama reyoppe lentoka
O:ripe dagroppomtoka

(বৰগোহাঞি, হোমেন, পৃ.৩২০)

ভাবাৰ্থ— ৰাইজ সকলো দলে-বলে ওলাই আহা; স্থিতপজ্ঞ হৈ সকলো ঠিয় হোৱা (মিচিং ৰাইজক জাতি প্ৰেমৰ বাবে উদ্বুদ্ধ কৰিছে)।

টাবুৰাম টাইদে ১৯৭৮ চনত 'সাংস্কৃতিকা' নামেৰে এখনি সংগীতালেখ্য পুৰোষোত্তম দাসৰ পৰিচালনাত আকাশবানী গুৱাহাটী কেন্দ্ৰ যোগে প্ৰচাৰ কৰে। উল্লেখ্য যে ১৯৭৮-৭৯ ৰ সময়ছোৱাত ভালেমান মিচিং গীত ৰচনা কৰে, পৰিৱেশন কৰে। এই সমাজ-সংস্কৃতি সম্পৰ্কীয় গীতবোৰৰ জৰিয়তেও জাতীয় সত্তাক উপলব্ধি কৰোৱাইছিল; সমাজ-সংস্কৃতি চৰ্চাৰ মাজেৰে, শ্ৰদ্ধাৰ মাজেৰেহে জনগোষ্ঠী প্ৰতিষ্ঠা হ'ব, একত্ৰিত হ'ব এই কথাটো তেওঁ গুৰুত্ব দিছিল। তেওঁ লিখিছে —

Rengama mamongem sutoka
Asubem mepagsutobongka
Don:yi po:lo takaroke do:lungem
Ngolusine kaminla:je ka:manem
Ngolusine dengkila:je de:manem
Rengama....

ভাবাৰ্থ— ৰাইজ উঠা, মুখ ধোৱা, শোৱাপাটী এৰা, চন্দ্ৰ-সূৰ্যৰ গাওঁলৈ যাওঁ বলা; আমিও চাও আহা ধুনীয়া ঠাইবোৰ, আমিও উৰি চাওঁ আহা ৰাইজ (মিচিং জনগনক জাগ্ৰত কৰিছে)।

উল্লেখ্য যে তেওঁ নিজেই এজন গায়ক, গীতিকাৰ, সুৰকাৰ আছিল। ছাত্ৰাৱস্থাৰ পৰাই তেওঁ সংগীতৰ প্ৰতি ৰাপ আছিল। *Folk songs of the Mising* টাইদ আৰু বীৰেন্দ্ৰনাথ দত্তৰ যুটীয়াভাৱে সম্পাদনা কৰা গ্ৰন্থখনত মিচিং ভাষাৰ লোকগীতসমূহ অসমীয়া আৰু ইংৰাজী ভাষাত অনুবাদসহ প্ৰকাশ কৰা হৈছে। টাইদৰ গীত ঃ '***আচি জিলি জিলিক***' গ্ৰন্থৰ সম্পাদক সদানন্দ পায়েঙে লিখিছে —"সংখ্যাত তাকৰ যদিও গীতিকাৰে কেইবাটাও অনন্য সুন্দৰ গীত সৃষ্টি কৰিছে। অতি পুৰণি থলুৱা মিচিং লোকসুৰ আৰু আধুনিক সুৰৰ সংমিশ্ৰণত সৃষ্টি কৰা টাইদৰ গীত সামাজিক চেতনা, প্ৰেম-বিষাদ, আশা-নিৰাশা ইত্যাদি বিষয়ৰ সমাহাৰ। তেখেতৰ গীতৰ সুৰত ইতিমধ্যে হেৰাই যোৱা বহু মিচিং লোকগীতৰ সুৰ বিচাৰি পোৱা যায়"। (উল্লিখিত, পৃ. ২২০)

১৯৮০ চনত অসম চৰকাৰে তেওঁৰ সংগীত প্ৰতিভাক স্বীকৃতি দিবলৈ 'বাৰেবৰণীয়া অসম' নামৰ লং প্লেয়িং ৰেকৰ্ড এখন উলিয়াইছিল। গতিকে নানান কৰ্মক্ষেত্ৰৰ মাজেতো মিচিং সংগীতৰ ক্ষেত্ৰখনতো টাইদে স্বকীয় গৰিমামণ্ডিত অৱদান দি গ'ল বুলি ক'ব পাৰি।

২.০২ টাবুৰাম টাইদৰ কবিতা চৰ্চা ঃ

গীতৰ সমান্তৰালভাৱে টাইদে কবিতাৰ জৰিয়তওে মিচিং সমাজৰ মাজত জাগৰণৰ আনিবলৈ চেষ্টা কৰিছিল। সংখ্যাত কম হলেও তেওঁ কেইটামান মিচিং কবিতা লিখি গৈছে। তাৰ এটা সাৰ্থক কবিতা হৈছে — 'Lckoda Ligangc' য'ত মিচিং সমাজৰ এটা বাস্তৱ ছবি পৰিস্ফুত হৈ উঠিছে —

Ngoluk lcgangc bi:la dung
Kcmmo kcmmo kcmmo
Dumcrdcm bi, yakadoikc anna,
Aki: kc ugncbcm oggitsula
Lckoda gumrakko rakkvpc
yekadoikc anna kabdu:nc
yakadoikc anna kappo:yo

অনুবাদ ঃ আমাৰ কাৰণে চৌদিশে অপেক্ষা কৰি আছে আন্ধাৰ, আন্ধাৰ, কেৱল আন্ধাৰ, যাকাদৈৰ মাক ঐ; দিয়া দিয়া গামোচাখন দিয়া, ভোক দহি নিয়া পেটটো আটি আকৌ এবাৰ গুমৰাগক আদৰো। কান্দিছা নেকি য়াকাদৈৰ মাক, এতিয়াই নাকান্দিবা।

(কবিতাটোৰ জৰিয়তে টাইদে এন্ধাৰে আৱৰি ৰখা মিচিং সমাজখনক লৃগাঙৰ জৰিয়তে, গুমৰাম চঃমান মাজেৰে পোহৰৰ সন্ধান দিছে, সেয়ে য়াকাদই (এক কাল্পনিক নাৰী চৰিত্ৰ) ক কবিয়ে নাকান্দিব কৈছে, কন্দা এৰিবলৈ কৈছে)।

এইদৰে টাইদে বৃহত্তৰ অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতিক বৰ্ণময় সংস্কৃতি গঢ়ি তোলাত মিচিংসকলৰ সংস্কৃতিক অৱদানৰ কথা ভিন্ন লোকসাহিত্যসমূহৰ জৰিয়তে পৰিচয় দিয়াৰ প্ৰয়াস কৰিছে। লগতে টাইদে অতীততে (খ্ৰীষ্টীয় ত্ৰয়োদশ) তাহানিৰ আবৰ পাহাৰৰ পৰা ভৈয়াম অঞ্চললৈ নামি আহি অসমীয়া সংস্কৃতিৰ

লগত নিজৰ সমাজ-সংস্কৃতিক লীন কৰালেও অতীতৰ সৈতে সাংস্কৃতিক সম্পৰ্ক আজিও বিদ্যমান এই কথা উল্লেখ কৰিছে। অতীতৰ আবতানি বংশৰ এই মিচিং লোকসকলে আজিও দঃগ্ৰিঃ-পঃলঃ, কাৰ্চিন-কাৰ্তাং, চেদি-মেঃলক প্ৰধান উপাস্য দেৱতা হিচাপে জ্ঞান কৰি নিজৰ ভাষা, সাহিত্য, সাংস্কৃতিক স্বকীয়তা অক্ষুন্ন ৰাখি জাতিটোক আগুৱাই নিয়াৰ চেষ্টা কৰিছিল। সেয়ে টাইদে বৃহত্তৰ অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতিৰ সমান্তৰালভাৱে নিজৰ জনগোষ্ঠীটোৰ জাতীয়তাবাদী উত্তৰণতো গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰিছিল। তাত কোনো সন্দেহ নাই।

সামৰণি ঃ

টাবুৰাম টাইদক কুৰি শতিকাৰ অন্তিম চাৰিটা দশক আৰু একৈশ শতিকাৰ প্ৰথম দুটা দশকৰ মিচিং সমাজ-সংস্কৃতি আৰু ভাষা-সাহিত্য চিন্তাৰ অন্যতম বাটকটীয়া হিচাপে চিহ্নিত কৰিব পাৰি। পুৰণি পৰম্পৰাক নতুন মূল্যায়নেৰে গঢ়ি মিচিং সমাজক আধুনিকতাৰ পিনে অগ্ৰহৰ হোৱাত টাবু টাইদে যি অৱদান আগবঢ়ালে সেয়া জনগোষ্ঠীটোৰ নৱজাগৰণৰ সোপানৰূপে চিহ্নিত কৰিব পাৰি। টাবুৰাম টাইদৰ নিজস্ব জাতিসত্ত্বা, আত্মপৰিচয় ৰক্ষা আৰু জাতিটোৰ উত্তৰণৰ উদ্দেশ্যে সুস্থ সৰল চিন্তাধাৰা আৰু সমাজহিতৈষী কৰ্মৰাজিৰ প্ৰভাৱেৰে মিচিং জাতীয়তাবাদী চিন্তাধাৰাৰ উত্তৰণত, মিচিং নৱজাগৰণত যি প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিলে ই সঁচাই প্ৰশংসনীয় আৰু উল্লেখনীয়।

টাবুৰাম টাইদৰ উপৰি আৰু বহুতো উচ্চ ডিগ্ৰীধাৰী ব্যক্তিয়ে মিচিংসকলৰ নৱজাগৰণত বহুতো গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰিছিল। সেইসকলৰ ভিতৰত বীৰুচন্দ্ৰ দলে (প্ৰৱেশিকা পৰীক্ষাত উত্তীৰ্ণ প্ৰথমগৰাকী মিচিং ব্যক্তি,১৯১৯ চন), মালচন্দ্ৰ দলে (কলিকতা বিশ্ববিদ্যালয়ৰ পৰা বুৰঞ্জীত প্ৰথম গৰাকী স্নাতকোত্তৰ, ১৯৮৯ চনয়), চকলাভ কাগয়ুং (প্ৰথমগৰাকী বি.টি ১৯৮৬ চন), ৰজনীকান্ত পাতিৰ (প্ৰথম কৃষি স্নাতক ডিগ্ৰীধাৰী, ১৯৫১ চন), পাৰ্বতী পেগু দলে (মিচিং সমাজৰ প্ৰথমগৰাকী প্ৰৱেশিকা পৰীক্ষাত উত্তীৰ্ণ মহিলা)। পাৰ্বতীৰ উত্তীৰ্ণৰ পাছতেই জনগোষ্ঠীটোৰ মাজত মিচিং নাৰী শিক্ষাৰ প্ৰয়োজনীয়তাই গুৰুত্ব লাভ কৰে। সমান্তৰালভাৱে মহীচন্দ্ৰ মিৰি, ইণ্ডিৰা মিৰি, তৰুণ চন্দ্ৰ পামেগাম, চক্‌লাভ কাগয়ুং, বিক্ৰম সি ং য়েইন, যতীন মিপুন, ভৃগুমণি কাগয়ুং, নাহেন্দ্ৰ পাদুন আদিয়েও জনগোষ্ঠীটোৰ নৱজাগৰণত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰিছিল। মুঠতে উনবিংশ শতিকাৰ দ্বিতীয় দশকৰ মাজৰ সময়ছোৱাৰ পৰা মিচিং সমাজৰ শৈক্ষিক, সামাজিক, সাহিত্যিক নৱজাগৰণৰ যুগ বুলি অভিহিত কৰিব পাৰি। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

কোঁৱৰ, অৰ্পণা। (সম্পা.)। *উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ জনগোষ্ঠী সমাজ আৰু সংস্কৃতি (প্ৰথম খণ্ড)*। বনলতা প্ৰকাশন। পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, অক্টোবৰ, ২০২৩। মুদ্ৰিত

দাস, মুনীন্দ্ৰ। *অসমৰ নৃগোষ্ঠীয় উত্তৰণৰ ইতিহাস*। বনলতা প্ৰকাশন। পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম সংস্কৰণ, ডিচেম্বৰ, ২০২০। মুদ্ৰিত

বৰা সুৰেন্দ্ৰনাথ। (সম্পা.)। *নৱজাগৰণ*। প্ৰকাশকঃ শঙ্কৰদেৱ মিছ্ন। তৰুণ নগৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১২। মুদ্ৰিত

বৰা গোলোক চন্দ্ৰ। *টাবুৰাম টাইদ*। গতি অসম জীৱনমালা প্ৰকল্প - ২০২২ ৰ অধীনস্থ জীৱনীগ্ৰন্থ। মুদ্ৰিত

বৰগোহাঞি হোমেন (মু. সম্পা.)। *মিচিং নৱজাগৰণৰ উদ্‌গাতা অসম গৌৰৱ টাবুৰাম টাইদ*। উত্তৰ গুৱাহাটীঃ আবিলেক প্ৰকাশন, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০২১। মুদ্ৰিত

হোছেইন ইছমাইল। *মিচিং সমাজ-ইতিহাস আৰু সংস্কৃতিৰ ঐতিহ্য*। জ্যোতি প্ৰকাশন। পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৫। মুদ্ৰিত।

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ ভূমিকা

মিতুশ্ৰী বৰ্মন

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-১
৮৪৭৩৯২৪৬১২
mitushribarman1@gmail.com

ড° নুৰ ইছলাম শইকীয়া

সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-১
৭০৮৬৩১৪৯১২
saikianur@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

ভাষা হৈছে মানুহৰ মনৰ ভাৱানুভূতি প্ৰকাশৰ এক ফলপ্ৰসূ মাধ্যম। বিশ্বায়নৰ যুগত কেইবাটাও ভাষাত প্ৰভাৱশালীৰূপত যোগাযোগ স্থাপন কৰিব পৰা ক্ষমতাটো অন্যতম দক্ষতা হিচাপে পৰিগণিত হৈছে। প্ৰত্যেক সুস্থ ব্যক্তিয়ে স্বাভাৱিকভাৱেই পৰিবেশৰ পৰা ভাষা আহৰণ কৰে যদিও ই এক জটিল মানসিক প্ৰক্ৰিয়া। শিশুৱে স্বতঃস্ফূৰ্তভাৱে প্ৰথম ভাষাটো আহৰণ কৰিলেও প্ৰয়োজনৰ তাগিদাত আহৰণ কৰা দ্বিতীয় ভাষাসমূহৰ ক্ষেত্ৰত যথেষ্ট সময় আৰু সচেতন প্ৰচেষ্টাৰ প্ৰয়োজন হয়। কিন্তু কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তা (Artificial Intelligence)-ৰ শেহতীয়া উন্নতিয়ে দ্বিতীয় ভাষা আহৰণৰ কৃতকাৰ্যতাত নতুন সম্ভাৱনাৰ সৃষ্টি কৰিছে। এই গৱেষণা পত্ৰখনৰ জৰিয়তে দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ ভূমিকা, বৰ্তমানে ইয়াৰ স্থিতি আৰু ভৱিষ্যতৰ সম্ভাব্য বিভিন্ন দিশৰ বিষয়ে আলোকপাত কৰা হৈছে। কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ প্ৰযুক্তিৰ উন্নীতকৰণে দ্বিতীয় ভাষা শিক্ষণ তথা দ্বিতীয় ভাষা আহৰণ ফলপ্ৰসূ হোৱাৰ বাবে বিভিন্ন সুযোগ সৃষ্টি কৰিছে। অৱশ্যে দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই সন্মুখীন হোৱা প্ৰত্যাহ্বান তথা সীমাবদ্ধতাসমূহৰ প্ৰতিও গুৰুত্ব আৰোপ কৰিবলগীয়া। সেয়ে এই গৱেষণা পত্ৰখনৰ জৰিয়তে বৰ্তমান আৰু ভৱিষ্যতৰ সম্ভাব্য প্ৰয়োগৰ ওপৰত গুৰুত্ব প্ৰদান কৰি দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত পৰিলক্ষিত ইতিবাচক আৰু নেতিবাচক প্ৰভাৱৰ বিষয়েও আলোচনা কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

দ্বিতীয় ভাষা আহৰণ, কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তা, স্বাভাৱিক ভাষা প্ৰক্ৰিয়াকৰণ (Natural Language Processing), কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ উপকৰণ (Artificial Intelligence Tools)

অৱতৰণিকা ঃ

সমাজত বাস কৰা লোকসকলৰ পাৰস্পৰিক যোগাযোগৰ অন্যতম মাধ্যম ভাষা। ই ব্যক্তিৰ চিন্তা-ভাৱনা প্ৰকাশৰ মুখ্য সাধন। যিহেতু প্ৰত্যেক সুস্থ ব্যক্তিয়ে ভাষা কয় আৰু স্বতঃস্ফূৰ্তভাৱে ভাষা একোটা আহৰণ কৰে, সেয়ে ভাষা আহৰণ সকলোৰে বাবে আগ্ৰহৰ বিষয়। প্ৰত্যেক শিশুৱে জন্ম লৈয়ে স্বাভাৱিকভাৱে আহৰণ কৰা ভাষাটো হৈছে প্ৰথম ভাষা। কোনো এজন ব্যক্তিয়ে প্ৰথম ভাষাক বাদ দি যিটো বা যিবোৰ ভাষা আয়ত্ত কৰে সেই সকলোবোৰেই দ্বিতীয় ভাষা; অৰ্থাৎ দ্বিতীয় ভাষা এটা বা তাতকৈ অধিক হ'ব পাৰে। অৱশ্যে দ্বিতীয় ভাষা আহৰণ এক জটিল প্ৰক্ৰিয়া। দ্বিতীয় ভাষা আহৰণ আধুনিক শিক্ষাক্ষেত্ৰত এক গুৰুত্বপূৰ্ণ অধ্যয়নৰ বিষয়। বৰ্তমানৰ বিশ্বায়ন তথা বহুভাষিক পৰিৱেশত একাধিক ভাষা আয়ত্ত কৰা অত্যাৱশ্যকীয় হৈ পৰিছে। যোগাযোগ, শিক্ষা, কৰ্মসংস্থান, গৱেষণা আৰু আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় সম্পৰ্কৰ ক্ষেত্ৰত ইংৰাজীসহ অন্যান্য বিদেশী ভাষাৰ প্ৰয়োজনীয়তা দিনে দিনে বৃদ্ধি পাইছে। সেয়ে ভাষা শিক্ষণৰ পৰম্পৰাগত পদ্ধতিসমূহত

থকা সীমাবদ্ধতা আঁতৰাই ভাষা আহৰণ প্ৰক্ৰিয়াৰ দ্ৰুত উন্নয়ন অত্যাৱশ্যকীয় হৈ পৰিছে। এই পৰিপ্ৰেক্ষিতত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তা (Artificial Intelligence বা চমুকৈ AI)-ই এক পৰিৱৰ্তনকাৰী শক্তি হিচাপে আত্মপ্ৰকাশ কৰিছে। ই ভাষা শিক্ষণ প্ৰক্ৰিয়াক সক্ৰিয় আৰু ফলপ্ৰসূ কৰাৰ লগতে ব্যক্তিকেন্দ্ৰিক আৰু প্ৰযুক্তি-সমন্বিত কৰি তোলাত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰিছে। দ্বিতীয় ভাষা আহৰণৰ বেলিকা কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ প্ৰয়োগে ইতিবাচক প্ৰভাৱ পেলোৱাৰ লগতে কিছু ক্ষেত্ৰত নেতিবাচক প্ৰভাৱ পেলোৱা পৰিলক্ষিত হয়। গতিকে দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ ভূমিকা অতিকৈ চৰ্চিত বিষয়।

অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আৰু উদ্দেশ্য ঃ

দ্বিতীয় ভাষা আহৰণ প্ৰক্ৰিয়াত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ ভূমিকা বিষয়টো আধুনিক শিক্ষা ব্যৱস্থাৰ সৈতে ঘনিষ্ঠভাৱে জড়িত হৈ আছে। বৰ্তমান সময়ত প্ৰযুক্তিৰ অত্যধিক প্ৰয়োগ তথা সম্প্ৰসাৰণে সমাজ ব্যৱস্থালৈ অনা পৰিৱৰ্তনৰ দৰে ভাষা শিক্ষণ প্ৰক্ৰিয়াৰ ক্ষেত্ৰত অনা পৰিৱৰ্তনো লক্ষ্যণীয়। বহুভাষিক সমাজত ভাষা শিক্ষণ উন্নত কৰাৰ ক্ষেত্ৰত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ উপকৰণসমূহৰ প্ৰয়োগৰ সম্ভাৱনীয়তা অন্বেষণ কৰাটো এই অধ্যয়নৰ এক বিশেষ গুৰুত্ব। এই অধ্যয়নে দ্বিতীয় ভাষা আহৰণ আৰু কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ সংযোগক তাত্ত্বিক আৰু প্ৰায়োগিকভাৱে শক্তিশালী কৰি ভৱিষ্যতে ভাষা শিক্ষণৰ নতুন দিশ উন্মোচন কৰিব। শিক্ষাবিদ্, অভিভাৱক, শিক্ষানীতি নিৰ্ধাৰকসকলৰ বাবে দ্বিতীয় ভাষা শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত অধিক ফলপ্ৰসূ কৌশল নিৰ্বাচন কৰাত বিষয়টোৰ অধ্যয়নত সহায়ক হ'ব। সেয়েহে এই বিষয়ৰ অধ্যয়নৰ তাৎপৰ্য আছে।

'দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ ভূমিকা' শীৰ্ষক বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যবোৰ হ'ল —

(ক) দ্বিতীয় ভাষা আহৰণৰ ক্ষেত্ৰত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ ধাৰণা আৰু প্ৰয়োগ বিশ্লেষণ কৰা।

(খ) কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ উপকৰণসমূহৰ কাৰ্যকাৰিতা পৰ্যালোচনা কৰা।

(গ) দ্বিতীয় ভাষা আহৰণ প্ৰক্ৰিয়াত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ প্ৰয়োগৰ সুবিধা-অসুবিধাসমূহৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা।

(ঘ) দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ বৰ্তমানৰ স্থিতি আৰু ভৱিষ্যতৰ সম্ভাব্য প্ৰয়োগ সম্পৰ্কে গুৰুত্ব প্ৰদান কৰা।

(ঙ) দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ ইতিবাচক আৰু নেতিবাচক প্ৰভাৱৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা।

অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

'দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ ভূমিকা' শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখনিৰ পৰিসৰৰ ভিতৰত দ্বিতীয় ভাষা আহৰণ প্ৰক্ৰিয়াত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ প্ৰয়োগৰ বিভিন্ন দিশৰ অধ্যয়ন অন্তৰ্ভুক্ত কৰা হৈছে। দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ উপকৰণসমূহৰ প্ৰয়োগৰ পৰা ইতিবাচক আৰু নেতিবাচক প্ৰভাৱক অধ্যয়নত সামৰি লোৱা হৈছে। কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ উপকৰণসমূহৰ অত্যধিক ব্যৱহাৰত সৃষ্টি হোৱা সুবিধা-অসুবিধাসমূহৰ বিষয়ে আলোচনা কৰাৰ লগতে দ্বিতীয় ভাষা শিক্ষণৰ ক্ষেত্ৰত ভৱিষ্যতৰ সম্ভাব্য প্ৰয়োগৰ দিশসমূহকো এই অধ্যয়নত সাঙুৰি লোৱা হৈছে।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

'দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ ভূমিকা' শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখনি বৰ্ণনাত্মক আৰু বিশ্লেষণাত্মক দুয়োটা পদ্ধতিৰে প্ৰস্তুত কৰা হৈছে। এই পত্ৰখনি প্ৰস্তুত কৰোঁতে মুখ্য আৰু গৌণ দুয়োটা উৎসৰ পৰা সমল গ্ৰহণ কৰা হৈছে। মুখ্য উৎস হিচাপে দ্বিতীয় ভাষা শিকাৰুৰ সাক্ষাৎকাৰ লোৱা হৈছে আৰু গৌণ উৎস হিচাপে বিষয়টোৰ লগত জড়িত প্ৰাসংগিক কিতাপ, পত্ৰ, আলোচনী আদিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

বিষয়বস্তুৰ বিশ্লেষণ ঃ

বৰ্তমান সময়ত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই বিভিন্ন ক্ষেত্ৰত বিপ্লৱ অনাৰ দৰে ভাষা আহৰণতো গুৰুত্বপূৰ্ণ প্ৰভাৱ পেলাইছে। দ্বিতীয় ভাষা আহৰণৰ দৰে জটিল বিষয়ো কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ সহায়ত সহজ হৈ পৰিছে। কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ প্ৰযুক্তিৰ উন্নয়নে ভাষা আহৰণৰ দৰে বিষয়ত আগবঢ়োৱা অৰিহণাই শৈক্ষিক জগততো তাৎপৰ্যপূৰ্ণ পৰিৱৰ্তনৰ সূচনা কৰিছে। কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ প্ৰভাৱৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰাৰ পূৰ্বে কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তা তথা ইয়াৰ উপকৰণসমূহ (AI-tools)-ৰ বিষয়ে এটা থূলমূল আভাস দাঙি ধৰা হ'ল।

সাধাৰণ অৰ্থত মানুহৰ বুদ্ধিমত্তাৰ প্ৰয়োজন হোৱা বুলি ভবা কামবোৰ কম্পিউটাৰ ব্যৱস্থাই কৰিব পৰাটোৱেই কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তা। ই হৈছে এনে এক ব্যৱস্থা যিয়ে কম্পিউটাৰ বা যন্ত্ৰক মানুহৰ শিক্ষণ, বোধ, সমস্যা সমাধান, সিদ্ধান্ত গ্ৰহণ, সৃষ্টিশীলতা আদিক অনুকৰণ কৰিবলৈ সক্ষম কৰে। (Russsell and Norving, 19) মানৱ বুদ্ধিৰ দ্বাৰা সম্পাদিত কামসমূহ যন্ত্ৰৰ সহায়ত কৰিব পৰাকৈ সৃষ্ট কম্পিউটাৰ বিজ্ঞানৰ এক ব্যৱস্থাই হ'ল কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তা। যুক্তি, শিক্ষণ, সমস্যা সমাধান, ভাষিক বোধগম্যতা আৰু উপলব্ধি আদিত প্ৰয়োজনীয় মানুহৰ

জ্ঞানমূলক ক্ষমতাক কম্পিউটাৰ ব্যৱস্থাত অনুকৰণ কৰাই হৈছে কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ লক্ষ্য। (Rich and Knight, 3) সংক্ষেপে ক'বলৈ হ'লে কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তা এনে এক শক্তিশালী প্ৰযুক্তি যিয়ে পৰম্পৰাগতভাৱে মানুহৰ বুদ্ধিমত্তাৰ প্ৰয়োজন হোৱা কামসমূহ যন্ত্ৰবিশেষক কৰিবলৈ সক্ষম কৰে। ইয়াৰ প্ৰয়োগ বিস্তৃত আৰু দ্ৰুতগতিত বিকশিত হৈয়েই আছে। ই সমাজৰ বাবে সম্ভাৱনা আৰু প্ৰত্যাহ্বান দুয়োটাই সৃষ্টি কৰে। জন মেক্কাৰ্থী (John McCarthy)-এ পোনতে ১৯৫৬ চনত অনুষ্ঠিত হোৱা ডাৰ্টমাথ (Dartmouth) সন্মিলনত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তা অভিধাটোৰ ব্যৱহাৰ কৰিছিল। (McCarthy) ভাষা আহৰণৰ ক্ষেত্ৰত এই কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই গুৰুত্বপূৰ্ণ প্ৰভাৱ পেলায়। কথিত আৰু লিখিত উভয় ভাষাৰ ক্ষেত্ৰতে দেখা, শুনা, কোৱা, বুজা, অনুবাদ কৰা, তথ্য বিশ্লেষণ কৰা, পৰামৰ্শ দিয়া আদি বিভিন্ন কাম কম্পিউটাৰৰ সহায়ত কৰিবলৈ কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই সহায় কৰে।

কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ উপকৰণ বুলিলে এনে ছফ্‌টৱেৰ প্ৰ'গ্ৰাম বা এপ্লিকেচনক বুজোৱা হয় যিয়ে কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ মডেল আৰু এলগৰিদম (algorithm) ব্যৱহাৰ কৰি কোনো নিৰ্দিষ্ট কাম সম্পাদন কৰে। এই উপকৰণসমূহে বিভিন্ন কামৰ স্বয়ংক্ৰিয়ভাৱে সম্পাদন, তথ্য বিশ্লেষণ আৰু নতুন বিষয়বস্তু সৃষ্টি কৰে। ই উৎপাদনক্ষমতা বৃদ্ধি কৰাত সহায় কৰে, মানৱ সদৃশ চিন্তন প্ৰক্ৰিয়া অনুকৰণ কৰিব পাৰে আৰু জটিল সমস্যাৰ সমাধান বিচাৰি উলিয়ায়। শিক্ষা, ব্যৱসায়, স্বাস্থ্য, যোগাযোগ, গৱেষণা আদি বিভিন্ন ক্ষেত্ৰত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ উপকৰণসমূহে কাৰ্যদক্ষতা বৃদ্ধি কৰি এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰে।

দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ ভূমিকা ঃ

দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ প্ৰয়োগে এক আলোড়নৰ সৃষ্টি কৰিছে। ভাষা শিক্ষণৰ উন্নীতকৰণ, ব্যক্তিগত শিক্ষণ, শিকাৰুৰ বাবে ব্যক্তিগত অভিমত প্ৰদান আৰু ভাষা শিক্ষণৰ ভিন্ন দিশৰ সূচনাই দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত বহুতো সুযোগ-সুবিধা আনি দিছে। কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই শিক্ষণ-প্ৰক্ৰিয়াক অধিক সহজ, ফলপ্ৰসূ আৰু আন্তঃক্ৰিয়ামূলক কৰি তুলিবলৈ সহায় কৰিছে। দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই পালন কৰা ভূমিকাৰ কেইটামান দিশ এনেধৰণৰ ঃ

(ক) ব্যক্তিগত শিক্ষণ ঃ কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই প্ৰতিগৰাকী ভাষা শিকাৰুৰ শিক্ষণ শৈলী আৰু অগ্ৰগতি বিশ্লেষণ কৰি ব্যক্তিগতভাৱে উপযুক্ত শিক্ষণ পথ নিৰ্বাচন কৰি উলিয়ায়। শিকাৰুৰ শিক্ষণীয় দিশত থকা দুৰ্বলতাসমূহৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি ব্যক্তিগত প্ৰয়োজন অনুসাৰে স্বকীয় শিক্ষণ পথ আৰু সঁজুলি প্ৰদান কৰে। এই ব্যৱস্থাই শিকাৰুৰ শিক্ষণ প্ৰণালী অধিক ফলপ্ৰসূ কৰি তোলাৰ লগতে শিক্ষণ সামগ্ৰী স্থায়ী কৰে আৰু শিকাৰুক অংশগ্ৰহণ কৰাত উৎসাহী কৰি তোলে।

(খ) পাৰস্পৰিক শিক্ষণৰ বাতাবৰণ ঃ কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰে সঞ্চালিত কিছুমান ব্যৱস্থাই বাস্তৱ জগতৰ ভাষা ব্যৱহাৰৰ অনুকৰণত কেতবোৰ আৰ্হি প্ৰস্তুত কৰি উলিয়ায়। এনে আৰ্হিয়ে শিকাৰুৰ উচ্চাৰণ, ব্যাকৰণ আৰু শব্দভাণ্ডাৰৰ বিষয়ে তাৎক্ষণিক প্ৰতিক্ৰিয়া (feedback) আগবঢ়োৱাৰ লগতে শিকাৰুৰ অগ্ৰগতিৰ ক্ষেত্ৰ চিনাক্ত কৰে। কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ দ্বাৰা সঞ্চালিত বিভিন্ন উপকৰণে পাৰস্পৰিক শিক্ষণৰ বাতাবৰণ সৃষ্টি কৰে। উদাহৰণস্বৰূপে, কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰদ্বাৰা সঞ্চালিত চাটবট (Chatbot)-এ নিম্নচাপৰ বাতাবৰণত কথোপকথনৰ অনুশীলন কৰাৰ লগতে শিকাৰুৰ প্ৰদৰ্শনৰ ভিত্তিত ব্যক্তিগত মতামত প্ৰদান কৰিব পাৰে।

(গ) দক্ষ মূল্যায়ন আৰু মতামত ঃ কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই ভাষা দক্ষতাৰ মূল্যায়ন স্বয়ংক্ৰিয়ভাৱে সম্পাদন কৰে বাবে শিকাৰুৱে তাৎক্ষণিকভাৱে ব্যক্তিগত অগ্ৰগতিৰ প্ৰতিক্ৰিয়া লাভ কৰিব পাৰে। যিসকল শিকাৰুৰ দ্বিতীয় ভাষা শিক্ষণৰ বেলিকা ব্যক্তিগত শিক্ষকৰ অভাৱ হয় বা সঘনাই নিজৰ কাম সম্পৰ্কে প্ৰতিক্ৰিয়াৰ প্ৰয়োজন হয় বিশেষকৈ তেওঁলোকৰ বাবে ই সহায়ক হয়। ইয়াৰ ফলত শিকাৰুৱে নিজৰ ভুলসমূহ সহজে চিনাক্ত কৰি সংশোধন কৰিব পাৰে। এনে তাৎক্ষণিক প্ৰতিক্ৰিয়াই নতুন পৰিৱেশত দ্বিতীয় ভাষা আহৰণ কৰি থকা শিকাৰুক ভাষাগত দক্ষতা উন্নীতকৰণত যথেষ্ট সহায় কৰে।

(ঘ) কথন দক্ষতাৰ বিকাশ ঃ বাস্তৱিক কথোপকথনৰ অনুকৰণ কৰি কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত চাটবট (Chatbot)-এ সৃষ্টি কৰা বাতাবৰণত শিকাৰুৱে অনুশীলন কৰাৰ সুবিধা লাভ কৰে। ই কথন দক্ষতাৰ উন্নীতকৰণ কৰাৰ লগতে তাৎক্ষণিক মতামত প্ৰদানেৰে দ্বিতীয় ভাষা আহৰণ সঠিক তথা সুগম কৰি তোলে। ই বিশেষকৈ লাজকুৰীয়া বা অন্তৰ্মুখী ব্যক্তিত্বৰ শিকাৰুৰ বাবে লাভদায়ক। কাৰণ তেওঁলোকে দলৰ মাজত কথা কৈ অভ্যাস কৰিবলৈ অস্বস্তি অনুভৱ কৰে।

(ঙ) গৱেষণা ঃ কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ সহায়ত বৃহৎ সংখ্যক ভাষিক তথ্যৰ বিশ্লেষণ সম্ভৱ। সেয়ে ভাষা আহৰণ প্ৰক্ৰিয়াৰ অন্তৰ্দৃষ্টি, আৰ্হি তথা ধাৰাৰ চিনাক্তকৰণত ই সহায়ক হয়। পৰৱৰ্তী সময়ত এইবোৰৰ বিষয়ে গৱেষণা কৰি বহুতো প্ৰভাৱশালী ভাষা শিক্ষণ পদ্ধতিৰ উদ্ভাৱন তথা উন্নয়ন কৰাত ই সহায়ক হয়।

কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাই ভাষা দক্ষতাৰ বিকাশত শিকাৰুৰ অংশগ্ৰহণ আৰু প্ৰেৰণা লাভত অধিক গুৰুত্ব দিয়ে। ইয়াৰোপৰি কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত ভাষা শিক্ষণ সঁজুলিসমূহতো বাক্য চিনাক্তকৰণ আৰু স্বয়ংক্রিয় মূল্যায়ন ক্ষমতা অন্তর্ভুক্ত কৰা হয়। ইয়াৰ জৰিয়তে কথন দক্ষতাৰ অনুশীলন কৰাৰ লগতে উচ্চাৰণ, ব্যাকৰণ আৰু শব্দভাণ্ডাৰৰ ক্ষেত্রত তাৎক্ষণিক প্রতিক্রিয়া লাভ কৰিব পাৰি। পৰম্পৰাগত শ্ৰেণীকোঠাৰ বাহিৰত কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাৰ দ্বাৰা সঞ্চালিত উপকৰণৰ ব্যৱহাৰে শিকাৰুৰ ভাষা শিকাৰ গতিক স্বতন্ত্রতা প্রদান কৰাৰ লগতে শিকাৰুৰ ভাষা আহৰণক সাৱলীল তথা সঠিক ৰূপ প্ৰদান কৰে। স্বাভাৱিক ভাষা প্ৰক্ৰিয়াকৰণ (Natural Language Processing) আৰু যান্ত্রিক শিক্ষণৰ দৰে কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাৰ প্রযুক্তিয়ে দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত আমূল পৰিৱৰ্তন আনিছে। বৰ্তমান সময়ত ভাষা শিক্ষণৰ ক্ষেত্রত ব্যক্তিগত অভিমত প্রদান, স্বয়ংক্রিয় কথন চিনাক্তকৰণ আৰু মূল্যায়নৰ বাবে কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত বিভিন্ন উপকৰণৰ প্ৰয়োগ কৰা পৰিলক্ষিত হয়। দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাৰ মুখ্য অৰিহণা হৈছে শিকাৰুৰ ব্যক্তিগত আৱশ্যকতাৰ অনুৰূপে ব্যক্তিগত শিক্ষণ অভিজ্ঞতা প্রদান কৰাৰ ক্ষমতা। দ্বিতীয় ভাষা আহৰণৰ ক্ষেত্রত সঠিক উচ্চাৰণ এক বিৰাট প্ৰত্যাহ্বান। কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত স্বয়ংচালিত বাক্য চিনাক্তকৰণ ব্যৱস্থাই কথিত ভাষাটোৰ ব্যাখ্যা তথা মূল্যায়নৰ ক্ষেত্রত উল্লেখযোগ্য প্ৰগতি লাভ কৰিছে। এই প্ৰণালীয়ে উচ্চাৰণগত ভুল নির্ণয় কৰিব পাৰে, মতামত দিব পাৰে আৰু উচ্চাৰণৰ প্ৰশিক্ষণ দিব পাৰে। মৌখিক যোগাযোগৰ দক্ষতাৰ বাবে এই কৌশলে শিক্ষার্থীৰ অধিক নিখুঁত আৰু সাৱলীল উচ্চাৰণৰ বিকাশ সাধন কৰে। পৰম্পৰাগত ভাষা মূল্যায়ন প্ৰায়ে সময় সাপেক্ষ আৰু সীমিত পৰিসৰৰ হয়। কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত ভাষা শিক্ষণ সঁজুলিয়ে বস্তুনিষ্ঠ আৰু কাৰ্যক্ষম মূল্যায়ন পদ্ধতি প্রদান কৰে। উদাহৰণস্বৰূপে, কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাই লিখিত ৰূপ, ব্যাকৰণ, শব্দভাণ্ডাৰৰ ব্যৱহাৰ আৰু অন্যান্য দিশৰ ওপৰত মন্তব্য দিব পাৰে। ইয়াৰোপৰি কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাই কথ্যৰূপৰ শুদ্ধ আৰু দক্ষতাৰ স্তৰ মূল্যায়ন কৰি দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত গুৰুত্বপূর্ণ ভূমিকা পালন কৰে।

দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাৰ উপকৰণ ঃ

দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাৰ উপকৰণৰ প্ৰয়োগে শিকাৰুৰ ভাষা শিক্ষণ কৌশলপূর্ণ কৰি তোলাত অৰিহণা যোগায়। ই সময় সঞ্চয় আৰু ভাষাৰ খৰতকীয়া শিক্ষণত সহায়ক হোৱাৰ লগতে ব্যক্তিগত শিক্ষণ অভিজ্ঞতা আহৰণ আৰু অন্য সংস্কৃতিৰ জ্ঞান আহৰণত সহায়ক হয়। এই উপকৰণে যথাৰ্থ ৰূপত স্বয়ংক্রিয়ভাৱে পাঠ বা বক্তব্যৰ অনুবাদ কৰিব পৰা কিছুমান ছফ্‌ট্‌ৱেৰ সংলগ্ন কৰিব পাৰে। ই শিকাৰুৰ বাবে স্বকীয় পাঠ আৰু প্রতিক্রিয়া প্রদান কৰিব পৰা ভাষা শিক্ষণ প্ৰণালী তথা কোনো ভাষাত মৌলিক লিখনী সৃষ্টি কৰিব পৰা ভাষা উৎপাদন ব্যৱস্থা স্বৰূপ। সহজলভ্য ইন্টাৰনেট ব্যৱস্থাৰ লগতে স্মাৰ্ট ডিভাইচসমূহ সহজলব্ধ হোৱাৰ বাবে ভাষা শিক্ষণৰ বিভিন্ন কৌশল মানুহে অনায়াসে আহৰণ কৰিব পাৰে। সেয়ে কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাৰ উপকৰণসমূহ যথেষ্ট জনপ্ৰিয় হৈ পৰিছে। কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাৰ ভালেমান উপকৰণ আছে আৰু প্ৰত্যেকৰে কেতবোৰ নিজস্ব বৈশিষ্ট্য আছে। কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত ভাষা শিক্ষণৰ উপকৰণসমূহক মূলতঃ তিনিধৰণে বিভক্ত কৰি আলোচনা কৰিব পাৰি —

(ক) যন্ত্র-অনুবাদ উপকৰণ (Machine-Translation Tools) ঃ এই উপকৰণে কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাৰ এলগৰিদম ব্যৱহাৰ কৰি এটা ভাষাৰ পাঠ আন এটা ভাষালৈ স্বয়ংক্রিয়ভাৱে অনুবাদ কৰে। ই তাৎক্ষণিকভাৱে অনুবাদ কৰে বাবে চুটি বাক্য বা শব্দগুচ্ছৰ দ্ৰুত অনুবাদৰ ক্ষেত্রত এই উপকৰণসমূহ ব্যৱহাৰ কৰা হয়। এইবোৰে ভাষাগত বাধা আঁতৰাই আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় যোগাযোগ সহজ কৰি তোলে। উদাহৰণস্বৰূপে — Google Translate, Bing Translator, DeepL Translator, Yandex Translate আদি।

(খ) ভাষা শিক্ষণ ব্যৱস্থা (Language Tutoring Systems) ঃ এই উপকৰণে কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাৰ এলগৰিদম ব্যৱহাৰ কৰি ব্যক্তিগতভাৱে ভাষা শিক্ষা আৰু শিকাৰুৰ অগ্ৰগতিৰ তাৎক্ষণিক প্রতিক্রিয়া প্রদান কৰে। ব্যাকৰণ, শব্দভাণ্ডাৰ আৰু কথন দক্ষতাৰ বিকাশৰ বাবে শিকাৰুৰ দক্ষতা অনুসৰি পাঠ গঠন, অনুশীলনৰ ব্যৱস্থা কৰে। এইধৰণৰ বুদ্ধিমান ভাষা শিক্ষণ প্ৰণালী মোবাইল এপ, অনলাইন মাধ্যম বা স্বতন্ত্র ছফ্‌ট্‌ৱেৰত পোৱা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে—Duolingo, Rosetta Stone, Babbel, ELSA Speak, Praktika, Bussu আদি।

(গ) ভাষা উৎপাদন ব্যৱস্থা (Language Generation Systems) ঃ এই উপকৰণে কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাৰ এলগৰিদম ব্যৱহাৰ কৰি কিছুমান নির্দিষ্ট তথ্যৰ ভিত্তিত নতুন তথা মৌলিক পাঠ সৃষ্টি কৰে। এইবোৰে প্ৰবন্ধ, প্ৰতিবেদন, ব্লগ, পোষ্ট আদি লিখিব পাৰে। এইধৰণৰ উপকৰণ মোবাইল এপ, অনলাইন

মাধ্যম বা ছফট্‌ৱেৰত উপলব্ধ। উদাহৰণস্বৰূপে — OpenAI-ৰ দ্বাৰা বিকশিত GPT-3 আৰু GPT-4; Google Gemini, Claude, ChatGPT আদি।

ইয়াৰোপৰি যথেষ্ট সংখ্যক ভাষা আহৰণৰ উপকৰণ আছে। ভাষা শিক্ষণ, লিখন সহায়ক তথা উন্নীতকৰণৰ বাবে ব্যৱহৃত এপসমূহ হৈছে — Memrise, Talkpal, Gliglish, Langotalk, Tutorlily, Grammarly, Prowriting Aid, Natural Readers.com, Paragraph AI, Quizlet, Diffit আদি।

কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাৰ উপকৰণসমূহৰ সহজলভ্য ব্যৱহাৰ তথা সফল প্ৰয়োগে ভাষা আহৰণ ব্যৱস্থাত যথেষ্ট উন্নয়ন আনিছে। ভাষা শিক্ষণত কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাৰ প্ৰয়োগে লাভ আৰু লোকচান দুয়োটাই কৰিছে। ভাষা শিক্ষণত কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাৰ উপকৰণৰ ব্যৱহাৰৰ ক্ষেত্ৰত পৰিলক্ষিত হোৱা সুবিধাসমূহ হৈছে —

(ক) কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত উপকৰণে ভাষা শিক্ষণ দ্রুত আৰু সাৱলীল কৰাত সহায় কৰে।

(খ) কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত উপকৰণে শিকাৰুৰ অগ্ৰগতিৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি ব্যক্তিগত শিক্ষণ অভিজ্ঞতা প্ৰদান কৰে।

(গ) কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত ভাষা শিক্ষণৰ কেতবোৰ উপকৰণে একেলগে কেইবাটাও ভাষা শিকাত সহায় কৰে।

(ঘ) কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত উপকৰণসমূহ সহজে উপলব্ধ। ই অনলাইন ব্যৱস্থাৰ মাধ্যমেৰে যিকোনো স্থানৰ পৰা শিকাৰুক ভাষা শিক্ষণত সহায় কৰে।

(ঙ) এই উপকৰণসমূহ কম খৰচী হোৱা বাবে পৰম্পৰাগত শিক্ষা ব্যৱস্থাৰ উচিত বিকল্প হ'ব পাৰে।

কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাৰ উপকৰণসমূহৰ ব্যৱহাৰৰ ক্ষেত্ৰত কেতবোৰ অসুবিধাৰ সৃষ্টি হয়। সেইবোৰৰ হ'ল —

(ক) কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত উপকৰণসমূহৰ স্বাভাৱিক মানৱীয় যোগাযোগৰ অভাৱ পৰিলক্ষিত হয়।

(খ) কোনো এটা ভাষাৰ সাংস্কৃতিক আৰু প্ৰাসংগিক ভিন্নতাসমূহ বুজাত কঠিনতা আহি পৰে।

(গ) ভাষাৰ সৃষ্টিশীল বা মৌলিক পাঠ উৎপাদন কৰাৰ ক্ষমতা সীমিত হোৱা দেখা যায়।

(ঘ) মানৱ শিক্ষক এজনৰ দৰে ভুলৰ শুধৰণি কৰাত উপকৰণসমূহ অপাৰগ হ'ব পাৰে।

(ঙ) উপকৰণসমূহে প্ৰত্যেক শিকাৰুৰ ক্ষমতা অনুসৰি শিক্ষণীয় সমল প্ৰদানত অপাৰগ হোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়।

দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাৰ সাম্প্ৰতিক প্ৰয়োগ আৰু স্থিতি ঃ

সাম্প্ৰতিক সময়ত দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাই এক গুৰুত্বপূৰ্ণ স্থান দখল কৰিছে। ব্যক্তিগত শিক্ষণ, মূল্যায়ন, অনুশীলন, তাৎক্ষণিক প্ৰতিক্ৰিয়া প্ৰদান সকলো দিশতে কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাই ভাষা আহৰণক সহজলভ্য কৰি তুলিছে। কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাৰ সাম্প্ৰতিক সময়ত হোৱা কেতবোৰ প্ৰয়োগ এনেধৰণৰ —

(ক) কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তা আধাৰিত ভাষিক এপ (App)-ৰ প্ৰয়োগ ঃ কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত ভাষিক এপসমূহে যান্ত্ৰিক শিক্ষণ (Machine Learning) আৰু স্বাভাৱিক ভাষা প্ৰক্ৰিয়াকৰণ (Natural Language Processing)-ৰ সহায়ত শিকাৰুক ব্যক্তিগত শিক্ষণ অভিজ্ঞতা প্ৰদান কৰে। এই এপৰ সহায়ত শিকাৰুৰ কাৰ্যকাৰিতা বিশ্লেষণ কৰি নিৰ্দিষ্ট প্ৰয়োজন আৰু অগ্ৰগতিৰ ভিত্তিত যথোপযুক্ত অনুশীলন, শিক্ষণ সামগ্ৰী আৰু প্ৰতিক্ৰিয়া প্ৰদান কৰে। সাধাৰণতে কথন চিনাক্তকৰণ, শব্দাৱলী গঠনৰ অভ্যাস, ব্যাকৰণৰ অভ্যাস আৰু শুনি বুজা কাৰ্য্য, তাৎক্ষণিক প্ৰতিক্ৰিয়া আদি সুবিধা ইয়াৰ অন্তৰ্গত। ইতিপূৰ্বে উল্লিখিত কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তা আধাৰিত এনে ভাষিক শিক্ষণ এপসমূহ হৈছে Duolingo, Babbel, Lingua Learn, and Rosetta Stone ইত্যাদি।

(খ) বুদ্ধিমান শিকন প্ৰণালী (Intelligent Tutoring System) আৰু ভাৰ্চুৱেল সহায়ক (Virtual Agents) ঃ কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত এই শিক্ষণ ব্যৱস্থাই শিকাৰুৰ সামৰ্থ্যৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি দ্বিতীয় ভাষাৰ অনুশীলন কৰাত ব্যক্তিগত নিৰ্দেশাৱলী আৰু সহায় আগবঢ়ায়। এই ব্যৱস্থাত শিকাৰুৰ সৈতে কথনৰ জৰিয়তে পাৰস্পৰিক যোগাযোগ কৰা, অভ্যাস আৰু কাৰ্যৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি তাৎক্ষণিক প্ৰতিক্ৰিয়া প্ৰদান কৰাৰ লগতে শিকাৰুৰ প্ৰশ্নৰ উত্তৰ তথা ব্যাখ্যা আগবঢ়োৱা হয়। শিকাৰুৰ প্ৰদৰ্শন আৰু পছন্দৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি শিকণ কৌশল পৰিৱৰ্তন কৰিব পৰা যায়। বুদ্ধিমান শিকন প্ৰণালীৰ উদাহৰণ - Carnegie আৰু ALEKS আৰু ভাৰ্চুৱেল সহায়কৰ উদাহৰণ — Alexa, Siri আদি। এইবোৰে দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত শিকাৰুক কথন আৰু শ্ৰৱণ প্ৰক্ৰিয়াত সহায় কৰে।

(গ) ভাষাৰ অনুবাদ আৰু উৎপাদন ঃ কৃত্রিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত ভাষা অনুবাদ ব্যৱস্থাই স্বয়ংক্ৰিয়ভাৱে পাঠ বা কথন একোটাক এটা ভাষাৰ পৰা আন এটা ভাষালৈ নিব পাৰে। সঠিক আৰু সাৱলীল ৰূপত অনুবাদ কৰিবৰ বাবে এই ব্যৱস্থাই ভাষিক তথ্যৰ গঠন বিশ্লেষণ কৰে। ভাষা উৎপাদন প্ৰণালীয়ে যিকোনো ভাষাৰ

সুসংহত আৰু প্ৰাসংগিক ৰূপত বাক্য বা দফা প্ৰস্তুত কৰিব পাৰে। এই ব্যৱস্থাৰ জৰিয়তে শিকাৰুৱে ব্যাকৰণ, শব্দভাণ্ডাৰ আৰু জতুৱা শব্দৰ বোধ বৃদ্ধি কৰিব পাৰে।

(ঘ) চাটবট (Chatbot) আৰু কথোপকথনৰ নমুনা ঃ চাটবট আৰু বাস্তৱিক কথোপকথনৰ নমুনাসমূহে স্থানীয় বক্তা বা ভাৰ্চুৱেল সহায়কৰ দৰে কথোপকথন অনুকৰণ কৰি শিকাৰুক কথন আৰু শ্ৰৱণ দক্ষতাৰ বিকাশৰ সুবিধা প্ৰদান কৰে। এই ব্যৱস্থাই লিখিত পাঠ বা শব্দ আধাৰিত কথোপকথনৰ লগত সংলগ্ন হৈ শিকাৰুৰ প্ৰশ্নৰ উত্তৰ দিয়ে। উচ্চাৰণ, ব্যাকৰণ আৰু শব্দভাণ্ডাৰৰ প্ৰয়োগ সম্বন্ধে মন্তব্য দিয়ে। এইবোৰে দ্বিতীয় ভাষা আহৰণ প্ৰক্ৰিয়াত আন্তঃক্ৰিয়ামূলক পৰিৱেশ সৃষ্টি কৰি শিক্ষাৰ্থীৰ কথোপকথনৰ দক্ষতা বিকাশত ভূমিকা গ্ৰহণ কৰে। উদাহৰণস্বৰূপে— ৰেপ্লিকা (Replika) মিটছুকু (Mitsuku) আৰু চাটজিপিটি (Chat GPT)।

(ঙ) স্বয়ংক্ৰিয় বাক চিনাক্তকৰণ (Automatic speech recognition) আৰু উচ্চাৰণ বিশ্লেষণ উপকৰণ ঃ স্বয়ংক্ৰিয় বাক চিনাক্তকৰণ আৰু উচ্চাৰণ বিশ্লেষণ উপকৰণে শিকাৰুৰ উচ্চাৰণৰ মূল্যায়ন আৰু প্ৰতিক্ৰিয়া প্ৰদানৰ বাবে কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ প্ৰয়োগ কৰে। এই উপকৰণে শিকাৰুৰ কথনৰ গঠন বিশ্লেষণ কৰে আৰু স্থানীয় ভাষীৰ উচ্চাৰণৰ সৈতে তাৰ তুলনা কৰি শুধৰণিৰ প্ৰয়োজন থকা দিশবোৰ চিনাক্ত কৰে। লগতে শিকাৰুৰ উচ্চাৰণ কৌশল উন্নত কৰাৰ বাবে পৰামৰ্শ দিয়ে। কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত স্বয়ংক্ৰিয় বাক চিনাক্তকৰণ আৰু উচ্চাৰণ বিশ্লেষণ উপকৰণ কেতবোৰ হ'ল ELSA Speak, SpeechAce আৰু Pronunciation Power ইত্যাদি।

গতিকে দ্বিতীয় ভাষা আহৰণৰ ফল আৰু শিক্ষণ অভিজ্ঞতা বৃদ্ধিৰ ক্ষেত্ৰত সম্প্ৰতি ব্যাপক ৰূপত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ প্ৰয়োগ হ'বলৈ ধৰিছে। কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই ব্যক্তিগত শিক্ষণ, তাৎক্ষণিক প্ৰতিক্ৰিয়া প্ৰদান, স্বাভাৱিক ভাষা প্ৰক্ৰিয়াকৰণ আদিৰ জৰিয়তে যথোপযোগী শিক্ষণ পৰিৱেশৰ সৃষ্টিৰে ভাষা আহৰণ ত্বৰান্বিত কৰিছে।

দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ ইতিবাচক প্ৰভাৱ ঃ

দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ সংযোগে ভাষিক ক্ষেত্ৰখনত বৈপ্লৱিকতাৰ সূচনা কৰিছে। কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ বিভিন্ন উপকৰণৰ সহায়ত দ্বিতীয় ভাষা আহৰণ বহু পৰিমাণে সহজসাধ্য হৈ পৰিছে। ই শিক্ষক আৰু শিকাৰু উভয়ৰে বাবে উপকাৰী হৈ উঠিছে। শিকাৰুৱে দ্ৰুতভাৱে ভাষা আহৰণ কৰা আৰু শিক্ষকসকলৰ পাঠ্যবস্তু শিকাৰুৰ অনুপাতে প্ৰস্তুত কৰাত সহায়ক হৈছে। কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই দ্বিতীয় ভাষা আহৰণৰ ক্ষেত্ৰত কেতবোৰ ইতিবাচক প্ৰভাৱ পেলোৱা পৰিলক্ষিত হয়। সেইবোৰ হ'ল —

(ক) দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই শিকাৰুৰ প্ৰদৰ্শন বিশ্লেষণ কৰি, অগ্ৰগতিৰ অনুসৰণ কৰি আৰু ভুল-শুদ্ধ পৰ্যালোচনা কৰি ব্যক্তিগত প্ৰয়োজন অনুসৰি শিক্ষণ সামগ্ৰী প্ৰদান কৰে। শিকাৰুৰ সাৱলীলতা আৰু শিক্ষণ প্ৰণালীৰ প্ৰতি দৃষ্টি ৰাখি অনুশীলনৰ ব্যৱস্থা কৰে।

(খ) দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ উপকৰণসমূহে শিকাৰুৰ উচ্চাৰণ আৰু প্ৰদৰ্শন সম্পৰ্কে তাৎক্ষণিক প্ৰতিক্ৰিয়া প্ৰদান কৰে। এনে তাৎক্ষণিক প্ৰতিক্ৰিয়াই শিকাৰুৰ ভুল চিনাক্তকৰণ আৰু শুধৰণিৰ সুবিধা প্ৰদান কৰি ভাষা শিক্ষণক প্ৰভাৱশালী কৰে।

(গ) কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই বাস্তৱিক ভাষা শিক্ষণ পৰিৱেশৰ অনুকৰণেৰে কৃত্ৰিম ভাষা শিক্ষণৰ বাতাবৰণ সৃষ্টি কৰি শিকাৰুক ভাষিক দক্ষতাৰ অনুশীলন কৰাৰ সুবিধা প্ৰদান কৰে। এনে কৃত্ৰিম বাতাবৰণে শিকাৰুক যথাৰ্থ সাংস্কৃতিক অভিজ্ঞতা প্ৰদান কৰি সেই প্ৰসংগত ভাষা শিক্ষণ দক্ষতাৰ বিকাশ সাধন কৰে।

(ঘ) কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত ভাষা শিক্ষণ ব্যৱস্থাসমূহে পুৰস্কাৰৰ ব্যৱস্থা কৰি ভাষা শিক্ষণ সক্ৰিয় আৰু প্ৰেৰণাদায়ক কৰি তোলে। ক্ৰীড়াত্মক বাতাবৰণে শিকাৰুৰ ভাষা শিক্ষণৰ প্ৰেৰণা বৃদ্ধিত আৰু ভাষা জ্ঞান দৃঢ় কৰাত সহায় কৰে।

(ঙ) কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই কোনো এক ভাষাৰ জতুৱা ঠাঁচযুক্ত অভিব্যক্তি, ভিন্নাৰ্থবাচক শব্দ, সাংস্কৃতিক কালিকা তথা ভাষাত ব্যৱহৃত প্ৰসংগৰ বিশ্লেষণ কৰিব পাৰে। ই সঠিক ৰূপত অনুবাদ আৰু প্ৰসংগ অনুসাৰে বাক বিশ্লেষণত তথা ভাষা ব্যৱহাৰত সহায় কৰে। ফলত দ্বিতীয় ভাষা আহৰণ অধিক ফলপ্ৰসূ হৈ পৰে।

(চ) কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই শিকাৰুৰ প্ৰদৰ্শনৰ তথ্য বিশ্লেষণ কৰি অনুকূল পাঠ্যক্ৰম প্ৰস্তুত কৰাৰ লগতে ব্যক্তিগত নিৰ্দেশাৱলী প্ৰদান কৰে। ফলত শিকাৰুৱে নিজৰ নিৰ্দিষ্ট লক্ষ্য আৰু শিক্ষণ শৈলীৰ ওপৰত মনোযোগ কেন্দ্ৰীভূত কৰি ভাষা শিক্ষণৰ অনুভৱক অধিক প্ৰভাৱশালী আৰু আনন্দদায়ক কৰি তোলে।

(ছ) কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত উপকৰণৰ সহায়ত নিৰ্দিষ্ট ভাষা শিক্ষণৰ কাৰ্য সমাপন কৰি শিক্ষকৰ সময় সঞ্চয়ৰ লগতে শিকাৰুৱে দ্ৰুত আৰু সহজ ৰূপত ভাষা শিক্ষণৰ ব্যৱস্থা কৰিব পাৰে। যিকোনো ঠাইতে সহজে উপলব্ধ হোৱাটো ইয়াৰ এক ইতিবাচক দিশ।

(জ) পৰম্পৰাগত শিক্ষা পদ্ধতিৰ লগত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ উপকৰণৰ সংযোগে শিকাৰুৰ বাবে অধিক প্ৰভাৱশালী শিক্ষণ পৰিবেশ গঠন কৰি শিক্ষণীয় ফল উন্নত কৰে।

(ঝ) মূল্যায়নত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ সংযোগে শিকাৰুক ভাষা দক্ষতাৰ সঠিক আৰু বিশ্বাসযোগ্য ফলাফল প্ৰদান কৰে। পক্ষপাতহীন ফলাফলে শিকাৰুক উৎসাহিত কৰে।

দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ নেতিবাচক প্ৰভাৱ ঃ

দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই সদৰ্থক প্ৰভাৱ পেলোৱাৰ লগতে শ্ৰেণীকোঠাৰ বাহিৰত স্বকীয় শিক্ষণকো উৎসাহিত কৰে। অৱশ্যে সকলো বস্তুৰে সদৰ্থক দিশৰ লগতে নঞৰ্থক দিশ থকাৰ দৰে ভাষা আহৰণৰ ক্ষেত্ৰতো কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ প্ৰয়োগৰ কিছু নেতিবাচক প্ৰভাৱ পৰিলক্ষিত হয়। দ্বিতীয় ভাষা আহৰণৰ ক্ষেত্ৰত পৰিলক্ষিত হোৱা কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ নেতিবাচক প্ৰভাৱসমূহ হৈছে —

(ক) কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই স্বাভাৱিক ভাষা একোটা সঠিক ৰূপত বুজাত আৰু সৃষ্টি কৰাত সংঘাতৰ সন্মুখীন হয়। ফলত অস্বাভাৱিক বা ভুল প্ৰতিক্ৰিয়া সৃষ্টি কৰি শিকাৰুৰ প্ৰকৃত ভাষা দক্ষতা বিকাশত বাধাৰ সৃষ্টি কৰিব পাৰে।

(খ) কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত ভাষা শিক্ষণ ব্যৱস্থাত শিক্ষণৰ ব্যক্তিগতকৰণ কৰিবলৈ শিকাৰুৰ কিছুমান ব্যক্তিগত তথ্য আৰু ৰেকৰ্ডৰ প্ৰয়োজন হয়। ফলত তথ্যৰ গোপনীয়তা আৰু সুৰক্ষাৰ প্ৰতি আশংকাৰ সৃষ্টি হয়, লগতে স্পৰ্শকাতৰ তথ্যৰ অপব্যৱহাৰ হোৱাৰ সম্ভাৱনা থাকে।

(গ) কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত ভাষা শিক্ষণত মানুহৰ সৈতে মানুহৰ পাৰস্পৰিক যোগাযোগত থকা আৱেগিক সম্বন্ধৰ অভাৱ পৰিলক্ষিত হয়। ই শিকাৰুৰ প্ৰেৰণা, আগ্ৰহ, অংশগ্ৰহণৰ লগতে সামগ্ৰিক ভাষা আহৰণ অভিজ্ঞতাত বিৰূপ প্ৰভাৱ পেলায়।

(ঘ) কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই অজানিতে ভাষা শিক্ষণৰ সামগ্ৰী বা প্ৰতিক্ৰিয়াত পক্ষপাতিত্ব কৰাৰ লগতে কুসংস্কাৰ, অন্ধবিশ্বাস আৰু সাংস্কৃতিক সংবেদনহীনতাক উৎসাহিত কৰিব পাৰে। কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ ব্যৱস্থা নিৰপেক্ষ আৰু সাংস্কৃতিক ৰূপত সংবেদনশীল হোৱাৰ বাবে প্ৰশিক্ষণৰ প্ৰয়োজন। অন্যথা ই নেতিবাচক প্ৰভাৱ পেলাব পাৰে।

(ঙ) দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ অত্যধিক ব্যৱহাৰে শৈক্ষিক নিয়মৰ প্ৰতি অৱহেলা, ভাষা শিক্ষণত প্ৰয়োগ হ'বলগীয়া পদ্ধতিসমূহৰ প্ৰতি আওকাণ আৰু শিক্ষকৰ ভূমিকাক উপেক্ষা কৰা পৰিলক্ষিত হয়। এনে অৱহেলাই ভাষা আহৰণত নঞৰ্থক প্ৰভাৱ পেলাব পাৰে।

(চ) শিকাৰুৱে অধিক পৰিমাণে যান্ত্ৰিক মূল্যায়নৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰিলে কেতবোৰ সমস্যাৰ সন্মুখীন হোৱাৰ আশংকা থাকে। শিকাৰুৱে নিৰ্ধাৰিত নম্বৰ লাভ কৰিব নোৱাৰিলে নিৰাশ হোৱাৰ লগতে আত্মপ্ৰত্যয় হেৰুৱায়। ইয়াৰোপৰি মূল্যায়ন, উচ্চাৰণ আৰু ব্যাকৰণৰ শুধৰণিৰ দৰে যন্ত্ৰ-নিয়ন্ত্ৰিত অভ্যাস গঠনে নিষ্ক্ৰিয় শিক্ষাক উৎসাহিত কৰি মস্তিষ্কৰ সক্ৰিয় নিৰীক্ষণত বাধাৰ সৃষ্টি কৰিব পাৰে। ই শিকাৰুৰ উৎসাহ কম কৰাৰ লগতে শিক্ষণ প্ৰক্ৰিয়াটোক নেতিবাচকভাৱে প্ৰভাৱিত কৰিব। ফলত ভাষা আহৰণ বাধাগ্ৰস্ত হ'ব।

(ছ) কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ প্ৰযুক্তিৰ সহায়ত প্ৰতিনিয়ত ভাষাৰ সমলসমূহৰ নবীকৰণ কৰা হয়। শিক্ষকৰ পৰামৰ্শ অবিহনে শিকাৰুৱে অত্যধিক সমলেৰে ভাৰাক্ৰান্ত হোৱাৰ লগতে নিজস্ব স্তৰ অনুসৰি শিক্ষণ সমল নিৰ্ণয় কৰাতো অপাৰগ হ'ব। যিহেতু ভাষাৰ জ্ঞান আহৰণ এক স্বাভাৱিক ধৰণে হয়, ইয়াক বাহ্যিক শিক্ষণৰদ্বাৰা পৰিবৰ্তন কৰিব নোৱাৰি। সমলসমূহৰ আয়ত্তকৰণৰ দ্বাৰাইহে দ্বিতীয় ভাষা আহৰণ সফল হয়। এইক্ষেত্ৰত শিক্ষক বা বিজ্ঞজনৰ পৰামৰ্শ প্ৰয়োজনীয়, অন্যথা ভাষা শিক্ষণত বিৰূপ প্ৰভাৱ পৰিব পাৰে।

দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ ভৱিষ্যতেপ্ৰয়োগৰ পৰামৰ্শ ঃ

কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ যুগত ছফ্‌ট্‌ৱেৰৰ মাধ্যমেৰে ভাষা আহৰণ কৰাটো বাস্তৱসন্মত। ই প্ৰত্যেক ব্যক্তিৰ বিশেষত্ব আৰু আৱশ্যকতা অনুসৰি ব্যক্তিগত শিক্ষণ প্ৰদান কৰে। যন্ত্ৰপ্ৰধান শিক্ষা ব্যৱস্থাত উপযুক্তভাৱে যন্ত্ৰ সঞ্চালন নকৰাৰ ফলত সমস্যাৰো সৃষ্টি হয়। শিকাৰুৰ ক্ষমতা আহৰণৰ দিশটোক প্ৰাধান্য দিয়া বাবে জ্ঞান আহৰণৰ দিশটো উপেক্ষিত হোৱাৰ সম্ভাৱনা থাকে। এনেবোৰ কথাৰ প্ৰতি গুৰুত্ব নিবেশ কৰি দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ ভৱিষ্যতৰ সম্ভাব্য প্ৰয়োগৰ ক্ষেত্ৰত ল'বলগীয়া কেতবোৰ পৰামৰ্শ আগবঢ়োৱা হ'ল —

(ক) শিক্ষকৰ দিগ্‌দৰ্শনৰ ভূমিকাক গুৰুত্ব দিয়াৰ লগতে শিকাৰুৰ স্বকীয় শিক্ষণ ক্ষমতাৰ বিকাশত গুৰুত্ব দিব লাগিব।

(খ) কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰে মূল্যায়ন কৰোঁতে কেৱল প্ৰদৰ্শনৰ ভিত্তিত পাৰদৰ্শিতাৰ মূল্যায়ন কৰাৰ সলনি শিকাৰুৰ চিন্তা-ভাৱনা, দৃষ্টিকোণ, প্ৰমূল্য আদি দিশসমূহো ব্যাপক ৰূপত বিচাৰ কৰিব লাগিব।

(গ) বোধগম্য সমল বৃদ্ধিৰ বাবে পাৰস্পৰিক ক্ৰিয়া-কলাপ, শ্ৰেণীকোঠাৰ অনুকূল পৰিৱেশ সৃষ্টি, বন্ধুৰ সৈতে যোগাযোগ

আৱশ্যক। এই আন্তঃক্ৰিয়াই দ্বিতীয় ভাষা আহৰণক উৎসাহিত কৰিব।

(ঘ) ভৱিষ্যতে কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ উন্নতিৰ ক্ষেত্ৰত স্বাভাৱিক ভাষাৰ বোধগম্যতা আৰু বিশুদ্ধতাক গুৰুত্ব দিব লাগিব। তথ্যৰ সুৰক্ষা আৰু গোপনীয়তাৰ প্ৰতি সজাগ হ'ব লাগিব। পক্ষপাতিত্ব আৰু সাংস্কৃতিক সংবেদনহীনতাক হ্ৰাস কৰিব লাগিব।

(ঙ) কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ সীমাবদ্ধতাবোৰ আঁতৰাবলৈ হ'লে কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ প্ৰযুক্তি বিদ্যাক মানুহৰ সৈতে সংযোগ কৰিব লাগিব। মানুহৰ পাৰস্পৰিক যোগাযোগত থকা আবেগিক সম্পৰ্কৰ দৰে কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত প্ৰযুক্তিতো আৱেগক প্ৰাধান্য দিব লাগিব। এনে দৃষ্টিভংগীয়ে ভাষা শিক্ষণৰ ফল বৃদ্ধি কৰাৰ লগতে কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তা আৰু মানৱ শিক্ষক উভয়ৰ সমন্বয়ে শিকাৰুক লাভান্বিত কৰিব।

(চ) দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত অহা জটিলতাবোৰ দাঙি ধৰাৰ বাবে গৱেষক, ভাষাবিদ্, শিক্ষক, কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ উদ্ভাৱকৰ মাজৰ সমন্বয় সাধনেৰে আন্তঃ বিষয়গত গৱেষণাক উৎসাহিত কৰিব লাগিব।

(ছ) দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ প্ৰয়োগৰ ক্ষেত্ৰত স্পষ্ট নীতি-নিৰ্দেশনা থকাটো অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ। এই নিৰ্দেশনাই তথ্যৰ দায়বদ্ধতা আৰু ন্যায়সংগত ব্যৱহাৰ সুনিশ্চিত কৰিব লাগিব। নৈতিক ব্যৱহাৰক কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ বিকাশত একীভূত কৰিব লাগিব।

(জ) কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ ব্যৱস্থাক বিশ্বাস কৰিবলৈ স্বচ্ছতা অতি আৱশ্যক। কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ উপকৰণসমূহৰ ব্যৱহাৰত স্বচ্ছতা থাকিব লাগিব। কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই লাভ কৰা ব্যক্তিগত তথ্যসমূহৰ কিদৰে প্ৰয়োগ কৰে সেই বিষয়ে শিক্ষক আৰু শিকাৰু উভয়ে জ্ঞাত হ'ব লাগিব।

সিদ্ধান্ত ঃ

দ্বিতীয় ভাষা আহৰণৰ ক্ষেত্ৰত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ সংযোগে ভাষা আহৰণ ব্যৱস্থাক বহু দূৰ আগবঢ়াই নিছে। দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ উপকৰণসমূহে যথেষ্ট সহায় কৰে। অৱশ্যে ইতিবাচক প্ৰভাৱৰ সমান্তৰালভাৱে এইবোৰৰ কিছু নেতিবাচক প্ৰভাৱো পৰিলক্ষিত হয়। দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত থকা সীমাবদ্ধতাবোৰ আঁতৰালে ভৱিষ্যতে কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাই ভাষা আহৰণৰ বিভিন্ন দিশ প্ৰশস্ত কৰিব। এই প্ৰসংগতে এফেক্টিভ কম্পিউটিং (Affective Computing)ৰ কথা উত্থাপন কৰিব পাৰি। ইয়াৰ মূল লক্ষ্য হৈছে কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ ব্যৱস্থাসমূহত আৱেগিক বুদ্ধিমত্তাৰ অন্তৰ্ভুক্তিৰে শিকাৰুৰ আৱেগিক অৱস্থা ধৰা পেলোৱাৰ লগতে তাৰ প্ৰতি সঁহাৰি জনোৱা। তদুপৰি বিভিন্ন কৌশল প্ৰয়োগ কৰি বাস্তৱিক ভাষা শিক্ষণ পৰিৱেশৰ অনুকৰণেৰে শিকাৰুৰ বাবে পাৰস্পৰিক যোগাযোগৰ বাতাবৰণ সৃষ্টি কৰাত ভাষা আহৰণ উন্নত হয়। মূল্যায়নত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাক সংযুক্ত কৰিলে ভাষা দক্ষতাৰ ক্ষেত্ৰত সঠিক আৰু বিশ্বাসযোগ্য তথ্য লাভ কৰিব পাৰিব, অৱশ্যে ইয়াৰ স্বচ্ছতাৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰিব লাগিব। ইয়াৰ ফলত শিকাৰুৰ ব্যক্তিগত অভিমত প্ৰদান আৰু অগ্ৰগতিৰ দিগ্‌দৰ্শন কৰাত সহজ হ'ব। মুঠৰ ওপৰত ক'ব পাৰি ভাষা শিক্ষণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ একীকৰণে এক ব্যাপক পৰিৱৰ্তন অনাৰ ক্ষমতা ধাৰণ কৰে। মানৱৰ নিৰ্দেশনা আৰু কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ মাজৰ ভাৰসাম্য ৰক্ষাত গুৰুত্ব প্ৰদান কৰাৰ লগতে শিকাৰুৰে আৱশ্যকীয় মানৱীয় সংযোগ আৰু সহায় পোৱাটো নিশ্চিত কৰিব লাগে। দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ বৰ্তমান প্ৰয়োগৰ লগতে ভৱিষ্যতৰ সম্ভাৱনীয়তাৰ ওপৰতো দৃষ্টি নিক্ষেপ কৰিবলগীয়া। ইয়াৰোপৰি ভাষা আহৰণৰ দীৰ্ঘকালীন প্ৰভাৱৰ লগতে ভাষা দক্ষতাৰ বিকাশ তথা শিক্ষাগত ফলশ্ৰুতিত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাযুক্ত ব্যৱস্থাসমূহৰ গৱেষণাৰ প্ৰয়োজন।

উপসংহাৰ ঃ

ভাষা শিক্ষণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ প্ৰয়োগৰ দিশটো বৰ্তমানেও বিকাশশীল অৱস্থাত আছে। গৱেষক আৰু উদ্ভাৱকসকল কম্পিউটাৰ বিশেষজ্ঞ হোৱা হেতুকে ব্যৱস্থাটোক অধিক উন্নত দেখুৱাবলৈ প্ৰযুক্তিৰ বিকাশৰ দিশটোত অধিক মনোনিবেশ কৰে। তেওঁলোক মানৱ বুদ্ধিৰ উৰ্ধত গৈ প্ৰযুক্তিৰ ব্যৱহাৰেৰে শিক্ষাৰ পৰিৱৰ্তন কৰাতে সীমাবদ্ধ। সেয়ে প্ৰায়োগিক দিশত শিক্ষাশাস্ত্ৰ, ভাষাবিজ্ঞান, মনোবিজ্ঞান আৰু অন্যান্য সম্বন্ধিত বিষয়ৰ অনুসন্ধান আৰু প্ৰয়োজনীয়তাক অস্পষ্ট কৰে। শৈক্ষিক নিয়মৰ অৱহেলা, ভাষা শিক্ষণত ব্যৱহৃত নীতি তথা পদ্ধতিৰ আওকাণ, শিক্ষকৰ ভূমিকাক অস্বীকাৰ কৰা পৰিলক্ষিত হয়। দ্বিতীয় ভাষা আহৰণৰ ক্ষেত্ৰত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ দ্বাৰা লাভান্বিত হ'বলৈ কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ বিশেষজ্ঞ, ভাষাশিক্ষক, গৱেষকৰ মাজত সহযোগ আৰু ভৱিষ্যতৰ গৱেষণা অপৰিহাৰ্য। ইয়াৰ সীমাবদ্ধতা তথা প্ৰত্যাহ্বানসমূহ ফঁহিয়াই চাই কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তা আৰু মানৱ নিৰ্দেশনাৰ ভাৰসাম্য ৰক্ষা কৰাটো অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ। সহযোগমূলক অনুসন্ধান আৰু বিকাশৰ মাধ্যমত দ্বিতীয় ভাষা আহৰণত কৃত্ৰিম বুদ্ধিমত্তাৰ প্ৰয়োগেৰে ভাষা শিক্ষণ ফলপ্ৰসূ হ'ব। ❑

অন্ত্যটীকা ঃ
Russell, Stuart, and Peter Norvig. *Artificial Intelligence: A Modern Approach.* 4th ed., Pearson, 2021.
Rich, Elaine, and Kevin Knight. *Artificial Intelligence*. McGraw-Hill, 2009.
McCarthy, John. "A Proposal for the Dartmouth Summer Research Project on Artificial Intelligence." 1956.

প্ৰসংগ-সূত্ৰ ঃ
কোঁৱৰ, অৰ্পণা। *অসমীয়া ভাষাৰ শিকন কৌশল।* বনলতা।২০২৩
দত্তবৰুৱা, ফণীন্দ্ৰ নাৰায়ণ। *প্ৰয়োগ ভাষা-বিজ্ঞানৰ ৰূপৰেখা।* বিশাল প্ৰকাশন। ২০২২
ফুকন, মণি মঞ্জুৰী। *ভাষা আৰু পাঠ্যক্ৰমৰ কাৰ্যসূচী।* মণি-মাণিক প্ৰকাশ। ২০২২
ভূএঞা, নয়নমণি। *ভাষা আহৰণ।* পূৰ্বায়ণ। ২০১৮
শৰ্মা, মদন। *অসমীয়া ভাষা শিক্ষণ পদ্ধতি।* ষ্টুডেণ্টচ্‌ ষ্টʼৰচ্‌। ২০২১
Anwar, Quratulain, et al. "Using Artificial Intelligence to Enhance Language Acquisition in àßducational Settings." *Dialogue Social Science Review*, vol. 3, no. 8, 2025, pp. 1–9.
Ellis, Rod. *The Study of Second Language Acquisition.* Oxford University Press, 1994.
Li, Yuxuan. "Study on the Role and Influence of AI in Personalized Learning for Second Language Acquisition." *Journal of Education, Humanities and Social Sciences*, vol. 38, 2024, pp. 125–131.
McCarthy, John. "A Proposal for the Dartmouth Summer Research Project on Artificial Intelligence." 1956.
Patnaik, Sudhir Kumar, et al. "AI and Second Language Acquisition in Multilingual Scenarios."+ *Journal of Information Systems Engineering and Management*, vol. 10, 2025.
Rich, Elaine, and Kevin Knight. *Artificial Intelligence*. McGraw-Hill, 2009.
Roxana Rebolledo Font de la Vall et al. "Exploring the Benefits and Challenges of AI-Language Learning Tools.'' *International Journal of Social Sciences and Humanities Invention*, vol. 10, 2022, pp.7569–7576.
Russell, Stuart, and Peter Norvig. *Artificial Intelligence: A Modern Approach.* 4th ed., Pearson, 2021.
Zhang, Zirui. "Advancements and Challenges in AI-Driven Language Technologies: From Natural Language Processing to Language Acquisition." *Applied and Computational àßngineering*, vol. 57, 2024, pp. 146–152.

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

বিহুগীতত প্ৰতিফলিত অসমীয়া মানুহৰ পৰম্পৰাগত কৃষি জীৱন-প্ৰণালী

কাকলি কলিতা

গৱেষক ছাত্ৰী, অসমীয়া বিভাগ
মাজুলী সাংস্কৃতিক বিশ্ববিদ্যালয়
মাজুলী-৭৮৫১০৪
৯৮৬৪৯৭৮৮০৩
kakolisaikiakalita@gmail.com

ড° পংকজ্যোতি বৰা

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া
বিভাগ মাজুলী সাংস্কৃতিক
বিশ্ববিদ্যালয়, মাজুলী-৭৮৫১০৪
৯৭০৭৬৫৯৯৯৮
Pankajborah554@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ

ত্ৰয়োদশ শতিকাত ব্ৰহ্মপুত্ৰ উপত্যকাত চাওলুং চ্যুকাফাই ৰাজ্য স্থাপন কৰাৰ পিছত অসম স্থাপিত হয় আৰু অসমীয়া সংস্কৃতিৰ জন্ম হয়। অসমীয়া সংস্কৃতি আখ্যাৰে চিনাকি দিয়াৰ কেইবাহাজাৰ বছৰৰ পূৰ্বৰ পৰাই অসমীয়া সংস্কৃতিৰ ঘাই শিপাডাল গজিবলৈ আৰম্ভ কৰিছিল। কালক্ৰমত এই শিপাডালে বহুতো জাতি জনগোষ্ঠীৰ সাংস্কৃতিক সমাহাৰত এক বৃহত্তৰ অসমীয়া সংস্কৃতি ৰূপে পৰিগণিত হয়। এই অসমীয়া সংস্কৃতিৰে এটি মূল্যবান সম্পদ হ'ল বিহু। বিহু উৎসৱে অসমীয়াৰ জাতীয়ত্ব আৰু জাতীয় ঐতিহ্যৰ স্বাক্ষৰ বহন কৰি আহিছে। আৰ্য্য-অনাৰ্য্য, অষ্ট্ৰিক-মংগোলীয়, আলপাইন-দ্ৰাবিড় সকলো সংস্কৃতিৰ উপাদানেৰে বিহু সংস্কৃতি গঠিত। বিহু মূলতে গাঁওমুখী কৃষি উৎসৱ। কুৰি শতিকাৰ আগলৈকে বিহু গোৱা আৰু বিহু নচাটো এচামৰ মতে অশ্লীল বুলি পৰিগণিত আছিল, কিন্তু আজিকালি এই ধাৰণা নাই। বৰ্তমানৰ সমাজখন নগৰমুখী হৈছে, বিহুৱে গছতল, পথাৰ আৰু নৈৰ পাৰ এৰি নগৰীয়া মঞ্চত উঠিছে। এইটো স্বীকাৰ কৰিবলগীয়া যে বিহু উৎসৱৰ নামতে ঢোল, পেঁপা, গগনাই মঞ্চত ঠাই পাইছে। বিহু উৎসৱৰ বহুতো সমল হেৰাই যাব ধৰিছে যদিও পুৰণিকলীয়া বিহুনামত অসমীয়া চহা জীৱনৰ বহু কথা ঠাহ খাই আছে। অসমীয়া কৃষিজীৱী সমাজৰ লোকসকলৰ মুখেৰে নিগৰি অহা এই বিহুগীতসমূহত অসমীয়া পৰম্পৰাগত সমাজখনৰ সকলো দিশেই উন্মোচিত হৈছে। এই গৱেষণা পত্ৰখনিত বিশেষকৈ বিহুগীতত অসমীয়া কৃষিজীৱী সমাজখন কিদৰে প্ৰতিফলিত হৈছে সেই সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হ'ব। গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে বিশ্লেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হ'ব।

বীজশব্দ ঃ

বিহু, বিহুগীত, অসমীয়া মানুহ, পৰম্পৰা, কৃষিজীৱন, লোকজীৱন।

অৱতৰণিকা ঃ

সংস্কৃতি এটা জাতিৰ জীৱনৰধাৰা। এটা ক্ৰমোন্নতিশীল জাতিৰ জাতীয় সম্পদ হ'ল-ভাষা, সাহিত্য, সংস্কৃতি তথা ৰীতি-নীতি, ধৰ্ম, সুকুমাৰ সৌন্দৰ্য্যবোধ, সৃষ্টি প্ৰতিভা আৰু মানসিক উৎকৰ্ষই সংস্কৃতিৰ উৎস। অসমীয়া সংস্কৃতি সমন্বয়ৰ সংস্কৃতি, ই কোনো নিৰ্দিষ্ট জনগোষ্ঠীৰ সংস্কৃতি নহয়। *আৰ্য, কিৰাত, নিষাদ, দ্ৰাবিড় সকলো সংস্কৃতিৰে উপাদান সংমিশ্ৰিত হৈ বহুযুগৰ ক্ৰমবিৱৰ্তনৰ ফলস্বৰূপে অসমীয়া সংস্কৃতি গঢ় লৈ উঠিছে।*[১] সংস্কৃতিৰ মূল ভাগ তিনিটা - অভিজাত সংস্কৃতি, লোকসংস্কৃতি আৰু জনজাতীয় সংস্কৃতি। এই তিনিটাৰ ভিতৰত লোকসংস্কৃতিৰ অন্তৰ্গত মৌখিক সাহিত্যৰ এটা উল্লেখনীয় ভাগ হ'ল লোকসংগীত। প্ৰাক-শংকৰী যুগৰ সংগীতৰ পৰম্পৰা আহোম যুগলৈ বাগৰি অহাৰ লগতে শংকৰদেৱৰ বিশাল প্ৰতিভাৰ সমন্বয় ঘটি অসমীয়া সংগীতক সমৃদ্ধ কৰি তোলে। ৰজাঘৰীয়া পৃষ্ঠপোষকতাৰ পৰশ লাগি সংগীতৰ বিকাশ ঘটায় আৰু বহুমুখী কৰি তোলে। ৰুদ্ৰসিংহৰ দিনতেই থলুৱা গীত-মাতৰ চৰ্চা অব্যাহত ৰাখিবলৈ 'গায়নৰ-বৰুৱা' বুলি এটা বিষয় সৃষ্টি

কৰি তেওঁৰ অধীনত ঢুলীয়া, খুলীয়া, মৃদংগীয়া, নেগেৰীয়া, কালীয়া, খুঁটিতালীয়া, নাচনীয়াৰ, বিয়াহ-গোৱা, বীণোৱা, পদ-গোৱা আদি খেল পাতি দিছিল। ৰজা ভ্ৰমণত গলে ঢুলীয়া-খুলীয়াই আগে আগে ঢোল-খোল বজাই যোৱাৰ ৰীতি আছিল। *তদুপৰি ৰজা ৰুদ্ৰসিংহই গছতলৰ বিহু মাতি আনি ৰংপুৰৰ ৰংঘৰৰ চোতাল পোৱাইছিলহি। ঢুলীয়া-নাচনীৰ প্ৰতিযোগিতা পাতি বঁটা-প্ৰসাদ দি উৎসাহিত কৰিছিল। তেতিয়াৰে পৰা ৰাজ্যৰ বিভিন্ন ঠাইৰ হুঁচৰি আহি ৰজাঘৰত হুঁচৰি গোৱাৰ নিয়ম প্ৰচলিত হ'ল।* [২] এনেদৰে লাহে লাহে বিহুগীতৰো আৰম্ভণি ঘটিল। অসম আৰু অসমীয়া জনসাধাৰণৰ নিৰ্ভুল দাপোণ এই বিহুগীতসমূহ। বিহুনামবোৰ হ'ল প্ৰকৃতিৰ চিৰন্তন ৰূপ বিকশিত হোৱা গীত। বিহুনামৰ সৌন্দৰ্য সঁচাকৈ অনুপম। অসমখনি হ'ল প্ৰকৃতিৰ ৰাণী, প্ৰকৃতিয়ে অসমী আইক অকৃপণ হাতেৰে প্ৰাকৃতিক উপাদানসমূহ দান কৰি মহিমাময়ী কৰি তুলিছে। অসমীৰ এই বিনন্দীয়া ৰূপটো চহা নিৰক্ষৰ কৃষিজীৱী ৰাইজে উপলব্ধি কৰিব পাৰিছিল আৰু প্ৰতিটো বিহুনামত এই বিনন্দীয়া প্ৰকৃতিৰ চিত্ৰণ কৰিছিল। শাওণৰ পথাৰ, আঘোণৰ ধাননি, কঠীয়াতলি এইবোৰ কৃষকৰ অতিকৈ আপোন। শস্যক্ষেত্ৰ আৰু কৃষক দুয়োটাৰে মাজৰ সম্পৰ্ক বিহুনামবোৰত বৰ সুন্দৰকৈ প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা যায়।

অসমৰ জাতীয় উৎসৱৰূপে পৰিচিত বিহু হৈছে কৃষিকৰ্মৰ সৈতে জড়িত এটি লোক-উৎসৱ। বছৰৰ তিনিওটা বিহুৱে কৃষিৰ লগতে জড়িত বাবে ক'ব পাৰি যে ইয়াৰ উৎপত্তি কৃষিজীৱী সমাজখনতেই। বিহুগীতত ইয়াৰ সুন্দৰ প্ৰতিফলন দেখিবলৈ পোৱা যায়। বিহুগীতত প্ৰকাশ পোৱা অসমীয়া কৃষিজীৱী সমাজখনৰ বিষয়ে অধ্যয়নেই এই আলোচনা পত্ৰখনিৰ বিষয়বস্তু।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

লোকসংস্কৃতিৰ অন্তৰ্গত অনুষ্ঠানমূলক লোকগীতৰ ভিতৰত বিহুগীতত প্ৰতিফলিত হোৱা অসমীয়া মানুহৰ পৰম্পৰাগত কৃষিজীৱী সমাজখনৰ অধ্যয়নেই আলোচনা পত্ৰখনিৰ মূল উদ্দেশ্য।

অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

বিহু হৈছে আমাৰ প্ৰাণৰ উৎসৱ আৰু বিহুগীতসমূহ হ'ল আমাৰ অসমীয়া সমাজৰ দাপোণস্বৰূপ, য'ত অসমীয়া সমাজৰ প্ৰতিটো দিশ বিশেষকৈ গ্ৰাম্যসমাজৰ কৃষিপ্ৰণালী মূলত প্ৰতিফলিত হয়। কিন্তু সময়ৰ পৰিৱৰ্তনৰ লগে লগে বিহুগীতেও যেন কোনোবাখিনিত স্বকীয়তা হেৰুৱাই পেলাইছে। হেৰাই যাব ধৰা এই বিহুগীতসমূহ উলিয়াই আনি ইয়াৰ ঐতিহ্যক কিদৰে ৰক্ষা কৰিব পাৰি সেই কথাক গুৰুত্ব দিয়া হৈছে।

অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

এই পত্ৰখনৰ পৰিসৰত বিশেষকৈ বিহুগীতত অসমীয়া চহা লোকসকলৰ কৃষিজীৱনটো কিদৰে প্ৰতিফলিত হৈছে তাক সামৰি লোৱা হৈছে।

বিহু আৰু বিহুগীতৰ পৰিচয় ঃ

কৈছিল ৰজনীকান্ত বৰদলৈ দেৱে কৈছিল - 'বিহু অসমীয়াৰ জাতীয় উৎসৱ, বাপতি সাহোন।' [৩] বিহু উৎসৱটি প্ৰকৃততে গোটেই মানৱ সমাজৰে কৃষি সভ্যতাৰ উৎসৱৰ প্ৰতীক। বহুতো দেশত এই উৎসৱেই ভিন্ ভিন্ ৰূপ ধাৰণ কৰিছে। অসমত পালন কৰা ৰঙালী বিহু বা ব'হাগৰ বিহু হ'ল পথাৰৰ উৰ্বৰতা বৃদ্ধি কৰি উৎপাদন বৃদ্ধিৰ কামনাৰে অনুষ্ঠিত কৰা কৃষি উৎসৱ। ভোগালী আৰু ৰঙালী বিহু উৎসৱ পালন কৰি অসমৰ কৃষকে কৃষি ভূমিৰ পৰা শস্যৰ উৎপাদন বৃদ্ধিৰ কামনা কৰে। আদিম মানুহে যেতিয়া খেতি কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিছিল, তেতিয়া তেওঁলোকে কৃষিভূমি চহোৱাৰ উপৰিও আৰু কি কৰিলে শস্যৰ উৎপাদন বাঢ়িব, সেই কথা জানিব পৰা নাছিল। এই অভাৱ তেওঁলোকে পূৰণ কৰিছিল নানা তৰহৰ ঐন্দ্ৰজালিক ক্ৰিয়া-কলাপেৰে। পথাৰত গোৱা গীত-মাত, নাচোন আৰু ইয়াৰ লগত সংগত কৰা বাদ্য-যন্ত্ৰসমূহৰ যাদুকৰী প্ৰভাৱ পৰি পৃথিৱীৰ উৰ্বৰা শক্তি বৃদ্ধি পাই খেতিত উৎপন্ন হোৱা শস্যৰ পৰিমাণ বাঢ়ে বুলি বিশ্বাস কৰিছিল।

বিহুৰ নৃত্য গীতৰ লগত জড়িত হৈ থকা যাদু বা ঐন্দ্ৰজালিক বিশ্বাসলৈ লক্ষ্য কৰিয়েই হেমাঙ্গ বিশ্বাসে লিখিছে- *"বিহুৰ নাচৰ ভঙ্গীত, কঁকালৰ ভাঁজত, বেঁকা চাৱনি, হাতৰ মুদ্ৰাত শৃঙ্গাৰ ৰস দয়োতনা, আকৌ ঢোলৰ বোল, পেঁপাৰ সুৰ আৰু টকাৰ তালত মেঘ, বৰষুণ আৰু বজ্ৰৰ অনুৰণন।"* [৪]

বড়ো সংস্কৃতিৰ বিশিষ্ট গৱেষক আৰু লেখক ধূপৰাম বসুমতাৰীৰ মতে - *"বিহু (বি প্ৰাৰ্থনা কৰ, ভিক্ষা কৰ, হু পাচি বা কুলা আদিৰ দ্বাৰা আঁজলিয়ে ভৰাই লোৱা)...* [৫] অৰ্থাৎ বিহু মানে শ্ৰমৰ দ্বাৰা প্ৰাৰ্থনা কৰা, কামনা কৰি প্ৰচুৰ পৰিমাণে লোৱা।" ইয়াৰ দ্বাৰা বিহু যে অধিক উৎপাদনৰ কামনাৰে অনুষ্ঠিত কৰা প্ৰজননৰ উৎসৱ সেই কথা বুজা যায়। *নগেন্দ্ৰ নাথ বৰুৱাৰ পৰা জানিব পৰা মতে, ডিমাচাসকলেও কৃষিৰ উৎপাদন বৃদ্ধিৰ কামনা কৰি পূজা-পাতলেৰে অভীষ্ট সিদ্ধিৰ বাবে বিহু উৎসৱ পাতে।* [৬]

বহু ভাষাৰ দ্বাৰা বহু প্ৰকাৰে ব্যুৎপত্তি ব্যাখ্যা কৰিব পৰা ই এটা অসমীয়া ভাষাৰ জতুৱা শব্দ (Homely indigenous word)। ডঃ বাণীকান্ত কাকতিৰ গৱেষণা গ্ৰন্থত অনুল্লিখিত

শব্দটি এই কালিৰাম মেধিয়ে সংস্কৃত বিযুৱ বিষুবৎ (equinnax) শব্দৰ পৰা ব্যুৎপত্তি হোৱা বুলি দেখুৱাইছে। পৃথিৱীৰ বাৰ্ষিক গতিৰ সময়ত অতিক্ৰান্ত বিষুৱৰেখাত (জলবিষুৱ, মহাবিষুৱ আদি) সূৰ্যৰ স্থিতিৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰি উৎসৱটিৰ লগতে শব্দটিৰো উদ্ভৱ হৈছে। আনহাতে ৰাজমোহন নাথে সূৰ্যৰ বিষুৱ ৰেখাত অৱস্থানৰ সময়ত দিন-ৰাতিৰ সমানে সমানে দুটা ভাগত বিভক্ত হোৱা অৰ্থসূচক সংস্কৃত দ্বিযু শব্দৰ পৰা বিহু শব্দৰ ব্যুৎপত্তি ব্যাখ্যা আগবঢ়াইছে। পৰৱৰ্তী কালত ই সংক্ৰান্তি বা দোমাহীৰ সমাৰ্থকভাৱে প্ৰয়োগ হৈছে। দৰাচলতে বিহু উত্তৰ-পূব ভাৰত ভাষাগত (N.E.Indian linguistic area) ক্ষেত্ৰৰ সমলহে। *ইয়াৰ এহাতে চীনা-টাইমূলীয় পয়হু বা পিহু (পয়-ৰং ধেমালি) বা বৈহু (বৈ-পূজা,হু-গৰু), বড়োমূলীয় বিহু (বি-খোজ, হু-দি)ৰ সৈতে যেনেকৈ সাদৃশ্য আছে, আনহাতে তেনেকৈ ডিমাছাৰ বিচু, বুচু, দেউৰীৰ বিচু (বি- অতি, চু- আনন্দদায়ক), তিৱাৰ বিচু, চাকমাৰ বিঝু, ৰাভাৰ বাইখু, সোণোৱাল কছাৰীৰ বাইথ, বড়োৰ বৈছাগু, কোচ ৰাজবংশীৰ বিষমা। বিযুৱা আদিৰ লগতো ইয়াৰ সাদৃশ্য আছে।* [৭]

হেমকোষৰ মতে বিহু এটা বিশেষণ শব্দ, যাৰ মূল সংস্কৃত বিযুৱ অৰ্থাৎ সূৰ্য, মেঘ, তুলা আৰু মকৰ ৰাশিত সোমোৱা দিন। চত, আহিন আৰু পুহৰ শেষ দিন অৰ্থাৎ বহাগ, কাতি, আৰু মাঘৰ সংক্ৰান্তি। *অসমীয়া মানুহৰ বৰ আনন্দ আৰু ৰং-ধেমালিৰ দিন। প্ৰথমটোক চতৰ বা বহাগৰ বিহু, দ্বিতীয়টোক কাতি বিহু, শেষৰটোক মাঘ বিহু বোলা যায়, চতৰ শেষৰ দিনাক গৰু বিহু আৰু বহাগৰ প্ৰথম দিনক মানুহ বিহু বোলে।* [৮]

কেতিয়াৰ পৰা আৰু কেনেকৈ বিহু আমাৰ মাজলৈ আহিল আৰু এটা জাতীয় উৎসৱত পৰিণত হ'ল - সি নিশ্চয়কৈ গৱেষণাৰ বিষয়। আৰ্য্য-অনাৰ্য্য, আলপাইন, ককেচীয় আদি নানান জাতিৰ সূক্ষ্ম সংস্কৃতিৰ আত্মপ্ৰকাশত অসমৰ সাংস্কৃতিক জগতখন কেতিয়াৰ পৰা এখন ৰঙীন দলিচা হৈ পৰিল বুলি সুধিলে সঠিক উত্তৰ দিয়া কঠিন। এই আটাইবোৰ জাতি-জনজাতিৰ সংস্কৃতিৰ মিলনতেই যেন বিহুৰ গূঢ়াৰ্থ নিহিত হৈ আছে। বিহুৰ আভিধানিক অৰ্থ বহুতে বহুত ধৰণে উলিয়াব পাৰে, কিন্তু ই মূলতঃ আনন্দৰ আধাৰ আৰু কৃষিকৰ্মৰ সৈতে সম্পৰ্কিত।

জনসাধাৰণৰ মুখে মুখে প্ৰচলিত হৈ অহা গীতেই হ'ল লোকগীত। লোকগীতবোৰ হ'ল একোখন সমাজৰ এক আপুৰুগীয়া সম্পদ। যিবোৰ গীতৰ কোনো ৰচক নাই। সমালোচকসকলে লোকগীতক হাবিৰ মাজত ফুলি থকা বনৰীয়া ফুলৰ লগত তুলনা কৰে। একাধিক নামহীন কবিৰ সৃষ্টি এই লোকগীত শব্দটো ইংৰাজী 'Folk Song' শব্দৰ প্ৰতিশব্দ। 'Folk Song' সন্দৰ্ভত Cassell's Encyclopaedia of Literature ত আছে "The Folk Song has been well defined as alyric poem with melody originating anonymously in times past among unlettered folk and remaining in currency for a considerable time, usually centuries"। *প্ৰকৃতিৰ সৈতে মানুহৰ যি একাত্মবোধ, অনুভূতিৰ তীব্ৰতা, প্ৰকাশভংগীৰ সহজ-সৰল আবেদনেৰে লোকগীতবোৰ যি উচ্চমান বিশিষ্ট, সেইবোৰ লোককবিৰ কাব্যিক প্ৰতিভাৰ স্বাক্ষৰ স্বৰূপ।* [৯] অসমৰ লোকজীৱনৰ প্ৰতিনিধিত্বমূলক প্ৰতিচ্ছবি দাঙি ধৰিব পৰা এনে লোকগীতৰ ভিতৰত বিহুগীত হৈছে অন্যতম লোকগীত। বিহুগীতবোৰ নিৰক্ষৰ, হোজা, চহা লোকৰ অৱদান। ১৯০১ চনৰ আগলৈকে অসমত কেৰাচিন তেল নাছিল, বিজুলীবাতি দূৰৰে কথা আজিৰ দৰে বাট-পথো সুগম নাছিল। জনসংখ্যাও কম আছিল। অৰণ্যত বনৰীয়া জীৱ-জন্তুৰ পৰা নিৰাপদ দূৰত্বত থাকি বিহু মাৰিছিল। ডেকা-গাভৰুৰ মাজতো হয়তো এক সন্মানজনক ব্যৱধান আছিল। সেয়াও অন্য এক অধ্যায়। মূল কথা হ'ল বিহু মাৰি তেওঁলোক আপোন পাহৰা হৈছিল। সৃষ্টি হৈছিল ন ন বিহুগীত। ন ন ঢোলৰ চাপৰ, পেঁপাৰ লহৰ আৰু যেতিয়া ৰাতি গভীৰ হৈ আহিছিল, তেতিয়া আপোনমনে বুকুৰ পৰা নিগৰি আহিছিল-

"এপৰ দুপৰ কৰি   ৰাতি পাৰে হ'ব
আমাৰ বিহুত আমনি নাই।
ৰাতি পৰে পৰে   ফেঁচাই কুৰুলিয়াই
আমাৰ বিহু ভাঙোতা নাই।।" [১০]

বিহুগীতসমূহ হ'ল অসমীয়া চহা জীৱনৰ প্ৰাণবন্ত সৃষ্টি, যত অংকিত হৈছে অসমীয়া সমাজৰ পৰম্পৰাগত জীৱনশৈলী। জাতি গঠনৰ কাৰণে যিবিলাক সমলৰ আৱশ্যক সেই সকলোবোৰ বিহু-গীতত ঠাহ খাই আছে। অসমীয়া মানুহৰ আবেগ-অনুভূতি, ভাব-ভাষা, ধৰ্ম, সাহিত্য, অসমীয়া সমাজৰ অতীত আৰু বৰ্তমানৰ স্পষ্ট প্ৰতিচ্ছবি, জাতিৰ শিল্পনৈপূণ্য, নীতি-নিয়ম, আচাৰ-ৰীতি, ৰাজনীতি আৰু প্ৰত্ন-তত্ত্ব আদিৰ সুন্দৰ আভাস পোৱা যায় অসমীয়াৰ একমাত্ৰ আদৰৰ চেনেহৰ বিহুগীততেই।

বিহুগীতত প্ৰতিফলিত অসমীয়া মানুহৰ পৰম্পৰাগত কৃষিজীৱন। অসমীয়া সমাজৰ মূল সংস্কৃতি হ'ল কৃষিভিত্তিক

সংস্কৃতি। এই সংস্কৃতিৰ বৰভেঁটি হৈছে বিহু। অসমীয়া সমাজে পালন কৰা তিনিওটা বিহুয়ে কৃষিভিত্তিক। অসমৰ জলবায়ু মূলতঃ আদ্ৰতাপূৰ্ণ মৌচুমী জলবায়ু, যি কৃষিকাৰ্যৰ বাবে বৰ উপযোগী। অসমীয়া কৃষিজীৱী সমাজৰ দাপোণস্বৰূপ বিহুগীতসমূহৰ ভালেসংখ্যক গীতেই কৃষিজীৱনক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচিত। অসমৰ জনজীৱনৰ সৈতে প্ৰাণৰ বিহুটি আৰু পথাৰ দুয়োটাই একাত্ম হৈ আছে। বিহুগীতত ই সুন্দৰভাৱে প্ৰতিফলিত হৈছে।

"থুৰিয়াই কাটিলো তামোল তিনিখনি
নুৰিয়াই বান্ধিলো পাণ।
পথাৰে পথাৰে বিচাৰি ফুৰিলো
কতে দাই আছিলা ধান।।"[১১]

"কাতি বিহু কঙালী
মাঘৰ বিহু ভোগালী
বহাগতে ধেমালী
কৰোঁ ঐ গোবিন্দাই ৰাম"

এইফাঁকি বিহুগীতে বছৰৰ তিনিওটি বিহুক সুন্দৰকৈ প্ৰতফলিত কৰিছে। কাতি বিহু কঙালী, কঙালী অৰ্থাৎ আকাল। সেই সময়ত কৃষকৰ ভঁৰাল উদং হৈ থাকে, শস্য পথাৰতে থাকে। কাতি বিহুৰ দিনটোত অসমীয়া সমাজে খেতিপথাৰত চাকি-বন্তি জ্বলাই শস্যৰ কুশল কামনা কৰে, ভৱিষ্যতেও যেন তেওঁলোকৰ পথাৰ সোণোৱালী শস্যৰে নদন-বদন হৈ থাকে তাৰ বাবে ঈশ্বৰৰ ওচৰত প্ৰাৰ্থনা জনায়। ইয়াৰ পিছত আঘোণ মাহত কৃষকসমাজে ধান দাই শস্যসমূহ চপাই আনি ভঁৰাল উপচাই পেলায়। মাঘৰ মাহটোক ভোগৰ মাহ বুলি কোৱা হয় কিয়নো সেই সময়ত কৃষকৰ ভঁৰাল শস্যৰে নদন-বদন হৈ থাকে। ধান-চাউল, শাক-পাচলি, ফল-মূলে সকলো উভৈনদী হৈ থাকে। সেয়ে মাঘ বিহুৰ উৰুকাৰ দিনা অসমীয়া ৰাইজে হাঁহি-ফুৰ্তি, ৰং-তামাচাৰ মাজেৰে হাঁহে-মাঁহে এসাজ খায়। বিহুৰ দিনা মেজিৰ জুইক সেৱা জনাই পিঠা-পনা, জা-জলপান উদৰ পুৰাই খায়। ইয়াৰ পিছতে বহাগ বিহু হৈছে ৰং-ধেমালীৰ উৎসৱ। এই বিহুত অসমীয়া লোকসকলে নাচ-গান কৰে, পিঠা-পনা, জা-জলপানৰ যোগাৰ কৰে। কনিষ্ঠসকলে জ্যেষ্ঠসকলক সেৱা কৰে। গাঁৱৰ ডেকাসকলে মানুহৰ ঘৰে ঘৰে হুঁচৰি গাই গৃহস্থৰ কুশল কামনা কৰে।

অসমৰ মানুহৰ প্ৰধান উৎপাদিত শস্য ধান, বিহুগীতত ধানে গুৰুত্বপূৰ্ণ স্থান অধিকাৰ কৰি আহিছে। ধান ৰোৱাৰ আগতে কঠিয়াতলী প্ৰস্তুত কৰি কঠিয়াৰ বীজ সিঁচি লোৱা হয়। কেতিয়াবা সেই কঠিয়াতলীতেই মাছ বিচাৰি পাঁও নেকি বুলি জাকৈ বাই চায়। বিহুগীতত তাৰ সুন্দৰ আভাস পোৱা যায়-

"কঠিয়াতলীতে পানী চলু চলু
জকাই এখোৱা বাওঁ,
উঠে কি নুঠে মোৰা খলিহনা
মনকে পতিয়াই চাওঁ" (গুণকান্ত শইকীয়া, বয়স-৭৯)

খেতি কৰাটো বৰ সহজ কথা নহয়। চ'ততে কঠিয়াতলীত হাল বাই, মৈয়াই বন মাৰিব লাগিব, আলি-পদুলি দিব লাগিব। ৰ'দ-বৰষুণক কাটি কৰি থৈ পথাৰত হাল বোৱাতো সঁচাই টান কাম। বিহুগীতবোৰত সেই হালুৱা আৰু হাল বোৱাৰ কথাও বিশেষভাৱে উল্লেখ পোৱা যায় -

"হালে বায়ে গ'লো সীৰলু সীৰলু
মেটেকা পৰিলে জয়,
চিকুটি পাবলৈ যৌৱন নাইকিয়া
তেও বেলি জীয়ৰী মই"

"এবেলা হালে বাওঁ, এবেলা জালে বাওঁ
এবেলা মহলৈ যাওঁ
তেও যদি শহুৰে ছোৱালী নিদিয়ে
ৰংপুৰ জিলালৈ যাওঁ" (গুণকান্ত শইকীয়া, বয়স-৭৯)

বিহুগীতত কৃষিসঁজুলিয়ে এক বিশিষ্ট স্থান অধিকাৰ কৰি আছে। মৈ, মৈটকা, নাঙল, যুঁৱলী, শলমাৰি, কাঁচি, বিৰিয়া, হোলোঙা আদি কৃষিৰ সঁজুলিয়ে অসমৰ কৃষিজীৱী সমাজখন প্ৰতিফলিত কৰে -

"শাওনৰ পথাৰত হালে বাই আছিলোঁ
বুঢ়া গৰু বোকাতে ৰ'লে অ' হেৰেপী
শলমাৰি শুলকি গ'ল অ' হেৰেপী
নাঙলে মেলিলে ফালে অ' হেৰেপী
অসময়ত লগালি মাত"[১২]

অসমৰ পথাৰবোৰত পৰম্পৰাগতভাৱে শালি, আহু আৰু বাও এই তিনিটা খেতি বিশেষভাৱে কৰা হয়। ইয়াৰোপৰি বড়ো ধানৰ খেতি কৰা হয় যদিও বড়ো ধানৰ খেতি অসমত তুলনামূলকভাৱে কম। সেয়ে বিহুগীতবোৰত বেছিকৈ অসমীয়া কৃষকে কৰা আহু আৰু শালি খেতিয়েহে গুৰুত্বপূৰ্ণ স্থান দখল কৰিছে -

"আহুধান দাবলৈ লাগে ক'তবেলি
বাওধান দাবলৈ টান,
জীয়ৰী হবলৈ লাগে ক'তবেলি
বোৱাৰী হ'বলৈ টান" (ঘুনুচী শইকীয়া, বয়স-৮২)

"আহুধানৰ আশাতে শালি নকৰিলে
তুঁহত নেৰাখিলো জুই,
তোমাৰ আশাতে বিয়া নাপাতিলো
মৰিমগৈ বৰলা হৈ"

(ঘুনুচী শইকীয়া, বয়স-৮২)

কৃষকসকলে বহু আশা কৰি পথাৰত কঠিয়া সিঁচে, কিন্তু বাৰিষাৰ বলীয়া বানে কৃষকৰ কষ্ট দুগুণে চৰায়। বানে সকলো উটুৱাই তচ-নচ কৰি নিয়ে। তথাপি তেওঁলোকে আশা নেৰে -

"এইবেলি আহু ধান পানীয়ে মাৰিলে
অহাবেলি আহুধান পাম
মহৰ শিঙৰ পেঁপাটি বনকিয়াই আনাগৈ
তোমাৰ শপত বিহুলৈ যাম" (ঘুনুচী শইকীয়া, বয়স-৮২)

কৃষিকৰ্মত পুৰুষৰ সমানে মহিলায়ো কষ্ট কৰে। পথাৰত হালোৱাক চাহ-জলপান দিয়াৰ লগতে সময়ত ভাতমুঠি যোগান ধৰা, কঠিয়া তোলা, হালবাই দিয়া মাটিডৰা সময়মতে ৰোৱা, ধান দোৱা ইত্যাদি কামবোৰ মহিলা এগৰাকীয়ে সমানে কৰি থাকে। এনেধৰণৰ চিত্ৰও বিহুগীতৰ মাজেৰে প্ৰতফলিত হোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায় -

"আজি ৰুই গ'লো কাঁচিৰোৱা ডৰা
কোনে ফেনেকি গ'লি
খোজত চিনি পালোঁ মাতত বুজি পালো
পাৰো কোনসতে গালি"

(ঘুনুচী শইকীয়া, বয়স-৮২)

"আউলী ধানকে দাবলৈ গৈছিলো
বাউলী বতাহে পালে,
কাঁচি দলি মাৰি হাবিতে সোমালো
ওঁঠতে বৰলে খালে"

(গুণকান্ত শইকীয়া, বয়স-৭৯)

এসময়ত মানুহে কৃষিকৰ্ম কৰিয়ে আত্মনিৰ্ভৰশীল হৈ থাকিব বিচাৰিছিল, সেই সময়ত অসমীয়াই চাকৰি বা অন্য ব্যৱসায়ৰ কথা ভবা নাছিল। পুৰুষে যদি বিভিন্ন খেতি কৰিছিল মহিলায়ো সমানে সমানে তেওঁলোকৰ সৈতে সহযোগ কৰিছিল। ইয়াৰোপৰি মহিলাসকলে তেওঁলোকৰ নিত্য ব্যৱহাৰ্য কাপোৰ তেওঁলোকে নিজেই তাঁতশালত বৈ লৈছিল। এইকথাও বিহুগীতৰ মাজেৰে সুন্দৰভাৱে ফুটি উঠিছে এনেদৰে -

"তুমি কৰি যাবা ৰোৱনী দাৱনী
মইনু বাই যাম হাল
তুমি লগাই লবা বিহুৰে গামোছা
মইনু পাতি দিম শাল" (গুণকান্ত শইকীয়া, বয়স-৭৯)

ইংৰাজৰ আগমনৰ পিছত অসমত চাহ উদ্যোগৰ প্ৰতিষ্ঠা হ'ল। চাহ উদ্যোগে গ্ৰাম্য কৃষকৰ অৰ্থনীতিত পৰিৱৰ্তনৰ সূচনা কৰিলে। চাহ উদ্যোগে গ্ৰাম্য অৰ্থনীতিত পৰিৱৰ্তনৰ সূচনা কৰিলে। চাহ বাগিচাত কাম কৰিও একাংশ লোকে আৰ্থিক সমৃদ্ধি লাভ কৰিছিল। কিন্তু চাকৰি নকৰা একাংশ লোকে খেতি কৰিয়েই সুখী সংসাৰ কৰাৰ কথাও বিহুগীতত আছে এনেদৰে -

"বাগিচাৰ চাকৰি নালাগে লাহৰী
নালাগে তালাপৰ ধন
তয়ে ধান দাবি ময়ে হাল বাম
সেয়ে হব জীৱনৰ ধন"

(ঘুনুচী শইকীয়া, বয়স-৮২)

অসমীয়া কৃষকে যে কেৱল ধান খেতিয়ে কৰিছিল তেনে নহয়, তেওঁলোকে ধানখেতিৰ উপৰিও দৈনন্দিন জীৱনৰ প্ৰয়োজনীয় সকলোবোৰ বস্তুৰে নিজৰ ঘৰৰ বাৰীতে ৰুই লৈছিল। বিভিন্ন ফল-মূলৰ গছ, ঔষধি গুণযুক্ত গছ, শাক-পাচলি ইত্যাদি সকলোবোৰ নিজৰ ঘৰতে ৰুই লৈছিল। কোনটো খেতি বছৰৰ কোনটো সময়ত কৰিব লাগে, কোনবোৰ গছ কোনদিশে ৰুলে ভাল হ'ব সেইকথা তেওঁলোকে জানিছিল। যদিও সেইসময়ৰ চহা কৃষকসকল বিজ্ঞানৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱান্বিত হোৱা নাছিল, কিন্তু তেওঁলোকে সেই কথাবোৰ অনুভৱ কৰিব পাৰিছিল। অসমীয়া বুলি ক'লে পাণ-তামোল এক এৰাব নোৱাৰা সম্পদ। অসমীয়া সংস্কৃতিত পাণ-তামোলে এক বিশেষ স্থান অধিকাৰ কৰি আছে। ঘৰলৈ আলহী আহিলে তথা বিহু, বিয়া, সকাম আদি বিভিন্ন উৎসৱত তামোল পাণক বাদ দি একোৱে কৰিব নোৱাৰি। কেতিয়াবা কৰবাত দায়-দোষ লাগিলেও তামোল-পাণ এযোৰ আগবঢ়াই সেৰা লয়। গতিকে প্ৰতিজন অসমীয়াৰ ঘৰত তামোল-পাণৰ বাৰী দেখিবলৈ পোৱাটো স্বাভাৱিক। বিহুগীতত ইয়াৰ সুন্দৰ প্ৰতিফলন দেখিবলৈ পোৱা যায় -

"আগবাৰী শুৱনি কাকিনি তামোল
পাছবাৰী শুৱনি পাণ।
বৰঘৰ শুৱনি গাভৰু ছোৱালী
উলিয়াই দিবলৈ টান।।"

(চন্দ্ৰপ্ৰভা ভূঞা, বয়স-৭৬)

গাঁৱৰ ঘৰবোৰত বৰ্তমানেও দেখিবলৈ পোৱা যায় ঘৰৰ চাল, বেৰ আদিত লাও, জিকা, কেৰেলা আদি বগাই থাকে। ইয়াৰ লগতে লাই, লফা, চুকা, পালেং, ধনীয়া বতৰৰ বিভিন্ন শাকেৰে বাৰীখন উভৈনদী হৈ থাকে। এই কথাবোৰো বিহুগীতত সুন্দৰভাৱে প্ৰকাশ পাইছে -

"ভঁৰালৰ টোপতে কেৰেলা বগালে
কোমোৰা বগালে চালত।
জীৱনে মৰণে নেৰিবা লাহৰী
নেৰিবা বিপদৰ কালত।।"

(চন্দ্ৰপ্ৰভা ভূঞা, বয়স-৭৬)

"লাই লফা চুকা   পালেং আৰু ধনীয়া
আটাইবোৰ বতৰৰ শাক।
তিতাফুলৰ শাকেৰে   তোমালৈ বুলি
ৰান্ধিলো দুপৰৰ ভাত।।"

(চন্দ্ৰপ্ৰভা ভূঞা, বয়স-৭৬)

অভাৱ-অনাটনে দেখা দিলেও অসমীয়া কৃষকসমাজে কেতিয়াও হা-হুমুনিয়াহ কাঢ়ি জীৱন পাৰ কৰা নাছিল। তেওঁলোকে শাক-পাচলিৰ নাটনি হ'লেও বাৰীতে থকা কলপুলিৰ পচলা উলিয়াই খাইছিল, নতুবা হাবিৰ পৰা কচু, ঢেকীয়া লগতে নৰসিংহ, ভেদাইলতা, মানিমুনি, নেফাফু আদি ঔষধি গুণযুক্ত খাদ্যসমূহ তেওঁলোকে যোগাৰ কৰি খাইছিল। বিহুগীতত এইসমূহৰ সুন্দৰ প্ৰতিফলন দেখিবলৈ পোৱা যায় -

"আকাল হ'লে বুলি   দুই হাতে আজুৰি
কেনেকৈ শুদা ভাত খাবা।
বাৰীৰে পচলা   হাবিৰে ঢেকীয়া
তাৰে এমুঠি খাবা।।"

(চম্পা কলিতা তামুলী, বয়স-৮০)

বসন্ত কালত খাল-বিল, নৈ-নিজৰা, পথাৰ আদি পানীৰে উপচি পৰে, মাছ উজায়। সকলো দিশে মাছৰ উজান উঠে। সেই সময়তে কৃষকসকলে খেতি-পথাৰৰ কাম-কাজসমূহ কৰিবলৈ লয়। পথাৰত হাল বাওতে কেতিয়াবা খেতিয়কসকলে চেপা, থোহা পাতি মাছ ধৰে, কেতিয়াবা হয়তো কঠীয়ানিতে জকাইখন চবিয়াই চায়। দিনটোৰ কষ্টৰ শেষত তেওঁলোকে জুতিৰে ভাতসাজ খায়। বিহুনামৰ জৰিয়তে তাৰ উমান পাওঁ -

"আলিটি কাটি যাওঁ   চেপাটি পাতি যাওঁ
মাগুৰ মাছ এহালি পাওঁ।
নিজেও নাখাওঁ   আনকো নিদিওঁ মই
নাচনীলৈ সামৰি থওঁ।।"

(গুণকান্ত শইকীয়া, বয়স-৭৯)

মনৰ চহকী অসমীয়া কৃষকে কেতিয়াও নিজকে দুখীয়া বুলি ভৰা নাই। শাৰীৰিক শ্ৰম আৰু পথাৰখনেই যে তেওঁলোকৰ পেটৰ ভোক আৰু যৌৱনৰ সপোন পূৰণ কৰিব পাৰে সেই কথা তেওঁলোকে উপলব্ধি কৰিব পাৰে -

"দুখীয়া বুলি ভাবিলে কি হ'ব
যি আছে কপালত হ'ব
দুখনি হাতেৰে ৰুয়ে দায়ে যামে
নাই দেহা সিপাৰে যাব"

(পূৰ্ণকান্ত শইকীয়া, বয়স-৬৭)

সামৰণি ঃ

বিহুগীত অসমীয়া লোকসংস্কৃতিৰ এক অমূল্য সম্পদ। অসমীয়া সমাজৰ গ্ৰাম্য জীৱনধাৰা, আৱেগ- অনুভূতি, প্ৰকৃতিৰ সৈতে মানুহৰ গভীৰ সম্পৰ্ক ইয়াৰ মাজেৰে প্ৰকাশ পায়। ডেকা-গাভৰুৰ সৰল নিষ্কলুষ প্ৰেম, প্ৰকৃতি, কৃষিকাৰ্য, সমাজ-জীৱন, নৈতিক মূল্যবোধ, সামাজিক ব্যংগ ইত্যাদি বিহুগীতৰ মূল বিষয়। সহজ-সৰল চহা লোকসকলৰ ভাষাই ইয়াক অধিক আকৰ্ষণীয় কৰি তোলে। ডঃ বিৰিঞ্চিকুমাৰ বৰুৱাই বিহুগীতত অসমীয়া জীৱনৰ চিত্ৰ নামৰ প্ৰবন্ধত লিখিছে - দিনৰ সৰহখিনি সময় মুকলি পথাৰত, নৈৰ শীতল বুকুত অথবা সেউজীয়া বননিত কটাবলগীয়া হোৱাত প্ৰকৃতিৰ ৰূপ-ৰস-বৰ্ণ-গন্ধ-শব্দৰ প্ৰতি অসমীয়া মানুহে সকলো সময়তে সচেতন। প্ৰকৃতিৰ পৰশত স্পন্দিত হোৱা অনুভূতিৰ বহিৰ্প্ৰকাশৰ কাৰণেই বিহুগীত অসমীয়া মানুহৰ মনৰ আৰু অসমৰ প্ৰকৃতিৰ প্ৰতিচ্ছবি হবলৈ সক্ষম হৈছে। এটা সময় আছিল, যেতিয়া অসমৰ শিক্ষিত মধ্যবিত্ত এচামে বিহুক ইতৰসকলৰ উৎসৱ বুলি কৈ আঁতৰাই ৰাখিব খুজিছিল, শিষ্ট সংস্কৃতিৰ অংশ নহয় বুলি ঘিণাইছিল। পিছে বিহুৱে নিজৰ ভিতৰত থকা অনন্ত শক্তিৰেই এই সকলো প্ৰত্যাহ্বান নেওচি জাতিটোৰ প্ৰাণ হিচাপে নিজকে প্ৰতিষ্ঠা কৰিলে। বহু জাতি-জনগোষ্ঠীৰে সমৃদ্ধ অসমখনৰ সামগ্ৰিক চৰিত্ৰক যেন সঠিক অৰ্থত বিহুৱেহে তুলি ধৰিব পাৰে, সেয়েহে দিনে দিনে বিহু সকলোৰে হেঁপাহৰ, আদৰৰ উৎসৱ হৈ পৰিছে। *বিহু উৎসৱে কেনেদৰে অসম আৰু অসমীয়াৰ সামগ্ৰিক সত্তাক ধৰি ৰাখিছে আৰু বলিষ্ঠভাৱে প্ৰকাশ কৰিছে সেই কথা বিহুগীতৰ মাজেৰে আমি উপলব্ধি কৰিব পাৰোঁ।*[১৩] সময়ৰ সোঁতত বিহুগীততো পৰিৱৰ্তন আহিছে। কিছুমান আধুনিক ইলেক্ট্ৰনিক প্ৰয়োগে বিহুগীতক নতুন প্ৰজন্মৰ ওচৰলৈ লৈ গৈছে, যদিও ইয়াৰ মৌলিকতা সংৰক্ষণ কৰাটো অতিশয় জৰুৰী হৈ পৰিছে। বিভিন্ন ইলেক্ট্ৰনিক বাদ্যযন্ত্ৰৰ প্ৰয়োগ, সুৰৰ বিকৃতি আদিয়ে লোকজীৱনৰ সৈতে জড়িত এই বিহুগীতক বাৰুকৈয়ে ক্ষতিগ্ৰস্ত কৰিছে। নৱপ্ৰজন্মৰ মাজত ক্ৰমান্বয়ে গঢ় লৈ উঠা কিছুসংখ্যক গায়কে বিহুগীতসমূহ বিকৃত সুৰত গাবলৈ লোৱাত ই স্বকীয়তা হেৰুৱাই পেলোৱাৰ উপক্ৰম ঘটিছে। এইসমূহ প্ৰতিৰোধ কৰি সমাজত এটা সুস্থিৰ বাতাবৰণ সৃষ্টি কৰি ইয়াক বিকৃত হবলৈ এৰি নিদি, সংৰক্ষণ কৰাৰ কথাহে চিন্তা কৰা উচিত।

সাৰাংশত ক'বলৈ গ'লে, বিহুগীত অসমীয়াৰ সংস্কৃতি, সমাজ আৰু জীৱনৰ এক জীৱন্ত দলিল। ই আনন্দ, প্ৰেম, প্ৰকৃতি আৰু সামূহিক চেতনাৰ সুন্দৰ সমন্বয়। অসমীয়া জাতিৰ পৰিচয় গঢ়াত বিহুগীতৰ অৱদান অমূল্য আৰু চিৰস্মৰণীয়। গতিকে অসমীয়াৰ প্ৰাণৰো আপোন বিহুৰ লগতে বিহুনামসমূহ উলিয়াই আনি বিশাল প্ৰেক্ষাপটত প্ৰতিষ্ঠা কৰিব পাৰিলেহে অসমীয়া বুলি গৌৰৱ কৰাৰ থল থাকিব।

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী

- গগৈ, লীলা, অসমৰ সংস্কৃতি. বনলতা প্ৰকাশন, নতুন বজাৰ, ডিব্ৰুগড়-১, ২০২১
- দাৰ, বিতোপন, হাজৰিকা, ৰেবিকা, গগৈ, পুৰন্দ (সম্পা.). অসমৰ সংস্কৃতি পৰম্পৰা আৰু পৰিৱৰ্তন, পূৰ্বায়ণ প্ৰকাশন, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, ২০১৯
- দাস, সূৰ্য, বিহু আৰু বৈদিক যজ্ঞৰ বিকৃতি, অসম বুক ট্ৰাষ্ট, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, ২০২২
- নাথ, প্ৰফুল্ল কুমাৰ। বৃহত্তৰ অসমৰ বৰ্ণিল সংস্কৃতি, ৰেখা প্ৰকাশন, ২০২১
- নেওগ, হৰিপ্ৰসাদ, গগৈ, লীলা। অসমীয়া সংস্কৃতি, বনলতা প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, ২০১৩
- বৰা ধীৰেন্দ্ৰ নাথ, বিহু সংস্কৃতি আৰু ইয়াৰ ঐতিহ্য, মাজুলী সাহিত্য প্ৰকাশন, মাজুলী,২০২৫
- বৰুৱা, বিৰিঞ্চি কুমাৰ। অসমৰ লোক সংস্কৃতি, বীণা লাইব্ৰেৰী, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, ২০১৮
- শৰ্মা, নবীন চন্দ্ৰ। অসমীয়া লোক-সংস্কৃতিৰ আভাস, বাণী প্ৰকাশ প্ৰাইভেট লিমিটেড, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-১, ২০২১
- হাকাচাম, উপেন ৰাভা, কলিতা, ধনেশ্বৰ. বিহু থাকে মানে, ৰেখা প্ৰকাশন, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, ২০১৮
- হাজৰিকা, কৰবী ডেকা (সম্পা), অসমীয়া গীত আৰু গীতিকবিতা, সাহিত্য অকাদেমি,২০১১
- হোছেইন, ইছমাইল। ৰঙালী বিহুৰ প্ৰসঙ্গ-কোষ, জ্যোতি প্ৰকাশন, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, ২০১৩
- হোছেইন, ইছমাইল। ৰঙালী বিহুৰ ঐতিহ্য বিচাৰ, জ্যোতি প্ৰকাশন, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, ২০১৫

আলোচনী ঃ

- ভোগালী, দৈনিক জনমভূমি (মাঘ বিহু বিশয সংখ্যা,২০১৬)
- ডঃ অনুৰাধা শৰ্মা, বিহুগীতৰ এটি নিবিড় পঠন, জনমভূমি, ৰঙালী বিহু সংখ্যা, ২০২০
- ডঃ অনিল শইকীয়া, বিহু এক যাত্ৰা, জনমভূমি, ৰঙালী বিহু সংখ্যা, ২০২০,পৃ-৮
- প্ৰান্তিক, এপ্ৰিল, ২০০৭
- সাতসৰী, নৱেম্বৰ, ২০১০

পৰিশিষ্ট

তথ্যদাতাৰ তালিকা

নাম	বয়স	লিংগ	ঠিকনা
ঘুনুচী শইকীয়া	৮২	মহিলা	ৰবৰগুৰি গাওঁ, তিনিচুকীয়া
চম্পা কলিতা তামূলী	৮০	মহিলা	উষাপুৰ গাওঁ, দুলীয়াজান
গুণকান্ত শইকীয়া	৭৯	পুৰুষ	ৰবৰগুৰি গাওঁ, তিনিচুকীয়া
চন্দ্ৰপ্ৰভা ভূঞা	৭৬	মহিলা	ভূঞাগাওঁ, তিনিচুকীয়া
পূৰ্ণকান্ত শইকীয়া		৬৭	পুৰুষ গুইজান, তিনিচুকীয়া

[1] *ড° লীলা গগৈ, অসমৰ সংস্কৃতি, পৃ-১৪*
[2] *উল্লেখিত,পৃ-৬৬*
[3] *ড° সূৰ্য দাস, বিহু আৰু বৈদিক যজ্ঞৰ বিকৃতি, পৃ-১৩*
[4] *উল্লেখিত, পৃ-২০* [5] *উল্লেখিত, পৃ-২০* [6] *উল্লেখিত, পৃ-২১*
[7] *ড° উপেন ৰাভা হাকাচাম, ড০ ধনেশ্বৰ কলিতা, বিহু থাকে মানে, পৃ-৮*
[8] *হেমকোষ, পৃ-৮৯৫*
[9] *ড° প্ৰফুল্ল কুমাৰ নাথ (সম্পাঃ), বৃহত্তৰ অসমৰ বৰ্ণিল সংস্কৃতি, পিনাকী দাস, বিহুগীতত প্ৰকৃতি সমাজ ইত্যাদি, পৃ-২৪০*
[10] *ড° অনিল শইকীয়া, বিহু এক যাত্ৰা, জনমভূমি, ৰঙালি বিহু সংখ্যা, ২০২০ পৃ-৮*
[11] *জিতু কুমাৰ লেখাৰু, বিহুগীত আৰু লোকসমাজ, ধান আৰু পথাৰ (প্ৰবন্ধ), কঢ়াপৰীয়া কেতেকী, ২০২৩*
[12] *কৰবী ডেকা হাজৰিকা (সম্পা), অসমীয়া গীত আৰু গীতিকবিতা, অনিল শইকীয়া, সামাজিক পটভূমিত অসমৰ বিহুনাম, পৃ-২৫*
[13] *ড° অনুৰাধা শৰ্মা, বিহুগীতৰ এটি নিবিড় পঠন, জনমভূমি, ৰঙালী বিহু সংখ্যা, ২০২০, পৃ-১৮৯*

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ *নীলকণ্ঠী ব্ৰজ*ঃ এক আলোচনা

পাঞ্চুৰিকা শইকীয়া

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
জালুকবাৰী, গুৱাহাটী - ৭৮১০১৪
৭০০২৫১২৬১৮
panchurikab2017@gmail.com

১.০০ অৱতৰণিকা ঃ

যুদ্ধোত্তৰ যুগত লেখিকা হিচাপে আত্মপ্ৰকাশ কৰা মামণি ৰয়ছম গোস্বামী (ইন্দিৰা গোস্বামী)ৰ সৃষ্টিশীল কৰ্মৰাজিৰ অন্যতম হৈছে উপন্যাসসমূহ। বাস্তৱৰ বিচিত্ৰ অভিজ্ঞতা আৰু বৈচিত্ৰময় বিষয়বস্তুৰে সাহিত্যৰ চৰ্চা কৰা মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে গল্প, উপন্যাস, কবিতা, প্ৰবন্ধ আদি সাহিত্যৰ বিবিধ শাখাত সৃষ্টিশীল হাতৰ পৰশ দি গৈছে। *চেনাবৰ সোঁত*ৰ পৰা *থেং ফাখ্ৰী তহচিলদাৰৰ তামৰ তৰোৱাল* লৈকে অলেখ উপন্যাস সৃষ্টি কৰা ঔপন্যাসিক মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ ৰচনাৰাজিত গভীৰ মানৱীয় অনুভূতিৰ লগতে নাৰী হৃদয়ৰ হা-হুতাশ, যন্ত্ৰণাৰ ছবি এখন দেখা যায়। 'বিষয়বস্তুৰ-বৈচিত্ৰ্য আৰু গাম্ভীৰ্য, বৈশিষ্ট্যপূৰ্ণ চৰিত্ৰৰ ৰূপায়ণ, নিপীড়িতজনৰ প্ৰতি অনুকম্পা, সাহসী উপস্থাপন, ভাষাৰ কৌশলী প্ৰয়োগ' (দাস, ৩০৯) আদিয়ে মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ ৰচনাৰাজিক এক সুকীয়া মাত্ৰা প্ৰদান কৰিছে। ভগৱানৰ লীলাভূমি পবিত্ৰ ধাম বৃন্দাবনৰ বাস্তৱ অভিজ্ঞতাৰ ভিত্তিত ৰচনা কৰা গভীৰ মানৱীয় আবেদনেৰে সিক্ত এখন উপন্যাস *নীলকণ্ঠী ব্ৰজ*। সমাজৰ তথাকথিত উচ্চ শ্ৰেণীৰ (বিশেষকৈ ব্ৰাহ্মণ) বিধৱাসকলৰ ওপৰত ধৰ্মৰ নামত চলা অত্যাচাৰ-নিষ্ঠুৰতাৰ বাস্তৱ দলিল এই *নীলকণ্ঠী ব্ৰজ* উপন্যাসখন।

দেখা যায় যে সমগ্ৰ বিশ্বতে যুগে যুগে পুৰুষসকলেই নাৰীৰ ওপৰত হোৱা বিভিন্ন অত্যাচাৰ-অবিচাৰৰ কাৰণ আৰু কাৰক হৈ আহিছে। ভাৰতীয় সমাজ ব্যৱস্থাত প্ৰাচীন কালতে এনে কিছুমান নিয়ম বান্ধি দিছিল, য'ত নাৰীৰ নিজস্ব মতামতক কেতিয়াও গুৰুত্ব দিয়া নহৈছিল, নাৰীক ভোগৰ সামগ্ৰী হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা হৈছিল। সমাজৰ তথাকথিত উচ্চ শ্ৰেণীৰ বা উচ্চ বংশীয় নাৰীয়ে এই পৰম্পৰাৰ হেতু জীয়াতু ভুগিব লগা হৈছিল। বিশেষকৈ বিধৱা নাৰীৰ অৱস্থিতি খুবেই বেদনাদায়ক হৈ পৰিছিল। এই *নীলকণ্ঠী ব্ৰজ* উপন্যাসখনৰ জৰিয়তে ঔপন্যাসিকে গভীৰ মানৱীয় আবেদনৰ লগতে নাৰীৰ হৃদয়ানুভৱৰো চিত্ৰণ ঘটাইছে।

১.০১ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি আৰু পৰিসৰ ঃ

মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ উপন্যাস *নীলকণ্ঠী ব্ৰজ* সম্পৰ্কে আলোচনা কৰিবলৈ যাওঁতে মূলতঃ বৰ্ণনাত্মক আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। প্ৰসঙ্গক্ৰমে উদ্ধৃতিৰ দ্বাৰা আলোচিত বিষয়ৰ প্ৰণালীবদ্ধ আলোচনা আগবঢ়োৱাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। আলোচনাটিত মূলতঃ *নীলকণ্ঠী ব্ৰজ* উপন্যাসখনত প্ৰকাশিত নাৰী জীৱনৰ চিত্ৰণ বিষয়ত আলোচনা আগবঢ়োৱাৰ লগতে ভাষা আৰু কথনশৈলী সম্পৰ্কেও এক আভাস দাঙি ধৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

২.০০ উপন্যাসখনৰ কাহিনী আৰু পটভূমি ঃ

নীলকণ্ঠী ব্ৰজ উপন্যাসখনৰ কাহিনী তিনিগৰাকী উচ্চবংশীয় নাৰীৰ মৰ্মন্তুদ জীৱনৰ বাস্তৱ দলিল। এগৰাকী কম বয়সীয়া বিধৱা সৌদামিনী, কেও-কিছু নোহোৱা শশী আৰু অবিবাহিত মৃণালিনীয়ে হিন্দুৰ পবিত্ৰ স্থান ব্ৰজধামত এক দুৰ্বিসহ জীৱন কটাব লগা হৈছে। সৌদামিনীৰ স্বামীৰ বিয়োগৰ পাছত এজন খ্ৰীষ্টান যুৱকৰ প্ৰেমত পৰিছে। যিটো সৌদামিনীৰ

পিতৃ-মাতৃ তথা উচ্চবংশীয় হিন্দু সমাজখনে মানি ল'ব পৰা নাই। গতিকে পাপ লগাৰ আশংকাত শৰীৰ আৰু মনৰ শুদ্ধিৰ বাবে পিতৃ-মাতৃয়ে জোৰ কৰি তাইক বৃন্দাবনলৈ লৈ আনিছে। কিন্তু বৃন্দাবনৰ বিধৱা ৰাধেশ্যামীসকলৰ দুখ আৰু দাৰিদ্ৰপীড়িত জীৱনে শান্তিৰ পৰিৱৰ্তে তাইক মনোকষ্টহে দিছে। জোৰ কৰি দমন কৰি ৰখা ইন্দ্ৰিয়ানুভূতি আৰু ইচ্ছাৰ বিৰুদ্ধে কৰিব লগা হোৱা কামে সৌদামিনীক মানসিক অন্তৰ্দ্বন্দ্বত ভোগাইছে। সেয়ে খ্ৰীষ্টান প্ৰেমিকজনৰ সৈতে মিলনৰ পাছতো তাই আত্মহত্যাৰ দৰে পথ বাছি ল'ব লগা হৈছে। এই বৃন্দাবনতে সৌদামিনীয়ে লগ পাইছে সংসাৰত কেও-কিছু নোহোৱা কুৰি বছৰীয়া বিধৱা শশী আৰু অবিবাহিত মৃণালিনীক। শশীয়ে মন্দিৰৰ পূজাৰী আলমগড়ীৰ কামত সহায় কৰাৰ লগতে তেওঁৰ 'ৰক্ষিতা' হিচাপে জীৱন কটাইছে। কিন্তু আলমগড়ীৰ মৃত্যুৰ লগে লগে শশী আশ্ৰয়হীনা হোৱাৰ লগতে নাৰীৰ মাংসলোভী কিছুমান মানুহৰ বাবে নিৰাপত্তাহীন হৈ ভয়-শংকাৰে জীৱন কটাব লগা হৈছে। যৌৱনত পিতৃয়ে কৰা ভ্ৰষ্টাচাৰৰ বাবে অবিবাহিত হৈ থাকিব লগা হোৱা মৃণালিনীয়ে শাৰীৰিক আৰু মানসিক যন্ত্ৰণাদগ্ধ এক জীৱন অতিবাহিত কৰিছে। কামনা-বাসনাক দমন কৰি ৰখাৰ চেষ্টা কৰিলেও মাতৃ হোৱাৰ অদম্য বাসনা এটাই মৃণালিনীক মাজে মাজে উন্মাদ কৰি তোলে। প্ৰেতাত্মাসদৃশ অন্ধ পিতৃ আৰু মানসিক বিকাৰগ্ৰস্ত মাতৃৰ ৰখীয়া হৈ, শুশ্ৰূষা কৰি এসময়ত তায়ো মানসিক ভাৰসাম্য হেৰুৱাই পেলোৱাৰ উপক্ৰম হয়। এওঁলোকৰ উপৰিও ভৰ যৌৱনতে বিধৱা হৈ বৃন্দাবনত জীৱন কটাবলৈ অহা নাৰীসকলৰ (ৰাধেশ্যামীসকলৰ) দাৰিদ্ৰপীড়িত জীৱন, যৌন-ব্যভিচাৰ, বৃন্দাবনৰ সাধু-সন্ন্যাসী, পূজাৰী তথা মন্দিৰ কৰ্তৃপক্ষৰ দুৰ্নীতিৰ একো একোখন স্পষ্ট আৰু বাস্তৱ ছবি উপন্যাসখনৰ পাতত দেখা গৈছে।

স্বকীয় মননশীলতাৰে সাহিত্য ৰচনা কৰা মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে নিজৰ জীৱনকালত লাভ কৰা দুখ-যন্ত্ৰণাই সমাজৰ নিপীড়িত-শোষিতজনৰ দুখ-যন্ত্ৰণাক অন্তৰৰ পৰা অনুভৱ কৰিবলৈ শিকাইছিল। তেখেতৰ উপন্যাসসমূহৰ অধিকাংশই বাস্তৱৰ পটভূমিত ৰচিত। অভিজ্ঞতাপুষ্ট জীৱনৰ এটি এটি অংশ তেখেতৰ উপন্যাসৰ পাতত বিদ্যমান। এই সম্পৰ্কে তেওঁ এনেদৰে কৈছে 'মোৰ ব্যক্তিগত বাস্তৱ দৰ্শনৰ অভিজ্ঞতা আৰু ইয়াৰ স্পৰ্শ মোৰ গোটেইবোৰ লিখনিতে বিদ্যমান। জীৱনৰ এটি এটি টুকুৰা আৰু ভাৱনা মোৰ সমগ্ৰ লিখাৰ মাজত ওতপ্ৰোতভাৱে জড়িত আছে। এক কৰ্কশ বাস্তৱৰ ভেটিতেই মই মোৰ উপন্যাসসমূহ লিখিছোঁ'। (গোস্বামী, ১৮৭) *নীলকণ্ঠী ব্ৰজ* উপন্যাসখনতো ঔপন্যাসিকাৰ বাস্তৱ অভিজ্ঞতাৰ ছাপ স্পষ্ট। পুণ্য অৰ্জনৰ অৰ্থে বৃন্দাবনলৈ অহা ৰাধেশ্যামী হিন্দু বিধৱাসকলৰ কাৰুণ্যসিক্ত জীৱনযাত্ৰাৰ বাস্তৱ প্ৰতিফলন এইখন উপন্যাস। ঔপন্যাসিকা নিজেও এগৰাকী উচ্চবংশীয় হিন্দু বিধৱা হোৱাৰ বাবে বৃন্দাবনলৈ গৈ লাভ কৰা অভিজ্ঞতাসমূহ উপন্যাসখনৰ পাতত বৰ্ণিত হৈছে।

৩.০০ উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত নাৰী জীৱনৰ চিত্ৰণ ঃ

সমাজত নাৰী আৰু পুৰুষৰ সমমৰ্যাদা, নাৰী সম্পৰ্কীয় পৰম্পৰাগত আৰু আধুনিক ধাৰণাৰ সংঘাতৰ আলমতেই মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ উপন্যাসসমূহ ৰচিত। *নীলকণ্ঠী ব্ৰজ* উপন্যাসখনো ইয়াৰ ব্যতিক্ৰম নহয়। উপন্যাসখনৰ সকলোবোৰ দিশেই মূলতঃ নাৰীকেন্দ্ৰিক। ব্ৰজধামৰ নাৰীসকলৰ জীৱনৰ চিত্ৰণ উপন্যাসখনৰ মাজত দেখা যায়। উপন্যাসখনৰ মুখ্য চৰিত্ৰ উচ্চ হিন্দু পৰিয়ালৰ সৌদামিনী নিচেই কোমল বয়সতে বিধৱা হয়। যৌৱনপ্ৰাপ্ত হোৱাৰ পাছত তাই এজন খ্ৰীষ্টান পুৰুষৰ প্ৰেমত পৰে, যি প্ৰেমক ৰক্ষণশীল ঘৰখন তথা সমাজখনে স্বীকাৰ কৰা নাই। স্বামীৰ মুখখনো ভালদৰে মনত নথকা সৌদামিনীয়ে উচ্চ বংশৰ বিধৱা হোৱাৰ বাবেই নিজৰ স্বাভাৱিক কামনা-বাসনাক ত্যাগ কৰি ব্ৰতচাৰিণী হৈ জীৱন কটাব লগা হৈছে। সমাজৰ দাবী বুলি মানি ল'লেও সৌদামিনীয়ে এই নিয়ম অন্তৰেৰে মানি ল'ব পৰা নাই। গাভৰু সৌদামিনীৰ ভৰি পিছল খোৱাৰ আশংকাত উপায়ন্তৰ পিতৃ-মাতৃয়ে পাৰ্থিৱ দুখ-বেদনা পাহৰি কৃষ্ণপ্ৰেমত মজি থকাৰ উদ্দেশ্যে ব্ৰজধামলৈ লৈ আনিছে। ব্ৰজধামৰ ধৰ্মমুখৰ পৰিৱেশৰ আঁৰৰ কদৰ্য বাস্তৱে সৌদামিনীক শংকিত কৰি তুলিছে। পেটৰ তাড়নাত ৰাধা-কৃষ্ণৰ গীতত মুখৰিত হৈ থকা ৰাধেশ্যামীসকলৰ যৌন ব্যভিচাৰৰ দৃশ্যই সৌদামিনীৰ মনত বৃন্দাবনৰ পূজাৰী, সাধু-সন্তৰ ভণ্ডামীৰ প্ৰতি এক তীব্ৰ বিৰোধীতাৰ জন্ম দিছে। এনে এক পৰিৱেশত সকলো পাহৰি পুণ্য অৰ্জন কৰাতো তাইৰ বাবে সম্ভৱ নাছিল। তাই এক গভীৰ অন্তৰ্দ্বন্দ্বত ভুগিছিল। শান্তি বিচাৰি ব্ৰজধামলৈ অহা সৌদামিনীক ব্ৰজধামৰ প্ৰকৃত পৰিচয়ে হতাশ কৰি তুলিছিল। নিজৰ ক্ষুদ্ৰ স্বাৰ্থ ত্যাগ কৰি মানৱ সেৱাত ব্ৰতী হ'ব পৰাকৈ তাই মানসিকভাৱে প্ৰস্তুত নাছিল। তায়ো কামনা-বাসনা তথা মানৱীয় অনুভূতিৰে ভৰপূৰ তেজ-মঙহৰ এজনী সাধাৰণ নাৰীয়ে আছিল। জোৰ কৰি ইন্দ্ৰিয় দমন কৰি ৰাখিব লগা হোৱাত তাই ক্ষোভিত হৈ পৰিছিল। তাইৰ অন্তৰৰ ক্ষোভ প্ৰকাশ হৈ ওলাইছিল — 'তেনে এক উচ্চ মনৰ যদি মই এতিয়াৰ পৰা অধিকাৰী হ'লোহেঁতেন হয়তো এই দুৰ্দশা আৰু মানসিক অস্থিৰতাই মোক কুৰুকি কুৰুকি নেখালেহেঁতেন। বিশ্বাস কৰক মই সেই মাটিৰ তিৰোতা যাৰ দেহ-মন এতিয়াও ধূলি-মাকতিৰে ধূসৰিত হৈ আছে আৰু পিছলৈও যে মই কিবা কৰিব পাৰিম সেই বিষয়ে মোৰ সন্দেহ

হয়, এক অনন্য নৈৰাশ্যই শৈশৱৰ পৰাই মোৰ সৈতে ঘৰ বান্ধি আছে। মোৰ উশাহ-নিশাহ, আশা-নিৰাশা, হাঁহি-কান্দোন সকলোৰে সৈতে একাত্ম হৈ আছে'। (গোস্বামী, ৭৬) এয়া কেৱল সৌদামিনীৰে মানসিক অৱস্থা নহয়। পৰম্পৰাৰ নামত বাধ্য হৈ কিছুমান নিয়ম মানি থাকিব লগা হ'লেও, জোৰ কৰি ইন্দ্ৰিয়ানুভূতিক ঢাকি ৰাখিবলৈ চেষ্টা কৰিলেও প্ৰত্যেক নাৰীৰে মানসিক জগতখন একপ্ৰকাৰৰ অস্থিৰতাই কোঙা কৰি পেলায়। এনেধৰণৰ প্ৰত্যেকগৰাকী নাৰীৰেই ভাষ্য এয়া।

ঔপন্যাসিকে সৌদামিনী চৰিত্ৰটোক আধুনিক নাৰীৰ প্ৰতীক হিচাপে অংকন কৰিবলৈ যত্ন কৰিছে। যাৰ বাবে তাই সমাজ ব্যৱস্থাৰ কদৰ্য ৰূপ দেখি, ৰাধেশ্যামীসকলৰ দুৰ্দশা দেখি সমাজক প্ৰত্যাহ্বান জনাই উদাত্ত কণ্ঠেৰে ক'ব পাৰিছে — 'মোৰ গোটেই জীৱনটো মই এনেদৰে আনৰ দয়া পৰৱশ হৈ কটাব নোৱাৰো - মই মহীয়সী নহওঁ যে তোমালোকৰ দৰে জনকল্যাণমূলক কাম কৰি মই মোৰ গোটেই জীৱন অতিবাহিত কৰিব পাৰিম। মই স্বাধীন। মই কাকো ভয় নকৰোঁ... তোমালোকে যদি মই সলনি হোৱা বুলি ভাবিছা তেতিয়াহ'লে...' (গোস্বামী, ৫৪) তথাকথিত সমাজৰ ভণ্ডামিৰ বিৰুদ্ধে থিয় হৈয়ো সৌদামিনীৰ জীৱন পৰিপূৰ্ণ নহ'ল। 'তোমালোক ভণ্ড!! মই তোমালোকক কচাইৰ লগত ৰিজাব পাৰোঁ' (গোস্বামী, ৫৪) বুলি মুক্তকণ্ঠে ক'ব পৰাকৈ সাহসী হৈয়ো তাই আত্মহত্যাৰ দৰে পথ বাচি ল'ব লগা হ'ল। অৱশ্যে সৌদামিনীৰ এই আত্মহত্যাক ক্ষয়িষ্ণু সমাজ ব্যৱস্থাৰ বিৰুদ্ধে এক প্ৰতিবাদ বুলি ক'ব পৰা যায়। সমাজৰ ৰক্ষণশীলতা, কু-সংস্কাৰ আৰু অন্ধবিশ্বাসে মানুহক কেনেকৈ তিল্-তিলকৈ নিঃশেষ কৰি তুলিব পাৰে উপন্যাসখনত তাৰ হৃদয়স্পৰ্শী বৰ্ণনা দাঙি ধৰিছে। সমাজে বাধা দিয়া নিয়ম তাই অতিক্ৰম কৰিব বিচাৰে অথচ কিবা এক প্ৰচণ্ড বাধাৰ সন্মুখত তাই বাৰে বাৰে হাৰ মানে। শৰীৰ আৰু মনৰ এই সংঘাতে সৌদামিনীক জৰ্জৰিত কৰি তুলিছে। সৌদামিনীয়ে একাকীকত্বক আঁতৰাই খ্ৰীষ্টান প্ৰেমিকজনক আকোঁৱালি ল'ব বিচাৰে অথচ কৌটিকলীয়া সংস্কাৰে তাইক এই কাম কৰাতো বাধা প্ৰদান কৰিছে। তাইৰ মানসিক দ্বন্দ্ব স্পষ্ট হৈ উঠিছে তাইৰ বক্তব্যত — 'শুনা, মই কি ভাবিছিলো, আজিৰ এই দিনটোৰে মোৰ জীৱনৰ গতিপথ এটিৰ কথা আঙুলিয়াই দেখুৱাব, সকলো দ্বিধা, সকলো আড়ষ্টতা আজিৰ এই দিনটোৰে মষিমূৰ কৰি পেলাব। আহা আৰু আগবাঢ়ি আহা, বাহিৰৰ সেই ধুমুহা আৰু মোৰ মনৰ এই ধুমুহা সকলো একাকাৰ হৈ গৈছে। মই ৰাক্ষসী হৈ গৈছো।' (গোস্বামী, ১২৩)

উপন্যাসখনৰ আন এটি নাৰী চৰিত্ৰ হ'ল কুৰি বছৰীয়া বিধৱা শশী। আশ্ৰয়হীনা শশী ঠাকুৰ চাহাবৰ মন্দিৰৰ পূজাৰী নপুংসক আলমগড়ীৰ আশ্ৰিতা হিচাপে আছিল যদিও আলমগড়ীৰ মৃত্যুত তাই সম্পূৰ্ণৰূপে নিৰাশ্ৰয়া হৈ পৰে। ইমানদিনে খোৱা-পিন্ধা আৰু নিজৰ ঔৰ্দ্ধদেহিকৰ ক্ষেত্ৰত নিশ্চিন্ত হৈ থকা শশীয়ে জীৱনৰ শেষ সময়ৰ কথা চিন্তা কৰি শংকিত হৈ পৰিছে। ব্ৰজৰ মন্দিৰত কিবা উপায়েৰে এসাজ খাই হ'লেও তাই অৱশ্যে জীয়াই থাকিব পাৰিব, কিন্তু 'ব্ৰজৰ যুৱতী বিধৱা আৰু অসতী তিৰোতাৰ গোন্ধ লৈ ফুৰা কুকুৰনেচীয়া জাকৰ' (গোস্বামী, ৯৫) পৰা নিজকে নিৰাপদে ৰখাতো তাইৰ বাবে দুৰ্বিসহ হৈ পৰিল। নৰমাংসলোভী এই পশুবোৰৰ বাবে তাই শংকিত হৈ দিন কটাব লগা হ'ল। হাজাৰ নীতি-নিয়মৰ মাজত থাকিলেও; ভক্তিৰ বান্ধোনেৰে পূজা-পাতলৰ মাজত মনতো বান্ধি ৰাখিব বিচাৰিলেও মানুহৰ মনৰ স্বাভাৱিক কামনা-বাসনাক একেবাৰে নসাৎ কৰিব নোৱাৰি। হয়তো ইয়াৰ মাজেদি কামনাক সংযত কৰিবলৈ যত্ন কৰা হয়। তথাপি ক'ব নোৱাৰাকৈয়ে মনৰ মাজত কামনাৰ ভাব উমি উমি জ্বলি থাকে। সেয়ে হয়তো পবিত্ৰ স্থান ব্ৰজধামত ভগৱন্তৰ চৰণত নিজকে অৰ্পণ কৰাৰ পাছতো; পাৰ্থিৱ সুখৰ পৰা আঁতৰি ভক্তি উপাসনাতে ব্যস্ত থকাৰ পাছতো তাই বালক ব্ৰহ্মচাৰীৰ প্ৰতি একধৰণৰ আকৰ্ষণ অনুভৱ কৰিছে — "স্বামীজীক দেখাৰ লগে লগে এক স্বৰ্গীয় আনন্দৰ উত্তেজনাত তাইৰ কুৰি বছৰীয়া কোমল দেহ থক্-থক্‌কৈ কঁপি উঠিছে। যিমানেই তাই সংকুচিত হৈ পৰিছে সিমানেই স্বামীজীক আকৌ এবাৰ লগ পোৱাৰ আশাত তাইৰ অন্তৰাত্মাই হাহাকাৰ কৰি উঠিছে"। (গোস্বামী, ৬৬) তাইৰ মনত জাগি উঠা এই প্ৰেমৰ কোনো বাস্তৱ ভিত্তি নাছিল। কিয়নো ই আছিল তাইৰ মনৰ মাজত কল্পনা কৰি লোৱা কোনো এক প্ৰিয়তমৰ ছবি, যিখন ছবি ক'ব নোৱাৰাকৈয়ে সেই ব্ৰহ্মচাৰীজনৰ লগত মিলি গৈছিল। স্বামীজীৰ প্ৰতি তাইৰ এই আকৰ্ষণ আছিল স্বাৰ্থহীন তথা নিষ্কলুষ; কোনোধৰণৰ প্ৰতিদান নিবিচৰা প্ৰেম। কেৱল তাই অন্তৰৰ পৰা বিচাৰিছিল যে তাইৰ প্ৰিয়তম অৰ্থাৎ ব্ৰহ্মচাৰীজন যাতে সৎ পথত থাকিব পাৰে — "তুমি যেন সদায়ে এনে হৈ থাকা। ভুক্তভোগীৰ মৰ্মস্থলীলৈ যাব পৰা তোমাৰ অন্তৰ্দৃষ্টি সদায়ে যেন একে হৈ থাকে!" (গোস্বামী, ৮৬) প্ৰত্যেক নাৰীৰে অন্তৰত নিজৰ প্ৰিয় পুৰুষৰ এখন ছবি অংকিত হৈ থাকে। যিখন ছবিৰ লগত বাস্তৱ জীৱনত লাভ কৰা পুৰুষজনৰ সৈতে বহুসময়ত মিল নাথাকিবও পাৰে; অথচ নাৰীয়ে সেই প্ৰিয় পুৰুষজনৰ গুণবোৰ স্বামীৰ গাত দেখাৰ হাবিয়াস কৰে। শশীয়েও মনৰ মানুহজনৰ ছবিখন তেওঁৰ স্বামীৰ মাজত বিচাৰিছিল যদিও খুউব কম সময়ৰ বাবেহে লগ পোৱা স্বামীক বুজি পোৱাৰ আগতে বিধৱা হোৱাত বহু আশাই আধৰুৱা হৈ ৰৈ গ'ল। কিন্তু প্ৰিয় পুৰুষৰ সেই ছবিখন

মনৰ মাজতে লুকাই থাকিল। যি স্বামীজীক দেখাৰ পাছত পুনৰ জাগি উঠিছে। ইয়াৰ জৰিয়তে নাৰী মনঃস্তত্ত্বৰ এখনি সুন্দৰ ছবি ফুটি উঠিছে।

উন্মাদিনী মাতৃ আৰু অন্ধ পিতৃৰ শুশ্ৰূষাৰ নিমিত্তেব্ৰজবাস কৰা অবিবাহিতা মৃণালিনীও উপন্যাসখনৰ আন এটি চৰিত্ৰ। ডেকাকালত পিতৃয়ে অবাবত টকা-পইচা খৰচ কৰাৰ বাবে মৃণালিনীহঁতৰ আৰ্থিক অৱস্থা খুবেই বেয়া হৈ পৰিল। তদুপৰি পিতৃৰ ব্যভিচাৰী জীৱনৰ বাবে বিয়া হ'বলৈ সুযোগ নোপোৱা মৃণালিনীয়ে নিজৰ ইন্দ্ৰিয়ানুভূতিক দমন কৰি ৰাখিলেও মনৰ মাজত মাতৃত্বৰ বাসনা এটাই তাইক মাজে মাজে উদ্বাউল কৰি তোলে। মাতৃত্ব লাভ কৰাতো নাৰী জীৱনৰ এক অনন্য প্ৰাপ্তি। প্ৰত্যেক নাৰীয়ে মাতৃ হোৱাৰ সপোন দেখে। শৰীৰে, মনে বিচৰা প্ৰেমাস্পদৰ সৈতে বিবাহপাশত আবদ্ধ হৈ মাতৃত্ব লাভৰ জৰিয়তে নাৰী জীৱনক সফল কৰাৰ হাবিয়াস প্ৰত্যেক নাৰীৰে থাকে। মাতৃত্ব লাভৰ নাৰীৰ যি চিৰন্তন প্ৰবৃত্তি সেই সম্পৰ্কে বৈদ্যনাথ শীলে কৈছে —'ফুলেৰে জীৱনেৰে মুক্তি যেমন ফলে, নাৰীৰ জীৱনৰ মুক্তিও তেমনি সন্তানে'। মৃণালিনীৰ মনৰ এই কামনাক ব্ৰজধামৰ ধাৰ্মিক পৰিৱেশেও প্ৰশমিত কৰিব পৰা নাই। তাইৰ অন্তৰৰ বাসনা এদিন ৰাধেশ্যামীহঁতৰ আগত উন্মুখ হৈ পৰিছে — "পিন্ধি থকা ব্লাউজটোৰ এবখলা তাই হাতেৰে আজুৰি ফালি পেলালে — 'ৰাধেশ্যামী'হঁতৰ আগত নিজৰ স্তনদ্বয়ক উন্মুক্ত কৰি চিঞৰি উঠিল ঃ তহঁতে ক' — মই জানো মাক হ'ব নোৱাৰিলোহেঁতেন? মই জানো এটি 'ভগৱান' জন্ম দিব নোৱাৰিলোহেঁতেন?" (গোস্বামী, ১০০) এফালে অন্ধ পিতৃ আৰু মানসিক বিকাৰগ্ৰস্ত মাতৃ; আনফালে বিহাৰীমোহন কুঞ্জ বিক্ৰী কৰাৰ পাছত হোৱা দৰিদ্ৰতাৰ জীৱন-এনে এক অভাৱনীয় পৰিস্থিতিৰ মাজত সোমাই মৃণালিনীৰ মানসিক অৱস্থা কাঢ়িল হৈ পৰিছে। দুটা প্ৰেতাত্মাৰ দৰে মানুহৰ ৰখীয়া হৈ জীৱন কটোৱাতো তাইৰ বাবে অসহনীয় হৈ পৰিছে। সেয়ে শেষৰ ফালে তাইক উন্মাদপ্ৰায় হৈ পৰা দেখা গৈছে।

ব্ৰজধামৰ উচ্চ হিন্দু সমাজৰ বিধৱা নাৰীৰ অসহনীয় বৰ্ণনাৰ মাজেদি উপন্যাসখনত বৰ্ণিত হৈছে এখন ক্ষয়িষ্ণু সমাজৰ বাস্তৱ ছবি। সচৰাচৰ ভাৰতীয় লোকে ব্ৰজধামৰ প্ৰতি পোষণ কৰা ধাৰণাৰ প্ৰতি এক প্ৰবল প্ৰত্যাহ্বান উন্মোচিত হৈছে উপন্যাসখনিত। ভাৰতৰ হিন্দু সমাজৰ অতি পবিত্ৰ স্থান ব্ৰজধাম। ইয়াত সকলো কৃষ্ণপ্ৰেমত মজি থাকে। বিভিন্ন ধৰ্মীয় আচাৰ-অনুষ্ঠান, নিৰন্তৰ পূজা-অৰ্চনাৰে এক ধৰ্মীয় পৰিৱেশ বিৰাজ কৰা ব্ৰজধামৰ অভ্যন্তৰত এক অৱক্ষয়ৰ ছবিহে দেখা পোৱা যায়। যাৰ ইংগিত ঔপন্যাসিকে আৰম্ভণিতে দিছে — "সৌদামিনীয়ে দুয়োকাষে চালে, ধূলিৰে ধূসৰিত কাঁইটীয়া জোপোহা আৰু কাবুলী ৰমণাৰ জোপোহাৰে ভৰি থকা হাবি এখন। কাবুলী ৰমণাৰ ঠানিবোৰ মাছৰ কাঁইটৰ দৰে ঠৰঙা আৰু ইয়াৰ বেঙুনীয়া ফুলবোৰ কোনোবাই গছত গুজি থোৱাৰ দৰে দেখা গৈছে।" (গোস্বামী, ২) ধৰ্মৰ নামত অনিয়ম-অনীতিয়ে ব্ৰজধামৰ পৰিৱেশ কলুষিত কৰি তুলিছে। বিশেষকৈ যৌন কেলেংকাৰীৰ দৰে চৰম অনৈতিক কাৰ্যৰ কথাও ঔপন্যাসিকে স্পষ্ট ৰূপত তুলি ধৰিছে — 'এৰা ধৰ্মৰ নামত স্ত্ৰীৰ সংশ্ৰৱৰ এই বীভৎস কাণ্ড আৰু কিমান দিনলৈ চলি থাকিব?' (গোস্বামী, ১০৭) বহুসময়ত ধনৰ আশাত কমবয়সীয়া বিধৱা ৰাধেশ্যামীক গোপনে চালান দিয়াৰ দৰে অনৈতিক কাৰ্যও ব্ৰজত চলি আছে। ব্ৰজৰ মন্দিৰলৈ যাত্ৰীৰ দ্বাৰা উচৰ্গা কৰা আৰ্থিক অনুদান, বস্ত্ৰ, বাচন, সোণ, ৰূপ, মণিমুক্তাবোৰ অনুচিত মূল্যত বিক্ৰী কৰিছিল। আনকি কৃষ্ণভক্তিৰে ব্ৰজধাম মুখৰিত কৰা কম বয়সীয়া বিধৱা ৰাধেশ্যামীসকলক জোৰ কৰি কৃষ্ণ ভক্তিৰসত নিমজ্জিত কৰি ৰখা হয় - 'পেটত ভোক থাকিলেও সিহঁতে গীত গাব লাগিব। কণ্ঠৰুদ্ধ হোৱাৰ উপক্ৰম হ'লেও সিহঁতে টেঁটু ফালি চিঞৰিব লাগিব'। (গোস্বামী, ২২) এনেবোৰ কাৰ্যই ঘূণে ধৰা পৰম্পৰাগত ভাৰতীয় সমাজ ব্যৱস্থাৰ প্ৰকৃত স্বৰূপ উদঙাই তুলিছে। কৃষ্ণৰ লীলাভূমি ব্ৰজধামৰ দৰে পবিত্ৰ ধৰ্মীয় স্থানতো অৱনতি ঘটিছে মানৱীয় মূল্যবোধৰ। অনৈতিক কাৰ্যত লিপ্ত হৈছে স্বয়ং ধৰ্মীয় সাধু-সন্যাসীসকল। পুত্ৰহীনা শেৰাফী শেঠানীয়ে সন্তান লাভৰ আশাৰে নিঃসন্তান মহিলাক সন্তান দিয়া কপূৰতলা সন্যাসীৰ লগত এমাহ থাকি আহি সন্তানসম্ভৱা হৈছে। অথচ তেওঁৰ মনত শান্তি নাই। হয়তো তেওঁ আত্মগ্লানিত ভুগিছে। সেয়ে তেওঁ শশীক কৈছে —"স্বামীজীৰ সৈতে কুৰি দিন সহবাসৰ পাছত এয়া মই অন্তঃসত্ত্বা। কিন্তু কিয় মই এনেদৰে ঘূৰি ফুৰিছোঁ। কিয় ক'তো শান্তি নাই? তাৰপাছত তেওঁ আঙুলি এটা তাইৰ ফালে টোঁৱাই চিঞৰি উঠিল ঃ সময় থাকোতেই আঁতৰ হ, আৰু হৃদয়ৰ মাজত এক মন্দিৰ স্থাপন কৰি ল। খুব কষ্ট! কিন্তু আৰু কোনেও বুজিব নোৱাৰে"। (গোস্বামী, ৮৬-৮৭) তেওঁ শশীক যেন সোঁৱৰাই দিছে নিজৰ মনৰ পাছত চলি থকা যুদ্ধখনৰ কথা। ইয়াত এফালে সন্তান প্ৰাপ্তিৰ সুখ আছে; কিন্তু সন্যাসীৰ সৈতে হোৱা অবৈধ সম্পৰ্কৰ ফলত লাভ কৰা এই খবৰে সুখতকৈ তেওঁক অধিক দুখী কৰিহে তুলিছে। কাৰণ ইয়াত তেওঁৰ নৈতিকতাৰ পৰাজয় হৈছে। এই কলুষতা ঢাকি মনৰ মাজত এক পবিত্ৰ মন্দিৰ স্থাপন কৰিব বিচাৰে; অথচ এয়া তেওঁৰ পক্ষে সম্ভৱ হৈ উঠা নাই। তেওঁৰ মনৰ মাজত দ্বন্দ্ব বাঢ়ি যোৱাৰ ফলত তেওঁ মানসিক কষ্টত ভুগিছে।

ধৰ্মীয় স্থান হ'লেও ব্ৰজধামতো ভাৰতীয় সমাজৰ জাতিভেদৰ কঠোৰ ব্যৱস্থা দেখা যায়। ইয়াতো বৃত্তি অনুসৰি প্ৰত্যেক লোকৰে সমাজত সুকীয়া সুকীয়া স্থান আছে। ব্ৰজধামৰ এই সমাজখনতো জামাদাৰ, সাধু-সন্ত তথা অন্য বৃত্তিধাৰী লোকৰ স্থান সুকীয়া। ৰায়চৌধুৰীয়ে হাজাৰ চেষ্টা কৰিও মানুহৰ জাতি সম্পৰ্কে থকা ধ্যান-ধাৰণাক সলনি কৰিবলৈ সক্ষম নহ'ল। সেয়ে এজনী নৃত্যৰতা অস্পৃশ্য যুৱতীয়ে ব্ৰজধামৰ ৰঙ্গজী মন্দিৰৰ ভিতৰত সোমাই ভেঙ্কটেশ্বৰক মালা পিন্ধাব খোজোতে দণ্ডাধাৰী চিপাহী এটাই তাইক খেদি পঠিওৱাৰ উপৰিও এদল লোকে তাইৰ পিছে পিছে দৌৰি চিঞৰিছিল — "তাই অস্পৃশ্যা, তাই মহাপ্ৰভু ভেঙ্কটেশ্বৰক স্পৰ্শ কৰি মালা পিন্ধাব খোজে ... মাৰ তাইক।" (গোস্বামী, ৭৮) ব্ৰজধামত মানৱতাৰ চূড়ান্ত অৱক্ষয় ঘটিছিল। জীৱন্তকালতে ঔৰ্দ্ধদেহিকৰ বাবে পইচা সঁচা বিধৱাসকলৰ ওপৰত চোৰ-ডকাইতৰ উপদ্ৰৱ তথা লুণ্ঠন চলে। গুপুতে ৰখা ধন কাঢ়ি নিয়াৰ লগতে মৃত্যুৰ পাছতো ধন-সোণ বিচাৰি নিৰ্জীৱ শৰীৰটোৰ ওপৰতো অত্যাচাৰ চলে। কেতিয়াবা মৃতদেহ কাষত থৈ বিধৱাসকলৰ জমা টকাক লৈয়ো দুটা দলৰ মাজত লাঠি কিল চলে। এইসমূহে অৱশ্যে ব্ৰজধামৰ দাৰিদ্ৰপীড়িত জনসাধাৰণৰ বাস্তৱ ছবি এখন দাঙি ধৰে।

মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে ব্ৰজধামত প্ৰত্যক্ষ কৰা মানৱতাৰ ছবি এখন অতি সূক্ষ্মভাৱে অংকণ কৰিছে। ক্ষুধাৰ তাড়ণা আৰু চিকিৎসাৰ অভাৱত পথৰ দাঁতিত পৰি ৰোৱা লোকৰ মৃতদেহ, মুক্তিৰ ক্ষণ গণি ব্ৰজধামত পৰি থকা অনাহাৰী ভক্ত, গাভৰু নাপালে বৃদ্ধা ৰাধেশ্যামীকো কামনা পূৰণৰ স্বাৰ্থত টানি নিয়া পাষণ্ডৰ দলসমূহে মানৱতাবাদ তথা নৈতিকতাৰ অৱক্ষয়ৰ চৰম দৃষ্টান্ত দাঙি ধৰিছে। অসমীয়া সাহিত্যৰ এগৰাকী বলিষ্ঠ কথাশিল্পী মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে উপন্যাসসমূহৰ মাজেৰে সমাজ জীৱনৰ একো একোটা অংশ ফুটাই তুলিবলৈ যত্ন কৰে। *নীলকণ্ঠী ব্ৰজ* উপন্যাসখনৰ জৰিয়তেও অকালতে বৈধব্য জীৱন সাৰটি ল'ব লগা নাৰী এগৰাকীয়ে পৰম্পৰাগত ৰক্ষণশীল সমাজ এখনত সন্মুখীন হোৱা নানা সমস্যা তথা যন্ত্ৰণাৰ ছবি এখন সাৱলীলভাৱে অংকণ কৰিছে। উপন্যাসখনৰ সৌদামিনী, শশী আৰু মৃণালিনী চৰিত্ৰৰ জৰিয়তে নাৰী মনস্তাত্বিক দৃষ্টিভঙ্গীৰো সুন্দৰ প্ৰতিফলন ঘটিছে।

৪.০০ উপন্যাসখনত ব্যৱহৃত ভাষা আৰু কথনশৈলী ঃ

সাহিত্যৰ নান্দনিক সৌন্দৰ্য নিৰ্ণয়ত বিশেষভাৱে সহায় কৰা গদ্যশৈলী সাহিত্যৰ এবিধ অংগ। মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ ৰচনাৰাজিৰ মাজতো এক বৈশিষ্ট্যপূৰ্ণ কথনভংগীৰ ব্যৱহাৰ দেখা যায়। তেখেতৰ এই নিজস্ব ভাষা আৰু কথনশৈলীৰ বাবেই তেওঁ একক আৰু অনন্য। তেওঁৰ উপন্যাসৰ ভাষা বৰ্ণনাধৰ্মী যদিও বহুসময়ত বিষয়বস্তুক স্পষ্ট কৰি তুলিবৰ বাবে নাটকীয় ৰীতিও প্ৰয়োগ কৰা দেখা যায়। *নীলকণ্ঠী ব্ৰজ* উপন্যাসখনৰ জৰিয়তেও তেখেতৰ ভাষিক ক্ষেত্ৰত থকা দক্ষতাৰ উমান পোৱা যায়। উপন্যাসখনত ব্যৱহৃত সহজ-সৰল গ্ৰাম্য অসমীয়া শব্দ, জতুৱা-ঠাঁচ, খণ্ডবাক্যৰ যথাৰ্থ প্ৰয়োগে উপন্যাসখনক সমৃদ্ধ কৰিছে।

সংস্কৃত, ইংৰাজী, অসমীয়া, বাংলা, হিন্দী আদি কেইবাটাও ভাষাত দক্ষতা থকা মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে তেওঁৰ ৰচনাৰাজিত সহজ সৰল, থলুৱা অসমীয়া শব্দৰ লগতে তৎসম, অৰ্দ্ধতৎসম, তদ্ভৱ, দেশী-বিদেশী আদি শব্দৰ ব্যৱহাৰেৰে অভিনৱত্বৰ পৰিচয় দিবলৈ সক্ষম হৈছে। দেশী-বিদেশী শব্দৰ ভিতৰত বিশেষকৈ হিন্দী, ইংৰাজী, আৰবী ভাষাৰ শব্দৰ প্ৰয়োগ *নীলকণ্ঠী ব্ৰজ* উপন্যাসখনত দেখা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে —

তৎসম শব্দ ঃ ধৰ্ম, ভগ্ন, ক্লীৱ, শৃঙ্গাৰ, জ্ঞান, ব্ৰহ্মকুণ্ড আদি;
হিন্দী শব্দ ঃ টাঙ্গা, শেঠনী, ছাৰাবী, ঝুলন আদি;
ইংৰাজী শব্দ ঃ মেনেজাৰ, স্কুল, স্পীকাৰ আদি;
আৰবী শব্দ ঃ বন্দুক, জামাদ আদি।

মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ উপন্যাসৰ মূল বৈশিষ্ট্যই হৈছে কামৰূপী উপভাষাৰ প্ৰয়োগ। *নীলকণ্ঠী ব্ৰজ* উপন্যাসৰ পৃষ্ঠভূমি যিহেতু বৃন্দাবন; গতিকে ইয়াত কামৰূপী উপভাষাৰ পৰিৱৰ্তে বৃন্দাবন বা ব্ৰজধামত বাস কৰা লোকৰ মুখৰ ভাষাহে ব্যৱহাৰ কৰিছে। সেয়ে ইয়াত অসমীয়া ভাষাৰ সমান্তৰালভাৱে হিন্দী, সংস্কৃত আদি শব্দৰ পয়োভৰ দেখা যায়। উপন্যাসখনৰ পটভূমিৰ পৰিৱেশৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি প্ৰয়োজনসাপেক্ষে উপন্যাসখনত সংস্কৃত শব্দ আৰু সংস্কৃত শ্লোক ব্যৱহাৰ কৰাও দেখা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে —

'বুভুক্ষিতঃ কিং ন কৰোতি পাপম্' (২১);
'স্মৰ গৰল খণ্ডনং মম শিৰসি মণ্ডনং
দেহি পদপল্লৱ মুদাৰম্।।' (৫৮) আদি

পৰিৱেশ অনুযায়ী উপযুক্ত শব্দৰ ব্যৱহাৰ কৰা মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে সমাৰ্থক শব্দ, অনুকাৰ শব্দ, যুৰীয়া শব্দ, দ্বিৰুক্তি, অনুপ্ৰাস আদিৰ বহুল প্ৰয়োগৰ দ্বাৰাও ৰচনাক শ্ৰুতিমধুৰ কৰি তুলিছে। উদাহৰণস্বৰূপে —

সমাৰ্থক ঃ চুকে-কোণে, সাধু-সন্যাসী আদি;

দ্বিৰুক্তি ঃ কুৰুকি কুৰুকি, বিস্ময়কৰ! বিস্ময়কৰ!, খুপি খুপি আদি ;

অনুপ্ৰাস ঃ বিয়া-বাৰু, জীৱন-যাপন, সৰু-সুৰা, কথা-বতৰা আদি;

অনুকাৰ ঃ ঝন-ঝন, ঢিমিক-ঢামাক, খট্-খট্ আদি;

জতুৱা শব্দ ঃ জাঙুৰ খাই উঠা, তহল দি ফুৰা আদি।

জতুৱা ঠাঁচ, খণ্ডবাক্য, প্ৰবাদ-প্ৰবচনৰ ব্যৱহাৰ মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ ৰচনাৰাজিৰ অন্যতম বৈশিষ্ট্য। এইসমূহৰ উপযুক্ত ব্যৱহাৰে উপন্যাসৰ বিষয়বস্তুক অধিক স্পষ্ট ৰূপত তুলি ধৰিছে। তেওঁৰ *নীলকণ্ঠী ব্ৰজ* উপন্যাসখনতো ইয়াৰ যথাযোগ্য প্ৰয়োগ দেখা যায় — '... খন্তেকৰ কাৰণে এই জন-সমুদ্ৰৰ আস্ফালন যেন কাঁহ পৰি জীণ গ'ল। এয়া তেল আৰু পানীৰ এই প্ৰচণ্ড স্ৰোতক আওকাণ কৰি এটি খেলুৰৈ বহু ওপৰলৈ উঠি গ'ল' (১৮)।

তদুপৰি তেখেতৰ উপন্যাসখনৰ পাতত উপলব্ধ 'মণিমাণিক্য খচিত', 'হাড়ত বন গজা', 'শুই থকা সাপ', 'চকুৰ মণি', 'পোৱালি হেৰুৱা বাঘিনী' আদি খণ্ডবাক্য বা জতুৱা ঠাঁচৰ ব্যৱহাৰে ; 'কাঠফুলাৰ দৰে ৰং', 'কছাইখানাত নতুনকৈ কটা মঙহৰ গোন্ধ', 'চপচপীয়া পুখুৰীৰ দৰে ভৰপূৰ হৈ পৰিছে তাইৰ দুয়োটি চকু', 'জটাই ফাগুণ মাহৰ ৰাধাকুঞ্জৰ মাটিৰ বৰণ লৈছে' আদিৰ দৰে উপমা অলংকাৰৰ প্ৰয়োগে উপস্থাপনশৈলী অনুপম।

নীলকণ্ঠী ব্ৰজ উপন্যাসখন ধৰ্মীয় পটভূমিত ৰচিত। ভগৱান শ্ৰীকৃষ্ণৰ লীলা-মাহাত্ম্যৰে ভৰি থকা, হিন্দু সমাজৰ বাবে অতিকৈ পবিত্ৰ তথা স্বৰ্গসদৃশ স্থান এই বৃন্দাবন। পুৱাৰ পৰা নিশালৈকে ভগৱানৰ ভজন-কীৰ্তনেৰে ভৰি থকা বৃন্দাবনৰ এই ভক্তিৰ পৰিৱেশটোও উপন্যাসৰ পাতত দেখা যায়। বৃন্দাবনৰ কদৰ্যময় ভিতৰছোৱাৰ বৰ্ণনা দিবলৈ যাওঁতেও ঔপন্যাসিকে ধৰ্ম, ভক্তি আদিৰ লগত জড়িত শব্দ, বাক্য আদিৰ ব্যৱহাৰ কৰি বৃন্দাবনৰ বাহ্যিক পৰিৱেশটোক ফুটাই তুলিছে। মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ অন্যান্য উপন্যাসৰ দৰে *নীলকণ্ঠী ব্ৰজ* উপন্যাসৰ ভাষা ব্যৱহাৰেও তেখেতৰ গদ্যশৈলীৰ নিজস্ব বৈশিষ্ট্যক সুন্দৰ ৰূপত প্ৰতিভাত কৰিছে।

নিজৰ অভিজ্ঞতাৰে, নিজৰ লেখাৰে জীৱনক আৱিষ্কাৰ কৰিব বিচৰা মামণি ৰয়ছম গোস্বামী অসমীয়া গদ্য সাহিত্যৰ এগৰাকী প্ৰভাৱশালী লেখিকা। বাস্তৱ অভিজ্ঞতাৰ অবিহনে কেৱল কল্পনাৰে সাহিত্য ৰচনা কৰাৰ পৰিৱৰ্তে লেখিকাই প্ৰত্যেকটো গল্প, প্ৰত্যেকখন উপন্যাস লিখাৰ পূৰ্বে আহৰণ কৰিব বিচাৰে সঁচা অভিজ্ঞতা। *নীলকণ্ঠী ব্ৰজ* উপন্যাসখনো ইয়াৰ ব্যতিক্ৰম নহয়। গৱেষণা কৰ্মৰ বাবে বৃন্দাবনত থকা সময়ছোৱাত প্ৰত্যক্ষ কৰিছিল বাহ্যিকতাৰ আঁৰত বৈ যোৱা বৃন্দাবনখন। ইয়াৰে পটভূমিত শক্তিশালী গদ্যশৈলীৰে লিখি উলিওৱা উপন্যাসখনে অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যৰ জগতখনকো সমৃদ্ধ কৰি তুলিছে। উপন্যাসখনৰ নামকৰণতো সোমাই আছে ইংগিতময়তা। অমৃত মন্থনত নিগৰিত হোৱা বিহ পান কৰি নীলকণ্ঠী হোৱা মহাদেৱৰ দৰে এই ব্ৰজবাসী নাৰীসকলেও দৈনিক বিহ পান কৰি আছে। বিহ পান কৰি মহাদেৱে জগতক ৰক্ষা কৰিছিল যদিও এই নাৰীসকলে নিজকো ৰক্ষা কৰিবলৈ সক্ষম নহয়। নাইবা ক'ব পাৰি সমগ্ৰ ব্ৰজধামে বিহৰ প্ৰকোপত নীলৱৰ্ণী হৈ পৰিছে, অথচ এই বিহ পান কৰি ব্ৰজবাসীক বিশেষকৈ নাৰীসকলক উদ্ধাৰৰ নিমিত্তে কোনো সদাশিৱৰ আৱিৰ্ভাৱ নহ'ল। আনকি এই বিহ বাহিৰৰ পৰা প্ৰত্যক্ষ কৰাও অসম্ভৱ হৈ পৰিল। সমগ্ৰ ব্ৰজ বা বৃন্দাবনেই বিহেৰে ভৰি পৰিল আৰু এই বিহ নাশ কৰাৰ সম্ভাৱনাও খুব কম। অনুভূতিপ্ৰৱণতাক জগাই তুলিব পৰা ভাষা আৰু কাব্যময় পৰিৱেশ সৃষ্টি কৰিব পৰা গুণ মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ উপন্যাসত দেখা যায়। তেখেতে ৰচনাৰ জৰিয়তে তমসা আঁতৰাই প্ৰেম আৰু মানৱতাৰ পোহৰ সিঁচিব বিচাৰে। যি কি নহওঁক, এইটো স্বীকাৰ্য যে মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ *নীলকণ্ঠী ব্ৰজ* এখন সাৰ্থক আৰু কলা গুণসম্পন্ন অসমীয়া উপন্যাস। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

গোস্বামী মামণি ৰয়ছম। *নীলকণ্ঠী ব্ৰজ*। চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ষষ্ঠ (দ্বিতীয় চন্দ্ৰ প্ৰকাশ) সংস্কৰণ ঃ ২০১৮

গগৈ তৰালী। *অসমীয়া ভাষা, সাহিত্য-সংস্কৃতি আৰু মামণি ৰয়ছম গোস্বামী*। আঙ্গিক প্ৰেছ, প্ৰথম সংস্কৰণ - আগষ্ট, ২০১৬

ঠাকুৰ নগেন। *এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস*। অসমীয়া বিভাগ, গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়, প্ৰথম প্ৰকাশ- নৱেম্বৰ ২০০০

দাস অমল চন্দ্ৰ। *অসমীয়া উপন্যাস পৰিক্ৰমা*। বনলতা, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী- ১, প্ৰথম সংস্কৰণ, মে' ২০১২

নেওগ মহেশ্বৰ। *অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা*। চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, চতুৰ্দশ তাঙৰণ - জুন ২০১৫

বৰগোহাঞি হোমেন। *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (ষষ্ঠ খণ্ড)*। আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি সংস্থা, প্ৰথম প্ৰকাশ - নৱেম্বৰ ১৯৯৩

ভৰালী শৈলেন। *অসমীয়া উপন্যাসৰ গতি প্ৰকৃতি*। সাহিত্য অকাডেমী, প্ৰথম প্ৰকাশ - ২০০২

শৰ্মা সত্যেন্দ্ৰনাথ। *অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত*। সৌমাৰ প্ৰকাশ, দশম সংস্কৰণ - জুন ২০১৩

অসমীয়া খবৰ, ৩০ নৱেম্বৰ, ২০১১

অসমীয়া প্ৰতিদিন, ৩০ নৱেম্বৰ, ২০১১

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

মহেশ এলকুঞ্চৱাৰৰ *পাৰ্টি* নাটকত প্ৰতিফলিত সমাজ বাস্তৱতাৰ প্ৰসংগ বিচাৰ

আজিজুৰ ৰহমান

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, পান বজাৰ
গুৱাহাটী- ৭৮১০০১
৮৬৩৮৮০৭৩৩৬
azizurrahman1998rahul@gmail.com

ড° স্বপ্নালী দাস

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, পান বজাৰ
গুৱাহাটী-৭৮১০০১
৯৩৬৫৫৭০৬৪০
swapnalidasghy@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

নাটক হৈছে এক প্ৰকাৰৰ দৃশ্য-শ্ৰব্য কলা আৰু প্ৰভাৱশালী গণমাধ্যম। ই সমাজৰ দিকদৰ্শক আৰু দাপোণস্বৰূপ। ভাৰতীয় নাট্য পৰম্পৰাৰ এগৰাকী উল্লেখযোগ্য নাট্যকাৰ হৈছে— মহেশ এলকুঞ্চৱাৰ (১৯৩৯-২০২৪)। উত্তৰ-স্বাধীনতা কালৰ মাৰাঠী নাট্যকাৰ মহেশ এলকুঞ্চৱাৰে ৰচনা কৰা উল্লেখযোগ্য নাটকসমূহ হৈছে— *চুলতান, গাৰ্বো, ৰাসনাকাণ্ড, পাৰ্টি, হোলী, ৰক্তপুষ্প, ৰাদা চিৰেবন্দী, আত্মকথা, প্ৰতিবিম্ব, য়ুগান্ত, ৰাসাংসি জীৰ্ণানি, চ'নাটা* আদি। মানৱীয় সম্বন্ধ, বিচ্ছিন্নতাবোধ, নিঃসংগ চেতনা, মানুহৰ অন্তৰ্জীৱনৰ দ্বন্দ্ব, শঠতা, ভণ্ডামি, ভোগবাদী চেতনা, নগৰীয়া মানুহৰ একাকীত্ব, সমাজৰ দুৰ্নীতি, মানসিক যন্ত্ৰণা, যৌনত্ব, লিংগ, অনৈতিকতা, মূল্যবোধৰ অৱক্ষয় আদি দিশেই হৈছে মহেশ একলুঞ্চৱাৰ নাটকৰ মূল কথাবস্তু। মহেশ এলকুঞ্চৱাৰৰ *পাৰ্টি* নাটকৰ মাজেদি সমাজ-সংস্কৃতি, মানৱীয় সম্বন্ধ আৰু আধুনিক মানুহৰ মনস্তত্ত্ব বিশ্লেষণ কৰিছে তথা *পাৰ্টি* নাটকৰ যোগেদি নাট্যকাৰে আধুনিক মানুহৰ বিচ্ছিন্নতাবোধক সাৰ্থকৰূপত অংকন কৰিছে। মহেশ একলুঞ্চৱাৰে *পাৰ্টি* নাটকখনৰ জৰিয়তে বিংশ শতিকাত আশীৰ দশকৰ মুম্বাইৰ লেখক সমাজখনক তীক্ষ্ণ সমালোচনা কৰিছে। সমাজত প্ৰচলিত পাৰ্টিসমূহৰ আঁৰত লুকাই থকা হিংসা, স্বাৰ্থপৰতা আৰু ভণ্ডামী আদি সমাজ বাস্তৱতাৰ প্ৰসংগ নাটকখনৰ মাজত উপস্থাপন কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। এই গৱেষণা পত্ৰখনত মহেশ এলকুঞ্চৱাৰৰ *পাৰ্টি* নাটকৰ কথাবস্তু আৰু সমাজ বাস্তৱতাৰ প্ৰসংগ সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

বীজশব্দ ঃ

নাটক, সমাজ বাস্তৱবাদ, মানৱীয় সম্বন্ধ, মনস্তত্ত্ব।

১.০ অৱতৰণিকা ঃ

নাটক হৈছে মানৱ জীৱনৰ সুখ-দুখ, সংঘাত, দ্বন্দ্ব আৰু সত্যক সংলাপ, ক্ৰিয়া আৰু অভিনয়ৰ মাধ্যমেৰে জীৱন্ত ৰূপত উপস্থাপন কৰা এক শক্তিশালী সাহিত্যিক কলা। নাটক সম্পৰ্কে প্ৰাচ্য আৰু পাশ্চাত্যৰ নাট্যবিদসকলে বিভিন্ন সংজ্ঞা প্ৰদান কৰিছে। ভৰতমুণিয়ে *নাট্যশাস্ত্ৰ*ত নাটকৰ সন্দৰ্ভত মন্তব্য প্ৰকাশ কৰিছে— 'নাট্যং ভাৱানুকীৰ্ত্তনম' (তালুকদাৰ, পৃ.১৪), অৰ্থাৎ নাটক হৈছে ভাৱৰ অনুকৰণ। এলাৰডিছ্ নিকলে *Theory of Drama* গ্ৰন্থখনত নাটকৰ স্বৰূপ সম্পৰ্কে এইদৰে কৈছে— 'Drama is that art of expressing ideas about life in such a manner as to render that expression capable of interpretation by actors and likely to interest an audience assembled to hear the words and withness the actions.' (বৰা, পৃ.৬৯), অৰ্থাৎ নাটক হৈছে মানুহৰ জীৱনৰ বিচিত্ৰ অভিজ্ঞতাৰ অভিনয়যোগ্য গতিমান বৃত্ত বা ঘটনা, যিয়ে শ্ৰোতা-দৰ্শকৰ মাজত উত্তেজনা, উৎকণ্ঠা, কৌতূহল আদিৰ সৃষ্টি কৰি তেওঁলোকৰ মনত ৰসৰ

সঞ্চাৰ কৰে বা আনন্দ প্ৰদান কৰে আৰু তেওঁলোকৰ বিবেক বুদ্ধিক নাট্যকাৰে অভিপ্ৰেত পথেৰে গতি কৰোৱায়।

ভাৰতৰ প্ৰেক্ষাপটত নাট্যচৰ্চা কৰা এগৰাকী মাৰাঠী নাট্যকাৰ হৈছে মহেশ এলকুঞ্চৱাৰ (১৯৩৯-২০২৪)। বহু সমালোচকে তেওঁক দিগ্‌গজ মাৰাঠী নাট্যকাৰ বিজয় তেণ্ডুলকাৰ আৰু সতীশ আলেকাৰৰ লগতে স্থান দিছে। (বশিষ্ঠ, পৃ.১১৮) মহেশ এলকুঞ্চৱাৰ উল্লেখযোগ্য নাটকসমূহ হৈছে— *চুলতান, হোলি, গাৰ্বো, ৰাসনাকাণ্ড, পাৰ্টি, ৰক্তপুষ্প, ৰাদা চিৰেবন্দী, আত্মকথা, প্ৰতিবিম্ব, মগ্ন তল্যকাথি, য়ুগান্ত, ৰাসাংসি জীৰ্ণানি, চনাটা* আদি। মহেশ এলকুঞ্চৱাৰ নাটকৰ বিষয়বস্তু হৈছে— মানৱীয় সম্বন্ধ, বিচ্ছিন্নতাবোধ, নিঃসংগ চেতনা, শঠতা আৰু ভণ্ডামি, মৃত্যু চেতনা, যৌনত্ব, লিংগ, অনৈতিকতা আদি। সমাজ আৰু বাস্তৱতাক বাদ দি কোনো শিল্পকৰ্মক যথাৰ্থতা মানি ল'ব নোৱাৰি। মহেশ এলকুঞ্চৱাৰ নাটকৰ মাজত সমাজ আৰু বাস্তৱতাৰ নিৰ্মোহ বিশ্লেষণ বিচাৰি পোৱা যায়। যাৰ বাবে এলকুঞ্চৱাৰৰ নাটকসমূহৰ সাম্প্ৰতিক সময়তো প্ৰাসংগিকতা আছে। মহেশ এলকুঞ্চৱাৰ নাটকৰ সাহিত্যিক মূল্য (Literary Value) উচ্চস্তৰীয়। সেইবাবে মহেশ এলকুঞ্চৱাৰক মাৰাঠী নাট্য সাহিত্যৰ 'সাহিত্যিক নাট্যকাৰ' হিচাপে অভিহিত কৰা হয়। এলকুঞ্চৱাৰ নাটকৰ পৰিৱেশ্য পাঠো (Performance Text) যথেষ্ট আৰ্কষণীয়। তেওঁৰ নাটকৰ পৰিৱেশন শৈলী (Performance Style) সূক্ষ্ম, গভীৰ, মনস্তাত্ত্বিক আৰু দৃঢ়ভাৱে বাস্তৱ আধাৰিত।

২.০ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

গৱেষণা পত্ৰখনৰ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যসমূহ হৈছে—

- মহেশ এলকুঞ্চৱাৰৰ *পাৰ্টি* নাটকৰ কথাবস্তুৰ সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা।
- মহেশ এলকুঞ্চৱাৰৰ *পাৰ্টি* নাটকত প্ৰতিফলিত হোৱা সমাজ বাস্তৱতাৰ প্ৰসংগ বিচাৰ কৰা।

৩.০ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

গৱেষণা পত্ৰখন অধ্যয়নৰ বাবে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি (Analytical method) গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

৪.০ তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ

গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে মুখ্য উৎস হিচাপে অক্সফৰ্ড বিশ্ববিদ্যালয়ৰ পৰা প্ৰকাশিত মহেশ এলকুঞ্জৱাৰৰ নাটকৰ সংকলন *Collected plays of Mahesh Elkunchwar,* Volume II নাট্যসংকলনখনৰ অন্তৰ্গত *Party* নাটকখন লোৱা হৈছে। গৌণ উৎস হিচাপে মহেশ এলকুঞ্চৱাৰৰ *পাৰ্টি* নাটককেন্দ্ৰিক অন্যান্য সমালোচনামূলক গ্ৰন্থ, প্ৰবন্ধ, গৱেষণা পত্ৰৰ সহায় লোৱা হৈছে।

৫.০ বিষয়বস্তুৰ বিচাৰ-বিশ্লেষণ ঃ

মহেশ এলকুঞ্চৱাৰৰ *পাৰ্টি* এখন সমাজ বাস্তৱধৰ্মী একাংকিকা নাটক। নাটকখন ১৯৭৫ চনত ৰচনা কৰা হয় আৰু ১৯৮৩ চনত প্ৰথম মঞ্চায়ন কৰা হয়। মহেশ এলকুঞ্চৱাৰে *পাৰ্টি* নাটকখন মাৰাঠী ভাষাত ৰচনা কৰে আৰু নাটকখন ইংৰাজী ভাষালৈ অনুবাদ কৰে আৰ্শীষ ৰাজাধ্যায়'এ। স্বাধীনতাৰ পৰৱৰ্তী কালত মহাৰাষ্ট্ৰৰ সমাজলৈ অহা পৰিৱৰ্তনসমূহ নাটকখনৰ মাজত দেখিবলৈ পোৱা যায়। নাটকৰ মাজেদি সমাজ জীৱনৰ বাস্তৱ ঘটনাক নাট্যকাৰে ব্যংগাত্মক দৃষ্টিভংগীৰে উপস্থাপন কৰিছে। '*পাৰ্টি* এখন ব্যংগ নাটক। নাটকখনে যোৱা শতিকাৰ অষ্টম দশকৰ মুম্বাইৰ লেখক-সমাজখনক তীব্ৰভাৱে ব্যংগ কৰিছে। দৰাচলতে, সেই সমাজত চলা পাৰ্টিসমূহ, মিছা ৰং-ৰহইচ আৰু মেলাহি হাঁহিৰ আঁৰত লুকাই থকা হিংসা আৰু দয়াহীনতাই এলকুঞ্চৱাৰক নাটকখন লিখিবলৈ অনুপ্ৰাণিত কৰিছিল।' (বশিষ্ঠ, পৃ.১২৫)

পাৰ্টি নাটকখনৰ মাজত সাহিত্য, শিল্পৰ বৌদ্ধিক আড্ডাসমূহৰ মাজত লুকাই থকা অহংকাৰ, স্বাৰ্থপৰতা, শঠতা, অন্তঃসাৰশূণ্যতা, অনৈতিক দিশটো স্পষ্ট হৈছে। সমাজৰ তথাকথিত বুদ্ধিজীৱিসকলে সমাজৰ পিছপৰা লোকসকলৰ জীৱন সম্পৰ্কীয় চিন্তা কৰাৰ বিপৰীতে আড্ডা, ফেশ্চন, ব্যক্তিগত জীৱনৰ সুখ আদি দিশত মনোনিৱেশ কৰিছে। নাটকখনৰ পটভূমিলৈ সূক্ষ্ম দৃষ্টিৰে মন কৰিলে দেখা যায়— আদিবাসী লোকৰ অধিকাৰৰ বাবে আদিবাসী আৰু প্ৰশাসনৰ মাজত সংঘাত। আদিবাসী লোকসকলৰ অধিকাৰৰ বাবে অমৃতে বিলাসী জীৱন-যাপন ত্যাগ কৰিছে আৰু চৰকাৰৰ বিপক্ষে প্ৰতিবাদ কৰি অৱশেষত মৃত্যুবৰণ কৰিছে। আদিবাসী লোকৰ অধিকাৰৰ বাবে অমৃতৰ জীৱন উৎসৰ্গা আৰু আত্মবলিদানক তথাকথিত অভিজাত শ্ৰেণীৰ সমাজে কোনো স্বীকৃতি বা সন্মান প্ৰদান নকৰে। তেওঁলোকৰ দৃষ্টিত অমৃতৰ মৃত্যু এটা সাধাৰণ ঘটনা।

পাৰ্টি নাটকখন আৰম্ভ হয় ডক্টৰ আৰু দময়ন্তী ৰাণেৰ কথোপকথনৰ মাজেদি। ডক্টৰ আৰু দময়ন্তীৰ কথোপকথনৰ পৰা জানিব পাৰি যে দময়ন্তীৰ বন্ধু বাৰ্ভেয়ে সাহিত্য চৰ্চাৰ বাবে লাভ কৰা সন্মানৰ বাবে দময়ন্তীয়ে নিজৰ ঘৰত সন্ধিয়া পাৰ্টিৰ আয়োজন কৰিছে। পাৰ্টিটোত সমাজৰ তথাকথিত উচ্চ শ্ৰেণীৰ লোকসকলক নিমন্ত্ৰণ কৰা হৈছে। দময়ন্তী ৰাণেৰ একমাত্ৰ কণ্যা হৈছে সোণা। নাটকখনৰ সাহানী নামৰ চৰিত্ৰটোৱে জোৰ কৰি সোণাৰ সৈতে শাৰীৰিক সম্পৰ্ক স্থাপন কৰাৰ বাবে সোণাই বিয়াৰ আগতে এটি সন্তান জন্ম দিয়ে। সাহানীয়ে সোণাক বিয়াৰ বাবে প্ৰস্তাৱ দিয়ে যদিও সোণাই

এই প্ৰস্তাৱ গ্ৰহণ নকৰে। নাটকখনত দময়ন্তী আৰু সোণাৰ মাজত আদৰ্শগত বৈষম্য আৰু মতভেদ থকাপৰিলক্ষিত হয়। সোণা মাকৰ অভিজাত শ্ৰেণী সমাজৰ অংশ নহয়। ঘৰত আয়োজন কৰা পাৰ্টিত তাই কোনো মনোযোগ দিব খোজা নাই। সোণা আৰু ডাক্তৰৰ মাজত এক সু-সম্পৰ্ক আছে। নাটকখনত সোণাই কেৱল ডাক্তৰজনক সন্মান কৰে।পাৰ্টিটোৰ অন্য অতিথিসকলৰ প্ৰতি সোণাৰ কোনো বিশেষ আনুগত্য নাই। নাটকখনৰ মাজত সোণা এগৰাকী নিৰ্ভীক, নিৰপেক্ষ, সততা, প্ৰতিবাদী চৰিত্ৰ হিচাপে দেখুৱা হৈছে। ডক্টৰ চৰিত্ৰটো সোণাৰ দৰে প্ৰতিবাদী আৰু বিদ্ৰোহী নহয়। তেওঁ এগৰাকী শ্ৰেণী সচেতন ব্যক্তি। ডাক্তৰজনে পাৰ্টিটোৰ সকলো কাম ভালদৰে পৰ্যবেক্ষণ কৰিছে আৰু অতিথিসকলক সুন্দৰকৈ আপ্যায়ন কৰিছে। দময়ন্তীৰ সকলো কৰ্মকাণ্ড তেওঁ নিৰ্লিপ্তভাৱে লক্ষ্য কৰি থাকে। দময়ন্তী নানান ধৰণৰ বিফলতাবোধত আক্ৰান্ত। যাৰ বাবে ডাক্তৰজনে দময়ন্তীক বিভিন্ন সময়ত দিহা-পৰামৰ্শ প্ৰদান কৰা দেখা যায়। ইয়াৰ পৰা এই কথা জানিব পাৰি যে আধুনিক সমাজত মানুহৰ নিঃসংগতা, উদ্বিগ্নতা, হতাশা, বিষাদবোধ আদি মানসিক সমস্যাসমূহ সমাধানৰ বাবে মনোৰোগ চিকিৎসকৰ প্ৰয়োজন হয়। *পাৰ্টি* নাটকখনৰ চৰিত্ৰসমূহ মনোবিকাৰ (Psychosis/Mental Disorder)ত আক্ৰন্ত। মনোবিকাৰ হৈছে — এক প্ৰকাৰৰ মানসিক ৰোগ; য'ত ব্যক্তিজনে বাস্তৱ জগতৰ সৈতে সম্পৰ্ক হেৰুৱাই পেলায় আৰু এক অস্বাভাৱিক অৱস্থা অনুভৱ কৰে। যেনে— আতংক, বিভ্ৰম (Hallucination), অসংলগ্ন চিন্তা, অযুক্তিকৰ বিশ্বাস (Delusion) আদি। *পাৰ্টি* নাটকখনৰ দময়ন্তী, মোহিনী, বৃন্দা, সাহানী, আগাশে, নৰেন্দ্ৰ, মালৱিকা চৰিত্ৰকেইটাৰ মাজত মনোবিকাৰৰ লক্ষণ দেখা গৈছে। নাটকখনৰ চৰিত্ৰসমূহ বাস্তৱৰ পৰা বিচ্ছিন্ন। চৰিত্ৰসমূহৰ সংলাপৰ মাজেদি উদ্বেগ, মানসিক দ্বন্দ্ব আৰু নিঃসংগ চেতনা প্ৰকাশ ঘটিছে। উদাহৰণস্বৰূপে মোহিনী চৰিত্ৰটোৰ কথা ক'ব পাৰি।

"MOHINI: I hate parties. I do. (*Pause.*) Diwakar gets lost with people. He forgets me. And when he drinks ... (*Pause.*) I used to hate drinking once, but I drink now. You know, he snores all night, and I lie wide awake. Even When I'm drunk, I can't sleep. I only feel dizzy. I want to snuggle deep into his arms but then I get scared he'll wake up and get angry ... I lie down then, still and wide awake as my head spins with fatigue. (*Pause.*) I'm telling you all this private stuff ..." (Elkunchwar, p.179)

"মোহনী ঃ মই পাৰ্টিবোৰ ঘিণ কৰোঁ। (*বিৰতি*) দিৱাকৰে মানুহৰ লগত ব্যস্ত হৈ যায়। তেওঁ যেতিয়া মদ খায় মোক পাহৰি যায়। (*বিৰতি*) আগতে মই মদলৈ ঘিণ কৰিছিলোঁ, কিন্তু এতিয়া মই নিজেও খাওঁ। জানানে, তেওঁ গোটেই ৰাতি নাক বজায় শুই থাকে, আৰু মই গোটেই ৰাতি সাৰে থাকোঁ। মদ নাখালে মোৰ টোপনি নাহে। মূৰটো ঘূৰাই থাকে। মই তেওঁৰ বুকুত সোমাই থাকিব বিচাৰোঁ, কিন্তু মোৰ ভয় লাগে তেওঁ সাৰ পালে খং কৰিব ... মই শুবলৈ চেষ্টা কৰোঁ, তথাপিও সাৰে থাকোঁ আৰু ভাগৰৰ বাবে মোৰ মূৰটো ঘূৰাই থাকে। (*বিৰতি*) মই তোমাক মোৰ ব্যক্তিগত কথাবোৰ কৈছোঁ ..." (*নিজা অনুবাদ*)

দময়ন্তীয়ে ঘৰত পাৰ্টি আয়োজন কৰিছে তাই বন্ধু বাৰ্ভেয়ে সাহিত্যত বঁটা লাভ কৰাৰ বাবে; বাৰ্ভে বঁটা আৰু সন্মান দুখীয়া লোকৰ সহায়ৰ বাবে দান কৰি দিব। নাটকখনত দেখিবলৈ পোৱা গৈছে যে বাৰ্ভে আৰু মোহিনীয়ে বিবাহপাশত আবদ্ধ নোহোৱাকৈয়ে ৪-৫ বছৰ ধৰি একেলগে সহবাস কৰিছে। তথাপিও তেওঁলোক সুখী নহয়। মোহিনী এগৰাকী নায়িকা। বাৰ্ভেৰ দৃষ্টিত মোহিনী এগৰাকী ভাল, সুদক্ষ নায়িকা নহয়। মোহিনীয়ে বাৰ্ভেৰ পৰা মৰম, স্নেহ, ভালপোৱা বিচাৰে; কিন্তু বাৰ্ভেয়ে মোহিনীৰ প্ৰতি কোনো বিশেষ আনুগত্য নাই। মোহিনীয়ে ভাবে তাই সৌন্দৰ্য কমি অহাৰ বাবে বাৰ্ভেয়ে তাইক অগ্ৰাহ্য কৰে। মোহিনী মানসিকভাৱে নিঃসংগ। মোহিনীয়ে নিজৰ নিঃসংগতা আৰু শূণ্যতাক দূৰ কৰিবলৈ মদ্যপান কৰিছে। মোহিনীয়ে পাৰ্টিত তাই দেখিবলৈ বেয়া নেকি বুলি সোণাক বাৰে বাৰে প্ৰশ্ন কৰিছে। নাটকখনৰ মাজত মানুহে জীৱনত সুখি হ'বলৈ বিবাহৰ গুৰুত্ব আছে নে নাই তাৰ প্ৰতি প্ৰশ্ন উত্থাপন হয়।

পাৰ্টি নাটকখনত দেখা ভাৰত এগৰাকী কম বয়সীয়া উদীয়মান লেখক। ভাৰতে বিভিন্ন সময়ত দময়ন্তীৰ পৰা সহায় লাভ কৰিছে। কিন্তু দময়ন্তীয়ে ভাৰতক এজন পৰিপক্ব লেখক বুলি গণ্য নকৰে। নাটকখনত ভাৰত এজন আদৰ্শবাদী চৰিত্ৰ। ভাৰত চৰিত্ৰটোৰ সম্পৰ্কত নাট্য সমালোচক প্ৰাঞ্জল শৰ্মা বশিষ্ঠই এনেদৰে মন্তব্য প্ৰদান কৰিছে—

"আমাৰ ভাব হৈছে — ভাৰত নামৰ চৰিত্ৰটো এলকুঞ্চৱাৰে নিজৰে আলমত অংকন কৰিছে। এলকুঞ্চৱাৰৰ দৰে ভাৰতো এগৰাকী বহিৰাগত। গাঁৱৰ পৰা আহিছে। অভিজাত সমাজৰ আও-ভাও তেওঁ পোৱা নাই। চৰিত্ৰটো বাকী চৰিত্ৰসমূহৰ দৰে আকৰ্ষণীয়।" (বশিষ্ঠ, পৃ.১২৫)

পাৰ্টি নাটকখনৰ মাজত ভাৰত আৰু বৃন্দাই কথাপকথন কৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়। তেওঁলোকৰ কথোপকথনৰ পৰা এই কথা স্পষ্ট হৈ পৰে যে ভাৰত আৰু বৃন্দা প্ৰগতিশীল মনৰ ব্যক্তি। বৃন্দা এগৰাকী সমাজকৰ্মী। তাই অভিজাত শ্ৰেণীৰ

কপটতা আৰু শঠতাসমূহৰ সৈতে পৰিচিত। *পাৰ্টি* নাটকখনৰ বৃন্দা চৰিত্ৰটোৰ মাজেদি যৌনতাকামী চেতনা বৰ্হিঃপ্ৰকাশ ঘটা পৰিলক্ষিত হৈছে।

"VRINDA: Why do you have such adolescent ideas about sex? They're bookish and roomantic and hidebound, unlike the white-hot passion in the rest of your work. How old are you, by the way?

BHARAT: Twenty-four.

VRINDA: It's time you experienced life as an adult, You're too inhibited. Aren't you?'' (Elkunchwar, p.183)

"বৃন্দা ঃ যৌনতাৰ সম্পৰ্কে তোমাৰ ধাৰণা কিয় কিশোৰসুলভ? সেইবোৰ কেৱল কিতাপ, ৰোমাণ্টিক আৰু সংকীৰ্ণ, তোমাৰ বাকী কামবোৰত থকা তীব্ৰ আৰু উষ্ণ আৱেগৰ সৈতে এই ধাৰণাসমূহৰ সাদৃশ্য দেখা নাযায়। বাৰু, তোমাৰ বয়স কিমান?

ভাৰত ঃ চৌব্বিশ।

বৃন্দা ঃ এতিয়া তুমি এজন প্ৰাপ্তবয়স্কৰ ব্যক্তিৰ দৰে জীৱনৰ বাস্তৱ অভিজ্ঞতা লাভ কৰাৰ সময় হৈছে। তুমি অতি সংযত আৰু অন্তৰ্মুখী স্বভাৱৰ। নহয়নে?" (*নিজা অনুবাদ*)

পাৰ্টি নাটকখনৰ এটা উল্লেখযোগ্য চৰিত্ৰ হৈছে অমৃত। *পাৰ্টি* নাটকখনৰ অমৃত চৰিত্ৰটো ছেমুৱেল বেকেটৰ *ৱেইটিং ফৰ গ'ড* নাটকখনৰ গডো চৰিত্ৰটোৰ সৈতে সাদৃশ্য আছে। *ৱেইটিং ফৰ গ'ড* নাটকখনৰ গডো চৰিত্ৰটোৰ দৰে *পাৰ্টি* নাটকখনতো অমৃত চৰিত্ৰটোক মঞ্চত দেখা পোৱা নাযায়। *পাৰ্টি*নাটকখনত অমৃত চৰিত্ৰটোক কেন্দ্ৰ কৰিয়ে নাট্য কাহিনী গতি নিৰ্মাণ হৈছে। পাৰ্টিটোত সকলোৱে অমৃতৰ কথা আলোচনা কৰিছে। নাটকখনৰ চৰিত্ৰসমূহৰ সংলাপৰ পৰা জানিব পাৰি যে—অমৃত এগৰাকী ভাল লেখক তথা সমাজকৰ্মী। অমৃতে বিলাসী ভোগবাদী জীৱন ত্যাগ কৰি সমাজৰ পিছপৰা আদিবাসী লোকসকলকৰ অধিকাৰৰ বাবে কাম কৰিছে আৰু তেওঁলোক কল্যাণৰ বাবে চৰকাৰৰ বিপক্ষে প্ৰতিবাদ কৰিছে। দময়ন্তী ৰাণেৰ পাৰ্টিলৈ অহা সকলো অতিথিয়ে কথাই কথাই অমৃতৰ প্ৰসংগ উত্থাপন কৰিছে। নাটকখনৰ শেষ দৃশ্যত যোগদণ্ডলৈ অহা ফোনৰ পৰা অমৃতক হত্যা কৰাৰ সংবাদ পোৱা যায়। অমৃতৰ মৃত্যুৰ সংবাদটো পাৰ্টিত উপস্থিত থকা অতিথিসকলে সাধাৰণভাৱে গ্ৰহণ কৰিছে। সমাজৰ সাধাৰণ শ্ৰেণীৰ লোকৰ মৃত্যু হ'লে অভিজাত লোকসকলৰ জীৱনত যে কোনো বিশেষ প্ৰভাৱ নপৰে এই দিশ *পাৰ্টি* নাটকখনৰ মাজত প্ৰতিফলিত হৈছে।

মহেশ এলকুঞ্চৱাৰ এগৰাকী সমাজ সচেতন নাট্যকাৰ। নাটকখনৰ মাজেদি স্বাধীনতা পৰৱৰ্তীকালত মাৰাঠী সমাজলৈ অহা পৰিৱৰ্তনসমূহক নাট্যকাৰে তীক্ষ্ণ সমালোচনা কৰিছে। *পাৰ্টি* নাটকখনক এখন 'ট্ৰেজি-কমেডি' বা হাস্য-কাৰুণ্যৰ মিশ্ৰণ নাটক হিচাপে আখ্যা দিব পাৰি। এৰিষ্টটলৰ ট্ৰেজিডি সংজ্ঞাৰ আধাৰত অথবা ছেক্সপীয়েৰৰ ট্ৰেজিডিসমূহৰ তুলনাত এই নাটকখনক 'কৰুণ' আখ্যা দিয়াটো কঠিন। নাটকখনৰ শিৰোনামলৈ মন কৰিলে দেখা যায়— 'পাৰ্টি' শব্দটোৰ মাজত এক ব্যঞ্জনা লুকাই আছে। *পাৰ্টি* নাটকৰ শিৰোনাম অতিশয় ব্যংগাত্মক কাৰণ ইয়াত মানৱীয় আৱেগসমূহ একাত্মক হোৱা নাই; বৰঞ্চ চৰিত্ৰসমূহৰ শাৰীৰিক উপস্থিতিৰ সমাৱেশ ঘটিছে।

৬.০ উপসংহাৰ ঃ

মহেশ এলকুঞ্চৱাৰৰ *পাৰ্টি* নাটকত আধুনিক ভাৰতীয় নগৰীয়া মধ্যবিত্ত সমাজৰ ৰূঢ় বাস্তৱ প্ৰসংগ প্ৰতিফলিত হৈছে। নাটকখনৰ উপসংহাৰত এই কথা স্পষ্ট হৈছে যে স্বাধীনতাৰ পৰৱৰ্তী কালত আশীৰ দশকৰ মহাৰাষ্ট্ৰৰ সমাজলৈ অহা পৰিৱৰ্তনসমূহ নাটকখনৰ মাজত তুলি ধৰা হৈছে। নাটকখনৰ মাজত প্ৰতিফলিত হোৱা তথাকথিত বৌদ্ধিক, প্ৰগতিশীল আৰু শিল্পপ্ৰেমী সমাজখন আত্মকেন্দ্ৰিক আৰু ক্ষমতাৰ প্ৰতি থকা লালসাৰ স্বৰূপটো স্পষ্ট হৈ পৰিছে। নাটকখনত শেষত কোনো নাটকীয় সমাধান বা নৈতিক বিজয় দেখা নাযায়। ইয়াৰ বিপৰীতে সমাজ বাস্তৱবাদৰ স্বাভাৱিক বৈশিষ্ট্য অনুসৰি অমৃতৰ মৃত্যুৰ কঠোৰ সত্য আৰু বেদনাদায়ক ৰূপটো উন্মোচিত হৈছে। *পাৰ্টি* নাটকখনতনাট্যকাৰ এলকুঞ্চৱাৰে কোনো ব্যক্তিক দোষাৰোপ কৰা নাই; বৰঞ্চ সমগ্ৰ সমাজ ব্যৱস্থাটোক উন্মোচন কৰিছে। সাহিত্যিক, শিল্পী আৰু বুদ্ধিজীৱী সমাজখনো যে পুঁজিবাদী, ক্ষমতাকেন্দ্ৰিক আৰু স্বাৰ্থপৰ কাঠামোৰ পৰা মুক্ত নহয়— এই সত্যটো নাটকখনৰ শেষত গভীৰভাৱে প্ৰতিফলন হৈছে। সেয়ে *পাৰ্টি* কেৱল এখন নাটক নহয়; ই আধুনিক সমাজৰ এক তীক্ষ্ণ সামাজিক দলিলস্বৰূপ।

৭.০ সামগ্ৰিক সিদ্ধান্ত ঃ

আলোচনাৰ অন্তত নিম্নোক্ত সিদ্ধান্তকেইটাত উপনীত হ'ব পাৰি—

(ক) নিঃসংগ চেতনা আৰু মানুহৰ অন্তৰ্জীৱনৰ দ্বন্দ্ব *পাৰ্টি* নাটকৰ মূল ভাৱবস্তু।

(খ) মহেশ এলকুঞ্চৱাৰে *পাৰ্টি* নাটকৰ কথাবস্তুৰ মাজেদি সাম্প্ৰতিক সময়ৰ সামাজিক-ৰাজনৈতিক জীৱনকো সমালোচনা কৰিছে।

(গ) *পাৰ্টি* নাটকত অভিজাত শ্ৰেণীৰ ভুৱা আভিজাত্য আৰু অন্তঃসাৰশূন্যতাৰ ছবি প্ৰতিফলিত হৈছে।

(ঘ) মহেশ এলকুঞ্চৱাৰ *পাৰ্টি* নাটকৰ সাহিত্যিক মূল্য (Literary Value) আছে। সাহিত্যৰ নৱ ৰস নাটকখনৰ মাজত ৰক্ষিত হৈছে। নাটকখনত প্ৰধানকৈ হাস্য আৰু করুণ ৰসে স্থান পাইছে।

(ঙ) মহেশ এলকুঞ্চৱাৰ নাটকৰ পৰিৱেশন শৈলী (Performance Style) সূক্ষ্ম, গভীৰ, মনস্তাত্ত্বিক আৰু দৃঢ়ভাৱে বাস্তৱ আধাৰিত।

উদ্ধৃত-কৰ্ম ঃ

তালুকদাৰ, ধ্ৰুৱকুমাৰ। *নাট্য-কলাৰ ৰূপৰেখা*। গুৱাহাটী ঃ বাণী মন্দিৰ, ২০০৮। পৃ.১৪

বৰা, মহেন্দ্ৰ। *সাহিত্য উপক্ৰমণিকা*। ডিব্ৰুগড় ঃ বনলতা, ২০১২। পৃ.৬৯

বশিষ্ঠ, প্ৰাঞ্জল শৰ্মা। *উত্তৰ-স্বাধীনতা যুগৰ ভাৰতীয় নাট্যকাৰ*। গুৱাহাটা ঃ আঁক-বাক, ২০২৩।পৃ.১১৮

উল্লিখিত, পৃ.১২৫

Elkunchwar, Mahesh. *Collected Plays of Mahesh Elkunchwar*, Vol.II. New Delhi: Oxford University

Press, 2013. p.179

বশিষ্ঠ, প্ৰাঞ্জল শৰ্মা। *উত্তৰ-স্বাধীনতা যুগৰ ভাৰতীয় নাট্যকাৰ*। গুৱাহাটা ঃ আঁক-বাক, ২০২৩।পৃ.১২৫

Elkunchwar, Mahesh. *Collected Plays of Mahesh àßlkunchwar*, Vol.II. New Delhi: Oxford University

Press, 2013. p.183 ❑

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

মূল গ্ৰন্থ ঃ

Elkunchwar, Mahesh. *Collected Plays of Mahesh Elkunchwar*, Vol.II. New Delhi: Oxford University Press, 2013.

সহায়ক গ্ৰন্থ ঃ

তালুকদাৰ, ধ্ৰুৱকুমাৰ। *নাট্য-কলাৰ ৰূপৰেখা*। গুৱাহাটী ঃ বাণী মন্দিৰ, ২০০৮।

বৰা, মহেন্দ্ৰ। *সাহিত্য উপক্ৰমণিকা*। ডিব্ৰুগড় ঃ বনলতা, ২০১২।

বশিষ্ঠ, প্ৰাঞ্জল শৰ্মা। *উত্তৰ-স্বাধীনতা যুগৰ ভাৰতীয় নাট্যকাৰ*। গুৱাহাটা ঃ আঁক-বাক, ২০২৩।

Boulton, Marjorie. *The Anatomy of Drama*. New Delhi: Kalyani, 1960.

Chakraborty, Kaustav. *Indian Drama In Enlish*. New Delhi: PHI Learning Private Limited, 2011.

Kanna, A.S. *Mahesh Elkunchwar's Plays: A Study*. Germany: LAP LAMBERT Academic Publishing, 2015.

Nicoll, Allardyce. *The Theory of Drama*. London: George G Harrap and Company Ltd, 1937.

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

অৱস্থিতিবাদী দৃষ্টিভংগীৰে অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াৰ গল্প ঃ এক অধ্যয়ন

সুৰেশ দেৱনাথ

অসমীয়া বিভাগ
কুমাৰ ভাস্কৰ বৰ্মা সংস্কৃত আৰু পুৰাতন অধ্যয়ন বিশ্ববিদ্যালয়
নলবাড়ী, অসম - ৭৮১৩৩৭
৯১০১৬৫৫৯৩৩
sureshdevnath@yahoo.in

ড° দীপশিখা গগৈ

অসমীয়া বিভাগ
কুমাৰ ভাস্কৰ বৰ্মা সংস্কৃত আৰু পুৰাতন অধ্যয়ন বিশ্ববিদ্যালয়
নলবাড়ী, অসম - ৭৮১৩৩৭
৭০০২৫৯৪২৩৯
deepsigogoi@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

একবিংশ শতিকাৰ অসমীয়া গল্পসাহিত্যৰ জগতখনত অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াই স্বকীয় ৰচনাশৈলীৰে গল্প ৰচনা কৰি পাঠক সমাজৰ মাজত সুকীয়া ঠাই দখল কৰিছে। তেওঁ মনস্তাত্ত্বিক দৃষ্টিভংগীৰে গল্প ৰচনা কৰাৰ বাবে ব্যক্তিগত জীৱন, পাৰিপাৰ্শ্বিক জীৱন আৰু কৰুণতম বাস্তৱতাৰ ছবি ব্যঙ্গাত্মকভাৱে গল্পবোৰত ফুটি উঠা পৰিলক্ষিত হয়। তেওঁৰ গল্পবোৰত জীৱনবোধৰ গভীৰতা, জীৱন সংগ্ৰামৰ ব্যঞ্জনাময় কাহিনী, মৰ্মস্পৰ্শী ঘটনাৰ উপস্থাপন আদিয়ে গল্প সাহিত্যক অধিক আকৰ্ষণীয় তথা সুখপাঠ্য কৰি তোলে। শইকীয়াৰ চুটিগল্পৰ বিষয়বস্তুত দৰিদ্ৰতাৰ ছবি, লোক-মনোজগতৰ ছবি, ব্যক্তিৰ আত্মপ্ৰেম ভাৱনা, আত্মদ্বন্দ্ব, প্ৰমূল্যবোধ আৰু ব্যক্তিৰ অস্তিত্বৰ প্ৰতি থকা সংকটে গল্পবোৰ পাশ্চাত্য সাহিত্যৰ দৰ্শনলৈ উন্নীত হোৱা দেখা যায়। পাশ্চাত্য সাহিত্যৰ বাদ-বৈচিত্ৰ্য তেওঁৰ প্ৰায়বোৰ গল্পতে সোমাই পৰিছে। তেওঁৰ গল্পত সমাজ সচেতনতাৰ ভাবধাৰা থকাৰ লগতে চৰিত্ৰ বিশ্লেষণৰ বৈচিত্ৰ্য আৰু সূক্ষ্মতম পৰ্যবেক্ষণত বিশেষকৈ অৱস্থিতিবাদী দৰ্শন পোৱা যায়। শইকীয়াৰ গল্পবোৰত থকা অস্তিত্ব, সংকট, আত্মদ্বন্দ্ব, মৃত্যুচেতনা আদি বিষয়বোৰে অৱস্থিতিবাদৰো প্ৰতিফলন ঘটা পৰিলক্ষিত হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

অৱস্থিতিবাদ, অস্তিত্ব, মৃত্যু চেতনা, সংকট, স্বতন্ত্ৰ।

প্ৰস্তাৱনা ঃ

একবিংশ শতিকাত নতুন দৃষ্টিভংগী, নতুন কলা-কৌশলেৰে গল্প ৰচনা কৰা এজন গল্পকাৰ হৈছে অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়া। অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াৰ ইতিমধ্যে প্ৰকাশিত গল্প সংকলনসমূহ হৈছে *'ব্যৰ্থ নায়ক'*, *'বিষয়ঃ প্ৰেম সংবিধান'*, *'মাটি আখৰা'*, *'বজাৰত এদিন'*, *'লিংগমুক্ত পৃথিৱীৰ সাধু'*, *'বেংছতা'*, *'চ'তৰ উৰহী'*, *'বান্ধনি বেলি'* আৰু *'মনৰ ডাক্তৰ'*। তেওঁৰ প্ৰায়বোৰ গল্পৰ ভাৱবস্তু হৈছে অপ্ৰকাশ্য বেদনা। আৰ্থ-সামাজিক পৰিস্থিতি, ৰাজনৈতিক সংঘাত, যুদ্ধ প্ৰসংগ, ব্যক্তিৰ ভোগবাদী মানসিকতা আদিয়ে গল্পকাৰৰ গল্পবোৰক বাস্তৱতাৰ কাষ চপাই আনিছে। তেওঁ গল্পৰ বিষয়বস্তুবোৰ সমাজৰ পৰা লোৱা বাবে তাত ব্যক্তিৰ মনোদ্বন্দ্ব, প্ৰেম ভাৱনা, মূল্যবোধ, অস্তিত্বৰ প্ৰতি সংকট আদি দিশবোৰ আপোনা-আপুনি আহি পৰিছে। আধুনিক গাঁৱলীয়া আৰু নগৰীয়া উভয় সমাজতে আহি পৰা যান্ত্ৰিকতাৰ প্ৰসংগবোৰো গল্পকাৰে গল্পবোৰত উপস্থাপন কৰিছে। অৱস্থিতিবাদী দৰ্শনৰ লগত শইকীয়াৰ গল্পৰ অন্তৰ্নিহিত ভাববোৰৰ সাদৃশ্য থকা পৰিলক্ষিত হয়। তেওঁৰ গল্পত প্ৰতিফলিত হোৱা সামাজিক জীৱন গাঁথা, শ্ৰেণী চেতনা, জীৱনচেতনা, সমাজচেতনা আদি দিশবোৰৰ যোগেদি অৱস্থিতিবাদৰ প্ৰভাৱ কেনেদৰে পৰিছে সেয়া আলোচনা কৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে।

অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

মহানগৰৰ জীৱন প্ৰৱাহৰ সৈতে সহাৱস্থান কৰা অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াৰ গল্পবোৰত

বিষয় বিচিত্ৰতা থকা পৰিলক্ষিত হয়। সমাজখন পৰ্যবেক্ষণ কৰি, মানুহক অধ্যয়ন কৰি অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াই গল্পবোৰ ৰচনা কৰা বাবে তেওঁৰ গল্পবোৰত এক নতুন সোৱাদ পোৱা যায়। তেওঁৰ গল্পবোৰ বৌদ্ধিক আৰু মনোবিশ্লেষণধৰ্মী বিৱৰণেৰে সমৃদ্ধ। ভাষিক সৰলতাই গল্পবোৰে পাঠকক আকৰ্ষণ কৰা দেখা যায়। গল্পত চৰিত্ৰৰ কথন-মনন অতি আকৰ্ষণীয় আৰু বিষয়বস্তুত নতুনত্বৰো সমাৱেশ ঘটিছে। সেয়ে তেওঁৰ গল্পবোৰ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে।

সাহিত্য জগতত বিশেষকৈ চুটিগল্পৰ ক্ষেত্ৰত ন ন পৰীক্ষা-নিৰীক্ষা আৰম্ভ হৈছে। পাশ্চাত্য সাহিত্য জগতত চুটিগল্পৰ অৱসান ঘটাৰ বিপৰীতে অসমীয়া সাহিত্যত নকৈ চুটিগল্পৰ বিষয়বস্তু, শৈলী আদিৰ পৰিৱৰ্তন ঘটিছে। বৰ্তমান সাহিত্য জগতত পাশ্চাত্যৰ যিবোৰ বাদ বা সাহিত্যিক আন্দোলন আছে সেই সমূহৰ প্ৰভাৱ অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াৰ গল্পত থকা পৰিলক্ষিত হয়। সাহিত্যৰ এনে দিশবোৰৰো আলোচনা কৰাৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব আৰু প্ৰয়োজনীয়তা আছে।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

'অৱস্থিতিবাদী দৃষ্টিভংগীৰে অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াৰ গল্পঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন' শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰাৰ আঁৰত দুটা উদ্দেশ্য নিহিত হৈ আছে। সেয়া হৈছে—

(ক) অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াৰ গল্পত বিষয়বস্তুৰ বিচাৰ কৰা।

(খ) অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াৰ গল্পত অৱস্থিতিবাদৰ প্ৰভাৱ সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।

অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াৰ গল্প সংকলন 'লিংগ মুক্ত পৃথিৱীৰ সাধু', 'চ'তৰ উৰহী' আৰু 'বেংছতা' গল্প সংকলনৰ নিৰ্বাচিত গল্পক এই অধ্যয়নৰ পৰিসৰত সামৰি লোৱা হৈছে।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

"অৱস্থিতিবাদী দৃষ্টিভংগীৰে অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াৰ গল্প ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন" শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়ন কৰোঁতে মূলতঃ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে।

মূল আলোচনা ঃ

ইংৰাজী 'Existentialism'ৰ প্ৰতিশব্দ হিচাপে অসমীয়াত অৱস্থিতিবাদ বা অস্তিত্ববাদটো গ্ৰহণ কৰিছে। অস্তিত্ববাদ হৈছে এনে এক দাৰ্শনিক দৃষ্টভংগী, য'ত মানুহৰ জীৱনক সুকীয়াকৈ বিশ্লেষণ নকৰি প্ৰত্যেক মানুহৰ অস্তিত্বৰ মনোজগতৰ পটভূমিত বিচ্ছিন্নভাৱে চোৱাৰ যত্ন কৰে। এই বাদটো ইউৰোপত দ্বিতীয় মহাযুদ্ধৰ সময়তে মূৰ দাঙি ঠিয় হৈ উঠিছিল। এই বাদৰ প্ৰতিষ্ঠা সম্পৰ্কে সমালোচক নগেন শইকীয়াই এনেদৰে কৈছে যে ছোৱেন, কিয়েৰ্কেগাৰ্ড, কাৰ্ল জেস্পাৰ্ছ আৰু গ্ৰেবিয়েল মাৰ্ৰ্শেলে অস্তিত্ববাদী মতবাদৰ প্ৰতিষ্ঠা কৰি গৈছে। কিন্তু এওঁবিলাকে ব্যক্তিৰ অকলশৰীয়া অস্তিত্বৰ সূত্ৰ প্ৰতিষ্ঠা কৰি গ'লেও, গীৰ্জাৰ বিশ্বাস অস্বীকাৰ কৰি যোৱা নাই। *আনহাতে আধুনিক কালৰ নীৎসে, আলবেয়াৰ কেমু আৰু জাঁ পল ছাৰ্ত্ৰেৰ মতবাদে গীৰ্জাক অস্বীকাৰ কৰিছে।* [১]

এই মতবাদৰ লোকসকলে অস্তিত্বক সাৰধৰ্ম বুলি উল্লেখ কৰে। যি বিশেষত্বৰে বস্তু বা প্ৰাণী একোটা গঢ় লয় সেয়াই তাৰ সাৰধৰ্ম। অস্তিত্ববাদীসকলে এনেদৰে কয় যে কেৱল জন্তুৰ দৰে বাচি থকাটোৱে মানুহৰ অস্তিত্ব নুবুজায়। এনেকৈ অনুভৱ কৰিব লাগিব যে সি সকলোৰে পৰা সুকীয়াকৈ এই জীৱনৰ মুখ দেখা এক ব্যক্তি; সি সমষ্টিৰ অংগীদাৰ নহয়, বৰঞ্চ একক আৰু স্বতন্ত্ৰহে। এনেদৰে কৰা অনুভৱ কৰিলেই তাৰ ব্যক্তিত্বৰ সাৰধৰ্ম গঢ় লৈ উঠিব। এনেদৰে গঢ় লৈ উঠা অস্তিত্ব নিৰ্ভৰ কৰিব তাৰ স্বতন্ত্ৰভাৱে আৰু সক্ৰিয়ভাৱে লোৱা সিদ্ধান্ত, দায়িত্বশীল, অৰ্থপূৰ্ণ জীৱন যাপন কৰাৰ ওপৰত। ভৱিষ্যতলৈ মই কি হ'ম, কেনেকৈ থাকিম তাৰ সম্পূৰ্ণ স্বাধীনতা কেৱল তেওঁৰ ওপৰতহে থাকিব আৰু যিকোনো মুহূৰ্তত সমস্যাই দেখা দিলে তাৰ সঠিত সিদ্ধান্ত নিৰ্বাচন কৰিব লাগিব তেওঁ নিজেই। এনে ক্ষেত্ৰত ব্যক্তিসকলে নিজৰ ইচ্ছামতে আৰু নিজৰ সিদ্ধান্তসমূহক আঁতৰাই নাৰাখি তথা ফাঁকি নিদিয়াকৈ নিজৰ সত্তাক গঢ়ি তুলিব লাগে। নিজৰ অস্তিত্ব সম্পৰ্কে সচেতন হৈ উঠিব লাগে, তেতিয়াহে অস্তিত্বৰ সাৰধৰ্মৰ অগ্ৰগতি সম্ভৱ হৈ উঠিব।

অস্তিত্ববাদটোত কেইবাটাও দাৰ্শনিক মতবাদ সোমাই থকা পৰিলক্ষিত হয়। এই মতবাদ যুক্তি, বুদ্ধি আৰু পুৰম্পৰাগত বিশ্বাস, সংস্কাৰ আদিৰ নীতি ত্যাগ কৰি মানৱীয় অনুভূতিৰ জগতক ভিত্তি কৰি গঢ় লৈছে। এই অস্তিত্ববাদ সম্পূৰ্ণ ব্যক্তিৰ স্বতন্ত্ৰ সত্তাৰ লগতে জড়িত হৈ আছে। ব্যক্তিৰ অন্তৰৰ গভীৰতাত যি কথা সত্যৰূপে উপলব্ধি হৈছে, সেইকথাই তেওঁৰ বাবে সত্য; অন্য কথাত সত্যৰ মূল্য তেওঁৰ বাবে নাই। অস্তিত্ববাদৰ মুখ্য প্ৰবক্তা জাঁ পল ছাৰ্ত্ৰেই অস্তিত্ববাদক এক মানৱীয় দৰ্শন স্বৰূপে প্ৰতিষ্ঠা কৰিবলৈ যত্ন কৰি গৈছে। তেওঁ এহাতে মানুহৰ ব্যক্তিগত অস্তিত্বক প্ৰাধান্য দিও তাক এনে এক মানৱীয় দৰ্শন স্বৰূপে প্ৰতিষ্ঠা কৰিছে যাতে সি সমষ্টিৰো ক্ষতি সাধন নকৰে। *সি নিজৰ অনুভূতিৰ ওচৰত দায়বদ্ধ হৈ থাকিব; এইঅনুভূতিয়ে পশু-প্ৰবৃত্তিকো উচটনি নিদিব।* [২]

অস্তিত্ব মানে কেৱল শাৰীৰিক স্থিতিয়েই তাৰ অস্তিত্ব হ'ব নোৱাৰে। এনে ক্ষেত্ৰত নিজৰ অস্তিত্ব সম্পৰ্কে সচেতন হৈ স্বতন্ত্ৰভাৱে কাম কৰাৰ ওপৰতহে তাৰ ব্যক্তিগত সত্তাৰ

অস্তিত্ব নিৰ্ভৰ কৰিব। অস্তিত্ববাদীসকলে কয় যে জীয়াই থকা সময়ছোৱা যিহেতু এজন মানুহ নিজেই নিজৰ বাবে জীয়াই থাকে। গতিকে তেওঁ কেনেকৈ জীয়াই থাকিব বা জীৱন যাপন কৰিব সেইটো তেওঁৰ নিজৰ ইচ্ছাৰ বাহিৰে আন কোনো নীতি-নিয়মৰ দ্বাৰা নিৰ্দেশিত হ'ব নোৱাৰে। মূলত অস্তিত্ববাদীসকলে মানুহৰ নিজৰ অস্তিত্ব সম্পৰ্কীয় বোধ গঢ়ি উঠিলেহে মানুহৰ অস্তিত্ব গঢ় লৈ উঠে। মানুহৰ অস্তিত্বটো তাৰ জৈৱিক অস্তিত্ব কেতিয়াও হ'ব নোৱাৰে, বৰঞ্চ তাৰ নিজৰ স্বতন্ত্ৰ অস্তিত্ব সম্পৰ্কীয় বোধৰ ওপৰত প্ৰতিষ্ঠিত ব্যক্তিত্বৰ অস্তিত্ব। সেইবাবে তাৰ ব্যক্তিত্বৰ সাৰধৰ্ম বা সত্তাৰ বিকাশৰ আগতে নিজৰ স্বতন্ত্ৰ অস্তিত্ব সম্পৰ্কে তাৰ বোধ গঢ় লৈ উঠিব লাগে। স্বতন্ত্ৰ অস্তিত্বৰ বোধৰ ভিত্তিত মানুহে আন কোনো ব্যক্তি, সমষ্টি, ঐতিহ্য, পৰম্পৰা ইত্যাদিৰ দ্বাৰা কোনো প্ৰকাৰে প্ৰভাৱিত নোহোৱাকৈ নিজৰ স্বতন্ত্ৰ ভাব আৰু অনুভৱেৰে যি কোনো বিষয়ৰ ক্ষেত্ৰত নিজৰ কৰ্তব্য আৰু দায়িত্ব সম্পৰ্কে সিদ্ধান্ত কৰিব লাগে আৰু সিদ্ধান্ত ৰূপায়নৰ পথ স্বতন্ত্ৰভাৱে জীৱন যাপন কৰিব লাগে। ইয়াৰ দ্বাৰাহে তেওঁ নিজৰ সুকীয়া অস্তিত্ব প্ৰতিষ্ঠাৰ লগতে বিকাশ সাধন কৰিব পাৰিব।

অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াৰ 'মোৰ উচ্চতা' গল্পটোক এক আত্মিক উচ্চতাৰ পৰিমাপক হিচাপে গ্ৰহণ কৰা দেখা যায়। ইয়াত চৰিত্ৰটোৰ কৰ্ম-কাণ্ড, মনোভাৱনা, অনিশ্চয়তা আদি দিশবোৰত অৱস্থিতিবাদী ধাৰণা সুমাই আছে। গল্পটোত কথকে সমাজৰ সকলো ক্ষেত্ৰতে কেৱল নিৰাশাই দেখা পায়। গল্পত বৰ্ণিত অনুসৰি দূৰদৰ্শনৰ পৰ্দাত অনুষ্ঠিত হৈ থকা অলিম্পিক খেলত প্ৰথম স্থান প্ৰাপ্ত প্ৰতিযোগীয়ে পুৰস্কাৰ লোৱা মুহূৰ্ততো কান্দি থকা দেখা পাইছে। আনকি য'লৈকে কথকগৰাকীয়ে যায়, তাতে কেৱল নিৰাশা, হতাশা, কান্দোনৰ প্ৰতিচ্ছবিয়ে দেখা পায়। ইয়াত উচ্চতাক এক মানসিক আৰু আত্মিক বৃদ্ধিৰ পৰিমাপক হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। আমাৰ জীৱন যাত্ৰাত আমাৰ অগোচৰেই ঘটি থকা বৃদ্ধি আৰু হ্ৰাসৰ কথা দেখুওৱা হৈছে। আমাৰ উচ্চতা নিৰূপণো ঠিক তেনেদৰেই কৰা হয়। যিহেতু ঘটনাবোৰৰ স্থিতি ধ্ৰুৱক। আত্ম উচ্চতাৰ বৃদ্ধি আৰু হ্ৰাসকৰণেই হৈছে মানুহৰ আত্মবিশ্লেষণৰো চাবি-কাঠী। গল্পটোত এক মানসিক সম্পৰীক্ষা তথা নিজৰে মানসিক অৱস্থিতি হিচাপে মানুহৰ জটিল জীৱনৰ দিশ কিছুমান উন্মোচিত কৰিছে। গল্পটোত মুখ্য চৰিত্ৰটোৱে কৰা কৰ্ম-কাণ্ডতে সেয়া স্পষ্ট হৈ পৰিছে।

"হঠাতে মোৰ মনত টিভিটোৰ প্ৰতি এক বিৰূপ ভাৱৰ সৃষ্টি হ'ল আৰু একে জাঁপতে ছুইচটোৰ ওচৰলৈ গৈ টিভিটো বন্ধ কৰি থ'লোঁ। *মোৰ উচ্চতা যেন এইবাৰ হুৰহুৰকৈ বহুত কমি গ'ল আৰু অলকৰ ল'ৰাটোৰ সমান উচ্চতাতগৈ যেনিবা প্ৰতিক্ৰিয়াটো থামিল।*"[৩]

এটা কথা স্পষ্ট যে মানুহৰ মনৰ উচ্চতাটো প্ৰকৃততে স্থায়ী ধাৰণা নহয়; সমাজত ঘটি থকা ঘটনাবোৰৰ সৈতে আমি নিজকে ৰিজাই ওখ বা চাপৰৰ ধাৰণা কৰি নিজকে জুখি থাকোঁ, অহৰহ নিজৰ অস্তিত্ব নিৰ্ণয় কৰি থাকো।

'গল্প আৰু জীৱন' গল্পটোত নায়কজনৰ কৰ্ম-কাণ্ডবোৰে অৱস্থিতিবাদৰ নিৰ্দেশ কৰি থাকে। কেতিয়াবা দেখা যায় জীৱনৰ অৰ্থৰ সন্ধানত গোটেই জীৱন অতিবাহিত কৰিলেও জীৱনৰ অৰ্থ নোলায়গৈ। জীৱনৰ অৰ্থ বিচাৰি মৃত্যু দশাক ওচৰৰ পৰা চাব খোজা এক প্ৰচেষ্টা গল্পটোত পোৱা যায়। গল্পটোৰ মুখ্য চৰিত্ৰ ডম্বৰু দাসে সমাজ সেৱা কৰাৰ উদ্দেশ্যেৰে মৃত দেহৰ সৎকাৰ কৰি আহিছে। কাৰণ তেওঁ এজন কেন্সাৰ ৰোগী আৰু এই ক্ষেত্ৰত তেওঁ মৃত্যু দশাৰ শেষ স্তৰত আছে। সমাজখনক তেওঁ কিবা এটা দি যাবলৈ বিচাৰিছে কিন্তু ধনৱন্ত নহ'লে সেয়া কৰিব নোৱাৰি বুলি তেওঁ ভাৱে। এই গল্পটোৰ মূল ভাৱটোৱেই হৈছে জীৱনৰ অৱস্থিতিৰ সন্ধান। গল্পটোত কথকৰ বাছযাত্ৰা ঘটনাটো এটা মাত্ৰ লক্ষণাহে, জীৱনৰ সন্ধান কৰাটোৱেই যেন চৰিত্ৰটোৰ মূল উদ্দেশ্য। গল্পটোত অৱস্থিতিবাদৰ দিশটো কেনেদৰে আছে সেই সম্পৰ্কে সাহিত্য সমালোচকে কৈছে—

"জীৱনৰ অৰ্থ অন্বেষণৰ কথাটোৱে অৱস্থিতিবাদৰ ধাৰণাক বিৰোধ কৰিলেও প্ৰটাগনিষ্টজনৰ কৰ্মকাণ্ডবোৰে অৱস্থিতিবাদৰ নিৰ্দেশ কৰে। *'বেয়া মানুহৰহে বেয়া বেমাৰ হয়' বোলা ধাৰণাটোক এই গল্পটোক নাকচ কৰা হৈছে। পৰিশেষত গল্পটোৰ নায়কে যেতিয়া কয় "গতিকে মই গৰাকীবিহীন লাচৰ সন্ধানতে থাকোঁ, মৃত্যুদশা ওচৰৰ পৰা চাব খোজোঁ, বুজিব খোজো মৃত্যুৰ আনুষ্ঠানিকতা"— ই নিৎসেৰ জীৱন-এষণাতকৈ পৃথক নহয়।*"[৪]

শইকীয়াৰ 'বজাৰত এদিন' গল্পত পোৱা যায় যে বেমাৰী মাকক চিকিৎসা কৰিবলৈ সন্তানৰ হাত টকা নাই। সেই বাবে মুখ্য চৰিত্ৰটোৱে উপভোক্তাবাদৰ এখন জগতত সুমাই পৰে, য'ত সৰ্বত্ৰতে বিয়পি আছে আৱেগহীনতাৰ এখন ছবি। বীৰ্যদাতাৰ সাক্ষাৎকাৰ পতা ঠাইত শৰীৰৰ ৰঙটোৱেহে বেছি প্ৰাধান্য পাবলৈ ধৰিলে, য'ত কেইজনমান নিৰনুৱাই গাৰ ৰঙৰ বাবেই চাকৰি হেৰুৱাব লগা হৈছে। গল্পটোত কথক চৰিত্ৰটোৱে যদিও সেই চাকৰিৰ সাক্ষাৎকাৰৰ বাবে গৈছে, তাত চাকৰিটো তেওঁ ত্যাগ কৰি আহিছে। সেইখন বজাৰৰ পৰা নিজকে মুক্ত কৰি নিজৰ ধৰণেৰে জীয়াই থকাৰ ইংগিত দিছে। ইয়াৰ দ্বাৰা গল্পটোত অৱস্থিতিবাদৰে ইংগিত দিবলৈ যত্ন কৰিছে।

অৱস্থিতিবাদ বা অস্তিত্ববাদ ব্যক্তিৰ স্বতন্ত্ৰ সত্তাৰ লগতে সম্পূৰ্ণভাৱে জড়িত হৈ থাকে। সেয়েহে নগেন শইকীয়াই কৈছে—

"ব্যক্তিৰ অন্তৰৰ গভীৰতাত যি কথা সত্যৰূপে উপলব্ধ হৈছে, সেই কথাই তেওঁৰ বাবে সত্য; আন সত্যৰ মূল্য তেওঁৰ বাবে একো নাই। অৰ্থাৎ অস্তিত্ববাদ সম্পূৰ্ণকৈ ব্যক্তিৰ স্বতন্ত্ৰ সত্তাৰ লগত জড়িত।"[৫]

অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াৰ গল্পত মৃত্যু চেতনাৰ প্ৰতিফলন ঘটাতো অন্যতম বৈশিষ্ট্য। অস্তিত্ববাদ বা অৱস্থিতিবাদৰ প্ৰভাৱ পৰা বাবেই তেওঁৰ গল্পত মৃত্যু চেতনাটো আপোনা-আপুনি সুমাই পৰিছে। উদাহৰণস্বৰূপে তেওঁৰ 'চ'তৰ উৰহী' গল্পৰ কথা ক'ব পাৰি। গল্পটোত পোনাকন চৰিত্ৰটোৱে জীৱনৰ প্ৰতি অনিশ্চয়তা, নিঃসঙ্গতা আদি দ্বন্দ্বত ভোগা এটা চৰিত্ৰ। সমাজ উপেক্ষিত চৰিত্ৰ হিচাপে গল্পটোত সাৰ্থকভাৱে উপস্থাপন কৰা দেখা যায়। এই চৰিত্ৰটোক জীৱনৰ প্ৰতি দেখা দিয়া সংকট, জটিলতা আৰু মৃত্যুচেতনাই খেদি ফুৰা চৰিত্ৰ হিচাপে উপস্থাপন কৰিছে। গোটেই দিনটোৰ বাবে ওলাই যোৱা পোনাকনে শেষত নিজৰ মাতৃৰ কোলাতে সুখ বিচাৰি পাইছে। উত্তৰ আধুনিকতা ভাৱাদৰ্শৰে গঢ়িবলৈ যত্ন কৰা এই চৰিত্ৰটোৱে সেয়ে কাৰ্য আৰু কৰণৰ মাজৰ এটা পাৰ্থক্য ৰাখিবলৈ যত্ন কৰা দেখা যায়। মাতৃ এগৰাকীৰ সন্তান ঢুকোৱাত পোনাকনে দুয়োটাকে বেলেগকৈ চাবলৈ যত্ন কৰিছে। এটা দিনৰ অভিজ্ঞতাৰে বৰ্ণনা কৰা 'চ'তৰ উৰহী' গল্পৰ পোনাকন চৰিত্ৰটো প্ৰকৃততে সমাজৰ প্ৰত্যেকজন শিক্ষিত ব্যক্তিৰ প্ৰতিনিধিহে। এই গল্পটোতে থকা মোহন বুঢ়াও অন্যতম এটা গুৰুত্বপূৰ্ণ চৰিত্ৰ যিয়ে সমাজৰ বৃদ্ধ শ্ৰেণীৰ প্ৰতিনিধি হিচাপে দেখুওৱাইছে। বৃদ্ধ একোগৰাকীৰ আচাৰ-আচৰণ, চিন্তা-চেতনা, কাৰ্ু-কাৰ্য আদি দিশবোৰৰ প্ৰতিফলন ঘটিছে। এই চৰিত্ৰটোৰ জৰিয়তে বৃদ্ধ অৱস্থাত দেখা দিয়া নিঃসঙ্গতা, একাকীত্বৰ চেতনা আদিৰ সুন্দৰভাৱে প্ৰতিফলন ঘটিছে। গল্পত পোনাকণ চৰিত্ৰটোৱে তেওঁৰ অস্তিত্বৰ প্ৰতি সংকটত ভুগিছে। জীৱনৰ প্ৰতি অনিশ্চয়তা, নিঃসঙ্গতা আদি দ্বন্দ্বত ভুগিছে। সমাজ উপেক্ষিত চৰিত্ৰ হিচাপে উপস্থাপন কৰা এই চৰিত্ৰটোক মৃত্যুচেতনাই তেওঁক খেদি ফুৰা পৰিলক্ষিত হয়। গল্পটোত এনেদৰে আছে—

"বৌটি, তামোল এখন সেলেঙি লগাই দেচোন। তামোল-পাণ এখন চোবাই থকাৰ মুহূৰ্তত মোৰ নিশ্চয় ভয় লাগিব কাৰণ অলপ আগতে মুখত আধাচোবোৱা মিঠাপাণেৰে মৃতদেহ এটা এৰি থৈ আহিছোঁ, এই মুহূৰ্তত মোৰ বাবে ই এক ভয়াৱহ মৃত্যুৰ স্মাৰক। গতিকে তয়ো মোৰ ওচৰলৈ আহি মোৰ টোপনি অহালৈকে শুবহি লাগিব। তই ওচৰ চাপি আহিবিনে?" [৬]

'বিচ্ছিন্নতাবাদৰ গল্প'টোত কথক চৰিত্ৰটোৱে সমাজৰ পৰা বিচ্ছিন্ন হৈ যোৱা দেখা যায়। তেওঁৰ চিন্তা-আদৰ্শৰ লগত সমাজৰ মানুহৰ মিল নপৰে। জেক লণ্ডনে নিজৰ অস্তিত্বৰ সংকটত ভুগি এটা সময়ত মৰফিয়া খাই আত্মহত্যা কৰিছিল। মৰফিয়ায়েই তেওঁক সেই দুৰ্যোগৰ সময়খিনিত ৰক্ষা কৰিছিল। সেইদৰে কথকগৰাকীয়েও জীৱনৰ এক জটিল সন্ধিক্ষণত আহি উপস্থিত হৈছিহে। তেওঁৰ চিন্তা-ভাৱনা, আদৰ্শ সকলোখিনিয়ে সমাজ বিচ্ছিন্ন। অস্তিত্বৰ সংকটত ভুগি মনলৈ মৃত্যু চেতনা আহি ধৰা দিছেহি। জীৱনটোৱে জীয়াই থাকিবলৈ নিৰুৎসাহিত কৰিলেও জেক লণ্ডনৰ দৰে আত্মহত্যাৰ ভাৱ মনলৈ অনা নাই। তাৰ পৰিৱৰ্তে জীৱনটোক পুনৰ সজাই মেলি আত্মপ্ৰেমৰ ভাৱটোহে অধিক গাঢ় কৰিবলৈ যত্ন কৰিছে।

'জীৱনে নিৰুৎসাহিত কৰিলেও মই এতিয়া জীৱনৰ পৰা তোমাৰ দৰে তাৎক্ষনিক মুক্তি নিবিচাৰোঁ; বৰঞ্চ এটা জীৱনজোৰা তিল তিল আত্মহত্যাৰ প্ৰক্ৰিয়াৰে মই জীৱনৰ প্ৰতি মোৰ প্ৰেম তীব্ৰতৰ কৰিবহে খোজোঁ।"[৭]

এই গল্পটোত অৱস্থিতিবাদৰ সমান্তৰালভাৱে উত্তৰ আধুনিকতাবাদৰো কিছু প্ৰভাৱ পৰা দেখা যায়।

প্ৰত্যেকগৰাকী মানুহে নিজকে সৃষ্টি কৰে নিজৰ ভাব আৰু প্ৰতিক্ৰিয়াৰ মাজেৰে, কাৰণ মানুহৰ একমাত্ৰ বাস্তৱতাই হ'ল তেওঁৰ ব্যক্তিগত অৱস্থিতি আৰু ই কেৱল ব্যক্তিসাপেক্ষহে। আৰম্ভণি তথা শূন্যতাৰ পৰা কিবা এক সৃষ্টিৰ তাগিদাই মানুহক কেতিয়াবা খঙাল, বিহ্বল আৰু ভয়াতুৰো কৰি তোলে। মানুহৰ অস্তিত্ব একান্ত ব্যক্তিগত বা একক। সমূহীয়াভাৱে মানুহৰ অস্তিত্ব নিৰূপন কৰিব নোৱাৰি। কেতিয়াবা এই অৱস্থিতিবাদটো নৈৰাশ্যবাদৰো কাষ চাপি আহে। মই প্ৰকৃততে 'মই' হয়নে তেনে ধাৰণা একোটা আহিবলৈ লয়। তেনে ভাৱৰে প্ৰতিফলন ঘটিছে 'মোৰ অক্ষৌহিনী প্ৰশ্নৰ কেইটামান' শীৰ্ষক গল্পত। ইয়াত কথক চৰিত্ৰটোৰ নিজক লৈয়ে নানা ধৰণৰ প্ৰশ্নৰ উদয় হৈছে।

"মই মোৰ মাতৃক সুধিছিলোঁ, 'মই কোন আৰু কিয়?' মোৰ প্ৰশ্ন অস্ফুট হৈ ৰৈছিল, পানীত বুৰ মাৰি কথা ক'ব খুজিলে বা বায়ৱিকভাৱে লঘু হ'ব খুজিলে নদীৰ পাৰৰ মানুহৰ যি হয় একেই আছিল মোৰ মাতৃৰ অৱস্থা, তেওঁ নিৰ্বিকাৰ হৈ ৰৈছিল।"[৮]

গল্পটোত কথক চৰিত্ৰই নিজৰ অৱস্থিতিৰ সন্ধান কৰি থকা দেখা যায়। কথক চৰিত্ৰই নিজৰ মাতৃলৈ তেওঁৰ অস্তিত্ব সম্পৰ্কীয় নানা ধৰণৰ প্ৰশ্ন সুধি তাৰ উত্তৰ বিচাৰি হাবাথুৰি খাইছে। এনে দিশলৈ চালে গল্পটোত অৱস্থিতিবাদৰ প্ৰভাৱ পৰা পৰিলক্ষিত হয়।

এনেদৰে অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াৰ বহুকেইটা গল্পতে নৈৰাশ্য চেতনা, মৃত্যু চেতনা, বিষণ্ণতা, নিঃসংগতা আদি ভাববোধ

থকা পৰিলক্ষিত হয়। ব্যক্তিৰ নিজৰ অস্তিত্বৰ প্ৰতি সংকট, নিজৰ অৱস্থিতি সম্পৰ্কে সচেতন হোৱা আদি দিশবোৰলৈ লক্ষ্য কৰিলে তেওঁৰ গল্পত অৱস্থিতিবাদৰ প্ৰতিফলন ঘটিছে বুলি ক'ব পাৰি।

সামৰণি ঃ

অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াৰ গল্পৰ বিষয়বস্তুত বিষয়-বৈচিত্ৰ্য থকা পৰিলক্ষিত হয়। সমাজ বাস্তৱতা, লিংগ আৰু শ্ৰেণী বৈষম্য, সমাজ আৰু মূল্যবোধ আদি ভিন্ন বিষয়বস্তুৰে গল্পবোৰ ৰচনা কৰিছে। তেওঁৰ গল্পত জীৱন চেতনাৰ উপলব্ধিও গভীৰভাৱে পোৱা যায়। গল্পবোৰত সমাজ বাস্তৱতাৰ প্ৰতিফলন ঘটাৰ সমান্তৰালভাৱে বিষয়ৰ তাত্ত্বিক, বৌদ্ধিক আৰু মনোবিশ্লেষণধৰ্মী বিৱৰণেৰে তেওঁৰ গল্পবোৰ সমৃদ্ধ হোৱা দেখা যায়।

সামগ্ৰিক সিদ্ধান্ত ঃ

'অৱস্থিতিবাদী দৃষ্টিভংগীৰে অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াৰ গল্প ঃ এক অধ্যয়ন' শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখনৰ অধ্যয়নৰ অন্তত কেইটামান সামগ্ৰিক সিদ্ধান্ত পোৱা গৈছে। প্ৰাপ্ত সিদ্ধান্তকেইটা হৈছে—

(ক) অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াৰ গল্পত অৱস্থিতিবাদী দৰ্শনৰ প্ৰভাৱ আছে বাবেই আধুনিক নগৰীয়া সমাজৰ মানুহৰ নৈৰাজ্য চেতনা, বিষণ্ন মনোভাৱ, হতাশা আদি দিশবোৰ তেওঁৰ গল্পত পোৱা যায়।

(খ) শইকীয়াৰ 'গল্প আৰু জীৱন', 'বজাৰত এদিন', 'চ'তৰ উৰহী', 'বিচ্ছিন্নতাবাদৰ গল্প' আদি গল্পকেইটা মৌলিক বাস্তৱতা আৰু ব্যক্তিৰ স্বতন্ত্ৰ অস্তিত্ববোধৰ ভিত্তিত ৰচিত হৈছে বাবেই অৱস্থিতিবাদৰ আভাস শইকীয়াৰ এই গল্পকেইটাত পোৱা যায়।

(গ) অৱস্থিতিবাদী দৰ্শনত পোৱাৰ দৰে শইকীয়াৰ গল্পৰ বিষয়বস্তুত চৰিত্ৰবোৰে দায়িত্ব, কৰ্তব্য আৰু সিদ্ধান্ত ৰূপায়নৰ পথ স্বতন্ত্ৰভাৱে নিৰ্বাচন কৰিছে আৰু স্বতন্ত্ৰভাৱে নিজৰ জীৱন উদযাপন কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে। ❑

প্ৰসংগ সূত্ৰ ঃ

[১] শইকীয়া, নগেন। সাহিত্যৰ বাদ-বৈচিত্ৰ্য, পৃ. ৬৬।
[২] পূৰ্বোক্ত, পৃ. ৭০।
[৩] শইকীয়া, অপূৰ্ব কুমাৰ। বজাৰত এদিন, পৃ. ৩৯।
[৪] বৰা, দীপান্বিতা। অপূৰ্ব কুমাৰ শইকীয়াৰ গল্পৰ কথকতা আৰু অস্তিত্ববাদ। অনুৰাধা শৰ্মা পূজাৰী (সম্পাঃ)। সাতসৰী, ছেপ্টেম্বৰ, ২০১৮, পৃ. ৪৯।
[৫] শইকীয়া, নগেন।পূৰ্বোক্ত, পৃ. ৬৮।
[৬] শইকীয়া, অপূৰ্ব কুমাৰ। চ'তৰ উৰহী, পৃ. ৯০-৯১।
[৭] পূৰ্বোক্ত। বেংছতা, পৃ. ৫১।
[৮] পূৰ্বোক্ত। লিংগমুক্ত পৃথিৱীৰ সাধু এটা, পৃ. ৩৮।

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

শইকীয়া, নগেন। সাহিত্যৰ বাদ-বৈচিত্ৰ। ডিব্ৰুগড় ঃ কৌস্তুভ প্ৰকাশন, ২০১৫। মুদ্ৰিত।
শইকীয়া, অপূৰ্ব কুমাৰ। বেংছতা। গুৱাহাটী ঃ আঁক-বাক প্ৰকাশন, ২০১৬। মুদ্ৰিত।
----------। চ'তৰ উৰহী। গুৱাহাটী ঃপাঞ্চজন্য প্ৰকাশন, ২০১৯। মুদ্ৰিত।
----------। লিংগ মুক্ত পৃথিৱীৰসাধু এটা। আঁক-বাক প্ৰকাশন, ২০১১। মুদ্ৰিত।

কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীৰ শকুন্তলা কাব্যত নাৰীত্বৰ কল্পনা ঃ মাৰ্গীয় আৰু লোক উপাদান

প্ৰাঞ্চী বৰা

সংক্ষিপ্তসাৰ

ভাৰতীয় আন ভাৰ্নেকুলাৰৰ দৰে অষ্টাদশ শতিকাৰ প্ৰথম ভাগত *মহাভাৰতৰ আদি পৰ্ব্বৰ* অন্তৰ্গত শকুন্তলা আৰু দুষ্যন্তৰ প্ৰণয়কাহিনীভাগক আহোম ৰাজসভাৰ কবি কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীয়ে অসমীয়ালৈ অনুবাদ কৰিছিল। সংস্কৃত মহাকাব্য নিৰ্ভৰ এই কাব্যৰ অনুবাদত ক্ৰিয়াশীল আছিল মধ্যযুগৰ এখন পূৰ্ণাঙ্গ ৰাষ্ট্ৰৰ আদৰ্শ। মূলতঃ ৰাষ্ট্ৰগঠন প্ৰক্ৰিয়াৰ অংশ হিচাপে আৰু আমোদ-প্ৰমোদৰ বাবে ৰজাৰ পৃষ্ঠপোষকতাত ৰচিত সাহিত্যই ব্ৰাহ্মণ্য আদৰ্শ আৰু ৰজাৰ ৰুচি-অভিৰুচিৰ প্ৰতি বিশেষ মনযোগ দিছিল। খ্ৰীষ্টীয় চতুৰ্থ শতিকাৰ অসমত ৰাষ্ট্ৰগঠন প্ৰক্ৰিয়াৰ সূচনা হোৱাৰ লগে লগে পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজব্যৱস্থা আৰু ব্ৰাহ্মণ্যধৰ্মৰ আদৰ্শও প্ৰচাৰ হ'বলৈ আৰম্ভ কৰিছিল। জনজাতিপ্ৰধান এই অঞ্চলত পতিব্ৰতা নাৰীৰ নতুন আদৰ্শ প্ৰচাৰৰ জৰিয়তে নাৰী জীৱনৰ বিভিন্ন পৰ্যায়ত পিতৃ, স্বামী আৰু পুত্ৰৰ দ্বাৰা পৰিচালিত কৰাৰ ধাৰণা প্ৰচলিত হ'ল। এই গৱেষণা-পত্ৰত শকুন্তলা কাব্যত প্ৰতিফলিত নাৰীত্বৰ ধাৰণাৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। *মহাভাৰতৰ আদি পৰ্ব্বৰ* শকুন্তলা বা গুপ্ত ৰজাৰ পৃষ্ঠপোষকতাত কালিদাসে ৰচনা কৰা নাটক *অভিজ্ঞানম্ শকুন্তলম্*ৰ মাৰ্গীয় দৰ্শনে ভাৰতৰ মূল ভূ-খণ্ডৰ সামন্তীয় ৰাষ্ট্ৰৰ চৰিত্ৰক প্ৰতিনিধিত্ব কৰিছিল। কিন্তু অসমীয়া শকুন্তলা কাব্যত ৰাষ্ট্ৰ আৰু সংস্কৃত সাহিত্যৰ মাৰ্গীয় দৰ্শনৰ সমান্তৰাকৈ জনজাতি প্ৰধান অসমৰ লোকসমাজ আৰু বৈষ্ণৱ আদৰ্শয়ো প্ৰভাৱ পেলাইছিল। জনজাতি প্ৰধান অসমৰ লোকসমাজত নাৰী ভাৰতৰ মূল ভূ-খণ্ডৰ তুলনাত সামাজিক আৰু অৰ্থনৈতিকভাৱে স্বাধীন আছিল আৰু অসমৰ অনাৰ্যমূলীয় ৰজা-প্ৰজা সকলোৱে জনজাতীয় আদৰ্শ সম্পূৰ্ণৰূপে ত্যাগ কৰিব পৰা নাছিল। আমাৰ এই গৱেষণা পত্ৰত দুই ধৰণৰ বিপৰীত আদৰ্শই ক্ৰিয়া কৰা শকুন্তলা কাব্যৰ নাৰীত্বৰ প্ৰসংগ বিস্তৃত ভাৱে আলোচনা কৰিবলৈ লোৱা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

সাহিত্য, ৰাষ্ট্ৰ, নাৰীত্ব, পতিব্ৰতা।

প্ৰস্তাৱনা ঃ

অষ্টাদশ শতিকাৰ অসমৰ এজন গুৰুত্বপূৰ্ণ কবি আছিল কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তী। সাহিত্যৰ ইতিহাসত কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীৰ বিষয়ে বৰ বিশেষ তথ্য পোৱা নাযায়। বৰ্তমানলৈকে কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীৰ পাঁচখন পুথি পোৱা গৈছে - 'ব্ৰহ্মবৈৱৰ্ত পুৰাণ (জন্ম খণ্ড)', *শকুন্তলা কাব্য*, 'শংখচূড় বধ', *গীত গোবিন্দ* আৰু 'ভাস্বতী'। *ৰজা ৰুদ্ৰসিংহৰ আমোলৰ পৰা শিৱসিংহ, ৰাণী প্ৰমথেশ্বৰী (বৰৰজা ফুলেশ্বৰী), অম্বিকা দেৱীৰ সময়লৈকে কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীয়ে কবিৰূপে প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিছিল।* [১] *শকুন্তলা কাব্য*ৰ উপসংহাৰত কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীয়ে আত্মবিবৃতি দিছে এনেদৰে—

ৰাজাৰ প্ৰসাদে নানা সুখ ভুঞ্জিলন্ত।
সৌমাৰ পীঠত শুদ্ধ যশ আজ্জিলন্ত।।
তাহান তনয় ৰামনাৰায়ন নাম।

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
তেজপুৰ বিশ্ববিদ্যালয়
নপাম, তেজপুৰ, অসম-৭৮৪০২৮
৯১০১৫৮৯০০২
pranchikamarbandha@gmail.com

বিষ্ণুৰ কিঙ্কৰ ভৈল গুণগুণধাম।।
কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তী যাৰ পৰ নাম।
শাস্ত্ৰত নিপুণ বিপ্ৰ গুণে অভিৰাম।।
যাত হন্তে শাস্ত্ৰ পঢ়ি ৰুদ্ৰসিংহ ৰাই।
পণ্ডিত ভৈলন্ত নানা শাস্ত্ৰতত্ত্ব পাই।।
সেহি কবিৰাজে বিপ্ৰ মতি অনুসৰি।
কৃষ্ণপদ পঙ্কজৰ প্ৰণাম আচৰি।।
আদি-পৰ্ব্ব ভাৰতক বিৰেচিয়া আতি।
দুষ্যন্ত-চৰিত্ৰ পদবন্ধে নিগদতি।। (*শকুন্তলা কাব্য*)

'শতপথ ব্ৰাহ্মণ' আৰু 'ঐতৰেয় ব্ৰাহ্মণ'ত ৰজা দুষ্যন্ত আৰু শকুন্তলা প্ৰণয় কাহিনীৰ উল্লেখ আছিল যদিও *মহাভাৰতৰ আদি পৰ্বত* শকুন্তলা আৰু দুষ্যন্তৰ কাহিনীয়ে বিস্তৃত ৰূপ লাভ কৰে। গুপ্তসাম্ৰাজ্যৰ ৰজা বিক্ৰমাদিত্যৰ ৰাজসভাৰ কবি কালিদাসে এই কাহিনীকে আধাৰ হিচাপে লৈ যোগ-বিয়োগ কৰি এক নতুন ৰূপত *অভিজ্ঞানম্ শকুন্তলম্* নামেৰে সংস্কৃতত নাট্যৰূপ দিছিল। ভাৰতবৰ্ষত গুপ্তযুগতেই ৰাষ্ট্ৰগঠন প্ৰক্ৰিয়াই এক নিৰ্দ্দিষ্ট ৰূপ পৰিগ্ৰহ কৰিছিল আৰু ইয়াৰ লগে লগে ৰাজসভাকেন্দ্ৰিক সাহিত্য চৰ্চাৰ পৰিৱেশ এটাও গঢ়ি উঠিছিল। *মহাভাৰতৰ আদি পৰ্ব্ব* শকুন্তলা আৰু দুষ্যন্তৰ কাহিনীটোৰ পৰা কেৱল মূল জুমুঠিটো লৈ কালিদাসে ৰাষ্ট্ৰৰ আদৰ্শৰ লগত খাপ-খুৱাই *অভিজ্ঞানম্ শকুন্তলম্* ৰচনা কৰি উলিয়াইছিল। *অষ্টাদশ শতিকাৰ আৰম্ভণিলৈকে ভাৰতৰ বিভিন্ন ভাৰ্নেকুলাৰলৈ শকুন্তলা আৰু দুষ্যন্তৰ কাহিনীৰ অনুবাদ হৈছিল।*[২] ৰমিলা থাপাৰৰ মতে এই সমূহৰ বেছিভাগেই ৰাজপৃষ্ঠপোষকতাত ৰচিত আৰু মূল আছিল কালিদাসৰ *অভিজ্ঞানম্ শকুন্তলম্*।

অষ্টাদশ শতিকাৰ প্ৰথমভাগত শকুন্তলা আৰু দুষ্যন্তৰ কাহিনী কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীয়ে অসমীয়ালৈ অনুবাদ কৰিছিল। কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীয়ে তেওঁৰ কাব্যৰ আখ্যানভাগ *মহাভাৰতৰ আদি পৰ্ব্বৰ* পৰা গ্ৰহণ কৰা বুলি উল্লেখ কৰিছে, যদিও ইয়াৰ জঁকাটোহে *মহাভাৰতৰ*। *প্ৰকৃততে, কাব্যখনৰ আখ্যানভাগৰ লগত মহাকবি কালিদাসৰ অমৰ নিৰ্মিতি অভিজ্ঞানম্ শকুন্তলম্‌ৰ আখ্যানৰহে সাদৃস্য গভীৰ। সেই বুলি কবিয়ে যে কেৱল কালিদাসকেই অনুসৰণ কৰিছে, তেনেকথাও ক'ব পৰা নাযায়; কিয়নো মহাকবি গৰাকীৰ ৰচনাত নথকা কেতবোৰ নতুন ঘটনাও অসমীয়া কাব্যখনত ৰূপায়ণ কৰা পৰিদৃষ্ট হয়।*[৩] অৱশ্যে ইয়াৰ পূৰ্বে ৰাম সৰস্বতীয়ে ষোড়শ শতিকাত কোঁচ ৰজা নৰনাৰায়ণৰ পৃষ্ঠপোষকতাত *মহাভাৰতৰ আদিপৰ্ব* অসমীয়ালৈ অনুবাদ কৰিছিল। এই অনুবাদত শকুন্তলা আৰু দুষ্যন্তৰ কাহিনীও অন্তৰ্ভুক্ত হৈ আছিল। কিন্তু স্বতন্ত্ৰ কাব্য হিচাপে কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীয়েহে প্ৰথম অসমীয়ালৈ অনুবাদ কৰিছিল।

শকুন্তলা কাব্যৰ ভণিতাত উল্লেখ থকা অনুসৰি শিৱসিংহ পৃষ্ঠপোষকতাত এই কাব্য ৰচনা কৰিছিল। শিৱসিংহই ১৭১৪ খৃষ্টাব্দৰ পৰা ১৭২৬ খৃষ্টাব্দলৈ ৰাজত্ব কৰিছিল। তেওঁৰ ছত্ৰভংগ যোগ হোৱাত, ৰাণী ফুলেশ্বৰীয়ে ১৭২৬ খৃষ্টাব্দৰ পৰা শাসনভাৰ চলাইছিল। *আত্মবিবৃতিত কবিগৰাকীয়ে ৰজা শিৱসিংহৰ আজ্ঞাত আৰু ফুলেশ্বৰীৰ বাণীত এই কাব্য ৰচনা কৰা বুলি উল্লেখ কৰিছে। সেয়ে, কাব্যখন খৃঃ ১৭১৪ চনৰ পিছত আৰু খৃঃ১৭২৬ চনৰ পূৰ্বে, কোনো এটা সময়ত ৰচনা কৰা বুলি অনুমান কৰিব পাৰি।*[৪]

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীৰ *শকুন্তলা কাব্যত* নাৰীত্বৰ কল্পনা ঃ মাৰ্গীয় আৰু লোক উপাদান শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুতৰ উদ্দেশ্যসমূহ হৈছে—

- কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তী আৰু তেওঁৰ কাব্য *শকুন্তলা কাব্যৰ* সম্পৰ্কে সম্যক পৰিচয় লাভ কৰা।
- প্ৰাক-আধুনিক অসমত ৰাষ্ট্ৰৰ প্ৰেক্ষাপটত নাৰীৰ প্ৰস্থিতি সম্পৰ্কে ধাৰণা লাভ কৰা।
- প্ৰাক-আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যত নাৰীৰ চিত্ৰ কেনেদৰে তুলি ধৰা হৈছে আলোচনা কৰা।
- শকুন্তলা কাব্যত দুই বিপৰীত আদৰ্শ— মাৰ্গীয় আৰু লোক উপাদানে নাৰী চৰিত্ৰসমূহত কেনেদৰে প্ৰভাৱ পেলাইছে আলোচনা কৰা।

অধ্যয়নৰ উৎস আৰু পদ্ধতি ঃ

মুখ্য উৎস- দুৰ্গাধৰ বৰকটকী সম্পাদিত *শকুন্তলা কাব্য* (১৯২৪), কিৰণ চন্দ্ৰ শৰ্মা সম্পাদিত *শকুন্তলা কাব্য* (১৯৬৯) আৰু বসন্ত কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য সম্পাদিত *শকুন্তলা কাব্য* (১৯৯৬)।

গৌণ উৎস- ডিম্বেশ্বৰ নেওগৰ *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী* (১৯৫৭), মহেশ্বৰ নেওগৰ *অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা* (১৯৬২), সত্যেন্দ্ৰ নাথ শৰ্মাৰ *অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত* (১৯৮১), আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি সংস্থা, অসমৰ পৰা প্ৰকাশিত আৰু বাণীকান্ত শৰ্মা সম্পাদিত *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (তৃতীয় খণ্ড)* (২০১৭), ৰমিলা থাপাৰৰ *Sakuntala: Text,Readings,Histories* (১৯৯৯), স্বৰ্ণলতা বৰুৱাৰ *A Comprehensive History of Assam (১৯৮৫)* আদি গৌণ উৎস হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। লগতে ৰাজসভাকেন্দ্ৰিক সাহিত্য আৰু নাৰীত্বৰ ধাৰণা সম্পৰ্কীয় বিভিন্ন কাকত-আলোচনীৰ পৰাও তথ্য সংগ্ৰহ কৰা হৈছে।

কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীৰ *শকুন্তলা কাব্যত* নাৰীত্বৰ কল্পনা ঃ মাৰ্গীয় আৰু লোক উপাদান শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখনত বিশ্লেষণাত্মক, সমীক্ষাত্মক আৰু তুলনাত্মক পদ্ধতি ব্যৱহাৰ কৰা হ'ব।

প্ৰাক- আধুনিক অসমৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত ৰাষ্ট্ৰ, কাব্য আৰু নাৰীত্বৰ ধাৰণা ঃ

ভাৰতৰ প্ৰাক-আধুনিক ৰাষ্ট্ৰসমূহে সাধাৰণ লোকৰ নৈতিক সমৰ্থন লাভ কৰিবলৈ সামৰিক বা প্ৰশাসনিক ক্ষেত্ৰৰ উপৰি বিভিন্ন ক্ষেত্ৰত পৃষ্ঠপোষকতা কৰিছিল। ইতিমধ্যেই ৰাজতন্ত্ৰৰ অংশ হৈ পৰা সামৰিক অথবা প্ৰশাসনিক বিষয়াসকলৰ বাদে ৰাজ্যৰ অধিকাংশলোকেই আছিল সাধাৰণলোক। এই সৰ্বসাধাৰণলোকৰ মাজত ৰজাৰ প্ৰভুত্ব, ক্ষমতা বা সামন্তীয় ৰাষ্ট্ৰৰ অন্যান্য চৰিত্ৰ প্ৰচাৰ আৰু প্ৰতিষ্ঠাৰ এক মাধ্যম হিচাপে সাহিত্য - সংস্কৃতিক ৰাজ-পৃষ্ঠপোষকতা প্ৰদান কৰিছিল।[৫] বিভিন্ন সময়ত এই ক্ষেত্ৰসমূহৰ সৈতে জড়িত পণ্ডিতসকলক মাটি-ভেঁটি, বন্দী-বেটী দি ৰাজ্যত সংস্থাপন দিছিল। এই পণ্ডিতসকলে বিভিন্ন মাধ্যমৰ যোগেদি সাধাৰণ জনতাৰ মাজত সামন্তীয় ক্ষমতা আৰু মতাদৰ্শ প্ৰসাৰ-প্ৰচাৰত সহায় কৰিছিল। এইসমূহৰ ভিতৰত লিখিত ৰূপত সাহিত্য-চৰ্চা কৰা কাৰ্যত ৰজাই বিশেষভাৱে উদগণি যোগাইছিল। মৌখিক পৰম্পৰাৰ যোগেদি ইতিমধ্যে জনসমাজত স্থান পোৱা সাহিত্যক এক মাধ্যম হিচাপে সাধাৰণ লোকৰ মাজলৈ লৈ যোৱাত বেছি অসুবিধা নাছিল।

প্ৰাক-আধুনিক অসমৰ ৰাষ্ট্ৰগঠন প্ৰক্ৰিয়া ভাৰতৰ অন্য প্ৰান্ততকৈ পৃথক, সেয়ে ৰাজ-পৃষ্ঠপোষকতাৰ স্বৰূপ-চৰিত্ৰও ভাৰতৰ মূল-ভূখণ্ডতকৈ পৃথক। প্ৰাচীন শিলালিপি, তাম্ৰলিপিৰ ভিত্তিত ক'ব পাৰি যে খ্ৰীষ্টীয় চতুৰ্থ শতিকামানৰ পৰা অসমত ৰাষ্ট্ৰগঠন প্ৰক্ৰিয়া সূচনা হৈছিল। *খ্ৰীষ্টীয় চতুৰ্থ-পঞ্চম শতিকামানৰ পৰা ভাৰতৰ মূল-ভূখণ্ডৰ পৰা প্ৰব্ৰজিত ব্ৰাহ্মণসকলে জনজাতি প্ৰধান ক্ষুদ্ৰ ক্ষুদ্ৰ গোটসমূহৰ মাজত ৰাষ্ট্ৰৰ ধাৰণাৰ প্ৰচাৰ কৰাত মূল ভূমিকা পালন কৰিছিল। অনাবাদ হৈ থকা ছিদ্ৰযুক্ত মাটিবোৰ কৃষিৰ ক্ষেত্ৰত অগ্ৰদূত ব্ৰাহ্মণসকলে পানীখেতিৰ উপযোগী কৰি তুলিছিল।*[৬] জুম খেতিৰ পৰিৱৰ্তে উন্নত পদ্ধতিৰে স্থায়ী শালি খেতিৰ প্ৰৱৰ্তন, স্থায়ী বসতি স্থাপন, হিন্দুকৰণ, পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজব্যৱস্থাৰ প্ৰচাৰ আৰু সৰ্বোপৰি এক অসাম্য (inequal) আৰু সামাজিক ক্ৰমস্থান (social hierarchy) সৃষ্টিৰ জৰিয়তে জনজাতীয় গোটসমূহৰ পৰা ক্ৰমান্বয়ে ৰাষ্ট্ৰৰ সৃষ্টি হ'বলৈ ধৰিছিল। ৰাষ্ট্ৰগঠন প্ৰক্ৰিয়াৰ লগে লগে ব্ৰাহ্মণ্যধৰ্ম আৰু ব্ৰাহ্মণ্যবাদী আদৰ্শৰ প্ৰচলন হ'বলৈ ধৰে। অৱশ্যে খ্ৰীষ্টিয় চতুৰ্থ-পঞ্চম শতিকাৰ পৰা ৰাষ্ট্ৰগঠন প্ৰক্ৰিয়া আৰম্ভ হ'লেও সপ্তদশ-অষ্টাদশ শতিকামানতহে ভাৰতৰ মূল-ভূখণ্ডৰ দৰে সামৰকি, সাংগঠনিক, প্ৰশাসনিক বৈশিষ্ট্যৰে এখন প্ৰকৃত ৰাষ্ট্ৰ গঠন হৈছিল।

ভাৰতৰ অন্যান্য প্ৰাদেশিক ভাষাৰ দৰে অসমত লিখিত সাহিত্য পৰম্পৰাৰ সূচনা হৈছিল ৰাজ-পৃষ্ঠপোষকতাত। অসমৰ ৰাষ্ট্ৰগঠন প্ৰক্ৰিয়াৰ অংশস্বৰূপে ৰজাই লৈ অনা ব্ৰাহ্মণ-কায়স্থসকলৰ পৰৱৰ্ত্তী প্ৰজন্মেয়েই অসমীয়া ভাষাৰ লিখিত পৰম্পৰাৰ আৰম্ভণি কৰিছিল। অসমত সাহিত্য-পৰম্পৰা সৃষ্টিত বিশেষকৈ কমতা আৰু বৰাহী ৰাজ্যই উল্লেখযোগ্য ভূমিকা পালন কৰিছিল। উদাহৰণস্বৰূপে কমতা ৰজা দুৰ্লভনাৰায়ণৰ পৃষ্ঠপোষকতাত হেম সৰস্বতী আৰু হৰিবৰ বিপ্ৰ, ইন্দ্ৰনাৰায়ণৰ পৃষ্ঠপোষকতাত কবিৰত্ন সৰস্বতী, তাম্ৰধ্বজৰ পৃষ্ঠপোষকতাত ৰুদ্ৰ কন্দলী আৰু বৰাহী ৰজা মহামাণিক্যৰ পৃষ্ঠপোষকতাত মাধৱ কন্দলীয়ে সাহিত্য-চৰ্চা কৰিছিল। অৱশ্যে প্ৰাকশংকৰী যুগত অসমত পূৰ্ণ বিকশিত ৰাষ্ট্ৰৰ সৃষ্টি হোৱা নাছিল আৰু সেয়ে ৰজাৰ পৃষ্ঠপোষকতা লাভ কৰিলেও উত্তৰ ভাৰতৰ দৰে ৰাজসভাত সাহিত্য চৰ্চা বা ৰজাৰ আগত সাহিত্যৰ পাঠ নোহোৱাৰ সম্ভাৱনা নথকাও নহয়। ৰাষ্ট্ৰৰ আদৰ্শ স্থাপনৰ উদ্দেশ্যৰেই সাহিত্য সৃষ্টি হ'লেও পৰোক্ষভাৱে ৰাজপৃষ্ঠপোষকতাত সৃষ্টি হোৱা সাহিত্যই লিখিত পৰম্পৰাৰ বিকাশৰ ক্ষেত্ৰত মূল ভূমিকা গ্ৰহন কৰিছিল। ইয়াৰ পৰৱৰ্তী সময়ছোৱাত ভক্তি সাহিত্যৰ উত্থান ঘটিলেও একে সময়তে ৰাজ পৃষ্ঠপোষকতাত ৰচিত সাহিত্যৰ ধাৰাটোও চলি আছিল। বিশেষকৈ কোঁচ ৰজা নৰনাৰায়নৰ পৃষ্ঠপোষকতাত ৰাম সৰস্বতীকে ধৰি নজন পণ্ডিতে ৰাজ-পৃষ্ঠপোষকতাত কাব্য ৰচনা কৰিছিল। *শংকৰদেৱ, ৰামসৰস্বতী, অনন্ত কন্দলী আদি পণ্ডিতসকলৰে পৰিৱেষ্টিত নৰনাৰায়নৰ ৰাজসভা পুৰণি কামৰূপ ৰাজ্যৰ নৱৰত্নৰ সভা যেন হৈ উঠিছিল।*[৭] ভক্তি সাহিত্যৰ প্ৰসাৰতাই ৰাজ পৃষ্ঠপোষকতাত সৃষ্ট সাহিত্যৰ ধাৰাটোৰ প্ৰভাৱ কমাই আনিলেও অষ্টাদশ শতিকাত আহোম ৰজাৰ নেতৃত্বত ই পুনৰ সবল হৈ উঠে। সপ্তদশ শতিকাৰ শেষৰফালে ৰুদ্ৰসিংহ (খৃঃ ১৬৯৬ - খৃঃ১৭১৪)ৰ ৰাজত্বৰ পৰা আহোম ৰাজ্যৰ সু-পৰিকল্পিত ৰাজততন্ত্ৰৰ থকাৰ তথ্য পোৱা যায়। *আহোম ৰাজ্যৰ চূড়ান্ত বিকাশ এই কালছোৱাৰ ভিতৰতে সম্ভৱপৰ হৈছিল আৰু অষ্টাদশ শতিকাৰ শেষৰফালে অৱনতি পৰিলক্ষিত হৈছিল।*[৮] *ৰুদ্ৰসিংহৰ ৰাজত্বৰ কালৰ পৰা ৰাজেশ্বৰ সিংহৰ ৰাজত্বকাললৈ (খৃঃ১৭৫১ - খৃঃ১৭৬৯) এই কালছোৱাক আহোম ৰাজত্বৰ ঐশ্বৰ্যময় বা সোণালী যুগ বোলা হয়।*[৯] ৰুদ্ৰসিংহৰ ৰাজত্ব কালতে শাক্তধৰ্ম আহোম ৰাজসভাত প্ৰৱেশ কৰে আৰু ইয়াক কেন্দ্ৰ কৰি একশ্ৰেণীৰ সাহিত্যই বিকাশ লাভ কৰিছিল। *ৰুদ্ৰসিংহ ৰাজপাটত নুঠালৈকে আহোমৰ পৃষ্ঠপোষকতাত বুৰঞ্জী আৰু ব্যৱহাৰিক সাহিত্যৰ বাহিৰে অন্য সাহিত্য ৰচনাৰ বিশেষ তথ্য পোৱা নাযায়।*[১০] আহোম ৰাজ্যৰ আটাইতকৈ সুস্থিৰ সময়ত ৰচিত এইশ্ৰেণীৰ সাহিত্যত শৈলীৰ ফালৰ পৰা পূৰ্বৰ সাহিত্য-পৰম্পৰাৰ অনুকৰণ হ'লেও বিষয়বস্তুৰ ফালৰ পৰা ন ন সম্পৰীক্ষা কৰা হৈছিল।

অসমত ৰজাৰ পৃষ্ঠপোষকতাত সৃষ্ট সাহিত্যই ৰজাৰ ৰুচি-অভিৰুচিৰ প্ৰতি বিশেষ মনযোগ দিছিল। ৰজাই প্ৰত্যক্ষভাৱে নকৰিলেও পৰোক্ষভাৱে কেনেধৰণৰ বিষয়বস্তুৱে কাব্যত স্থান পাব নিৰ্ধাৰণ কৰিছিল। এনে সাহিত্যত ৰজা বা ৰাষ্ট্ৰৰ আদৰ্শৰ সৈতে একমত হ'ব লাগিব আৰু ৰজাৰ শৌৰ্য-বীৰ্য, ৰাজ্য বিস্তাৰৰ কাহিনী, যুদ্ধ-বিগ্ৰহ আদি ৰাজকীয় উপাদান থাকিব লাগিব। উদাহৰণস্বৰূপে দুৰ্লভনাৰায়ণৰ পৃষ্ঠপোষকতাত হৰিবৰ বিপ্ৰই ৰচনা কৰা তিনিখন যুদ্ধকাব্য বা নৰনাৰায়নৰ পৃষ্ঠপোষকতাত ৰাম সৰস্বতীয়ে ৰচনা কৰা বধকাব্যসমূহকেই ক'ব পাৰি। এনে সাহিত্যত সততে অশ্বমেধ যজ্ঞৰ বৰ্ণনা, যুদ্ধ অথবা চিকাৰ সম্পৰ্কীয় ঘটনা-পৰিঘটনা অধিক। অশ্বমেধ যজ্ঞৰ দ্বাৰা ৰজা এজনৰ অপ্ৰতিৰোধ্য বা শ্ৰেষ্ঠত্ব গুণ প্ৰতিপন্ন কৰাৰ কাহিনীয়ে সামন্তীয় ৰজাক নিশ্চয়কৈ আনন্দ প্ৰদান কৰিছিল। *ৰমিলা থাপাৰে কৈছে যে ৰজাৰ বাবে চিকাৰ আছিল কোনো এক ভূ-খণ্ডৰ ওপৰত নিয়ন্ত্ৰন আৰু ক্ষমতা সজোৰে প্ৰতিষ্ঠা কৰাৰ এক প্ৰক্ৰিয়া।* [১১]

উল্লেখযোগ্য যে ৰাষ্ট্ৰগঠন প্ৰক্ৰিয়াই প্ৰথমৰ পৰাই পুৰুষতান্ত্ৰিক সামাজব্যৱস্থাৰ প্ৰসাৰ আৰু প্ৰচাৰ কৰাত আগ্ৰহী আছিল। *ৰাষ্ট্ৰ গঠনৰ সমান্তৰালভাৱে নাৰীৰ যৌন আৰু প্ৰজনন ক্ষমতাত পুৰুষৰ আধিপত্য বিস্তাৰ কৰি নাৰীক ব্যক্তিগত সম্পত্তিৰূপে গণ্য কৰাৰ সামাজিক ব্যৱস্থা এটা গঢ় লৈ উঠিছিল।* [১২] পূৰ্বৰ জনজাতীয় প্ৰধান সমাজত উৎপাদন প্ৰক্ৰিয়াত নাৰী আৰু পুৰুষৰ সমান অৱদান আছিল আৰু সেয়ে সকলোধৰণৰ সিদ্ধান্তত নাৰীৰ গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা আছিল। অৰ্থনৈতিক স্বাৱলম্বীতাৰ ফলস্বৰূপে বহুক্ষেত্ৰত সমাজব্যৱস্থা আছিল নাৰীকেন্দ্ৰিক। অসমত ৰাষ্ট্ৰগঠন প্ৰক্ৰিয়া সূচনা হোৱাৰ লগে লগে পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজব্যৱস্থাৰ সূচনা হ'ল আৰু ব্ৰাহ্মণ্যধৰ্মৰ আদৰ্শ প্ৰচাৰ হ'বলৈ আৰম্ভ কৰিলে। এই নতুন আদৰ্শ অনুযায়ী নাৰী জীৱনৰ বিভিন্ন পৰ্যায়ত পিতৃ, স্বামী আৰু পুত্ৰৰ দ্বাৰা পৰিচালিত কৰাৰ ধাৰণা প্ৰচলিত হ'ল। ৰাষ্ট্ৰ বা ৰাজসভা বা পৰিয়াল সম্পৰ্কীয় সিদ্ধান্তত নাৰীৰ কোনো ভূমিকা নাছিল, পুৰুষজনেই আছিল মূল ব্যক্তি। বহুক্ষেত্ৰত ৰজাই নাৰীক পণ্য হিচাপে যুদ্ধৰ উপহাৰ, সন্ধিৰ প্ৰস্তাৱ আদিত দান কৰিছিল। এই পুৰুষতান্ত্ৰিক ব্যৱস্থা প্ৰতিস্থাৰ ক্ষেত্ৰত ৰাজ-পৃষ্ঠপোষকতাত ৰচিত সাহিত্যও সচেতন আছিল। *সেয়ে মহাভাৰতৰ আদি পৰ্বৰ* প্ৰতিবাদী শকুন্তলা কালিদাসৰ নাটকত ভাৰতীয় পৰম্পৰাৰ পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজৰ আদৰ্শ নাৰীলৈ পৰিৱৰ্তিত হৈছে।

ভাৰতৰ অন্য প্ৰান্ততকৈ অসমৰ নাৰীৰ অৱস্থা যথেষ্ট উন্নত আছিল। *মংগোলীয় মূলৰ ক্ৰমস্থানবিহীন আৰু সমতাপূৰ্ণ অসমৰ জনজাতীয় সমাজত নাৰীয়ে যথেষ্ট স্বাধীনতা উপভোগ কৰিব পাৰিছিল।* [১৩] আনহাতে ৰাষ্ট্ৰৰ সৃষ্টি হ'লেও অনাৰ্যমূলীয় ৰাষ্ট্ৰমুৰব্বীসকলে পূৰ্বৰ জনজাতীয় আদৰ্শ সম্পূৰ্ণৰূপে ত্যাগ কৰিব পৰা নাছিল। সেয়ে অসমীয়া প্ৰাক-আধুনিক কালত ৰাজ-পৃষ্ঠপোষকতাত ৰচিত সাহিত্য পুৰুষতন্ত্ৰৰ সম্পৰ্কে সচেতনতা কম আছিল।

প্ৰাক-আধুনিক অসমীয়া কাব্যত মাৰ্গীয় আৰু লোক উপাদানৰ যুগপৎ উপস্থিতি ঃ

চতুৰ্দশ শতিকাৰ অসমৰ বৰাহী আৰু কমতা ৰজ্যৰ পৃষ্ঠপোষকতাত আৰম্ভ হোৱা লিখিত সাহিত্য আছিল মূলতঃ সংস্কৃত কাব্যৰ অনুবাদ। প্ৰাচীন কামৰূপৰ ৰাষ্ট্ৰসমূহে মূল ভাৰতবৰ্ষৰ (মূলতঃ উত্তৰ ভাৰত) পৰা লৈ অনা ব্ৰাহ্মণসকলৰ যোগেদিয়েই সংস্কৃত শিক্ষাৰ পৰম্পৰা গঢ় লৈ উঠিছিল। এই টোলসমূহ আছিল সংস্কৃত পুথিচৰ্চাৰো প্ৰাণকেন্দ্ৰ। অসমৰ ৰাজন্যবৰ্গৰ চতুৰ্থ শতিকাৰ পৰাই ভাৰতৰ অন্যান্য প্ৰান্তৰ সৈতে যোগাযোগ হৈছিল। সংস্কৃত পাঠসমূহৰো আমদানি তেতিয়াৰ পৰাই হ'বলৈ আৰম্ভ কৰিছিল। হেম সৰস্বতী, হৰিবৰ বিপ্ৰ, মাধৱ কন্দলীৰ পৰা শংকৰদেৱ, ৰাম সৰস্বতীলৈকে সকলো কবিয়েই সংস্কৃতৰ পৰা পুৰাণ-উপপুৰাণ বা মহাকাব্যৰ বিভিন্ন অংশ কাব্য অথবা সাহিত্যৰ বিভিন্ন ধৰণলৈ অনুবাদ কৰিছিল। মাৰ্গীয় সাহিত্যৰ পৰা অনুবাদ কৰা হ'লেও এইসমূহ কেৱল আক্ষৰিক অনুবাদ নাছিল, ইয়াত মাৰ্গীয় উপাদানৰ সমান্তৰালভাৱে লৌকিক উপাদানো সংযোগ কৰা হৈছিল। উদাহৰণস্বৰূপে *মাধৱ কন্দলীৰ পঞ্চকাণ্ড ৰামায়নৰ আধাৰ বাল্মীকি ৰামায়ন হ'লেও থলুৱা সমাজ, ধৰ্ম-কৰ্ম, ৰীতি-নীতি, ঘৰ-দুৱাৰ, গছ-গছনি, ফল-ফুলনি চিত্ৰেৰে বনকোৱা এই সাহিত্য কৰ্মই আঞ্চলিক বৈশিষ্ট্যৰে স্বতন্ত্ৰ মহিমা লাভ কৰিছে।* [১৪] একেদৰে ৰাম সৰস্বতীৰ *ভীম চৰিত* মাৰ্গীয় সাহিত্যৰ অনুবাদ হ'লেও শিৱৰ ঘৰৰ গৰখীয়া ভীমৰ মাজেদি অসমৰ লোক সমাজৰ এজন সাধাৰণ খেতিয়কৰ চৰিত্ৰ প্ৰকাশ হৈছে।

মহাভাৰতৰ আদিপৰ্বৰ পৰা *শকুন্তলা কাব্য* অনুবাদ কৰা হৈছে বুলি কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীয়ে উল্লেখ কৰিলেও ইয়াত মাৰ্গীয়ৰ সমান্তৰালকৈ লোকসমাজৰ উপাদানো আছে। কাব্যখনত সংযোগ কৰা বাৰমাহী গীতৰ কথা এই প্ৰসংগত উল্লেখ কৰিব পাৰি। *শকুন্তলা কাব্যৰ* মূল কাহিনী প্ৰেম, বিচ্ছেদ আৰু বিৰহ। *বিৰহ প্ৰধান এক শ্ৰেণীৰ লোকগীত বাৰমাহী গীত বিভিন্ন ভাষাত পোৱা যায় আৰু চতুৰ্দশ শতিকামানৰ পৰা এই গীতসমূহ ভাৰতৰ ৰাজসভাত পৰিৱেশন কৰাৰ উল্লেখ পোৱা যায়।* [১৫] ব্ৰজ ভাষাৰ শকুন্তলা কাব্যতো এনে বাৰমাহী গীতৰ দৰে লোকগীতৰ প্ৰভাৱ দেখা যায়। অসমীয়া *শকুন্তলা কাব্যত* ব্ৰজ

ভাষাৰ প্ৰভাৱতকৈও অসমৰ লোক সমাজৰ প্ৰভাৱত বাৰমাহী গীত অন্তভূক্তি হৈছে বুলি ক'ব পাৰি।

শকুন্তলা কাব্যত চিত্ৰিত চৰিত্ৰৰ যোগেদি প্ৰতিফলিত নাৰীত্ব ঃ মাৰ্গীয় আদৰ্শ আৰু পতিব্ৰতা নাৰী ঃ

শকুন্তলা আৰু দুষ্যন্তৰ কাহিনীত শকুন্তলা আছিল ৰাষ্ট্ৰৰ পুৰুষতান্ত্ৰিক আদৰ্শৰ লগত জীণ যাব পৰা চৰিত্ৰ। পতিব্ৰতা, সতী আদি গুণসমূহৰ জৰিয়তে নাৰীত্বৰ মাৰ্গীয় আদৰ্শ প্ৰতিফলনৰ বাবে শকুন্তলা উপযুক্ত চৰিত্ৰ আছিল। পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজত বিশেষকৈ অভিজাত শ্ৰেণীটোৱে শকুন্তলাৰ জৰিয়তে পুৰুষক কেন্দ্ৰ কৰি জীৱন নিৰ্বাহ কৰা এগৰাকী নাৰীৰ কল্পনা কৰিছিল। আদিপৰ্বত উল্লেখ কৰিছে যে -

সংসৰন্তমপি প্ৰেতং বিষমেস্বেকপাতিনম্।
ভাৰ্য়ৈবান্বেতি ভৰ্তাৰং সততং য়া পতিব্ৰতা।। *(আদিপৰ্ব্ব)*

অসমীয়া *শকুন্তলা কাব্যত* কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীয়েও শকুন্তলাক পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজৰ এগৰাকী আদৰ্শ নাৰী হিচাপে উপস্থাপন কৰিছিল। কাব্যখনৰ বিভিন্ন পদত আদৰ্শ পত্নী অথবা নাৰী কেনেধৰণৰ গুণ বিশিষ্ট হয় উল্লেখ কৰিছে। ইয়াৰ বাদেও কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীয়ে *শকুন্তলা কাব্যত* ভাৰতীয় পৰম্পৰাত আদৰ্শ পত্নী হিচাপে গণ্য কৰা লক্ষ্মী, সতী, সাবিত্ৰী আদিৰ প্ৰসংগ উল্লেখ কৰিছে। ভাৰতীয় পৰম্পৰাৰ আদৰ্শ পত্নীৰ ধাৰণা *শকুন্তলা কাব্যৰ* বিভিন্ন পদত প্ৰকাশ পাইছে এনেদৰে -

ধৰ্ম্মপত্নী বিৰহিত যাহাৰ ভৱন।
সিটো পুৰুষৰ বনে উচিত গমন।। *(শকুন্তলা কাব্য)*
যথাত আছন্ত শকুন্তলা মহাসতী।
তৈত গয়া কহিলন্ত ৰাজাৰ ভাৰতী।। *(শকুন্তলা কাব্য)*

ৰাষ্ট্ৰ গঠন প্ৰক্ৰিয়াৰ লগে লগে গঢ়ি উঠা পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজব্যৱস্থাই নাৰীৰ অস্তিত্ব পুৰুষৰ দ্বাৰা নিৰ্ণয় কৰাত গুৰুত্ব দিছিল। মাৰ্গীয় আদৰ্শই 'পতিব্ৰতা', 'স্বামী' আদি শব্দৰ প্ৰচাৰত গুৰুত্ব দিছিল। পতিব্ৰতা শব্দটো 'পতি' শব্দৰ পৰা আহিছে, যি পুৰুষপ্ৰধান সমাজৰ পৰিচায়ক। ভাৰতীয় পৰম্পৰাত বৈদিক যুগত 'পতিব্ৰতা' শব্দটোৰৰ ব্যৱহাৰ দেখা নাযায়। *বেদ সমূহত পত্নী, জায়া আদি শব্দৰে নাৰীক বুজাইছিল। 'পতিব্ৰতা' শব্দটো আদৰ্শৰ প্ৰথম প্ৰকাশ হৈছিল মহাকাব্যত। মহাভাৰতত কুন্তীয়ে দ্ৰৌপদীক আশীৰ্বাদ দিওঁতে 'পতিব্ৰতা' শব্দটো ব্যৱহাৰ কৰিছিল।*[১৬] *মহাভাৰতৰ আদিপৰ্বৰ* শকুন্তলোপাখ্যানত এবাৰেই 'পতিব্ৰতা' শব্দটোৰ প্ৰয়োগ দেখা যায়। কিন্তু অসমীয়া *শকুন্তলা কাব্যত* 'পতিব্ৰতা' শব্দটোৰ যথেষ্ট ব্যৱহাৰ পোৱা গৈছে।

পতিব্ৰতা সতী কন্ব-মুনিৰ কুমাৰী।
সকলে কহয় তযু পত্নী সদাচাৰী।। *(শকুন্তলা কাব্য)*

মাৰ্গীয় আদৰ্শত নাৰীক এক পৃথক সত্বাৰূপে গণ্য কৰা নাযায়। এনে ব্যৱস্থাত নাৰীৰ অস্তিত্ব বিভিন্ন স্তৰত পিতৃ,স্বামী আৰু পুত্ৰৰ নিৰ্ধাৰণ কৰে। *মহাভাৰতৰ আদিপৰ্বত* স্বামীৰ বাবে শকুন্তলাৰ গুৰুত্ব এক পৃথক ব্যক্তিসত্বাতকৈ পুত্ৰৰ মাতৃ হিচাপেহে দেখুওৱা হৈছে। আদিপৰ্বত শকুন্তলাই তেওঁলোকৰ পুত্ৰ ৰাজসিংহাসনৰ উত্তৰাধিকাৰী হোৱাৰ চৰ্তত দুষ্যন্ত ৰজাৰ লগত বিবাহৰ বাবে সন্মতি দিছে। পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজ ব্যৱস্থাত পুত্ৰসন্তানৰ আধিপত্য আৰু পুত্ৰৰ দ্বাৰা মাকৰ অস্তিত্ব প্ৰকাশ কৰাত ব্যাসে বিশেষভাৱে গুৰুত্ব দিছো ইয়াৰ কেইবাটাও পদত পুত্ৰ সন্তানৰ শ্ৰেষ্ঠতা দেখুওৱা হৈছে।

পুত্ৰেণ লোকাঞ্জয়তি পৌত্ৰেণানন্ত্যমশ্নুতে।
অথ পৌত্ৰস্য পুত্ৰেণ মৌদন্তে প্ৰপিতামহাঃ।।৪০
(আদিপৰ্ব্ব)

ব্ৰাহ্মণো দ্বিপদাং শ্ৰেষ্ঠো গৌৰ্বৰিষ্ঠা চতুষ্পদাম্।
গুৰুগৰীয়সাং শ্ৰেষ্ঠঃ পুত্ৰঃ স্পৰ্শবতাং বৰং।।৫৪
(আদিপৰ্ব্ব)

কালিদাসৰ নাটকো ইয়াৰ ব্যতিক্ৰম নহয়। নাটকত পুত্ৰৰ গুৰুত্ব প্ৰতিপন্ন কৰিবৰ একেবাৰে শেষতো দেখা গৈছে যে দুষ্যন্ত ৰজা আৰু শকুন্তলাৰ পুত্ৰৰ জৰিয়তে পুনৰ মিলন ঘটিছে। এগৰাকী বিবাহিত নাৰীৰ স্বামীয়েই মূল ব্যক্তি এই প্ৰসংগত কালিদাসে হৈছে এনেদৰে -

শকুন্তলে
যদি যথা বদতি ক্ষিপিতস্তথা
ত্বমসি, কিং পিতুৰুৎকুলীয়া ত্বয়া।
অথ তু বেৎসি, শুচি ব্ৰতমাত্মনঃ,
পতিকুলে তৱ দাস্যমপি ক্ষমম্।।২৭।।
তিষ্ঠ, সাধয়মো বয়ম। (অভিজ্ঞানম্ শকুন্তলম্)

কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীৰ *শকুন্তলা কাব্যত* নাৰীক এক পৃথক সত্বাৰূপে গণ্য কৰাতকৈ দুষ্যন্তৰ প্ৰেয়সী বা পত্নী হিচাপে অধিক গুৰুত্ব দিছে। অৱশ্য মহাভাৰতৰ দৰে পুত্ৰৰ দ্বাৰা শকুন্তলাৰ অস্তিত্ব নিৰ্মাণ কৰা হোৱা নাই। কালিদাসৰ দৰে এগৰাকী পত্নী হিচাপে শকুন্তলাক আদৰ্শ কৰি তুলিবলৈ প্ৰয়াস কৰিছে।

শৰীৰত প্ৰাণ যেন থাকে ওক হুই।
স্বামী সঙ্গে নাৰীৰো জানিবা ভেদ নুই।।
স্বামী সে জানিবা নাৰীৰ জীৱন।
স্বামীৰ দায়াত জীয়ে তেজিলে মৰণ।। (শকুন্তলা কাব্য)
শকুন্তলা বদতি শুনিয়ো প্ৰাণপতি।
স্বামী বিনে কামিনীৰ নাহি আন গতি।।
স্বামীৰ জীৱন জানো জীৱন যৌৱন।
স্বামী বিনে প্ৰাণ ৰাখে কোন নাৰীজন।। *(শকুন্তলা কাব্য)*

পক্ষিণীয়ে বোলে ৰাজা এহি বিপৰীত।
স্বামী বিনে নাৰীৰ জীৱন অনুচিত।। *(শকুন্তলা কাব্য)*

উল্লেখযোগ্য যে কাহিনীৰ অন্তৰ্গত নহ'লেও কাব্যখনৰ উপসংহাৰত থকা ৰাজপ্ৰশস্তিত ৰাণী ফুলেশ্বৰীৰ পৰিচয় স্বামীৰ দ্বাৰাহে আগবঢ়াইছে। বৰৰজা ফুলেস্বৰী আছিল মধ্যযুগৰ অসমৰ ৰাজনৈতিক ক্ষেত্ৰৰ এগৰাকী উল্লেখযোগ্য নাৰী। ৰজা ছত্ৰভংগৰ যুগত আহোম ৰাষ্ট্ৰৰ মুৰব্বী হোৱা ফুলেশ্বৰীৰ ব্যক্তিগত সত্বাক আওকান কৰি স্বামীৰ সেৱকৰূপেহে পৰিচয় দাঙি ধৰিছে -

তাহান ভৈলেক জায়া ফুলেশ্বৰী নাম।
স্বামীৰ সেৱাত যাৰ নাহিক বিৰাম।।
কমল নয়নী চাঁদমুখী বৰবালা।
ৰাজাৰ স্নেহেৰ পাত্ৰ যেন ৰত্নমালা।।
মধুৰ গম্ভীৰ বাণী পৰম সুন্দৰী।
মানুষ লোকত যাৰ নাহি সৰিবৰি।।
নৃপতিৰ প্ৰধান মহিষী গুণৱতী।
প্ৰকাশিলা মদনৰ যেন ৰতি সতী।।
নাৰীৰ গুণৰ যাত নাহিকেয় সীমা।
মনুষ্যলোকত যেন লক্ষ্মী প্ৰতিমা।। *(শকুন্তলা কাব্য)*

একোখন সাম্যন্তীয় ৰাষ্ট্ৰত ৰজাক নিখুঁত, একক আৰু অপ্ৰতিদ্বন্দীভাৱে প্ৰতিষ্ঠা কৰা হৈছিল। সেয়ে ৰজা দুষ্যন্তৰ চৰিত্ৰৰ ক্ষেত্ৰত কবি সচেতন আছিল। *মহাভাৰতৰ আদিপৰ্ব্বৰ* দুষ্যন্তই কন্বমুনিৰ আশ্ৰমৰ পৰা নিজ ৰাজ্যলৈ গৈ স্বাভাৱিকভাৱেই শকুন্তলাক পাহৰিছে। ইয়াৰ বিপৰীতে কালিদাসৰ নাটকত কালিদাসে মুনিৰ শাপৰ ফলত দুয়োৰ মাজত বিচ্ছেদ হোৱা বুলি নাটকখনত উল্লেখ কৰি দুষ্যন্তক নিৰ্দোষ বুলি উপস্থাপন কৰিছিল। ৰজাৰ পৃষ্ঠপোষকতাত ৰাজসভাত পৰিৱেশন কৰিবলৈ ৰচনা কৰা নাটকত ৰজাৰ সৰ্বগুণৰ অধিকাৰী হোৱাটোৱেই স্বাভাৱিক। সেয়ে নাটকত শকুন্তলাই কৈছে -

(আত্মগতম) দিট্ঠিআ অকাৰণ পচ্চাদেসী ণ অজ্জউত্তো।
ণ হু সত্তং অত্তাণং সুমেৰিমি।
অহ্বা পত্তো মএ স হি সাৱো বিৰহসুণ্ণহিঅআএ ণ বিদিহো।
অদো সহীহিং সংদিট্ঠম্হি ভত্তুণো অংগুলীঅঅং দংসইদব্বং ত্তি।

(দিষ্ট্যা অকাৰণ প্ৰত্যাদেশী নাৰ্যপুত্ৰঃ। ন খলু শপ্তমাত্মানং স্মৰামি। অথবা প্ৰাপেতো ময়া স হি শাপো বিৰহশূণ্যহৃদয়া ন বিদিতঃ। অতঃ সখীভ্যাং সংদিষ্টামি ভৰ্ত্তু অঙ্গুলীয়কং দৰ্শয়িতব্যমিতি।) *(অভিজ্ঞানম্ শকুন্তলম্)*

কবিৰাজে চক্ৰৱৰ্ত্তীয়ে *আদিপৰ্ব্বৰ* পৰা অনুবাদ কৰিছে বুলি উল্লেখ কৰাৰ পাছতো কালিদাসৰ *অভিজ্ঞানম্ শকুন্তলম্*ৰ দৰে দুষ্যন্তৰ চৰিত্ৰটো এটি আদৰ্শবান নায়কৰ চৰিত্ৰৰূপে প্ৰতিষ্ঠা কৰিব বিচাৰিছিল। সেয়ে কবিৰাজে *শকুন্তলা কাব্যত* দুৰ্ব্বাশা মুনিৰ শাপৰ ফলত দুষ্যন্তই শকুন্তলাক পাহৰা বুলি উল্লেখ কৰিছে। আনহাতে মুনিৰ শাপৰ বিষয়ে অজ্ঞাত শকুন্তলাইও পিতৃৰ অজ্ঞাতে গন্ধৰ্ব্ব বিবাহ সম্পন্ন কৰাৰ বাবে এনে হ'ল বুলি দুখ প্ৰকাশ কৰিছে।

ঋষি যে নিৰ্দ্দয়শীল কিছু দয়া নুপুজিল
কন্যাক শাপিলা সেহিক্ষণে।
মুনি বোলে শুন অৰে যাক চিন্ত নিৰন্তৰে
সেহি তোক পাসৰিব মনে।। *(শকুন্তলা কাব্য)*
মুনি আজ্ঞা বিনে মোৰ হৈল স্বয়ম্বৰ।
সেহি পাপে আমাক ছাড়িয়া নৃপবৰে।। *(শকুন্তলা কাব্য)*

কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীয়ে *শকুন্তলা কাব্যত* ভাগ্যৰ পাকচক্ৰত সকলো ঘটনা সংঘটিত বুলি দুষ্যন্তক নিৰ্দোষী হিচাপে পতিয়ন নিয়াব বিচাৰিছে। দুষ্যন্তই শকুন্তলাক প্ৰত্যাখ্যান কৰাৰ বাবে অনুসূচনা কৰিছে যদিও ইয়াত শকুন্তলাৰ ওচৰত অপৰাধবোধত ভোগা নাই।

বিস্তৰ নিন্দিয়া মোক তেজিলা পূৰ্ব্বত।
তাহান পাশক প্ৰভূ যাইবোঁ কিমত।।
মুনি বোলে দৈবৰ ঘটনা উপস্থিত।
ৰাজাৰ কিঞ্চিতো দোষ নাহিকে ইহাৰ।*(শকুন্তলা কাব্য)*

কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীৰ কাব্যখনত ৰজাৰ বিচ্ছৃংখল যৌন জীৱনৰ প্ৰকাশো দুই-এঠাইত দেখা যায়। নাৰীৰ পতিব্ৰতা ধৰ্মৰ বিপৰীতে ৰজা বা পুৰুষৰ নাৰীক যৌন আহিলা হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰাৰ উল্লেখ কাব্যখনত পোৱা যায়।

পৃথিৱীত আছে যত বিবিধ কামিনী ৰত্ন
কৰিলোঁ সম্ভোগ যথামতি।
বিবিধ চাতুৰি কৰি গৈলা মোক পৰিহৰি
তোমাৰ দাৰুণ মন আতি।। *(শকুন্তলা কাব্য)*
কেহো বোলে যুৱতীক হৰিবাক প্ৰাণ।
ৰতিপতি আসিয়াছে ধৰি ধনুৰ্ব্বাণ।।
কেহো বোলে শুন সখী বাঞ্চিত মনৰ।
থাকিবো সাৰটি ধৰি কুচৰ উপৰ।।
কেহো নাৰী বোলে গৃহকৰ্ম্ম পৰিহৰি।
মনক পুৰিয়া থাকিবোঁহো সেনা কৰি।। *(শকুন্তলা কাব্য)*

***শকুন্তলা কাব্যত* চিত্ৰিত চৰিত্ৰ যোগেদি প্ৰতিফলিত নাৰীত্ব ঃ বিলাপত পতি,লোক উপাদান আৰু প্ৰতিবাদী চৰিত্ৰ ঃ**

ভাৰতীয় পৰম্পৰাৰ আদৰ্শ পত্নী বা নাৰীৰ ধাৰণাই প্ৰভাৱশালী ভূমিকা ল'লেও ইয়াৰ বিপৰীত ছবি এখনো ফুটি উঠিছে। মহাভাৰতৰ শকুন্তলা দুই-এঠাইত প্ৰতিবাদী হৈ দুষ্যন্তক প্ৰশ্ন কৰিছে, যি কালিদাসৰ শকুন্তলাত নাই। শকুন্তলাই ৰাষ্ট্ৰৰ

পৰা আঁতৰত অৱস্থান কৰা এখন সমাজক প্ৰতিনিধিত্ব কৰিছিল, য'ত নাৰীৰ সিদ্ধান্ত গ্ৰহনৰ স্বাধীনতা আছিল। *যিখন সমাজ পুৰুষতন্ত্ৰ অথবা আৰ্য সংস্কৃতিৰ পৰা নিলগত থকা বনবাসী সমাজ। সেয়ে বিবাহৰ সিদ্ধান্তও শকুন্তলাই নিজে লৈছে আৰু দুষ্যন্তৰ প্ৰতাখ্যানৰ পাছতো পুনৰ তেনে এখন সমাজলৈয়ে ঘুৰি গৈছে।*[১৭] কিন্তু ৰাজপ্ৰসাদৰ ভিতৰত নাৰীৰ বাবে বিবাহ বা ব্যক্তিগত অন্যান্য সিদ্ধান্তৰ ক্ষেত্ৰত ৰাষ্ট্ৰ বা পুৰুষৰ হস্তক্ষেপ দেখা যায়। ৰমিলা থাপাৰে তেওঁৰ *Sakuntala : Text, Reading, History* গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে যে *The delineation of Sakuntala marks a counterpoint to the notion of the pativrata, the ideal wife, which is referred to elsewhere in the text in the later didactic sections.*[১৮]

কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীৰ *শকুন্তলা কাব্যৰ* শকুন্তলা মহাভাৰতৰ শকুন্তলাতকৈও অধিক প্ৰতিবাদী। ইয়াৰ প্ৰধান কাৰণ প্ৰাক-আধুনিক অসমত ক্ৰিয়াশীল হৈ থকা বৈষ্ণৱ আদৰ্শ আৰু লোক সমাজৰ প্ৰভাৱ। অসমৰ বৈষ্ণৱ আদৰ্শত নাৰীক ভোগ-বিলাসৰ ব্যক্তিগত সম্পত্তিৰূপে গণ্য কৰাৰ বিপৰীতে সন্মান সহকাৰে উপস্থাপন কৰা হৈছিল। অৱশ্যে বৈষ্ণৱ আদৰ্শতো জনজাতীয় সমাজৰ প্ৰভাৱতে নাৰীক স্বাধীন আৰু এক পৃথক সত্বাৰূপে গণ্য কৰা হৈছিল। শংকৰদেৱৰ *উত্তৰাকাণ্ডত* সীতাক যি ৰূপত চিত্ৰিত কৰা হৈছিল, এনে ৰূপ কোনো ভাষাৰ *ৰামায়নত* দেখা পোৱা নাযায়। শংকৰদেৱৰ সীতাই সামন্তীয় ৰজাৰ প্ৰতিভূ ৰামক পাতাল প্ৰৱেশৰ পূৰ্বে প্ৰশ্ন কৰিছে। আনহাতে অসমৰ জনজাতি প্ৰধান সমাজ ব্যৱস্থাত নাৰীৰ স্থান ভাৰতৰ মূল ভূ-খণ্ডতকৈ যথেষ্ট সন্তোষজনক আছিল। অনাৰ্যমুলীয় ৰজা-প্ৰজা সকলোৰে মন-মগজুত নজনাকৈয়ে নাৰীৰ এক স্বাধীন ৰূপ স্বাভাৱিকতেই ৰক্ষিত হৈ আছিল। এনেবোৰ কাৰকৰ প্ৰভাৱতে কবিৰাজে শকুন্তলা চৰিত্ৰটো কালিদাসৰ পতিব্ৰতা নাৰীতকৈ *মহাভাৰতৰ* প্ৰতিবাদী নাৰী বা কেতিয়াবা *মহাভাৰততকৈও* প্ৰতিবাদীৰূপে অংকন কৰিছিল।

উল্লেখযোগ্য যে দুষ্যন্তই ৰাজসভাত প্ৰত্যাখ্যান কৰাৰ পাছত বিশেষ কোনো প্ৰত্যুত্তৰ নিদিলেও দুষ্যন্তই শকুন্তলাক বিচাৰি কাশ্যপ মুনিৰ আশ্ৰমত উপস্থিত হোৱাৰ সময়ত শকুন্তলাই দৃঢ়ভাৱে ক্ষোভ উজাৰি শকুন্তলাৰ বাতৰি নিদিবলৈ কৈছে। স্বামীয়েই সৰ্বস্ব বুলি থকা মাৰ্গীয় ধাৰণাৰ বিপৰীতে শকুন্তলাই স্বামীৰ আগমনৰ পাছতো প্ৰথমে কোনো আগ্ৰহ প্ৰকাশ কৰা নাই।

তথাপি কপটে কন্যা বুলিলা বচনে।
নিবেদন কৰোঁ প্ৰভু তোমাৰ চৰণে।।
কিবা হেতু ৰাজা আসি আছে তয়ু স্থানে।
আমি ঐত আছোঁ হেন নকহিবা তানে।। *(শকুন্তলা কাব্য)*

কবিৰাজৰ *শকুন্তলা কাব্যত* দুষ্যন্তই ত্যাগ কৰোঁতে কান্দি বিলাপ কৰা একেগৰাকী শকুন্তলাই শেষত দুষ্যন্তক পুনৰ লগ পাওঁতে কঠোৰ ভাষাৰে সমালোচনা কৰিছে। স্বামীৰ সকলো সিদ্ধান্ততে সমৰ্থন কৰা স্বামীসেৱাত মগ্ন হৈ থকা পত্নীৰ বিপৰীতে স্বামীক প্ৰশ্ন কৰা নাৰী মাৰ্গীয় আদৰ্শৰ পৰিপন্থী। এনে পৰিস্থিতিতেই কবিৰাজৰ শকুন্তলা জনজাতীয় সমাজৰ প্ৰতিনিধি হৈ পৰে।

প্ৰিয়াভাৱে আমাক নিকটে নাৰাখিলা।
বেশ্যা বুলি সভাত আমাক গৰিহিলা।।
তোমাৰ কঠিন চিত্ত আতি নিকৰুণ।
অন্তঃপুৰ চলিতে বুলিলো পুনঃপুনঃ।।
তথাপি খেদিলা মোক লগৰীত বাজে।
দেখিল তোমাৰ দায়া সকলে সমাজে।। *(শকুন্তলা কাব্য)*
তুমি কৰি আছা এহি সৱ কৰ্ম্ম।
কাহাত কহিবোঁ আমি ইটো মহা মৰ্ম্ম।। *(শকুন্তলা কাব্য)*
গত কাৰ্য্য কহে যিটো মূৰ্খ বোলে তাক।
এহি হেতু তোমাক নোবোলোঁ কিছো বাক।।
(শকুন্তলা কাব্য)

কবিৰাজৰ *শকুন্তলা কাব্যৰ* বিলাপ গীতত দুষ্যন্তই ৰজাৰ সকলো আভিজাত্য বা ৰজাৰ মৰ্যদা ত্যাগ কৰি সাধাৰণ পুৰুষৰ দৰে আচৰণ কৰিছে। শকুন্তলাৰ বিৰহত দুষ্যন্ত আৰু কামকলাৰ বিৰহত চন্দ্ৰকেতুৰ যি বৰ্ণনা দিছে এইয়া অসমৰ কবিৰ বাবেহে সম্ভৱ। কাব্যখনত সাম্যন্তীয় ৰাষ্ট্ৰৰ অপ্ৰতিদ্বন্দী ৰজা দুষ্যন্তই বিলাপ গীতত চৰণত ধৰি, ক্ষমা বিচাৰি পত্নীৰ বিৰহত কান্দি ব্যাকুল হোৱাৰ উল্লেখ কৰিছে। এই ক্ষেত্ৰত বিলাপ গীতত লোক উপাদানৰ প্ৰভাৱ পৰা দেখা যায়। দুৰ্গাবৰৰ *গীতি ৰামায়নৰ*ৰ সীতাক বিচাৰি কান্দি-কাটি ব্যাকুল হোৱা ৰাম আৰু *শকুন্তলা কাব্যৰ* শকুন্তলাক বিচাৰি ব্যকুল হোৱা দুষ্যন্ত এক হৈ পৰিছে।

তয়ু প্ৰাণপতি দুষ্যন্ত নৃপতি
বিৰহেতাপে আতুৰ।
মঞি প্ৰাণে মৰোঁ চৰণত ধৰোঁ
দেখা দিয়া মন পূৰ।।
তেজি মন ৰোষ ক্ষেমিয়োক দোষ
অজ্ঞানীৰ এক বাৰ।
যদি মোৰ প্ৰাণ নকৰিবা দান
সতি সঙ্গ লৈবা কাৰ।। *(শকুন্তলা কাব্য)*

সামৰণিত ক'ব পাৰি যে কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীৰ *শকুন্তলা কাব্যত* নাৰীত্বৰ ধাৰণা নিৰ্মাণ প্ৰসংগত দুটা কাৰকে প্ৰধানকৈ ক্ৰিয়া কৰিছে - মাৰ্গীয় আৰু লোক সমাজ। কাব্যখন ৰাষ্ট্ৰ ,ৰজা

আৰু ৰাজসভাৰ আদৰ্শক প্ৰতিনিধিত্ব কৰা সংস্কৃত সাহিত্যৰ পৰা অনুবাদ কৰা হ'লেও সম্পূৰ্ণ মাৰ্গীয় আদৰ্শৰ প্ৰতিফলন ঘটা দেখা নাযায়। ৰাষ্ট্ৰ নিমাৰ্ণৰ সমান্তৰালকৈ গঢ়ি উঠা পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজ ব্যৱস্থাই আদৰ্শ নাৰীৰ বাবে নিৰ্ধাৰণ কৰা গুণসমূহ *শকুন্তলা কাব্যত* নাৰী চৰিত্ৰত প্ৰকাশ পাইছে। কাব্যখনত নাৰীক ব্যক্তিগত সত্বা হিচাপে গণ্য কৰাৰ পৰিৱৰ্তে দুষ্যন্তৰ পত্নী হিচাপে অধিক গুৰুত্ব দিয়া পৰিলক্ষিত হৈছে।

কাব্যখনত ভাৰতীয় পৰম্পৰাৰ পতিব্ৰতা নাৰীৰ ধাৰণাৰ সমান্তৰালকৈ জনজাতীয় সমাজৰ স্বাধীন নাৰীৰ উমানো পোৱা যায়। অসমৰ ৰজা বা প্ৰজা সকলো অনাৰ্যমূলীয় লোক। সেয়ে কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীৰ *শকুন্তলা কাব্যৰ* শকুন্তলাই মাজে মাজে জনজাতীয় সমাজৰ সাধাৰণ নাৰীৰ দৰে স্বামীক প্ৰশ্ন কৰিব পাৰিছে। ইয়াৰ পৰা এটা কথা নিশ্চিতভাৱে ক'ব পাৰি যে কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তীৰ *শকুন্তলা কাব্যৰ* উদ্দেশ্য ভাৰতীয় অন্য ৰাজ-পৃষ্ঠপোষকতা ৰচিত সাহিত্যৰ দৰে কেৱল ৰাষ্ট্ৰৰ ধাৰণা বা পুৰুষতন্ত্ৰৰ প্ৰসাৰ আৰু প্ৰচাৰ নাছিল। কাৰণ ৰাজপৃষ্ঠপোষকতাত ৰচনা কৰিলেও এই কাব্য মাৰ্গীয় সাহিত্যৰ দৰে ৰাষ্ট্ৰ বা ৰজাৰ আদৰ্শ প্ৰকাশত সচেতন নাছিল। সেয়ে মূলতঃ ৰজাৰ আমোদ-প্ৰমোদৰ বাবেই এনে কাব্য ৰচনা কৰা হৈছিল। ❑

প্ৰসংগসূত্ৰ ঃ

[১]শৰ্মা, কি.পৃ-৪

[২]থাপাৰ, পৃ-১৯০

[৩]ভট্টাচাৰ্য, পাতনি,পৃ-৩

[৪]ঐ

[৫] The Medieval Indian states always had a tendency to extend patronage to a large number of people outside the military-cum-bureaucratic ruling classes that cornered the bulk of available resources. Evidently, this patronage was aimed at mobilizing moral support for the ruling dispensations among the more vocal segments of the civil society having cultural and ideological affinities with them. (Iqtidar Alam Khan,*The State Patronage in Medieval India*, pp. 276)

[৬]শইকীয়া, পৃ-১৯৩

[৭]নেওগ, পৃ-২২

[৮]শৰ্মা,বা. পৃ- ২৫

[৯]শৰ্মা,বা. পৃ-২৫

[১০]শৰ্মা,স. পৃ-১৯৩

[১১]থাপাৰ, পৃ-১৩

[১২] States, since the beginning of civilization, were organized in the form of patriarchy which means that 'since its inception the state had an essential interest in the maintenance of patriarchal family.[11]Patriarchy which in simple words means male domination and female subordination as a system both in the family and the society has its beginning in history; 'the appropriation of women's sexual and reproductive capacity by men occurred prior to the formation of private property and class society. Women's subordination was institutionalized by the state through various means: force, economic dependency on the male head of the family, class privileges bestowed upon conforming and dependent women of the upper classes, and the artificially created division of women into respectable and non-respectable women'.12 Religion played an important role in the institutionalization of patriarchy.(Barua.SL.*A Comprehensive History of Assam*. pp.267)

[১৩] It is to be noted that there was no social hierarchy, no caste system among the Mongoloid tribes and they followed an egalitarian life style where women enjoyed much freedom. Their social institutions were based on kinship relations and communal sharing.(Barua.SL.*A Comprehensive History of Assam*. pp.267)

[১৪]হাজৰিকা, পৃ-৪৪৩

[১৫] Viraha is central to *barahmasa* poetry, a form generally regarded as originating in popular culture, but which took on sophisticsted forms in the compositions of poetsat various courts and elesewhere from fourteenth century onwards. (Thapar,Romila. *Sakuntala:Text,Readings,Histories*.pp.192)

[১৬]These earlier Vedic conceptions of wife, especially her conception as a patighni, were to be jettisoned forever, and replaced by the pativatsala.It is only the epics that a systemetic ideology of pativrata dharma was enunciated. The most persive conception of wife in the twin epics Mahabharata and Ramayana is that of pativrata, which id

denoted by numerous epithets such as patidharmarata,patidharma-mahabhaga,pativrataparayan and pativratamimam sadvi. Thus kunti blesses the bride Draupadi that she may be virtuous and devoted to her husbands (pativrata), as also a wife at their sacrifice (yajnapatni), and mother of living and brave sons (jivasurvurasu).(Shah, Salini. *On gender, Wives and "Pativratas"*. pp.79-80)

[১৭]She is a woman from a different society who sees herself as a equal in status to the man, characterstics of the society of forest dwellers whose egalitarianism would be more evident than that of Hastinapur.She can confidently go back to her dwelling in the forest and leave Dushanta to come to terms with the boy. The gandharva marriage frequently takes place between a raja and a woman of the forest. Was this literatally so, untill the apsara became the synonnym for such a woman? The hint of bride-price in the proposal of marriange would again point to her belonging to a society conditioned by a different set of norms from those of Hastinapur (Thapar, Romila. *Sakuntala:Text,Readings,Histories*.pp.39)

[১৮]থাপাৰ. পৃ-৩০

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

দেৱ গোস্বামী, ৰঞ্জিত কুমাৰ। *প্ৰবন্ধ*। লয়াৰ্ছ, ২০১৯।

নেওগ, মহেশ্বৰ। *অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা*। চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ২০১৩

নেওগ, মহেশ্বৰ(সম্পা.)। *বাণীকান্ত ৰচনাৱলী*। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ২০১০

ফুকন,হৰেন্দ্ৰনাথ। *স্বৰ্গদেও ৰুদ্ৰসিংহ আৰু শিৱসিংহৰ ৰাজত্বকাল*। মামণি গগৈ বৰগোঁহাই (অনু), পূৰ্বাঞ্চল প্ৰকাশ, ২০১৭।

বৰকটকী, দুৰ্গাধৰ(সম্পা.)। *শকুন্তলা কাব্য*। ভাৰত মিহিৰ যন্ত্ৰ, কলিকতা, ১৩৩১।

বৰ্মন, শিৱনাথ (সম্পা.) ।*অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (দ্বিতীয় খণ্ড)* । আনন্দ ৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি, ২০১৫।

ভট্টাচাৰ্য, বসন্ত কুমাৰ(সম্পা)। *কবিৰাজ চক্ৰৱৰ্ত্তী বিৰচিত শকুন্তলা কাব্য*। জাৰ্ণাল এম্পৰিয়াম, ১৯৯৬।

ৰাজকুমাৰ, সৰ্বানন্দ। ইতিহাসে সোঁৱৰা ছশটা বছৰ। বনলতা, ২০১৩।

শইকীয়া, ৰক্তিম ৰঞ্জন। *প্ৰাক ঔপনিৱেশিক অসমৰ অৰ্থনৈতিক ইতিহাস*। অসম পাব্লিছিং কোম্পানী,২০২২।

শৰ্মা, কিৰণচন্দ্ৰ (সম্পা.)। *শকুন্তলা কাব্য*। লয়াৰ্চ বুকষ্টল, ১৯৯০।

শৰ্মা, বাণীকান্ত (সম্পা.)। *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (চতুৰ্থ খণ্ড)* । আনন্দ ৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি, ২০১৭।

শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ। *অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিহাস*। সৌমাৰ প্ৰকাশ, ২০১৭।

হাজৰিকা, বিশ্বেশ্বৰ (সম্পা.)। *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (প্ৰথম খণ্ড)* । আনন্দ ৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি, ২০১৬।

ইংৰজী গ্ৰন্থ ঃ

Barua.SL.*A Comprehensive History of Assam*. .Munshiram Manoharlal Punlishers Pvt Ltd,2022

Pollock, Sheldon. *The Language of Gods in The World of Men Sanskrit, Culture, and Power in Premodern India*. University Of Califoenia Press.2006

Thapar,Romila.*Sakuntala:Text,Readings,Histories*.Women Unlimited,Third edition,2021.

গৱেষণা পত্ৰ ঃ

Baruah,Swarna Lata. *State, Patriarchy and Women in Medieval Assam*. Proceedings of the Indian History Congress, 2005-2006, Vol. 66 (2005-2006), pp.264-295

Darshini,Priya.*Recostructing Gender Assumptions During The Gupta Period*.Proceedings of the Indian History Congress , 2015, Vol. 76 (2015), pp. 127-136

Gogoi Nath, Jahnabi. *State, Religion and Women:Changing Pattern of Patriarchy in Pre Colonial Assam.* Proceedings of the Indian History Congress , 2012, Vol. 73 (2012), pp. 372-382

Goodwin, Robert E.*Aesthetic and erotic entrancement in the Sakuntala*. Acta Orientalia Academiae Scientiarum Hungaricae , 1989, Vol. 43, No. 1 (1989),pp. 99-123

Khan, Iqtidar Alam.*The State Patronage in Medieval India*.Proceedings of the Indian History Congress, 2000-2001, Vol. 61, Part One:Millennium (2000-2001), pp. 276-284

Shah, Salini. On gender,Wives and "Pativratas".Social Scientist,May-June 2012, Vol. 40, No. 5/6 (May-June 2012), pp. 77-90

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

দীপক কুমাৰ বৰকাকতী উপন্যাসিকাসমূহ ঃ এক অধ্যয়ন

নয়নমণি শইকীয়া

গৱেষক ছাত্ৰী, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-১৪
৬০২৬৬৭০৩৮৯
nayanmonisaikia408@gmail.com

ড° প্ৰাঞ্জল শৰ্মা বশিষ্ঠ

সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-১৪
৯১০১১৯৪২৪৫
psb@guwahati.ac.in

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

উপন্যাসিকা হ'ল উপন্যাসৰেই এটা ক্ষুদ্ৰ সংস্কৰণ। য'ত মাথোন এটা গল্প বা কাহিনী জড়িত হৈ থাকে। যাক ইউৰোপীয় সাহিত্যত নভেলা (Novella) বুলি কোৱা হয়। উপন্যাসিকাৰ ইংৰাজী শব্দ Novella ইটালীয় Novella ৰ পৰা আহিছে। সাহিত্যিক ধাৰা হিচাপে উপন্যাসিকা বিকাশ জেনেছাৰ ইটালীয় সাহিত্য যোগেদি হয়। উপন্যাসিকাবোৰত সাধাৰণতে মানুহৰ ব্যক্তিগত জীৱনত দেখা পোৱা আৱেগিক ভাৱবোৰৰ প্ৰকাশ ঘটে। অসমীয়া সাহিত্যত উপন্যাসিকা ৰচনাৰ সুঁতিটো ক্ষীণ। নগেন শইকীয়া, ৰংবং তেৰাঙ, পূৰবী বৰমুদৈ, দীপক কুমাৰ বৰকাকতী,জুৰি বৰা বৰগোহাঞি, গীতালি বৰা আদিয়ে উপন্যাসিকা ৰচনা কৰি অসমীয়া উপন্যাসিকাৰ ধাৰাটোক গতিশীল কৰি তুলিছে। এই গৱেষণা পত্ৰৰ পৰিসৰত কেৱল দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ উপন্যাসিকা কেইখনকহে সামৰি লোৱা হৈছে।

বীজশব্দ ঃ

ইউৰোপীয় সাহিত্য, উপন্যাসিকা, প্ৰকৃতি, মানৱতা।

১.০০ অৱতৰণিকা

১.০১ বিষয়ৰ পৰিচয়

উপন্যাসৰ ক্ষুদ্ৰতম অংশ হ'ল উপন্যাসিকা। উপন্যাসিকাত প্ৰতিফলিত হয় মানুহৰ দৈনন্দিন জীৱনৰ কাম-কাজ, চিন্তা-চৰ্চা, ঘাত-প্ৰতিঘাত, আদি কৰি মানুহৰ জীৱনৰ খণ্ডিত ৰূপৰ চিত্ৰণ থাকে। উপন্যাস আৰু উপন্যাসিকা সন্দৰ্ভত প্ৰহ্লাদ কুমাৰ বৰুৱা "উপন্যাস" শীৰ্ষক গ্ৰন্থখনত — *উপন্যাস আৰু উপন্যাসিকাৰ মাজত আংশিকগত পাৰ্থক্য থাকিব পাৰে কিন্তু দুয়োবিধেই যিহেতু কলা; গতিকে, উপন্যাস আৰু উপন্যাসিকা উভয়তে কলা ৰস আৰু মাধুৰ্য থাকিবই লাগিব।*'[১] (পৃ. ৭) দীপক কুমাৰ বৰকাকতীয়ে এই দুয়ো সম্পৰ্কৰ বান্ধোন ৰাখি উপন্যাসিকা লিখিবলৈ লৈছিল। দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ বৰ্তমানলৈকে প্ৰকাশিত উপন্যাসিকাৰ সংখ্যা হ'ল ৬ খন। সেইসমূহ হ'ল — ভেৰোনীয়া মাতৃ (২০১৪), পৰিভ্ৰমণ (২০১৮), শেষ সময় (২০২২), হিল-ষ্টেচন (২০২২), জংচন (২০২২), বিৰিণা (২০২৪), আদি। বৰকাকতীৰ উপন্যাসিকাসমূহ গৰীয়সী, প্ৰকাশ, সাদিন, আদি আলোচনীত প্ৰকাশ পাইছিল। দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ প্ৰতিখন উপন্যাসিকাৰে বিশেষত্ব বেলেগ বেলেগ যদিও এক সামূহিক ঐক্য দেখিবলৈ পোৱা যায়। প্ৰতিখনতে বাস্তৱ জীৱনৰ সংগতি থকা কিছু কাহিনীক কাল্পনিক ৰহণ সানি লেখকে উপস্থাপন কৰিছে।

গভীৰ অধ্যয়ন আৰু অনুসন্ধিৎসাই বৰকাকতীৰ ব্যক্তিত্বক এক স্বকীয় আয়তন দান কৰিছে। আমাৰ গৱেষণা পত্ৰখনত দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ উপন্যাসিকাসমূহক লৈ অধ্যয়ন কৰা হৈছে। দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ দুই এখন উপন্যাসকলৈ গৱেষণামূলক অধ্যয়ন হৈছে যদিও উপন্যাসিকাসমূহৰ ক্ষেত্ৰত বৰ বিশেষ অধ্যয়ন হোৱা নাই।

১.০২ পূৰ্বকৃত অধ্যয়নৰ সমীক্ষা ঃ

'দীপক কুমাৰ বৰকাকতী উপন্যাসিকাসমূহ' শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰিবলৈ যাওঁতে দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ মূল উপন্যাসিকাকেইখনক মুখ্য উৎস হিচাবে লোৱা হৈছে। বৰকাকতীৰ উপন্যাসিকাসমূহৰ বিষয়ে আজিলৈকে কোনো গৱেষণামূলক আলোচনা পোৱা নাযায়। উপন্যাসিকা সম্পৰ্কে দুই এটা কথা জানিবলৈ প্ৰহ্লাদ কুমাৰ বৰুৱা 'উপন্যাস' শীৰ্ষক গ্ৰন্থখনক লোৱা হৈছে। এই গ্ৰন্থখনত লেখকে উপন্যাসিকা কি? উপন্যাস আৰু উপন্যাসিকা মাজত পাৰ্থক্য কি লগতে উপন্যাসিকা আৰু চুটিগল্প একেই নে বেলেগ সেই সন্দৰ্ভত আলোচনা কৰিছে।

১.০৩ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

দীপক কুমাৰ বৰকাকতী উপন্যাসিকাসমূহ — শীৰ্ষক বিষয়টিৰ অধ্যয়নৰ মূল উদ্দেশ্যসমূহ হ'ল —

(ক) বৰকাকতীৰ উপন্যাসিকাসমূহত মানুহ আৰু প্ৰকৃতিৰ সম্পৰ্ক বিচাৰ কৰা।

(খ) বৰকাকতীৰ উপন্যাসিকাসমূহত নাৰীৰ জীৱনৰ স্বৰূপ দাঙি ধৰা।

(ঘ) বৰকাকতীৰ উপন্যাসিকাসমূহত গ্ৰাম্য জীৱনৰ ছবিখন কিদৰে ফুটি উঠিছে তাক বিচাৰ কৰা।

১.০৪ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

দীপক কুমাৰ বৰকাকতী উপন্যাসিকাসমূহ শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখনৰ পৰিসৰত বৰ্তমানলৈকে প্ৰকাশিত তেখেতৰ ছয়খন উপন্যাসিকাক সামৰি লোৱা হৈছে।

১.০৫ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

'দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ উপন্যাসিকাসমূহ'— শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখনৰ বিষয়টি আলোচনা কৰোঁতে বৰ্ণনামূলক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হৈছে। তদুপৰি প্ৰয়োজন সাপেক্ষে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

১.০৬ তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ

১.০৬.১ মুখ্য উৎস ঃ দীপক কুমাৰ বৰকাকতী উপন্যাসিকাসমূহ শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখনৰ বিষয়টি আলোচনা কৰোঁতে মুখ্য উৎস হিচাপে বৰকাকতীৰ উপন্যাসিকাসমূহক গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

১.০৬.২ গৌণ উৎস ঃ গৌণ উৎস হিচাপে বিষয়টিৰ লগত সম্পৰ্কিত বিভিন্ন গ্ৰন্থ, প্ৰবন্ধ, ইণ্টাৰনেট, আদিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

২.০ মূল আলোচনা ঃ

দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ বৰ্তমানলৈকে প্ৰকাশিত উপন্যাসিকাৰ সংখ্যা ছয়খন। বৰকাকতীয়ে সাক্ষাৎকাৰত কৈছে — মোৰ উপন্যাসিকাসমূহত মোৰ জীৱনৰ প্ৰভাৱ অপৰিসীম। প্ৰকাশ নোহোৱালৈকে এই কল্পকাহিনীবোৰৰ বিষয়বস্তুৱে কেইবা বছৰলৈকে নীৰৱ কোলাহলৰ সৃষ্টি কৰি আহিছে। তাৰ চৰিত্ৰসমূহৰ বিচৰণ আৰু কথনভংগী আপাত দৃষ্টিত অকলশৰীয়া যেন লাগিলেও মোৰ পঢ়া কোঠাৰ নিঃসংগতা প্ৰতিৰোধ কৰি অহাই নহয় আমোদ দি আহিছে।[২] (টেলিফোনিক সাক্ষাৎকাৰ)

২.০১ 'ভেৰোনীয়া মাতৃ' উপন্যাসিকাৰ বিষয়বস্তু ঃ

'ভেৰোনীয়া মাতৃ' হৈছে দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ প্ৰথম উপন্যাসিকা। এই উপন্যাসিকাখন ২০১৪ চনত 'অনুভূতি' আলোচনীত প্ৰকাশ পাইছিল। 'ভেৰোনীয়া মাতৃ' শব্দটোৰ অৰ্থ হৈছে 'পালনকৰ্তা মাতৃ'। উপন্যাসিকাখনৰ মূল চৰিত্ৰটো হ'ল কল্পনা। উপন্যাসিকাখনত ব্ৰেনডন দম্পতীৰ সন্তানহীনতাক দূৰ কৰিবৰ বাবে জিনীয় প্ৰব্ৰজনৰ প্ৰসংগ আনি ভেৰোনীয়া মাতৃৰ কথা উপস্থাপন কৰিছে। এইক্ষেত্ৰত কল্পনা চৰিত্ৰটোৱে ব্ৰেনডন দম্পতীক সহায় কৰিছে। উপন্যাসিকাখনত দুটা দিশৰ কথা আনিব চেষ্টা কৰিছে—

(ক) বিদেশত বসবাস কৰা এহাল দম্পতীৰ জীৱন কাহিনী।

(খ) ভাৰতবৰ্ষত বসবাস কৰা এহাল দম্পতী জীৱন কাহিনীৰ চিত্ৰ অংকন কৰিছে।

এই দুয়োটা প্ৰেক্ষাপটতে উপন্যাসিকা গৰাকীয়ে দেশ-বিদেশৰ মানুহৰ বেলেগ বেলেগ কথা-বতৰা, আচাৰ-ব্যৱহাৰ, মানুহৰ জীৱন সংগ্ৰামৰ পদ্ধতিৰ কথাও উপন্যাসিকাখনৰ মাজলৈ আনিছে। আমেৰিকা নিউয়ৰ্ক নিৱাসী এহাল দম্পতী এডৱাৰ্ড আৰু পামেলা। এডৱাৰ্ড আছিল ধন-সম্পত্তি থকা এজন ভাল ব্যৱসায়ী। সুখেৰে চলি থকা সংসাৰখনত সন্তানহীনতাৰ বাবে স্বামী-স্ত্ৰীৰ মাজত সংঘাত সৃষ্টি হ'ল। সন্তান জন্ম দিব নোৱাৰাৰ অক্ষমতাৰ বাবে তেওঁলোকৰ মনত যি কৰুণ বেদনাৰ সৃষ্টি হৈছে তাক 'ভেৰোণীয়া মাতৃত্ব'ৰ যোগেদি উপশম ঘটোৱাৰ প্ৰয়াস উপন্যাসিকাখনত দেখা যায়। এডৱাৰ্ড আৰু পামেলাই কল্পনাৰ যোগেদি সন্তানৰ সুখ লাভ কৰিছে। দৰিদ্ৰ পৰিয়ালৰ কল্পনাই স্বামীৰ কৰ্কট ৰোগৰ চিকিৎসাৰ বাবে অৰ্থৰ অভাৱত ভুগিছিল। আফ্ৰিকা মহাদেশৰ ইথিয়পিয়াত উদ্ভৱ হোৱা মানৱ লাহে লাহে মধ্য এচিয়াৰ ইৰাণ হৈ ভাৰতৰ দিশত হাজাৰ হাজাৰ মানুহ জিনীয় প্ৰব্ৰজনৰ বাবে ভাৰতলৈ প্ৰৱেশ ঘটিছিল ভাৰতলৈ আহি মানৱীয়তা ক্ষেত্ৰত মহিলাবোৰ মাতৃত্ব স্বৰূপ দাঙি ধৰিছে। ভাৰতত বসবাস কৰা প্ৰায় মানুহে দৰিদ্ৰ সীমাৰেখা আছিল। তেওঁলোকৰ মনবোৰ আছিল উদাৰ। উপন্যাসিকাখনত ঔপন্যাসিকে ভাৰতত বসবাস কৰা হাৰিয়ানাৰ সীমামুৰীয়া গাঁও এখনক কল্পনা কৰি কাহিনীভাগ আগবঢ়াইছে কল্পনা আৰু কল্পনাৰ স্বামীৰ জৰিয়তে। কল্পনাহঁতৰ বৃত্তি আছিল কৃষি। খেতি

কৰিয়ে জীৱন-যাপন কৰিছিল। তেওঁলোকৰ ল'ৰা-ছোৱালী তিনিটা। সেয়েহে তাইৰ স্বামী আৰু ঘৰখন চলাবলৈ বহুত কষ্ট হৈছিল। তেনে দৃশ্য এটি উপন্যাসিকাখনত উল্লেখ কৰিছে —

দুদিনমানৰ পিছত প্ৰায় এঘাৰ বজাত ব্ৰেনডন দম্পতী যেতিয়া নাৰ্ছিং হোমৰ নিৰ্দিষ্ট কোঠাটো পালেগৈ, তেতিয়া কক্ষত গিৰিহঁত আৰু সিহঁতৰ ল'ৰা-ছোৱালীৰে কোঠাটো ভৰি আছিল। কৰ্কট ৰোগক্ৰান্ত মানুহটো অলপ কুঁজা হৈ পৰিছিল। তাৰ ক্ষীণ শুকান মুখখন তিনিদিন মানৰ কলা পকা দাড়িৰে পূৰ হৈ আছিল। *ল'ৰা-ছোৱালীৰ সৈতে মানুহটোৰে যি পোছাক পিন্ধি আহিছিল তাত নিম্ন মধ্যবিত্ত ছাপ আৰু ভাঁজ স্পষ্টকৈ জিলিকি আছিল।*[৩] (ভেৰোনীয়া মাতৃ, ৬১)

উপন্যাসিকাখনৰ পৰিসৰ বহল যদিও কাহিনী চুটি। ঔপন্যাসিকাখনত ইংৰাজী ভাষাৰ প্ৰভাৱে বেছি। এডৱাৰ্ড আৰু পামেলাই সন্তান সম্ভৱা হ'বলৈ চিকিৎসা কৰিবৰ বাবে দিল্লীলৈ আহে। দিল্লীত চিকিৎসক ডাঃ অলকাক লগ ধৰে। ডাঃ অলকায়ে তেওঁলোকৰ সমস্যা সমাধান কৰা দৃশ্য যে সুখবাৰ্তা স্বৰূপ দেখা দিছিল। ডঃ অলকা খেকজ এডৱাৰ্ড কৈছিল—

এটা ভাল খবৰ আছে মিঃ এডৱাৰ্ড। এগৰাকী তিৰোতা পোৱা গৈছে। তাই সাতাইশ বছৰ বয়সীয়া। তাই খেতিয়কৰ পৰিয়ালৰ। বৰ্তমানো তাই স্বামী খেতিয়ক। সৰুতে কৰা দৈহিক শ্ৰম কৰাৰ দৰে তাই এতিয়াও শ্ৰম কৰে। *.... দেউতাক-মাকৰ পৰিয়ালৰ কোনো ধৰণৰ বিশেষ কোনো নাই। তাই ইতিমধ্যে তিনিটা সন্তানৰ মাতৃ। তথাপিও তাই স্বাস্থ্যবান। নিজ নিজ পামেলাই দেখি ভাল পাব। তাইৰ নাম কল্পনা।*[৪] (পৃ.৫৭)

উপন্যাসিকাখনৰ গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ এয়ে যে ইয়াৰ ভাব-ভাষা সহজ সৰল। উপন্যাসিকাখনৰ কাল্পনিক চৰিত্ৰবোৰৰ বাস্তৱ জগতৰ সৈতে মিল আছে। দৰিদ্ৰতাই কোঙা কৰা কল্পনাই তাইৰ স্বামীৰ চিকিৎসাৰ বাবে ধন গোটাবলৈ গৈ আন দম্পতীৰ সন্তানৰ মাক হ'বলৈয়ো কুণ্ঠাবোধ কৰা নাই। উপন্যাসিকাখনত উল্লেখ কৰিছে এনেদৰে -

ডাঃ অলকাই মিচিকিয়াই হাঁহি কলে— *'তাইৰ স্বামী বৰ্তমান অসুস্থ। চিকিৎসাৰ বাবে ধনৰ আৱশ্যক। সেয়েহে তাইৰ ধনৰ বিনিময়ত ভেৰোণীয়া মাতৃত্ব ল'বলৈ ইচ্ছুক।*[৫] (২৫৭)

উপন্যাসিকাখনৰ মূল নায়িকা কল্পনাই শেষত কৰ্কট ৰোগাক্ৰান্ত স্বামীক মৃত্যুমুখৰ পৰা বচাব পৰা নাই। এড়ৱাৰ্ড আৰু পামেলাৰ সন্তানটি জন্ম দিয়াৰ পিছত সন্তানটি তেওঁলোকৰ হাতত তুলি দি কল্পনাই কোনো টকা-পইচা নালাগে বুলি কৈছে।

এডৱাৰ্ডে ভাৰতৰ মানুহৰ মনৰ ভাৱ দেখি আচৰিত হ'ল — উপন্যাসিকাখনত দেখুওৱাইছে —

এডৱাৰ্ডে ভাবিলে বৰ আচৰিত, বৰ আচৰিত। *এই জগতত আমি সকলোৰেই সকলোৰে ইমান আপোন আমাৰ অতীজৰ পৰা চলি অহা ঐতিহাসিক ৰোমাঞ্চকৰ যাত্ৰাপথত ভৌগোলিক চহৰ নগৰ, গাঁও-ভূঁইৰ ৰস-জীৱন, আকাশ-বতাহেই বহন কৰি আহিছে কল্পনাৰ দৰে আমাৰ ভেৰোনীয়া মাতৃত্ব।*[৬] (৬৯)

২.০২ পৰিভ্ৰমণ উপন্যাসিকাৰ বিষয়বস্তু ঃ

দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ 'পৰিভ্ৰমণ' দ্বিতীয়খন উপন্যাসিকা। এই উপন্যাসিকাখন সাদিন কাকতৰ বসন্ত সম্ভাৰ ২০১৮ চনত প্ৰকাশ হয়। পৰিভ্ৰমণ উপন্যাসিকাত এজন অৱসৰপ্ৰাপ্ত স্মৃতি বিভ্ৰম অধ্যাপকৰ জীৱনৰ শৈশৱ-কৈশোৰৰ কিছু স্মৃতিক উপন্যাসিকাখনত তুলি ধৰিছে। উপন্যাসিকাখনত বাস্তৱ জীৱনৰ কাল্পনিক চিত্ৰও আছে। তদুপৰি, উপন্যাসিকাখনত গাঁও আৰু চহৰৰ মাজত দেখা পাৰ্থক্যক উপস্থাপন কৰিছে। কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ অৰ্ধেন্দু বৰুৱা এগৰাকী অৱসৰপ্ৰাপ্ত শিক্ষক। অৰ্ধেন্দু বৰুৱা চাকৰিসূত্ৰে চহৰত আছিল। অৱসৰৰ পাছত তেওঁ গাঁৰৰ ঘৰত আছিল। কেইবছৰমানৰ পাছতেই অৰ্ধেন্দু বৰুৱাই চাকৰি জীৱনৰ সময়ত কটোৱা চহৰীয়া দিনবোৰ কথা মনত পেলাই গাঁৰৰ ঘৰ এৰি চহৰ অভিমুখে যাত্ৰা কৰিলে। অৰ্ধেন্দু বৰুৱাই আগতে চাকৰি কৰা চহৰখনৰ এতিয়া বহুত পৰিৱৰ্তন হ'ল। ৰাস্তা-ঘাট সুচল হ'ল, বৃহৎ অট্টালিকা হ'ল,পৰিবহণ ব্যৱস্থা উন্নত হ'ল, মঠ-মন্দিৰত বিশেষকৈ সেই সময়ত নেপালী মন্দিৰ, কামাখ্যা মন্দিৰৰ পৰিৱৰ্তন হ'ল। লেখকে এনেবোৰ দিশকো উপন্যাসিকাখনৰ মাজলৈ আনিছে। উপন্যাসিকাখনত অৰ্ধেন্দু বৰুৱাক সমাজ সংস্কৃতিৰ প্ৰতি আগ্ৰহী ব্যক্তি হিচাপে উপস্থাপন কৰিছে। অৰ্ধেন্দু বৰুৱাই কৈশোৰ কালত দেউতাকৰ সৈতে মঠ-মন্দিৰ দৰ্শন কৰা কথা উপন্যাসিকাখনত এনেদৰে উল্লেখ কৰিছে----

বৃদ্ধ মানুহজন কামাখ্যা মূল মন্দিৰৰ পৰা কাষেৰে আহি ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ কাষ পালেহি। তাৰ এফালে ওখ ছিৰিত মানুহৰ মাজত শুকুলা পোছাক পিন্ধি কপালৰ পৰা নাকলৈকে বৈ পৰা চন্দনৰ ফোট লোৱা চৈত্যপন্থী বোষ্টম-বোষ্টমী কেইজনমান বৈ আছিল তেওঁলোকক দেখি মানুহজনৰ মনত পৰিল ঢাকা-দক্ষিণত দেখা কৃষ্ণ বন্দনাৰ কথা—

আহা মৰি মৰি
বাজিল বাঁশৰী,
শুনিলো কিশোৰী শ্ৰৱণে
যাইগো যাই
ওগো ৰাই

....

বাঁশী ৰাধা ৰাধা বলে সঘনে।[৭] (৩২৬)

উপন্যাসিকাখনত কন্দৰ্প শৰ্মা, ঝৰ্ণা, নিজৰা, শান্তনু গোহাঁই আদি কাল্পনিক চৰিত্ৰৰ সমাৱেশ ঘটিছে। উপন্যাসিকাখনত অৰ্ধেন্দু

বৰুৱাই বৃদ্ধ বয়সত নিজৰ শৈশৱ আৰু কৈশোৰৰ স্মৃতিবোৰ মনত পেলাই স্মৃতিকাতৰ হৈ পৰাৰ কথা উপন্যাসিকাখনত উপস্থাপন কৰিছে। অৰ্ধেন্দু বৰুৱা এগৰাকী সৎ প্ৰবৃত্তিৰ মেধাৱী শিক্ষক আছিল। উপন্যাসিকাখনত নিজৰা নামৰ সৰু কণমানি ছোৱালীজনীয়ে পঢ়া কিতাপবোৰ দেখি অৱসৰপ্ৰাপ্ত শিক্ষক অৰ্ধেন্দু বৰুৱাৰ মনৰ মাজত অতীতত নিজেই পঢ়া কিতাপবোৰৰ স্মৃতি জাগ্ৰত হৈ উঠিছে—

বৃদ্ধ মানুহজনে অলপ সতেজ হ'ল। তেওঁ তাইক কলে— বেছ বেছ। কবিতা জানানে? তোমাৰ মনত আছেনে কিবা কবিতা। নিজৰাই দেউতাকক ভিতৰলৈ যাবলৈ ক'লে। তাৰ পিছত তাই গাবলৈ ধৰিলে- 'পাৰ চৰাই উৰি গ'ল পালে নদীৰ পাৰ...'। উক্ত কবিতাটি শুনি বৃদ্ধ গৰাকীৰ শৈশৱলৈ মনত পৰিল। বৃদ্ধগৰাকীৰ মনত পৰিল ইংৰাজী ৱৰ্ডচৱৰ্থৰ 'টু দ্য কুক নামৰ কবিতাটি— *"হুৱাইল আই এম লায়িং অন দ্য প্ৰছেচ দাই চু-ফ'লড ছাউট আই হিয়েৰ ফ্ৰম হিল টু হিল ইণ্ট চিম্‌চ টুপাল।* [৮] (৩৩০)

বৰ্তমান সময়ত সমাজত ইণ্টাৰনেটৰ জৰিয়তে প্ৰচাৰ হোৱা কিছুমান মিছা ঘটনাই মানুহৰ জীৱনলৈ কিদৰে দুৰ্যোগ নমাই আনিব পাৰে তাক উপন্যাসিকাখনত সাৱলীল ৰূপত উপস্থাপন কৰিছে।

২.০৩ শেষ সময় উপন্যাসিকাৰ বিষয়বস্তু ঃ

'শেষ সময়' দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ তৃতীয়খন উপন্যাসিকা। এই উপন্যাসিকাখন ২০২২ চনৰ নৱেম্বৰ মাহৰ 'প্ৰকাশ' আলোচনীত প্ৰকাশ পাইছিল। 'শেষ সময়' উপন্যাসিকাখন তিনিটা খণ্ডত প্ৰকাশ পাইছিল।

এই উপন্যাসিকাখনত হুইলচেয়াৰত বহি থকা এজন বৃদ্ধ লোক জীৱনৰ কাহিনীক উপন্যাসিকাৰ সৰু কলেবৰৰ ভিতৰত উপস্থাপন কৰিবলৈ চেষ্টা কৰিছে। উপন্যাসিকাখনত দুটা দিশত গুৰুত্ব দিছে—

(ক) প্ৰকৃতি আৰু মানুহৰ মাজত সম্পৰ্ক।

(খ) বৃদ্ধ গৰাকীৰ জীৱনত কৰুণ দৃশ্য দাঙি ধৰা।

দীপক কুমাৰ বৰকাকতীয়ে বৃদ্ধ গৰাকীক প্ৰকৃতিৰ পূজাৰী ৰূপত উপস্থাপন কৰিছে। তেওঁৰ প্ৰকৃতিৰ লগত সময় পাৰ কৰি ভাল পায়। প্ৰকৃতিয়ে যেন তেওঁক শক্তি দিয়ে। সেয়েহে বৰকাকতীয়ে হুইল চেয়াৰত বহি থকা বৃদ্ধজনক উপমা হিচাপে লৈ মানুহ আৰু প্ৰকৃতি মাজৰ সম্পৰ্কৰ কথা উপন্যাসিকাখনত এনেদৰে প্ৰকাশ কৰিছে—

বাহিৰত বলিছিল শীতল মলয়া। তাৰ সন্মুখত আছিল এক নয়নাভিৰাম দৃশ্য। কিয়নো তাত আছিল এখন প্ৰশস্ত নদী। নদী নহয় নদ। ব্ৰহ্মপুত্ৰ তাৰ নাম। তাত আছিল এক গতিশীল সোঁত। এই গতিশীলতা ভাৱেই তেওঁ এই পাহাৰৰ শিখৰৰ এই স্থানত গৃহ। নিৰ্মাণৰ আঁচনিত অনুমোদন জনাইছিল। তেওঁ সাগৰ দেখিছে, মহাসাগৰ দেখিছে। তাৰ সুঁতি বিস্তৃতি দেখিছে। তাৰ গৰ্ভলৈ শুনিছে। তাৰ গাম্ভীৰ্যতা অনুভৱ কৰিছে পাছলৈ বাৰে বাৰে অহা ঢৌত তিতি বুৰি গা ধুইছে। ...*সেইবাবেই শিশুৰ দৰে সজ আৰু চঞ্চল নৈ একোখন তেওঁৰ হৈ পৰিছে বৰ মৰমিয়াল।* [৯] (৫০)

— লেখকে ক'ব বিচাৰিছে অতীতত ব্ৰহ্মপুত্ৰ পাৰত বহিলে শীতল বতাহ বৈ আহে। ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ বুকুৰ খৰস্ৰোতা সোঁত, সৰু-বৰ নাওবোৰ আৰু জাক জাক বালিমাহী চৰাই উৰি যোৱাৰ দৃশ্য বৰ্তমান সময়ত দেখা পাবলৈ নোহোৱাৰ প্ৰসংগতে উল্লেখ কৰিছে। বৃদ্ধ গৰাকীৰ জীৱন যে অন্ধকাৰময় হৈ পৰা আন এক প্ৰসংগ উপন্যাসিকাখনত লেখকে দাঙি ধৰিছে। দৃষ্টি-শক্তি কম হৈ আহিলে মানুহৰ জীৱনৰ কোনো মূল্য নাইকিয়া হৈ পৰে। তেওঁৰ নিজৰ ঘৰতে অলাগতিয়াল হৈ পৰিছে----

তেওঁৰ হাতত কাৰোবাৰ স্পৰ্শৰ পৰশ পোৱা গ'ল। হয়তো তেওঁৰ হুইল চেয়াৰত কাষত থিয় হৈ থকা তেওঁৰ নাৰ্চগৰাকীয়ে তেওঁৰ হাতখন দাঙি ধৰিছে আৰু কোচত এখন কাপোৰ পাৰিছে। *আলফুলে তেওঁৰ হাতখন তুলি দিয়া টাৱেল এখনেৰে মচি দিছে। মচি দিছে তেওঁৰ মুখমণ্ডল বৰ অপূৰ্ব বৰ অপূৰ্ব এই স্পৰ্শানুভূতি। বৃদ্ধৰ মনত পৰিল তেওঁৰ মাজত অনুভূতি।* [১০] (৫১)

অতীতৰ কথাবোৰে বৃদ্ধগৰাকীৰ মনত খুন্দিয়াইছে। আইতাকৰ কথা, মাটি ভৰা খাদ্য খাবলৈ দিয়া, আইতাকে তাক কচু-ঢেকীয়া, পালেং ভিন ভিন শাক ভাজি খুৱাইছিল। কিন্তু আজি তেওঁৰ নিজৰ মানুহখিনিৰ বাবেই তেওঁ কান্দিবলগীয়া হৈছে।

উপন্যাসিকাখনত বৃদ্ধগৰাকীৰ নিজৰ ঘৰৰ মানুহখিনিৰ পৰা কিয় আঁতৰি আহিব লগা হ'ল? তেওঁলোক ক'ত? তেনে কোনো কথা আলোচনা কৰা হোৱা নাই মাথো দুই এটা দৃশ্যহে উপন্যাসিকাখনৰ মাজলৈ আনিছে। অৰ্থাৎ উপন্যাসিকাখনত গাঁও আৰু ভৈয়ামত চহৰৰ মানুহৰ সাজ-পোছাক, খাদ্যাভাস, আচৰণ, শিক্ষা, সকলো যে বেলেগ তাৰ ইংগিত দিয়াৰ চেষ্টা কৰিছে।

২.০৪ হিল-ষ্টেচন উপন্যাসিকাৰ বিষয়বস্তু ঃ

'হিল-ষ্টেচন' বৰকাকতীৰ চতুৰ্থখন উপন্যাসিকা। এই উপন্যাসিকাখন গৰীয়সী, ২০২২ চনত প্ৰকাশ পাইছিল। উপন্যাসিকাখনত এটা হিল-ষ্টেচনক প্ৰতীক হিচাপে লৈ বিৰাজ কটকী, শম্ভু হাজৰিকা, জেকব ভিনাৰ, আলি চাহাব, যতীন বৰুৱা আদি কেইটামান চৰিত্ৰৰ যোগেদি ষ্টেচনটোৰ চাৰিওকাষে চলা বিশৃংখল পৰিস্থিতিৰ চিত্ৰ দেখুওৱাব বিচাৰিছে।

উপন্যাসিকাখনত ভৈয়ামৰ ৰেল যাত্ৰাক এক কাহিনী ৰূপ দিছে। উপন্যাসিকাৰ উল্লেখ কৰিছে —

এই সৰু হিল-ষ্টেচনটো আওঁহতীয়া। ভৈয়াম, ৰে'ল আৰু আকাশীযানৰ সংযোগৰ পৰা বেছ দূৰ। গতিকে, ডাক অনিয়মীয়া। তাৰ উপৰি মাজে মাজে বাৰিষাৰ বৰষুণে পাহাৰ খহাই বাট-পথ সংযোগহীন কৰি ৰাখে। গতিকে ডাক অহাটো মানুহবোৰৰ কাৰণে এটা ডাঙৰ খবচ।[১১] (৮০)

বৰকাকতীৰ এই উপন্যাসিকাখনত বিৰাজ কটকী চৰিত্ৰটো যোগেদি ভৈয়ামৰ ৰে'ল পৰিবহণ দৃশ্যত লুকাই থকা এজন চফল ডেকা ৰূপত অংকন কৰিছে। বিৰাজ কটকীয়ে হিল-ষ্টেচন ক্ৰচিং পাই সুখী অনুভৱ কৰিছে।

শম্ভু হাজৰিকা বিৰাজ কটকী ভাল বন্ধু সহকৰ্মী আছিল। সময়ত তাৰ চৰিত্ৰ ওলাই পৰিল। আহিল জনতাৰ নামত পইচা লৈ মহিলা সৈতে কৰা দেহ ব্যৱসায় টি পাৰ্টি কৰা দৃশ্য দেখি বিৰাজ কটকী আচৰিত হৈ পৰিল। প্ৰথম অৱস্থাত শম্ভু হাজৰিকা এজন আপোন ভোলা, ৰসিক, দিলদাৰ ব্যক্তিক সলনি ৰূপত দেখা দৃশ্য দাঙি ধৰিছে। মিছেছ হাজৰিকা বিৰাজ কটকী মদ খাব দিছিল লগতে তেওঁলোকৰ সৈতে আদ্দা মাৰিব দিয়া প্ৰস্তাৱটিত তেওঁৰ সমৰ্থন জনোৱা নাছিল তেনে প্ৰসংগতে উপন্যাসিকা গৰাকীৰ এখন বেলেগ সমাজৰ প্ৰতিচ্ছবি দেখুওৱাৰ প্ৰয়াস কৰিছে —

"বিৰাজ কটকী হাজৰিকাৰ ঘৰৰ পৰা ওলাই ৰজা পৰা খেল পালে। মহিলাকেইগৰাকীৰ ব্যৱহাৰত তেওঁৰ তেওঁলোকৰ প্ৰতি মতামত বৰ নিম্নস্তৰলৈ নামিল। তেওঁৰ মন দুৰ্বল হৈ পৰিল আৰু ৰাস্তাৰ কাষেৰে দীঘল ছাতিটোৰ আশ্ৰয়তে যেন খোজ দি যাবলৈ ধৰিছে। হিল-ষ্টেচনটোত পষ্টিং বুলি শুনিয়েই তেওঁ জাপ মাৰি উঠি আৰু পোনেই আহি চাকৰিত জইন কৰিছিল। কিন্তু বুজা নাছিল ন-মাহৰ ভিতৰতে চাকৰি আৰু হিল-ষ্টেচনটোত জীৱনে আমুৰাব বুলি। ইয়াৰ চিজনড মেন বুলি দাবী কৰা বৰাট অৱশ্যে তেওঁক অনেক দিন আগতেই নিচাতস্ত অৱস্থাৰে কৈছিল— *বুজিছে কটকী। হিল-ষ্টেচনবোৰ হ'ল টেঙা আমৰ দৰে। নাম শুনিলেই জিভাৰ পানী পৰে। দুচকলমান খালেই আমুৱায়- দাঁত টেঙালে। কিন্তু ইয়াক খাব জানিব লাগে।*[১২] (৮৪)

উপন্যাসিকাখনৰ বিষয়বস্তু গভীৰতা আছে যদিও উপন্যাসিকা গৰাকীয়ে দুই এটা উদাহৰণ দাঙি ধৰি হিল-ষ্টেচনৰ পাৰিপাশ্বিক সমাজৰ এক প্ৰতিচ্ছবি দাঙি ধৰাৰ প্ৰয়াস কৰিছে।

২.০৫ জংছন উপন্যাসিকাৰ বিষয়বস্তু ঃ

'জংচন' বৰকাকতীৰ পঞ্চমখন উপন্যাসিকা। এই উপন্যাসিকাখন 'প্ৰকাশ' আলোচনীত ২০২৩ চনত প্ৰকাশ পাইছিল। উপন্যাসিকাখনত চৰিত্ৰৰ ভূমিকা নাই। উপকাহিনী প্ৰভাৱ দেখা নাযায়। উপন্যাসিকা খনত চৰিত্ৰৰ ক্ষেত্ৰত ইন্দেশ্বৰ, সাৰদা, সন্তোষ আদি কাল্পনিক চৰিত্ৰ অংকন কৰিছে। উপন্যাসিকাখন ৯ টা খণ্ড ভাগ কৰি দেখুওৱাইছে। বৰকাকতীৰ প্ৰতিখন উপন্যাসিকাত চৰিত্ৰ সৰু বৰ ভূমিকা আছে। 'জংচন' উপন্যাসিকাখনত ইন্দেশ্বৰ চৰিত্ৰটিৰ যোগেদি চাপৰমুখ জংচনত ঘটা কিছু ঘটনাক কম পৰিসৰতে দেখুওৱাবলৈ চেষ্টা কৰিছে। ইন্দ্ৰেশ্বৰ চাপৰমুখ জংচনত কাম কৰা কৰ্মী আছিল।তেওঁ কামবোৰ সততাৰে কৰিছিল। উপন্যাসিকাখনত বিশেষকৈ উজনিৰ লামডিং, ফৰকাটিং, মাৰ্ঘেৰিটা, লিডু, তিনিচুকীয়া, লগতে ডিব্ৰুগড় ৰে'ল যাত্ৰা কৰা কিছু অভিজ্ঞতা দাঙি ধৰিছে। উপন্যাসিকাখনত উল্লেখ কৰিছে এনেদৰে —

চাপৰমুখ বৰ ডাঙৰ জংছন নহয়। কিন্তু সকলো জংছনৰ দৰেই ই বৰ গুৰুত্বপূৰ্ণ। তাৰ পৰা ব্ৰডগজৰ লাইনটো পূবা-পশ্চিমাকৈ গৈছে। উজনিৰ ফালে লামডিং, ফৰকাটিং, মাৰ্ঘেৰিটা, লিডু, তিনিচুকীয়া, হৈ ডিব্ৰুগড়লৈ চাহ বাগানৰ মাজে মাজে গৈছে। আনফালে নামনিমুৱাকৈ গুৱাহাটী, ৰঙিয়া হৈ হাওৰা বা শিয়ালদহ নাইবা দিল্লীলৈকে গৈছে। কোনোখন ৰে'লত দাক্ষিণ্যত্যলৈ যাবলৈকো সুবিধা আছে। *বণিক পাল বাবুৰে বৰ্ণনা দিয়ামতে ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ বুকুত শৰাইঘাট দলং হোৱাৰ আগতে এই যাত্ৰাবোৰ বৰ কষ্টকৰ আছিল। তথাপি ভিন ভিন কৰ্মৰ বাবে বিভিন্ন ভাষী মানুহবোৰ সেই লাইনবোৰেৰে অহা-যোৱা কৰিছিল।*[১৩] (৩৩, প্ৰকাশ)

উপন্যাসিকাখনৰ আন এক দিশ হ'ল বাংলাদেশ গঠনৰ সময়ত ভগনীয়াবোৰ ভাৰতত প্ৰৱেশ কৰাৰ প্ৰসংগত উপন্যাসিকা গৰাকীয়ে ক'ব বিচাৰিছে -বাংলাদেশ সৃষ্টিৰ আগত ভগনীয়াবোৰে ভাৰতৰ অভিমুখে যাত্ৰা কৰিছিল সেই সময়ত বিশেষকৈ কৰিমগঞ্জ, কাছাৰ, লামডিং, ৰে'লৰ যাত্ৰাৰ সময়ত দেখা পোৱা ভগনীয়াৰ বিচিত্ৰ মানুহৰ মুখ দেখা প্ৰসংগত উপন্যাসিকাখনত এনেদৰে উল্লেখ কৰিছে -

... সিহঁতৰ বসন আছিল লেতেৰা, অপৰিস্কাৰ, মুখ আৰু চুলিবোৰ আছিল ৰুক্ষ। দৃষ্ট আছিল বিভ্ৰান্ত। সিহঁতক দেখিলেই বুজা গৈছিল সিহঁত ভগনীয়া ...... জংচন ষ্টেশ্যনলৈ পৰিয়ালৰ লগত অহা কোনো শিশুৱে প্লেটফৰ্মৰ কাষে কাষে লাহে খোজ দি যোৱা পগলা মানুহটোলৈ অপৰাগ হৈ চাইছিল। *চাহবিস্কুট বিক্ৰী কৰা কোনোবা ভগুৱো এক ছিংবাল চাহত কনডেন্স মিল্ক মিহলাই চামুচেৰে ঘনে ঘনে কৈছিল যা যা। বাহিৰলৈ যা।*[১৪] (৩৪)

'জংছন' উপন্যাসিকাখনত নাৰীৰ জীৱনৰ অসহায় অৱস্থাক দেখুওৱাৰ প্ৰয়াস কৰিছে। চাপৰমুখ ষ্টেচনত এগৰাকী

নাৰীক অকলশৰীয়া হৈ থকা অৱস্থাত তিনিটা নৰপিশাচে আক্ৰমণ কৰাৰ প্ৰয়াস কৰে। তেনে সময়ত লেখকগৰাকীয়ে নাৰীসত্তাই বৰ্তমান সময়লৈকে স্বাধীন হ'ব নোৱাৰাৰ প্ৰসংগটো উপন্যাসিকাখনত এনেদৰে উপস্থাপন কৰিছে—

...এদিন পুৱা সাত বজাতে শিলঘাটলৈ যোৱা ৰেল গাড়ীখন চলাই সন্তোষত লগত ইন্দ্ৰেশ্বৰ আবেলি চাপৰমুখলৈ উলটি আহিছিল। উলটি আহোঁতে ঠায়ে ঠায়ে চলি থকা মেৰামতিৰ বাবে সাত বজাত পাবলগীয়া ৰে'লখন চাপৰমুখ ষ্টেশ্যন পাওঁতে নিশা প্ৰায় ন বাজিছিল। ৰে'লখন অহা ষ্টেশ্যন এৰি কলং নৈৰ দলং খন গুমগমাই পাৰ হৈ যাওঁতে ইঞ্জিনৰ হেড লাইটৰ পোহৰত ইন্দ্ৰেশ্বৰৰ এটা আচৰিত দৃশ্য চকুত পৰিল। ... ৰে'লৰ আলিৰ কাষে কাষে তিনিটা মানুহ দৌৰিগৈ আছে। সন্মুখত এজনী তিৰোতা। বুজা গৈছিল উধাতু খাই দৌৰিছে আৰু পিছে পিছে দৌৰি মানুহ কেইটাই তাইক খেদি নিছে। *সিহঁতে তাইৰ গাৰ কাপোৰ টানি ধৰি ৰখাব খুজিছে। তাই ৰোৱা নাই ... তিৰোতাজনীৰ গাৰ কাপোৰ এখন এখনকৈ মানুহ তিনিটাৰ হাতলৈ আহিছে আৰু তিৰোতাজনী লাহে লাহে নগ্ন হৈ পৰিবলৈ ধৰিছে ... দৌৰি দৌৰি তাই প্ৰাণটাকি চিঞৰিছে বাচাওঁ, আমাক বাচাওঁ।*[১৫] (৩৪)

উপন্যাসিকাগৰাকীয়ে অসহায় নাৰীৰ জীৱনৰ কথাও দাঙি ধৰিছে। উপন্যাসিকাখনৰ বিষয়বস্তু পৰিসৰ কম। সেয়েহে লেখকে উপন্যাসিকাখনত বাংলাদেশ জন্মৰ সময়ত ঘটা দুই এটা কাহিনীক কাল্পনিক দৃষ্টিভংগীৰে সজাবলৈ চেষ্টা কৰিছে।

২.০৬ বিৰিণা উপন্যাসিকাখনৰ বিষয়বস্তু ঃ

দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ 'বিৰিণা' ষষ্ঠখন উপন্যাসিকা। এই উপন্যাসিকাখন ২০২৪ চনত 'প্ৰকাশ' আলোচনীত প্ৰকাশ পাইছিল। উপন্যাসিকাখনৰ সন্দৰ্ভত লেখকে এনেদৰে কৈছে — *এজন আদৰ্শ শিক্ষকৰ অৱদান, ৰাজনৈতিক উদাসীনতা, আৰু প্ৰাকৃতিক দুৰ্যোগ আনিব পৰা ভয়াৱহতাৰ ইংগিত বিৰিণা নামৰ উপন্যাসিকাখনত প্ৰক্ষেপ কৰা হৈছে।*[১৬] (টেলিফোনিক সাক্ষাৎকাৰ ২০২৪)

'বিৰিণা' উপন্যাসিকাখন নটা খণ্ডত ৰচনা কৰিছে। উপন্যাসিকাখনত লেখকে বিৰিণাক এগৰাকী আদৰ্শ শিক্ষয়িত্ৰী হিচাপে উপস্থাপন কৰিছে। মূল কাহিনীৰ পৰিসৰ কম। উপন্যাসিকাখনত ব্যৱহৃত ভাষা সৰল।

উপন্যাসিকাখনত বিশেষকৈ তামিল, ইংৰাজী, অসমীয়া ভাষাৰ প্ৰভাৱ বেছি। 'বিৰিণা' উপন্যাসিকাখনত চৰিত্ৰৰ ভূমিকা কম। যদিও কেইটামান চৰিত্ৰক কাহিনী মাজলৈ আনিবলৈ চেষ্টা কৰিছে যেনে ঃ শ্ৰীনিৱাস, ভাস্কৰ বৈশ্য, বিৰিণা, জয়ন্ত আদি। পিতৃ-মাতৃহীন বিৰিণাৰ জীৱনত ঘটি যোৱা কিছু ঘটনাক উপন্যাসিকাখনৰ মাজলৈ আনিছে। উপন্যাসিকাখনত চেন্টিনেলী সোণসেৰীয়া ঠাই এখনৰ জীয়ৰী আছিল বিৰিণা। বিৰিণা এগৰাকী স্পষ্টবাদী যুৱতী। উপন্যাসিকাখনত শ্ৰীনিৱাসে বিৰিণা দেখি কথা কোৱাৰ প্ৰসংগত বিৰিণা স্পষ্টবাদী প্ৰকাশ পাইছে এনেদৰে — যুৱতীগৰাকীয়ে ক'লে — মোক আপুনি বুলি সম্বোধন নকৰিব। মোৰ নাম বিৰিণা, বিৰিণা বৰুৱা। মই শিৱসাগৰৰ কলেজ এখনত পঢ়ি আছো।[১৭] উপন্যাসিকাখনৰ আন এটা দিশ হ'ল চৰকাৰী সাহায্য নোপোৱা গাঁৱত অৱস্থিত এখন প্ৰাথমিক বিদ্যালয়ত বিৰিণা বাপেক প্ৰধান শিক্ষক আছিল। *ৰ'দ, বতাহ বৰষুণৰ ঘৰটো উৰলি যোৱাৰ অৱস্থা হ'ল। একোণত ঢোকা দিব লগাত পৰিল। তথাপি ইয়াৰ তলতেই দেউতাই প্ৰায় অকলেই পাঁচোটা শ্ৰেণী চলাই থাকিল। আজিও আছে।*[১৮] (২৬) লেখকে বিৰিণাৰ বাপেক মহেন্দ্ৰ বৰা চৰিত্ৰটোৰ যোগেদি প্ৰাথমিক স্কুলৰ দুৰৱস্থাৰ চিত্ৰখন প্ৰকাশ কৰিব বিচাৰিছে।

বিৰিণাৰ পিতৃ মহেন্দ্ৰ বৰাক এজন সুদক্ষ শিক্ষক হিচাপে উপন্যাসিকাখনত দেখুওৱাইছে। তেওঁক পৰিচয় দিছিল এটা সময়ত পঢ়োৱা ছাত্ৰৰ শ্ৰীনিৱাস আৰু ভাস্কৰ বৰায়ে। তেওঁলোকে এতিয়া নিজেই নিজৰ ভৰিৰ ওপৰত থিয় দিব পৰা হোৱা দেখি শিক্ষক হিচাপে মহেন্দ্ৰ বৰা সুখী হৈছিল। মিলিটেৰীসকলৰ অত্যাচাৰৰ ফলত সোণসেৰীয়া চাপৰিলৈ অন্ধকাৰ নামি আহিল। মিলিটেৰীয়ে গাঁওবোৰত সোমাই সাধাৰণ দৰিদ্ৰ সীমাৰেখাৰ তলৰ মানুহক অত্যাচাৰ কৰাৰ এক প্ৰতিচ্ছবি উপন্যাসিকাখনত দাঙি ধৰিছে এনেদৰে —

কাহিলী পুৱাতেই চাপৰিৰ ঘাটত কুৰিজনমান মিলিটেৰী সম্পূৰ্ণ সমৰসজ্জাৰে নামি পৰিছিল। সিহঁতৰ বুকু-পিঠিত গোলা-বাৰুদৰ গধুৰ বোজা আছিল। মূৰত আছিল লোৰ হেলমেট। ভৰিত আছিল চামৰাৰ দগধা জোতা। হাতত আছিল একোটা সাংঘাতিক মাৰণাস্ত্ৰ। *সিহঁতে গপ গপাই গাঁৱৰ ল'ৰা-বোৱাৰী, বুঢ়া-মেথাৰ, কলিজা কাঢ়ি গ'ল..। বিয়লি পৰলৈ ভাগৰুৱা মিলিটেৰীবোৰ উলটি আহিল। সিহঁতে লগত লৈ আহিল তিনিটা মৃতদেহ। লগতে আনিলে সাতটা আঘাতপ্ৰাপ্ত ডেকা ল'ৰা।*[১৯] (৩৪)

উপন্যাসিকাখনৰ বিষয়বস্তুলৈ চালে উপন্যাসিকাখনৰ কাহিনীটো কাল্পনিক ঐতিহাসিক দৃষ্টিভংগীৰ প্ৰভাৱ পৰা বুলি ক'ব পাৰোঁ।

৩.০০ উপসংহাৰ ঃ

৩.০১ সামগ্ৰিক সিদ্ধান্ত ঃ

দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ উপন্যাসিকাসমূহ ভিন্ন সমস্যাক পটভূমি হিচাপে লৈ ৰচনা কৰা হৈছে যদিও উপন্যাসিকাসমূহৰ বিষয়বস্তু আৰু কলা দুয়োটা দিশতেই সামাজিক দৃষ্টিকোণৰ

ফালৰ পৰা অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ। তেওঁৰ প্ৰতিখন উপন্যাসিকাত সমাজ বাস্তৱতাৰ দিশটো দেখুওৱাবলৈ প্ৰয়াস কৰিছে।

সমাজত দেখা উচ্চ-নিম্ন জনসাধাৰণৰ প্ৰতি থকা মনোভাৱ দাঙি ধৰাৰ লগতে মানৱদৰদী মনটো ফুটাই তোলাৰ চেষ্টা কৰিছে। এই দিশৰপৰা চালে দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ এগৰাকী সমাজবাদী লেখকৰ লগতে মানৱতাবাদী লেখক বুলিও ক'ব পাৰো।

বৰকাকতীৰ উপন্যাসিকাসমূহৰ কলেবৰ সৰু যদিও খণ্ড হিচাপে পৰিসৰ ডাঙৰ। তেওঁৰ উপন্যাসিকা সমূহত বহু চৰিত্ৰ সমাবেশ ঘটিলেও কোনোটো চৰিত্ৰৰে ভূমিকা কম নহয়।

৩.০১ ভৱিষ্যত অধ্যয়নৰ সম্ভাৱনা ঃ

দীপক কুমাৰ বৰকাকতীৰ উপন্যাসিকা সম্পৰ্কত এই আলোচনা পত্ৰখনত সামগ্ৰিক দৃষ্টিভংগীৰে বিচাৰ কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।এই আলোচনা পত্ৰখনত প্ৰতিটো দিশৰ সঠিক বিচাৰ-বিশ্লেষণৰ ক্ষেত্ৰত কিছু সীমাবদ্ধতা ৰৈ গৈছে। সেয়েহে বৰকাকতীৰ উপন্যাসিকাসমূহৰ সঠিক বিচাৰ, প্ৰাসংগিকতা আৰু মূল্যায়নৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰতিটো দিশৰে সূক্ষ্ম-বিচাৰ বিশ্লেষণৰ প্ৰয়োজন আছে। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

দাস, অমল চন্দ্ৰ। অসমীয়া উপন্যাস পৰিক্ৰমা। বনলতা, মে' ২০১২

বৰকাকতী, দীপক কুমাৰ। ভেৰোণীয়া মাতৃ। অনুভূতি, মে ২০১৪

--- ---। পৰিভ্ৰমণ। সাদিন, বসন্ত ফেব্ৰুৱাৰী, ২০১৮

--- ---। শেষ সময়। প্ৰকাশ, নৱেম্বৰ ২০২২

--- ---। হিল-ষ্টেচন। গৰীয়সী, ফেব্ৰুৱাৰী, ২০২২

--- ---। জংচন। প্ৰকাশ, এপ্ৰিল ২০২৩

--- ---। বিৰিণা। প্ৰকাশ, ২০২৪

বৰুৱা, প্ৰহ্লাদ কুমাৰ। উপন্যাস। চতুৰ্থ সংস্কৰণ, বনলতা, গুৱাহাটী ২০০৩

ভৰালী, শৈলেন। উপন্যাস বিচাৰ আৰু বিশ্লেষণ। পঞ্চম প্ৰকাশ, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, ২০১৫

শৰ্মা, গোবিন্দ প্ৰসাদ। উপন্যাস আৰু অসমীয়া উপন্যাস। প্ৰথম সংস্কৰণ, বনলতা, গুৱাহাটী ২০১৫

সাক্ষাৎকাৰ ঃ

দীপক কুমাৰ বৰকাকতী ১৬/০৭/২০২৪ (টেলিফোনিক সাক্ষাৎকাৰ)

ইন্টাৰনেট ঃ

"Novella | Character Development, Plot Structure & Literary Genres | Britannica." Encyclopedia Britannica, 20 July 1998, www.britannica.com/art/novella.

https://blueroseone.com/publish/what-is-novella-structure-length-and-key-elements/

https://www.linkedin.com/pulse/overview-novella-english-literature-phd-eng-mphil-eng--qebdc

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

তোলনি বিয়া আৰু লিংগ অসমতা ঃ নাৰী দেহ, ঋতুস্ৰাৱ আৰু সামাজিক নিয়ন্ত্ৰণৰ এক সমালোচনামূলক বিশ্লেষণ

হিমাঞ্জলি কলিতা

গৱেষক, ৰাজনীতি বিজ্ঞান বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-০১
৭৩৯৯৩১৮৬৭১
kalitahimanjali55@gmail.com

ড° পাৰমিতা দে

সহযোগী অধ্যাপক
ৰাজনীতি বিজ্ঞান বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-০১
৯৪৩৫০৪৪৬৭২
paramita.day@cottonuniversity.ac.in

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

অসমীয়া সমাজত তোলনি বিয়া এগৰাকী নাৰীৰ প্ৰথম ঋতুস্ৰাৱৰ সময়ত পালন কৰা এক সাংস্কৃতিক উদ্‌যাপন। এই অনুষ্ঠানটো আনন্দ, পৰম্পৰা আৰু সামাজিক সংহতিৰ প্ৰতীক হিচাপে উপস্থাপন কৰা হ'লেও, ইয়াৰ গভীৰ গঠনসমূহত নাৰীৰ নিয়ন্ত্ৰণ আৰু লিংগ অসমতাৰ শক্তিশালী ধাৰণা নিহিত হৈ আছে। এই প্ৰবন্ধটোৰ জৰিয়তে কেনেকৈ তোলনি বিয়া আৰু ইয়াৰ লগত জড়িত ধাৰণাসমূহে লিংগ অসমতাৰ ভেঁটি গঢ়ি তোলে তাৰ আধাৰত তোলনি বিয়াক বিশ্লেষণ কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। এই আলোচনাৰ জৰিয়তে তোলনি বিয়া যে কেৱল এক আঞ্চলিক সাংস্কৃতিক উদ্‌যাপন নহয়, বৰঞ্চ নাৰী দেহ আৰু যৌনতা নিয়ন্ত্ৰণৰ এক সামাজিক শাসন ব্যৱস্থা, তাক বিশ্লেষণ কৰিবলৈ বিচৰা হৈছে। প্ৰবন্ধটোৱে সংস্কৃতিৰ সম্পূৰ্ণ বিৰোধ কৰাৰ পৰিৱৰ্তে লিংগ ন্যায় আৰু অধিকাৰভিত্তিক পুনৰুত্থাপনৰ প্ৰয়োজনীয়তা উত্থাপন কৰে।

বীজ শব্দ ঃ

তোলনি বিয়া, ঋতুস্ৰাৱ, লিংগ অসমতা, নাৰী দেহ ৰাজনীতি, অসমীয়া সমাজ, পিতৃতন্ত্ৰ।

আৰম্ভণি ঃ

অসমীয়া সমাজত তোলনি বিয়া এক গুৰুত্বপূৰ্ণ সামাজিক-সাংস্কৃতিক উদ্‌যাপন যি এগৰাকী নাৰীৰ প্ৰথম ঋতুস্ৰাৱৰ সময়ত পালন কৰা হয়। সাধাৰণতে ইয়াক আনন্দ, সামাজিক স্বীকৃতি আৰু পৰম্পৰাৰ প্ৰতীক হিচাপে বুজা হয়। কিন্তু এই উদ্‌যাপনৰ গভীৰ গঠনসমূহ বিশ্লেষণ কৰিলে দেখা যায় যে ইয়াৰ সৈতে নাৰীৰ নিয়ন্ত্ৰণ, ঋতুস্ৰাৱজনিত পৰম্পৰা, নীৰৱতা আৰু লিংগ অসমতাৰ শক্তিশালী ধাৰণাসমূহ ওতঃপ্ৰোতভাৱে জড়িত। সেয়ে, তোলনি বিয়া কেৱল এক ব্যক্তিগত বা পৰিয়ালকেন্দ্ৰিক অনুষ্ঠান নহয়; ই সমাজে নাৰী দেহ আৰু যৌনতা কেনেদৰে বুজে আৰু নিয়ন্ত্ৰণ কৰে তাৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ মাধ্যম।

ঐতিহাসিকভাৱে কৃষিভিত্তিক আৰু বংশানুক্ৰমিক সমাজসমূহত নাৰী দেহক প্ৰজনন ক্ষমতাৰ সৈতে সংযোগ কৰা হৈছিল। ঋতুচক্ৰক উৰ্বৰতাৰ প্ৰতীক হিচাপে মান্যতা দিয়া হ'লেও, একে সময়তে ইয়াক নিয়ন্ত্ৰণযোগ্য আৰু শাসনযোগ্য বিষয় হিচাপেও চিহ্নিত কৰা হৈছিল (Bordo)। এই ধাৰণাই নাৰী দেহক সামাজিক আৰু নৈতিক শৃঙ্খলাৰ ভিতৰত আবদ্ধ কৰি ৰাখিছিল। অসমীয়া সমাজতো ঋতুস্ৰাৱ কেৱল জৈৱিক প্ৰক্ৰিয়া হিচাপে নহয়, বৰঞ্চ সামাজিক শুদ্ধতা-অশুদ্ধতাৰ সৈতে জড়িত এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ঘটনা হিচাপে গঢ় লৈ উঠিছিল। ঋতুস্ৰাৱৰ দিন কেইটাত উচিত অনুচিতৰ দোহাৰে নাৰীৰ চিন্তা-ধাৰা, চলা-ফুৰা, সিদ্ধান্ত গ্ৰহণৰ ক্ষমতা এই সকলো ক্ষেত্ৰতে নিয়ন্ত্ৰণ কৰিবলৈ চেষ্টা কৰা হয়। হিন্দু ধৰ্মীয় শাস্ত্ৰ, লোকবিশ্বাস আৰু পিতৃতান্ত্ৰিক সামাজিক গঠনৰ সংমিশ্ৰণে তোলনি বিয়াৰ আদি ৰূপ নিৰ্মাণ কৰিছিল। ঋতুস্ৰাৱক একে সময়তে পবিত্ৰ আৰু অপবিত্ৰ বুলি ধাৰণা কৰা দ্বৈত

মনোভাৱে নাৰী দেহৰ ওপৰত কঠোৰ সামাজিক নিয়ম আৰোপ কৰিছিল (Narayan)। মধ্যযুগীয় অসমত সামাজিক নিয়ম আৰু ধৰ্মীয় নীতি অধিক প্ৰাতিষ্ঠানিক হোৱাৰ লগে লগে তোলনি বিয়া সামাজিক মৰ্যাদা আৰু "ভাল নাৰী" হোৱাৰ মাপকাঠি হিচাপে পৰিগণিত হয়। এই পৰ্যায়ত নাৰীৰ দেহগত পৰিৱৰ্তন সমাজৰ দৃষ্টিত দৃশ্যমান কৰি তোলা হয়, আৰু একে সময়তে নাৰীৰ স্বাধীনতা আৰু সামাজিক চলাচল নিয়ন্ত্ৰণ কৰিবলৈ প্ৰচেষ্টা চলোৱা হয়।

ঔপনিৱেশিক যুগত আধুনিক শিক্ষা, ভিক্টোৰিয়ান নৈতিকতা আৰু সমাজ সংস্কাৰ আন্দোলনে তোলনি বিয়াৰ ক্ষেত্ৰত নতুন ভাষ্য প্ৰদান কৰে। যদিও কিছুমান সংস্কাৰমূলক আলোচনা আৰম্ভ হৈছিল, তথাপি নাৰী যৌনতা আৰু প্ৰজনন ক্ষমতাৰ ওপৰত নিয়ন্ত্ৰণৰ ধাৰণা বিশেষভাৱে সলনি হোৱা নাছিল (Menon)। বৰঞ্চ পৰম্পৰা আৰু আধুনিকতাৰ সংমিশ্ৰণে এই অনুষ্ঠানক সামাজিকভাৱে অধিক বৈধ কৰি তোলে। ইয়াৰ ফলত তোলনি বিয়াই এক সাংস্কৃতিক উৎসৱৰ ৰূপ ল'লেও, ইয়াৰ ভূমিকা পিতৃতান্ত্ৰিক সমাজ গঠনৰ ক্ষেত্ৰত অক্ষুণ্ণ থাকিল। মিচেল ফুকোৰ ক্ষমতা-জ্ঞান আৰু দেহ শাসন তত্ত্বই এই ধাৰণাটো বুজিবলৈ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ তাত্ত্বিক গঠন প্ৰদান কৰে। ফুকোৰ মতে, দেহ কেৱল জৈৱিক সত্তা নহয়; ই সমাজে শাসন আৰু নিয়ন্ত্ৰণ কৰা এক ৰাজনৈতিক ক্ষেত্ৰ (Foucault)। এই দৃষ্টিকোণৰ পৰা তোলনি বিয়াক চালে দেখা যায় যে, ই নাৰী দেহক সামাজিক নিয়ম, নৈতিকতা আৰু ভৱিষ্যৎ ভূমিকা-বিশেষকৈ বিবাহ আৰু মাতৃত্বৰ সৈতে আগতীয়াকৈ সংযোগ কৰি তোলে। এনে প্ৰেক্ষাপটত, এই প্ৰবন্ধটোৰ উদ্দেশ্য হৈছে তোলনি বিয়াক এক ঐতিহাসিক আৰু সমালোচনামূলক দৃষ্টিৰে সমাজত লিংগ বৈষম্যতা অব্যাহত ৰখাৰ মাধ্যম হিচাপে বিশ্লেষণ কৰা। ইয়াৰ জৰিয়তে এই অনুষ্ঠানটোৱে অসমীয়া সমাজত লিংগ অসমতা কেনেদৰে স্বাভাৱিক কৰি তোলে, নাৰী দেহ কেনেদৰে নিয়ন্ত্ৰণ কৰে আৰু সমসাময়িক সময়ত এই পৰম্পৰাক কেনেদৰে ন্যায়সংগতভাৱে পুনৰুত্থাপন কৰিব পাৰি - এই সকলোবোৰ দিশ উন্মোচন কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যসমূহ ঃ

এই প্ৰবন্ধটোৰ মূল উদ্দেশ্য হৈছে -

(১) তোলনি বিয়াৰ সৈতে শুদ্ধতা-অশুদ্ধতা আৰু নীৰৱতাৰ ধাৰণাসমূহ কেনেকৈ সংযুক্ত হৈছে সেয়া অনুধাৱন কৰা।

(২) ইয়াৰ জৰিয়তে নাৰী দেহ কেনেকৈ সামাজিকভাৱে নিয়ন্ত্ৰিত আৰু শাসিত হয় সেয়া ব্যাখ্যা কৰা।

(৩) তোলনি বিয়াই লিংগ অসমতা, বিশেষকৈ নাৰীৰ সামাজিক অৱস্থান, স্বাধীনতা আৰু সিদ্ধান্ত গ্ৰহণ ক্ষমতাৰ ওপৰত কেনে প্ৰভাৱ পেলায় সেয়া বিশ্লেষণ কৰা।

এই উদ্দেশ্যসমূহৰ জৰিয়তে তোলনি বিয়া কেৱল এক সাংস্কৃতিক উৎসৱৰ হিচাপে নহয়, বৰঞ্চ এক লিংগ ৰাজনৈতিক আৰু সামাজিক শাসন প্ৰক্ৰিয়া হিচাপে বুজিবলৈ এই অধ্যয়নে চেষ্টা কৰিছে।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

এই অধ্যয়নটো গুণগত, বৰ্ণনামূলক আৰু বিশ্লেষণাত্মক প্ৰকৃতিৰ। ইয়াত প্ৰাথমিক ক্ষেত্ৰ গৱেষণাৰ পৰিৱৰ্তে গৌণ তথ্যৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰা হৈছে। ব্যৱহৃত উৎসসমূহৰ ভিতৰত সমাজতত্ত্ব, নাৰী অধ্যয়ন, সংস্কৃতি অধ্যয়ন, আৰু অসমীয়া সমাজ সম্পৰ্কীয় সাহিত্য অন্তৰ্ভুক্ত কৰা হৈছে। ইয়াৰ উপৰিও ঋতুস্ৰাৱ, দেহ ৰাজনীতি আৰু লিংগ অসমতা সম্পৰ্কীয় আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় গৱেষণাৰ ধাৰণাসমূহো বিশ্লেষণৰ বাবে গ্ৰহণ কৰা হৈছে। এই অধ্যয়নত সমালোচনামূলক সমাজতাত্ত্বিক দৃষ্টিভংগী ব্যৱহাৰ কৰি তোলনি বিয়া এক সামাজিক শাসন ব্যৱস্থা হিচাপে বুজিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

তোলনি বিয়া আৰু লিংগ অসমতা ঃ অসমীয়া সমাজত নাৰী দেহ আৰু ঋতুস্ৰাৱৰ ৰাজনীতি ঃ

অসমীয়া সমাজত তোলনি বিয়া এক সাংস্কৃতিক উদযাপন, যি নাৰীৰ যৌৱনপ্ৰাপ্তিক সামাজিকভাৱে স্বীকৃতি দিয়াৰ মাধ্যম হিচাপে বিবেচিত হৈ আহিছে। এই অনুষ্ঠান সাধাৰণতে পৰিয়াল, আত্মীয় আৰু সমাজৰ সক্ৰিয় অংশগ্ৰহণেৰে অনুষ্ঠিত হয়। আপাত দৃষ্টিত তোলনি বিয়া এক আনন্দমুখৰ সামাজিক উৎসৱ যেন দেখা যায়, কিন্তু গভীৰভাৱে পৰ্যালোচনা কৰিলে ই যে কেৱল উদযাপন নহয়, বৰঞ্চ নাৰীৰ দেহ, যৌনতা আৰু সামাজিক ভূমিকা পুনৰ সংজ্ঞায়িত কৰাৰ এক শক্তিশালী সামাজিক মাধ্যম বুলি স্পষ্ট হয়। এই অনুষ্ঠানৰ জৰিয়তে সমাজে নাৰীৰ শৰীৰক এক নতুন অৰ্থ প্ৰদান কৰে, যি অৰ্থ প্ৰধানকৈ পিতৃতান্ত্ৰিক নিয়ম আৰু লিংগভিত্তিক ক্ষমতাৰ সম্পৰ্কৰ সৈতে জড়িত (Foucault; Bordo)।

তোলনি বিয়াৰ কেন্দ্ৰীয় বিষয় হৈছে ঋতুস্ৰাৱ, যাক নাৰীৰ দেহগত পৰিৱৰ্তনৰ মুখ্য চিহ্ন হিচাপে গণ্য কৰা হয়। তথাপি, এই ঋতুস্ৰাৱৰ বিষয়টো মুক্ত আলোচনাৰ পৰা আঁতৰাই ৰখা হয়। ই এক দ্বৈত অৰ্থৰ সৃষ্টি কৰে ঃ এফালে ঋতুস্ৰাৱৰ উদযাপন, আনফালে ঋতুস্ৰাৱৰ বিষয়ে নীৰৱতা যাক শুদ্ধ-অশুদ্ধ, পৱিত্ৰ-অপৱিত্ৰৰ সাংস্কৃতিক ধাৰণাৰে আবৰি ৰখা হয় আৰু যি নাৰী দেহক সম্ভাব্য অপৱিত্ৰতাৰ উৎস হিচাপে চিহ্নিত কৰে (Douglas)। এই ধৰণৰ নীৰৱতা আৰু সাংকেতিক ভাষাই

নাৰীৰ মনত ঋতুস্ৰাৱক লৈ লাজ, ভয় আৰু আত্ম-নিয়ন্ত্ৰণৰ এক সংস্কৃতি গঢ়ি তোলে। ঋতুস্ৰাৱক স্বাভাৱিক জৈৱিক প্ৰক্ৰিয়া হিচাপে নহয়, বৰঞ্চ নিয়ন্ত্ৰণ কৰিবলগীয়া দেহগত ঘটনা হিচাপে উপস্থাপন কৰা হয়, যাৰ ফলত নাৰীয়ে নিজৰ দেহক নিজেই সমাজৰ দৃষ্টিকোণৰ পৰা চাবলৈ শিকে (Bobel)। এই অনুষ্ঠানৰ সৈতে নাৰীৰ ওপৰত নতুন নিয়ম আৰোপ কৰা হয়। তোলনি বিয়াৰ পাছত নাৰীৰ সাজ-পাৰ, চলা-ফুৰা, কথা-বতৰা আৰু সামাজিক যোগাযোগৰ ওপৰত অধিক কঠোৰ নিয়ন্ত্ৰণ আৰম্ভ হয়। উচিত-অনুচিত আৰু শালীনতাৰ উপদেশ, সামাজিক নিয়ন্ত্ৰণ আদিৰ জৰিয়তে তোলনি বিয়া যে কেৱল এক উদ্‌যাপনতেই সীমাবদ্ধ নহয়, ই স্বাধীনতা সংকুচিত কৰাৰ এক আনুষ্ঠানিক আহিলাও সেয়া প্ৰতিফলিত হয়। মিচেল ফুকোৰ দৃষ্টিভংগীৰে ক'বলৈ গ'লে, ই এক ধৰণৰ disciplinary mechanism, যাৰ জৰিয়তে নাৰী দেহক "docile body" হিচাপে গঢ়ি তোলা হয় যাৰ অৰ্থ হৈছে এনে এক দেহ যিয়ে সামাজিক নিয়ম নিজেই আত্মস্থ কৰে আৰু নিজেই নিজক নিয়ন্ত্ৰণ কৰে (Foucault)।

লিংগ অসমতাৰ ক্ষেত্ৰত তোলনি বিয়াৰ ভূমিকা বিশেষভাৱে গুৰুত্বপূৰ্ণ। এই অনুষ্ঠান কেৱল নাৰীৰ ক্ষেত্ৰতেই পালন কৰা হয়; পুৰুষৰ যৌৱনত প্ৰৱেশৰ বাবে কোনো সমান্তৰাল সামাজিক অনুষ্ঠান নাই। এনে বৈষম্যমূলক আচৰণে লিংগভিত্তিক অসমান মানদণ্ডক স্বাভাৱিক কৰি তোলে। নাৰীৰ দেহক সামাজিক সম্পত্তিৰ দৰে বিবেচনা কৰা হয়, যাক নিয়ন্ত্ৰণ, পৰ্যবেক্ষণ আৰু সুৰক্ষিত কৰিব লাগিব বুলি ধৰা হয়; আনহাতে পুৰুষৰ দেহক এই ধৰণৰ সামাজিক নিয়ন্ত্ৰণৰ আওতাৰ বাহিৰত ৰখা হয় (Connell)। এই প্ৰথাই সমাজত এইটো বাৰ্তা প্ৰেৰণ কৰে যে নাৰী দেহ বিশেষভাৱে নিয়ন্ত্ৰণযোগ্য, যাৰ ফলত নাৰীসকলৰ সামাজিক অৱস্থান তলত বা তুলনামূলকভাৱে নীচ হৈ পৰে। তোলনি বিয়াৰ সৈতে প্ৰায়ে নাৰীৰ ভৱিষ্যৎ বিবাহ আৰু মাতৃত্বৰ ধাৰণা অংগাঙ্গীভাৱে জড়িত হৈ থাকে। অনুষ্ঠানটোৱে নাৰীক সামাজিকভাৱে "বিবাহযোগ্য" হিচাপে চিহ্নিত কৰে, যিয়ে এক প্ৰকাৰৰ সামাজিক ঘোষণা হিচাপে কাম কৰে। এই ধাৰণাই নাৰীৰ শিক্ষাৰ অধিকাৰ, পেচাগত আকাংক্ষা আৰু আত্মনিৰ্ণয়ৰ গুৰুত্ব কমায় আৰু বিবাহক গুৰুত্ব প্ৰদান কৰে। বহু ক্ষেত্ৰত তোলনি বিয়াৰ পাছতেই নাৰীৰ বিবাহৰ আলোচনা আৰম্ভ হয়, যাৰ ফলত কম বয়সতে বিবাহ আৰু নাৰী জীৱনৰ এক সীমিত পথ স্বাভাৱিক কৰি তোলা হয় (UNICEF)। এই প্ৰক্ৰিয়াই নাৰী জীৱনক মূলতঃ পত্নী আৰু মাতৃৰ ভূমিকাত সীমাবদ্ধ কৰে, যি লিংগ সমতাৰ মৌলিক নীতিসমূহৰ বিৰোধী।

সমসাময়িক অসমীয়া সমাজত তোলনি বিয়াক লৈ মতভেদ স্পষ্টভাৱে দেখা যায়। কিছুমানে ইয়াক সাংস্কৃতিক পৰম্পৰাৰ অবিচ্ছেদ্য অংশ হিচাপে সংৰক্ষণ কৰিব বিচাৰে আৰু ইয়াক "অসমীয়া পৰিচয়"ৰ সৈতে জড়িত কৰে। আনহাতে, বহু নাৰী অধিকাৰ কৰ্মী, সমাজবিজ্ঞানী আৰু শিক্ষাবিদে ইয়াক লিংগ বৈষম্যমূলক আৰু পিতৃতান্ত্ৰিক ধাৰণা বুলি সমালোচনা কৰে। মূল প্ৰশ্নটো হৈছে - পৰম্পৰা সংৰক্ষণৰ নামত নাৰীসকলৰ অধিকাৰ সীমাবদ্ধ কৰা ন্যায়সংগত নে? নাৰীবাদৰ দৃষ্টিত, সংস্কৃতি কেতিয়াও নিৰপেক্ষ নহয়; ই সদায় ক্ষমতা- সম্পৰ্কৰ মাজেৰে গঢ় লৈ উঠে (Butler)। সেইবাবে, যিকোনো পৰম্পৰাক সমালোচনাৰ ঊৰ্ধ্বত ৰাখিলে ই বৈষম্যক পুনৰুৎপাদন কৰাৰ সম্ভাৱনা বৃদ্ধি কৰে। বৰ্তমান সময়ত কিছুমান পৰিয়াল আৰু নাগৰিক সমাজ সংগঠনে তোলনি বিয়াক নতুন দৃষ্টিত পুনৰুত্থাপন কৰাৰ চেষ্টা কৰিছে। একাংশই এই অনুষ্ঠানটো শিক্ষামূলক আলোচনাৰ সৈতে সংযোগ কৰিছে, য'ত ঋতুস্ৰাৱক স্বাভাৱিক জৈৱিক প্ৰক্ৰিয়া হিচাপে ব্যাখ্যা কৰা হয় আৰু নাৰীৰ অধিকাৰ, স্বাস্থ্য আৰু শিক্ষাৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিয়া হয়। আনহাতে, কিছুমানে সম্পূৰ্ণৰূপে এই অনুষ্ঠান ত্যাগ কৰিছে, কিয়নো তেওঁলোকে ইয়াক নাৰী দেহ নিয়ন্ত্ৰণৰ এক প্ৰতীক হিচাপে বিশ্বাস কৰে। এই পৰিৱৰ্তনসমূহে দেখুৱাই যে সংস্কৃতি স্থিৰ নহয়; ই সময়, সচেতনতা আৰু সামাজিক আন্দোলনৰ সৈতে পৰিৱৰ্তিত হ'ব পাৰে (Ortner)। এই পুনৰুত্থাপনে লিংগভিত্তিক ন্যায় আৰু সমতাৰ দিশে আগবাঢ়ি যোৱাৰ সম্ভাৱনাৰ সৃষ্টি কৰে।

এই আলোচনাৰ পৰা স্পষ্ট হয় যে তোলনি বিয়া অসমীয়া সমাজত কেৱল এক ব্যক্তিগত বা পাৰিবাৰিক অনুষ্ঠান নহয়, বৰঞ্চ নাৰী দেহ, যৌনতা আৰু সামাজিক ভূমিকা নিৰ্ধাৰণৰ এক শক্তিশালী সামাজিক মাধ্যম। ইয়াৰ জৰিয়তে পিতৃতান্ত্ৰিক ক্ষমতা প্ৰজন্মৰ পিছত প্ৰজন্মলৈ স্থানান্তৰিত হয়, আৰু লিংগ অসমতাই সামাজিকভাৱে স্বাভাৱিক ৰূপ পায়। একে সময়তে, সমালোচনামূলক আলোচনা, শিক্ষা আৰু সামাজিক সচেতনতা বৃদ্ধিৰ জৰিয়তে এই অনুষ্ঠানটিক অধিক ন্যায়সংগত আৰু অন্তৰ্ভুক্তিমূলক ৰূপত পুনৰ্গঠন কৰা সম্ভৱ। ঋতুস্ৰাৱক নীৰৱতা আৰু অপবিত্ৰৰ ধাৰণাৰ পৰা মুক্ত কৰি, ইয়াক স্বাভাৱিক জৈৱিক প্ৰক্ৰিয়া হিচাপে স্বীকৃতি দিয়া প্ৰচেষ্টাটো নাৰী দেহৰ ওপৰত থকা সামাজিক শাসন হ্ৰাস কৰাৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ পদক্ষেপ হ'ব পাৰে। তোলনি বিয়াৰ মাজেৰে লিংগ অসমতা কেৱল সামাজিক বাস্তৱতাৰ প্ৰতিফলন নহয়; ই এক সক্ৰিয় সামাজিক উৎপাদন প্ৰক্ৰিয়া। মিচেল ফুকোৰ ক্ষমতা—জ্ঞান (power/ knowledge) তত্ত্বৰ দৃষ্টিভংগীৰে বিশ্লেষণ কৰিলে দেখা যায় যে, তোলনি বিয়া এক "discursive practice", যাৰ জৰিয়তে

নাৰী দেহ সম্পৰ্কে নিৰ্দিষ্ট ধাৰণাৰ সৃষ্টি কৰা হয় আৰু সেই ধাৰণাৰ আধাৰত নিয়ম আৰু নিয়ন্ত্ৰণ আৰোপ কৰা হয় (Foucault)। নাৰীৰ ঋতুস্ৰাৱক সামাজিকভাৱে চিহ্নিত কৰি সমাজত এই বিশ্বাস গঢ়ি তোলা হয় যে নাৰী দেহ বিশেষভাৱে পৰ্যবেক্ষণযোগ্য, নিয়ন্ত্ৰণযোগ্য আৰু শাসনযোগ্য যিটো পুৰুষ দেহৰ ক্ষেত্ৰত অনুপস্থিত, যাৰ ফলত লিংগ অসমতা এক স্বাভাৱিক আৰু অদৃশ্য সত্য হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হয়। এই অসমতা বিশেষকৈ দৃশ্যমানতাৰ ৰাজনীতিত প্ৰকাশ পায়। তোলনি বিয়াই নাৰীৰ দেহক ৰাজহুৱা দৃষ্টিৰ আওতালৈ আনে, য'ত তেওঁৰ যৌন পৰিপক্কতা সামাজিক সম্পত্তিৰ দৰে গণ্য কৰা হয়। মিচেল ফুকোৰ "disciplinary power"ৰ ধাৰণাৰে ক'বলৈ গ'লে, এই ৰাজহুৱা দৃশ্যমানতাই নাৰীক আত্ম-নিয়ন্ত্ৰণৰ দিশে ধাৱিত কৰে, য'ত তেওঁ সমাজৰ দৃষ্টিক নিজে নিজৰ ওপৰত অন্তৰ্নিহিত কৰি লয় (Foucault)। ফলস্বৰূপে, বাহ্যিক বলপ্ৰয়োগ নথকাকৈও নাৰীসকলে নিজৰ সাজ-পাৰ, চলা-ফুৰা আৰু আচৰণ নিজেই সীমাবদ্ধ কৰে। এই আত্ম-নিয়ন্ত্ৰণেই লিংগ অসমতাৰ আটাইতকৈ শক্তিশালী ৰূপ, কিয়নো ই নিয়ন্ত্ৰণক স্বাভাৱিক নৈতিক আচৰণ হিচাপে উপস্থাপন কৰে। ঋতুস্ৰাৱক লৈ গঢ়ি উঠা নীৰৱতা এই ক্ষমতা প্ৰণালীৰ এক কেন্দ্ৰীয় উপাদান। এই নীৰৱতাই নাৰী দেহৰ অভিজ্ঞতাক মুকলি আলোচনাৰ পৰা বহিষ্কৃত কৰে, যাক ফুকোই "subjugated knowledge" বুলি অভিহিত কৰিছে (Foucault)। ঋতুস্ৰাৱ সম্পৰ্কে বৈজ্ঞানিক বা স্বাভাৱিক ব্যাখ্যা নোহোৱাত, সমাজে ইয়াক শুদ্ধ-অশুদ্ধ আৰু পৱিত্ৰ-অপৱিত্ৰৰ নৈতিক ভাষাৰে ব্যাখ্যা কৰে। এই প্ৰক্ৰিয়াই নাৰী দেহক ঋতুস্ৰাৱৰ দিনকেইটাত অপৱিত্ৰ হিচাপে চিহ্নিত কৰে আৰু লিংগ অসমতাক নৈতিক যুক্তিৰে বৈধতা প্ৰদান কৰে (Douglas; Bobel)।

লিংগ অসমতা তোলনি বিয়াৰ জৰিয়তে সামাজিকীকৰণৰ প্ৰক্ৰিয়াত গভীৰভাৱে অন্তৰ্নিহিত হয়। এই অনুষ্ঠানৰ পাছত নাৰীৰ ওপৰত যি আচৰণগত নিয়ম আৰোপ কৰা হয়, যেনে শালীনতা, সংযম এইবোৰক সামাজিকভাৱে "নাৰীসুলভ" আচৰণ হিচাপে স্বাভাৱিকীকৰণ কৰা হয়। Judith Butler-ৰ gender performativity তত্ত্বৰ সৈতে সংযোগ ৰাখি ক'ব পাৰি যে এই আচৰণসমূহ পুনৰাবৃত্তিৰ জৰিয়তে "নাৰী সুলভ আচৰণ" এক সামাজিক কৰ্তব্যত পৰিণত হয় (Butler)। ইয়াৰ বিপৰীতে, পুৰুষৰ ক্ষেত্ৰত যৌৱন প্ৰৱেশত কোনো সামাজিক শৃঙ্খলাৰ সূচনা নহয়, বৰঞ্চ অধিক স্বাধীনতাৰ সূচক হিচাপে ধৰা হয়। এই অসমান আৰু বৈষম্য সামাজিকীকৰণেই লিংগ অসমতাক দৈনন্দিন জীৱনৰ অংশ কৰি তোলে। এই অসমতা প্ৰজন্মৰ পৰা প্ৰজন্মলৈ পুনৰুৎপাদিত হয়। মাতৃ আৰু অন্য নাৰী আত্মীয়সকলেই প্ৰায়ে তোলনি বিয়াৰ নিয়ম-কানুন নাৰীৰ ওপৰত প্ৰয়োগ কৰে, যাৰ ফলত পিতৃতান্ত্ৰিক ক্ষমতা কেৱল পুৰুষৰ জৰিয়তে নহয়, বৰঞ্চ নাৰীসকলৰ সক্ৰিয় অংশগ্ৰহণৰ ফলস্বৰূপেও চলি থাকে। এই প্ৰক্ৰিয়াই লিংগ অসমতাক ব্যক্তিগত বিষয় হিচাপে নহয়, বৰঞ্চ সামাজিক দায়িত্ব আৰু পৰম্পৰাৰ ৰূপত উপস্থাপন কৰে (Bourdieu)।

তোলনি বিয়াৰ সৈতে বিবাহযোগ্যতাৰ ধাৰণা সংযোগ হোৱাটোৱে লিংগ অসমতাক অধিক স্থায়ী ৰূপ দিয়ে। অনুষ্ঠানটোৱে নাৰীৰ জীৱনক বিবাহ আৰু মাতৃত্বকেন্দ্ৰিক কৰি তোলে, য'ত শিক্ষা, পেচা আৰু আত্মনিৰ্ণয় গৌণ হৈ পৰে। এই দৃষ্টিভংগীয়ে নাৰী জীৱনক সীমিত সম্ভাৱনাৰ কাঠামোত বন্দী কৰে, আনহাতে পুৰুষ জীৱনক অধিক বহুমুখী আৰু উন্মুক্ত বুলি স্বাভাৱিকীকৰণ কৰে (Connell)। এই বৈষম্যমূলক জীৱন পথেই সামাজিক আৰু অৰ্থনৈতিক ক্ষেত্ৰত লিংগ বৈষম্যৰ ভিত্তি গঢ়ি তোলে। সেইবাবে, তোলনি বিয়া লিংগ অসমতাৰ কেৱল সাংস্কৃতিক প্ৰতীক নহয়, বৰঞ্চ এক সাংস্কৃতিক প্ৰযুক্তি, যাৰ জৰিয়তে নাৰী দেহ শাসিত, নিয়ন্ত্ৰিত আৰু সামাজিকভাৱে সংজ্ঞায়িত হয়। ইয়াক সমালোচনামূলকভাৱে বিশ্লেষণ নকৰালৈকে লিংগ অসমতাক কেৱল আইনগত বা নীতি-ভিত্তিক ব্যৱস্থাৰে সম্পূৰ্ণৰূপে মোকাবিলা কৰা সম্ভৱ নহয়। সাৰাংশত ক'বলৈ গ'লে, তোলনি বিয়া ঐতিহাসিকভাৱে গঢ় লৈ উঠা এক সাংস্কৃতিক উদ্যাপন হ'লেও, ইয়াৰ মাজত নিহিত হৈ থকা লিংগ অসমতা আৰু নাৰী দেহ নিয়ন্ত্ৰণৰ দিশসমূহ উপেক্ষা কৰিব নোৱাৰি। সংস্কৃতিক সম্পূৰ্ণ নাকচ নকৰি, কিন্তু সমালোচনামূলক পুনৰুত্থাপনৰ জৰিয়তে ইয়াক লিংগ সমতা, নাৰী অধিকাৰ আৰু সামাজিক ন্যায়ৰ সৈতে সংগতিপূৰ্ণ কৰি তুলিলে লিংগ সমতাৰ পথ প্ৰশস্ত হ'ব। এনে দৃষ্টিভংগীয়ে কেৱল নাৰীসকলৰ সামাজিক অৱস্থান উন্নত নকৰে, বৰঞ্চ অধিক সমতামূলক আৰু সচেতন অসমীয়া সমাজ গঢ়ি তোলাত সহায় কৰে।

উপসংহাৰ ঃ

এই অধ্যয়নৰ জৰিয়তে ইয়াকে দেখুৱাবলৈ বিচৰা হৈছে যে তোলনি বিয়া অসমীয়া সমাজৰ এক ঐতিহাসিকভাৱে গঢ় লৈ উঠা সাংস্কৃতিক অনুষ্ঠান হ'লেও, ইয়াৰ মাজত নিহিত লিংগ অসমতা আৰু নাৰী দেহ নিয়ন্ত্ৰণৰ দিশসমূহৰ গভীৰ বিশ্লেষণৰ দৰকাৰ। নাৰীৰ যৌৱনত প্ৰৱেশক সামাজিকভাৱে দৃশ্যমান কৰা এই অনুষ্ঠানৰ জৰিয়তে নাৰী দেহক কেৱল জৈৱিক পৰিৱৰ্তনৰ বাহক হিচাপে নহয়, বৰঞ্চ সামাজিক শাসন আৰু পিতৃতান্ত্ৰিক নিয়ন্ত্ৰণৰ ক্ষেত্ৰ হিচাপে গঢ়ি তোলা হয়। ঋতুস্ৰাৱক কেন্দ্ৰ কৰি গঢ়ি উঠা নীৰৱতা, লাজ আৰু অসমতাৰ সংস্কৃতিয়ে

নাৰীসকলৰ দেহগত অভিজ্ঞতাক ব্যক্তিগত বিষয় হিচাপে গণ্য নকৰি সামাজিকভাৱে নিয়ন্ত্ৰণযোগ্য কৰি তোলে।

এই বিশ্লেষণে স্পষ্ট কৰে যে তোলনি বিয়া কেৱল এক সাংস্কৃতিক উদযাপন নহয়, বৰঞ্চ লিংগভিত্তিক ক্ষমতাৰ সম্পৰ্কৰ পুনৰুৎপাদনৰ এক শক্তিশালী সামাজিক আহিলা। এনে বৈষম্যমূলক আচৰণে লিংগ অসমতাক স্বাভাৱিক ৰূপত উপস্থাপন কৰে আৰু নাৰীসকলক সামাজিকভাৱে পুৰুষৰ অধীনস্থ কৰি ৰাখে। তদুপৰি, তোলনি বিয়াৰ সৈতে বিবাহ আৰু মাতৃত্বৰ ধাৰণাক সংযোগ কৰাৰ প্ৰৱণতাই নাৰীৰ শিক্ষা, পেচাগত আকাংক্ষা আৰু আত্মনিৰ্ণয়ৰ গুৰুত্ব নিম্নগামী কৰে। এই অধ্যয়নে এইটো বিষয়ৰ ওপৰতো গুৰুত্ব প্ৰদান কৰিছে যে সংস্কৃতি স্থিৰ বা অপৰিৱৰ্তনীয় নহয়। সমসাময়িক সময়ত একাংশই তোলনি বিয়াক নতুন দৃষ্টিত পুনৰুত্থাপন কৰাৰ প্ৰচেষ্টা চলাইছে, য'ত ঋতুস্ৰাৱক স্বাভাৱিক জৈৱিক প্ৰক্ৰিয়া হিচাপে স্বীকৃতি দিয়া হয় আৰু নাৰী অধিকাৰ, স্বাস্থ্য আৰু লিংগ সমতাৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰা হয়। এই ধৰণৰ উদ্যোগসমূহে প্ৰমাণ কৰে যে সমালোচনামূলক সচেতনতা আৰু সামাজিক আলোচনাৰ জৰিয়তে পৰম্পৰাক অধিক ন্যায়সংগত আৰু অন্তৰ্ভুক্তিমূলক ৰূপত পুনৰ্গঠন কৰা সম্ভৱ। সামৰণিত ক'বলৈ গ'লে, তোলনি বিয়াৰ সমালোচনামূলক বিশ্লেষণে অসমীয়া সমাজত নাৰী দেহ, যৌনতা আৰু সামাজিক ভূমিকা কেনেকৈ নিয়ন্ত্ৰিত আৰু নিয়োজিত কৰা হয়, সেই বিষয়ে গুৰুত্বপূৰ্ণ অন্তৰ্দৃষ্টি প্ৰদান কৰে। সংস্কৃতিক সম্পূৰ্ণ নাকচ নকৰি, কিন্তু লিংগ ন্যায় আৰু সমতাৰ দৃষ্টিভংগীৰে ইয়াক পুনৰুত্থাপন কৰাটো এক অধিক ন্যায়সংগত আৰু সচেতন সমাজ গঢ়ি তোলাৰ ক্ষেত্ৰত এক গুৰুত্বপূৰ্ণ পদক্ষেপ। ❑

প্ৰসংগ সূত্ৰ ঃ

Bobel, Chris. *The Managed Body: Developing Girls and Menstrual Health in the Global South*. Palgrave Macmillan, 2020.

Bordo, Susan. *Unbearable Weight: Feminism, Western Culture, and the Body*. University of California Press, 1993.

Bourdieu, Pierre. *Masculine Domination*. Translated by Richard Nice, Stanford University Press, 2001.

Butler, Judith. *Gender Trouble: Feminism and the Subversion of Identity*. Routledge, 1990.

Connell, R. W. *Gender: In World Perspective*. Polity Press, 2009.

Douglas, Mary. *Purity and Danger: An Analysis of Concepts of Pollution and Taboo*. Routledge, 1966.

Foucault, Michel. *Discipline and Punish: The Birth of the Prison*. Translated by Alan Sheridan, Vintage Books, 1977.

Foucault, Michel. *The History of Sexuality, Volume 1: An Introduction*. Translated by Robert Hurley, Pantheon Books, 1978.

Foucault, Michel. *Power/Knowledge: Selected Interviews and Other Writings, 1972–1977*. Edited by Colin Gordon, Pantheon Books, 1980.

Menon, Nivedita. *Seeing Like a Feminist*. Zubaan, 2012.

Narayan, Uma. *Dislocating Cultures: Identities, Traditions, and Third World Feminism*. Routledge, 1997.

Ortner, Sherry B. *Anthropology and Social Theory: Culture, Power, and the Acting Subject*. Duke University Press, 2006.

UNICEF. *Child Marriage: Latest Trends and Future Prospects*. UNICEF, 2021.

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

সৃষ্টিশীল সাহিত্য অনুবাদৰ সমস্যা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন

Ideas can be translated but not the words and their associations.
– Sydney

গীতা কেওঁট

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
মাজুলী সাংস্কৃতিক বিশ্ববিদ্যালয়
মাজুলী, অসম-৭৮৫১০৪
৬০০৩৮০৩১৯২
gitakeot71@gmail.com

ড° হিমাদ্ৰী শইকীয়া

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
মাজুলী সাংস্কৃতিক বিশ্ববিদ্যালয়,
মাজুলী, অসম-৭৮৫১০৪
৯৭৬৫২২১১৭২
himadrimuc@gmail.com

সংক্ষিপ্ত সাৰ

পাঠ এখন এটা ভাষাৰ পৰা আন এটা ভাষালৈ লৈ যোৱা প্ৰক্ৰিয়াই হৈছে অনুবাদ। অৰ্থাৎ অনুবাদ হৈছে মূল পাঠ এটাক মূল ভাষাৰ পৰা লক্ষ্য ভাষালৈ পৰিৱৰ্তন কৰা প্ৰক্ৰিয়া। অনুবাদ প্ৰক্ৰিয়াত পাঠ এটাত প্ৰয়োগ হোৱা ভাষা সলনি কৰি অন্য ভাষাত উপস্থাপন কৰা হয়, কিন্তু ভাৱক নহয়। অৱশ্যে অনুবাদকে নিজৰ দক্ষতা, যোগ্যতা, ভাষাজ্ঞান আৰু অভিজ্ঞতাৰ বলত অনূদিত পাঠ সুখপাঠ্য কৰি তুলিব পাৰে। অনুবাদৰ ইতিহাস প্ৰাচীন। প্ৰাচীন কালৰে পৰা বিশ্বৰ ভিন ভিন ভাষাত ৰচিত কালজয়ী সৃষ্টিশীল সাহিত্যসমূহ অন্য ভাষালৈ অনূদিত কৰা হৈছে। কিন্তু সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ অনুবাদ এক জটিল প্ৰক্ৰিয়া। ভাষিক, সাংস্কৃতিক, সামাজিক ভিন্নতাৰ বাবে অনুবাদকে সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ অনুবাদ কৰোঁতে বহু সময়ত নানান সমস্যাৰ সন্মুখীন হ'ব লগা হয়। আমাৰ এই আলোচনাত সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ বিভিন্ন বিধা যেনে - কবিতা, চুটিগল্প, উপন্যাস, নাটক আদি অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত পৰিলক্ষিত হোৱা সমস্যাসমূহৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ

সৃষ্টিশীল সাহিত্য, অনুবাদ, সমস্যা, অসমতুল্যতা।

পৰিচয় ঃ

সুকুমাৰ কলাসমূহৰ ভিতৰত সৃষ্টিশীল সাহিত্য হৈছে শ্ৰেষ্ঠতম। সাহিত্যই কেৱল একোটা সমাজ, একোটা দেশৰ প্ৰতিবিম্ব প্ৰতিফলিত নকৰে বৰঞ্চ সমাজ বা দেশ একোটা আগবঢ়াত পথ প্ৰদৰ্শন কৰে। সেয়েহে কোৱা হয়, সমাজ এখনক সেই সমাজত সৃষ্ট সাহিত্যৰ জৰিয়তে ভালদৰে অধ্যয়ন কৰিব পাৰি। একোটা সমাজ নিৰ্মাণৰ ক্ষেত্ৰত সাহিত্যৰ গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা থাকে। সাহিত্য আৰু সমাজ সদায় ওতঃপ্ৰোতভাৱে সম্পৰ্কিত।

সাহিত্যত সৃজনীমূলক গুণ বিৰাজমান। সেয়ে ইয়াক মূলতঃ সৃষ্টিশীল সাহিত্য বা সৃজনীমূলক সাহিত্য আখ্যা দিয়া হয়। সৃষ্টিশীল সাহিত্য ৰচনাৰ বাবে সাহিত্যিকৰ গভীৰ অধ্যয়ন, অনুকৰণ, অনুসৰণ, চৰ্চা, সাধনা আৰু সংবেদনশীলতাৰ প্ৰয়োজন। সৃষ্টিশীল সাহিত্যত বিষয়ৰ বিষয়বস্তু, ভাৱ, ভাষা, শৈলী আদি প্ৰতিটো দিশৰে বিশেষ মহত্ব থাকে। সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ কাম কেৱল সুচনা প্ৰদান কৰা নহয় বৰঞ্চ আশে পাশে ঘটা বিভিন্ন ঘটনা-পৰিঘটনাৰ উপস্থাপন কৰাৰ লগতে পাঠকক সাহিত্যিক সোৱাদ প্ৰদান কৰা। এক সূক্ষ্ম অনুভৱক ভাষা শৈলীৰ জৰিয়তে প্ৰকাশ কৰা সাহিত্যিকৰ দায়িত্ব। আনহাতে সেই পাঠ অন্য এদল পাঠকৰ বাবে অন্য এটা ভাষাত অনুবাদ কৰাটো হৈছে অনুবাদকৰ কাম।

সৃষ্টিশীল সাহিত্যত বিবিধ বিধা পোৱা যায়। এই বিধাসমূহ যেনে- কবিতা, চুটিগল্প, উপন্যাস, নাটক আদি। প্ৰত্যেকৰে স্বৰূপ বা প্ৰকৃতি সুকীয়া সকীয়া। সাহিত্যৰ বিভিন্ন বিধাসমূহৰ স্বৰূপ বা প্ৰকৃতিৰ মাজত যিদৰে পাৰ্থক্য আছে ঠিক তেনেদৰে এই বিধাসমূহৰ

অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত পৰিলক্ষিত হোৱা সমস্যাসমূহ সুকীয়া সুকীয়া। অৱশ্যে কিছুমান একে ধৰণৰ সমস্যাও পৰিলক্ষিত হয়। উদাহৰণস্বৰূপে, কবিতা, উপন্যাস, চুটিগল্প আৰু নাটকৰ স্বৰূপ একে নহয়। সেয়ে একে প্ৰক্ৰিয়াৰে গোটেইখিনিৰ অনুবাদ সম্ভৱ নহয়। সাহিত্যৰ প্ৰতিটো বিধাৰ অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত অনুবাদকে সাদৃশ্য-বৈসাদৃশ্য কিছুমান সমস্যা সন্মুখীন হ'ব লগা হয়। সাধাৰণতে সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ অনুবাদ কৰাটো এক প্ৰত্যাহ্বানস্বৰূপ।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

সৃষ্টিশীল সাহিত্য অনুবাদৰ সমস্যাঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন— শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য হ'ল —

- যিকোনো কবিতা এটা ভাষাৰ পৰা আন এটা ভাষালৈ অনুবাদ কৰোঁতে অনুবাদকে কেনেধৰণৰ সমস্যাৰ সন্মুখীন হয়, সেই সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা।
- উপন্যাস অনুবাদ কৰোঁতে কেনেধৰণৰ সমস্যাৰ সন্মুখীন হয়, সেই সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা।
- চুটিগল্প অনুবাদ কৰোঁতে কেনেধৰণৰ সমস্যাৰ সন্মুখীন হয়, সেই সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা।
- নাটক অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত উদ্ভৱ হোৱা সমস্যাসমূহৰ সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা।

অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

সৃষ্টিশীল সাহিত্য অনুবাদৰ সমস্যা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন - শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব হ'ল —

- সৃষ্টিশীল সাহিত্য অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত পৰিলক্ষিত হোৱা সমস্যাসমূহৰ সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা।
- মূল পাঠৰ ভাৱবস্তু, শৈলী, ছন্দ, অলংকাৰ আদি দিশসমূহ অনূদিত পাঠে ধৰি ৰখাত সফল হৈছে নে নাই সেই সম্পৰ্কে অধ্যয়ন গুৰুত্ব আছে।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

সৃষ্টিশীল সাহিত্য অনুবাদৰ সমস্যা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন- শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়নৰ বাবে বৰ্ণনামূলক পদ্ধতি আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। বৰ্ণনামূলক পদ্ধতিৰ জৰিয়তে মূল পাঠ আৰু লক্ষ্য পাঠসমূহ বৰ্ণনা কৰা হৈছে আনহাতে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায়ত সৃষ্টিশীল সাহিত্য অনুবাদৰ সমস্যাসমূহ বিশ্লেষণ কৰা হৈছে।

অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

সৃষ্টিশীল সাহিত্য অনুবাদৰ সমস্যা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন-শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখনৰ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ভিতৰত কবিতা, উপন্যাস, চুটিগল্প, নাটক আদি অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত হোৱা সমস্যাসমূহ সামৰি লোৱা হৈছে।

তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ

সৃষ্টিশীল সাহিত্য অনুবাদৰ সমস্যা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন- শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়নৰ বাবে মুখ্য উৎস আৰু গৌণ উৎসৰ সহায় লোৱা হৈছে। মুখ্য উৎস হিচাপে মদন শৰ্মাৰ 'অনুবাদ অধ্যয়ন তত্ত্ব আৰু প্ৰয়োগ' শীৰ্ষক গ্ৰন্থখনত লোৱা হৈছে আৰু গৌণ উৎস হিচাপে বিষয়ৰ লগত জড়িত বিভিন্ন প্ৰাসংগিক গ্ৰন্থ, আলোচনী, গৱেষণা-পত্ৰিকা সহায় লোৱা হৈছে।

কবিতা অনুবাদৰ সমস্যা ঃ

কবিতাক এক নিৰ্দিষ্ট সংজ্ঞাৰ মাজত ধৰি ৰখাটো সম্ভৱ নহয়। তথাপিও বিশ্বৰ বিভিন্ন কবি, সমালোচকসকলে কবিতাৰ সংজ্ঞা আগবঢ়াইছে।

- *ভামহৰ মতে, "শব্দাৰ্থৌ সহিতৌ কাব্যম।"*
- *বিশ্বনাথৰ মতে, "বাক্যং ৰসাত্মকং কাব্যম।"*
- *জনছনৰ মতে, "কবিতা ছন্দোবদ্ধ ৰচনা।"*

(Poetry is metrical composition)

- *মেথিউ আৰ্নল্ডৰ মতে, "কবিতা হল জীৱন বীক্ষা।"*

(Poetry is criticism of life)

- *কালাইৰ মতে, "উৎকৃষ্টতম শব্দপুঞ্জৰ উৎকৃষ্টতম বিন্যাসেই কবিতা।"*

(Poetry is the best words in the best order)

- *মিলৰ মতে, 'কবিতা হ'ল চিন্তা আৰু কথাৰ সমন্বয়, য'ত আৱেগ সাৱলীলভাৱে নিহিত হৈ থাকে।"*

(Thought and words in which emotion spontaneously embodies itself)

উপযুক্ত সংজ্ঞাবোৰৰ পৰা অনুমান কৰিব পাৰি যে কবিতাৰ পৰিধি বিস্তৃত আৰু বৈচিত্ৰ্যপূৰ্ণ। এটা সংজ্ঞাৰ মাজত কবিতাৰ আটাইবোৰ উপাদান, বৈশিষ্ট, গুণ সামৰি লোৱা সহজ নহয়। কবিতা এক কলাত্মক সৃষ্টি। কবি হৃদয়ৰ পৰা স্বতঃস্ফূৰ্তভাৱে ওলাই অহা এক অনুপম সৃষ্টি হৈছে কবিতা। সাধাৰণ অৰ্থত কবিতা হ'ল কবি এজনৰ মনত ক্ৰিয়া কৰা ভাৱ-অনুভূতি। যাক কবিয়ে নিৰ্দিষ্ট ছন্দ, অলংকাৰ, চিত্ৰকল্পৰ সহায়ত উপস্থাপন কৰে। বিশ্বৰ বিভিন্ন ভাষাত কবিতা ৰচনাৰ পৰম্পৰা সু-প্ৰাচীন। কবিতাৰ ইতিহাস যিদৰে প্ৰাচীন ঠিক সেইদৰেই কবিতা অনুবাদৰ ইতিহাসো প্ৰাচীন। প্ৰাচীন কালৰে পৰা বিশ্বৰ ভিন ভিন ভাষাত ৰচিত কালজয়ী আৰু মহৎ কবিতাসমূহ অন্য ভাষালৈ অনূদিত হৈছে। অৱশ্যে কবিতাৰ অনুবাদ অত্যন্ত কঠিন প্ৰক্ৰিয়া। এই কঠিনতাৰ বাবেই বহু সময়ত অনূদিত কবিতাই মূল কবিতাৰ শৈলী, ভাৱবস্তু, গুণ, ছন্দ, অলংকাৰ আদি সকলোখিনি ধৰি ৰাখিব নোৱাৰে। ফলত মূল কবিতাক প্ৰতিনিধিত্ব কৰাত বিফল হয়।

কবিতা সাহিত্যৰ বিভিন্ন বিধাসমূহৰ ভিতৰত এক অন্যতম বিধা। ই এনে এক বিধা য'ত শব্দ, অৰ্থ, ছন্দ, অলংকাৰ, চিত্ৰকল্প, ৰস, নান্দনিক ভাষা আদি একেলগে সন্নিবিষ্ট হৈ থাকে। প্ৰাচীন কালৰে পৰা কবিতা অনুবাদৰ পৰম্পৰা আৰম্ভ হৈছে। এক নিৰ্দিষ্ট শব্দসজ্জা, নান্দনিক ভাষা, ছন্দ, অলংকাৰ, চিত্ৰকল্প, ভাৱ আদিৰে পৰিপূৰ্ণ কবিতা এটাক অন্য ভাষাত একেই বিষয়বস্তুৰ সৈতে অনুবাদ কৰা জটিল আৰু কিছু ক্ষেত্ৰত সম্ভৱ নহয়। সেয়ে বহু সময়ত মূল কবিতাই মূল পাঠকক যিদৰে প্ৰভাৱিত কৰে তাৰ অনুৰূপে অনূদিত কবিতাই লক্ষ্য পাঠকক প্ৰভাৱিত কৰিব নোৱাৰে।

কবিতা অনুবাদ কৰোঁতে অনুবাদকে মূল কবিতাৰ কিছু অংশ সংযোজন-বিয়োজন কৰে। যাৰ ফলত অনুদিত কবিতাই মূলৰ পৰা আঁতৰি আহে। বহু সমালোচকৰ মতে কবিতাৰ অনুবাদ অসম্ভৱ। *“শ্ৰেষ্ঠ কাব্য আনুবাদ্য। দৃষ্টান্তৰূপে, “নখে মাটি লেখা খোজে তলমূৰ হৈ নুফুৰিবা পৃথিৱীত পখিলা নেচাই” নাইবা “তোমাৰ খোপাৰ আবেলি আবেলি গোন্ধ” পৃথিৱীৰ অন্য কোনো ভাষালৈ ভাষান্তৰিত কৰিব নোৱাৰি। ঠিক তেনেকৈ ভাষান্তৰিত কৰিব নোৱাৰি কীটচ কবিতাৰ সেই অমৰ চৰণটো- “A thing of beauty is a joy forever” কাৰণ, ইবিলাকৰ অন্তৰালত প্ৰচ্ছন্ন হৈ থাকে শব্দৰ এক অনন্য সাধাৰণ সাধনা, কবি হৃদয়ৰ কল্পনা প্ৰতিভাৰ অমেয় অভিব্যক্তি আৰু সেই কল্পনাৰ উপকৰণস্বৰূপ চিন্তা আৰু অভিজ্ঞতাৰ স্বতন্ত্ৰ সাৰবত্তা।”*[১] সাধাৰণতে কবিতা অনুবাদৰ দ্বাৰা এটা নতুন কবিতাৰ জন্ম দিয়া হয়। কিন্তু অনুবাদকে এইটো মনত ৰখা উচিত যে মূল কবিতাৰ ভাৱ, বিষয়বস্তু, স্বৰূপ আদি পৰিৱৰ্তন কৰাৰ কোনো ধৰণৰ অধিকাৰ তেওঁৰ নাই। এই ধৰণে পৰিৱৰ্তন কৰাৰ চেষ্টাই এক প্ৰকাৰে মূল কবিতাক নষ্ট কৰাৰ প্ৰচেষ্টা। কবিতা অনুবাদ কৰোঁতে অনুবাদকে মূল কবিৰ সংবেদনাৰ প্ৰতি গুৰুত্ব বা ধ্যান দিব লাগে অন্যথা অনুবাদকৰ অমনোযোগিতাৰ বাবে মূল কবিৰ কৃতিৰ প্ৰভাৱশালিতা হ্ৰাস হোৱাৰ সম্ভাৱনা থাকে।

প্ৰতিটো অনূদিত কবিতাই নতুন কবিতাৰ সংস্কৰণ। যিমান বাৰ কবিতা এটা অনুবাদ প্ৰক্ৰিয়াৰ মাজেৰে গতি কৰে সিমান বাৰেই অনূদিত কবিতাৰ পৰিৱৰ্তন কৰা হয়। এনে পৰিৱৰ্তনে মূল কবিতাৰ স্বৰূপৰ লগতে প্ৰভাৱশালিতা হ্ৰাস কৰে। কবিতাৰ অনুবাদে কবিতাৰ পুনৰ সৃষ্টি কৰে। অনূদিত কবিতাত মূল কবিৰ অনুভৱৰ লগতে অনুবাদকৰ অনুভৱো প্ৰতিফলিত হয়। বহু সময়ত অনুবাদত মূল কবিৰ ভাৱ, শৈলী, সমাজ আদি লুপ্ত হৈ পৰে। অনুবাদকে নতুন ভাৱ, শৈলী, সংসাৰৰ সৃষ্টি কৰে। যিয়ে মূলৰ ভাৱ, শৈলী, সংসাৰ আৰু লক্ষ্যৰ ভাৱ, শৈলী, সংসাৰৰ তথা উভয়ৰে পৰিচয় বহন কৰে।

নাটক, গল্প, উপন্যাস আদি গদ্যত ৰচিত হোৱাৰ বাবে অনুবাদ কৰোঁতে অনুবাদকে বিস্তাৰ ৰূপত বৰ্ণনা কৰাৰ সুযোগ লাভ কৰে কিন্তু কবিতা যিহেতু নিৰ্দিষ্ট ছন্দ, অলংকাৰৰ সৈতে পদ্যত ৰচনা কৰা হৈছে। সেয়ে অনুবাদকে কবিতা অনুবাদ ক্ষেত্ৰত এনে সুযোগ নাপায়। কবিতা অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত দেখা দিয়া মুখ্য সমস্যাসমূহ হ'ল -

● উপযুক্ত শব্দ চয়নৰ সমস্যা ঃ

কবিয়ে এক নিৰ্দিষ্ট শব্দসজ্জাৰে কবিতা ৰচনা কৰে। কবিতাত প্ৰয়োগ কৰা প্ৰতিটো শব্দৰে বিশেযত্ব বেলেগ বেলেগ। এই শব্দসমূহৰ অৰ্থ কেৱল শাব্দিক অৰ্থতে সীমাবদ্ধ নহয়। শাব্দিক অৰ্থৰ উপৰিও অন্য অৰ্থ প্ৰকাশ কৰে। (শব্দই মুখ্য অৰ্থ প্ৰকাশ কৰাৰ লগতে ভিন ভিন অৰ্থ প্ৰকাশ কৰে। শব্দশক্তি তিনিবিধ। অভিধা, লক্ষণা আৰু ব্যঞ্জনা) এনে ভিন্ন অৰ্থ প্ৰকাশ কৰা শব্দবোৰ একেই অৰ্থৰ সৈতে অন্য ভাষাত চয়ন কৰাটো টান। কেতিয়াবা এটা বস্তুক বুজাবলৈ এটা ভাষাতে বহু সংখ্যক শব্দ থাকিব পাৰে। কিন্তু এই বিভিন্ন শব্দবোৰৰ অৰ্থ হুবহু একেই নহয়। সামাজিক, সাংস্কৃতিক আৰু পৰিস্থিতিভেদে এই শব্দবোৰৰ প্ৰয়োগ কৰা হয়।

পৃথিৱীৰ প্ৰত্যেক ভাষাৰ প্ৰতিটো শব্দৰ এক নিজস্ব অৰ্থ থাকে। সামাজিক, সাংস্কৃতিক আৰু ভৌগোলিক পৃষ্ঠভূমিৰ সৈতে সম্পৰ্কযুক্ত এনে শব্দবোৰ কেতিয়াও অন্য ভাষাত একেই অৰ্থৰে অনুবাদ কৰিব নোৱাৰি। বহু সময়ত অনুবাদ কৰিলেও মূলৰ সমান হ'ব নোৱাৰে। সেয়ে ক'ব পাৰি মূল কবিতাৰ প্ৰতিটো শব্দ অৰ্থযুক্তভাৱে অনুবাদ কৰিবলৈ সেই একেই অৰ্থযুক্ত শব্দ লক্ষ্য ভাষাত পোৱা নাযায়। মূল কবিতাৰ প্ৰতিটো শব্দৰ অৰ্থ অনুবাদকে হৃদয়ংগম কৰি লক্ষ্য ভাষাত উপযুক্ত শব্দ চয়ন কৰা পিছত উপযুক্তভাৱে উপস্থাপন কৰে। ইয়াৰ বাবে অনুবাদকে অত্যাধিক মানসিক শ্ৰম কৰিব লগা হয়। এই গোটেইখিনি পৰ্যায় পাৰ কৰাৰ পাছতো মূলৰ সমান অনূদিত কবিতা হ'ব নোৱাৰে কেৱল মূলৰ ছায়াহে হয়। সেয়ে কিছু সমালোচকসকলে ক'ব খোজে কবিতাৰ অনুবাদ হ'বই নোৱাৰে। আকৌ আন কিছু অনুবাদ-চিন্তকসকলৰ মতে কবিতাৰ অনুবাদ হ'ব নোৱাৰা কথাটো সম্পূৰ্ণ সত্য নহয়। কবিতাৰ অনুবাদ কৰিব পাৰে কিন্তু অনূদিত কবিতা মূলৰ সমান আকৰ্ষণীয় হ'ব নোৱাৰে।

● অলংকাৰ অনুবাদৰ সমস্যা ঃ

কবিতাৰ উপাদানসমূহৰ ভিতৰত এক অন্যতম উপাদান হৈছে অলংকাৰ। কবিতাত কবিয়ে প্ৰয়োগ কৰা আলংকাৰিক

ভাষাই কবিতা অনুবাদ কৰোঁতে সমস্যাৰ সৃষ্টি কৰে। অলংকাৰ দুই প্ৰকাৰৰ। এটা হৈছে শব্দালংকাৰ আৰু আনটো হৈছে অৰ্থালংকাৰ। শব্দালংকাৰত শব্দক প্ৰাধান্য দিয়া হয়। আনহাতে, অৰ্থালংকাৰত শব্দতকৈ অৰ্থক অধিক গুৰুত্ব দিয়া হয়। (শব্দালংকাৰ - অনুপ্ৰাস, যমক, শ্লেক, বক্ৰোক্তি, পুনৰুক্তাৱদাভাস) (অৰ্থালংকাৰ- সাদৃশ্যমূলক, বৈসাদৃশ্যমূলক, শৃঙ্খলামূলক, ন্যায়মূলক, গুঢ়াৰ্থমূলক) এই অলংকাৰবোৰো আৰু কেইবাটাও উপভাগ পোৱা যায়। অলংকাৰৰ সৈতে কবিতাসমূহ অনুবাদ কৰা প্ৰায় অসম্ভৱ। উদাহৰণস্বৰূপে—

গড়গাঁও গড়গাঁও
কথা শুনি তল যাও
পথ দেখি পিছলে যে পাওঁ
দিখৌৰ সোঁতত যোৱা
ভটিয়নী বল পোৱা
উভতিব খোজে মাৰ-নাও
ওচৰতে দেখি গড়গাঁও।

— বিনন্দ বৰুৱা

উক্ত কবিতাফাঁকি অন্ত্যানুপ্ৰাসৰ উদাহৰণ। কবিতাৰ চৰণৰ শেষ ব্যঞ্জনৰ মিল অন্ত্যানুপ্ৰাসত থাকে। ব্যঞ্জিত অলংকাৰৰ সৈতে এই কবিতাফাঁকি পৃথিৱীৰ কোনো ভাষালৈ অনুবাদ কৰিব নোৱাৰি। *"অত্যন্ত ওচৰ সম্পৰ্কীয় আৰু প্ৰায় একে শব্দ ভাণ্ডাৰৰ দুটা ভাষা নহ'লে শব্দালংকাৰৰ অনুবাদ একেবাৰে অসম্ভৱ বুলি ক'লেও অত্যুক্তি নহয়। উদাহৰণস্বৰূপে, শংকৰদেৱৰ গুণমালা পুথিখনৰ কথা ক'ব পাৰি। উত্তৰ ভাৰতৰ কিছুমান ভাষালৈ ইয়াৰ অনুবাদ সহজ হ'ব, কিন্তু ইয়াৰ বিপৰীতে অন্য ভাষালৈ, বিশেষকৈ বিদেশী ভাষালৈ অনুবাদ কৰিবলৈ হলে সমস্ত শব্দালংকাৰ (ৰাম নিৰঞ্জন, পাতক ভঞ্জন। দানব গঞ্জন, গোপীকাৰঞ্জন আদি) এৰি মোটামুটিভাৱে ভাৱৰ অনুবাদহে সম্ভৱ হব। এনেধৰণৰ যত মূলৰ শব্দ বিন্যাসৰ ইফাল-সিফাল কৰিলেই মূলৰ সামগ্ৰিক সৌন্দৰ্য হানি হোৱাৰ আশংকাই দেখা দিয়ে, তাত অনুবাদক স্বাভাৱিকতে সমস্যাৰ সন্মুখীন হয়।"* [২] অৰ্থালংকাৰৰ বাবেও অনুবাদত সমস্যাৰ সৃষ্টি হয়। ভাষাভেদে উপমা, উপমান বেলেগ বেলেগ হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। যেনে - 'ফেঁচা' হিন্দী ভাষা সম্প্ৰদায়ৰ বাবে মূৰ্খৰ প্ৰতীক আনহাতে ইংৰাজী ভাষা সম্প্ৰদায়ৰ বাবে বুধিয়কৰ প্ৰতীক। গতিকে দেখা যায় এটা উপমানেই দুটা ভিন্ন ভাষা সম্প্ৰদায়ত ভিন্ন অৰ্থ প্ৰকাশ কৰে। অনুবাদকে এনেবোৰ দিশত সাৱধান নহ'লে অনৰ্থ ঘটাটো স্বাভাৱিক। কবিতা অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত এনেদৰেই অলংকাৰৰ সমস্যা আহি পৰে। কবিতাত মূলৰ অলংকাৰ ৰাখিব গ'লে অৰ্থৰ পৰিৱৰ্তন হয়। আনহাতে মূলৰ অৰ্থ ৰাখিব গ'লে মূলৰ অলংকাৰ লুপ্ত হয়।

- **ছন্দৰ সমস্যা ঃ**

কবিতাৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ উপাদান হৈছে ছন্দ। ছন্দোবদ্ধভাৱে কবিতা ৰচনা কৰা হয়। কবিতা অনুবাদৰ সময়ত অলংকাৰৰ দৰেই ছন্দও সমস্যাৰ সৃষ্টি কৰে। কাৰণ প্ৰত্যেক ছন্দৰ এক সুকীয়া গতি থাকে। বহু সময়ত পৰিলক্ষিত হৈ উৎস ভাষাৰ ছন্দ এটা লক্ষ্য ভাষাৰ বাবে সমানে প্ৰভাৱশালী নহয়। আকৌ অনুবাদ কৰোঁতে লক্ষ্য ভাষাৰ ছন্দৰ প্ৰয়োগ কৰিলে মূলৰ ছন্দৰ লয়-সুৰ সলনি হয়। কেতিয়াবা সম্পূৰ্ণৰূপে লুপ্ত হৈ পৰে।

- **ব্যক্তিত্বৰ প্ৰভাৱ ঃ**

প্ৰতিজন মানুহৰ মনৰ ভাৱ-অনুভৱ প্ৰকাশ কৰাৰ এক নিজস্ব শৈলী থাকে। কবিতা অনুবাদকসকলেও ইয়াৰ ব্যক্তিক্ৰম নহয়। ব্যক্তিভেদে মনৰ ভাৱ প্ৰকাশ কৰাৰ যি শৈলী এই শৈলীয়ে কবিতা এটা অনুবাদৰ সময়ত মূলৰ পৰা আঁতৰাই আনে। উদাহৰণস্বৰূপে, কবিতা এটা একে সময়তে দহগৰাকী ব্যক্তিক যদি এটা নিৰ্দিষ্ট ভাষাত অনুবাদ কৰিবলৈ দিয়া হয়, তেন্তে দহগৰাকী কবিৰ কবিতাৰ শৈলী বেলেগ বেলেগ হ'ব।

উপন্যাস আৰু চুটিগল্প অনুবাদৰ সমস্যা ঃ

সাহিত্যৰ বিভিন্ন বিধাসমূহৰ ভিতৰত উপন্যাস আৰু চুটিগল্প উল্লেখযোগ্য বিধা। ইংৰাজী Novel শব্দৰ প্ৰতিশব্দ হৈছে উপন্যাস। ইংৰাজী Short Story শব্দৰ প্ৰতিশব্দ হৈছে চুটিগল্প। উপন্যাস আৰু চুটিগল্প সাহিত্যৰ দুয়োটা বিধা সুকীয়া সুকীয়া বিশেষত্বৰ মহিমাৰে মণ্ডিত এক স্বতন্ত্ৰ সাহিত্যস্বৰূপ। দুয়োটা মানৱ জীৱনক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচনা কৰা হয়। উপন্যাস আৰু চুটিগল্প অনুবাদৰ সমস্যাসমূহ প্ৰায় একেই বুলি ক'ব পাৰি।

উপন্যাস আৰু চুটিগল্প সাধাৰণতে একোটা সমাজক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচিত। এনে পাঠসমূহ এটা নিৰ্দিষ্ট সংস্কৃতিৰ সৈতে ওতপ্ৰোতভাৱে সম্পৰ্কিত হোৱা বাবে অন্য ভাষাত অনুবাদ কৰাটো কঠিন। উপন্যাস আৰু চুটিগল্পত প্ৰতিফলিত সাংস্কৃতিক প্ৰসঙ্গসমূহে অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত যথেষ্ট সমস্যাৰ সৃষ্টি কৰে। প্ৰত্যেক জাতি-জনগোষ্ঠী, ভাষা সম্প্ৰদায়ৰ নিজস্ব সমাজ সংস্কৃতি আছে। সেইবোৰৰ লগত জড়িত বিশেষ শব্দ থাকে। এই শব্দসমূহ অন্য ভাষাৰ ব্যক্তিৰ বাবে পৰিচিত নহ'ব পাৰে। মূল সংস্কৃতিত থকা সাংস্কৃতিক উপাদান বা সাংস্কৃতিক বিষয়, ধাৰণা, ৰীতি-নীতি, পৰম্পৰা, লোকাচাৰ, লোকবিশ্বাস আদি যদি লক্ষ্য সংস্কৃতিত নাথাকে তেতিয়া এনে সাংস্কৃতিক বিষয়সমূহ প্ৰকাশ কৰিবৰ বাবে লক্ষ্য পাঠত উপযুক্ত শব্দৰ অভাৱ ঘটে। এনে সময়ত অনুবাদকে মূল পাঠৰ সাংস্কৃতিক প্ৰসঙ্গসমূহ প্ৰকাশ কৰিবলৈ লক্ষ্য পাঠত অভিব্যক্তিৰ সন্ধান

কৰে। কিন্তু লক্ষ্য পাঠত বিচাৰি উলিওৱা এনে অভিব্যক্তিসমূহ মূলৰ তুলনাত প্ৰায় প্ৰভাৱহীন হয়। সংস্কৃতিৰ লগত জড়িত এনে বহু শব্দ আদান প্ৰক্ৰিয়াৰ জৰিয়তে মূল পাঠৰ পৰা লক্ষ্য পাঠত উপস্থাপন কৰা হয়। প্ৰতিটো ভাষাত নিজস্ব শব্দভাণ্ডাৰ আছে। নিজস্ব ব্যাকৰণগত নিয়ম আছে। কোনো নিৰ্দিষ্ট সংস্কৃতিৰ লগত জড়িত ভাব-বিচাৰ কেৱল সেই সংস্কৃতিৰ ভাষাৰ জৰিয়তে উপযুক্তভাৱে প্ৰকাশ কৰিব পাৰি।

উপন্যাস আৰু চুটিগল্পত কবিতা, প্ৰবন্ধ, নাটক, মনোবিজ্ঞান, ৰাজনীতি, অৰ্থনীতি, সমাজ শাস্ত্ৰ আদি সকলোৰে বৈশিষ্ট্যসমূহ সন্নিৱিষ্ট হোৱা দেখা যায়। এনে বৈশিষ্ট্যসমূহে উপন্যাস আৰু চুটিগল্প অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত সমস্যাৰ উদ্ভৱ কৰে। আনহাতে উপন্যাস আৰু চুটিগল্পত আৰম্ভণিৰ পৰা শেষলৈকে একেই ধৰণৰ গদ্যশৈলী প্ৰয়োগ কৰা নহয়, বৰঞ্চ চাৰি ধৰণৰ গদ্যশৈলী প্ৰয়োগ হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। সেইবোৰ হ'ল কথোপকথনাত্মক, কথাখ্যানমূলক, বৰ্ণনা বিৱৰণমূলক আৰু ব্যাখ্যা বিশ্লেষণমূলক। উপন্যাস আৰু চুটিগল্পত প্ৰয়োগ হোৱা সুকীয়া গদ্যশৈলীৰ বাবেও অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত সমস্যাৰ উদ্ভৱ হয়।

কিছুমান উপন্যাস আৰু চুটিগল্পত গীত, পদ, শ্লোক, ঘোষা আদি সন্নিৱিষ্ট থাকে। এইবোৰ নিৰ্দিষ্ট ছন্দ, লয় সুৰযুক্ত। যিবোৰ মূল পাঠৰ দৰে লক্ষ্য পাঠত ধৰি ৰখা টান। বহু সময়ত দেখা যায় মূল পাঠত থকা গীত, পদ, শ্লোক, ঘোষা আদি লক্ষ্য পাঠত সম্পূৰ্ণৰূপে লুপ্ত থাকে। উপন্যাস আৰু চুটিগল্পৰ মূল পাঠত থকা জতুৱা ঠাচসমূহে অনুবাদ কৰোঁতে বহু সমস্যাৰ সৃষ্টি কৰে।

নাটক অনুবাদৰ সমস্যা ঃ

সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ এক অন্যতম বিধা হ'ল নাটক। নাটক অনুবাদৰ পৰম্পৰা প্ৰাচীন কালৰ পৰা চলি আহিছে। নাটক অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত অনুবাদকসকলে কিছুমান সমস্যাৰ সন্মুখীন হ'ব লগা হয়। সকলো ধৰণৰ সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত সাধাৰণতে সমস্যা থাকে। সাহিত্যৰ বিধা অনুসৰি এই সমস্যাসমূহ কম বেছি পৰিমাণৰ পৰিলক্ষিত হয়। কবিতা, চুটিগল্প আৰু উপন্যাস অনুবাদৰ সমস্যা আৰু নাটক অনুবাদৰ সমস্যা ভিন্ন ধৰণৰ। কাৰণ কবিতা, চুটিগল্প, উপন্যাস কেৱল পাঠ্য আৰু নাটক হৈছে পাঠ্যৰ লগত অভিনেয়। নাটক অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত অনুবাদকে পাঠ্য গুণৰ লগতে অভিনেয় গুণৰ প্ৰতিও সমানভাৱে গুৰুত্ব দিব লগা হয়।

নাটক অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত ৰংগমঞ্চৰ উপযোগিতা কৰি তোলাটো এক সমস্যা। নাটক কেৱল পঠনীয় নহয়, বৰঞ্চ ই অভিনেয়ৰ লগতো জড়িত। সেয়ে নাটক অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত অনুবাদৰ ৰংগমঞ্চৰ জ্ঞান আৱশ্যক। মূল নাটকৰ ৰংগমঞ্চ আৰু লক্ষ্য নাটকৰ ৰংগমঞ্চ উভয়ৰে ৰংগমঞ্চৰ পৰম্পৰা সম্পৰ্কে অনুবাদকৰ থকাটো অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ। উৎস পাঠৰ ৰংগমঞ্চৰ জ্ঞানৰ অবিহনে কেতিয়াও অনুবাদকে মূল নাটকৰ প্ৰতিকাত্মক সংকেতবোৰ ভালদৰে বুজিব নোৱাৰে। ফলত লক্ষ্য নাটকত একেই অৰ্থযুক্তভাৱে উপস্থাপন কৰিব নোৱাৰিব। সেয়ে নাটক অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত অনুবাদকৰ মূল নাটকৰ ৰংগমঞ্চ পৰম্পৰাৰ জ্ঞান থকাটো বাধ্যতামূলক। নাটক অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত কেৱল নাটক এটা ভাষাৰ পৰা আন এটা ভাষালৈ ভাষান্তৰিত কৰাই নহয়, বৰঞ্চ অনুবাদকে মূলৰ মঞ্চীয় সাজ সজ্জা, প্ৰকাশ প্ৰভাৱ, ধ্বনি আদিক লক্ষ্য ভাষাৰ মঞ্চীয় সাজ-সজ্জা, প্ৰকাশ প্ৰভাৱ, ধ্বনি আদিৰ অনুকূলন কৰি ৰূপায়িত কৰে।

নাটক অনুবাদৰ আন এটা সমস্যা হ'ল ভাষিক সমস্যা। কবিতা, চুটিগল্প, উপন্যাস আদি বিধাসমূহ পাঠকে এবাৰত নুবুজিলে বাৰে বাৰে পঢ়ি অৰ্থ গ্ৰহণ কৰিব পাৰে বা অভিধান, শব্দকোষ আদিৰ সহায় ল'ব পাৰে। কিন্তু অভিনেয় নাটকত এনে সুযোগ নাই। সেয়ে নাটক অনুবাদ কৰোঁতে একেবাৰে স্পষ্ট ৰূপত কৰিব লাগে যাতে দৰ্শকে এবাৰ শুনিলেই তাৰ অৰ্থ গ্ৰহণ কৰিব পাৰে। নাটকৰ বাক্য সহজ আৰু চুটি হ'ব লাগে। নাটকত প্ৰয়োগ কৰা শব্দ স্পষ্ট হোৱা উচিত। লগতে সংলাপবোৰ স্বাভাৱিক হ'ব লাগিব। নাটকৰ সংলাপত এক নিৰ্দিষ্ট সুৰ লয়, ছন্দ, আলংকাৰিক ভাষা থাকে। যাৰ জৰিয়তে চৰিত্ৰৰ মানসিক অৱস্থা প্ৰকাশ পায়। অনুবাদকে মূলৰ সংলাপৰ সুৰ লয়, ছন্দ, আলংকাৰিক ভাষা অনূদিত নাটকত ধৰি ৰখাটো টান। আনহাতে কিছুমান নাটকত গীত, পদ, শ্লোক, ঘোষা, জতুৱাঠাচ আদি থাকে। এইবোৰ অনূদিত নাটকত মূলৰ একেই ৰূপত অনুবাদ কৰা সম্ভৱ নহয়।

প্ৰত্যেক ভাষাত কথিত ৰূপ কিছুমান পোৱা যায়। কেতিয়াবা একেটা নাটকত বহুতো কথিত ৰূপৰ প্ৰয়োগ কৰা পৰিলক্ষিত হয়। নাটকত চৰিত্ৰৰ সামাজিক স্তৰ, শিক্ষা আৰু আঞ্চলিক পৰিচয় বুজাবলৈ বিভিন্ন কথিত ৰূপৰ প্ৰয়োগ কৰা হয়। লক্ষ্য ভাষাত সমতুল্য কথিত ৰূপ বা সামাজিক স্তৰৰ ভাষা বিচাৰি উলিওৱাটো টান। কাৰণ কথোপকথনমূলক আৰু লিখিত ভাষাৰ মাজত যথেষ্ট পাৰ্থক্য থাকে। অনুবাদকে মূল আৰু লক্ষ্য ভাষাৰ কথিত আৰু লিখিত ৰূপৰ ভালদৰে অধ্যয়ন কৰিব লাগিব। সাধাৰণতে কথিত ভাষাত ব্যাকৰণগত কিছু অংশ লোপ পোৱা দেখা যায়। অনুবাদকে এনেবোৰ দিশত সতৰ্ক হোৱা উচিত অন্যথা অনূদিত নাটকত কথোপকথনমূলক ভাষাৰ সজীৱতা হেৰুৱাব পাৰে।

সাংস্কৃতিক বৈচিত্র্যতা নাটক অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত আন এক ডাঙৰ সমস্যা। মূল নাটকৰ সাংস্কৃতিক প্ৰসঙ্গসমূহ যেনে- উৎসৱ পাৰ্বণ, সাজ-পাৰ, খাদ্যভাষ, ৰীতি-নীতি, পৰম্পৰা, লোকাচাৰ, লোকবিশ্বাস, ঐতিহাসিক ঘটনা আদি লক্ষ্য পাঠকৰ বাবে অচিনাকী হ'ব পাৰে। তেনে ক্ষেত্ৰত অনুবাদকে এই সাংস্কৃতিক প্ৰসঙ্গসমূহ অভিযোজন কৰিব নে তেনেকৈয়ে ৰাখি পাদটীকা দিব সেই সিদ্ধান্ত লোৱাটো অনুবাদকৰ বাবে কঠিন। কাৰণ অনুবাদকগৰাকী সদায় মূলৰ প্ৰতি দায়বদ্ধ হ'ব লাগে। সেয়ে মূলৰ সাংস্কৃতিক বিকৃত ৰূপত উপস্থাপন কৰিব নোৱাৰে। আনহাতে লক্ষ্য দৰ্শকৰ বাবে অনূদিত নাটক স্বাভাৱিক হ'ব লাগিব।

সামৰণি ঃ

অনুবাদ হৈছে যিকোনো লিখিত পাঠ্য সামগ্ৰী এটা ভাষাৰ পৰা আন এটা ভাষালৈ লৈ যোৱা প্ৰক্ৰিয়া। অনুবাদে সাহিত্যক সমৃদ্ধ কৰে। ইয়াৰ সহায়ত যিকোনো ভাষাৰ সাহিত্যৰ উত্তম সৃষ্টিৰাজিক এটা ভাষাৰ পৰা আন এটা ভাষালৈ প্ৰচাৰ আৰু প্ৰসাৰ কৰিব পাৰি কিন্তু সৃষ্টিশীল সাহিত্য অনুবাদ কৰাটো এটা অতি জটিল আৰু প্ৰত্যাহ্বানমূলক কাম। সৃষ্টিশীল সাহিত্য অনুবাদৰ সমস্যাসমূহ আলোচনা কৰি কেতবোৰ সিদ্ধান্ত পোৱা গ'ল —

- সৃষ্টিশীল সাহিত্য অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত শব্দ চয়ন কৰোঁতে সমস্যাৰ উদ্ভৱ হয়।
- কেতিয়াবা উৎস ভাষাৰ এটা বিশেষ শব্দৰ বাবে লক্ষ্য ভাষাত সমতুল্য শব্দ বা প্ৰতিশব্দ পোৱা নাযায়।
- আক্ষৰিক অনুবাদ অৰ্থাৎ শব্দৰ সলনি শব্দ বহুৱাই অনুবাদ কৰিলে মূলৰ অৰ্থ আৰু বাক্যবিন্যাস পৰিৱৰ্তন হোৱাৰ সম্ভাৱনা অধিক।
- কবিতাত প্ৰয়োগ কৰা আলংকাৰিক ভাষাই কবিতা অনুবাদ কৰোঁতে সমস্যাৰ উদ্ভৱ কৰে।
- অলংকাৰৰ দৰেই ছন্দৰ উপস্থিতিও কবিতা অনুবাদ কৰোঁতে সমস্যাৰ সৃষ্টি কৰে।
- লক্ষ্য পাঠত অনুবাদকে কৰা সংযোজন-বিযোজনে বহু সময়ত মূলৰ প্ৰভাৱশালিতা হ্ৰাস কৰে।
- মূল পাঠৰ ভাৱ-বিচাৰ, গুণ, অৰ্থ, শৈলী বহু সময়ত অনূদিত পাঠ হুবহু ধৰি ৰাখিব নোৱাৰে।
- অনুবাদৰ মাধ্যমেৰে মূলৰ শৈলী, ভাৱ-বিচাৰ এটা ভাষাৰ পৰা আন এটা ভাষালৈ স্থানান্তৰণ সহজ নহয়।
- মূল কবিতা আৰু লক্ষ্য কবিতাৰ বিষয়বস্তু একেই হ'লেও স্বৰূপ একে নহয়।
- কবিতা অনুবাদৰ জৰিয়তে এটা নতুন কবিতাৰ সৃষ্টি হয়।
- ভাষিক আৰু সাংস্কৃতিক ভিন্নতাই সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ অনুবাদৰ ক্ষেত্ৰত যথেষ্ট সমস্যাৰ সৃষ্টি কৰে। ❑

প্ৰসংগ সূত্ৰ ঃ

১. মহেন্দ্ৰ বৰা, *সাহিত্য উপক্ৰমণিকা,* পৃ. ১৫
২. নীৰাজনা মহন্ত বেজবৰা, *অনুবাদ তত্ত্ব আৰু প্ৰয়োগ,* পৃ. ৬৯

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

বৰা, মহেন্দ্ৰ. *সাহিত্য উপক্ৰমণিকা.* বনলতা, ২০২১.
মহন্ত বেজবৰা, নীৰাজনা. *অনুবাদ ঃ তত্ত্ব আৰু প্ৰয়োগ.* ডিব্ৰুগড়, বনলতা, ২০১১.
শৰ্মা, মদন. *অনুবাদ অধ্যয়ন তত্ত্ব আৰু প্ৰয়োগ.* গুৱাহাটী, বান্ধৱ, ২০১৭.
Bell, Roger. *Translation and Translating theory and Practice*. New York Longman. 1993.
Catford, J.C. *A Linguistic theory of Translation*. Oxford Univer-sity press Landon. 1969.
Das, Bijay Kumar. *A Handbook of Translation Studies*. Delhi At-lanta. 2021.
Nida, Eujane. *Toword Science of Translation*. Luiden. Ej. Brill. 1964.

लेखकों से निवेदन

- द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक लेख आमंत्रित हैं।
- अनूदित रचनाओं के संदर्भ में मूल लेखक की अनुमति/स्वीकृति अनिवार्य है।
- लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी यूनिकोड में 13 प्वाइंट में टंकित कराकर पत्रिका के ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com पर अथवा स्पष्ट अक्षरों में लिखकर समिति कार्यालय के पते (मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032, असम) पर भेजें।
- अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी। अत: भेजी गई रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- लेखक अपनी रचना के साथ अपना नाम, पदनाम, मोबाइल नं., ई-मेल, पूरा पता सहित एक पासपोर्ट साइज फोटो अवश्य भेजें।
- शोधपत्र की न्यूनतम शब्द-सीमा 2500 और अधिकतम 3000 होनी चाहिए और सार 150 से 200 शब्दों के भीतर होना चाहिए।
- असमीया भाषा में लिखे गए लेख को पेजमेकर फारमेट में गीतांजलि फंट, 12 प्वांइट में टाइप कराकर भेज सकते हैं।
- शोधपत्र के लेखन में एमएलए शैली का अनुपालन करना होगा।
- शोधपत्र में क्रमश: शीर्षक, सार, प्रस्तावना, उद्देश्य, संसाधन/सामग्री, प्रविधि/पद्धति, क्षेत्र, मूल विषयवस्तु का विश्लेषण, परिणाम/उपलब्धियाँ, निष्कर्ष और उद्धृत कार्य शामिल होंगे।
- शोधपत्र की मौलिकता हेतु रचना के साथ घोषणा-पत्र संलग्न किया जाना आवश्यक है।
- लेखक अपनी तथ्यात्मक सटीकता के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

द्विभाषी राष्ट्रसेवक का सदस्यता प्र-पत्र

यहाँ से काटिए

नाम : ....

पदनाम : ....

पूरा पता : ....

: ....

ई-मेल : .... मोबाइल : ....

RTGS का विवरण : ....

सदस्यता शुल्क

व्यक्तिगत		*संस्थागत*	
प्रति अंक	: रु. 100/-	प्रति अंक	: रु. 150/-
वार्षिक	: रु. 1000/-	वार्षिक	: रु. 1,500/-
आजीवन सदस्य	: रु. 10,000/-		

निर्धारित शुल्क मनीऑडर/डी.डी. के द्वारा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के नाम से समिति कार्यालय के पते पर भेजा जा सकता है। ऑनलाइन शुल्क निम्न विवरण के अनुसार भेजें :-

Name of Beneficiary	: Asom Rastrabhasha Prachar Samiti
A/c No.	: 551802010004619
Name of Bank & Branch	: Union Bank of India, Hatigaon Chariali, Dispur-781038
IFS Code	: UBIN0555185

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया, मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, डाक : इंद्रपुर, जिला : कामरूप महानगर, गुवाहाटी-781032 (असम), मो. 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

POSTAL REGISTRATION NO. GH-127/2025-2027 ❖ Date of Publication : 28th February, 2026 ❖ RNI No. ASSBIL/2009/31008

समिति के कुछ अनमोल प्रकाशन

- ❖ नामघोषा
- ❖ लौहित्य और नीलाचल
- ❖ डाक के वचन
- ❖ दादी की कहानियाँ
- ❖ राह और रोड़े
- ❖ कवच
- ❖ निर्भीक मुक्तियोद्धा
- ❖ प्रागज्योति (हिंदी/असमीया)
- ❖ असमीया साहित्य की रूपरेखा
- ❖ साहित्य समीक्षा
- ❖ आधुनिक असमीया कविता
- ❖ कार्यालयीन हिंदी
- ❖ साहित्य और प्रेम
- ❖ व्यावहारिक आलेखन और टिप्पण
- ❖ राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा
- ❖ ध्रुवस्वामिनी
- ❖ लाचित बरफुकन (काव्य)
- ❖ लाचित बरफुकन (नाटक)
- ❖ पूर्वोत्तर भारत के क्रांतिकारी
- ❖ माँ कामाख्या
- ❖ कुतु और सुमन (बाल उपन्यास)
- ❖ महापुरुष शंकरदेव (सचित्र पुस्तिका)
- ❖ भूपेन दा का सुरीला सफर
- ❖ हिंदी-असमीया शब्दकोश
- ❖ शिवसागर (पर्यटकों के लिए)

एक हृदय हो भारत जननी
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-781032

arpsguwahati.com rastrasewak51@gmail.com 9101541395/9101541380